।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
650

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनप्रणीतं
श्रीधरस्वामिविरचितभावार्थदीपिकासंवलितं

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

विस्तृतभूमिकया, अन्वयेन, हिन्द्यनुवादेन, श्रीधर्याः संस्कृतव्याख्यया
भावप्रकाशिकानाम्न्या हिन्दीव्याख्यया,
अकारादिश्लोकानुक्रमण्या च समुद्भासितम्

द्वितीय भाग
(तृतीय स्कन्ध)

सम्पादको व्याख्याकारश्च
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्यः)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्—आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542 2335263, 2335264
e-mail : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2019

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11 23286537, (मो.) +91 9811104365
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
4842/24 अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

*

मुद्रक :
ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली.

विषयानुक्रम

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	तृतीय स्कन्ध	

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

तृतीय स्कन्ध

पहला अध्याय

उद्धावजी से विदुरजी की भेंट

श्रीशुक उवाच

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल । क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ।।१।।

अन्वयः— एवम् पुरा ऋद्धिमत् स्वगृहं त्यक्त्वा वनं प्रविष्टेन क्षत्त्रा किल भगवान् मैत्रेयः एवम् एतत् पृष्टः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पूर्वकाल में सुख समृद्धि से सम्पन्न अपने गृह को त्याग कर वन में गये हुए विदुराजी ने भी इस प्रकार का प्रश्न महर्षि मैत्रेयजी से किया था ।।१।।

भावार्थ दीपिका

श्रीगोपालकृष्णाय नमः । तृतीये तु त्रयस्त्रिंशदध्यायैः सर्गवर्णनम् । ईशेक्षया गुणक्षोभात्सर्गो ब्रह्माण्डसंभवः ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये बन्धून्हित्वा गतायुषः । निर्गतस्योद्धवेनादौ संवादः क्षत्तुरुच्यते ।।२।। भगवद्ब्रह्मसंप्रोक्तं संक्षिप्तं वर्णितं पुरा। प्राह भागवतं शेषप्रोक्तं विस्तरतः पुनः ।।३।। द्वेधा हि श्रीमद्भागवतसंप्रदायप्रवृत्तिः । एकतः संक्षेपतः श्रीनारायणब्रह्मनारदादिद्वारेण, अन्यतस्तु विस्तरतः शेषसनत्कुमारसांख्यायनादिद्वारेण । तत्र द्वितीये श्रीनारायणब्रह्मसंवादेन संक्षेपतोऽहमेवासमित्यादि चतुःश्लोक्या श्रीभागवतं निरूपितम् । तदेव ब्रह्मनारदसंवादेन दशलक्षणतया किंचिद्विस्तरेणोक्तम् । तदेव शेषोक्तमतिविस्तरतो वक्तुं तृतीयाद्यारम्भः। तत्र तृतीये प्रथमं क्षत्तुर्मैत्रयसंगमश्चतुर्भिरध्यायैस्ततोऽष्टभिः सविसर्गः सर्गप्रपञ्चस्ततो विसर्गप्रस्तावेन सप्तभिर्वराहावतारस्तत एकेन विसर्गसमाहारस्तत्प्रसङ्गेन चतुर्भिः कपिलावतारस्ततो नवभिः कपिलाख्यानमिति त्रयस्त्रिंशताऽध्यायतस्तृतीयस्कन्धप्रवृत्तिः। तत्र द्वितीयस्कन्धान्ते **परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् । यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ।।** इति प्रतिज्ञातमर्थं विस्तरेण निरूपयितुमितिहासं प्रस्तौति भगवान् शुकः । एवमिति द्वाभ्याम् । ऋद्धिमत्सर्वसंपद्भिः संपूर्णम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे स्कन्ध में तैतिस अध्यायों में सृष्टि का वर्णन किया गया है । परमात्मा के संकल्प के द्वारा प्रकृति के गुणों में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसी से सृष्टि रूपी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुयी ।।१।। **तत्र तु इत्यादि** तीसरे स्कन्ध के पहले अध्याय में जिन सबों की आयु समाप्त हो गयी थी उन अपने बान्धवों को त्यागकर जो घर से निकल गये उन विदुरजी का उद्धवजी के साथ संवाद वर्णित है ।।२।। **भगवद्ब्रह्म० इत्यादि** सर्वप्रथम श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को संक्षेप में श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया है । शुकदेवजी ने शेषजी के द्वारा वर्णित भागवत का विस्तार से वर्णन किया है ।।३।।

द्वेधा हि० श्रीमद्भागवत का सम्प्रदाय दो प्रकार से प्रचलित हुआ । एकतो भगवान् नारायण और ब्रह्माजी के सम्प्रदाय के रूप में; इस सम्प्रदाय में अत्यन्त संक्षेप में श्रीमद्भागवत वर्णित हैं । दूसरे सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत

विस्तार से वर्णित है । यह सम्प्रदाय शेष सनत्कुमार तथा सांख्यायन इत्यादि के द्वारा प्रवृत है । इस सम्प्रदाय में भागवत विस्तार से वर्णित है ।

तत्रद्वितीये० इत्यादि- उसमें भी दूसरे सम्प्रदाय में श्रीनारायण और ब्रह्मा संवाद के प्रसङ्ग में **अहमेवासम् पूर्वम् इत्यादि** चतुः श्लोकी के माध्यम से भागवत का निरूपण संक्षेप में किया गया है । ब्रह्मनारद संवाद के प्रसङ्ग में कुछ विस्तार से दश श्लोक में वर्णित है । शेष के द्वारा उक्त उसी श्रीमद्भागवत को विस्तार से कहने के लिए तीसरे स्कन्ध का प्रारम्भ हुआ है ।

इस तीसरे स्कन्ध के प्रारम्भ में चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेयजी की भेट का वर्णन है । उसके पश्चात् अध्यायों में अवान्तर कल्पों के साथ सृष्टि का वर्णन है । उसके पश्चात् विसर्ग के वर्णन के प्रसङ्ग में सात अध्यायों में वराहावतार का वर्णन है । तदनन्तर एक अध्याय में विसर्ग का संक्षेप किया गया है । उसी के प्रसङ्ग में चार अध्यायों में कपिलावतार का वर्णन है । तदनन्तर नव अध्यायों में कपिलोपाख्यान का वर्णन है । इस तरह तैतिस अध्यायों में सम्पूर्ण तृतीयस्कन्ध वर्णित है ।

तत्र द्वितीयस्कन्धस्यान्ते० इत्यादि उसमें भी द्वितीय स्कन्ध के अन्त में शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से यह जो कहा था कि काल के परिमाण तथा उसका कल्प स्वरूप जो विग्रह (शरीर) है उसका मैं तृतीय स्कन्ध में वर्णन करूँगा । आप सावधानी पूर्वक पाद्मकल्प का वर्णन सुनें यह जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, उसीका विस्तार से वर्णन करने के लिए शुकदेवजी इतिहास को एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । ऋद्धिमत पद का अर्थ है सभी सम्पत्तियों से परिपूर्ण । ऐसे अपने घर का परित्याग करके विदुरजी वन में प्रवेश कर गये ॥१॥

यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः । पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥२॥

अन्वयः— वः मन्त्रकृत अयम् अखिलेश्वरः भगवान् पौरवेन्द्र गृहं हित्वा आत्मसात् कृतम् यत् प्रविवेश ॥२॥

अनुवाद— पाण्डवों के दौत्य कर्म करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन के गृह को त्यागकर जिस गृह को अपना गृह मानकर उसमें प्रवेश कर गये, ऐसे गृह का परित्याग करके विदुर जी वन में चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

किंचातिश्लाघ्यं त्यागानर्हमित्याह । यद्वै प्रसिद्धं गृहं वः पाण्डवानां मन्त्रकृद्दौत्यकर्ता सन्नयं श्रीकृष्णः । बुद्धिसन्निधानादयमिति निर्देशः । पौरवेन्द्रो दुर्योधनस्तस्य गृहं हित्वाऽनाहूत एव प्रविवेश । तत्र हेतुः-आत्मसात्कृतमात्मीयत्वेन गृहीतम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह की वह गृह अत्यन्त प्रशंसनीय था अतएव त्यागने योग्य नहीं था । विदुरजी का वह प्रसिद्ध गृह जिसमें पाण्डवों को सलाह देने वाले तथा दौत्यकर्म को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण-शुकदेवजी की बुद्धि में भगवान् श्रीकृष्ण का सन्निधान बन रहता था अतएव वे कहते ये श्रीकृष्ण दुर्योधन के राजमहल का परित्याग करके बिना बुलाये भी विदुरजी के घर में चले गये; क्योंकि विदुरजी के घर को भगवान् श्रीकृष्ण अपना घर मानते थे। उस घर का परित्याग कर दिया विदुरजी ने ॥२॥

राजोवाच

कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः । कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥३॥

अन्वयः— क्षत्तुः भगवता मैत्रेयेण सह सङ्गमः कुत्र कदा वा संवाद आस हे प्रभो नः एतद् वर्णय ॥३॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से भेंट कहाँ हुयी और उनका मैत्रेयजी के साथ संवाद कब हुआ? हे प्रभो ! इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कुत्र संगम आस बभूव ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने पूछा— हे प्रभो ! विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से कहाँ पर भेंट हुयी, उसे आप मुझे बतलायें ॥३॥

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः । तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥४॥

अन्वयः— तस्य अमलात्मनः विदुरस्य तस्मिन् वरीयसि साधुवादोपबृंहितः प्रश्नः अल्पार्थोदयः न ॥४॥

अनुवाद— महात्मा विदुरजी अमलात्मा थे । उनका उन महापुरुष महर्षि मैत्रेयजी से छोटी वस्तु विषयक संवाद नहीं हुआ होगा, क्योंकि महर्षि मैत्रेयजी ने विदुरजी के उस प्रश्न को अभिनंदित करके महिमा मण्डित किया था ॥४॥

भावार्थ दीपिका

वरीयसि श्रेष्ठे । अल्पस्यार्थस्योदयो यस्मात्तथाभूतो न भवति । साधुवादेन सतामनुमोदनेनोपबृंहितः संवर्धितः । यद्वा साधोर्मैत्रेयस्य वादेनोत्तरेण श्लाघित इत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि मैत्रेय श्रेष्ठ पुरुष थे । उनसे विदुरजी किसी छोटी मोटी वस्तु विषयक प्रश्न नहीं किए होंगे, क्योंकि विदुरजी के उस प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि ने उनको साधुवाद प्रदान किया था अथवा मैत्रेयजी साधु पुरुष थे और उन्होंने उसका उत्तर प्रदान करके उनकी प्रशंसा की थी ॥४॥

सूत उवाच

स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता । प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥५॥

अन्वयः— स अयं ऋषिवर्यः राज्ञा परीक्षिता एवम् पृष्टः सुबहुवित् प्रीतात्मा तं प्रति आह श्रूयताम् इति ॥५॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— ऋषियों में श्रेष्ठ थे शुकदेवजी । राजा परीक्षित् ने जब इस प्रकार का प्रश्न किया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए, क्योंकि वे बहुज्ञ थे । अतएव उन्होंने राजा परीक्षित् से कहा सुनो ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा कि विदुरजी की मैत्रेय से कहाँ पर और कब भेंट हुयी ? उन्होंने मैत्रेय महर्षि से क्या प्रश्न किया था ? विदुरजी महात्मा थे । वे उतने महान् पुरुष से समान्य प्रश्न तो पूछे नहीं होंगे; क्योंकि विदुरजी के प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि प्रसन्न हुए तथा उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देकर उन्होंने विदुरजी को सम्मानित किया यह सुनकर शुकदेवजी भी प्रसन्न होकर राजा से कहे कि सुनो ॥५॥

श्रीशुक उवाच

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

अन्वयः— यदा तु विनष्ट दृष्टिः राजा आसाधून स्वसुतान् अधर्मेण पुष्णन् यविष्ठस्य भ्रातुः विवन्धून् सुतान् लाक्षा भवने प्रवेश्य ददाह तदा क्षता आयात् इति शेषः ।।६।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब अन्धे राजा धृतराष्ट्र अन्यायपूर्वक अपने दुष्टपुत्रों का पालन करते रहे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिया उस समय विदुर ने अपने गृह का त्याग कर दिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

त्यागानर्हस्यापि गृहस्य त्यागे हेतुत्वेन कौरवापराधानाह–यदेत्येकादशभिः । एतेषां च तदा स क्षत्ता अयादित्येकादशे क्रियासंबन्धः । यविष्ठस्य कनिष्ठस्य पाण्डोः । विबन्धून्पितृहीनान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि विदुरजी का गृह त्यागने योग्य नहीं था फिर भी विदुरजी ने अपने उस गृह का त्याग कर दिया इसके कारण रूप से कौरवों के अपराधों को **यदा इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में शुकदेवजी ने बतलाया है । छठे श्लोक से लेकर पन्द्रहवें श्लोक के बाद सोलहवें श्लोक के तदा स क्षत्ता आयात् इस क्रिया से सम्बन्ध है । शुकदेवजी ने कहा कि राजा धृतराष्ट्र केवल आँखों के ही अन्धे नहीं थे उनकी बुद्धि भी मारी गयी थी । वे अपने दुष्टपुत्रों का तो अन्याय पूर्वक पालन करते थे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिए थे । उस समय विदुरजी ने अपने गृह का त्याग कर दिया ।।६।।

यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ।
न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

अन्वयः— यदा राजा सभायां स्वास्रैः कुचकुङ्कुमानि हरन्त्याः कुरुदेवदेव्याः स्नुषायाः केशभिमर्शं गर्ह्यम् सुतकर्म न वारयामास तदा क्षत्ता आयात् इति शेषः ।।७।।

अनुवाद— जब भरी सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचा और रोती हुयी द्रौपदी की अश्रुधारा से उसके स्तनों में लगा केसर बहने लगा, किन्तु अपनी पुत्रवधू तथा महाराज युधिष्ठिर की पटरानी द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचने जैसे निन्दित कर्म को करने से राजा धृतराष्ट्र ने नहीं रोका, तब विदुरजी अपना घर छोड़कर वन में चले गये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

कुरुदेवस्य युधिष्ठिरस्य देव्या द्रौपद्याः आत्मनः स्नुषायाः स्वीयैरस्रैरश्रुभिः स्वकुचकुङ्कुमानि रिपुस्त्रीणां वा तद्भर्तृवधेन हरन्त्याः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

महराज युधिष्ठिर की पत्नी तथा अपनी पुत्र वधू देवी द्रौपदी के आँसुओं से उनके स्तनों का अथवा शत्रुओं की स्त्रियों के स्तन का केसर बहने लगा था तब विदुरजी अपने गृह को छोड़कर वन में चले गये ।।७।।

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ।
न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥

अन्वयः— द्युते अधर्मेण जितस्य सत्यावलम्बस्य साधोः अजातशत्रोः वनागतस्य समयेन दायं याचतः तमो जुषाणः यदा न अदात् तदा वनम् अयात् ॥८॥

अनुवाद— द्यूतक्रीडा में दुर्योधन ने अन्यायपूर्वक साधुस्वभाव वाले सत्यवादी अजातशत्रु युधिष्ठिर का राज्य जीत लिया था, और राजा युधिष्ठिर वन में चले गये, जब वे वन से लौटे तो प्रतिज्ञानुसार अपना हिस्सा माँगे तो अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ने उनका दायभाग (हिस्सा) नहीं दिया उसके कारण विदुरजी वन में चले गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सत्यावलम्बस्य सत्याश्रयस्य वनात्प्रत्यागतस्य समयेन पूर्वकृतेन दायमंशं याचमानस्य यद्यदा नादान्न ददौ । तमो मोहं जुषाणः (पुत्रं सेवमानः, अविवेकं वा) ॥८॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर सत्यवादी थे । वे जब तेरह वर्ष के वनवास के पश्चात् वन से लौटे तो पूर्वकृत प्रतिज्ञा के अनुसार अपना हिस्सा माँगे । उस समय अज्ञान का सेवन करने वाले राजा धृतराष्ट्र ने उनको उनका हिस्सा नहीं दिया तो दुःखी होकर विदुरजी वन में चले गयें ॥८॥

यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ।
न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥

अन्वयः— यदा च प्रार्थप्रहितः जगद्गुरुः कृष्णः सभायां पुंसाम् अमृतायनानि जगाद तानि क्षतपुण्यलेशः राजा उरु न मेने तदा वनम् अयात् ॥९॥

अनुवाद— जब राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में पुरुषों के लिए अमृतस्रावी बातें को कहे किन्तु जिनके पुण्य का लेश भी समाप्त हो गया थे वे राजा धृतराष्ट्र उनकी बातों का सम्मान नहीं किए तो दुःखी होकर विदुरजी हस्तिनापुर छोड़कर वन में चले गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यानि वचनानि पुंसां भीष्मादीनाममृतायनान्यमृतस्रावीणि राजा धृतराष्ट्रो दुर्योधनो वा उरु बहु न मेने । क्षतो नष्टः पुण्यलेशो यस्य सः । न सुखकीर्तिधर्मादिहेतुः किंतु राज्यप्राप्तिमात्रहेतुः पुण्यलेश एवासीत्तस्यापि नष्टत्वादनादृतवानित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में आकर भीष्म इत्यादि के लिए अमृतस्रावी जिन वचनों को कहे उन वचनों का राजा धृतराष्ट्र ने सम्मान नहीं किया, क्योंकि राजा धृतराष्ट्र का सारा पुण्य समाप्त हो गया था । उससे भी दुःखी होकर विदुरजी ने अपने गृह का परित्याग कर दिया ॥९॥

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ।
अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

अन्वयः— यदा पूर्वजेन मन्त्राय उपहूतः भवनं प्रविष्टःसन् पृष्टः किल तन्मन्त्रकृतां मन्त्रिणः वरीयान् विदुरः अथाह तत् वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

अनुवाद— अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह के लिए बुलये गये विदुरजी सलाह करने वालों में श्रेष्ठ मन्त्री थे । उन्होंने जिन बातों को कहा उसे विदुर नीति के नाम से जाना जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं विदुरस्यैव कृतं पराभवं दर्शयति-यदेत्यादिषड्भिः । यदा पूर्वजेन धृतराष्ट्रेण मन्त्राय चोपहूतोऽन्तर्गृहं प्रविष्टो मन्त्रं पृष्टः सत्रथानन्तरं तदाह । किम् । मन्त्रिणोऽद्यापि यद्वैदुरिकं विदुरवाक्यमिति प्रसिद्धं वदन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अब **यदोपहूतः इत्यादि** छह श्लोकों में धृतराष्ट्र ने विदुरजी का जो अपमान किया उसका वर्णन शुकदवेजी करते हैं। अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह करने के लिए जब विदुरजी बुलाये गये तो विदुरजी राज भवन में गये और सलाह पूछने पर विदुरजी ने जिन बातों को कहा उन सबों को मन्त्रीगण आज भी विदुरनीति के नाम से अभिहित करते हैं ॥१०॥

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ।
सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥११॥

अन्वयः— तव दुर्विषहं आगः तितिक्षतः अजातशत्रोः दायं प्रतियच्छ, यत्र वृकोदराहिः सहानुजः रुषाश्वसन् यत्त्वम् अलं विभेषि ॥११॥

अनुवाद— विदुरजी ने कहा अजातशत्रु युधिष्ठिर आप के नहीं सहने योग्य अपराध को सह रहे हैं, उनको उनका हिस्सा आप दे दें। उनके साथ भीम रूपी काले सर्प विद्यमान हैं। वे अपेन अनुजों के साथ क्रोध करके बदला लेने के लिए फुफकार रहे हैं। उनसे तो आप भी बहुत डरते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह अजातशत्रोरिति त्रिभिः । तव आगोऽपराधं सहमानस्य दायं प्रतियच्छ देहि । यत्रापराधेऽनुजैः सह वर्तमानो वृकोदररूपोऽहिः क्रोधेन श्वसन्वर्तते । यद्यस्मात्त्वमलमत्यर्थं विभेषि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने जो सलाह दिया उसका तीन श्लोकों में वर्णन किया जा रहा है। युधिष्ठिर आपके नहीं सहने योग्य अपराधों के सह रहे हैं, अतएव आप उनको उनका हिस्सा प्रदान कर दें। उन अपराधों को सोचकर भीमरूपी भयङ्कर सर्प अपने छोटे भाईयों के साथ क्रोध करके फुफकार रहे हैं। भीम से तो आप भी बहुत अधिक डरते हैं ॥११॥

पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान्सक्षितिदेवदेवः ।
आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥१२॥

अन्वयः— क्षितिदेवदेवः यदुदेवदेवः विनिर्जिताशेष नृदेवदेवः देवो भगवान् मुकुदः पार्थान् गृहीतवान् सः स्वपुर्याम् आस्ते ॥१२॥

अनुवाद— सभी ब्राह्मणों के आराध्य तथा सभी यदुवंशियों के भी आराध्य दिव्य गुण सम्पन्न भगवान मुकुन्द ने सभी राजाओं को परास्त किया है, उन्होंने पाण्डवों को अपने आत्मीय रूप से स्वीकार किया है, इस समय वे अपनी राजधानी द्वारका में ही विद्यमान हैं, कही अन्यत्र नहीं गये हैं। अतएव आप युधिष्ठिर को उनका हिस्सा प्रदान कर दें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु मम तादृशाः पुत्रा बहवः सन्तीति गर्वं मा कृथा इत्याह । पार्थांस्तु मुकुन्द आत्मीयत्वेन गृहीतवान् । स च देवस्तत्रापि भगवान्न तु प्राकृतः । किंच सह क्षितिदेवैर्विप्रैर्देवैश्चेन्द्रादिभिर्वर्तमानः । यतोऽसौ तत्रैव विप्रा देवाश्चेत्यर्थः । स च

स्वपुर्यामेव सुखमास्ते, न त्वन्यत्र गतः । किंच यदुदेवानां देवः पूज्यः । यतोऽसौ तत्रैव यदुप्रवीरा इत्यर्थः । किंच नृदेवेषु मण्डलेश्वरेषु दीव्यन्ति प्रकाशन्त इति नृदेवदेवा राजानः, विनिर्जिता अशेषा नृदेवदेवा येन । यतोऽसौ तत्रैव सर्वे राजानः । अतः पार्थानां दायं देहीति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आपको इस प्रकार का गर्व नहीं करना चाहिए कि भीम के समान मेरे अनेक पुत्र हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को आत्मीय रूप से स्वीकार कर लिया है । वे प्राकृत पुरुष नहीं हैं, बल्कि वे भगवान् हैं । वे विप्रों तथा इन्द्र आदि देवताओं के साथ वर्तमान हैं । क्योंकि जिस पक्ष में श्रीभगवान् रहते हैं उसी पक्ष में सभी देवता और ब्राह्मण रहते हैं, वे अपनी नगरी द्वारका में ही सुख पूर्वक रह रहे हैं वे कहीं अन्यत्र नहीं गये हैं । वे सभी यदुवंशियों के पूज्य हैं । अतएव वे जिस पक्ष में हैं उसी पक्ष में सभी यदुवंशी वीर भी हैं । तथा श्रीभगवान् ने पृथिवी के समस्त बड़े-बड़े राजाओं को जीत लिया है । अतएव जिस पक्ष में भगवान् हैं, उसी पक्ष में सभी राजा भी हैं । इन सारी बातों का विचार करके आप पाण्डवों का हिस्सा प्रदान कर दें ॥१२॥

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

अन्वयः— यम् अपत्यमत्या पुष्णासि स एष दोषः गृहान् प्रविष्टः पुरुषद्विड आस्ते कृष्णादिमुखः गतश्रीः त्वम् कुकौशलाय अशैवं तं आशु त्यज ॥१३॥

अनुवाद— जिस दुर्योधन को आप अपना पुत्र मानकर उसका पालन पोषण कर रहें हैं, वह मूर्तिमान दोष हैं और आपके घर में प्रवेश कर गया है । वह परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है, उसके ही चलते आप भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख होकर श्रीहीन हो गये हैं । अतएव इस अमङ्गल स्वरूप दुर्योधन का आप शीघ्र त्याग कर दें इसी में आपके वंश की भलाई हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

दुर्योधनस्तत्र मन्यत इति चेदत आह । स एष मूर्तो दोष एव गृहान्प्रविष्ट आस्ते । दोषत्वे हेतुः-पुरुषद्विट् श्रीकृष्णद्वेष्टा। कोऽसौ । यं त्वमपत्यमत्या पुष्णासि न त्वपत्यमसौ । न पतत्यस्मादिति ह्यपत्यं प्राहुः । गता श्रीर्यस्मात्स त्वमित्याक्रोशति । अत एनमशैवममङ्गलमाशु त्यज । कथं पुत्रस्त्याज्यस्तत्राह । कुलस्य कौशलाय । **'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे'** इत हि न्यायः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या करूँ दुर्योधन नहीं मानता है । तो इसका उत्तर है कि दुर्योधन तो मूर्तिमान दोष है और वह आपके गृह में प्रवेश कर गया है । उसके दोष स्वरूप होने का कारण यह है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है । जिसको आप अपना अपत्य (सन्तान) मानते हैं वह आपका अपत्य नहीं है । क्योंकि अपत्य तो उसको कहते हैं जिसके कारण मनुष्य का पतन न हो । आप तो उसी के कारण भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं और आपकी श्रीसमाप्त हो गयी है । अतएव यह दुर्योधन अमङ्गल स्वरूप है, इसका आप शीघ्र ही त्याग कर दें । यदि कहें कि पुत्र का त्याग कैसे किया जाय तो इसका उत्तर है कि **कुलकौशलाय** अपने वंश की रक्षा के लिए अपने पुत्र का भी त्याग किया जा सकता है । कहा भी गया है कि कुल को बचाने के लिए किसी एक को त्यागना पड़े तो त्याग देना चाहिए ॥१३॥

इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।
असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥१४॥

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ।
तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥१५॥

अन्वयः— सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता इति ऊचिवान् । तत्र प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण सकर्णानुजसौबलेन सह दुर्योधनेन असत्कृतः । एनम् दास्याः सुतम् अत्र कः उपजुहाव ? यद् बलिना पुष्टः तस्मिन् प्रतीपः परकृत्ये आस्ते । अतः श्वशानः पुरात् निर्वास्यताम् ॥१४-१५॥

अनुवाद— जिनके शील को साधु पुरुष प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे विदुरजी की इस तरह की बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि तथा दुर्योधन के ओठ फड़कने लगे और विदुरजी का अपमान करते हुए दुर्योधन ने कहा— इस दासी के पुत्र को यहाँ पर किसने बुलाया है ? यह जिसका अन्न खाता है, उसी के विरुद्ध काम करता है । यह शत्रु का काम बनाना चाहता है । इसको जीवित ही इस नगर से निकाल बाहर करो ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

इत्यूचिवानेवमुक्तवान् । असौ क्षत्ता विदुरः सतां स्पृहणीयं शीलं यस्य कर्णदुःशासनशकुनिसहितेन दुर्योधनेनासत्कृतस्तिरस्कृतः। तिरस्कारमाह-क इति । दासीसुतो ह्यत्राह्वानानर्हः । जिघ्यश्च कुटिलः । जिह्मतामाह । यस्य बलिनाऽन्नेन पुष्टस्तस्मिन्नेव प्रतीपः प्रतिकूलः परेषां कार्ये वर्तते । अतः पुरान्निर्वास्यताम् श्वसानः जीवमात्रशेष इत्यर्थः । पाठान्तरे श्मशानवदमङ्गलः ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने इस प्रकार से दुर्योधन के विषय में कहा— विदुरजी का शील सत् पुरुषों के भी लिए स्पृहणीय था, उनकी बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि और दुर्योधन क्रुद्ध हो गये । दुर्योधन ने विदुरजी को अपमानित करते हुए कहा— यह तो दासी पुत्र है, यह यहाँ बुलाने योग्य नहीं है । यह स्वभाव से जिह्म अर्थात् कुटिल है । यह जिसका अन्न खाकर जीता है, उसके ही विरुद्ध कार्य करता है और उसके शत्रुओं का कार्य करता है; अतएव इसको इस हस्तिनापुर से बाहर निकाल दो इसको मारो मत जीते ही जी निकाल दो । जहाँ पर **पुराच्छ्मशानः** पाठ है, वहाँ इसका अर्थ होगा, यह श्मशान के समान अमङ्गलमय है, अतएव इसको नगर से बाहर निकाल दो ॥१४-१५॥

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥१६॥

अन्वयः— इत्थम् भ्रातु पुरः उल्बाणकर्णबाणैः मर्मसु ताडितोऽपि, गतव्यथः मायां पुरो मानयानः द्वारि धनुः निधाय अयात् ॥१६॥

अनुवाद— इस प्रकार से अपने बड़े भाई के सामने ही मर्मवेधी शब्द रूपी कानों से हृदय में प्रवेश करने वाले बाणों से बेधित होकर उनको कोई व्यथा इसलिए नहीं हुयी कि वे माया को ही इसमें अधिक महत्त्व देते थे । वे उन सबों के द्वारा निकाले जाने से पहले ही अपने धनुष को दरवाजे पर रख दिए और घर से बाहर निकल गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अत्युल्बणैः कर्णयोर्बाणवत्प्रविशद्भिः परुषवाक्यैर्मर्मसु ताडितोऽपि गतव्यथः । तत्र हेतुः-मायामुरु बहु मानयन्नहो मायाया माहात्म्यमिति तामेव तत्र हेतुं मन्यमानस्तत्रिःसारणात्पूर्वं स्वयमेव अयान्निर्जगाम । किं कृत्वा । एते नूनं मरिष्यन्ति किं धनुषेति तस्य द्वारि धनुःर्निधाय । यद्वा भीमादिभिः संगत्यास्माभिर्योत्स्यतीति मा शङ्कीरिति धनुर्निधानम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

दुर्योधन के वे कठोर वचन कानों के मार्ग से हृदय में प्रवेश करके मर्मस्थल को आहत करने वाले थे, किन्तु उन शब्दों को सुनकर भी विदुरजी को इससे कष्ट नहीं हुआ, क्योंकि वे इसमें माया का ही महत्त्व देते थे। वे जानते थे कि माया ही प्रेरित करके दुर्योधन से इस तरह की बातें करवा रही है । अतएव वे सब विदुरजी को हस्तिनापुर से बाहर निकालें उससे पहले ही वे अपने आप उस नगर से निकल गये । वे नगर से निकलते समय धनुष को राजमहल के द्वारा पर ही रख दिए । क्योंकि वे यह जानते थे कि ये सब मरने वाले हैं, फिर धनुष का क्या उपयोग है ? अथवा यह सोचकर उन्होंने धनुष को रख दिया कि यदि मैं धनुष लेकर जाऊँगा तो ये सब सोचेंगें कि यह भीमादि के साथ मिलकर युद्ध करेगा, इसीलिए उन्होंने धनुष रख दिया ॥१६॥

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

अन्वयः— कौरवपुण्यलब्धः सः गजाह्वयात् निर्गतः पुण्यचिकीर्षया उर्व्यां तीर्थपदः पदानि अन्वाक्रमत यानि सहस्रमूर्तिः स्वधिष्ठितः ॥१७॥

अनुवाद— कौरवों के पुण्य के फल रूप में उन सबों को प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुर से निकल गये और पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पृथिवी पर विचरण करने लगे । जिन तीर्थों में श्रीभगवान् ब्रह्मा, शिव आदि हजारों मूर्ति के रूप में विद्यमान हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततो निर्गतस्य तीर्थाटनप्रकारमाह-स इत्यष्टभिः । स गजाह्वयान्निर्गतः । संस्तीर्थ पादौ यस्य तस्य हरेः पदानि क्षेत्राणि पुण्यचिकीर्षयाऽन्वाक्रमत्प्रत्यपद्यत । कौरवाणां पुण्येन लब्ध इति तेषां भाग्यमेव तेन रूपेण गतमिति सूचितम् । उर्व्यां सहस्रमूर्तिर्ब्रह्मरुद्राद्यनेकमूर्तिः संस्तीर्थपाद्यानि यान्यधिष्ठाय स्थितः तानि तानि जगामेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर से निकलकर विदुरजी ने जिस प्रकार से तीर्थों में भ्रमण किया उस प्रकार को **स निर्गतः इत्यादि** आठ श्लोकों से बतलाते हैं । हस्तिनापुर से निकले हुए वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पुण्य करने की इच्छा से घूमने लगे । **कौरवपुण्य लब्धः** इस पद के द्वारा शुकदेवजी ने इस अर्थ को सूचित किया है कि वे कौरवों को उनके पुण्यों के फलरूप से ही प्राप्त थे । उनके नगर से निकलने का अर्थ है कि उनके रूप में कौरवों का पुण्य ही उस नगर से निकलकर चला गया । विदुरजी श्रीभगवान् के उन तीर्थों में गये जिन तीर्थों में ब्रह्मा रुद्र आदि अनेक मूर्तियों को धारण करने वाले श्रीभगवान् अधिष्ठाता के रूप में विद्यमान हैं । उन तीर्थ स्थलों में वे गये॥१७॥

पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ।
अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥

अन्वयः— अनन्य सः अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेषु अपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु तीर्थायतनेषु चचार ॥१८॥

अनुवाद— विदुरजी अकेले ही जहाँ-जहाँ भगवान् की प्रतिमाओं से सुशोभित तीर्थ स्थान नगर, पवित्र वन, पर्वत, निकुञ्ज और स्वच्छ जल से भरे हुए नदी सरोवर थे उन सभी स्थानों में विचरण किए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यानि यान्युपवनादीनि तेषु कुञ्जं लतादिगूढस्थानम् । अपङ्कानि तोयानि येषां तेषु सरित्सरःसु च तीर्थेष्वायतनेषु क्षेत्रेषु च । कीदृशेषु । अनन्तस्य लिङ्गैर्मूर्तिभिः सम्यगलंकृतेषु । अनन्य एकाकी ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी जो पवित्र वन थे उनमें विद्यमान कुञ्ज तथा लता स्थान थे, स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर और नदियों, तीर्थों, मन्दिरों तथा क्षेत्रों में गये । प्रश्न है कि ये सभी किस प्रकार के थे ? तो इसका उत्तर है कि अनन्त मूर्तियों वाले श्रीभगवान् की मूर्तियाँ जिन स्थानों में थीं उन स्थानों में गये । वे इन सभी स्थानों में अकेले विचरण करते थे ॥१८॥

गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

अन्वयः— स्वैरवधूतवेषः अलक्षितः मेध्य विविक्तवृत्तिः गां पर्यटन सदाऽऽप्लुतः अधः शयानः हरितोषणानि व्रतानि चेरे ॥१९॥

अनुवाद— वे अवधूत वेष में अपनी इच्छानुसार विचरण करते थे, कोई भी आत्मीय व्यक्ति उनको पहचान नहीं पाता था । वे पवित्र वृत्ति से अपने जीवन का निर्वाह करते थे । प्रत्येक तीर्थों में स्नान करते थे और पृथिवी पर सोते थे एवं श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले व्रतों का पालन करते थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

किंच गां पर्यटन् व्रतानि चेरे आचरत् । मेध्या पवित्रा विविक्ताऽसंकीर्णा वृत्तिर्जीविका यस्य । सदाप्लुतः प्रतितीर्थं स्नातः । अधः शयनं यस्य । अवधूतोऽसंस्कृतदेहः, अवधूतवेषो वल्कलादिधारी । अतएव स्वैरलक्षितः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तीर्थों में सञ्चरण करते हुए विदुरजी ने व्रतों का पालन किया । उनकी वृत्ति पवित्र तथा दूसरों की वृत्ति से सङ्कीर्ण नहीं थी । वे प्रत्येक तीर्थों में जाकर स्नान करते थे पृथिवी पर सोते थे और अपने शरीर को सजाते नहीं थे । बल्कल आदि धारण किए हुए अवधूत वेष में रहते थे । इसीलिए उनको कोई भी आत्मीय व्यक्ति पहचान नहीं पाता था ॥१९॥

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥

अन्वयः— इत्थम् भारतमेव वर्षं व्रजन् यावत् कालेन प्रभासम् गतवान् तावत् अजितेन पार्थः एकचक्राम् एकातपत्राम् क्षितिं शशास ॥२०॥

अनुवाद— इस तरह भारत वर्ष में ही भ्रमण करते हुए विदुरजी जब तक प्रभास क्षेत्र में पहुँचे तब तक भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सम्पूर्ण पृथिवी के राजा युधिष्ठिर एक छत्र राज्य किये । सम्पूर्ण पृथिवी में उनकी ही सेना थी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एकस्यैव चक्रं सैन्यं यस्याम् । एकमेव राजचिह्नं श्वेतातपत्रं यस्यां ताम् । अजितेन श्रीकृष्णेन सहायेन ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उतने समय तक भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता से राजा युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पृथिवी का एक छत्र राज्य किया। **एकचक्राम्** कहने का अभिप्राय है कि सम्पूर्ण पृथिवी पर एकमात्र राजा युधिष्ठिर की ही सेना थी तथा **एकातपत्राम्** पद का अर्थ है सम्पूर्ण पृथिवी राजा युधिष्ठिर के श्वेतच्छत्र के तले प्रशासित होती थी ॥२०॥

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥

अन्वयः— अथ तत्र वेणुजवह्नि संश्रयम् संस्पर्धया दग्धं वनं यथा सुहृदविनष्टिं शुश्राव अथ अनुशोचन् तुष्णीम् प्रत्यक् सरस्वतीम् इयाय ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रभास क्षेत्र में ही जैसे अपनी ही रगड़ से उत्पन्न अग्नि के द्वारा बांसों का सम्पूर्ण वन जल जाता है, उसी तरह परस्पर के कलह के कारण विनष्ट हुए अपने कौरव बन्धुओं के विनाश का समाचार उन्होंने सुना । यह सुनकर शोक करते हुए विदुरजी चुपचाप सरस्वती नदी के तट पर आ गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रभासे परस्परस्पर्धया निमित्तभूतया सुहृदां कौरवाणां विनष्टिं विनाशमशृणोत् । परस्परनाशे दृष्टान्तः-वेणुजं वह्निं संश्रयते यद्वनं तद्यथा दग्धं भवति तथा प्रत्यगुद्गमाभिमुखम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस प्रभास क्षेत्र में ही विदुरजी ने परस्पर के कलह के कारण अपने कौरव बान्धवों के विनाश को सुना। परस्पर विनाश का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जिस तरह बाँसों के परस्पर रगड़ के कारण उत्पन्न अग्नि से जैसे बांसों का वन विनष्ट हो जाता है उसी तरह कौरवों का विनाश हो गया । यह सुनकर विदुरजी शोक संतप्त हो गये और वहाँ से वे चुपचाप सरस्वती नदी के उद्गम स्थान के प्रवाहाभिमुख तट पर आ गये ॥२१॥

तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

अन्वयः— तस्यां त्रितस्य उशनसः मनोः च पृथोः, अथाग्नेः असितस्य वायोः, सुदासस्य, गवां, गुहस्य, श्राद्धदेवस्य च यत् तीर्थं स आसिषेवे ॥२२॥

अनुवाद— वहाँ पर त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह तथा श्राद्धदेव के नाम से विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

त्रितादीनामेकादशतीर्थानि तत्तन्नाम्ना प्रसिद्धान्यासेवितवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर विदुरजी ने त्रित आदि के नाम से विख्यात तथा वहाँ पर विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्वयः— इह अन्यानि च द्विजदेवदेवैः कृतानि विष्णोः नानायतनानि प्रत्यङ्गमुख्यांकित मन्दिराणि, यद् दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति, तानि सिषेवे ॥२३॥

अनुवाद— इस पृथिवी पर ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा निर्मित भगवान् विष्णु के अनेक मन्दिरों का, जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्ग पर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य आयुध चक्र का चिह्न है, जिसको देखने से ही भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का भी उन्होंने सेवन किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

द्विजदेवैर्ऋषिभिर्देवैश्च कृतानि अङ्गमङ्गं प्रति वर्तन्ते इति प्रत्यङ्गान्यायुधानि तेषु मुख्यं चक्रं तेनाङ्कितानि मूर्धन्यहेमकुम्भेषु चिह्नितानि मन्दिराणि येषु तानि नानाविधानि विष्णोरायतनानि क्षेत्राणि तीर्थानि चासिषेवे । येषां चक्राङ्कितमन्दिरवतां दर्शनाच्छ्रीकृष्णस्मरणं भवति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

द्विजदेवों अर्थात् ऋषियों और देवताओं द्वारा निर्मित मन्दिरों जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्गों में भगवान् के मुख्य आयुध चक्र जिनके शिखर पर विद्यमान सुवर्णकलशों पर चिह्नित हैं तथा अनेक प्रकार के भगवान् विष्णु के मन्दिरों का क्षेत्रों तथा तीर्थों का विदुरजी ने सेवन किया । जिन तीर्थों के चक्र चिह्नित मन्दिरों को देखने मात्र से भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का विदुरजी ने सेवन किया ।।२३।।

ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च ।
कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ।।२४।।

अन्वयः— ततः तु ऋद्धं सुराष्ट्रम्, सौवीरम्, मत्स्यान् कुरुजाङ्गलान् च कालेन अतिव्रज्य यमुनाम् उपेत्य तत्र भागवतं उद्धवं ददर्श ।।२४।।

अनुवाद— वहाँ से समृद्ध सुराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य, कुरुजाङ्गल, प्रदेशों को पार करके जब यमुना के तट पर आये तो विदुरजी ने वहाँ पर महाभागवत उद्धवजी को देखा ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अतिव्रज्यातिक्रम्य । यावदुद्धवः प्राप्तस्तावत्स्वयमपि यमुनामुपेत्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

मूल के अतिव्रज्य का अर्थ है पार करके । सुराष्ट्र आदि प्रदेशों को पार करके जब तक यमुना तट पर उद्धवजी आये तब तक विदुरजी भी वहाँ आ गये ।।२४।।

स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ।
आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ।।२५।।

अन्वयः— वासुदेवानुचरम् प्रशान्तम् बृहस्पतिः पाक्तनयं प्रतीतम् उद्धवम् प्रणयेन आलिङ्ग्य स्वानाम् भगवत् प्रजानाम् भद्रम् अपृच्छत् ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रख्यात अनुचर तथा शान्त स्वभाव वाले बृहस्पति के प्राचीन शिष्य रूप से प्रख्यात उद्धवजी का प्रेम पूर्वक गाढालिङ्गन करके विदुरजी ने अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण की प्रजाओंका समाचार पूछा ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स विदुरः । प्राक्तनयं पूर्वशिष्यं नीति शास्त्रे । पाठान्तरे प्राप्तो नयो नीतिशास्त्रं येन तम् । प्रतीतं प्रख्यातम् । स्वानां ज्ञातीनां भद्रमपृच्छत् । प्रश्ने हेतुः-भगवतः प्रजानां पोष्याणाम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी आचार्य बृहस्पति के प्राचीन शिष्य थे, वे भगवान् श्रीकृण के प्रख्यात अनुचर और शान्त स्वभाव वाले थे । जहाँ पर प्राप्तनयं पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा नीतिशास्त्र के ज्ञाता उद्धवजी का, विदुरजी ने प्रेम पूर्वक

गाढालिङ्गन किया, और उनसे अपने दायादों पाण्डवों का समाचार पूछा । उनका समाचार पूछने का कारण था कि वे भगवान् के पाल्य थे ॥२५॥

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ।
आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

अन्वयः— स्वनाभ्य पाद्मानुवृत्या इह किल अवतीर्णौ पुराणौ पुरुषौ ऊर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कच्चित शूरगेहे कुशलं आसाते ॥२६॥

अनुवाद— अपने नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी की प्रार्थना से इस लोक में अवतीर्ण, पुराण पुरुष श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णजी पृथिवी के भार को उतारकर पृथिवी को सुखमय बनाकर शूरसेन के गृह में कुशल पूर्वक तो हैं न ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावद्रामकृष्णयोः कुशलं पृच्छति । कच्चिदिति प्रश्ने । स्वनाभौ भवः स्वनाभ्यः पाद्मो ब्रह्मा तस्यानुवृत्त्या प्रार्थनयेहावतीर्णौ कुशलमासाते वर्तते । कृतक्षणौ दत्तावसरौ सर्वेषां कृतोत्सवाविति वा । तयोर्नित्यकुशलत्वेऽप्युक्तविशेषणविशिष्टौ शूरसेनस्य गृहे कच्चिदासाते इति प्रश्नः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी सर्वप्रथम श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् का कुशल इस श्लोक के द्वारा पूछते हैं । कच्चित् शब्द प्रश्न के अर्थ में प्रयुक्त है । भगवान् की अपनी नाभि से उत्पन्न होने के कारण स्वनाभ्य शब्द से कमल को कहा गया है, उस कमल से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्माजी पाद्म शब्द से कहे गये हैं । उनकी ही प्रर्थना से प्रसन्न होकर भगवान् इस लोक में श्रीबलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में अवतीर्ण हुए है वे दोनों पुराण पुरुष परमात्मा ही हैं । वे दोनों कुशल पूर्वक हैं न । **कृतक्षणौ** का अर्थ है कि भगवान् ने पृथिवी के भार को उतार कर सबों को उत्सव मनाने का अवसर प्रदान किया है । यद्यपि उन दोनों का सदा कुशल रहता है फिर भी वे दोनों जो उपर्युक्त विशेषण से विशिष्ट हैं, वे शूरसेन के गृह में सुख पूर्वक हैं, न इस तरह से विदुरजी ने उद्धवजी से प्रश्न किया ?॥२६॥

कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ।
यो वै स्वसृणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ॥२७॥

अन्वयः— हे अङ्ग नः ! कुरूणां परमः सुहृत् भामः शौरिः कच्चित् सुखम् आस्ते । यो वै वदान्यः स्वसृणां वरान् वरतर्पणेन पितृवद् ददाति ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रियवर ! हम कुरुवंशियों के परम सुहृत् पूज्य वसुदेवजी जो अपने पिता के समान उदारता पूर्वक कुन्ती आदि अपनी बहिनों को और उनके स्वामियों का सन्तोष कराते हुए उनकी सभी मन चाही वस्तुओं को देते हैं वे तो आनन्द पूर्वक हैं न ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यदूनां कुशलं पृच्छति नवभिः । भामः पूज्यः । शौरिर्वसुदेवः । यद्वा भामो भगिनीभर्ता । कुन्ती वसुदेवस्य भगिनी अतो देवकी पाण्डोर्भगिनीति लोकव्यवहारः । वरानर्थान् । वदान्योऽत्युदारः । वराणां तत्पतीनां तर्पणेन संतर्पणेन सह ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अब विदुरजी नव श्लोकों से यदुवंशियों का कुशल पूछते हैं । भाम शब्द पूज्य का वाचक है अथवा भाम शब्द से बहनोई बहिन के पति को भी भाम कहते हैं । इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि पूज्य वसुदेवजी कुशल पूर्वक हैं न । वसुदेवजी की बहन कुन्ती हैं । अतएव देवकी पाण्डु की बहन हैं । यह लोक में माना जाता है। विदुरजी कहते हैं कि वसुदेवजी अपने पिता के ही समान अपनी बहिनों के समान उनके पतियों को भी उदारता पूर्वक वस्तुओं को प्रदान करते हैं ।।२७।।

कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ।
यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ।।२८।।

अन्वयः— अङ्ग ! यदूनां बरूथधिपतिः वीरः प्रद्युम्नः कच्चित् सुखमास्ते यः आदि सर्गे कामः आसीत् विप्रान् आराध्य रुक्मिणी यं भगवतः अभिलेभे ।।२८।।

अनुवाद— प्रियवर उद्धवजी ! यादवों के सेनापति वीर प्रद्युम्न तो सुख पूर्वक हैं न जो पूर्वजन्म में कामदेव थे । ब्राह्मणों की आराधना करके जिनको देवी रुक्मिणी ने श्रीभगवान् से पुत्र रूप में प्राप्त किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

वरूथाधिपतिः सेनानीः । आदिसर्गे पूर्वजन्मनि स्मरं कामं संतमभिलेभे पुत्रं लब्धवती ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

बरूथाधिपति सेनापति को कहते हैं । प्रद्युम्नजी पूर्व जन्म में कामदेव थे । ब्राह्मणों की अराधना करके रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण भगवान् से पुत्र के रूप में उनको प्राप्त किया था ।।२८।।

कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।
यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ।।२९।।

अन्वयः— सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणाम् अधिपतिः (उग्रसेनः) कच्चित् सुखमास्ते । सः नृपासनाशां दूरतः परिहृत्य (स्थित आसीत्) यम शतपत्रनेत्रः अभ्यषिञ्चत् ।।२९।।

अनुवाद— सात्वत वृष्णि, भोज तथा दाशार्हवंशी यादवों के स्वामी उग्रसेन जी तो सुख पूर्वक हैं न । वे प्राणभय के कारण सिंहासन की आशा का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिये थे । उनको कमल के समान नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसिंहासन पर बैठाया ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सात्वतादीनामधिप उग्रसेनः । शतपत्रनेत्रः श्रीकृष्णः । नृपासनाशां राज्याभिलाषं परिहृत्य प्राणभयेन दूरात्स्थितमित्यर्थः।।२९।।

भाव प्रकाशिका

सात्वतवंशी आदि यादवों के स्वमी उग्रसेन तो प्राणभय के कारण राजसिंहासन की आशा का विल्कुल त्याग कर दिए थे । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको राजसिंहासन पर बैठाया ।।२९।।

कच्चिद्धरे सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ।
असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गृहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ।।३०।।

अन्वयः— हे सौम्य हरेः सदृक्षः सुतः रथिनाम् अग्रणी साम्बः कच्चित् साधु आस्ते यः अग्रे अम्बिकया धृतः यं गुहं देवं व्रताढ्या जाम्बवती यं असूत ।।३०।।

अनुवाद— हे सौम्य उद्धवजी ! श्रीहरि के ही समान उनके पुत्र तथा रथियों में अग्रगण्य साम्ब तो सुख पूर्वक हैं न । जिनको पूर्व जन्म में पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था, उन कार्तिकेय की आराधना करके अनेक व्रतों को करने वाली जाम्बवती देवी ने पुत्र के रूप में जन्म दिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हे सौम्य ! हरेः सुतस्तेन सदृक्षः सदृशः साधु सुखमास्ते । गुहं स्वामिकार्तिकेयम् । अग्रे पूर्वजन्मनि यो भवान्या गर्भे धृतस्तम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हे सौम्य ! उद्धव जी श्रीहरि के पुत्र और उनके समान साम्ब सुख पूर्वक तो हैं । पूर्वजन्म में ये कार्तिकेय थे । इनको पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था । उनकी ही आराधना करके जाम्बवती देवी ने उनको अपने पुत्र के रूप में जन्म दिया था ॥३०॥

क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।
लेभेऽञ्जसाऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥

अन्वयः— सः युयुधानः कच्चित् क्षेमं आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः यः अधोक्षज सेवयैव अञ्जसा यतिभिर्दुरापां तदीयां गतिं लेभे ॥३१॥

अनुवाद— वे युयुधान (सात्यकि) सुख पूर्वक तो हैं न जिन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या की शिक्षा को प्राप्त किया । जो भगवान् श्रीकृष्ण की ही आराधना करके अनायास ही उस महान स्थिति पर पहुंच गये जो योगियों के भी लिए दुर्लभ है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

युयुधानः सात्यकिः । क्षेमं कुशलमास्ते । फाल्गुनादर्जुनाल्लब्धं धनुषो रहस्यं येन । तदीयामधोक्षजसंबन्धिनीम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

युयुधान का ही नाम सात्यकि है । वे अर्जुन से धनुर्विद्या के रहस्य को सीखे थे । वे भगवान् की सेवा करके योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य महान् गति को प्राप्त किये थे वे सात्यकि सुख पूर्वक हैं न ॥३१॥

कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ।
यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥३२॥

अन्वयः— भगवत्प्रपन्नः श्वफल्कपुत्रः बुधः अनमीव कच्चित् स्वस्ति आस्ते, यः कृष्ण पादाङ्कित मार्गपांसुषु प्रेमविभिन्न धैर्यः अचेष्टत ॥३२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के शरणागत श्वफल्क के पुत्र विद्वान् अक्रूरजी निरोग तथा कुशली तो हैं न प्रेमातिरेक के कारण जिनका धैर्य टूट गया था और भगवान् के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में जो लोटने लग गये थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

श्वफल्कपुत्रोऽक्रूरः । बुधो विद्वान् । अतो भगवन्तं प्रपन्नोऽनुसृतः । अत एवानमीवो निष्पापः । भक्तौ लिङ्गम् । योऽचेष्टत व्यलुण्ठत् । प्रेम्णा विभिन्न विभिन्नंधैर्यं यस्य सः । अस्ति क्षेममास्ते ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी के पिता का नाम श्वफल्क था। वे विद्वान और श्रीभगवान् के शरणागत होने के कारण अनमीवा अर्थात् निष्पाप थे। भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमातिरेक होने के कारण उनका धैर्य टूट गया और वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में लोटने लगे थे। वे कल्याण पूर्वक हैं न ॥३२॥

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ।
या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥

अन्वयः— देवमातुः इव विष्णुप्रजायाः देवकभोजपुत्र्याः कच्चित् शिवम् या वै यज्ञवितानमर्थम् त्रयी यथा देवं स्वगर्भेण दधार ॥३३॥

अनुवाद— देवताओं की माता अदिति देवी के समान देवकभोज की पुत्री जिनके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही बन गये वे देवकी जी सुख पूर्वक हैं न। जिस तरह त्रयी अपने मन्त्रों में यज्ञ विस्तार रूप अर्थ को धारण करती है, उसी तरह देवकीजी ने भी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया था ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

देवकनामा यो भोजस्तस्य पुत्र्या देवक्याः। विष्णुः प्रजा पुत्रो यस्यास्तस्याः देवमातुरदितेरिव। कच्चिच्छिवम्। यज्ञवितानरूपमर्थं त्रयी यथा प्रकाशकतया बिभर्ति तथा दधार ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

देवक नामक जो भोजवंशी थे उनकी पुत्री देवकीजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण उसी तरह से हैं जिस तरह देवताओं की माता अदिति के पुत्र भगवान् विष्णु हैं। वे तो सुख पूर्वक हैं न ? जिस तरह यज्ञ विस्तार रूपी अर्थ के प्रकाशक मन्त्रों को त्रयी धारण करती है, उसी तरह देवकीजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया ॥३३॥

अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ।
यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥३४॥

अन्वयः— वः सात्वतां यः कामदुघः भगवान् अनिरुद्धः अपिस्वित् सुखं आस्ते यं शब्दयोनिम् मनोमयम् सत्त्वतुरीय तत्त्वम् आमनन्ति ॥३४॥

अनुवाद— आप भक्तजनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध तो सुख पूर्वक हैं ? जिनको शास्त्रों के कारण स्वरूप और अन्तःकरण के चतुर्थ अंश मन के अधिष्ठाता बतलाया गया है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सात्वतानामुपासकानां कामान् दोग्धि पूरयतीति कामदुघः। भगवत्त्वे हेतुः-यं शब्दस्य शास्त्रस्य योनिं कारणमामनन्ति वेदाः। कुतः। मनोमयं मनसः प्रवर्तकम्। तत्कुतः। सत्त्वस्यान्तःकरणस्य चतुर्विधस्य तुरीयं तत्त्वं चतुर्थमधिदैवम्। चित्ताहंकारबुद्धिमनसामन्तःकरणभेदानां क्रमेण वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धा ह्यधिष्ठातारः। मनसश्च शब्दयोनित्वं प्रसिद्धम्। **'मनः पूर्वरूपं। वागुत्तररूपम्'** इति। तथा **अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः'** इति प्रस्तुत्य **'तस्य यजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः'** इत्यादिश्रुतेः। तथाच शिक्षायाम् **'आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्'** इत्यादि ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने के कारण अनिरुद्धजी कामदुघ हैं। वे भगवान् हैं। वेद उनको

शास्त्र का योनि अर्थात् कारण बतलाते हैं क्योंकि वे मन के प्रवर्तक है । वह भी इसलिए कि चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन ये जो अन्त:कारण के चार अंश हैं, उनमें चतुर्थ अंश मन के वे अधिष्ठातृ देवता हैं । अन्त:करण के चार भेद हैं- चित्त अहङ्कार बुद्धि और मन । इन चारों के अधिष्ठातृ देवता क्रमश: वासुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं । मन का शास्त्रयोनित्व प्रधान है । तैत्तिरीय श्रुति कहती है **मन: पूर्वरूपम् वागुत्तर रूपम्** । अर्थात् मन ही पूर्वरूप है, वाणी उत्तर रूप है । इसीतरह यह भी कहा गया है- अन्योन्तर आत्मा मनोमय है । अर्थात् उस प्राणमय से भिन्न उसके भीतर रहने वाली आत्मा मनोमय है । इस तरह से वर्णन करके यह भी कहा गया है । उस मनोमय ब्रह्म का यजुर्वेद ही शिर है, सामवेद ही उसका उत्तरपक्ष है । इन श्रुतियों से मन का शास्त्रयोनित्व सिद्ध होता है ।

शिक्षाबल्ली में भी कहा गया है— आत्मा बुद्धि से विषयों को प्राप्त करके रोकने की इच्छा से मन से संयुक्त हो जाता है । मन शरीराग्नि को प्रेरित करता है और अग्नि वायु को प्रेरित करता है । वायु भी हृदय प्रदेश में सञ्चरण करते हुए गम्भीर ध्वनि को उत्पन्न करता है ।।३४।।

अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ।
हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादय: स्वस्ति चरन्ति सौम्य ।।३५।।

अन्वय:— हे सौम्य ! अन्ये च निजात्मदैवम् अनन्यवृत्या समनुव्रता: ये हृदीक सत्यात्मज चारुदोष्ण गदादय: अपि स्वस्ति चरन्ति ।।३५।।

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले उद्धवजी जो अपने हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का अनन्यभाव से अनुसरण करते हैं वे सत्यभामाजी के पुत्र पुत्र हृदीक, चारुदेष्ण और गद आदि तो सुखपूर्वक रहते हैं न ?।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अपिस्वित्किंस्वित् अन्ये च स्वस्ति चरन्ति । निजस्य देहादिव्यतिरिक्तस्यात्मनो दैवं श्रीकृष्णमनन्यवृत्त्यैकान्तभक्तिभावेन ये सम्यगनुव्रता: अनुसृता: । हृदीकश्च सत्यभामाया आत्मजश्च चारुदेष्णश्च गदश्चादिर्येषां तेऽपि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

क्या दूसरे लोग जो हैं, वे तो कल्याण प्राप्त हैं न, जो अपने शरीर से भिन्न अपने हृदय के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ऐकान्तिक भक्ति भावना पूर्वक अनुसरण करते हैं, वे हृदीक सत्यभामाजी के पुत्र चारुदेष्ण, तथा गद आदि हैं, वे तो सुख पूर्वक हैं न ।।३५।।

अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्म परिपाति सेतुम् ।
दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ।।३६।।

अन्वय:— अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्म: धर्मेण सेतुम् परिपाति । यत्सभायां विनयानुवृत्या साम्राज्यलक्ष्म्या दुर्योधन अतप्यत ।।३६।।

अनुवाद— अपनी अर्जुन तथा श्रीकृष्ण रूपी दोनों भुजाओं के द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर न्यायपूर्वक धर्म की मर्यादा का पालन करते है न । मयदानवनिर्मित सभा में इनकी साम्राज्य लक्ष्मी और प्रभाव को देखकर दुर्योधन अत्यन्त संतप्त होता था ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कुरून् पृच्छति षड्भि: । अपि किम् । स्वदोर्भ्यां स्वबाहुवद्वर्तमानाभ्यां विजयाच्युताभ्यामर्जुनकृष्णाभ्यां धर्ममार्गेण धर्मो युधिष्ठिर: सेतुं धर्ममर्यादां परिपाति । यस्य सभायां विजयानुवृत्त्या जयपरम्परया. अर्जुनस्य सेवयेति वा । एवंभूतं यस्यैश्वर्यमित्यर्थ: ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अब विदुरजी छह श्लोकों के द्वारा कुरुवंशियों के विषय में पूछते हैं । क्या अपनी दोनों भुजाओं के समान रहने वाले अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर धर्म की मर्यादा का पालन करते हैं ? जिन युधिष्ठिर की मयनिर्मित सभा में युधिष्ठिर की विजय की परम्परा अथवा अर्जुन की सेवा को देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हुआ था । इस प्रकार का युधिष्ठिर का ऐश्वर्य था ॥३६॥

किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ।
यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥

अन्वयः— किं वा कृताघेषु दीर्घतमं अहिवद् अत्यमर्षी भीमः व्यमुञ्चत् । यस्य विचित्रं गदायाः मार्गं चरतः रणभूः न सेहे ॥३७॥

अनुवाद— क्या अपराधियों के अपराध को बहुत दिनों तक चिन्तन करके सूर्य के समान उसको नहीं वर्दास्त करके भयङ्कर सर्प के समान क्रोध करने वाले भीम अपने क्रोध को छोड़ दिये हैं क्या, युद्ध के मैदान में गदायुद्ध के विचित्र प्रकार की पैंतरा चलने वाले, जिन भीम के पैरों की धमक से पृथिवी काँपने लगती थी ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कृताघेषु कृतापराधेषु कुरुषु स्वकर्तृकमघं दीर्घतमं बहुकालानुचिन्तितमहिवदत्यमर्षी भीमः किं व्यमुञ्चन्नो वा । गदाया विचित्रं विविधं चरतः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पापी दुर्योधन आदि के द्वारा अपने विषय में किए गये अपराधों का दीर्घकाल तक चिन्तन करने के कारण क्रुद्ध सर्प के समान अपराधों को नहीं सहने वाले भीम ने क्रोध करना त्याग दिया है क्या ? जिस भीम के अद्भुत प्रकार के गदा युद्ध के पैंतरा चलते समय उनके पैरों की धमक को पृथिवी नहीं वर्दास्त कर पाती थी ?॥३७॥

कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते ।
अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥३८॥

अन्वयः— रथयूथपानां यशोधा गाण्डीवधन्वा कच्चित् उपरतारिः आस्ते ? यच्छरकूटगूढः माया किरातः अलक्षितः गारिशः तुतोष ॥३८॥

अनुवाद— रथियों और यूथपतियों के यश को बढ़ाने वाले गाण्डीव नामक धनुष को धारण करने वाले जिन अर्जुन के शत्रु शान्त हो गये होंगे वे अर्जुन सुख पूर्वक हैं न ? जिन अर्जुन के बाण समूह से ढँककर माया पूर्वक किरात का रूप धारण करने वाले शङ्करजी प्रसन्न हो गये थे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

रथयूथपानां मध्ये यशोधाः कीर्तिधारी । यद्वा स्वीयानां तेषां कीर्तिप्रदः । उपरता अरयो यस्मात् । यस्य शरकूटेन बाणसमूहेन गूढ आच्छन्नः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

रथों के यूथपतियों में यश धारण करने वाले अथवा अपने लोगों को यश प्रदान करने वाले । अर्जुन । तथा जिनके शत्रुगण मर चुके हैं ऐसे अर्जुन माया के द्वारा किरात बने हुए भगवान् शङ्कर जिनके बाण समूह से ढँक गये और अर्जुन से संतुष्ट हो गये ऐसे अर्जुन तो सुख पूर्वक हैं न ?॥३८॥

यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृता पक्ष्मभिरक्षिणीव ।
रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्रात् ॥३९॥

अन्वयः— उतस्वित् पृथायाः यमौ तनयौ पक्ष्मभिरक्षिणीम् पार्थैः वृतौ, वज्रिवक्त्रात् सुपर्णाविव मृधे परात् स्वरिक्थं उद्दायं रेमाते ॥३९॥

अनुवाद— क्या माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव जिनकी रक्षा पृथा के पुत्र उसी तरह से करते हैं जिस तरह दोनों आँखों की रक्षा पपनियाँ (पलकें) करती हैं, वे युद्ध में अपने शत्रु से उसी तरह से अपने राज्य को छिन लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से अपने रिक्थ अमृत को गरुड़ छिन लिए थे । वे दोनों कुशली हैं न ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

उतस्वित्किंस्वित् । यमौ नकुलसहदेवौ । रेमाते क्रीडाते इत्यर्थः । माद्र्याः सुतावपि पृथायास्तनयौ पृथायाः पुत्रैर्वृतौ सुपर्णाविव रेमाते । किं कृत्वा । परात् दुर्योधनात्स्वरिक्थं स्वीय राज्यमुद्दायाच्छिद्य । वज्रिवक्त्रादिन्द्रस्य मुखात्स्वरिक्थममृतं गरुड इवेति । यद्वा सुपर्णाविवेति । यदि द्वौ गरुडावमृतमानयेतां तर्हि तद्वत् । अक्षिणीवेति मणीवादिगणत्वात्सन्धिः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

क्या जुड़वे भाई नकुल सहदेव प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करते हैं न ? यद्यपि ये दोनों माद्री के पुत्र थे फिर भी पृथा के ही ये पुत्र हैं, क्योंकि कुन्ती ने ही इन दोनों का पालन पोषण किया था । वे कुन्ती के पुत्रों युधिष्ठिर आदि से रक्षित होकर दो गरुड़ों के समान आनन्दपूर्वक होंगे । वे अपने शत्रु दुर्योधन से अपना राज्य छिन लिए होंगे । ये उस तरह से अपने राज्य को ले लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से गरुड़ ने अमृत ले लिया था । जिस तरह से दो गरुड मिलकर अमृत को लायें उसी तरह अक्षिणीव में मणीवादि गण होने के कारण सन्धि हुयी है ॥३९॥

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनापि तेन ।
यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥

अन्वयः— अहो तेन राजर्षिवर्येण विनाऽपि अर्भकार्थे पृथाऽपि ध्रियते यस्तु एकवीरः अधिरथः धनुर्द्वितीयः चतस्रः ककुभः विजिग्ये ॥४०॥

अनुवाद— आश्चर्य है कि प्रख्यात वीर राजर्षि पाण्डु के बिना भी पृथा अपने पुत्रों का पालन करने के लिए जीवित है । वे रथियों में श्रेष्ठ पाण्डु प्रख्यात वीर थे उन्होंने अपने धनुष के ही सहारे चारो दिशाओं को जित लिया था ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पृथायाः किं नु कुशलं पृच्छेयम् । यतस्तस्याः पाण्डुना बिना प्राणधारणमेवाश्चर्यमित्याह– अहो इति । ध्रियते जीवति। न चात्याश्चर्यम् । यतोऽर्भकार्थे ध्रियते न भोगार्थम् । तथापि त्वाश्चर्यमेवेत्याह । तेन तथाभूतेन बिना । तदेवाह–यस्त्विति । धनुरेव द्वितीयं सहायो यस्य ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैं कुन्ती के विषय में क्या पूछूँ ? वह राजर्षि श्रेष्ठ पाण्डु के वियोग में मृतप्राय हो गयी थी । वह अपने प्राणों को धारण कर रही है, यही आश्चर्य है । वह अपने लिए नहीं अपितु अपने पुत्रों के लिए जी रही है, भोगों को भोगने के लिए नहीं । फिर भी तो आश्चर्य ही है । उस महावीर पाण्डु के बिना भी

उसका जीना आश्चर्य है पाण्डु केवल धनुष धारण करके धनुष के बल पर ही चारो दिशाओं को अपने वश में कर लिए थे ॥४०॥

सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ।
निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥४१॥

अन्वयः— हे सौम्य अधः पतन्तं तम् अनुशोचे, यः परेताय विदुद्रुहे । स्वपुत्रान् समनुव्रतेन येन सुहृत् अहं स्वपुर्या निर्यापितः ॥४१॥

अनुवाद—हे सौम्य स्वभाव वाले उद्धवजी ! मुझे अधः पतन की ओर जाने वाले धृतराष्ट्र के विषय में चिन्ता होती है कि वे पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने मृतभाई पाण्डु से द्रोह करते है । साथ ही अपने पुत्रों से मिलकर अपने हितचिन्तक मुझको भी उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

पृथा अर्भकार्थे जीवतीति युक्तमेवेत्याह । हे सौम्य, तं धृतराष्ट्रं जीवन्तमनुशोचामि । तत्किम् । अधःपतन्तम् । तत्र हेतुः-परेताय मृताय भ्रात्रे पाण्डवे तत्पुत्रद्रोहेण या विदुद्रुहे द्रोहं कृतवान् । किंच जीवतोऽपि भ्रातुर्ममापकृतवानित्याह । येन सुहृद्भ्राताऽहं स्वपुर्याः सकाशान्निर्यापितो विवासितः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

कुन्ती अपने पुत्रों के लिए जी रही हैं, यह तो उचित ही है । मैं उन जीवित रहने वाले धृतराष्ट्र के विषय में सोचता हूँ क्योंकि उनका अधःपतन हो रहा है । क्योंकि उन्होंने अपने मरे हुए तथा पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने भाई पाण्डु से उन्होंने द्रोह किया । उन्होंने अपने जीवन में ही अपने सुहृद भाई मेरा भी अपमान किया । मैं उनका हितकारी भाई था । मुझको उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ॥४१॥

सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ।
नान्यापलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥

अन्वयः— सोऽहं मर्त्यविडम्बनेन नृणां दृशः चालयतः विधातुः हरेः प्रसादात् पदवीं पश्यन् नान्योपलक्ष्यः गत विस्मयः अत्र चरामि ॥४२॥

अनुवाद— मैं तो जानता हूँ कि मानवी लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की बुद्धि को भ्रमित कर देते हैं । उन्हीं की कृपा से मैं सम्पूर्ण संसार में उनकी लीला का अनुभव करता हुआ बिना किसी खेद अथवा आश्चर्य के संचरण करता हूँ ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अहो खलु विस्मयो जानतोऽपि तस्यैवं दुश्चेष्टितं, यतस्त्वं साधुरपि दुःखं प्रापितोऽसीत्यत आह । सोऽहं हरेः प्रसादात्तस्य पदवीं माहात्म्यं पश्यन्गतविस्मयोऽत्र भूतले नान्योपलक्ष्यो गूढः सन्सुखं विचरामि । कथंभूतस्य । मर्त्यविडम्बनेनैश्वर्याच्छादकेन मानुष्यानुकरणेन नृणां दृशश्चित्तवृत्तीश्चालयतो भ्रामयतः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि दुर्योधन की दुष्टता को जानने वाले धृतराष्ट्र ने आपको भी इस प्रकार से दुःख दिया है । तो ऐसी कोई बात नहीं है । मानवीय लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की चित्तवृत्ति को भ्रमित कर देते हैं । किन्तु मैं उन्हीं की कृपा से सर्वत्र उनके ही माहात्म्य का अनुभव करता हुआ ऐसे सुख पूर्वक छिपकर विचरण कर रहा हूँ कि कोई भी मुझको पहचान भी नहीं पाता है ॥४२॥

नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ।
वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥४३॥

अन्वयः— नूनं चमूभिः मुहुः महीं चालयताम् त्रिमदोत्पथानां नृपाणा नृपाणां वधात् प्रपन्नार्तिजिहीर्षया ईशऽपि भगवान् कुरूणां अघं उपैक्षत ॥४३॥

अनुवाद— अपनी सेनाओं के द्वारा बार-बार पृथिवी को कँपा देने वाले भी धन, विद्या तथा अभिजन के मद से मदमत्त कुमार्गगामी राजाओं का वध करके अपने भक्तों के कष्ट को दूर करने की इच्छा वाले सम्पूर्ण जगत् के नियामक भी भगवान् कौरवों द्वारा किए जाने वाले अपराध को क्षमा करते रहे, यही हमको आश्चर्य है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननु हरेः किमेवं लीलया, येन स्वभक्तानां वनवासादिक्लेशा भवन्ति, स्वस्य च दौत्ये बन्धनोद्यमादिपराभवः, तद्वरं तेषामपराधानन्तरमेव हननं नापराधोपेक्षेत्यत आह । नूनं निश्चितं त्रिभिर्मदैरुत्पथानामुद्धतानां बधाद्धेतोः प्रपन्नानामार्तिजिहीर्षयेशोऽघसमय एव हन्तुं समर्थोऽपि कुरूणामघमुपैक्षत । तदानीमेव तेषां बधे सर्वदुष्टराजवधो न स्यादित्याशयेनेत्यर्थः । विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः । इति त्रयो मदाः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीभगवान् की इस तरह की लीलाओं से कौन सा लाभ है ? जिसके कारण उनके भक्तों को भी वनवास आदि का क्लेश सहना पड़ा । भगवान् ने जब पाण्डवों के दूत का काम किया उस समय दुर्योधन ने उनको बन्धनगत करने का प्रयास करके उनका अपमान किया । इससे अच्छा यही था कि उन सबों के अपराध के पश्चात् ही दुष्ट कौरवों का वध कर देते । अपराधों की उपेक्षा करना तो ठीक नहीं है । इसका कारण यह है कि तीनों प्रकार के मद से मदमत्त कुमार्गगामी तथा उद्घत बने कौरवों का वध करके अपने शरणागतों के कष्ट को दूर कर देते । किन्तु कौरवों द्वारा किए जर्ने वाले पापों के ही समय कौरवों का वध कर देने में समर्थ भी भगवान् कौरवों के अपराधों को इसलिए सहते रहे कि वैसा करने से कौरवों का तो वध हो जाता है किन्तु सभी दुष्ट राजाओं का वध नहीं हो पाता । इसीलिए वे कौरवों के अपराधों को सहते रहे । तीन प्रकार के मदों को बतलाते हुए कहा भी गया है—

विद्यामदो धनमदास्तथैवाभिजनोमदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमः ॥

विद्या का मद, धन का मद तथा परिवार का मद इन तीनों; मदो से अन्धे बने रहने वालों के लिए सदा मद का कारण बने रहते हैं । किन्तु वे ही सत्पुरुषों के लिए सदा दम का कारण बने रहते है । इस तरह से तीन प्रकार के मद बतलाये गये हैं ॥४३॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।
नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

अन्वयः— अजस्य जन्म उत्पथनाशनाय, अकर्तुः कर्माणि पुसां ग्रहणाय । ननु अन्यथा परः गुणातीतः देहयोगम् कर्मतन्त्रम् वा कः अर्हति ॥४४॥

अनुवाद— हे उद्धवजी जन्म और कर्म से रहित होने पर भी श्रीभगवान् का जन्म दुष्टों का दमन करने के लिए होता है और वे जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए कर्मों को करते हैं । यदि ऐसी बात नहीं होती तो कोई भी गुणातीत व्यक्ति कर्मों के अधीन होने वाले शरीर के सम्बन्ध को क्यों धारण करता ?॥४४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वदुर्वृत्तवधाद्यर्थमेव भगवतो जन्मकर्माणि नान्यथेति कैमुत्यन्यायेनाह । अजस्यापि जन्म, अकर्तुरपि कर्माणि पुंसां ग्रहणाय कर्मसु प्रवृत्तये । अन्यथा न चेदेवं तर्हि भगवतो जन्मादिकथा तावदास्ताम् । को वान्योऽपि गुणानां परो गुणातीतो देहयोगं कर्मविस्तारं वाऽर्हतीति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी इस अर्थ का प्रतिपादन कैमुत्यन्याय से करते हैं कि श्रीभगवान् के जन्म और कर्म दुष्टों का दमन आदि कार्य करने के लिए होते हैं उसका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता है । अजन्मा भी श्रीभगवान् के जन्म और अकर्ता भी श्रीभगवान् के कर्म अपने भक्त जीवों को अपनी ओर अकर्षित करने के लिए होते हैं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो श्रीभगवान् की जन्मादि की कथा से क्या लाभ था ? गुणों से स्वभावत: परे, दूसरा भी कोई जीव देह के सम्बन्ध अथवा कर्मों के विस्तार को क्यों स्वीकार करेगा ॥४४॥

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ।
अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरोद्धव संवादे प्रथमोऽध्याय: ॥१॥

अन्वयः— हे सखे ! तस्य प्रपन्नाखिललोकपानाम् स्वेअनुशासने अवस्थितानाम् अर्थाय यदुषु जातस्य अजस्य तीर्थकीर्तेः वार्तां कीर्तय ॥४५॥

अनुवाद— हे मित्र ! अपने शरण में रहने वाले समस्त लोकपालों और समस्त भक्तों का प्रिय कार्य करने के लिए यदुवंश में जन्म लेने वाले अजन्मा श्रीभगवान् की ही पवित्रकारिणी कथा को आप मुझे सुनायें ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवंभूताचिन्त्यमायाविनोदस्य कथां कथयेत्याह । तस्य प्रपन्ना येऽखिललोकपालास्तेषामन्येषां च स्वीयेऽनुशासने स्थितानामर्थाय प्रयोजनाय यदुषु जातस्य । तीर्थे संसारतारिणी कीर्तिर्यस्येति ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मित्र उद्धव ! इस तरह की अचिन्त्य माया के द्वारा विनोद करने वाले श्रीभगवान् की कथा आप मुझे सुनायें । उन श्रीभगवान् के शरण में ही सभी लोकपाल रहते हैं । उन सभी लोगपालों का तथा अपने दूसरे भक्तों का कल्याण करने के ही लिए श्रीभगवान् यदुवंश में जन्म ग्रहण किए हैं, उनकी कीर्ति पवित्र बना देने वाली है । उनकी ही कथा मुझे आप सुनायें ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका प्रथमाध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१॥

द्वितीय अध्याय

श्रीउद्धवजी द्वारा श्रीभगवान् की बाललीलाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् । प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥

अन्वयः— इति क्षत्रा प्रियाश्रयाम् वार्तां पृष्टः भागवतः औत्कण्ठयात् स्मारितेश्वरः प्रतिवक्तुं च न उत्सेहे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से विदुरजी द्वारा महाभागवत उद्धवजी से उनके परम प्रिय श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में पूछे जाने पर उत्कण्ठावशात् श्रीभगवान् की याद आ जाने से उद्धवजी उत्तर नहीं दे सके ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये कृष्णविश्लेषादनुशोचन्नथोद्धवः । क्षत्त्रे बालचरित्राणि कृष्णस्यावर्णयच्छ्वसन् । तदेवं प्रियवार्तां पृष्टस्योद्धवस्य श्रीकृष्णविरहौत्कण्ठ्यावेशेन प्रतिवचनासामर्थ्यमाह षड्भिः इतीति । स्मारितः ईश्वरो यस्य ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण का विप्रयोग सोचते हुए उद्धवजी लम्बी श्वास लेते हुए विदुरजी को भगवान् श्रीकृष्ण के बाल चरित्रों को सुनाये ॥१॥

तदेवम्० इत्यादि- उस तरह से प्रियतम श्रीकृष्ण संबन्धी बातें पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह विषयक उत्कण्ठा के कारण उद्धवजी उनका उत्तर सहसा नहीं दे सके । इस बात को शुकदेवजी ने छह श्लोक में वर्णन किया है । **स्मारितेश्वरः** पद का विग्रह स्मारित ईश्वरो यस्य है ॥१॥

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः । तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥२॥

अन्वयः— पञ्च हायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः बाललीलया यस्य सपर्यां रचयन् न ऐच्छत् ॥२॥

अनुवाद— पाँच वर्ष के बालक उद्धवजी को कलेवे के लिए जब उनकी माता बुलाती थीं तो बालक्रीडा में श्रीभगवान् की पूजा में मग्न होने के कारण वे कलेवा नहीं करना चाहते थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव कैमुत्यन्यायेन प्रपञ्चयति-य इति द्वाभ्याम् । यः पञ्चवर्षोऽपि बाललीलयेति कृष्णं कंचित्परिकल्प्य कल्पितैरेव साधनैः परिचर्यां कुर्वन् प्रातर्भोजनार्थं मात्रा प्रार्थितोऽपि तद्भोजनं नैच्छत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रथम श्लोक के ही अर्थों को कैमुत्य न्याय से विस्तार पूर्वक **यः पञ्चहायनः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं । **यः इत्यादि** जो उद्धवजी पाँच वर्ष की अवस्था में किसी को कृष्ण बनाकर अपने मनः कल्पित साधनों से पूजा करते हुए माता के द्वारा प्रातः भोजन (जलपान) करने के लिए प्रार्थना करने पर भी भगवान् की पूजा छोड़कर जलपान करना नहीं चाहते थे ॥२॥

स कथं सेवया तस्य काले न जरसं गतः । पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥३॥

अन्वयः— तस्य सेवया कालेन जरसं गतः सः पृष्टः सन् भर्तुःपादावनुस्मरन् भर्तुः वार्तां पृष्टः कथं प्रति ब्रूयात् ॥३॥

अनुवाद— उन भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी जब वृद्धावस्था आ गयी थी वे पूछे जाने पर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के चरणों की याद आ जाने के कारण अपने स्वामी विषयक उत्तर कैसे दे सकते थे ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

जरसं वृद्धत्वं गतः प्राप्तः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी वृद्धावस्था आ गयी थी। विदुरजी के द्वारा पूछे जाने पर उन्हें अपने स्वामी की याद आ गयी और उसके कारण वे विदुरजी का उत्तर सहसा नहीं दे सकें ॥३॥

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम्। तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥४॥

अन्वयः— कृष्णांघ्रिसुधया साधुनिर्वृतः तीव्रेण भक्तियोगेन भृशम् निमग्नः सः मुहूर्तम् तुष्णीम् अभूत् ॥४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से सराबोर वे तीव्र भक्तियोग के कारण उसमें डूब कर आनन्दमग्न हो गये और एक मुहूर्त तक कुछ भी नहीं बोल सके ॥४॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णाङ्घ्रिसुधया साधु निर्वृतः। तस्यामेव तीव्रेण विवशत्वापादकेन भक्तियोगेन भृशं निमग्नश्च ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से पूर्ण रूप से सराबोर हो गये और तीव्र भक्तियोग के कारण वे उसी में मग्न भी हो कर डूब गये ॥४॥

पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः। पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥५॥

अन्वयः— पुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः मीलद् दृशा शुचः मुञ्चन् स्नेह प्रसरसम्प्लुतः पूर्णार्थः तेन लक्षितः ॥५॥

अनुवाद— उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया था। उनकी मुंदी हुयी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था और प्रेम के प्रवाह में मग्न उद्धवजी को विदुरजी ने कृतकृत्य माना ॥५॥

भावार्थ दीपिका

पुलकैरुद्भिन्नान्युज्जृम्भितानि सर्वाण्यङ्गानि यस्य। मीलन्त्या दृशा शुचोऽश्रूणि मुञ्चन्। तेन विदुरेण पूर्णार्थः कृतार्थो लक्षितः। यतो भगवति यः स्नेहस्तस्य प्रसरः पूरस्तस्मिन्संप्लुतो निमग्नः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था। उनकी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था। और श्रीभगवान् के प्रेम के प्रवाह में उद्धवजी मग्न हो गये थे। यह दशा देखकर विदुरजी ने उद्धवजी को कृतार्थ माना ॥५॥

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः। विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥६॥

अन्वयः— शनकैः भगवल्लोकात् नृलोकं पुनः आगतः नेत्रे विमृज्य उत्स्मयन् उद्धवः विदुरं प्रति आह ॥६॥

अनुवाद— धीरे-धीरे भगवान् के लोक से पुनः मनुष्य लोक में आये हुए उद्धवजी ने अपनी आँखों को पोंछकर यदुवंश के संहार आदि श्रीभगवान् के चातुर्य का स्मरण करके आश्चर्यित से होते हुए विदुरजी से कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भगवानेव लोकस्तस्मात्। नृलोकं देहानुसन्धानम्। उत्स्मयन्। यदुकुलसंहारादिभगवच्चातुर्यस्मरणेन विस्मयं प्राप्नुवन्॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ही लोक है, उससे धीरे-धीरे उन्हें अपने शरीर का अनुसन्धान होने लगा तो उन्होंने अपने दोनो

आँखों को पोंछा और श्रीभगवान् के द्वारा किए गये यदुवंश के संहार रूपी चातुर्य का स्मरण करके वे आश्चर्यित हो गये और विदुरजी से कहे ॥६॥

उद्धव उवाच

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह । किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥

अन्वयः— कृष्णद्युमणि निम्लोचे ह अजगरेण गीर्णेषु गतश्रीषु गृहेषु अहम् किं नु नः कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीकृष्ण भगवान् रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी अजगर ने निगल लिया है । इस तरह से श्रीहीन अपने गृह का मैं क्या कुशल बतलाऊँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णविरहेण संतप्यमानः प्रत्याह । श्रीकृष्ण एव द्युमणिः सूर्यस्तस्य निम्लोचेऽस्तमये सत्यजगरेण कालमहासर्पेण गीर्णेषु निगिलितेषु नो गृहेषु त्वत्पृष्टानां बन्धूनां किं नु कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से संतप्त होते हुए उद्धवजी ने कहा श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी महासर्प ने निगल लिया, इस प्रकार के अपने बान्धवों का मैं कौन सा कुशल बतलाऊँ ॥७॥

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि । यं संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥

अन्वयः— दुर्भगो बत अयं लोकः यदवः नितराम् अपि ये संवसन्तः हरिं मीना उडुपम् इवं न विदुः ॥८॥

अनुवाद— निश्चित रूप से यह लोक अभागा है, यदुवंशी तो उससे भी अधिक भाग्यहीन हैं, क्योंकि वे उनके साथ में निवास करते हुए भी श्रीहरि को उसी तरह से नहीं जान सके जिस तरह क्षीर समुद्र में सदा एक साथ रहने वाली मछलियाँ अमृतमय चन्द्रमा को नहीं जान सकीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुशोचन्नाह । दुर्भगो भाग्यहीनः । ये सह संवसन्तोऽपि श्रीहरिरयमिति न विदुः । यथा क्षीरसमुद्रे जातमुडुपं चन्द्रं तदा तत्रत्या मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलचर इत्येवं विदुर्न त्वमृतमय इति तद्वत् । यद्वा जले प्रतिबिम्बितं चन्द्रं यथेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पुनः संताप करते हुए वे कहते हैं कि निश्चित रूप से यह संसार भाग्यहीन है । और यदुवंशी तो सर्वाधिक भाग्यहीन थे जो सदा श्रीहरि के साथ रहते हुए भी श्रीहरि को नहीं जान सके । यह उसी तरह से है जिस तरह क्षीर सागर में उत्पन्न चन्द्रमा को उनके साथ रहने वाली मछलियों ने यही जाना कि यह कोई देखने में सुन्दर लगने वाला जलजन्तु हैं, उन सबों ने चन्द्रमा को अमृतमय नहीं जाना ॥८॥

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः । सात्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥९॥

अन्वयः— इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा, एकारामाश्च सर्वे सात्वताः भूतावासम् तं सात्वताम् ऋषकभम् अमंसत ॥९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के मानसिक भावों को पहचानने वाले, अत्यन्त ज्ञानवान तथा श्रीभगवान् के साथ में ही रहने वाले सभी यादव सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भूत श्रीहरि को यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र ही जाने ॥९॥

भावार्थ दीपिका

भाग्यहीनत्वादेव न विर्दुन तु ज्ञानसामग्र्यभावादित्याह । इङ्गितं चित्तस्थं जानन्तीति तथा । पुरु अतिशयेन प्रौढा निपुणाः । एकस्मिन्नेव स्थाने आरमन्तीति तथा । एवंभूता अपि भूतानामावासमीश्वरं सन्तं सात्वतामृषभं सात्वतश्रेष्ठममन्यन्त ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वे यदुवंशी भाग्यहीन होने के ही कारण श्रीभगवान् को नहीं जान सके ऐसा नहीं था कि उन लोगों को ज्ञान नही था । भगवान् क्या चाहते हैं इस बात को वे जान जाते थे, वे प्रौढज्ञान सम्पन्न थे, तथा श्रीभगवान् के साथ ही रहते भी थे । इस प्रकार का होने पर भी सम्पूर्ण विश्व के आश्रयभूत श्रीभगवान् को उन लोगों ने केवल यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र जाना ॥९॥

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः । भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥१०॥

अन्वयः— देवस्य मायया स्पृष्टाः ये च अन्यद् असदाश्रिताः तद्वाक्यैः आत्मनि हरौ उप्तात्मन तेषां धीः न भ्राम्यते॥१०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की माया से मोहितबुद्धि वाले यादवगण और श्रीभगवान् से वैर करने वाले शिशुपाल आदि के वाक्यों से भक्तों की बुद्धि इसलिए भ्रमित नहीं होती थी कि वे भगवान् को अपना प्राण मानते थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ये यादवा देवस्य मायया स्पृष्टा व्याप्ता यादवोऽयमस्मद्बन्धुरिति वदन्ति, ये च शिशुपालादयोऽसदेवान्यद्वैरमाश्रिता निन्दन्ति तेषां वाक्यैरात्मनि हरावुप्तात्मनो निक्षिप्तचित्तस्य मादृशस्य बुद्धिर्न भ्राम्यते मोहं न प्राप्यते, अन्ये तु मूढा एवेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की माया से मोहित जो यादव थे वे यही जानते थे कि ये हमारे बन्धु हैं शिशुपाल इत्यादि जो थे वे तो दुष्ट थे ही भगवान् से बैर करते थे । ऐसे लोगों के वाक्यों को सुनकर भी जिन लोगों का चित्त सदा श्रीभगवान् में ही लगा रहता था उन मुझ जैसे भक्तों की बुद्धि भ्रमित नहीं होती थी और दूसरे लोग तो अज्ञानी थे ही ॥१०॥

प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् । आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥११॥

अन्वयः— अतप्ततपसां अवितृप्तदृशां नृणां स्वविम्बम् प्रदर्श्य, लोकलोचनम् आदाय यस्तु अन्तरधात् ॥११॥

अनुवाद— जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थी ऐसे लोगों को भी इतने समय तक अपने शरीर का दर्शन कराकर उनकी दृष्टि दर्शन करने से यद्यपि तृप्त नहीं हुयी थीं फिर भी संसार के नेत्रों के लिए दर्शनीय अपने शरीर को भगवान् ने तिरोहित कर लिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ हरिरित्यपेक्षायामाह-प्रदर्श्येति । न तप्तं तपो यैरतोऽवितृप्ता दृशो येषां तेषां स्वबिम्बं श्रीमूर्तिमेतावन्तं कालं दर्शयित्वा योऽन्तर्हितवान् । लोकस्य लोचनमादायाऽऽच्छिद्य । तादृशस्यान्यस्य विलोकनीयस्याभावात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न यह है कि श्रीहरि कौन थे ? इसका उत्तर **प्रदर्श्या० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है (जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थीं अतएव उनकी दृष्टि भगवान् का दर्शन करने से तृप्त नहीं हो सकी । ऐसे लोगों को भी श्रीभगवान् ने इतने समय तक अपने श्रीविग्रह का दर्शन कराया और उसके पश्चात् संसार के लिए दर्शनीय अपने श्रीविग्रह को अन्तर्धान कर लिए । **लोकलोचनमादाय** का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समान कोई भी दूसरी वस्तु दर्शनीय नहीं हैं ॥११॥

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥

अन्वयः— स्वयोगमाया बलं दर्शयता मर्त्यलीलौपयिकं सौभगर्द्धेः परं पदम् स्वस्य च विस्मापनं भूषण भूषणाङ्गम् गृहीतम् ॥१२॥

अनुवाद— अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने वाले, मानव लीलाओं के लिए योग्य जिस शरीर को श्रीभगवान् ने धारण किया वह अपने सौन्दर्य की पराकाष्ठा के कारण श्रीभगवान् को भी आश्चर्यित कर देता था । श्रीभगवान् के उस शरीर के अङ्ग भूषणों को भी अलंकृत कर देते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेव बिम्बं वर्णयति त्रिभिः । यन्मर्त्यलीलास्वौपयिकं योग्यम् । स्वस्यापि विस्मयजनकम् । यतः सौभगर्द्धेः सौभाग्यातिशयस्य परं पदं पराकाष्ठा । भूषणानां भूषणान्यङ्गानि यस्मिन् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उसी शरीर का वर्णन उद्धवजी तीन श्लोकों में करते हैं । श्रीभगवान् का वह श्रीविग्रह मानव लीलाओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयोगी था । वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा स्वरूप होने के कारण श्रीभगवान् को भी मोहित कर देता था । उस श्रीविग्रह के अङ्ग भूषणों को भी भूषित कर देने का काम करते थे । ऐसे शरीर को श्रीभगवान् ने अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने के लिए धारण किया था ॥१२॥

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।
कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥१३॥

अन्वयः— धर्मसूनोः राजसूये दृक्स्वस्त्ययनं यत् निरीक्ष्य त्रिलोकः इत्यमन्यत यत् विधातुः अर्वाक् सृतौ कौशलम् इह कार्त्स्न्येन गतम् ॥१३॥

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जिनके नयनाभिराम दिव्यमङ्गल विग्रह को देखकर त्रैलोक्य के लोगों ने यही माना कि भगवान् के शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि की सम्पूर्ण निपुणता समाप्त हो गयी है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

दृशां स्वस्त्ययनं परमानन्दकरम् । त्रिभुवनस्थो लोकः प्राणिमात्रम् । अद्येदानीमिह बिम्बे । अर्वाक्सृतावर्वाचीनसंसारनिर्माणे मनुष्यनिर्माणे वा यत्कौशलं नैपुणं तत्कार्त्स्न्येन गतमुपक्षीणं नातः परं तस्य कौशलमस्तीत्येवं मेने । तन्मूर्तेर्विधातुः सृज्यत्वाभावेऽपि लोकदृष्टिरियमुक्ता ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का वह दिव्यमङ्गल विग्रह परमानन्दप्रद था । उस शरीर को देखकर जितने भी मनुष्य थे वे सबके सब लोग यही माने कि इस शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि विषयिणी सारी निपुणता समाप्त हो गयी है । अब ब्रह्माजी की कोई भी मानव शरीर रचना की निपुणता अवशिष्ट नहीं रह गयी है । यद्यपि श्रीभगवान् का वह दिव्य मङ्गल विग्रह ब्रह्माजी के द्वारा सृष्ट नहीं था फिर भी इस श्लोक में संसार की जो दृष्टि थी उसको कहा गया है ॥१३॥

यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥१४॥

अन्वयः— यस्यानुरागप्लुतहासरास लीलावलोक प्रतिलनब्धमानाः, व्रजस्त्रियः दृग्भिरनुप्रवृत्तधियः किल कृत्यशेषाः अवतस्थुः ॥१४॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के हास्य विनोद और लीला पूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मान प्राप्त व्रजनारियों की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीभगवान् में ही लग जाती थीं वे घर के सारे कार्यों को भूलकर श्रीभगवान् को ही देखती रह जाती थीं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनुरागेण प्लुतो व्याप्तो हासो रासो विनोदश्च लीलावलोकश्च तैः स्वकृतहासाद्यनन्तरं प्रतिलब्धो मानो याभिस्ताः । दृग्भिः सह अनुप्रवृत्ता गच्छन्तं तमेवानुगता धियो यासां ताः । कृत्ये शेषो यासां ताः असमापितकृत्या एव तस्थुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अनुराग से परिपूर्ण हास विनोद और लीलापूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मानित व्रजबालाओं की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीकृष्ण में लग जाती थीं तो वे उनको देखती ही रह जाती थीं और करने के लिए बचे हुए कार्य बिना किए हुए ही पड़े रह जाते थे ॥१४॥

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥१५॥

अन्वयः— स्वशान्तरूपेषु इतरैः पीड्यमानेषु अनुकम्पितात्मा अजोऽपि परावरेशः महदंशयुक्तः भगवान् अग्निः यथा जातः ॥१५॥

अनुवाद— अपने शान्तरूप महात्माओं के अपने ही घोर रूप असुरों द्वारा सताये जाने पर भगवान् करुणा से द्रवित होकर अजन्मा हाने पर भी अपने अंश से बलरामजी के साथ उसी तरह से प्रकट हो गये जिस तरह काष्ठ से अग्नि प्रकट होती है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतबिम्बदर्शने कारणमाह । स्वीयान्येव शान्तान्यशान्तानि च रूपाणि । तत्र शान्तरूपेषु इतरैः । पीड्यमानेष्वनुकम्पितः कृतानुकम्प आत्मा यस्य । अजोऽपि जात अविर्भूतः । महाभूतरूपेण नित्यसिद्ध एवाग्निर्यथा काष्ठेष्वाविर्भवति तद्वत् । अजस्य जन्मनि हेतुः- महान्महत्त्वमंशः कार्यलेशो यस्याव्यक्तस्य तन्महदंशं तद्युक्त इति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा अपने शरीर को प्रकट करने के कारण को बतलाते हुए उद्धवजी कहते हैं— श्रीभगवान् के दो रूप हैं शान्त और अशान्त । महात्मागण भगवान् के शान्त रूप हैं और असुर इत्यादि भगवान् के अशान्त रूप हैं । जब असुर महात्माओं को सताने लगते हैं तो उसे देखकर श्रीभगवान् दया से द्रवित हो जाते हैं । और अजन्मा भी होकर वे जन्म लेते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भी इसीतरह बलरामजी के साथ प्रकट हुए । जिस तरह महाभूतों में अग्नि एक है और वह नित्यसिद्ध है किन्तु वह जैसे काष्ठ से उत्पन्न हो जाती है । उसी तरह श्रीभगवान् भी अपने महदंश से युक्त होकर बलराम जी के साथ प्रकट हुए वे परावरेश हैं ॥१५॥

मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।
व्रजे स वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥१६॥

अन्वयः— वसुदेवगेहे अजस्य जन्मविडम्बनम्, अरिभयादिव व्रजे च वासः, स्वयम् अनन्तवीर्यः पुरात् यद् व्यवात्सीत् एतत् मां खेदयति ॥१६॥

अनुवाद— अजन्मा होकर भी वसुदेवजी के गृह में जन्म लेने की लीला करना, कंस नामक शत्रु के भय से व्रज में जाकर छिपे रहना, तथा स्वयम् अनन्त पराक्रम संपन्न होने पर भी कालयवन आदि के भय से अपनी नगरी मथुरा से भागकर उनका द्वारका में जाकर निवास करना, श्रीभगवान् की ये लीलायें जो हैं उनको सोचकर मैं भी बेचैन हो जाता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽसौ परावराणामीशः पारतन्त्रप्रतीतेस्तत्राह द्वाभ्याम् । मामप्येतद्दुर्वितर्क्यं दुर्घटं च खेदयति, तदेवाह । वसुदेवगेहे बन्धनागारे यज्जन्मनो विडम्बनमनुकरणं, नतु नृसिंहवदकस्मादाविर्भावः । कंसभयादिव निलीय व्रजे वासश्च । कालयवनादिरिपुभयादिव पुरान्मथुराया व्यवात्सीदपलायत ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि उनमें भी परतन्त्रता की प्रतीति होती है, वे सबों के स्वामी (पुरावरेश) कैसे हो सकते हैं ? तो उसका उत्तर उद्धवजी दो श्लोकों से देते हैं । वे कहते हैं कि मुझको भी ये सारी बातें दुर्घट तथा दुर्वितर्क्य प्रतीत होती हैं । उसे सोचकर मैं भी खिन्न हो जाता हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण ने जो वसुदेवजी के यहाँ बन्धनागार में मानव जन्म की लीला किया, वे नृसिंह इत्यादि के समान अकस्मात् प्रकट नहीं हुए । वे मानों कंस के भय से छिपकर व्रज में निवास किए । कालयवन इत्यादि शत्रुओं के भय से मानो मथुरा से भागकर द्वारका में चले गये । उनकी ये सारी लीलायें याद आकर मुझे भी बेचैन बना देती हैं ॥१६॥

दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।
तताम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥१७॥

अन्वयः— यत् पित्रोः पादावभिवन्द्यआह ताताम्ब कंसादुरुशंकितानां अकृत निष्कृतीनाम् प्रसीदतम् ॥१७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपने माता-पिता देवकी और वसुदेवजी के दोनों चरणों की वन्दना करके यह जो कहा कि हे पिताजी ! हे मां ! कंस के अत्यधिक भय के कारण हमलोग आपकी कोई भी सेवा नहीं कर सके इसके लिए आप हमलोगों को क्षमा कर दें और प्रसन्न हो जायँ । इन सारी बातों को स्मरण करके मुझे भी अत्यन्त व्यथा होती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च हरेश्चरितं स्मरतो मम चेतः कर्मभूतं दुनोति व्यथयति । तदेव दर्शयति-यदाहेति । हे तात, हे अम्ब, युवां प्रसीदतं प्रसादं कुरुतम् । न कृता निष्कृतिः शुश्रूषणं यैस्तेषाम् । नोऽस्माकमिति बहुवचनं तु रामाद्यभिप्रायम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के इस चरितको भी याद करके मेरे अन्तःकरण में व्यथा होती है । श्रीभगवान् के उस चरित को बतलाते हुए उद्धवजी ने कहा— भगवान् ने यह जो कहा— हे तात ! हे अम्ब ! आप दोनों हमलोगों पर प्रसन्न हो जायँ । क्योंकि हमलोगों ने कंस के भय से आप दोनों की कोई सेवा नहीं की है । **नः** यह बहुवचनान्त प्रयोग बलरामजी आदि के अभिप्राय से किया गया है ॥१७॥

को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ।
यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

अन्वयः— यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन कृतान्तेन भूमेः भारं तिरश्चकार अमुष्याङ्घ्रि सरोजरेणुं विजिघ्रन् को वा पुमान् विस्मर्तुमीशीत ॥११॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् ने अपने काल स्वरूप भ्रुकुटि बिलास के द्वारा पृथिवी के भार को विनष्ट कर दिया। उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा पुरुष होगा जो उसको भूल जाय ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यनीश्वर एव किं न स्यात्, तव तु श्रद्धामात्रमेतत्तत्राह त्रिभिः । को वा अङ्घ्रिसरोजयोर्यो रेणुस्तमपि विजिघ्रन् सेवमानः पुमान्विस्मर्तुमीशीत शक्नुयात् । विस्फुरन् भ्रूविटपो भ्रूलता स एव कृतान्तस्तेन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि ऐसी स्थिति है तो उनको अनीश्वर ही क्यों न मान लिया जाय, आप तो अपनी श्रद्धा के कारण उनको ईश्वर मानते हैं । तो इसका उत्तर उद्धवजी तीन श्लोको से देते हैं । जिन श्रीभगवान् ने अपने कालस्वरूप भ्रुकुटि के विलास मात्र से पृथिवी के भार को दूर कर दिया उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो उसे भूल जाय ॥१८॥

दृष्टा भवाद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

अन्वयः— भवद्भिः ननु राजसूये कृष्णं द्विषतोऽपि चैद्यस्य सिद्धिः दृष्टा । यां योगिनः सम्यग्योगेन संस्पृहयन्ति तद् विरहं कः सहेत ॥१९॥

अनुवाद— आप लोगों ने भी राजसूय यज्ञ में देखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले शिशुपाल को भी वह मुक्ति मिल गयी, जिस मुक्ति को योगिजन अपनी योगसाधना के द्वारा प्राप्त करने की कामना करते हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को कौन सह सकता है ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

न च तस्येश्वरत्वं साधनीयं, भवद्भिरपि दृष्टत्वादित्याह-दृष्टेति । यां सिद्धिं सम्यग्योगेन प्राप्तुमिच्छन्ति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण के भगवत्त्व की सिद्धि करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । आपलोगों ने भी उनके भगवत्त्व को राजसूय यज्ञ में देखा है । शिशुपाल को जो सिद्धि मिली उस सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा योगिजन भी किया करते हैं ॥१९॥

तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।
नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥२०॥

अन्वयः— तथैव अन्ये ये नरलोकवीरा आहवे नेत्रैः नयनाभिरामं कृष्णमुखारविन्दम् पिबन्तः पार्थास्त्रपूताः सन्तः अस्य पदमापुः ॥२०॥

अनुवाद— उसी तरह महाभारत युद्ध में जो दूसरे मानव वीर अपने नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दर्शन करते हुए अर्जुन के अस्त्रों से पवित्र होकर मारे गये वे भी श्रीकृष्ण के धाम में चले गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आहवे युद्धे पार्थस्यास्त्रैः पूताः निष्पापाः सन्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

महाभारत युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते हुए जो प्रख्यात वीर अर्जुन के अस्त्रों के संप्रयोग के कारण पवित्र होकर मारे गये वे भी भगवान् के लोक में ही गये ॥२०॥

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

अन्वयः— स्वयं तु असाम्यातिशयः त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः, चिरलोकपालैः बलिं हरद्भिः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् स्वयम् ऐसे है कि उनके समान ही कोई नहीं है तो उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा। वे त्रिलोकी के स्वामी हैं । वे अपने ऐश्वर्य लक्ष्मी से ही अवाप्तसमस्तकाम हैं । इन्द्र आदि असंख्य लोकपाल अनेक प्रकार के उपहारों को उनको प्रदान करके अपने मुकुटों के अग्रभाग से श्रीभगवान् की चरण चौकी को प्रणाम करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं परमैश्वर्ये सत्यपि यदुग्रसेनानुवर्तित्वं तत्पुनरस्मानत्यन्तं व्यथयतीत्याह । स्वयं तु य एवंभूतस्तस्य तत्कैङ्कर्यं नोऽस्मान् विग्लापयतीत्युत्तरेणान्वयः । न साम्यातिशयौ यस्य । यमपेक्ष्यान्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्तीत्यर्थः । तत्र हेतवः- त्र्यधीशस्त्रयाणां पुरुषाणां लोकानां गुणानां वा ईशः । स्वराज्यलक्ष्म्या परमानन्दस्वरूपसंपत्त्यैव प्राप्तसमस्तभोगः । बलिं करमर्हणं वा हरद्भिः समर्पयद्भिश्चिरकालीनैर्लोकपालैः किरीटाग्रेणेडितं स्तुतं पादपीठं यस्य । प्रणमतां किरीटसंघट्टनध्वनिरिव स्तुतित्वेनोत्प्रेक्ष्यते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी कहते है कि इस प्रकार के ऐश्वर्य से स्वयं सम्पन्न होने पर भी भगवान् उग्रसेन इत्यादि की आज्ञा का जो पालन करते थे उसको सोचकर हमलोगों को अत्यन्त कष्ट होता है । जो भगवान् इस प्रकार के ऐश्वर्य सम्पन्न थे उनका उग्रसेन आदि की आज्ञा का पालक होना हमलोगों को दुःखी बनाता है, इस तरह से बाइसवें श्लोक के साथ इसका अन्वय है । भगवान् से न तो किसी की समता हो सकती है और उनसे किसी की अधिकता हो सकती है इसके कारण इस प्रकार से हैं वे तीनों प्रकार के पुरुषों (बद्ध, मुक्त एवं नित्य) या तीनों लोकों (भूर्भुवः स्वः) तीनों गुणों (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) के स्वामी हैं श्रीभगवान् । परमानन्द स्वरूप सम्पत्ति के द्वारा ही वे समस्त भोगों को प्राप्त कर लिए हैं तथा इन्द्रादि लोकपालों द्वारा कर प्रदान किए जाने तथा उनके मुकुटों के अग्रभाग से भगवान् की चरण चौकी को नमस्कार किए जाने से भगवान् परमैश्वर्य सम्पन्न हैं ॥२१॥

तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ।
तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! परमेष्ठिधिष्ण्य निष्णणम् उग्रसेनं तिष्ठन् देव निधारय यत् न्यवोधयत् तस्य अलं कैङ्कर्यम् तत् नः भृतान् विग्लापयति ॥२२॥

अनुवाद— हे विदुरजी राजसिंहासन पर बैठे हुए उग्रसेन के समक्ष जाकर जो भगवान् उनसे प्रार्थना करते थे कि महाराज आप हमारी प्रार्थना सुनें उनके इस सेवाभाव की याद आने पर हम भगवद् भक्तों को कष्ट होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर । भृतान् भृत्यान् । उग्रसेने यत्किंकरत्वं तदेवाह । परमेष्ठिधिष्ण्ये राजासने निषण्णमासीनं स्वयं तिष्ठन् हे देव, निधारयावधरयेति न्यबोधयद्विज्ञापितवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी भगवान् की उग्रसेन के विषय में जो उनकी किंकरत्व की भावना थी वह हम भगवद् भक्तों को व्यथित करती है । उग्रसेन राजसिंहासन पर जब बैठे थे उस समय उनके सामने खड़े होकर भगवान् ने जो प्रार्थना किया उसको सोचकर कष्ट होता है ॥२२॥

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अन्वयः— अहो इयं असाध्वी बकी जिघांसया स्तनकालकूटम् अपाययत् । सा च धात्र्युचितां गतिं लेभे कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अनुवाद— दुष्टा पूतना श्रीभगवान् को मार डालने की इच्छा से अपने स्तन में कालकूट भरकर उनको पिलायी थी उसको भी श्रीभगवान् ने धाय के लिए उचित गति प्रदान की; ऐसे दयालु भगवान् श्रीकृष्ण के छोड़कर मैं किस दयालु की शरणागति करूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवमनुवृत्तिः कृपयैवेति सूचयन्नपकारिष्वपि तस्य कृपालुतां दर्शयन्नाह । अहो आश्चर्यं कृपालुतायाः । हन्तुमिच्छयापि स्तनयोः संभृतं कालकूटं विषं यमपाययत् । बकी पूतना असाध्वी दुष्टापि धात्र्या यशोदाया उचितां गतिं लेभे । भक्तवेषमात्रेण यः सद्गतिं दत्तवानित्यर्थः । ततोऽन्यं कं वा भजेम ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण भगवान् की अनुवृत्ति को सूचित करते हुए अब यह बतलाते हैं कि भगवान् अपने अपकारी जीवों पर भी कृपा प्रदर्शिति करते हैं । अहो ! इस अव्यय के द्वारा श्रीभगवान् की कृपालुता पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है । पूतना ने तो कालकूट विष से भरे हुए अपने स्तनों को भगवान् को मार देने की इच्छा से पिलायी थी उस दुष्टा पूतना को भगवान् ने वह गति प्रदान किया जो गति उनकी माता यशोदा को मिलना चाहिए । पूतना को भक्त का केवला वेष बनाने के कारण सद्गति प्रदान किया । ऐसे श्रीभगवान् को छोड़कर किस दूसरे की हमलोग सेवा करें ॥२३॥

मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥

अन्वयः— अहं असुरान् भागवतान् मन्ये त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्ट चित्तान् ये संयुगे सुनाभायुधम् आपतन्तम् तार्क्ष्य पुत्रम् आचक्षत ॥२४॥

अनुवाद— मैं असुरों को भगवान् का भक्त मानता हूँ, क्योंकि वैरभाव के कारण उनका चित्त त्रैलोक्याधिपति श्रीभगवान् में लगा रहता था । उन सबों को सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने कन्धें पर चढ़ाकर आक्रमण करते हुए गरुड़ का दर्शन हुआ करता था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु भागवतानेव भगवाननुगृह्णातीति प्रसिद्धम्, सत्यम्, असुरानप्यहं भागवतानेव मन्ये, यतो भागवता इव तेऽपि भगवद्ध्यानाभिनिवेशेन भवन्तमपरोक्षं पश्यन्तीत्याह । संरम्भः क्रोधावेशस्तेन मार्गेणाभिनिविष्टं चित्तं येषां तान् । अतएव ये संग्रामे तार्क्ष्यः कश्यपस्तस्य पुत्रं गरुडमंसे स्कन्धे सुनाभायुधश्चक्रायुधोऽरिर्यस्य तमचक्षतापश्यन् । तस्मात्तेष्वप्यनुग्रहो युक्त एवेत्यर्थः । वक्ष्यति च '**तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्**' इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यह प्रसिद्ध है कि श्रीभगवान् अपने भक्तों पर ही कृपा करते हैं तो यह कहना ठीक ही है । मैं तो असुरों को भी भगवद् भक्त ही मानता हूँ । क्योंकि उन सबों का भी भागवतों के ही समान श्रीभगवान् में अभिनिवेश वशात् ध्यान लगा रहता था । और वे भी भगवान् का साक्षात्कार करते थे । उन सबों का बैरभाव

के कारण क्रोधावेश वशात् भगवान् में मन लगा रहता था । अतएव वे भी युद्ध में तार्क्ष्य (महर्षि कश्यप) के पुत्र गरुड के कन्धे पर बैठे हुए सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते थे । इसीलिए भगवान् का उन सबों पर कृपा करना उचित ही था । इसलिए कहेंगे भी- **तस्मात् केनाप्युपायेन** किसी भी साधन के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में मन को लगाना चाहिए ॥२४॥

वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने । चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥

अन्वयः— अजेन अभियाचितः अस्यश्शम् चिकीर्षुः भोजेन्द्रबन्धने वासुदेवस्य देवक्यां जातः ॥२५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के प्रर्थना करने पर पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से श्रीभगवान् कंस के कारागार में देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यान्तर्धानप्रकारं वक्तुमादित आरभ्य तच्चरितं संक्षेपतः कथयति । वसुदेवस्य भार्यायां जातः । भोजेन्द्रः कंसस्तस्य बन्धनागारे । अस्याः पृथिव्याः शं सुखं स्वयं चिकीर्षुः । अजेन ब्रह्मणा च याचितः सन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के तिरोधन प्रकार को बतलाने के लिए प्रारम्भ से ही श्रीभगवान् के चरित का संक्षेप से वर्णन करते हुए उद्धवजी कहते हैं- श्रीभगवान् वसुदेवजी की पत्नी देवकीजी के गर्भ से जन्म लिए । वे कंस के कैदखाने में जन्म लिए । इस पृथ्वी का स्वयं कल्याण करने के लिए उत्पन्न हुए । किञ्च वे ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर जन्म लिए ॥२५॥

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता । एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

अन्वयः— ततः इतः कंसाद्बिभ्यता पित्रा, नन्दव्रजम् गतः, तत्र गूढार्चिः एकादशसमाः सबलः अवसत् ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कंस से भयभीत पिता के द्वारा वे नन्दव्रज से चले गये । वहाँ पर छिपे हुए तेजः से सम्पन्न वे बलरामजी के साथ रहे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पित्रा हेतुभूतेन नन्दव्रजमितो गतः । समाः संवत्सरान् । गूढार्चिर्गुप्ततेजाः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी कंस से बहुत डरते थे । उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् को नन्द्रव्रज में पहुँचा दिया और वहाँ पर छिपे हुए तेज से युक्त वे बलरामजी के साथ ग्यारह वर्षों तक निवास किए ॥२६॥

परीतो वत्सपैर्वत्सां श्चारयन्व्यहरद्विभुः । यमुनापवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७॥

अन्वयः— तत्र वत्सपैः परीतः विभुः वत्सान् चारयन् कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे यमुनोपवने व्यहरत् ॥२७॥

अनुवाद— वहाँ पर बछड़ों को चराने वाले ग्वाल बालों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ो को चराते हुए कलरव करने वाले पछियों से व्याप्त वृक्षों वाले यमुना के उपवन में बिहार किए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

व्यहरदक्रीडत् । कूजद्भिर्द्विजैः पक्षिभिः संकुलिता व्याप्ता अङ्घ्रिपा यस्मिन् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

नन्द्रव्रज में गौओं के बछड़ो को चराने वाले ग्वाल बालों के साथ श्रीभगवान् बछड़ों को चराते हुए कलरव करने वाले पक्षियों से व्याप्त वृक्षों से युक्त यमुना के उपवन में क्रीड़ा करते रहे ॥२७॥

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् । रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥

अन्वयः— रुदन्निव, हसन्, मुग्धबालसिंहावलोकनः व्रजौकसाम् प्रेक्षणीयां कौमारीं चेष्टां दर्शयन् ॥२८॥

अनुवाद— रोते हुए, हंसते हुए तथा बाल सिंह के समान देखते हुए वे व्रजवासियों को आकर्षित करने वाली बाल सुलभ चेष्टाओं को करते हुए वहाँ ग्यारह वर्षों तक निवास किए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

रुदन्निवेतीवशब्दस्य यथायोगं सर्वत्राप्यन्वयः । मुग्धो बालश्च यः सिंहस्तद्वदवलोकनं यस्य सः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

रुदन्निव में जो इव शब्द है उसका अन्वय सर्वत्र करना चाहिए । अर्थात् रोते हुए के समान, हंसते हुए के समान तथा बाल सिंह के समान मनोहर ढंग से देखते हुए के समान वे नन्दव्रज में व्रजवासियों को आकृष्ट करने वाली बालसुलभ चेष्टाओं को दिखाते रहे ॥२८॥

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् । चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥

अन्वयः— स एव लक्ष्म्या निकेतं गोधनं सितगोवृषं चारयन् रणद्वेणुः अनुगानगोपान् अरीरमत् ॥२९॥

अनुवाद— कुछ बड़े होने पर वे शोभारूपी सम्पत्ति से तथा श्वेत गोवृष (सांड़) से युक्त गौओं को चराते हुए अपनी बाँसुरीं बजाते हुए अपने साथ के गोपों को आनन्दित करते थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

स एवाधिकं वयः प्राप्तः सन् गोधनं चारयन् । कथंभूतं गोधनम् । लक्ष्म्याः शोभादिसंपदो निकेतनम् । सिता गोवृषायस्मिन्नानावर्णे गोसङ्घे । रणन् शब्दं कुवन्वेणुर्यस्य । अरीरमद्रमयामास ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वे ही भगवान् जब कुछ, बड़े हुए तो अनेक रङ्गों की शोभा से सम्पन्न एवं श्वेत सांडों से युक्त गौओं को चराने लगे और वे अपनी बांसुरी बजाकर अपने साथ रहने वाली गौओं के चरवाहों को आनन्दित करने लगे ॥२९॥

प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः । लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥३०॥

अन्वयः— भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः प्रयुक्तान् राक्षसान् बालः क्रीडनकानि इव लीलया व्यनुदत् ॥३०॥

अनुवाद— राजा कंस के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को उन्होंने लीला पूर्वक उसी तरह से मार दिया जिस तरह से कोई बालक खिलौनों को तोड़ देता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

व्यनुदज्जघान । क्रीडनकांस्तृणादिनिर्मितान्सिंहादीन्यथा ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

व्यनुदत् पद का अर्थ है मार दिया । अर्थात् जिस तरह से कोई बालक तृण इत्यादि के द्वारा निर्मित सिंहादि को खेल-खेल में तोड़ देता है, उसी तरह से कंस के द्वारा भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को खेल-खेल में ही मार दिए ॥३०॥

विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् । उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥३१॥

अन्वयः— भुजगाधिपम् निगृह्य विषपानेन विपन्नान् उत्थाप्य गावः प्रकृतिस्थितम् तोयं अपाययत् ॥३१॥

अनुवाद— सर्पों के स्वामी कालिय नाग का दमन करके श्रीभगवान् ने विषैले पानी के पीने से मरे हुए ग्वाल बालों तथा गौओं को शुद्ध पानी पिलाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विपन्नान्मृतान्गोपान्गाव इति गाश्चोत्थाप्य तदेव तोयं । प्रकृतिस्थितं निर्विषम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मरे हुए गोपों और गौओं को भगवान् ने जीवित कर दिया और उस कालियदह के शुद्ध जल को पिलाया ॥३१॥

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः । वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

अन्वयः— विभुः उरुभारस्य वित्तस्य सद्व्ययं चिकीर्षन् गोपराज द्विजोत्तमैः गोसवेन अयाजयत् ॥३२॥

अनुवाद— बहुत अधिक बढ़े हुए धन सम्पत्ति का सद् व्यय करने के इच्छुक श्रीभगवान् ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा गोपराज से गोसव नामक यज्ञ कराया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रपूजाभङ्गेन कृता गवां पूजैव गोसवस्तेन । गोपराजं नन्दम् । वित्तस्य चेति चकारादिन्द्रस्य मानभङ्गं कुर्वन् उरुभारस्याऽतिसमृद्धस्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र की पूजा को रोकवाकर श्रीभगवान् ने जो गौओं की पूजा करवायी वह पूजा ही गोसव है । गोपराज शब्द से नन्दजी को कहा गया है । **वित्तस्य च** के च के द्वारा इन्द्र का मान भङ्ग सूचित है । अर्थात् उस धन के द्वारा यज्ञ कराकर श्रीभगवान् ने नन्दजी के धन का सदुपयोग कराया और उसके साथ इन्द्र के धमण्ड को चूर किया । **उरुभार** शब्द अत्यन्त समृद्धि का बोधक है ॥३२॥

वर्षतीन्द्र व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः । गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥३३॥

अन्वयः— हे भद्र ! भाग्नमाने इन्द्रे कोपाद् वर्षति अतिविह्वलः व्रजः गोत्रलीलातपत्रेण अनुगृह्णता त्रातः ॥३३॥

अनुवाद— हे भद्र !मान के भङ्ग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर इन्द्र जब मुसलाधार वर्षा व्रज में करने लगे तो सभी व्रजवासी घबरा गये उस समय उन सबों पर कृपा करके भगवान् ने गोवर्धन पर्वत रूपी छातें के द्वारा रक्षा की ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

कोपाद्वर्षति । गोत्रः पर्वत एव लीलातपत्रं तेन । हे भद्र ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मानभंग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर जब इन्द्र घन-घोर वर्षा करने लगे उस समय गोवर्धन पर्वत रूपी लीलापत्र के द्वारा भगवान् ने सबों की रक्षा की । भद्र शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ॥३३॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् । गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवत् महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— शरच्छशिकरैः मृष्टं रजनीमुखम् मानयन् स्त्रीणां मण्डलमण्डनः कलपदं गायन् रेमे ।।३४।।

अनुवाद— शरत् कालीन चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित संध्या का सम्मान करते हुए स्त्रियों के समूह को अलंकृत करने वाले श्रीभगवान् मनोहर गीत गाते हुए उस चाँदनी रात में रास विहार किए ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मृष्टमुज्ज्वलम् । स्त्रीणां मण्डलं मण्डयतीति तथा ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मृष्ट शब्द का अर्थ प्रकाशित है । श्रीभगवान् गोपियों के समूह को अलंकृत करने वाले थे । इस प्रकार के श्रीभगवान् ने शरत् की चन्द्रमा से प्रकाशित सन्ध्या को देखकर उसके सम्मान में स्त्रियों के समूह को अलंकृत करते हुए तथा मनोहर गीत गाते हुए रासलीला किए ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तृतीय अध्याय

श्रीभगवान् के दूसरे चरित्रों का वर्णन

उद्धव उवाच

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ।
निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ।।१।।

अन्वयः— ततः सः स्वपित्रोः शंचिकीर्षुः पुरं आगत्य रिपुयूथनाथं तुङ्गात् निपात्य व्यसुं हतं ओजसा उर्व्याम् व्यकर्षत्।।१।।

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने माता-पिता देवकीजी तथा वसुदेवजी का कल्याण करने के लिए भगवान् मथुरापुरी में आये और उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए शत्रुसमूह के स्वामी कंस को पटककर मरे हुए कंस की लाश को बड़े जोर से भगवान् घसीटे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तृतीये मथुरामेत्य व्रजात्कंसवधादिकम् । यत्कृतं द्वारकायां च कृष्णेन तदवर्णयत् ।।१।। शमित्यव्ययम् । पित्रोः सुखस्य चिकीर्षयेत्यर्थः । तुङ्गाद्राजमञ्चात् । रिपुयूथानां नाथं कंसम् । व्यसोरपि विकर्षणं पित्रोः सुखार्थम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

व्रज से मथुरा आकर भगवान् ने जो कंस के वध आदि का कार्य किया तथा उन्होंने द्वारका में जिन कार्यों को किया उन सबों का वर्णन तीसरे अध्याय में किया गया है ।।१।। **शमित्यादि** शम् यह अव्यय पद है । अपने

माता-पिता को सुख प्रदान करने की इच्छा से भगवान् बलरामजी के साथ मथुरा आये तथा ऊँचे राजमञ्च से कंस को पटक कर मरे हुए भी कंस को अपने पिता को प्रसन्न करने के लिए घसीटे ॥१॥

सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् । तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥२॥

अन्वयः— सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्म सविस्तरमधीत्य तस्मै मृतं पुत्रं पञ्चजनोदरात् वरं प्रादात् ॥२॥

अनुवाद— सांदपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किये गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन करके दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट से (यमपुरी) से लाकर प्रदान किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदम् । सविस्तरं षडङ्गादिसहितम् । पञ्चजनोदरविदारणद्वारा पुत्रमानीयेत्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है । **सविस्तरम्** का अर्थ है अङ्गों और उपाङ्गों के साथ । श्रीभगवान् संदीपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किए गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन किए और दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट को फाड़कर उसको निकाल कर यमपुरी से लाये और अपने गुरु को प्रदान किए ॥२॥

समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ।
गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥३॥

अन्वयः— भीष्मकन्यया समहुताः श्रियः सवर्णेन गान्धर्ववृत्या बुभूषया एषां मिषतां मूर्ध्नि पदं दधत् सुपर्णः स्वभागं जह्रे ॥३॥

अनुवाद— भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अथवा रुक्मी के द्वारा बुलाये गये गान्धर्व विधि से लक्ष्मीजी के समान रूप वाली रुक्मिणी का पति होने की इच्छा से आये हुए समस्त शिशुपाल आदि के सामने ही रुक्मिणीजी का उसी तरह से श्रीभगवान् हरण कर लिए जिस तरह गरुड़ अमृत कलश को ले आये थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भीष्मककन्यया रुक्मिण्या ये राजानः समाहूताः । ह्रस्वमार्षम् । **समाहृता इति पाठे आकृष्टा इत्यर्थः । केन साधनेन।** श्रियो लक्ष्म्याः सवर्णेन समानेन रूपेण । यद्यपि तया केवलं श्रीकृष्ण एवाहूतो न सर्वे, तथापि लावण्यं तेषामागमने हेतुरिति तयैवाहूता इत्युच्यते । एषां मिषतां पश्यतां मूर्ध्नि पदं दधत् । तया सह गान्धर्ववृत्त्या परस्परसमयरूपया बुभूषया भवितुमिच्छया जहार । कथंभूताम् । स्वभागं लक्ष्म्यंशत्वात् । तया स्वात्मनोऽर्पितत्वाच्च । सुपर्णः सुपतनः । यद्वा सुपर्ण इव स्वभागं सुधामित्यर्थः । यद्वा श्रियो रुक्मिण्याः समानं वर्णद्वयं वाचकं यस्य स श्रियः सवर्णो रुक्मी तेन समाहूताः शिशुपालादयः । किमर्थम् । भीष्मककन्यया सह तेषां बुभूषया भूतिर्भवत्वित्येतदर्थम् । तत्र शिशुपालस्याह्वानं वरत्वेन बुभूषया, जरासन्धादीनां तद्विवाहोत्सवेन । शेषं पूर्ववत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भीष्मक की पुत्री रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत जो राजा थे । समाहुत मे ह्रस्व आर्ष प्रयोग के कारण है । जहाँ पर समाहृत पाठ है वहाँ आकृष्ट अर्थ होगा । सबों को बुलाने का साधन रुक्मिणीजी का लक्ष्मीजी के समान रूप था । यद्यपि रुक्मिणीजी ने तो केवल भगवान् श्रीकृष्ण को ही बुलाया था किन्तु सभी राजाओं के आगमन का कारण रुक्मिणीजी का आकर्षक रूप था । इसीलिए रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत कहा गया है । उन सबो के सामने ही सबों के शिर पर पैर रखकर भगवान् ने गान्धर्व विधि को अपनाकर बना लेने की इच्छा से हरण कर

लिया । रुक्मिणीजी लक्ष्मीजी के अंश थी अतएव वे उनका ही भाग थी । और रुक्मिणीजी ने अपने को भगवान् को समर्पित कर दिया था सुपर्ण शब्द का अर्थ है सुन्दर रूप से आक्रमण करने वाले । अथवा जिस तरह से गरुड़ ने अपने भाग अमृत कलश का अपहरण कर लिया था उसी तरह से भगवान् ने रुक्मिणीजी का अपहरण कर लिया । अथवा **श्रियः सवर्णेन समाहूताः** का अर्थ है लक्ष्मीजी के ही समान दो वर्णों के नाम वाले रुक्मी के द्वारा शिशुपाल इत्यादि इसलिए बुलाये गये थे कि उन सबों का रुक्मिणीजी के साथ विवाह हो । शिशुपाल को रुक्मी न वर बनाने के लिए बुलाया था और जरासन्ध इत्यादि को विवाहोत्सव में भाग लेने के लिए बुलाया था ॥३॥

ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ।
तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥४॥

अन्वयः— अविद्धनसः ककुद्मतः दमित्वा स्वयम्बरे नग्नजितीम् उवाह । तद्भग्नमानान् अपि शस्त्रभृतः गृध्यतः अज्ञान् अक्षतः सन् स्वशस्त्रैः जघान ॥४॥

अनुवाद— बिना नथे हुए सांड़ों को नाथ पहनाकर भगवान् ने स्वयम्बर में नग्नजिती (सत्या) से विवाह किया । उसके कारण जिन मूर्ख राजाओं का मान भङ्ग हो गया था वे सब राजकुमारी को छिन लेना चाहते थे और उन सबों ने शस्त्र धारण कर लिया तो बिना किसी प्रकार से घायल हुए भगवान् उन सबों को अपने शस्त्रों से मार डाला ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ककुद्मतो वृषभान् अविद्धनासिकान् । विद्धनासिकान्कृत्वेति वा । तैर्वृषभैस्तद्दमनेन च भग्नो मानो येषां तथापि तान् गृध्यतः कामयमानान्, अतएवाज्ञान् शस्त्रभृतो राज्ञस्तच्छस्त्रैरक्षत एव जघान ॥४॥

भाव प्रकाशिका

बिना नाथे गये बैलों को नाथकर भगवान् उन सबों का दमन कर दिये । उन सबों के दमन के साथ ही जिन सबों के मान का दमन हो गया था फिर भी स्वयम्बर में आये हुए राजागण राजकुमारी को प्राप्त कर लेना चाहते थे । उन अज्ञानी तथा शस्त्रधारण किए हुए राजाओं के शस्त्रों से बिना क्षतिग्रस्त हुए भगवान् उन सबो को अपने शस्त्रों से मार दिए ॥४॥

प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ।
वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषाऽन्धः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥५॥

अन्वयः— प्रभुः प्रियायाः ग्राम्यः इव प्रियं विधित्सुः यदर्थे द्युतरुं आर्च्छत् रुषान्धः वज्री तं सगणः आद्रवत् । नूनम् अयं वधूनाम् क्रीडामृगः ॥५॥

अनुवाद— यद्यपि श्रीभगवान् स्वतन्त्र हैं फिर भी विषयी पुरुषों के समान अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग के कल्प वृक्ष को उखाड़कर लाये । उस समय क्रोधान्ध बने इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ उन पर आक्रमण किया क्योंकि निश्चित रूप से वह अपनी स्त्रियों का क्रीडा मृग बना हुआ है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यदाऽदित्याः कुण्डले दातुं स्वर्गं गतस्तदा प्रभुः स्वतन्त्रोऽपि ग्राम्यः स्त्रीपरतन्त्र इव प्रियायाः सत्यभामायाः प्रियं विधातुमिच्छुर्द्युतरुं पारिजातमानीतवान् । यदर्थे यन्निमित्तं तं कृष्णं वज्री स्त्रीप्रेरितो योद्धुमन्वधावत् । स्वकार्यसाधकेन तेन युद्धोद्यमस्तस्यायुक्त एवेत्याह-क्रीडामृग इति । अयं व्रजी ॥५॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण देवताओं की माता अदिति देवी को उनका कुण्डल उनको देने के लिए स्वर्ग गये उस समय वे अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी को प्रसन्न करने के लिए विषयी पुरुष के समान स्वर्ग से कल्पवृक्ष को उखाड़ लाये। इस बात को सुनकर अपनी अपनी पत्नी शची से प्रेरित होकर इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ श्रीभगवान् पर आक्रमण कर दिया। निश्चित रूप से यह इन्द्र अपनी पत्नियों का क्रीडा मृग है ॥५॥

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ।
आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ॥६॥

अन्वयः— वपुषा खं ग्रसन्तं सुतं मृधे सुनाभोन्मथितं दृष्ट्वा धरित्र्या आमन्त्रितः तत् तनयाय शेषं दत्वा तदन्तः पुरम् आविवेश ॥६॥

अनुवाद— अपने विशाल शरीर से आकाश को भी ढंक देने वाले भौमासुर नामक अपने पुत्र को युद्ध में चक्र के द्वारा मारे गये देखकर भूदेवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की। उस समय भगवान् ने बचे हुए राज्य को भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सुनाभेन चक्रेणोन्मथितं सुतं भौमं दृष्ट्वा तस्य मात्रा धरित्र्या भूम्या आमन्त्रितः प्रार्थितः संस्तस्य तनयाय भगदत्ताय हृतशेषं राज्यं दत्त्वा ॥६॥

भाव प्रकाशिका

चक्र के द्वारा मारे गये अपने पुत्र भौमासुर को देखकर उसकी माता पृथिवी देवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की तो बचे हुए राज्य को भगवान् ने भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और उसके पश्चात् वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ॥६॥

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ।
उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥७॥

अन्वयः— तत्र कुजेन आहृताः ताः नरदेव कन्याः आर्तबन्धुम् हरिम् दृष्ट्वा सद्यः उत्थाय प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहिताव-लोकैः जगृहुः ॥७॥

अनुवाद— वहाँ पर भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियाँ दीनबन्धु, श्रीहरि को देखकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् को देखकर भगवान् को पति के रूप में वरण किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तत्रान्तःपुरे कुजेन भौमेन या आहृतास्ताः प्रहर्षश्च व्रीडा चानुरागश्च तैः प्रहिताः प्रेरिता येऽवलोकास्तैर्जगृहुः स्वीकृतवत्यः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उस अन्तःपुर में भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियों ने दीनबन्धु श्रीभगवान् को देखा और खड़ी होकर तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीहरि को देखते हुए उनको पति के रूप में वरण कर लिया ॥७॥

आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् । सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥

अन्वयः— भगवान् एकस्मिन् मुहूर्ते आसां योषिताम् पाणीन् सविधं स्वमायया अनुरूपः नानागारेषु जगृहे ॥८॥

अनुवाद— उस समय भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक गृहों में अनेक रूप को धारण करके एक ही मुहूर्त में उन सबों का पाणिग्रहण किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आसां योषितां पाणींस्तत्तदनुरूपः सन्सविधं विवाहोचितप्रकारसहितं यथा भवति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों को धारण करके अनेक गृहों में उन सबों का एक ही मुहूर्त में पाणिग्रहण किया ॥८॥

तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः । एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥९॥

अन्वयः— प्रकृतेः विबुभूषया तासु एकैकस्यां सर्वतः आत्मतुल्यानि दश-दश अपत्यानि अजनयत् ॥९॥

अनुवाद— अपनी प्रकृति का विस्तार करने की इच्छा से श्रीभगवान् ने अपनी प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने हीं समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वतः सर्वैर्गुणैः स्वतुल्यानि । प्रकृतेर्मायाया विविधं भवनं विस्तारस्तदिच्छया । यद्वा प्रकृतेर्हेतोर्विविधं भवितुमिच्छया॥९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपनी माया का विस्तार करने की इच्छा से अथवा प्रकृति रूपी साधन से अनेक होने की इच्छा से श्रीभगवान् ने उन प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने ही समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रो को उत्पन्न किया ॥९॥

कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरम् । अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

अन्वयः— अनीकैः पुरम् रुन्धतः कालमागधशाल्वादीन् स्वपुंसां दिव्यं तेजः आदिशत् स्वयं अजीघनत् ॥१०॥

अनुवाद— जब कालयवन, जरासन्ध तथा शाल्व आदि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा पुरी को घेर लिया उस समय भगवान् ने अपने लोगों को अपना दिव्य तेज प्रदान करके स्वयं ही उन सबों को मार दिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कालः कालयवनः । रुन्धत आवृण्वतः । मुचुकुन्दभीमादिभिर्निमित्तमात्रैः स्वयमेवाजीघनद्घातितवान् । तेन च स्वपुंसां तेजः प्रभावं कीर्तिं वा दत्तवान् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय कालयवन, जरासन्ध, तथा शाल्व इत्यादि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा को घेर लिया उस समय भगवान् ने मुचकुन्द तथा भीम आदि को निमित्त बनाकर उन सबों को स्वयं मार दिया किन्तु उसके द्वारा उन्होंने अपने इन भक्तों को दिव्य यश प्रदान किया ॥१०॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च । अन्यांश्च दन्तवक्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥११॥

अन्वयः— शम्बरं, द्विविदं, बाणं, मुरं, बल्वलम् अन्या च दन्तवक्त्रदीन एतेषु कांश्चन अवधीत् कांश्चन च घातयत्॥११॥

अनुवाद— शम्बरासुर द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल तथा दूसरे दन्तवक्त्र इत्यादि इनमें से कुछ को भगवान् ने स्वयम् मारा और कुछ को मरवा दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

शम्बरद्विविदबल्वलानन्यानपि कांश्चित्प्रद्युम्नरामादिभिर्घातयदघातयत् । घातयन् इति वा पाठः । दन्तवक्त्रादीन्स्वयमवधीत् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शम्बर, द्विविद, बल्वल तथा इनसे भिन्न भी असुरों में से कुछ को श्रीभगवान् ने प्रद्युम्न, बलराम आदि के द्वारा मरवा दिया । कहीं-कहीं पर घातयन् भी पाठ है । दन्तवक्त्र आदि को तो श्रीभगवान् ने स्वयम् मारा ।।११।।

अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् । चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ।।१२।।

अन्वयः— अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् येषाम् आपतताम् बलैः कुरुक्षेत्रं भूः चचाल ।।१२।।

अनुवाद— इसके अतिरिक्त आपके धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाइयों के पुत्रों के पक्ष में आये हुए राजाओं का भी वध भगवान् ने करवा दिया । उन राजाओं की सेना सहित कुरुक्षेत्र में जाते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

नृपान्घातयदित्यनुषङ्गः । कथंभूतान् । कुरुक्षेत्रमापततां गच्छतां येषां बलैः सैन्यैर्भूः सर्वापि चचाल चकम्पे ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी घातयत् पद का अन्वय है । उद्धवजी ने कहा कि आपके जो धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाई थे उनके पुत्र क्रमशः कौरव और पाण्डव थे । उन दोनों के पक्ष में जो राजा युद्ध करने के लिए अपनी सेना के साथ कुरुक्षेत्र में आये थे उनके सेना के साथ आते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी । उन सभी राजा और उनके सैनिकों को भगवान् ने विभिन्न माध्यमों से मरवा दिया ।।१२।।

स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ।
सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ।।१३।।

अन्वयः— कर्ण दुःशासन सौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषाम् । भग्नोरुम् सानुचरम् ऊर्व्यां शयानम् सुयोधनं पश्यन् सः न ननन्द ।।१३।।

अनुवाद— कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि की निन्दित सलाह के कारण जिसकी श्री और आयु दोनो समाप्त हो चुकी थी तथा भीम की गदा के प्रहार से जिसकी जांघ टूट चुकी थी इस प्रकार के अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़े हुए दुर्योधन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता नहीं हुयी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

स कृष्णः । हता श्रीरायुश्च यस्य । भग्नावूरू यस्य तमुर्व्यां शयानं पश्यन्नपि न ननन्द संतोषं न प्राप ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

कर्ण, दुशासन और शकुनि ये तीनों दुर्योधन को सदा निन्दित ही सलाह देते रहते थे । उसके फलस्वरूप दुर्योधन की श्री और आयु दोनों समाप्त हो गयी । भीम ने अपनी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघा को तोड़ दिया था और मरणासन्न दुर्योधन अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़ा हुआ था । इस स्थिति में भी पापी दुर्योधन को देखकर भगवान् को सन्तोष नहीं हुआ ।।१३।।

कियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ।
अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥

अन्वयः— यद् द्रोणभीष्मार्जुन भीममूलैः अष्टादशाक्षौहिणिकिः भुवः भारः कियान् क्षपितः मदंशै यदूनाम् दुर्विषहं बलं आस्ते ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने सोचा यदि द्रोण, भीष्म, अर्जुन तथा भीम के द्वारा यह अठारह अक्षौहिणी वाली सेना के संहार से पृथिवी के महान् भार का कितना अंश समाप्त हुआ ? अभी तो मेरे अंश रूप यादवों की दुःसह सेना बनी ही हुयी है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनभिनन्दनप्रकारमेवाह-कियानिति । द्रोणादिभिर्मूलैः कारणभूतैः । यदिति यः अष्टादशाक्षौहिणीयुक्तः । ह्रस्वत्वमार्षम्। क्षपितो य उरुर्भारो भुवः अयं कियान् । अत्यल्प इत्यर्थः । यस्मान्मदंशैः प्रद्युम्नादिभिर्हेतुभूतैर्दुर्विषहं बलमास्ते ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की अप्रसन्नता का प्रकार कियान् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । द्रोण भीष्म अर्जुन तथा भीम आदि के द्वारा जो अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ उससे पृथिवी के महान् भार का कितना अंश दूर हुआ? यह नगण्य सा है । **अक्षौहिणिकः** में हि में ह्रस्व आर्ष है । क्योंकि मेरे अंश से युक्त प्रद्युम्न आदि वाली यादवों की दुःसह सेना तो अभी बनी ही हुयी है ॥१४॥

मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ।
नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

अन्वयः— मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् एषां यदा विवादो भविता तदा इयानेव एषां वधोपायः अतः अन्यः न । मयि उद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

अनुवाद— मधुपान के कारण मद से लाल-लाल आंखें किए हुए इन सबों का जब परस्पर में ही कलह होगा तो यही इन सबों के विनाश का साधन हैं, उसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा साधन नहीं है । मेरे संकल्प करने पर इन सबों का स्वयं विनाश हो जायेगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

न चात्रान्य उपायः प्रभवति, किंतु मधुना य आमदः सर्वतो मदस्तेनाताम्रविलोचनानामेषां विवादो यदा भविष्यति तदेयानेवैषां वधोपायः अतोऽन्यो नास्ति । एकात्मानोऽपि मय्युद्यते सति स्वयमेव विवादेनान्तर्दधीरन्नित्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने सोचा कि इन यदुवंशियायों का तो एक ही बार में विनाश सम्भव है, जब कि ये सब मदिरापान करके परस्पर में कलह करने लगेंगे । इसके अतिरिक्त इन सबों के विनाश का कोई दूसरा साधन नहीं है । मैं एकात्मा हूँ अतएव जब मैं सङ्कल्प करूँगा तब ये स्वयं विनष्ट हो जायेंगे ॥१५॥

एवं संचिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् । नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

अन्वयः— एवं संचिन्त्य भगवान् धर्मराजं स्वराज्ये स्थाप्य साधूनां वर्त्म दर्शयन् सुहृदः नन्दयामास ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से विचार करके श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाकर अपने संबन्धियों को सत्पुरुषों का मार्ग बतलाकर उन सबों को आनंदित किया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एवं श्लोकद्वयेनोक्तं क्रमेण संचिन्त्य स्वराज्ये स्थापयित्वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से दो श्लोकों द्वारा विचार करके भगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाया और अपने सभी संबन्धियों को सत्पुरुषों के मार्ग को बतलाया ।।१५।।

उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना । स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ।।१७।।

अन्वयः— अभिमन्युना उत्तरायां पूरोः वंशः साधुधृतः स वै द्रौण्यस्त्र संछिन्नः पुनः भगवता धृतः ।।१७।।

अनुवाद— अभिमन्यु ने उत्तरा के गर्भ में महाराज पुरु के वंश का अच्छी तरह से आधान किया था किन्तु अश्वत्थामा के अस्त्र से वह नष्ट हो चुका था उसकी पुनः रक्षा श्रीभगवान् ने की ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

धृतो रक्षितः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अभिमन्यु ने अपनी पत्नी उत्तरा के गर्भ में महाराज पूरू के वंश का आधान किया था, किन्तु वह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से प्रायः विनष्ट सा हो गया था, किन्तु उसकी रक्षा श्रीभगवान् ने कर दी ।।१७।।

आयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः । सोऽपिक्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ।।१८।।

अन्वयः— विभुः धर्मसुतम् त्रिभिः अश्वमेधैः आयाजयत् सः कृष्णमनुव्रतः अनुजैः क्ष्मां रक्षन् रेमे ।।१८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञों को कराया । युधिष्ठिर भी भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगामी बनकर अपने छोटे भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अनुजैः सह ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से प्रेरित होकर महाराज युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों को किए वे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करते हुए अपने भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ।।१८।।

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः । कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ।।१९।।

अन्वयः— लोकवेदपथानुगः विश्वात्मा भगवान् अपि द्वार्वत्याम् सांख्यमतस्थितः सन् असक्तः कामान् सिषेवे ।।१९।।

अनुवाद— लोक तथा वेद की मर्यादा का पालन करने वाले सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् भी प्रकृति पुरुष विवेक से युक्त होकर द्वारका में रहते हुए अनासक्त रूप से अनेक प्रकार के भोगों को भोगे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

सांख्यं प्रकृतिपुरुषविवेकम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मूल में सांख्य शब्द से प्रकृत पुरुष विवेक को कहा गया है ।।१९।।

स्निग्धसस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया । चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥
इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् । रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥२१॥

अन्वयः— स्निग्धस्मितावलोकेन, पीयूषकल्पया वाचा अनवद्येन चरित्रेण श्रीनिकेतेनात्मना क्षणदया, दत्तस्त्रीक्षणसौहृदः इमम् अमूं च लोकम् सुतरां यदून् चैव रमयन् रेमे ॥२०-२१॥

अनुवाद— मधुरमुसकान संवलित अवलोकन अमृत के समान मधुरवाणी, निर्दोष चरित्र, समस्त शोभा, के आश्रय भूत अपने श्रीविग्रह के द्वारा लोक, परलोक तथा समस्त यदुवंशियों को आनन्दित करते हुए तथा रात्रि में अपनी प्रियतमाओं को क्षणिक आनन्द प्रदान करते हुए श्रीभगवान् स्वयं विहार किये तथा अपनी पत्नियों को भी आनन्द प्रदान किए ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

स्निग्धो यः स्मितसहितोऽवलोकस्तेन । पीयूषकल्पया सुधातुल्यया । पाठान्तरे सुधाप्रवाहरूपया । आत्मना देहेन । क्षणदया रात्र्या दत्तः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यासां स्त्रीणां तासु क्षणं सौहृदं यस्य सः ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

मधुर मुस्कान युक्त चितवन के द्वारा तथा अमृत के समान अत्यन्त मधुरवाणी के द्वारा जहाँ पर **पीयूषकुल्यया** पाठ है उसका अर्थ होगा अमृत के प्रवाह के समान वाणी के द्वारा । आत्मा शब्द से देह को कहा गया है । रात्रि में श्रीभगवान् जिन स्त्रियों को क्षणभर के लिए आनन्द प्रदान करते थे उन सबों के साथ श्रीभगवान् का क्षणिक सौहार्द था ॥२०-२१॥

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् । गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

अन्वयः— तस्य एवं गृहमेधेषु योगेषु बहून् संवत्सरगणान् रममाणस्य विरागः समजायत ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह से गार्हस्थ्य सम्बन्धी साधनों से बिहार करते हुए श्रीभगवान् के अनेक वर्ष बीत गये। उसके पश्चात् उनको गार्हस्थ्य से विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

गृहमेधेषु गृहधर्मेषु । योगेषु कामभोगोपायेषु । विराग औदासीन्यं जातमित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गृहमेध शब्द से गृहस्थ धर्म को कहा गया है तथा योग शब्द से कामोपभोग के साधनों को कहा गया है। अनेक वर्षों तक गार्हस्थ्य का पालन करते हुए श्रीभगवान् को विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् । को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥

अन्वयः— दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् योगेन योगेश्वरमनुव्रतः को विस्रम्भेत ॥२३॥

अनुवाद— ये भोग सामग्रियाँ परमात्मा के अधीन हैं और जीव भी परमेश्वर के ही अधीन है । अतएव भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने वाला कौन पुरुष उन भोग्य पदार्थों पर विश्वास कर सकता है । उन भोग सामग्रियों से जब भगवान् को भी विराग हो गया है तो मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यदा स्वाधीनेष्वपि भगवतो विरागस्तदा दैवाधीनो को विस्रम्भेत विश्वासं प्रीतिं वा कुर्यात् । योगेन चोद्योगेश्वरं श्रीकृष्णमनुव्रतः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भोग सामग्रियाँ तो श्रीभगवान् के अधीन हैं फिर भी उन सबों से श्रीभगवान् को विराग हो गया तो फिर परमात्माधीन रहने वाली सामग्रियों की प्राप्ति कब तक होगी इस विषय में तो वह व्यक्ति कभी भी विश्वास नहीं कर सकता है जो भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करता है ॥२३॥

पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः । कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥२४॥

अन्वयः— कदाचित् पूर्यां क्रीडद्भिः यदुभोजकुमारकैः कोपिताः तदा भगवन्मत कोविदाः मुनयः शेपुः ॥२४॥

अनुवाद— एक बार द्वारकापुरी में ही क्रीडा करने वाले यदुवंशी तथा भोजवंशी बालकों ने खेल-खेल में मुनियों को क्रुद्ध बना दिया । उस समय यह जानकर कि श्रीभगवान् को विनाश ही अभिमत है उन मुनियों ने शाप दे दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

शेपुः शापं ददुः । भगवतो मतेऽभिप्राये कोविदाः अभिज्ञाः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिन मुनियों को बालकों ने क्रुद्ध कर दिया वे मुनिगण जानते थे कि अब भगवान् को यदुवंश का विनाश ही अभिमत है इसीलिए उन मुनियों ने उन बालकों को विनाश का शाप दे दिया ॥२४॥

ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः । ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥२५॥

अन्वयः— ततः कतिपयैः मासैः वृष्णिभोजान्धकादयः देवैःविमोहिताः संहृष्टाः रथैः प्रभासं ययुः ॥२५॥

अनुवाद— उसके कुछ महीने बाद वृष्णि, भोज तथा अन्धक वंशी यादव भावीवश रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों के शाप दिए हुए कुछ महीने बीत जाने पर वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अन्धक वंशी यादव माया के द्वारा मोहित होकर रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ॥२५॥

तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा । तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥२६॥

अन्वयः— तत्र स्नात्वा तदम्भसा पितृन् देवान् ऋषींश्चैव तर्पयित्त्वा अथ विप्रेभ्यः बहुगुणाः गावः ददुः ॥२६॥

अनुवाद— वहाँ पर स्नान करके वहाँ के जल से पितरों देवताओं और ऋषियों का तर्पण करके ब्राह्मणों को अत्यधिक गुण सम्पन्न गौओं का दान दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

वयः शीलादिबहुगुणोपेता या गावस्ताः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उन लोगों ने प्रभास क्षेत्र में जाकर वहाँ के जल में स्नान किया, तदनतर देवताओं ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को उत्तम कोटि की गायों का दान दिया ॥२६॥

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान्। यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥
अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम्। गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— हिरण्यं, रजतं, शय्यां, वासांसि, अजिनकम्बलान्, यानं, रथान् इभान् कन्याः वृत्तिकरीं धराम् अपि, भगवदर्पणम् ऊरूरसं अन्नं दत्वा गोविप्रार्थासवः शूराः भुवि मूर्धभिः प्रणेमुः ।।२७-२८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उन लोगों ने ब्राह्मणों को सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, सवारी, रथों हाथियों जिससे जीविका चल सके ऐसी भूमि तथा श्रीभगवान् को निवेदित अनेक प्रकार के सरस अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के लिए प्राणधारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर शिर टेक कर प्रणाम किया ।।२७-२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धव संवाद के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कन्याश्च । वृत्तिकरीं जीविकापर्याप्ताम् । भगवदर्पणं यथा भवति । गोविप्रार्थां असवो येषाम् ।।२७-२८।।

इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

स्नान तर्पण और गोदान करके उन वीरो नें ब्राह्मणों को निम्नांकित वस्तुओं का भी दान दिया । सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्रों, मृगचर्मों, कम्बलों, सवारियों, रथों, हाथियों, कन्याओं तथा जीविका के लिए पर्याप्त भूमि तथा श्रीभगवान् को अर्पित अनेक प्रकार के रसों से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के ही लिए प्राणों को धारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर माथा टेककर ब्राह्मणों को प्रणाम किया ।।२७-२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

उद्धवजी से आज्ञा लेकर विदुरजी का मैत्रेय महर्षि के पास जाना

उद्धव उवाच

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् । तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अन्वयः— अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा वारुणीं च पीत्वा तया विभ्रंशित ज्ञाना दुरुक्तैः मर्म पस्पृशुः ।।१।।

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर इन सबों ने भोजन किया और वारुणी मदिरा पी । उसके कारण उन सबों का ज्ञान नष्ट हो गया और अपने दुर्वचनों के द्वारा वे एक दूसरे के हृदय को कष्ट देने लगे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे बन्धुनिधनं श्रुत्वात्मज्ञानलब्धये । उद्धवस्योपदेशेन क्षत्ता मैत्रेयमागमत् ॥१॥ तैर्ब्राह्मणैरनुज्ञाताः । वारुणीं पैष्टीं मदिराम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों के विनाश का समाचार सुनकर विदुरजी उद्धवजी के उपदेशानुसार आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए मैत्रेय महर्षि के पास गये ॥१॥

उन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके उन यादव वीरों ने भोजन किया और उसके पश्चात् पैष्टी मदिरा को पिया। मदिरा पीने के कारण उन लोगों को ज्ञान नष्ट हो गया और वे अपने दुर्वचनों से एक दूसरे के हृदय को कष्ट पहुँचाने लगे ॥१॥

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् । निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥२॥

अन्वयः— मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् तेषां निम्लोचति रवौ वेणूनामिव मर्दनम् आसीत् ॥२॥

अनुवाद— मदिरापानजन्य दोष के कारण उन सबों की बुद्धि विनष्ट हो गयी थी और सूर्यास्त होते-होते उनमें उसी प्रकार कलह होने लगा जैसे परस्पर की रगड़ से बाँसों में आग लग जाती हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वारुण्येव मैरेयं तस्य दोषेण । रवौ निम्लोचत्यस्तं गच्छति सति । मर्दनं कदनम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वारुणी मदिरा को ही मैरेय कहते हैं । उससे उत्पन्न दोष के कारण सूर्यास्त के समय में एक दूसरे को मारने काटने लगे ॥२॥

भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः । सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥३॥

अन्वयः— स भगवान् स्वात्ममायायाः तां गतिमवलोक्य सरस्वतीम् उपस्पृश्य वृक्षमूलम् उपाविशत् ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपनी माया की अद्भुत गति को देखकर सरस्वती नदी के जल से आचमन करके वृक्ष की जड़ में जाकर बैठ गये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

उपस्पृश्य सरस्वत्यामाचम्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने अपनी माया की विचित्र लीला को देखा और वे सरस्वती नदी के जल से आचमन करके जाकर वृक्ष के नीचे उसकी जड़ में जाकर बैठ गये ॥३॥

अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह । बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥

अन्वयः— स्वकुलं संजिहीर्षुणा प्रपन्नार्तिहरेण भगवता अहं चोक्तः त्वं बदरीं प्रयाहि ॥४॥

अनुवाद— अपने वंश का विनाश करने के इच्छुक तथा शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने मुझसे कहा कि तुम बदरिकाश्रम चले जाओ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अहं चोक्तः पूर्वमेव द्वारकायाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पहले द्वारका में ही भगवान् ने मुझसे कह दिया था कि तुम बदरिकाश्रम में चले जाओ ॥४॥

अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम । पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥५॥

अन्वयः— अथापि भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः अहम् हे अरीन्दम ! तदभिप्रेतं जानन् पृष्ठतः अन्वगमम् ॥५॥

अनुवाद— फिर भी अपने स्वामी के विप्रयोग को वर्दास्त करने में असमर्थ होने के कारण मैं उनके अभिप्राय को जानता हुआ भी उनके पीछे-पीछे गया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तदभिप्रेतं कुलसंहारादिकम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि मैं यह जानता था कि भगवान् अपने वंश का संहार करना चाहते हैं । फिर भी मैं उनके पीछे-पीछे प्रभासक्षेत्र गया ॥५॥

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् । श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥६॥

अन्वयः— कृतकेतम् अकेतनम् श्रीनिकेतम् दयितं पतिम् विचिन्वन् सरस्वत्याम् एकम् आसीनम् अद्राक्षम् ॥६॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय तथा जिनका कोई भी आश्रय नहीं है, सम्पूर्ण शोभाओं के एकमात्र आश्रय अपने प्रिय प्रभु को खोजते हुए मैंने उनको सरस्वती नदी के किनारे अकेले बैठे हुए देखा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कृतकेतं कृतावासम् । अकेतनमनाश्रयम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् वृक्ष मूल को ही अपना आश्रय बनाये थे तथा उनका कोई भी आश्रय नहीं था । ऐसे अपने प्रियतम प्रभु को मैंने सरस्वती नदी के तट पर अकेले बैठे हुए देखा ॥६॥

श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥७॥
वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरूहम् । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥८॥

अन्वयः— श्यामावदातं, विरजं, प्रशान्तारुणलोचनम्, चतुर्भिः दोर्भिः विदितम्, पीतकौशाम्बरेण च वाम ऊरौ, दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् अधिश्रित्य, अपाश्रितार्भकाश्वत्थं, अकृशम् व्यक्तपिप्पलम् ॥७-८॥

अनुवाद— दिव्य श्याम वर्ण से युक्त, जिसमें रजोगुण का लेश भी न हो ऐसे शुद्ध सत्वमय, चार भुजाओं से युक्त, पीला पीताम्बर धारण किए हुए, अपने दाहिने चरण कमल को बायीं जंघे पर रखकर, छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लेकर बैठे हुए, आनन्दपूर्ण तथा विषय सुख का परित्याग किए हुए श्रीभगवान् को मैंने देखा ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

विरजं विरजसं शुद्धसत्त्वमयम् । विदितं लक्षितम् । कौशं कौशेयम् । अधिश्रित्योपरि स्थापयित्वा । अपाश्रितः पृष्ठतोऽवष्टब्धोऽर्भको बालः कोमलोऽश्वत्थो येन तम् । त्यक्तं पिप्पलं विषयसुखं येन तम् । तथाप्यकृशमानन्दपूर्णम् ॥७-८॥

भाव प्रकाशिका

विरजं पद का अर्थ रजोगुण रहित शुद्ध सत्वमय है । विदित का अर्थ है लक्षित अर्थात् दिव्य दिखायी देने

वाले पिताम्बरधारी, बायीं जंघा पर दाहिने चरण कमल को रखकर तथा छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लिए हुए, **त्यक्तपिप्पलम्** पद का अर्थ है, विषय सुख से विरक्त और **अकृशम्** पद का अर्थ है आनन्दपूर्ण ॥७-८॥

तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखा । लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥

अन्वयः— तस्मिन् महाभागवतः द्वैपायनसुहृत् सखा, सिद्धः लोकान् अनुचरन् यदृच्छया आससाद ॥९॥

अनुवाद— उसी स्थान पर महाभागवत तथा महर्षि वादरायण के प्रिय मित्र तथा सिद्ध मैत्रेय महर्षि लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए आ गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

द्वैपायनः सुहृत्सखा च यस्य सः स्वगुरुपुत्रत्वात्, पराशरशिष्यो मैत्रेय इत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस समय लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले पराशर महर्षि के शिष्य होने के कारण महर्षि बादरायण के प्रिय मित्र महर्षि मैत्रेय वहाँ आ गये ॥९॥

तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य ।
आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥१०॥

अन्वयः— तस्यानुरक्तस्य मुनेः प्रमोदभावानतकन्धरस्य, आशृण्वतः अनुरागहासमीक्षया माम् विश्रमयन् उवाच ॥१०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् में अनुराग से युक्त तथा अनन्द एवं भक्ति की भावना से झुकी हुयी कन्धा वाले महर्षि मैत्रेय के सामने ही प्रेम तथा मुस्कान युक्त चितवन से मुझको आनन्दित करते हुए श्रीभगवान् कहे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रमोदेन भावेन चानता कन्धरा यस्य । पाठान्तरे प्रमोदस्य भारेण । अनुरागेण सह हासो यस्यां तया समीक्षया विश्रमयन्विगतश्रमं कुर्वन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

आनन्द तथा भक्ति की भावना से जिनकी गर्दन झुकी हुयी थी ऐसे मैत्रेय महर्षि के सामने; जहाँ प्रमोदभारेण पाठ है वहाँ अर्थ होगा आनन्द के भार से झुकी हुयी गर्दन वाले मैत्रेय महर्षि के सामने ही प्रेम तथा हँसी से युक्त होकर मुझको देखते हुए श्रीभगवान् ने मुझको आनन्दित करते हुए कहा ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ।
सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥११॥

अन्वयः— हे वसो ! अहं ते मनसि यद् इप्सितं तत् ददामि । तत् अन्यैः दुखापम् हे वसो पुरा विश्वसृजां वसूनां सत्रे मत्सिद्धिकामेन त्वया इष्टः ॥११॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे वसो ! तुम्हारे मन में क्या है, उसे मैं जानता हूँ । अतएव मैं तुमको वह साधन प्रदान करता हूँ जो दूसरों के लिए दुर्लभ है । विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापतियों और वसुओं के यज्ञ मे तुमने मुझको ही प्राप्त करने के लिए मेरी आराधना की थी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हे उद्धव, ते मनसीप्सितमहमन्तः स्थितो वेद वेद्मि । दाने हेतुः-विश्वसृजां वसूनां च मिलितानां सत्रे । हे वसो इति पुरा पूर्वजन्मनि त्वं वसुरभूस्तदा मत्प्राप्तिकामेन त्वयाऽहमिष्टः, अतस्तत्साधनं ददामि दास्यामि । अन्यैर्मत्पराङ्मुखैर्दुष्प्रापम्।।११।।

भाव प्रकाशिका

हे उद्धव ! तुम्हारे मन में क्या है ? इसे मैं तुम्हारे भीतर रहकर जानता हूँ । उसे मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ । उसे प्रदान करने का कारण बतलाते हुए भगवान् ने कहा पूर्वजन्म में तुम वसु थे और विश्व की सृष्टि करने वाले सभी प्रजापतियों और वसुगण जो यज्ञ कर रहे थे उस यज्ञ में तुमने मेरी आराधना मुझे प्राप्त करने के ही लिए की थी । अतएव मैं तुम्हें उस साधन को दूँगा । जो लोग मुझसे विपरीत रहते हैं उन लोगों के लिए वह दुष्प्राप्य है ।।११।।

स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ।
यन्मां नृलोकान्‌रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ।।१२।।

अन्वयः— हे साधो ! एष भवानाम् चरमः, यद् मदनुग्रहः आसादितः यत् रहः लोकान् उत्सृजन्तं माम् दिष्ट्या विशदानुवृत्त्या ददृश्वान् ।।१२।।

अनुवाद— हे साधु ! स्वभाव वाले उद्धव ! तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । इसीलिए तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया है । मैं एकान्त में इस जीवलोक का परित्याग कर रहा हूँ, किन्तु ऐकान्तिक भक्ति के कारण तुमने यहाँ पर भी सौभग्यवशात् मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य भाग्यमभिनन्दति । स एष भवो जन्म ते भवानां मध्ये चरमः । यद्यस्मिन्मदनुग्रहः आसादितो लब्धः । यत्पुनर्मां रह एकान्ते विशदानुवृत्त्या एकान्तभक्त्या ददृश्वान् दृष्टवानसि एतद्दिष्ट्या । भद्रं जातमित्यर्थः । नृलोकान् नृशब्देन जीवास्तेषां लोकानुत्सृजन्तं वैकुण्ठं गच्छन्तमित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के भाग्य की सराहना करते हुए भगवान् ने कहा— तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । उसी के कारण तुमने मेरी कृपा प्राप्त की है । अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा तुमने मेरा एकान्त में दर्शन प्राप्त किया है । यह तुम्हारे सौभाग्य की बात है । इस समय मैं मनुष्य लोक को छोड़कर वैकुण्ठ लोक जा रहा हूँ ।।१२।।

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ।
ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ।।१३।।

अन्वयः— पुरा आदि सर्गे मम नाभ्ये पद्मे निषण्णाय अजाय मया मन्महिमावभासं परं ज्ञानम् प्रोक्तम् यत्सूरयः भागवतं वदन्ति ।।१४।।

अनुवाद— पहले के आदि सर्ग में (पाद्मकल्प) में मेरे नाभिकमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को मेरी महिमा को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को मैंने ब्रह्माजी को दिया था और ज्ञानी पुरुष जिसे भागवत कहते हैं, उसे ही मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ददामीति यदुक्तं तदेव निर्दिशति । पुरा पूर्वस्मिन्पाद्मे कल्पे । आदिसर्गे सर्गोपक्रमे । मम महिमा लीलाऽवभास्यते येन तत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने जिसे देने के लिए कहा था उसे ही उद्धवजी को बतलाते हैं पहले के पद्मकल्प को ही आदि सर्ग कहा गया है । उस कल्प में मैंने ब्रह्माजी को भागवत का उपदेश दिया था । उससे मेरी महिमा का प्रकाश होता है उसे ही मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥१३॥

इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।
स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥१४॥

अन्वयः— परमस्य पुंसः प्रतिक्षणानुग्रहभाजनः अहम् इत्यादृतोक्तः स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरः शुचः मुञ्चन् तम् प्राञ्जलिः आबभाषे ॥१४॥

अनुवाद— उन परम पुरुष श्रीभगवान् के प्रत्येक क्षण अनुग्रह का पात्र बना हुआ मैं श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मेरे शरीर में स्नेहातिरेक के कारण रोमाञ्च हो गया, आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगी और मेरी वाणी गद्गद हो गयी मैंने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवमादृतश्चासावुक्तश्चाहम् । प्रतीक्षणं कृपावलोक एवानुग्रहस्तस्य भाजनः पात्रभूतः । पाठान्तरे प्रतिक्षणमनुग्रहस्य पात्रमिति । शुचोऽश्रूणि मुञ्चन्नाबभाषे उक्तवानस्मि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि इस प्रकार से श्रीभगवान् ने मेरा आदर करके मुझे कहा । मै तो प्रतिक्षण श्रीभगवान् की कृपा का पात्र बना हुआ था । श्रीभगवान् का देखना ही अनुग्रह है । भगवान् मुझे उस समय देख रहे थे । मेरी आँखों से आँसू निकलने लगी और मैंने भगवान् से हाथ जोड़कर कहा ॥१४॥

कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ।
तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥

अन्वयः— हे ईश पादजसरोजभाजां इह चतुर्षु अपि अर्थेषु को न दुर्लभः ? तथापि हे भूमन् ! भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः अहं न प्रवृणोमि ॥१५॥

अनुवाद— जगत् के स्वामिन् अपके चरण कमलों की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए इस संसार में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों में से कोई भी पुरुषार्थ दुर्लभ नहीं है, फिर भी मैं उन सबों को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं तो केवल आपके चरण कमलों की सेवा करना चाहता हूँ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नहि स्वाज्ञाननिवृत्तिमात्रकामोऽहं, किंतु त्वन्निषेवणोत्सुकस्त्वयि चाघटमानाचरणं दृष्ट्वा मे मोहो भवति, अतस्त्वं तत्त्वज्ञानं देहीति प्रार्थयितुमाह-कोन्विति । चतुर्षु धर्मादिषु तथापि हे भूमन्, भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकोऽहम् तान्न प्रवृणोमि ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा भगवन् मैं केवल अपने अज्ञान की ही निवृत्ति नहीं चाहता हूँ अपितु मैं आपके चरण कमलों की सेवा भी करना चाहता हूँ । आपके अद्भुत आचरण को देखकर मुझको मोह हो जाता है । अतएव आप मुझको तत्त्वज्ञान का उपदेश करें । इस तरह से प्रार्थना करने के लिए उन्होंने कहा आपके चरण कमलो की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में से कोई भी दुर्लभ नहीं होता है । हे

प्रभो ! मैं तो आपके चरण कमलों की सेवा करने के लिए उत्सुक हूँ अतएव उनमें से किसी भी पुरुषार्थ को मैं नहीं चाहता हूँ ॥१५॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥१६॥

अन्वयः— अनीहस्य ते कर्माणि, अभवस्य ते भवः, कालात्मनः अथ अरिभयात् पलायनम्, दुर्गाश्रयः स्वात्मन् रतेः यत् प्रमदायुताश्रयः इह विदाम् धीः खिद्यति ॥१६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप निःस्पृह होकर भी कर्मों को करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, स्वयं काल स्वरूप होकर भी शत्रु के भय से पलायन कर जाते हैं और जाकर अपने द्वारका के किले में छिप जाते हैं, आप स्वात्माराम हैं फिर गृहस्थाश्रम का निर्वाह करने के लिए हजारों स्त्रियों के साथ रमण करते है, इस तरह के आपके अद्भुत चरित्र को देखकर ज्ञानियों की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अघटमानाचरणं दर्शयति । कर्माण्यनीहस्य निःस्पृहस्य निष्क्रियस्य वा । अभवस्याजन्मनः भवो जन्म । कालात्मनस्तवारिभयाद्दुर्गाश्रयः पलायनं च स्वात्मनि रतिर्यस्य तस्य वह्वीभिः स्त्रीभिर्गृहस्थाश्रम इति यदिहास्मिन्विषयो विदुषामपि धीः संशयेन खिद्यति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अद्भुत चरित्रों का ही वर्णन इस श्लोक में किया जा रहा है । उद्धवजी ने कहा भगवन् आप निःस्पृह अथवा निष्क्रिय हैं फिर भी आप कर्मों को करते रहते है, आप अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं । आप स्वंय कालस्वरूप हैं फिर भी आप शत्रु के भय से युद्ध से पलायन कर जाते हैं । और दुर्ग में जाकर छिप जाते हैं । आप स्वात्माराम होकर भी गृहस्थाश्रम का पालन करने के लिए अनेक स्त्रियों के साथ रमण करते है । आपके इस तरह के आचरण को देखकर ज्ञानी पुरुषों की बुद्धि भ्रमित हो जाती हैं ॥१६॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ।
पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! अकुण्ठितखण्डसदात्मबोधः त्वम् यत् मन्त्रेषु मां वा उपहूय मुग्ध इव अप्रमत्तः पृच्छेः हे देव ! तत् नः मनः मोहयतीव ॥१७॥

अनुवाद— हे देव आपका स्वरूपज्ञान अखण्ड निर्बाध और संशय इत्यादि से रहित है, फिर भी आप सलाह करने के लिए मुझको बुलाकर भोले मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी से मुझसे पूछते थे । आपका वह आचरण मेरे मन को मोहित सा कर देता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच मन्त्रेषु च प्रस्तुतेषु च सत्सु मामाहूय वै अहो पृच्छेरपृच्छः । अकुण्ठितः कालादिनाऽखण्डः संततः सदात्मा संशयादिरहितो बोधो विद्याशक्तिर्यस्य । मुग्धवदज्ञवत् । अप्रमत्तोऽवहितः सन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा प्रभो आपका ज्ञान सदा निर्बाध, परिपूर्ण तथा संशय इत्यादि से रहित है । फिर भी आपको जब किसी विषय में मुझसे सलाह करनी होती थी तो आप मुझको बुलाकर सामान्य मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी पूर्वक मुझसे पूछते थे । आपकी यह लीला मेरे मन को भ्रम में डाल देती है ॥१७॥

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ।
अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद्वृजिनं तरेम ॥१८॥

अन्वयः— हे भर्तः ! स्वात्मरहः प्रकाशं समग्रं परं, ज्ञानं यत् भगवान् कस्मै प्रोवाच अपि क्षमं नो ग्रहणाय तर्हि अञ्जसा वद यद वयं वृजिनं तरेम ॥१८॥

अनुवाद— हे स्वामिन् आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया है वह यदि हमारे भी समझने योग्य हो तो मुझे भी उसे बतलाइये जिससे मैं इस संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्वात्मनस्तव रहो रहस्यं तत्त्वं तस्य प्रकाशकम् । कस्मै ब्रह्मणे । सर्वनामत्वमार्षम् । नोऽस्माकं ग्रहणायापि क्षमं योग्यं तर्हि वद । भर्तः स्वामिन् यद्यतो वृजिनं संसारदुःखमञ्जसाऽनायासेन तरिष्यामः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया उसको यदि मैं भी समझने योग्य होऊँ तो आप मुझे भी बतलायें जिससे कि मैं भी इस दुःखमय संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः । आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

अन्वयः— इत्यावेदितहार्दाय, मह्यम् स परः भगवान् अरविन्दाक्षः आत्मनः परमां स्थिति आदिदेश ॥१९॥

अनुवाद— इस तरह से अपने हार्दिक अभिप्राय को निवेदित करने पर परम पुरुष भगवान् कमल नयन ने अपनी आत्मा की परम स्थिति का मुझे उपदेश दिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

आवेदितो हार्दो हृदिस्थितोऽभिप्रायो येन तस्मै ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपने हार्दिक अभिप्राय को प्रकाशित करने वाले मुझको श्रीभगवान् ने अपने स्वरूप की परम स्थिति का उपदेश दिया ॥१९॥

स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ।
प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥

अन्वयः— स अहम् एवमाराधितपादतीर्थात् अधीत तत्त्वात्मविबोधमार्गः पादौ प्रणम्य देवं परिवृत्य विरहातुरात्मा, इह आगतः ॥२०॥

अनुवाद— जिनके चरणों की आराधना मैंने की है, ऐसे श्रीभगवान् ही तीर्थपाद अर्थात् मेरे गुरु हैं, उनसे उन आत्मतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करके, उनके चरणों की बन्दना करके तथा श्रीभगवान् की परिक्रमा करके विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

आराधितपादो भगवान्स एव तीर्थं गुरुस्तस्मादधीतोऽधिगतस्तत्त्वात्मविबोधस्य परमार्थात्मज्ञानस्य मार्गो येन सोऽहम्। देवं परिवृत्य प्रदक्षिणीकृत्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् के चरणों की मैंने आराधना की है, वे ही भगवान् मेरे गुरु हैं, उनसे परमार्थ आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके मैंने श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की। उसके पश्चात् विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभोः । गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥

अन्वयः— सोऽहं प्रभोः दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः तस्य दयितं बदर्याश्रममण्डलं गमिष्ये ॥२१॥

अनुवाद— वही मैं श्रीभगवान् के दर्शन से आनन्दित किन्तु इस समय इनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम नामक स्थान में जाऊँगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्य दर्शनेनाह्लादो वियोगेनार्तिश्च ताभ्यां युतो बदर्याश्रमस्थानं गमिष्यामि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि श्रीभगवान् का दर्शन हो जाने के कारण परमानन्द सम्पन्न तथा उनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी मैं श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम में जाऊँगा ॥२१॥

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः । मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥२२॥

अन्वयः— यत्र नारायणो देवः भगवान् नरश्च लोकभावनौ मृदुतीव्रं दीर्घं तपः तेपाते ॥२२॥

अनुवाद— जिस बदरिकाश्रम में भगवान् नर एवं नारायण लोगों पर अनुग्रह करने के लिए मृदु एवं तीव्र दीर्घकाल से तपस्या कर रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मृदु परोपद्रवशून्यम् । तीव्रं दुश्चरम् । दीर्घमाकल्पान्तम् । तेपाते तपश्चरत इत्यर्थः । लोकभावनौ लोकानुग्रहकारकौ ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने बतलाया कि उस बदरिकाश्रम में भगवान् नारायण जिससे कि किसी को कष्ट न हो इस प्रकार का दुश्चर तथा कल्प पर्यन्त चलने वाली तपस्या लोगों पर अनुग्रह करने के लिए कर रहे हैं ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् । ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥२३॥

अन्वयः— बुधः क्षत्ता इति उद्धवाद् सुहृदाम् दुःसहं वधम् उपाकर्ण्य उत्पतितं शोकम् ज्ञानेन अशमयत् ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— ज्ञानी विदुरजी इस प्रकार से अपने सुहृदों के असाध्य वध का समाचार सुनकर उससे उत्पन्न शोक को उन्होंने ज्ञान के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानेन विवेकेन ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मूल के ज्ञान शब्द का अर्थ है विवेक। विदुरजी ने उद्धवजी से अपने प्रिय बान्धवों के वध का समाचार सुना उसको सुनकर उनको शोक तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको उन्होंने विवेक के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

सतं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः । विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥

अन्वयः— सः कौरवर्षभः व्रजन्तं तं महाभागवतम् विश्रम्भात् इदं अभ्यधत्त ॥२४॥

अनुवाद— कौरवो में श्रेष्ठ विदुरजी ने जाते हुए भगवान् के मुख्य किंकर महाभागवत उद्धवजी को देखकर उनसे विश्वासपूर्वक पूछा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विश्रम्भाद्विश्वासात् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मूल के विश्रम्भात् पद का अर्थ विश्वास पूर्वक है । उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य किंकर तथा महाभागवत थे । उनसे विदुरजी ने पूछा ॥२४॥

विदुर उवाच

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ।
वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥

अन्वयः— योगेश्वरः ईश्वरः ते यत् स्वात्मरहः प्रकाशं यत् परं ज्ञानं आह भवान् नः वक्तुम् अर्हति यद्धि विष्णोः भृत्याः स्वभृत्यार्थ कृतश्चरन्ति ॥२५॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको अपने स्वरूप तथा रहस्यों को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को बतलाया उसे आप मुझे भी बतलायें क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त तो अपने सेवकों के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही पृथिवी पर संचरण करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यप्रयोजनसाधकाः सन्तश्चरन्ति । न हि कृतार्थानामन्यत्कृत्यमस्तीत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के भक्त तो अपने सेवकों के प्रयोजनों की ही सिद्धि के लिए इस लोक में संचरण करते हैं इसके अतिरिक्त उनका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता हैं । अतएव आप मुझे उस ज्ञान को बतलाएँ जिस ज्ञान को भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको बतलाया था ॥२५॥

उद्धव उवाच

ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्ति मे । साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥

अन्वयः— ननु ते तत्त्वसंराध्यः कौषारवः ऋषिः । मर्त्यलोकं जिहासता भगवता मे अन्ति साक्षात् अदिष्टः ॥२६॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— आपको उस तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए महर्षि मैत्रेय की अराधना करनी चाहिए, क्योंकि इस मर्त्यलोक को त्यागने के इच्छुक श्रीभगवान् ने मेरे सामने ही उनको आपको उपदेश कर देने के लिए आदेश दिया था ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वाय संराध्य इति । अयं भावः- भगवतैव स्मरणमात्रेण तवापि तत्त्वमुपदिष्टप्रायम् । अथ केवलमसंभावनादिनिवृत्तये ज्ञानी कश्चिदाराध्यः । स च तवाराध्यो मैत्रेयो न त्वहम् । ममान्तिक एव त्वदुपदेशे तस्यादिष्टत्वादिति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तत्त्वसंराध्यः का अर्थ है तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए सेवनीय। कहने का अभिप्राय है कि चूकि भगवान् ने भी आपका स्मरण किया इतने ही मात्र से आपको भी तत्त्वज्ञान का उपदेश उन्होंने कर ही दिया फिर भी उस ज्ञान में असंभावना इत्यादि दोषों को दूर करने के लिए किसी ज्ञानी की आराधना करनी चाहिए। उसके लिए आपको मैत्रेय महर्षि की ही सेवा करनी चाहिए मेरी नहीं, क्योंकि मेरे सामने ही भगवान् ने आपको उस ज्ञान को प्रदान कर देने के लिए उनको आदेश दिया था ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इति सहविदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ।
क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥२७॥

अन्वयः— इति विदुरेण सह विश्वमूर्तेः गुणैककथया सुधया प्लावितोरुतापः औपगविः यमस्वसुः पुलिने तां निशाम् क्षणमिव समुषित ततः अगात् ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से विदुरजी के साथ विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की ही कथा रूपी सुधा के द्वारा उद्धवजी के हृदय का महान् संताप समाप्त हो। यमुनाजी के तट पर उनकी वह रात एकक्षण के समान बीत गयी और प्रातः काल वे वहाँ से चल दिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्लावितोऽपनीत उरुस्तापो यस्य। यमस्वसुर्यमुनायाः पुलिने तीरे तां निशां क्षणमिव समुषितः। औपगविः उद्धवः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उपगवस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में व्युत्पनः औपगविः पद का अर्थ उद्धव है क्योंकि वे उपगव के पुत्र थे। विदुरजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण से संबन्धित चर्चा करते हुए उद्धवजी के हृदय का संताप समाप्त हो गया और वे उस रात्रि को यमुना के तट पर सोए हुए एक क्षण के समान बिता दिए। प्रातः काल होते ही उद्धवजी वहाँ से चल दिए ॥२७॥

राजोवाच

निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ।
स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥२८॥

अन्वयः— वृषिणभोजेषु निधनमुपगतेषु अधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः स तु उद्धवः कथमवशिष्टः यत् त्र्यधीशः हरि अपि आकृतिं तत्यज ॥२८॥

राजा परीक्षित के कहा

अनुवाद— वृष्णिवंशियों और भोज वंशियों का निधन हो जाने पर तथा सभी रथियों तथा यूथिपतियों के नष्ट हो जाने पर भी उन सबों में मुख्य उद्धवजी कैसे बचे रहे ? जबकि ब्रह्मा आदि के भी स्वामी श्रीहरि को भी अपना मानव शरीर त्यागना पड़ा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापेन निधनं प्राप्तेषु यद्यस्मात्त्रयाणां ब्रह्मादीनामीशो हरिरप्याकृतिं मनुष्याकारं त्यक्तवान् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के शाप के कारण जब सभी वृष्णिवंशी और भोजवंशी रथी, यूथपति इत्यादि का निधन हो गया, यहाँ तक कि श्रीभगवान् भी अपने मानव शरीर का परित्याग कर दिए, उस समय यूथपतियों में श्रेष्ठ उद्धवजी कैसे बचे रहे ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः । संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिन्तयत् ॥२९॥

अन्वयः— ब्रह्मशापापदेशेन कालेन अमोघवाञ्छितः स्वकुलं संहृत्य देहम् त्यक्ष्यन् नून अचिन्तयत् ॥२९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जिन श्रीहरि की इच्छा अमोघ है, वे ब्राह्मणों के शाप के बहाने अपने वंश का संहार करके अपने शरीर का त्याग करते समय सोचे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापः अपदेशो मिषं यस्य तेन कालेन स्वशक्तिरूपेण अमोघं वाञ्छितं यस्य । न ह्यत्र शापः प्रभुः, किंतु भगवदिच्छैवेत्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का शाप तो एक बहाना था काल रूपी अपनी शक्ति के द्वारा जिन श्रीभगवान् की इच्छा अमोघ है, अर्थात् कभी भी व्यर्थ नहीं होती है । उसी के द्वारा यदुवंशियों का नाश हुआ । उनके नाश में शाप की प्रभुता नहीं थी अपितु वैसी श्रीहरि की इच्छा ही थी । उन श्रीभगवान् ने अपने शरीर का त्याग करते समय सोचा ॥२९॥

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥

अन्वयः— मयि अस्माल्लोकात् उपरते मदाश्रयं ज्ञानं सम्प्रति आत्मतां वरः उद्धव एव अर्हति ॥३०॥

अनुवाद— इस लोक से मेरे चले जाने पर मेरे ज्ञान को तो इस समय आत्मज्ञों में श्रेष्ठ उद्धवजी ही धारण करने योग्य हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मय्युपरते सति ज्ञानमर्हति ज्ञानयोग्यो भवति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस लोक से परमधाम गमन कर जाने के पश्चात् केवल उद्धव ही ऐसे आत्मज्ञ हैं जो मेरे ज्ञान को धारण कर सकने के योग्य हैं ॥३०॥

नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥

अन्वयः— उद्धवः अणु अपि मन्न्यूनः न यत् प्रभुः गुणैः अर्दितः न अतएव मद्वयुनम् लोकं ग्राहयन् इह तिष्ठतु ॥३१॥

अनुवाद— उद्धव मुझसे अणुमात्र भी न्यून नहीं है । वे आत्मज्ञ भी है । वे विषयों से कभी भी विचलित नहीं हुए । अतएव वे मेरे ज्ञान को संसार को प्रदान करते हुए यहीं रहें ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मत्तः सकाशादीषदपि न्यूनो न भवति । यद्यस्माद्गुणैर्विषयैर्न क्षोभितः । मद्वयुनं ज्ञानं लोकस्योपदिशन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने सोचा कि उद्धव मुझसे थोड़ा सा भी कम नहीं हैं। उन्होंने अपने मन को वश में कर रखा है विषय उनको विचलित नहीं कर पाये हैं। अतएव वे मेरे ज्ञान का लोगों को उपदेश करने के लिए यहीं रहें ॥३१॥

एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना । बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥

अन्वयः— एवं शब्दयोनिना त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः वदर्याश्रममासाद्य समाधिना हरिमीजे ॥३२॥

अनुवाद— इस तरह वेदों के मूल भूत त्रैलोक्याधिपति श्रीहरि के द्वारा उपदिष्ट होकर उद्धवजी बदरिकाश्रम में जाकर समाधि योग के द्वारा श्रीहरि की पूजा करने लगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एवमनेनाभिप्रायेण शब्दयोनिना वेदकर्त्रा ईजे पूजयामास ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् ने उनको अपने ज्ञान का उपदेश दिया और उद्धवजी भी बदरिकाश्रम में जाकर समाधियोग के द्वारा श्रीहरि की आराधना करने लगे ॥३२॥

विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः । क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥
देहन्यासं च तस्यैव धीराणां धैर्यवर्धनम् । अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥
आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् । ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥

अन्वयः— क्रीडयोपात्त देहस्य परमात्मनः कृष्णस्य श्लाघितानि कर्माणि उद्धवात् श्रुत्वा तस्य एव देहन्यासं धीराणां धैर्यवर्धनम् अन्येषां विक्लवात्मनाम् पशूनां दुष्करतरम् । हे कुरुश्रेष्ठ ! आत्मानं च कृष्णेन मनसेक्षितम् भगवते गते ध्यायन् प्रेमविह्वलः रुरोद ॥३३-३५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर को धारण किया था। उनके प्रशंसनीय कर्मों को उद्धवजी के मुख से सुनकर तथा यह सुनकर कि भगवान् ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर का त्याग किया। यह सुनकर जो धैर्य सम्पन्न पुरुष हैं। उनका धैर्य बढ़ता है, किन्तु जो लोग पशु के समान चञ्चल चित्त वाले हैं उनके लिए यह अत्यधिक कठिन हैं। विदुरजी ने यह जब सुना कि अन्तिम समय में श्रीभगवान् ने विदुरजी का स्मरण किया था तब उद्धवजी के चले जाने पर यह सोचकर विदुरजी प्रेम विह्वल होकर रोने लगे ॥३३-३५॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां पशुतुल्यानाम् । विक्लवात्मनामधीरचित्तानाम् । मनसेक्षितं चिन्तितम् ॥३३-३५॥

भाव प्रकाशिका

मूल के अन्येषाम् शब्द के द्वारा पशुओं के समान चञ्चल चित्त वाले लोगों को कहा गया है। मनसेक्षितम् शब्द का अर्थ मन से चिन्तित है ॥३३-३५॥

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः । प्रापद्यत स्वः सरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धें विदुरोद्धवसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— कालिन्द्याः कतिभिः अहोभिः सिद्धः भरतर्षभः स्वः सरितं प्रापद्यत यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

अनुवाद— यमुनातट से चलकर सिद्ध शिरोमणि विदुरजी कुछ दिनों में गङ्गातट पर पहुँचे जहाँ पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कालिन्द्याः सकाशात्सिद्ध एव विदुरः कतिपयैर्दिनैः स्वःसरितं गङ्गां प्रापद्यत प्राप्तः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी सिद्ध थे वे यमुना तट से चलकर गङ्गा तट पर आये वहीं पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

विदुरजी के प्रश्नों को सुनकर मैत्रेय महर्षि का सृष्टि का वर्णन करना

श्रीशुक उवाच

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ।।१।।

अन्वयः— द्युनद्याः द्वारि अगाधबोधम् आसीनं मैत्रेयम् अच्युतभावशुद्धकुरूणां ऋषभः क्षता उपसृत्य सौशील्य गुणाभितृप्तः पप्रच्छः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हरिद्वार में अगाध ज्ञान सम्पन्न बैठे हुए मैत्रेय महर्षि के पास जाकर श्रीभगवान् की भक्ति से शुद्ध अन्तःकरण वाले विदुरजी उनके सौशील्य आदि गुणों से तृप्त होकर पूछे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे भगवल्लीलां क्षत्त्रा पृष्टो महामुनिः । प्रोवाच महदादीनां सर्गं तैश्च हरेः स्तुतिम् ।।१।। उक्तश्चतुर्भिरध्यायैः क्षत्तुर्मैत्रेयसङ्गमः । संवादस्तु तयोः स्कन्धद्वयेनाथ निगद्यते ।।२।। द्युनद्या गङ्गाया द्वारि हरिद्वारे आसीनं नतु कर्मव्यग्रम् । तत्र हेतुः-अगाधोऽपरिच्छिन्नो बोधो यस्येति । मैत्रेयस्य सौशील्यमार्जवादि, गुणाश्च करुणादयस्तैरभितृप्तः । पाठान्तरे क्षत्तुः सौशील्यादिभिरभितृप्तं संतुष्टं मैत्रेयम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी द्वारा पूछे जाने पर महामुनि मैत्रेय महर्षि ने महदादि की सृष्टि वर्णन पूर्वक श्रीहरि की स्तुति का वर्णन पाँचवें अध्याय में किया है ।।१।। चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेय महर्षि का संगम वर्णित है । अब दो अध्यायों में उन दोनों का संवाद का वर्णन किया जा रहा है ।।२।। हरिद्वार में अगाधज्ञानसम्पन्न मैत्रेय महर्षि बैठे थे, वे कार्यों के करने में व्यग्र नहीं थे । उन मैत्रेय महर्षि के सौशील्य, आर्जव, करुणा तथा दया आदि गुणों से तृप्त होकर विदुरजी ने उनसे प्रश्न किया । जहाँ पर गुणाभितृप्तं पाठ है वहाँ पर सौशील्य आदि से अत्यन्त तृप्त हुए मैत्रेय महर्षि से अर्थ होगा ।।१।।

विदुर उवाच

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥२॥

अन्वयः— लोकः सुखाय कर्माणि करोति किन्तु तैः न सुखं न वाऽन्यदुपारमं ततः भूयः दुखमेव विन्देत अत्र यद् युक्तं भगवान् नः विन्देत ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए कर्मों को करता है किन्तु उससे उसको सुख की प्राप्ति नहीं होती है और न तो उससे उसके दुःखों का विराम ही होता है । उससे तो उसका दुःख और बढ़ जाता है । अतएव इस विषय में उसे क्या करना चाहिए । हे भगवन् इसे आप मुझे बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नानेवाह- सुखायेति पञ्चदशभिः । तैः कर्मभिः । सुखं वाऽन्यस्य दुःखस्योपशमं वेत्यर्थः । अथवाऽन्यद्वा न विन्देत। किं तदित्यपेक्षायां तस्यैव निर्देशः । उपरमं वेति । ततस्तैः कर्मभिर्भूयः पुनःपुनर्दुःखमेव विन्देत । अत्रैवंविधे संसारे नोऽस्माकं यद्युक्तं कर्तुं योग्यं तत्सर्वज्ञो भगवान्वदेन्निरूपयतु ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सुखाय० **इत्यादि** पन्द्रह श्लोकों में विदुरजी के प्रश्नों का वर्णन किया जा रहा है । विदुरजी ने कहा कि मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए ही कर्मों को करता है, किन्तु उन कर्मों के द्वारा उसको न तो सुख की प्राप्ति होती है और न तो उसके दुखों की शान्ति ही होती है; अपितु उन कर्मों को करने से उसके दुःख और बढ़ जाते हैं। वह बार-बार दुःख का अनुभव करता है । इस प्रकार के संसार में हमलोगों को क्या करना चाहिए ? इसे आप मुझे बतलायें । आप तो सर्वज्ञ हैं ॥२॥

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥

अन्वयः— दैवात् कृष्णाद् विमुखस्य जनस्य, अधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य अनुग्रहाय नूनं जर्नादनस्य भव्यानि भूतानि चरन्ति ॥३॥

अनुवाद— दुर्भाग्य वशात् जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं अधार्मिक हैं अतएव दुःखी हैं, ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए मङ्गलमय आपके जैसे लोग इस संसार में विचरण किया करते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दैवात्प्राचीनकर्मणो निमित्तभूतात्कृष्णाद्विमुखस्यातोऽधर्मशीलस्यातः सुदुःखितस्य जनस्यानुग्रहाय भव्यानि मङ्गलानि भूतानि चरन्ति । भवन्तः परोपकारस्वभावा एवेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के ही फलस्वरूप परमात्मा से पराङ्मुख होकर अधार्मिक हो जाता है । उसके कारण वह सदा दुःखी रहता है । ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए आप जैसे मङ्गलमय भगवद्भक्त इस भूलोक में संचरण किया करते हैं । आपका तो स्वभाव ही है दूसरों का उपकार करना ॥३॥

तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान्येन पुंसाम् ।
हृदिस्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

अन्वयः— तत् हे साधुवर्य ! नः शं वर्त्म आदिश येन संराधितो भगवान् पुंसाम् भक्तिपूते हृदिस्थितः सत्त्वाधिगमं पुराणं ज्ञानं यच्छति ॥४॥

अनुवाद— हे साधुवर्य ! आप उस शान्तिप्रद मार्ग का उपदेश करें जिसके द्वारा आराधना किए जाने पर श्रीभगवान् भक्तों की भक्तिभावना से पवित्र बने हुए हृदय में स्थित होकर ऐसे जन को ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिससे कि उसे आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् हे साधुवर्य, शं सुखरूपं वर्त्म नः आदिश कथय । येन वर्त्मना संराधितो हृदि स्थितः सन् । सतत्त्वाधिगम आत्मापारोक्ष्यं तत्सहितम् । पुराणमनादिवेदप्रमाणकम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हे साधु शिरोमणे ! आप हमें उस सुखमय मार्ग का उपदेश दें जिस मार्ग को अपना कर श्रीहरि की आराधना करने पर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर भक्ति की भावना से पवित्र बने हुए उसके हृदय में स्थित हो जाते हैं और ऐसा वेददोदित ज्ञान प्रदान कर देते हैं, जिससे कि मनुष्यों को अपने स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगता विधत्ते ॥५॥

अन्वयः— त्र्यधीशः आत्मतन्त्रः भगवान् कृतावतारः यानि कर्माणि करोति यथा च निरीहः अग्रे इदं ससर्ज, संस्थाप्य जगतो वृत्तिं विधते तद्व्रण्य ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् त्रैलोक्यधिपति हैं, तथा स्वतन्त्र हैं । वे भगवान् अवतार ग्रहण करके जिन कर्मों को करते हैं तथा निरीह (निःस्पृह) होकर भी सृष्टि के प्रारम्भ में उन्होंने जिस प्रकार से जगत् की सृष्टि की पुनः उन्होंने जगत् को संस्थापित करके जिस तरह से इसकी जीविका का विधान किया उसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

करोति कर्माणीत्यादीनां वर्णयेति पञ्चमश्लोके क्रियासंबन्धः । यथा येन प्रकारेण पुरुषरूपेण कृतावतारः सन् त्र्यधीशः त्रिगुणमायानियन्ता अतः स्वतन्त्र एव यानि कर्माणि करोति । कर्माण्येव विशेषतः पृच्छति-यथेत्यादिना । निरीहो निष्क्रियो निःस्पृहो वा संस्थाप्य सुस्थितं कृत्वा । वृत्तिं जीविकाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

करोति कर्माणि० इत्यादि श्लोक का नवें श्लोक के वर्णय क्रिया के साथ सम्बन्ध है । श्रीभगवान् तो त्रिगुणात्मिका माया के स्वामी हैं । जिस प्रकार से उन्होंने पुरुष रूप से अवतार ग्रहण किया, और माया के नियन्ता होने के कारण वे स्वतन्त्र होकर भी जिन कर्मों को करते हैं उनको आप बतलाएँ । उन कर्मों के ही विषय में विशेष रूप से पूछते हैं । श्रीभगवान् तो निष्क्रिय और निस्पृह हैं । वे जगत् को सुस्थिर करके जिस प्रकार से उसकी जीविका का विधान करते हैं उसे आप बतलायें ॥५॥

यथा पुनः स्वे स्व इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ।
योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथासीत् ॥६॥

अन्वयः— यथा पुनः इदं पुनः स्वे स्वे निवेश्य निवृत्तवृत्तिः गुहायां शेते योगेश्वराधीश्वरः एतदनुप्रविष्टः एकः बहुधा यथासीत् तद्वर्णय ॥६॥

अनुवाद— पुनः वे जिस प्रकार इस जगत् को अपने हार्दाकाश में लीन करके वृत्तिशून्य हो जाते हैं और अपनी योगमाया का आश्रय लेकर योगमाया में ही शयन करते हैं । उसका आप वर्णन करें । श्रीभगवान् योगेश्वर हैं और एक है, फिर भी इस ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक प्रतीत होते हैं । इन समस्त रहस्यों को आप मुझे बतलायें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स्वे स्वीये स्वे हृदयाकाशे निवेश्य स्थापयित्वा । निवृत्ता वृत्तयो यस्य । गुहायां योगमायायाम् । बहुधा ब्रह्मादिरूपेण ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल के आ जाने पर भगवान् अपने हृदयाकाश में सम्पूर्ण जगत् को लीन कर लेते है और वृत्ति शून्य होकर अपनी योगमाया में शयन करते हैं । योगेश्वर होने के कारण श्रीभगवान् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक ब्रह्मादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥६॥

क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ।
मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥

अन्वयः— द्विजगोसुराणां क्षेमाय अवतारभेदैः क्रीडन् कर्माणि विधत्ते सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि शृण्वतां अपि, नः मनः न तृप्यति ॥७॥

अनुवाद— ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं का कल्याण करने के लिए विभिन्न अवतारों के माध्यम से लीला पूर्वक श्रीभगवान् जिन कर्मों को करते हैं, उन सबों को आप हमें सुनायें । यशस्वियों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् के चरित रूपी अमृत का पान करते रहने पर भी हमलोगों का मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्याद्यवतारभेदैः क्रीडन् यानि यथा कर्माणि विधत्ते । पुनर्विशेषं प्रष्टुमौत्सुक्यमाविष्करोति–मन इति । सुश्लोकाः पुण्यकीर्तयस्तेषां मौलिरिवाधिक्येनोपरि विराजमानस्तस्येत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मत्स्य आदि विभिन्न अवतारों के द्वारा क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् जिन कर्मों को करते हैं, उन विशेष कर्मों को पूछने की उत्सुकता को अविष्कृत करते हुए विदुरजी कहते हैं । श्रीभगवान् यशस्वियों में श्रेष्ठ हैं । उनके चरितामृत को सुनने से हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान् सहलोकपालान् ।
अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

अन्वयः— अधिलोकनाथः लोकपालान् सह लोकान्, आलोकान् यैः तत्त्वभेदैः अचीक्लृपत्, यत्र हि सर्वसत्व निकाय भेदः प्रतीतः । इति वर्णय ॥८॥

अनुवाद— आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् ने, लोकों, लोकपालों

तथा लोकालोक पर्वत से बाहर के भागों की कल्पना किन तत्त्वों से की, जिनमें इन सम्पूर्ण जीव समूहों की अधिकारानुसार प्रतीति होती है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अधिलोकनाथो लोकनाथाधिपतिः । अलोकान् लोकालोकपर्वताद्बहिर्भागान् । अचीक्लृपत्कल्पयामास । यत्र येषु सर्वाणि यानि सत्त्वानि तेषां निकायास्तेषां भेदोऽधिकृतस्तत्तत्कर्माधिकारी आश्रित इति वा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आप यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् लोकों, लोकपालों तथा लोकलोक पर्वत के भागों की रचना किन तत्त्वों से की है जिसमें सम्पूर्ण जीव समूहों के भेद तथा अपने अधिकारानुसार कर्मों के अधिकारी प्रतीत होते हैं ॥८॥

येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ।
नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

अन्वयः— हे विप्रवर्य विश्वसृट् आत्मयोनिः, नारायणः उत प्रजानाम् आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां येन व्यधत्त एतत् च नः वर्णय ॥९॥

अनुवाद— हे विप्रश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले आत्मयोनि (स्वत:सिद्ध) भगवान् नारायण भी प्रजाओं के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों का भेद जिसके द्वारा किए उसका भी वर्णन हमें आप सुनाइये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

उताऽपि न येन प्रकारेण जीवानामात्मा स्वभावस्तत्कृतं कर्म तत्कृतं रूपं तत्कृता अभिधास्तासां भेदं कृतवान् । विश्वस्रष्टा स्वयमात्मयोनिः स्वतःसिद्धः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि हे विप्रश्रेष्ठ ! आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले तथा स्वत: सिद्ध भगवान् नारायण ने किस प्रकार से जीवों के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों के भेदों का निर्माण किया ॥९॥

परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ।
अतृप्नुमक्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥१०॥

अन्वयः— हे भगवन् ! परावरेषां व्रतानि मया व्यासमुखाद् अभीक्ष्णम् श्रुतानि कृष्णकथामृतौघात् ऋते क्षुल्लसुखावहानां तेषाम् अतृप्नुम् ॥१०॥

अनुवाद— हे भगवन् ! मैंने महर्षि व्यास के मुख से त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों के धर्मों को कई बार सुना है। किन्तु वे सब बहुत अल्प सुखप्रद है अतएव मैं उन धर्मों के सुनते-सुनते तृप्त हो चुका हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण की कथामृत से रहित होने के कारण श्रीभगवान् की ही कथा को सुनना चाहता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु महाभारते त्वया सर्वं श्रुतमेव, किं पुनः प्रश्नैस्तत्राह । परे त्रैवर्णिका अवरे शूद्रादयस्तेषां व्रतानि धर्माः । मे मया। अभीक्ष्णं पुनः पुनः । तेषां श्रवणेनातृप्नुम तृप्ताः स्म । तेषां तुच्छसुखावहत्वात् । यस्तु तत्र कृष्णकथामृतौघः सूचितस्तस्मादृते। तत्र त्वलंबुद्धिर्नास्तीत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि महाभारत में तो तुमने सब कुछ सुन लिया है अतएव तुम्हें प्रश्न करने का क्या औचित्य है ? तो इसका उत्तर है **परावरेषाम्० इत्यादि** श्लोक । मैंने त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों आदि के धर्मों को महर्षि व्यास के मुख से बार-बार सुना है । अतएव उन सबों को सुनकर मैं तृप्त हो चुका हूँ । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूपी अमृत को सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हुयी है ॥१०॥

कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

अन्वयः— वः सूरिभिः सत्रेषु ईडयमानात् तीर्थपदः अभिधानात् कः तृप्नुयात् । यः पुरुषस्य कर्णनाडीं यातः भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

अनुवाद— आप जैसे साधुओं के सत्रों में जिनका कीर्तन नारदादि देवर्षिगण भी करते हैं, ऐसे भगवान् की कथाओं से तृप्त कौन हो सकता है ? श्रीहरि की जो कथा मनुष्यों के कानों में प्रवेश करके संसारचक्र में डालने वाले गृहादि प्रेम को विनष्ट कर देने का काम करती है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-क इति । तीर्थपदः कृष्णस्य । अभिधानात् कथामृतौघात् । सत्रेषु समाजेषु । सूरिभिर्नारदादिभिः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने के कारण **कस्तृप्नुयात्० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने का कारण है, कि साधुओं के समाज में नारदादि देवर्षिगण भी उसका गान करते हैं । दूसरा कारण यह है कि उस कथा के कान में पड़ते ही मनुष्य की गृहादि में होने वाला प्रेम विनष्ट हो जाता है । और गेहादि में होने वाला प्रेम तो संसार चक्र में डालने वाला है ॥११॥

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।
यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

अन्वयः— ते सखा कृष्णः मुनिः अपि, भगवद गुणानां विवक्षुः भारतमाह यस्मिन् नु नृणां ग्राम्यसुखानुवादैः हरेः कथायाम् मतिः गृहीता ॥१२॥

अनुवाद— आपके मित्र कृष्णमुनिः (व्यासजी) भी श्रीभगवान् के गुणों का ही वर्णन करने के लिए महाभारत का वर्णन किए; किन्तु उसमें ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके श्रीहरि की कथाओं में लोगों की बुद्धि को लगाने का प्रयास किया गया है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

महाभारतस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याह । मुनिः कृष्णो वेदव्यासो भगवद्गुणान्मोक्षधर्मान्ते नारायणीयाख्याने वक्तुमिच्छुः सन् । अर्थकामादिवर्णनं तु हरिकथायां मतिप्रवेशार्थमेवेत्याह-यस्मिन्निति । नृणां मतिर्ग्राम्यसुखानुवादैर्द्वारभूतैर्नु निश्चितं हरेः कथायां गृहीता नीता । तदुक्तमितिहाससमुच्चये- **'कामिनो वर्णयन्कामाँल्लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन् । लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वाऽत्र तेन तौ । इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निन्दितौ । अन्यथा घोरसंसारबन्धहेतू जनस्य तौ । वर्णयेत्स कथं विद्वान्महाकारुणिको मुनिः ॥' इति ॥१२॥**

भाव प्रकाशिका

महाभारत का भी इसी अर्थ के वर्णन में ताप्पर्य है, इसी अर्थ को बतलाते हुए कहा गया है कि— महर्षि

व्यास भी भगवान् के गुणों का वर्णन मोक्ष धर्म के अन्त में नाराणीयोपाख्यान में करने की इच्छा से ही अर्थ एवं काम आदि का वर्णन श्रीहरि की कथा में बुद्धि को लगाने के ही लिए किया है। उस महाभारत में मनुष्यों की बुद्धि को ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके ही श्रीहरि की कथा में लगाया गया है। इसीलिए इतिहास समुच्चय में कहा भी गया है- कामियों के काम का वर्णन करते हुए तथा लोभियों के लोभ का वर्णन करने वाला कूएँ में अन्धे को गिरने वाले के समान उस मनुष्य को कौन सा फल मिल सकता है ? लोगों के चित्त को श्रीहरि की कथा में लगाने के ही लिए महर्षि व्यास ने अर्थ और काम का वर्णन करके पवित्र अर्थ वाले इतिहासों के द्वारा इस महाभारत में उन दोनों निन्दित पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। यदि श्रीभगवान् की कथा में लोगों की बुद्धि को लगाना रूप प्रयोजन न रहे तो फिर काम और लोभ का वर्णन तो मनुष्यों को संसार के बन्धन में ही डालने वाला होगा। महर्षि बादरायण तो महादयालु विद्वान हैं, वे केवल काम और लोभ का वर्णन कैसे कर सकते हैं ?॥१२॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ।
हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥१३॥

अन्वयः— श्रद्दधानस्य विवर्धमाना सा पुंसः अन्यत्र विरक्तिं करोति। हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्त दुःखात्ययम् आशु धत्ते ॥१३॥

अनुवाद— श्रद्धालु व्यक्ति के हृदय में जब भगवत् कथा की रुचि बढने लग जाती है तब वह उस व्यक्ति को दूसरे विषयों से विरक्त बना देती है। उसके पश्चात् वह व्यक्ति श्रीहरि की कथा का निरन्तर चिन्तन करने के कारण आनन्दमग्न हो जाता है उसके फलस्वरूप शीघ्र हीं उसके समस्त दुःखों का नाश हो जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीहरिकथायां मतिप्रवेशस्य फलमाह। सा कथा मतिर्वा। अन्यत्र ग्राम्यसुखे। ततः किमत आह–हरेरिति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की कथा में बुद्धि के लग जाने का फल बतलाते हुए कहा गया है कि वह कथा अथवा बुद्धि मनुष्य को ग्राम्यसुखों से विरक्त बना देती है। उस विरक्ति का फल **हरेः इत्यादि** उत्तरार्द्ध से बतलाया गया है ॥१३॥

तान् शोच्यशोच्यानविदो नु शोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ।
क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥

अन्वयः— अहं तान् शोच्यशोचान् अविदः अघेन हरेः कथायां विमुखान् अनुशोचे येषां वृथा वादगतिस्मृतीनाम् आयुः अनिमिषो देवः क्षिणोति ॥१४॥

अनुवाद— मैं तो उन शोचनीयों में भी सर्वाधिक शोचनीय अज्ञानी जीवों के विषय में सोचता हूँ जो लोग पूर्वकृत पाप के कारण श्रीहरि की कथाओं से विमुख रहते हैं तथा व्यर्थ में ही व्यर्थ के बाद विवाद, चेष्टा और चिन्तन में लगे रहते हैं और काल स्वरूप भगवान् उनकी आयु को क्षीण करते रहते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं भूतायां कथायां ये न रमन्ते तान् शोचति। शोच्या ये तेषामपि शोच्यांश्च। तत्राऽविदो भारततात्पर्यानभिज्ञान् शोच्यान्। ये तु ज्ञात्वापि हरेः कथायां विमुखास्तांस्तेषामपि शोच्यानिति योज्यम्। अनिमिषः कालो येषामायुः क्षिपति। अत्रैव हेतुः-वृथैव वादगतिस्मृतयो वाग्देहमनोव्यापारा येषाम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की भगवत कथा में जो पापी लोग अपने मन को नहीं लगाते हैं उनके विषय में शोक करते हुए विदुरजी कहते हैं **शोच्यशोच्यान्** का अर्थ है कि शोचनीयों में शोचनीय। अर्थात् पूर्व जन्म के पाप के कारण जिन लोगों का मन भगवत् कथा में नहीं लगता है वे लोग अत्यन्त शोचनीय हैं। उनमें जो लोग महाभारत के तात्पर्य को नहीं समझते हैं वे तो अत्यन्त शोचनीय हैं। महाभारत के तात्पर्य को जानकर भी भगवत् कथा से विमुख रहने वाले उन सबों से अधिक शोचनीय हैं। उन लोगों की आयु को काल व्यर्थ ही काटता रहता है। क्योंकि ऐसे लोगों के वाणी, देह और मन के द्वारा किए जाने वाले सारे व्यापार व्यर्थ ही होते हैं ॥१४॥

तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

अन्वयः— तत् हे दीनबन्धो कौषारव। पुष्पेभ्यः सारमिव कथासु सारम् उद्धृत्य अस्य शर्मदातुः तीर्थकीर्तेः कथामेव नः शिवाय कीर्तय ॥१५॥

अनुवाद— अतएव हे दीनबन्धो ! मैत्रेय महर्षे ! जिस तरह भ्रमर पुष्पों से उसके सारभूत पराग को ही निकाल लेता है, उसी तरह कथाओं में से उनके सारभूत इस विश्व का कल्याण करने वाले पवित्रकीर्ति वाले श्रीहरि की कथाओं को ही आप कहें जिससे कि हम लोगों का कल्याण हों ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्धे कौषरव, अस्य विश्वस्य शिवाय कथासु सारभूतां हरेः कथामेवोद्धृत्य नः कीर्तय। यथा पुष्पेभ्यो मधु मधुप उद्धरति तद्वदुद्धृत्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे मैत्रेयजी इस विश्व का कल्याण करने के लिए सभी कथाओं के सारभूत श्रीहरि की कथाओं को उसी तरह से आप सुनायें जिस तरह से भौंरा पुष्पों के सारभूत उसके मधु को निकाल लेता है ॥१५॥

स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ।
चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

अन्वयः— विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे प्रगृहीत शक्तिः कृतावतारः स ईश्वरः यानि अतिपूरुषाणि कृत्यानि चकार तानि मह्यम् कीर्तय ॥१६॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने के लिए अपनी माया शक्ति को अपनाकर अवतार ग्रहण करने वाले परमात्मा ने जिन अतिलौकिक कर्मों को किया उन सबों को आप मुझे सुनायें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णकथा कथनीयेत्याशयेनाह-स इति। यो विश्वसर्गाद्यर्थं पूर्वं गृहीतशक्तिः स एव पुरुषेषु कृतावतारः सन् पुरुषानतिक्रम्य वर्तमानानि यानि चकार तानि विस्तराद् वद ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप विशेष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ कहें इसी आशय से उन्होंने कहा **स० इत्यादि** इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि को करने के लिए जिन्होंने पूर्वकाल में अपनी मायाशक्ति को अपनाया था वे ही पुरुष रूप से अवतार ग्रहण करने वाले हैं जिन कर्मों को कोई दूसरा पुरुष नहीं कर सकता है, ऐसे जिन कर्मों को श्रीभगवान् ने किया उन्हीं कर्मों का आप विस्तार से वर्णन करें ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः । पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥

अन्वयः— क्षत्त्रा एवं पृष्टः स भगवान् कौषरविः मुनिः पुंसां निःश्रेयसार्थाय तम् बहुमानयन् आह ॥१७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर वे मैत्रेय महर्षि जीवों का कल्याण करने के लिए विदुरजी का बहुत अधिक सम्मान करते हुए इस प्रकार से कहे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

पुंसां निःश्रेयसमेवार्थः प्रयोजनं तेन हेतुना पृष्टः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न का एकमात्र प्रयोजन विश्व का कल्याण था इसीलिए मैत्रेयजी ने उनका बहुत अधिक सम्मान करते हुए कहा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता । कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥

अन्वयः— हे साधो लोकान् साध्वनुगृह्णतात्वया अधोक्षजात्मनः आत्मनः लोके कीर्ति वितन्वता त्वयासाधु पृष्टं॥१८॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी संसारी जीवों पर कृपा करके आपका मन चूकि हमेशा श्रीभगवान् में ही लगा रहता है, ऐसे आप अपनी कीर्ति का इस संसार में विस्तार करेंगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

बहुमानमेवाह-साध्विति पञ्चभिः । अधोक्षजे एवात्मा मनो यस्य तस्यात्मनः स्वस्य कीर्तिं च प्रसङ्गाद्वितन्वता ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने जो विदुरजी का बहुत सम्मान किया उसका ही वर्णन पाँच श्लोकों में किया गया है । अधोक्षजात्मनः आत्मनः का अर्थ है । सदा श्रीभगवान् में ही मन लगाये रहने वाले अपना भी प्रसङ्गवशात् इस लोक में कीर्ति का विस्तार करते हुए ॥१८॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे । गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥

अन्वयः— हे क्षतः ! बादरायणवीर्यजे त्वयि एतत् चित्रं न यत् त्वया अनन्य भावेन ईश्वरः हरिः गृहीतः ॥१९॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! आप महर्षि बादरायण के औरस पुत्र हैं अतएव आपके द्वारा इस तरह का प्रश्न किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि आपने सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि को ही अनन्य भाव से अपना आश्रय रूप से स्वीकार किया है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हरिर्यद्गृहीतः एतच्चित्रं न भवति । कुतः । बादरायणवीर्यजे । ननु बादरायणवीर्यजो धृतराष्ट्रोऽपि भवति, सत्यम्, परंतु त्वयि ततो विशेष-इत्याह गृहीत इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपने चूकि श्रीभगवान् को ही अपने आश्रय रूप से स्वीकार किया है, अतएव यह आपके लिए कोई आश्चर्यकारी बात नहीं है । क्योंकि आप महर्षि बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हैं । यदि कहे कि बादरायण महर्षि

के वीर्य से तो धृतराष्ट्र का भी जन्म हुआ था ? तो यह कहना ठीक है, किन्तु धृतराष्ट्र ने श्रीभगवान् को अपना आश्रय नहीं बनाया और आपने श्रीभगवान् को अपनाया यही आप दोनों में अन्तर हैं ॥१९॥

माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः । भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥

अन्वयः— प्रजासंयमनः यमः माण्डव्यशापाद् भ्रातुक्षेत्रे भुजिष्यायां सत्यवतीसुतात् जातः ॥२०॥

अनुवाद— पापी पुरुषों को दण्ड देने वाले आप साक्षात् यमराज है, महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण आप अपने भाई विचित्रवीर्य की दासी के गर्भ से उत्पन्न है महर्षि व्यास ने आपको उत्पन्न किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि कथं शूद्रत्वं, कथं च लोकानुग्राहकत्वं तत्राह–माण्डव्यशापादिति । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे क्षेत्रत्वेन स्वीकृतायां भुजिष्यायां दास्यां यम एवं त्वं जातोऽसि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि मैं बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हूँ तो फिर मैं शूद्र कैसे हूँ और कैसे मैं जीवों पर कृपा करने वाला हूँ ? तो उसका उत्तर है कि महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य की भोगदासी के गर्भ से बादरायण महर्षि ने आपको उत्पन्न किया ऐसे तो आप साक्षात् यम ही हैं ॥२०॥

भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च । यस्य ज्ञानोपदेशाय मादिशद्भगवान्व्रजन् ॥२१॥

अन्वयः— भवान् नित्यं सानुगस्य भगवतो सम्मतः यस्यज्ञानोपदेशाय व्रजन् भगवान् मादिशद् ॥२१॥

अनुवाद— आप सदा भगवान् और उनके भक्तों के प्रिय रहे हैं । इसीलिए इस संसार से जाते समय श्रीभगवान् ने आपको ज्ञानोपदेश कर देने के लिए मुझको आदेश भी दिया है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच । भवानिति । कुतः । यस्य तव ज्ञानोपदेशाय मामादिष्टवान् चकारात्स्वयमपि स्मृत्यैवोपदिष्टवानिति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह है कि आप श्रीभगवान् और उनके भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि इस लोक से परमधाम गमन करते समय श्रीभगवान् ने आपको स्मरण करके ही ज्ञान प्रदान कर दिया और मुझको भी आपको ज्ञानोपदेश करने के लिए आदेश किया ॥२१॥

अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥

अन्वयः— अथ विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थाः योगमायोपबृंहिताः भगवतः लीला ते अनुपूर्वशः वर्णयामि ॥२२॥

अनुवाद— अब मैं सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार ही जिसका प्रयोजन है उसी योग माया के द्वारा विस्तारित भगवान् की लीलाओं का क्रमशः वर्णन करूँगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विश्वस्थित्यादयोऽर्था विषया यासां ताः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार के लिए अपनी योगमाया को अपनाकर विभिन्न प्रकार की लीलाओं को किया करते हैं, उनका ही मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥२२॥

भगवानेक आसेद मग्रे आत्मात्मनां विभुः । आत्मेच्छानुगतावात्माऽनानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

अन्वयः— इदम् अग्रे आत्मनां आत्मा भगवान् एक एव आसीत् आत्मेच्छानुगतौ आत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

अनुवाद— सृष्टि से पहले यह जगत् सम्पूर्ण आत्माओं की आत्मा भगवद्रूप था श्रीभगवान् एक ही थे । और अनेक वृत्तियों के भेद के कारण उनमें जो अनेकता प्रतीत होती है वह भी वे ही थे, क्योंकि उनकी इच्छा अकेले रहने की थी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सृष्टिलीला वर्णयितुं ततः पूर्वावस्थामाह । इदं विश्वमग्रे सृष्टेः पूर्वं परमात्मा भगवानेक एव आस आसीत् । आत्मनां जीवानामात्मा स्वरूपं विभुः स्वामी च । नान्यद्रष्टृदृश्यात्मकं किंचिदासीत् । कारणात्मना सत्त्वेऽपि पृथक्प्रतीत्यभावादित्याह। अनानामत्युपलक्षणो नानाद्रष्टृदृश्यादिमतिभिर्नोपलक्ष्यत इति तथा । यद्वा अकारप्रश्लेषं विनैवायमर्थः । यः सृष्टौ नानामतिभिरुपलक्ष्यते स तदैक एवासीदिति । कुतः । आत्मेच्छा माया तस्या लये सति । यद्वा आत्मन एकाकित्वेनावस्थानेच्छायामनुवृत्तायामित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि लीला का वर्णन करने के लिए सृष्टि से पहले की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् सृष्टि से पहले केवल भगवान् का ही रूप था । वे भगवान् सम्पूर्ण जीवों की आत्मा तथा विभु अर्थात् स्वामी हैं, यह द्रष्टा दृश्य रूप जगत् कुछ भी नहीं था । यद्यपि यह जगत् कारण रूप से तो विद्यमान था ही किन्तु इसकी श्रीभगवान् से अलग प्रतीति नहीं होती थी । अनेक द्रष्टा दृश्य रूप ज्ञान के द्वारा वह उपलक्षित नहीं होता था।

यद्वा० इत्यादि अथवा अकार के प्रश्लेष के बिना ही यह अर्थ होगा कि जो परमात्मा अनेक प्रकार की बुद्धियों के द्वारा उपलक्षित होते हैं वे परमात्मा सृष्टिकाल में एक ही थे । क्योंकि उनकी माया का लय होनेमें इच्छा ही कारण है । अथवा उनके अकेले रहने में अपनी इच्छा का अनुवर्तन ही कारण होता है ॥२३॥

स वा एष तदास द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् । मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥

अन्वयः— तदा द्रष्टा एव आस वै दृश्यम् न अपश्यत् सुप्तशक्तिः असुप्तदृक् स आत्मानम् असन्तमिव मेने ॥२४॥

अनुवाद— वे ही परमात्मा द्रष्टा होकर देखने लगे तो किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे । उस समय उनकी शक्ति ही सोयी थी उनके ज्ञान का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथमं मायोद्भवप्रकारमाह द्वाभ्याम् । स वै एष द्रष्टा सन् दृश्यं नापश्यत् । यत एकराट् एक एव तदा प्रकाशते। आत्मानमसन्तमिव मेने । दृश्याभावे द्रष्टृत्वाभावात् । तदाह । सुप्ता मायाद्याः शक्तयो यस्य सः । न त्वसन्तमेव मेने । यतोऽसुप्ता दृक् चिच्छक्तिर्यस्येति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने सर्वप्रथम माया के उत्पन्न होने के प्रकार को दो श्लोकों से बतलाया है । वे परमात्मा द्रष्टा बनकर जब देखे तो वे किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे क्योंकि उस समय (सृष्टि से पूर्व) वे अकेले प्रकाशित होते थे । उस समय उन्होंने अपने को शून्य की तरह माना । क्योंकि द्रष्टा तो कोई तब हो सकता है जब कि दृश्य हो; बिना दृश्य के कोई द्रष्टा नहीं हो सकता है । इसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि कहते हैं— सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्। अर्थात् उस समय उनकी माया इत्यादि शक्तियाँ सुप्त थीं । उनकी चित् शक्ति का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका । माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥२५॥

अन्वयः— हे महाभाग एतस्य संद्रष्टु सा शक्तिः वै सदसदात्मिका माया नाम यया विभुः इदं निर्ममे ॥२५॥

अनुवाद— हे महाभाग विदुर ! उन द्रष्टा पुरुष की वह शक्ति सदसदात्मिका है, अर्थात् कार्य-कारण स्वरूपिणी है । उसी को माया कहते हैं । उसी के कारण द्रष्टा और दृश्य की प्रतीति होती है । परमात्मा ने इस सदसदनिर्वचनीय माया के द्वारा इस जगत् का निर्माण किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सा वै द्रष्टृदृश्यानुसंधानरूपा सदसदात्मिका कार्यकारणरूपा । यद्वा सत् दृश्यम्, असत् अदृश्यमात्मस्वरूपं च तयोरात्मा यस्याः । तदुभयानुसन्धानरूपत्वात् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

वह माया शक्ति ही द्रष्टा दृश्य के अनुसंधान स्वरूपिणी होने के कारण सदसदात्मिका अर्थात् कार्यकारण स्वरूपिणी है । अर्थात् यहाँ सत् शब्द से दृश्य को और असत् शब्द से अदृश्य आत्मा को कहा गया है और उन दोनों का कारण माया ही है । क्योंकि उसकी सत् एवं असत् दोनों रूपों से प्रतीति हाती है ॥२५॥

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः । पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

अन्वयः— कालवृत्त्या गुणमय्याम् मायायाम् वीर्यवान् अधोक्षजः आत्मभूतेन पुरुषेण वीर्यमाधत्त ॥२६॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में जब त्रिगुणात्मिका माया में कालशक्ति के द्वारा क्षोभ उत्पन्न हुआ, उस समय चिन्मय परमात्मा ने अपने अंश पुरुष शक्ति के द्वारा उसमें चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कालवृत्त्या कालशक्त्या गुणमय्यां क्षुभितगुणायाम् । अधोक्षजः परमात्मा । आत्मांशभूतेन पुरुषेण प्रकृत्यधिष्ठातृरूपेण वीर्यं चिदाभासमाधत्त । वीर्यवांश्चिच्छक्तियुतः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जब काल शक्ति के द्वारा गुण स्वरूपिणी माया में क्षोभ उत्पन्न हुआ तो उस समय अपने अंशभूत प्रकृति के अधिष्ठातृ रूप से पुरुष के द्वारा चित् शक्ति रूप परमात्मा ने प्रकृति में चिदाभास रूप वीर्य को आहित (स्थापित) किया ॥२६॥

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् । विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥२७॥

अन्वयः— ततः कालचोदितात् अव्यक्तात् महत् तत्त्वम् अभवत् तमोनुदः विज्ञानात्मा आत्मदेहस्थं विश्वं व्यंजयन्॥२७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् काल शक्ति के द्वारा प्रेरित उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ । वह अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था तथा अपने में सूक्ष्म रूप से विद्यमान प्रपञ्च को अभिव्यक्त करने वाला था॥२७॥

भावार्थ दीपिका

कालप्रेरितादव्यक्तान्मायातः । तत्त्वपदं परित्यज्य महतो लक्षणम्, अतः पुल्लिङ्गनिर्देशो विज्ञानात्मेति । सत्त्वप्रधान-त्वात्स्वदेहस्थं विश्वमुच्छूनबीजगतमङ्कुरादि रूपं वृक्षमिव व्यञ्जयन् व्यञ्जयन्प्रकाशयन् । यतोऽसौ तमो नुदतीति तमोनुदः। तदुक्तं सात्त्वततन्त्रे । विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते इति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

कालशक्ति के द्वारा प्रेरित होने पर अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट हुआ। यहाँ पर तत्त्व पद का परित्याग करके विज्ञानत्मापद का प्रयोग किया गया है इसीलिए पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है। अर्थात् वह महान् अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था। सत्त्वगुण की प्रधानता होने के कारण वह अपने भीतर विद्यमान सम्पूर्ण प्रपञ्च का प्रकाशक था। जिस तरह से फूले हुए बीज से वृक्ष रूप अङ्कुर प्रकट होता है। प्रकाशक होने के ही कारण महान् अज्ञान का विनाशक था। सात्त्वत तन्त्र में कहा भी गया है— **विष्णोऽस्तु त्रीणि रूपाणि** भगवान् विष्णु के पुरुष शब्द वाच्य तीन रूप बतलाये गये हैं। उनका पहला रूप महत् तत्त्व का स्रष्टा रूप है। दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है। और तीसरा सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। भगवान् विष्णु के इन तीनों रूपों को जानने वाला पुरुष संसारचक्र से मुक्त हो जाता है ॥२७॥

सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः । आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥

अन्वयः— भगवद्दृष्टिगोचरः अंशगुणकालात्मा सोऽपि अस्य विश्वस्य सिसृक्षया आत्मा आत्मानं व्याकरोत् ॥२८॥

अनुवाद— भगवान् की दृष्टि पड़ने पर चिदाभास गुण तथा काल के अधीन उस महत् तत्त्व ने विश्व की सृष्टि के लिए अपने को विकृत किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारोत्पत्तिमाह सार्धाभ्याम् सोऽपीति । अंशश्चिदाभासो निमित्तं, गुणा उपादानं, कालः क्षोभकः, तदात्मा तदधीनः भगवान् सर्वाध्यक्षस्तद्दृष्टिगोचरः सन् स्वयमात्मानं व्याकरोत् रूपान्तरमनयत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अब डेढ श्लोक में अहङ्कार की उत्पत्ति का वर्णन **सोऽपि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। भगवान् के द्वारा देखे जाने पर वह महान् चिदाभास रूपी निमित्तकारण, गुण रूपी उपादानकारण, काल रूपी क्षोभक उसके अधीन होने वाले सबों के अधिष्ठाता श्रीभगवान् के द्वारा देखे जाने पर महान् ने स्वयम् अपने को दूसरे रूप में परिणत कर दिया ॥२८॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत । कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् महत्तत्त्वात् अहं तत्त्वं व्यजायत स च कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

अनुवाद— महत् तत्त्व के विकृत होने पर अहङ्कार की उत्पत्ति हुयी वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) तथा कर्ता (अधिदैव) रूप होने से भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारस्य लक्षणमाह । कार्यमधिभूतम्, कारणमध्यात्मम्, कर्तृ अधिदैवं, तेषामात्मा आश्रयः । अत्र हेतुः भूतेन्द्रियमनोमयस्तद्विकारवान् । मन इति देवानामप्युपलक्षणम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अब अहंकार का लक्षण बतलाते हैं। महान् से अहंङ्कार की उत्पत्ति हुयी। वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) और कर्ता अधिदैव इन तीनों का आश्रय है। क्योंकि वह भूत, इन्द्रिय तथा मन इन तीनों का कारण है। मन शब्द मन आदि के अधिष्ठातृ देवताओं का उपलक्षण है।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा । अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

अन्वयः— अहं त्रिधा वैकारिकः, तैजसः, च तामसः च । वैकारिकात् अहङ्कारात् विकुर्वाणात् मनः अभूत् । यतः अर्थाभिव्यञ्जनं ये देवाः ते अभूवन् ॥३०॥

अनुवाद— वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और तामस् (भूतादि) अहं तत्त्व में विकार उत्पन्न होने पर वैकारिक अहङ्कार से मन आदि इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवता हुए । उन देवताओं के द्वारा ही विषयों का ज्ञान होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव विभागतः प्रपञ्चयति-वैकारिक इत्यादिना । वैकारिकः सात्त्विकः, तैजसो राजसः । देवाश्च वैकारिकाः, सात्त्विकाहंकारकार्यभूता इत्यर्थः । यतो येभ्य इन्द्रियाधिष्ठातृभ्यो देवेभ्यो हेतुभ्योऽर्थाभिव्यञ्जनं शब्दादिप्रकाशो भवति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस अहङ्कार के ही विभागों को **वैकारिकः इत्यादि** श्लोक से बतलाया जा रहा है । अर्थात् अहङ्कार के तीन भेद हैं वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) । सात्त्विक अहङ्कार में विकार होने पर उससे मन, और शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए । इस तरह देवता भी सात्त्विकाहङ्कार के कार्य हैं ॥३०॥

तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च । तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥३१॥

अन्वयः— ज्ञानकर्ममयानि इन्द्रियाणि तैजसान्येव तामसः भूतसूक्ष्मादिः आत्मनः लिङ्गं खम् ॥३१॥

अनुवाद— ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तैजस अहङ्कार जन्य ही हैं । और तामस अहङ्कार से सूक्ष्म भूतों का कारण शब्दतन्मात्र हुआ वह आत्मा का बोध कराने वाला है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तैजसान्येवेत्यन्वयः । ज्ञानमयानां सात्त्विकत्वशङ्का मा भूदित्येवकारः । तामसो भूतसूक्ष्मस्य शब्दस्यादिः कारणम् । यतः शब्दात्खमाकाशो भवति । आत्मनो लिङ्गं स्वगुणशब्दरूपेण प्रकाशकं हृदयाकाशतया वा । यद्वा लिङ्गं शरीरम् '**आकाशशरीरं ब्रह्म**' इति श्रुतेः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ राजसाहङ्कार जन्य ही हैं । मूल के एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि उनके सात्त्विक होने की शङ्का नहीं करनी चाहिए । तामसाहङ्कार भूतसूक्ष्म शब्दतत्त्व का कारण है । क्योंकि शब्द तन्मात्र से आकाश की उत्पत्ति होती है । लिङ्गमात्मनः का अर्थ है कि वह आकाश अपने गुण शब्द के द्वारा आत्मा का बोध कराता है । अथवा लिङ्ग शब्द शरीर का वाचक है । श्रुति भी कहती है— **आकाशशरीरं ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म का आकाश शरीर है ॥३१॥

कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः । नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥

अन्वयः— भगवद्वीक्षितं नभः कालमायांश योगेन नभसः अनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन् अनिलम् निर्ममे ॥३२॥

अनुवाद— भगवान् की दृष्टि जब आकाश पर पड़ी तो उस आकाश से कालात्मा और चिदाभास के योग से स्पर्शतन्मात्र उत्पन्न हुआ तथा उसमें विकार होने पर वायु की उत्पत्ति हुयी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नभसः स्वस्मादनुसृतमुद्भूतं स्पर्शं विकुर्वद्रूपान्तरं नयदनिलं वायुम् । एवं सर्वत्र तन्मात्रद्वारा भूतोत्पत्तिरिति ज्ञातव्यम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आकाश से उद्भूत स्पर्शतन्मात्र से वायु की उत्पत्ति हुयी । इसी तरह सर्वत्र तन्मात्राओं से भूतों की उत्पत्ति को जानना चाहिए ।।३२।।

अनिलोऽपि विकुवणो नभसोरुबलान्वितः । ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ।।३३।।

अन्वयः— उरुबलान्वितः अनिलः अपि नभसा विकुर्वाणः रूपतन्मात्रं ससर्ज तस्मात् लोकस्य लोचनम् ज्योतिः ।।३३।।

अनुवाद— अत्यधिक बलवान् वायु आकाश के साथ विकृत होकर रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया और उससे अहङ्कार को प्रकाशित करने वाला तेज उत्पन्न हुआ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् । आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ।।३४।।

अन्वयः— परवीक्षितम् अनिलेनान्वितं ज्योतिः कालमायांशयोगतः रसमयम् अम्भः आधत्त ।।३४।।

अनुवाद— परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर वायुयुक्त तेज ने काल, माया तथा चिदाभास के योग से विकृत होकर रस तन्मात्रा के कार्यभूत जल को उत्पन्न किया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

ज्योतिसाम्भोऽनुसंसृष्ट विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् । महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ।।३५।।

अन्वयः— ब्रह्मवीक्षितम् ज्योतिषा अनुसृष्टम् अम्भः कालमायांशयोगतः विकुर्वत अम्भः गन्धगुणाम् महीम् आधत्त ।।३५।।

अनुवाद— ब्रह्म की दृष्टि पड़ने पर तेज से युक्त जलने काल माया और चिदाभास के योग से विकृत होकर गन्धतन्मात्र के कार्यभूत पृथिवी को उत्पन्न किया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् । तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ।।३६।।

अन्वयः— नभ आदीनां भूतानां यद् यद् अवरावरं तेषां परानुसंसर्गात् यथासंख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

अनुवाद— आकाश आदि भूतों में पूर्व-पूर्व भूतों के गुण उत्तरोत्तर भूतों में संख्यानुसार अनुगत जानना चाहिए ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

हे भव्यविदुर ! पाठान्तरे भाव्यं कार्यम् । यद्यदवरमवरं कार्यं तेषां कार्याणां परैः कारणैरनुसंसर्गाद्यथासंख्यं यथाक्रममुत्तरोत्तरमधिकान्गुणान्विदुः । तथाहि नभसः शब्द एव गुणोऽन्यान्वयाभावात् । वायोस्तु स्पर्श आकाशान्व्याच्छदश्च। एवं तैजसस्तौ च रूपं च । अम्भसस्तानि रसश्च । मह्याः सर्वे ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! जहाँपर भाव्यं पाठ है वहां पर कार्य रूप अर्थ होगा । जो पीछे-पीछे के कार्य हैं उन सबों का अपने पूर्व-पूर्व के भूतों से सम्बन्ध होने के कारण उत्तरोत्तर भूतों में संख्या के अनुसार अधिक-अधिक गुणों को बतलाया गया है । जैसे आकाश का किसी दूसरे पूर्ववर्ती भूत से सम्बन्ध नहीं है अतएव आकाश का गुण

शब्द है। वायु के गुण स्पर्श और शब्द दोनों है, क्योंकि उसका आकाश से सम्बन्ध है। इसी तरह तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप तीनों है। इसी तरह जल के चार गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप और रस। पृथिवी में पाँच गुण हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं शब्द ॥३६॥

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।
नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥३७॥

अन्वयः— काल, मायांश लिङ्गिनः एते देवाः विष्णोः कलाः, नानात्वात् क्रियानीशाः, ते माञ्जलयः विभुम् प्रोचुः ॥३७॥

अनुवाद— महत् तत्त्व आदि के अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांश विशिष्ट देवगण भगवान् विष्णु के अंश हैं। फिर भी पृथक्-पृथक् रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ होने से हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

देवा महदाद्यभिमानिनः। विष्णोः कला अंशाः, काललिङ्गं विकृतिः, मायालिङ्गं विक्षेपः, अंशालिङ्गं चेतना, तानि विद्यन्ते येषु। अतः समत्वेन नानात्वात्परस्परासंबन्धात्स्वक्रियायां ब्रह्माण्डरचनायामनीशा अशक्ताः सन्तो विभुं परमेश्वरं प्रोचुः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इन महत् तत्त्व आदि के अभिमानी काल, माया तथा चेतना से विशिष्ट देवगण, समान रूप से अलग-अलग रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने के कारण परमेश्वर से कहे ॥३७॥

देवा ऊचुः

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरुसंसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥३८॥

अन्वयः— हे देव प्रपन्नतापोपशमआतपत्रम् ते पदारविन्दं नमाम, यत् मूलकेताःयतः उरु संसारदुःखं। बहिः उत्क्षिपन्ति ॥३८॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे देव! शरणागत जीवों के सन्ताप को शान्त करने के लिए छत्र के समान आपके चरणों की हम शरणागति करते हैं। आपके जिन चरणों के तलवों को अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् संसार के दुःखो को आसानी से दूर फेंक देते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

मिथः स्पर्धिष्णवो देवा नमिलन्तः परस्परम्। विश्वकर्मण्यनीशाना निर्विण्णा हरिमीडिरे। नमामेति। प्रपन्नानां तापोपशमे आतपत्रं छत्रम्। तत्र हेतुः। यस्य पादारविन्दस्य मूलं तलं केत आश्रयो येषां ते। संसारदुःखं बहिर्दूरत उत्क्षिपन्ति परित्यजन्ति। पान्थाः स्वगृहं प्राप्य मार्गश्रममिव ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में मैं बड़ा हूँ इस प्रकार की भावना के कारण एक दूसरे से नहीं मिल पाने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने से वे उदास होकर श्रीहरि की स्तुति किए। देवताओं ने कहा कि आपके ये चारण शरणागतों के सन्ताप को दूर करने के लिए छत्र का काम करते हैं। अपने इस कथन में हेतु उपन्यस्त करते हुए देवों ने कहा कि आपके चरणों को ही अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् सांसारिक दुःखों को उसी तरह से त्याग देते हैं जिस तरह से अपने घर में आया हुआ पथिक मार्ग के श्रम को त्याग देता है ॥३८॥

धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥

अन्वयः— हे धातः हे ईश यत् अस्मिन् भवे तापत्रयेण उपहताः जीवाः आत्मनि शर्म न लभन्ते । अत हे भगवन् सविद्याम् तवाङ्घ्रिच्छायां आश्रयेम ।।३९।।

अनुवाद— हे जगत् के कर्ता परमेश्वर इस संसार में तापत्रय से संतप्त जीवों को थोड़ी सी भी शान्ति नहीं मिलती है । अतएव हे भगवन् ! हम आपके चरणों की ज्ञानमयी छाया का आश्रय ग्रहण करते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

श्रमं विनिवेदयन्त आहुः । हे धातः पितः, यत् यस्माद्भवे संसारे । आत्मन्नात्मनि । संबोधनं वा । शर्म सुखम् । ऋते यदिति पाठे यत्पादभजनं बिना शर्म न लभन्ते ननु ज्ञानादज्ञानकृतस्तापो निवर्तते, किं मदङ्घ्रिच्छायाश्रयणेन तत्राहुः । सविद्यां तदाश्रयणमेव विद्याप्रापकमित्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

संसार में होने वाले खेद को निवेदित करते हुए देवताओं ने कहा हे सम्पूर्ण जगत् के पिता संसारी जीव संसार में उपलब्ध होने वाले तीनों प्रकार के सन्तापों से सन्तप्त रहते हैं, उन लोगों को अपनी आत्माओं में विल्कुल शान्ति नहीं प्राप्त होती है । अथवा हे परमात्मन् ! यह सम्बोधन आत्मन् शब्द का मानना चाहिए । जहाँ पर ऋते पाठ है, वहाँपर अर्थ होगा जिन चरणों का भजन किए बिना जीवों को शान्ति नहीं प्राप्त होती आपके उन चरणों की ज्ञानमयी छाया का हम आश्रयण करते हैं ।

ननुज्ञानाद्० इत्यादि- यदि आप कहें कि ज्ञान से ही अज्ञानजन्य संतापों की निवृत्ति हो जाती है, फिर चरणों की शरणाति करने की क्या आवश्यकता है ? तो उसके उत्तर में देवताओं ने कहा **सविद्याम्** अर्थात् आपके चरणों को ही शरण रूप से अपनाने से ज्ञान की प्राप्ति होती है । अतएव हमलोग उनकी शरणागति करते है ।।३९।।

मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्ना ॥४०॥

अन्वयः— विविक्ते ऋषयः ते मुखपद्मनीडैः छन्दःसुपर्णै यत् मार्गन्ति अघमर्षोदसरिद्वरायाः यस्य यत्पदं मार्गन्ति तीर्थपदः ते पदं वयं प्रपन्नाः ।।४०।।

अनुवाद— हे भगवन् ! ऋषिगण एकान्त में रहकर आपके मुख कमल रूपी घोसले का आश्रय लेने वाले वेदमन्त्र रूपी पक्षियों के द्वारा जिनका सदा अनुसन्धान करते रहते हैं तथा सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा नदी के जो उद्गम स्थान हैं आपके उन चरणों की हम शरणागति करते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञातस्याश्रयणायोगात्तज्ज्ञानसाधनमाहुः । मार्गन्त्यन्वेषयन्ति यत्ततीर्थपदस्तव पदं वयं प्रपन्नाः । कैर्मार्गन्ति, छन्दःसुपर्णैर्वेदपक्षिभिः । तवैव मुखपद्मं नीडं येषाम् । यथा पक्षिणो नीडादुद्गतास्ततस्ततः परिभ्रम्य पुनस्तत्रैव विशन्ति तथा वेदा त्वत्त उद्गतास्त्वय्येव पर्यवस्यन्ति । अतो वेदानाश्रित्य त्वत्पदं मृगयन्त इति । विविक्ते असङ्गे मनसि । किंचाघमर्षमघनाशकमुदमुदकं यासां सरितां तासु वराया गङ्गायाः पदमुद्गमस्थानम् । अतो गङ्गामनुसेवमाना अपि तदुद्गमस्थानं त्वत्पदं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

जो ज्ञात वस्तु होती है उसी का आश्रयण किया जा सकता है अज्ञात वस्तु का तो आश्रयण किया नहीं

जा सकता । अतएव उस परमात्मा के चरणो के ज्ञान का साधन बतलाते हुए देवगण बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरणो का अन्वेषण ऋषिगण एकान्त में उन वेद के मन्त्र रूप पक्षियों के द्वारा करते हैं जिन वेदमन्त्रों का आश्रय स्थान परमात्मा का मुखकमल है । जैसे पक्षिगण अपने घोसले से निकल कर इधर-उधर भ्रमण करके पुनः अपने घोसले में प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह हे भगवन् आपके ही मुख से निकले हुए वेद मन्त्रों का पर्यवसान आपके मुख में ही हो जाता है । उन वेदों के सहारे ही ऋषिगण आपके चरणों का अन्वेषण करते हैं ।

किञ्चाघमर्षमघनाशकम्० इत्यादि जिन नदियों का जल पापों का विनाश करने वाला है उनमें श्रेष्ठ नदी गङ्गा का उद्गम स्थान भी श्रीभगवान् का चरण कमल ही है । अतएव गङ्गा का सेवन करने वाले भी गङ्गा के उद्गम स्थान श्रीभगवान् के चरणों को ही प्राप्त करते हैं ॥४०॥

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४१॥

अन्वयः— ते तत् अङ्घ्रिसरोजपीठम् यत् श्रद्धया श्रुतवत्या भक्त्या च परिमृज्यमाने हृदये अवधाय वैराग्य बलेन ज्ञानेन धीराः भवन्ति ॥४१॥

अनुवाद— हम आपके चरण कमलों की चौकी की शरणागति करते हैं जिसे भक्तजन श्रद्धा तथा श्रवण रूप भक्ति के द्वारा परिमार्जित अपने अन्तःकरण में ध्यान द्वारा स्थापित करके वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

ननु विषयाकृष्टचित्तानां कुतस्तदन्वेषणं तत्राहुः । यद्धृदयेऽवधाय ध्यात्वा । वैराग्यं बलं यस्य तेन ज्ञानेन धीरा भवन्ति। सरागे चित्ते ध्यानमेव कुतस्तत्राहुः । श्रद्धया श्रवणपूर्विकया भक्त्या च संमृज्यमाने संशोध्यमाने ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जिन संसारी जीवों के चित्त को विषय अपनी ओर आकृष्ट किए रहते हैं वे जीव किसलिए भगवान् के चरण कमलों का अन्वेषण करेंगे ? तो इसका उत्तर है कि भगवान् के जिस चरणकमल का अपने अन्तःकरण में ध्यान करके भक्तजन वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं, वे भक्त विषयाकृष्ट नहीं हो सकते हैं ।

सरागेचित्ते० इत्यादि जिसका अन्तःकरण राग से युक्त है वह ध्यान भी कैसे कर सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रद्धा पूर्वक श्रवण तथा कीर्तन आदि रूप भक्ति से जिनका हृदय स्वच्छ हो गया है ऐसे भक्त पुरुष भगवान् का अपने हृदय में ध्यान कर ही सकते हैं ॥४१॥

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

अन्वयः— हे ईश विश्वस्य जन्मस्थिति संयमार्थे कृतावतारस्य ते पदाम्बुजं वयं शरणं व्रजेम यत् स्मृतं स्वपुंसाम् अभयं प्रयच्छति ॥४२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की प्राप्ति के लिए अवतार लेते है । हम आपके उन चरणों की शरणागति करते हैं आपके वे चरण स्मरण करनेवाले अपने भक्तों को अभयप्रदान कर देते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तानुग्रहं स्मरन्त आहुः-विश्वस्येति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणकमल अपने भक्तों पर जैसी कृपा करते हैं उसका स्मरण करते हुए देवताओं ने **विश्वस्य० इत्यादि** श्लोक को कहा है । श्रीभगवान् सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि आदि का कार्य करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और श्रीभगवान् के चरण कमल तो स्मरण करने वाले अपने भक्तों को स्मरण करने मात्र से ही अभय प्रदान कर देते हैं ।।४२।।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ।।४३।।

अन्वयः— देह गेहे मम अहम् इति ऊढदुराग्रहाणाम् पुंसां सानुबन्धे असति पुर्याम् वसतः अपि यत् सुदूरं तत् ते पदाब्जं व्रजेम ।।४३।।

अनुवाद— जिन लोगों का तुच्छ देह तथा गृह आदि में एवं उपकरणों से युक्त शरीर में भी अहंत्व एवं ममत्व का दुराग्रह बना हुआ है ऐसे लोगों के शरीर में भी यद्यपि आप अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी ऐसे लोगों से आपके चरण कमल अत्यन्त दूर बने रहते हैं । ऐसे आपके चरण कमलों की हम शरणागति करते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अन्तर्यामितया नित्यं संनिहितेऽनर्थकं व्रजनमित्याशङ्क्याहुः-यदिति । सानुबन्धे सोपकरणे । असति तुच्छे । पूर्यां स्वदेह एव वसतोऽपि यत्सुदूरं दुष्प्रापम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं, किन्तु आपके चरण उन लोगों से अत्यन्त दूर यह सोचकर रहते हैं कि उन शरीरों में जाना व्यर्थ है । इसी अर्थ का प्रतिपादन देवताओं ने इस श्लोक में किया है । सानुबन्धे पद का अर्थ है उपकरणों से युक्त, असति का अर्थ है तुच्छ, पुरी शब्द शरीर का वाचक है । सुदूर शब्द का अर्थ है दुष्प्राप्य। अर्थात् अपने तुच्छ देह और गेह में ही अहंत्व और ममत्व के अभिमान से युक्त मनुष्य के भी शरीर में श्रीभगवान् का नित्य सन्निधान बना हुआ है किन्तु वे दुराग्रही पुरुष परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।।४३।।

तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ।।४४।।

अन्वयः— हे परेश असद्वृत्तिभिः अक्षिभिः पराहृतान्तर्मनसः ते नूनं तान् वै न पश्यन्ति ये उरुगायपदन्यास विलासलक्ष्म्याः विशदाशयाः ।।४४।।

अनुवाद— हे परमात्मन् जिन लोगों का मन बहिर्मुख इन्द्रियों के कारण बाह्य विषयों में ही लगा रहता है ऐसे लोग उन भगवद् भक्तों का दर्शन भी नहीं कर पाते हैं; जो भगवद्भक्त आपके चरणविन्यास की शोभा के विशेषज्ञ हैं । इसी कारण आपके चरण उन लोगों से सदा दूर रहते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि हृदिस्थस्यापि पदाब्जं केषांचित्सुदूरं तर्ह्यन्येषामपि तथैव स्यादविशेषादित्याशङ्क्याहुः । तानिति । असद्वृत्तिभिर्बहिर्मुखैरक्षिभिरिन्द्रियैः पराहृतं दूरमपहृतमन्तस्थं मनो येषां ते । अथो अतएव ते नूनं तान्न पश्यन्ति । वै प्रसिद्धम्।

कुतः पुनस्तेषां तत्सङ्गः स्यात् । कान् ते तव पदन्यासो गमनं तस्य विलासो विभ्रमस्तस्य लक्ष्मीः शोभा तस्य ये त्वल्लीलाकथादिभिः शोभमानांस्त्वद्भक्तानित्यर्थः । पथ इति लक्ष्या इति च पाठे त्वत्पदन्यासविलासो लक्ष्यो येषां तान् । पथस्त्वन्मार्गभूतान्सतो मार्गान्वा श्रवणादीन्न पश्यन्तीत्यर्थः । यद्वा ये एवंभूता भागवतास्ते तानुन्मत्तान्नूनं नैव पश्यन्तीत्यन्वयः । सत्सङ्गाभावेन हरिकथाश्रवणाभावाद्धृदि स्थितमपि तेषां सुदूरमिति भावः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हृदय में विद्यमान भी मेरे चरणकमल कुछ लोगों के लिए अत्यन्त दूर हैं तो उसी तरह से दूसरे लोगों के लिए भी वे अत्यन्त दूर रह सकते हैं, तो इस प्रकार की आशङ्का करके देवों ने **तान् वै०** **इत्यादि** श्लोक को कहा— अर्थात् बहिर्मुख इन्द्रियों के होने के कारण जिन लोगों का मन सदा बाह्य विषयों में ही लगा रहता है वे लोग तो आपके चरणों को निश्चित रूप से नहीं देखते हैं । अतएव उन लोगों का उन चरणों से सङ्ग कैसे हो सकता है ? जो लोग आपके चरणों के विन्यासजन्य शोभा के जानकार हैं, उन आपके भक्तों का वे दर्शन भी नहीं कर पाते हैं, तो फिर आपके भक्तों का उनके साथ सङ्ग ही कैसे हो सकता है ? जहाँ पर **अथ** के स्थान पर **पथ** का तथा **लक्ष्म्याः** के स्थान पर **लक्ष्या** पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन भक्तों का आपके पदविन्यास ही लक्ष्य हैं,उन भक्तों का दर्शन नहीं पाते हैं । अथवा आपके मार्गभूत सन्मार्ग को जो अर्थात् श्रवणादि को नहीं देखते हैं । **यद्वा० इत्यादि** अथवा आपके जो भक्त है उन भगवद् भक्तों को नहीं देखते है । सत्सङ्ग का अभाव होने के कारण वैसे लोग श्रीहरि की कथा को नहीं सुनते हैं । ऐसे लोगों के हृदय में विद्यमान रहने पर भी उन लोगों के लिए श्रीहरि के चरण अत्यन्त दूर ही हैं ।।४४।।

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ।।४५।।

अन्वयः— हे देव ते कथासुधायाः पानेन प्रवृद्धभक्त्या ये विशदाशयाः ते वैराग्यसारं बोधं प्रतिलभ्य यथाञ्जसा वैकुण्ठधिष्ण्यम् अन्वीयुः ।।४५।।

अनुवाद— हे देव ! आपके कथारूपी अमृत का पान करने के कारण जिनकी भक्ति समृद्ध हो गयी है, उसके फलस्वरूप निर्मल अन्तःकरण वाले भगवद् भक्त वैराग्य प्रधान आत्मज्ञान को प्राप्त करके अनायास आपके वैकुण्ठलोक में चले जाते हैं ।।४५ ।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव स्फुटयन्ति-पानेनेति द्वाभ्याम् । वैराग्यं सारो बलं यस्य बोधस्य तं लब्ध्वा । अन्वीयुः प्राप्नुयुः । अकुण्ठधिष्ण्यं वैकुण्ठलोकम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

चैवालिसवें श्लोक में ही कही गयी बातों को देवताओं ने स्पष्ट करते हुए कहा— यद्यपि श्रीभगवान् सबों के हृदय में समान रूप से विद्यमान रहते हैं फिर में भगवद्भक्त श्रीहरि की कथामृत का श्रवण करके सदा मग्न रहते हैं । उन लोगों को संसार से वैराग्य हो जाता है और वे आत्मज्ञान को प्राप्त करके बिना किसी प्रयास के वैकुण्ठलोक को प्राप्त कर लेते हैं ।।४५।।

तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ।।४६।।

अन्वयः— तथा अपरे च धीराः समाधियोगबलेन बलिष्ठां प्रकृतिं विजित्य त्वामेव पुरुषं विशन्ति तेषांश्रमः स्यात् सेवया तु न ।।४६।।

अनुवाद— दूसरे धीर पुरुष चित्त के निरोध रूप समाधि योग के सहारे बलवती प्रकृति को जित लेते है और परं पुरुष आप में ही प्रवेश कर जाते हैं। उन लोगों को भी श्रम करना पड़ता है किन्तु सत्सङ्ग रूपी सेवा के मार्ग से मुक्ति को प्राप्त करने वालों को कोई भी कष्ट नहीं होता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनि समाधिर्मन: स्थैर्यं स एव योग उपायस्तस्य बलेन। ज्ञानयोगत: श्रमेण मोक्ष: सत्सङ्गतस्त्वत्कथाश्रवणादिना त्वनायासेनैव। अहंममताविष्टानां तु न कथंचिदिति भाव: ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

चित्त की वृत्ति को रोककर मन को आत्मा में ही लगाये रखने को योग कहते हैं। योग जन्य ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करने में परिश्रम तो होता ही है। किन्तु आपकी कथा का श्रवण आदि रूप सत्सङ्ग के द्वारा तो अनयास ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। जो लोग अहंत्व ममत्व आदि की भावना से ग्रस्त हैं वे तो कभी भी वैकुण्ठ को नहीं प्राप्त कर सकते ॥४६॥

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभि: स्म।
सर्वे वियुक्ता: स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

अन्वय:— हे आद्य तत् ते वयं त्वया लोकसिसृक्षया अनुसृष्टा: त्रिभि: आत्मभि: सर्वे वियुक्ता: स्म अतएव स्वविहारतन्त्रं प्रतिहर्तवे न शक्नुम: ॥४७॥

अनुवाद— हे आदि पुरुष हमलोग आपके हैं। आपने विश्व की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमश: सृष्टि की है। किन्तु सत्त्व, रजस् एवं तमस् से युक्त होने के कारण हमलोग आपस में नहीं मिल पाते हैं। फलत: आपकी क्रीडा के साधनभूत ब्रह्माण्ड की रचना करके आपको समर्पित नहीं कर पा रहे हैं। अतएव आप अपना ज्ञान हमें प्रदान करें ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्तुत्वा प्रार्थयन्ते चतुर्भि:। तत्तस्मात् हे आद्य, ते त्वदीया वयं यस्माल्लोकानां सिसृक्षया त्वयाऽनुसृष्टा क्रमेणोत्पादिता: त्रिभिरात्मभि: सत्त्वादिस्वभावै: अतएव विरूद्धस्वभावत्वाद्वियुक्ता: सन्तो यदर्थं सृष्टास्तत्स्वविहारतन्त्रं त्वत्क्रीडोपकरणं ब्रह्माण्डं ते तुभ्यं प्रतिहर्तवे प्रतिहर्तुं समर्पयितुं न शक्नुम:, अतस्त्वं न: स्वचक्षु: परिदेहीति त्रयाणां श्लोकानां चतुर्थेनान्वय: ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके देवगण श्रीभगवान् की प्रार्थना चार श्लोकों से करते हैं। अतएव हे आदिपुरुष ! हमलोग आपके ही हैं, क्योंकि आपने ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमश: सृष्टि की है। हमलोगों का सत्त्वाादि गुण युक्तता ही स्वभाव है। फलत: परस्पर विरोधी स्वभाव वाले होने के कारण आपस में हम नहीं मिल पाते हैं। आपने जिसलिए हमलोगों की सृष्टि की है आपकी क्रीडा के साधन भूत ब्रह्माण्ड की रचना करके उसको आपको समर्पित करने में हमलोग असमर्थ हैं। अतएव आप हमलोगों को अपना ज्ञान प्रदान करें। इस तरह तीन श्लोकों का चौथे श्लोक से सम्बन्ध है ॥४७॥

यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहा: ॥४८॥

अन्वय:— हे अज ! काले यावत् ते बलिं हराम वयं च यथा यत्र अन्नम् अदाम ते इमे लोका: यथा उभयेषां बलिं हरन्त: अनूहा: अन्नम् अदन्ति ॥४८॥

अनुवाद— हे अजन्मा ! भगवन् जिस तरह से हम ब्रह्माण्ड की रचना करके समयानुसार आपको भोग प्रदान कर सकें और हमलोग भी जहाँ पर रहकर अपने भोगों को प्राप्त कर सकें, तथा ये सभी जीव भी आपको तथा हमलोगों को भोग प्रदान करें स्वयम् भी बिना किसी विघ्न के अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ऐसा ज्ञान आप हमें प्रदान करें ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

असामर्थ्यमेव प्रपञ्चयितुं कार्यस्यातिवैचित्र्यमाहुः । भो अज, काले तत्तदवसरे बलिं भोगं यावत्साकल्येन ते तुभ्यं हराम समर्पयाम । यथा येन प्रकारेणान्नमदाम भक्षयामेत्यनेनान्नमात्रं चास्माकम्, ऐश्वर्येण तु भोगस्तवैवेत्युक्तम् । उभयेषां तव चास्माकं च यत्र स्थित्वा इमे जीवा अनूहा अप्रत्यूहा निर्विघ्नाः । यद्वा अनूहा अवितर्काः, निःसंशया इत्यर्थः । तथाच श्रुतिः- 'ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदाम' इति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

सामर्थ्य के अभाव को ही विस्तार से बतलाने के लिए कार्य की अत्यन्त विचित्रता को बतलाते हैं । हे अजन्मा भगवन् ! जिस प्रकार से समयानुसार हम आपको पूर्ण रूप से बलि प्रदान कर सकें तथा जिस तरह से हमलोग अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें; अर्थात् हमलोग तो केवल अन्न प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु ऐश्वर्य रूपी भोग तो आपको ही प्राप्त होगा । और जहाँ रहकर ये सभी जीव आपको तथा हमलोगों को भी भोग प्रदान कर सकें और निर्विघ्न बने रहें अथवा संशय रहित बने रहें ऐसा ज्ञान हमें प्रदान करें । श्रुति भी कहती हैं- **ता एनम् इत्यादि** उन देवताओं ने प्रजापति से कहा आप हमें आश्रय प्रदान करें जिसमें स्थित रहकर हम अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ॥४८॥

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥

अन्वयः— नः सान्वयानां सुराणाम् कूटस्थः पुराण पुरुषः त्वम् आद्यः अजः त्वं गुणकर्मयोनौ अजायां शक्त्यां कवि रेतः आदधे ॥४९॥

अनुवाद— कार्यवर्ग सहित हम देवताओं के भी निर्विकार अन्जमा तथा पुराण पुरुष आप ही आदि कारण है । सृष्टि काल में अजन्मा आपने ही अपनी माया शक्ति में चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया था ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अवश्यं च त्वयाऽस्माकमेषां च कार्योपाधीनां जीवानां वृत्तिः परिकल्पनीया जनकत्वादित्याहुः । नोऽस्माकं सान्वयानां सकार्याणाम् । यद्वा । अन्वेतीत्यन्वयः कारणं तत्सहितानां त्वमेवाद्यः कारणम् । अत्र हेतवः । कूटस्थोऽविक्रियः । पुरुषोऽधिष्ठाता। पुराणः पुरातनः । एतदुपपादयन्ति -त्वमिति । हे देव, अज एव त्वं गुणानां सत्त्वादीनां कर्मणां जन्मादीनां च योनौ कारणभूतायां शक्त्यां मायायां प्रथमं रेत आदधे । निहितवानसीत्यर्थः । कीदृशम् । कविं सर्वज्ञं महत्तत्त्वरूपम् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

आपको अवश्य ही हम कार्योपधि जीवों की वृत्ति की परिकल्पना करनी चाहिये क्योंकि आप ही कार्य वर्ग सहित हमलोगों को उत्पन्न करने वाले हैं । अथवा अन्वय शब्द क्रम का बोधक है । इस तरह अर्थ होगा कि हमलोगों के तथा हमारे जो कारण महदादि हैं उनके भी कारण आप ही हैं । क्योंकि आप निर्विकार अधिष्ठाता और सबसे पुरातन हैं ।

एतदेवोपपादयति० इत्यादि- इसी अर्थ का प्रतिपादन इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा किया गया है ।

हे देव आप अजन्मा हैं और सत्त्व आदि गुणों तथा जन्म आदि के कारणभूत माया में आपने महत् तत्त्व रूप सर्वज्ञ समष्टि जीव रूप वीर्य का आधान किया है ।।४९।।

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अन्वयः— हे आत्मन् देव ! ततः सत्प्रमुखा वयं यदर्थे बभूविम ते किं करवाम यदनुग्रहाणां नः क्रियार्थे शक्त्या स्वचक्षुः परिदेहि ।।५०।।

अनुवाद— हे परमात्मन् देव ! महत् तत्त्वादिरूप हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए है, उसके बारे में हम क्या करें । ब्रह्माण्ड रूप कार्य की रचना करने के लिए आप हमें अपनी शक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति को भी प्रदान करें जिससे कि हमलोग ब्रह्माण्ड की रचना कर सकें । हमलोग पर कृपा करने वाले आप ही हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तथा हे आत्मन् देव, सत्प्रमुखा महदादयो वयं यदर्थं बभूविम, तत्किं ते कार्यं करवाम। सृष्टिमिति चेत्तत्राहुः । तर्हि नोऽस्माकं त्वं स्वचक्षुः स्वीयं ज्ञानं शक्त्या सह परिदेहि प्रयच्छ । यस्मात्त्वत्त एवानुग्रहो येषां ते यदनुग्रहास्तेषामस्माकम् । क्रियार्थे इयानेवैतावाननुग्रहो येषामित्येकं वा पदम् । त्वदीयज्ञानक्रियाशक्तिभ्यामेव वयं सृष्टौ क्षमा नान्यथेत्यर्थः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

तथा आत्म स्वरूप भगवन् महदादि प्रधान हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए हैं, आपके उस कार्य के विषय में हम क्या करें । यदि आप कहें कि तुमलोग ब्रह्माण्ड की सृष्टि करो तो इसके विषय में देवताओं ने कहा यदि ऐसी बात है ते आप हमलोगों को क्रियाशक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति प्रदान करें । क्योंकि आपके द्वारा अनुगृहीत होने पर ही हम ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ होंगे नही तो नहीं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के पाँचवे अध्याय के भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।५।।

छठा अध्याय

विराट् शरीर की उत्पत्ति का वर्णन

ऋषिरुवाच

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः । प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥१॥
कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः। त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥

अन्वयः— सः पुरुक्रमः ईश्वरः इति तासां स्वशक्तीनाम् असमेत्य सतीनाम् प्रसुप्तलोकन्तन्त्राणां गतिम् निशाम्य तदा कालसंज्ञा देवीं बिभ्रत् त्रयोविंशत् तत्त्वानां गणं युगपत् आविशत् ।।१-२।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी शक्तिभूत महदादि तत्त्वों को पृथक्-पृथक् रहने के कारण विश्व की रचना में असमर्थ देखकर दिव्यकालशक्ति को स्वीकार करके एक ही समय में महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्च महाभूत पञ्चतन्मात्रायें तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ इन तेइसों के समूह में प्रवेश कर गये ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे तैरीश्वराविष्टैः सृष्टिमाह विराट्तनोः । अधिदैवादिभेदं च तत्रैव भगवत्कृतम् । स्वशक्तीनां महदादीनामसमेत्यामिलित्वा सतीनां स्थितानाम् । प्रसुप्तं लोकतन्त्रं विश्वरचना यासाम् । यद्वा प्रसुप्तजीवोपकरणानां गतिं स्थितिं दृष्ट्वा आविशदित्युत्तरेणान्वयः। कालेन संज्ञा उद्बोधो यस्याः, कालयति क्षोभयति स्वकार्याणीति वा कालसंज्ञा प्रकृतिस्तां शक्तिम् । प्रकृत्या सह प्रवेशस्त्रयोविंशतितत्त्वानामित्युक्तम् । अन्तर्यामितया प्राविशत् ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में ईश्वर से अविष्ट उन महदादिकों के द्वारा विराट् शरीर की सृष्टि बतलायी गयी है और उसमें ही अधिदैव इत्यादि भेदों को परमात्मने कर दिया ॥१॥

अपनी शक्ति महदादिकों में जो पृथक् पृथक् विद्यमान थीं और उसके कारण विश्वरचना का कार्य प्रसुप्त था । अथवा जिनके जीवोपकरण प्रसुप्त थे । उनकी स्थिति को देखकर श्रीभगवान् कालशक्ति के द्वारा जिसका उद्बोध होता है, वह प्रकृति अथवा कालयति अर्थात् जो अपने कार्यों में क्षोभ पैदा कर देती है, उस प्रकृति के साथ प्रवेश करने के कारण तेइस तत्त्वों में भगवान् प्रवेश किए । अर्थात् उन सभी महदादि तत्त्वों में भगवान् प्रकृति के साथ अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये ॥१-२॥

सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् । भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

अन्वयः— तं गणम् चेष्टारूपेण अनुप्रविष्टः भगवान् सुप्तं कर्म प्रबोधयन् भिन्नं संयोजयामास ।।३।।

अनुवाद— उन तेइसों के भीतर चेष्टा रूप से प्रवेश करके श्रीभगवान् ने उनके सोये हुए अदृष्ट को जगाते हुए उन सबों को एक में मिला दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

चेष्टारूपेण क्रियाशक्त्या । कर्म तेषां क्रियां जीवानामदृष्टं वा ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों में चेष्टा रूप से अर्थात् क्रिया शक्ति के द्वारा उन सबों की क्रिया अथवा जीवों के अदृष्ट को भगवान् ने जागृत कर दिया और उसके पश्चात् वे सभी प्राकृत तत्त्व जो अलग-अलग थे उन सबों को एक में मिला दिया ॥३॥

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिकोगणः । प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥

अन्वयः— प्रबुद्धकर्मा त्रयेविंशतिकोगणः दैवेन प्रेरितः एवम् त्रिभिः अधिपूरुषम् अजनयत् ॥४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा जिनका अदृष्ट कार्योन्मुख बना दिया गया था इस प्रकार के महादादि तेइसों के समूह ने अपने अंश से विराट् को उत्पन्न किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रबुद्धं कर्म क्रियाशक्तिर्यस्य स त्रयोविंशतेर्गणः दैवेनेश्वरेण प्रेरितः । मात्राभिरंशैः । अधिपूरुषं विराड्देहम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी क्रिया शक्ति को श्रीभगवान् ने प्रबुद्ध कर दिया था इस प्रकार का तेइस तत्त्वों के गण ने अपने अंश से विराट् शरीर को उत्पन्न किया ॥४॥

परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृड्गणः । चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥५॥

अन्वयः— परेण मात्रया स्वस्मिन् विशता विश्वसृड्गणः अन्योन्यम् आसाद्य चुक्षोभ, यस्मिन् लोकाश्चराचराः ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने उस ब्रह्माण्ड नामक शरीर में अपने अंश से प्रवेश किया ब्रह्माण्ड की रचना करने वाला महदादि का गण एक दूसरे से मिलाकर परस्पर में परिणाम किया । यह तत्त्वों का परिणाम ही विराट् पुरुष है उसी में सभी चराचर जीव विद्यमान हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

जननमेवाह । परेणेश्वरेण । विश्वसृजां सत्त्वानां गणः । मात्रया चुक्षोभ परिणतो न सर्वात्मना । यस्मिँल्लोकाः स्थिताः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को ही बतलाते हुए **परेण इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । परमात्मा के उस विराट् शरीर में प्रवेश कर जाने पर विश्व की रचना करने वाले तेइस तत्त्वों के समूह आपस में मिलकर चराचरात्मक ब्रह्माण्ड में क्षोभ को उत्पन्न किया । किन्तु वह परिणाम पूर्णरूप से नहीं था ॥५॥

हिरणमयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् । आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥६॥

अन्वयः— सर्वसत्त्वोपबृंहितः सः हिरण्मयः पुरुषः अप्सु सहस्रपरिवत्सरान् अण्डकोशे अप्सु उवास ॥६॥

अनुवाद— सभी चराचरात्मक जीवों के साथ वह हिरण्यमय पुरुष (विराट् पुरुष) उस ब्रह्माण्ड में एक हजार दिव्य वर्षों तक जल में निवास किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स पुरुषोऽधिपुरुष इत्युक्तः आण्डकोशे ब्रह्माण्डकोशे ब्रह्माण्डमध्ये । सर्वैः सत्त्वैरनुशायिभिर्जीवैः सहितः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वह विराट् पुरुष जिसको अधिपुरुष कहा गया है, वह अपने साथ शयन करने वाले समस्त जीवों के साथ उस ब्रह्माण्ड रूपी अपने आश्रय में जल के भीतर एक हजार दिव्य वर्षों तक पड़ा रहा ॥६॥

स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् । विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

अन्वयः— स वै विश्वसृजां गर्भः देवकर्मात्मशक्तिमान् अत्मना आत्मानं एकधा, दशधा त्रिधा च विबभाज ॥७॥

अनुवाद— विश्व की रचना करने वाले उन महदादिकों का गर्भ (कार्य) देवशक्ति, कर्मशक्ति और आत्मशक्ति

से अपने आपको एक दश और तीन भागों में विभक्त कर दिया । अर्थात् देवशक्ति यानी ज्ञानशक्ति के द्वारा एक हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में कर्मशक्ति यानी क्रियाशक्ति के द्वारा दश प्राणों के रूप में और आत्म शक्ति के द्वारा अध्यात्म, अधिदेव तथा अभिभूत के इन तीन रूपों में अपने आपको विभक्त कर दिया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

गर्भः कार्यरूपो विराट् । देवशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तयैकधा हृदयावच्छिन्नचैतन्यरूपेण । कर्मशक्तिः क्रियाशक्तिस्तया दशधा प्राणरूपेण प्राणादयः पञ्च 'नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनजयः' इत्येते पञ्च । एवं वृत्तिभेदेन दशविधः प्राणः । आत्मशक्तिर्भोक्तृशक्तिस्तयाऽध्यात्मादिभेदेन त्रिधात्मानं विभक्तं कृतवान् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

महदादि का कार्य भूत जो विराट् था वह देवशक्ति (ज्ञान शक्ति) कर्मशक्ति (क्रिया शक्ति) तथा आत्म शक्ति (भोक्तृशक्ति) से युक्त था, उसने अपने आप को ज्ञानशक्ति के द्वारा हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में; क्रिया शक्ति के द्वारा दशप्राणों के रूप में और आत्मशक्ति (भोक्तृशक्ति) के द्वारा अध्यात्म इत्यादि के रूप में विभक्त कर दिया। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय ये दश प्राण हैं । अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये अध्यात्मादि हैं ।।७।।

एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः । आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ।।८।।

अन्वयः— एष हि अशेषसत्त्वानाम् आत्मा परमात्मनः अंशः, आद्य अवतारः यत्र असौ भूतग्रामः विभाव्यते ।।८।।

अनुवाद— यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा है, जीव होने के कारण परमात्म का अंश है, प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है, सम्पूर्ण जीव समूह इसी में प्रकाशित होता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

एवं विभागसामर्थ्याय तस्योत्कर्षमाह- एष हीति । अशेषसत्त्वानां प्राणिनामात्मा । व्यष्टीनां तदंशत्वात् । अंशो जीवः। अवतारत्वोक्तिस्तस्मिन्नारायणाविर्भावाभिप्रायेण ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के विभाग रूपी सामर्थ्य के लिए **एष हि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उसके उत्कर्ष का वर्णन करते हैं । यह विराट् पुरुष सभी प्राणियों की आत्मा है, जीव रूप होने के कारण उस परमात्मा का अंश है प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है । इसी में नारायण की अभिव्यक्ति होने के कारण इस विराट् पुरुष को अवतार कहा गया है ।।८।।

साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा । विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ।।९।।

अन्वयः— एष विराट् साध्यात्मः साधिदैवः साधिभूत इति त्रिधा, दशविधः प्राणः, हृदयेन च एकविधः ।।९।।

अनुवाद— यह विराट् अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप से तीन प्रकार का प्राण रूप से दश प्रकार का और हृदय रूप से एक प्रकार का है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वश्लोकार्थं विवृणोति । साध्यात्मः अध्यात्मानीन्द्रियाणि तत्सहितः । विराडिति सर्वत्र ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आठवें श्लोक की व्याख्या की गयी है । अध्यात्म शब्द से इन्द्रियों को कहा गया है । वह विराट् ही अध्यात्मादि भेद से तीन प्रकार का है । प्राण रूप से वह दश प्रकार का है और वह हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥९॥

स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः । विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥

अन्वयः— विश्वसृजाम् ईशः भगवान् विज्ञापितं स्मरन् स्वेन तेजसा एषां विवृत्तये विराजम् अतपत् ॥१०॥

अनुवाद— महदादिकों के स्वामी श्रीभगवान् उन सबों की प्रार्थना को स्मरण करते हुए उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपने चेतना रूप तेज के द्वारा विराट् को जगाये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अध्यात्मादिभेदं प्रपञ्चयितुमाह–स्मरन्निति । विज्ञापितं '**यावद्बलिं तेऽज हराम**' इत्यादि । स्वेन तेजसा चिच्छक्त्या । अतपत् एवं करिष्यामीत्यालोचितवान् '**यस्य ज्ञानमयं तपः**' इति श्रुतेः । विवृत्तये विविधवृत्तिलाभाय ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अध्यात्म इत्यादि भेदों को विस्तार से बतलाने के ही लिए स्मरन् विश्वसृजाम् इत्यादि श्लोक कहा गया है। देवताओं ने **यावदबलिं देव इत्यादि** श्लोक से प्रार्थना की थी उसका स्मरण करते हुए श्रीभगवान् ने उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपनी चित् शक्ति के द्वारा विचार किया कि मैं विराट् को इस प्रकार का कर दूँगा । श्रुति भी कहती है, यस्य ज्ञानमयं तपः । अर्थात् जिस परमात्मा का तप ज्ञान स्वरूप है । उन सबों को अनेक प्रकार की वृत्ति प्रदान करने के लिए परमात्मा ने उस विराट् को उद्बोधित किया ॥१०॥

अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह । निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अन्वयः— अथ अभितप्तस्य तस्य देवानां कति आयतनानि निरभिद्यन्त तानि गदतः मे शृणु ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् परमात्मा के सङ्कल्प के पश्चात् जगे हुए उस विराट् में देवताओं के कितने आश्रय प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ इसे आप सुनें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

मे मत्तः श्रुणु ॥११॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा ने सङ्कल्प के द्वारा उस विराट् को जगाया उसके परश्चात् विराट् पुरुष के कितने आयतन प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ॥११॥

तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लाकपालोऽविशत्पदम् । वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

अन्वयः— तस्य आस्यं निर्भिन्न तत् पदं लोकपालः अग्निः स्वांशेन वाचा आविशत् यया असौ वक्तव्यं प्रतिपद्यते ॥१२॥

अनुवाद— सर्व प्रथम उस विराट् पुरुष का मुख प्रकट हुआ उसमें अग्नि नामक लोकपाल अपने अंशभूत वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलनें का काम करता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आयतनान्येवाह– तस्याग्निरित्यादि चतुर्दशभिः । आस्यं निर्भिन्नं पृथग्जातम् । पदं स्वस्थानम् । स्वांशेन स्वशक्त्या वाचा सहाविशत् । असौ जीवः वक्तव्यं प्रतिपद्यते, शब्दमुच्चारयतीत्यर्थः । सर्वत्र यन्निर्भिन्नं तदधिष्ठानम् । अग्न्यादिप्रथमान्तमधिदैवम्। वागादीन्द्रियम् । तृतीयान्तमध्यात्मम् । प्रतिपत्तव्यमधिभूतम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि इत्यादि चौदह श्लोकों के द्वारा आयतनों का ही वर्णन मैत्रेय महर्षि करते हैं । सर्वप्रथम उस विराट् का मुख प्रकट हुआ । अपने अंश भूत वागिन्द्रिय के साथ अग्नि नामक लोकपाल अपने उस मुख नामक वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलने का काम करता है । सब जगह जो प्रकट होता है, वही आश्रय है । प्रथमान्त से बतलाये गये अग्नि आदि अधिदैव हैं । वाणी आदि इन्द्रियाँ जो हैं उनको तृतीयान्त पद के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । तथा प्रतिपत्तव्य रूप से अधिभूत को कहा गया है ॥१२॥

निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः । जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

अन्वयः— हरेः तालु निर्भिन्नं स्वांशेन जिह्वया लोकपालः वरुणः पदम् आविशत् यया असौ रसं प्रतिपद्यते ॥१३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का तालु प्रकट हुआ अपने उस स्थान में वरुण नामक लोकपाल अपने अंश भूत रसनेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उसी के द्वारा जीव रस का अनुभव करता हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्विराजः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हरि शब्द से इस श्लोक में विराट् पुरुष को कहा गया है ॥१३॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् । घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥

अन्वयः— विष्णोः नासे निर्भिन्ने तत् पदं अश्विनौ घ्राणेनांशेन आविशताम् । यतः गन्धस्य प्रतिपत्तिः भवेत् ॥१४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की दोनों नासिकाएँ प्रकट हुयी उस स्थान में दोनों अश्विनी कुमार अपने अंशभूत घ्राणेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उसी के द्वारा जीव गन्ध का ग्रहण करता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१४॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लाकपालोऽविशद्विभोः । चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यत भवेत् ॥१५॥

अन्वयः— विभोः अक्षिणी निर्भिन्ने तत्र लोकपालः त्वष्टा चक्षुषा अंशेन अविशत् यतः रूपाणां प्रतिपत्ति र्भवेत् ॥१५॥

अनुवाद— उसके प्रश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों नेत्र प्रकट हुए । उसमें त्वष्टा (आदित्य) नामक लोकपाल अपने अंशभूत चक्षुरिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उस चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य रूपों का ग्रहण करता हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

त्वष्टा आदित्यः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा शब्द से आदित्य को कहा गया है ॥१५॥

निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् । प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

अन्वयः— अस्य चर्माणि निभिन्नानि येषु लोकपाल अनिलः अंशेन प्राणेन आविशत् येनासौ संस्पर्श प्रतिपद्यते ॥१६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की त्वचा प्रकट हुयी उसमें लोकपाल वायु अपने अंशभूत त्वगिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव स्पर्श का अनुभव करता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेनेति । प्राणवद्देहव्यापिना त्वगिन्द्रियेणेत्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्राण के समान सम्पूर्ण शरीर में व्यापक त्वगिन्द्रिय के साथ वायु त्वचा में प्रवेश कर गया ।।१६।।

कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः । श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ।।१७।।

अन्वयः— तदनन्तरं तस्य कर्णौ विनिर्भिन्नौ तत्र श्रोत्रेणांशेन स्वं धिष्ण्यं दिशः विविशुः येन सिद्धिं प्रपद्यते ।।१७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों कान प्रकट हो गये और अपने उन आश्रय भूत स्थानों में अपने अंशभूत श्रोत्रेन्द्रिय के साथ दिशाएँ प्रवेश कर गयीं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

शब्दस्य सिंद्धिं ज्ञानम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष के शरीर में जब दोनों कान प्रकट हो गये तो उनमें श्रोत्रेन्द्रिय नामक अपने अंश के साथ दिशाएँ अधिष्ठातृदेवता के रूप में प्रवेश कर गयीं । जीव उस श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ही सुनने का काम करता है ।।१७।।

त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः । अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ।।१८।।

अन्वयः— अस्य विनिर्भिन्नां त्वचम् रोमभिः अंशेन ओषधीः स्वं धिष्ण्यं विविशुः यैः असौ कण्डूं प्रतिपद्यते ।।१८।।

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की निकली हुयी त्वचा में अपने आश्रयभूत रोमों के साथ ओषधियाँ प्रवेश कर गयीं । रोमों के द्वारा ही जीव खुजली का अनुभव करता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

त्वचं चर्म । ओषधीरोषधयः । त्वगिन्द्रियस्यैव स्थानभेदेन विषयद्वयं कण्डूः स्पर्शश्च । तत्र चायं नामभेदो देवताभेदश्चेति द्वितीयस्कन्ध एव व्याख्यातम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में त्वचा शब्द से चमड़े को कहा गया है । त्वगिन्द्रिय के ही स्थान के भेद से दो विषय हो गये खुजली और स्पर्श देवता की भिन्नता के ही कारण यहाँ पर दो नाम बतलाये गये हैं । इस अर्थ की व्याख्या दूसरे स्कन्ध में ही की जा चुकी है ।।१८।।

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् । रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ।।१९।।

अन्वयः— तस्य मेढ्रं विनिर्भिन्नं तत्र रेतसांशेन कः स्वधिष्ण्यं उपाविशत् । येन असौ आनन्दं प्रतिपद्यते ।।१९।।

अनुवाद— उस विराट् पुरुष के शरीर में लिङ्ग उत्पन्न हुआ उस अपने आश्रयभूत स्थान में अपने अंशभूत रेतस् के साथ प्रजापति ने प्रवेश किया । उस रेतस् के द्वारा ही जीव आनन्द विशेष का अनुभव करता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

कः प्रजापतिः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ कः शब्द से प्रजापति को कहा गया है ।।१९।।

गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् । पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

अन्वयः— तदनन्तरं पुंसः गुदं विनिर्भिन्नं तत्र लोकेशः मित्रः स्वांशेन पायुना अविशत् येन असौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की गुदा प्रकट हुयी और उसमें मित्र नामक देवता अपने अंशभूत पायु इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गयी । पायू इन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य मलत्याग करता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् । वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

अन्वयः— अस्य हस्तौ विनिर्भिन्नौ तत्र वार्तया अंशेन स्वर्पतिः इन्द्रः आविशत् यया वृत्तिं प्रतिद्यते ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों हाथ निकल आये उस अपने आश्रयभूत स्थान में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रयादि शक्ति के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव अपनी वृत्ति को प्राप्त करता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्पतिः स्वर्गस्य पतिः । वार्तया क्रयविक्रयादिशक्त्या वृत्तिं जीविकाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विराट् पुरुष के शरीर में दोनों हाथ निकल आये अपने आश्रयभूत उन दोनों हाथों में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रय की शक्ति के साथ अधिष्ठातृ देवता के रूप में प्रवेश कर गये। उस क्रय-विक्रय की शक्ति के द्वारा ही जीव जीविका को प्राप्त करता है ॥२१॥

पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् । गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अन्वयः— तदनन्तरं अस्य पादौ विनिर्भिन्नौ तत्र स्वांशेन गत्या लोकेशः विष्णुराविशत् यया पुरुषः प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के शरीर में दोनों पैर निकल आये और अपने आश्रयभूत उन पैरों में अपने अंशभूत गति के साथ लोकस्वामी विष्णु प्रवेश कर गये । उस गति की शक्ति द्वारा ही जीव अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् । बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥

अन्वयः— तदनन्तरं अस्य विनिर्भिन्नां बुद्धिं बोधेनांशेन धिष्ण्यं वागीशः आविशत् यतः बोद्धव्यं प्रतिपत्तिः भवेत्॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् इस विराट् पुरुष की बुद्धि उत्पन्न हुयी अपने इस स्थान में अपने अंशभूत बुद्धि शक्ति के साथ वाक्पति ब्रह्माजी प्रवेश कर गये । इस बुद्धिशक्ति के साथ ही जीव ज्ञातव्य विषयों को जान सकता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वागीश शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है । ब्रह्माजी सभी व्यवहारों के साधन भूत अध्यवसाय (निश्चय) रूपी अंश के साथ बुद्धि में प्रवेश कर गये । उस बुद्धिशक्ति के ही द्वारा जीव को व्यवहार की सारी वस्तुओं का ज्ञान होता है ॥२३॥

हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् । मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अन्वयः— ततः अस्य हृदयं निर्भिन्नं तत्र मनसा अंशेन चन्द्रमा धिष्ण्यम् अविशत् येन असौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उसमें हृदय प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चन्द्रमा अपने अंशभूत मन के साथ प्रवेश कर गये । मन के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प रूप विकारों को प्राप्त करता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विक्रियां सङ्कल्पादिरूपाम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् जब विराट् पुरुष का हृदय प्रकट हुआ तो उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उसमें अपने अंशभूत मन रूपी इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । मन रूपी आभ्यन्तरेन्द्रिय के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प को करने का काम करता है ॥२४॥

आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् । कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अन्वयः— तदनंतरं अस्य आत्मानं निर्भिन्नम् पदम् कर्मणा अंशेन अभिमानः अविशत् येन असौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् इस विराट पुरुष का अहङ्कार प्रकट हुआ अपने उस स्थान में अपने कर्म रूपी अहंवृत्ति के साथ अभिमान प्रवेश कर गया इस अहंवृत्ति के द्वारा ही जीव विभिन्न क्रियाओं को करने का काम करता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानमहंकारम् । अभिमन्यतेऽनेनेत्यभिमानो रुद्रः । कर्मणाऽहंवृत्त्या । कर्तव्यमिति क्रियाम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आत्मा शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । कर्म शब्द से अहम् अहम् इस तरह से प्रतीत होने वाली वृत्ति को कहा गया है । कर्तव्य शब्द क्रिया का बोधक है । अर्थात् अहङ्कार का अधिष्ठातृ देवता अभिमान है । अहंवृत्ति उसका अंश है । क्रिया ही उसका विषय है ॥२५॥

सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् । चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अन्वयः— तदनंतरम् अस्य सत्त्वम् विनिर्भिन्नम् तत्र धिष्ण्यम् चित्तेन अंशेन महान् उपाविशत् येन असौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का चित्त प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चित्तशक्ति के साथ महत्तत्त्व ब्रह्मा प्रवेश कर गये उस चित्त शक्ति से जीव विज्ञान को प्राप्त करता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वमिति बुद्धिचित्तयोरभेदेन निर्देशः । महानिति ब्रह्मा । चित्तेन चेतनया ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि तथा चित्त दोनों के एक होने के कारण ही चित्त को यहाँ पर सत्त्व शब्द से कहा गया है । महान् शब्द से चित्त के अधिष्ठतृ देवता ब्रह्माजी को कहा गया है । चित्त शब्द से चेतना को कहा गया है ॥२६॥

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत । गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

अन्वयः— अस्य शीर्ष्णः द्यौः पद्भ्यांधरा, नाभेः खम् उदपाद्यत् येषु गुणानां वृत्तयः सुरादयः प्रतीयन्ते।।२७।।

अनुवाद— इस विराट पुरुष के शिरोभाग से स्वर्ग, पैरों से पृथिवी और नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुए। इन लोकों में सत्त्व, रजस् एवं तमस् तीनों गुणों के परिणामभूत क्रमशः देवता, मनुष्य और प्रेत आदि देखे जाते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकोत्पत्तिमाह- शीर्ष्ण इति । वृत्तयः परिणामाः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विराट् पुरुष से त्रैलोक्य की उत्पत्ति को बतलाया गया है । विराट् पुरुष के शिरोभाग से स्वर्गलोक की उत्पत्ति हुयी, पैरों से पृथिवी की उत्पत्ति हुयी और नाभि से अन्तरिक्ष (भुवः) लोक की उत्पत्ति हुयी। स्वर्ग लोक में सत्त्व गुण के परिणाम भूत देवता रहते हैं, पृथिवी पर रजोगुण प्रधान मनुष्यों का निवास होता है और भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) में तमोगुण प्रधान प्रेतों आदि का निवास होता है ॥२७॥

आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे । धरां रजः स्वभावेन पणयो ये चताननु ॥२८॥

अन्वयः— आत्यन्तिकेन सत्त्वेन देवाः दिवं प्रपेदिरे, रजः स्वाभावेनप णयः ये च ताननु धरां प्रपेदिरे इति शेषः।।२८।।

अनुवाद— सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण देवगण स्वर्गलोक में रहते हैं रजोगुण की प्रधानता होने के कारण मनुष्य और उनके साधन स्वरूप गौ आदि भूलोक में रहते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । आत्यन्तिकेनोर्जितेन । **पण व्यवहारे** । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति पणयो मनुष्याः ताननु एतदुपकरणभूता ये गवादयस्तेऽपि धरां प्रपेदिरे ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सत्ताइसवें श्लोक में ही वर्णित अर्थ को **आत्यन्तिकेन इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा विस्तार से बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं कि देवताओं में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, इसीलिए देवता स्वर्गलोक में रहते हैं । पणयः शब्द से मनुष्यों को कहा गया है । पण व्यवहारे धातु से पणयः पद व्युत्पन्न है । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति अर्थात् यज्ञ इत्यादि कार्यों को करते रहने के कारण मनुष्यों को **पणयः** पद से कहा गया है । और यज्ञ इत्यादि कार्यों के लिए उपयोगी गौओं आदि को **ताननु** शब्द से कहा गया है। इस तरह मनुष्य तथा उनके लिए उपयोगी गौएँ आदि भूलोक में रहती हैं ॥२८॥

तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः । उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥

अन्वयः— तार्तीयेन स्वभावेन उभयोः अन्तरं भगवन्नाभिम् व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ते आश्रिताः ।।२९।।

अनुवाद— तमोगुण प्रधान स्वाभाव वाले जो रुद्र के पार्षद, प्रेत, पिशाच आदि हैं वे भूलोक और स्वर्गलोक दोनों के बीच में विद्यमान विराट् पुरुष के नाभि स्थानीय अन्तरिक्ष लोक में निवास करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तृतीयं तमस्तदीयेन तामसेन उभयोर्द्यावापृथिव्योरन्तरं मध्यं व्योमान्तरक्षिं तदेव भगवतो नाभिस्तामाश्रिता रुद्रपार्षदा रुद्रस्य पार्षदानां भूतादीनां गणाः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

तीसरा गुण तमस् है उस तमोगुण प्रधान स्वभाव वाले होने के कारण भूतों प्रेतों आदि का गण अन्तरिक्ष लोक में रहता है । स्वर्गलोक और भूलोक दोनों के बीच में विद्यमान लोक का नाम भुवर्लोक या अन्तरिक्ष लोक है । वही भगवान् का नाभि स्थान है । उसी में प्रेतों आदि का निवास है । प्रेत इत्यादि ही रुद्र के पार्षद हैं ॥२९॥

मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह । यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥

अन्वयः— कुरुद्वह पुरुषस्य मुखतः ब्रह्म अवर्तत । यस्तु उन्मुखत्वात् वर्णानां मुख्यः सोऽपि अवर्तत । अतः ब्राह्मणः गुरुः ॥३०॥

अनुवाद— हे विदुरजी, उस विराट् पुरुष के मुख से वेद प्रकट हुए और मुख से ही ब्राह्मण भी प्रकट हुए । मुख से प्रकट होने के कारण सभी वर्णों में प्रधान ब्रह्मण हुए । ब्राह्मण ही वेदों को पढ़ाते हैं अतएव सभी वर्णों के गुरु हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अवर्तत प्रवृत्तम् । ब्रह्म वेदः यस्तून्मुखत्वान्मुखोद्भवतद्वर्णानां मुख्यः मुखमिव प्रथमो गुरुश्च अभूत्सोऽपि मुखतोऽवर्ततेत्यनुषङ्गः अध्यापनादिना ब्राह्मणस्य वेदो वृत्तिः । तया वृत्त्या सह ब्राह्मणो मुखतो जात इत्यर्थः । एवमुत्तरत्र वर्णत्रयेऽपि ज्ञातव्यम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अवर्तत पद का अर्थ है, प्रकट हुए । ब्रह्म शब्द वेद का बोधक है । विराट् पुरुष के मुख से ही उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण मुख के ही समान सभी वर्णो मे मुख्य हैं । वे सर्वप्रथम उत्पन्न हुए अतएव भी सबों के गुरु हैं । ब्राह्मण चूकि वेद के अध्यापन आदि का कार्य करते हैं, अतएव वेद ब्राह्मणों की वृत्ति हैं । वेद रूपी वृत्ति के साथ ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न हुए । इसी तरह से आगे के भी श्लोकों में जानना चाहिए॥३०॥

बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः । यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥

अन्वयः— बाहुभ्यः क्षत्रं तदनुव्रतः क्षत्रियः अवर्तत यः पौरुषः जातः कण्टकक्षतात् वर्णान् त्रायते ॥३१॥

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की भुजाओं से क्षत्रिय वृत्ति और उसका अवलम्बन करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ । जो विराट् पुरुष का अंश उत्पन्न कर सभी वर्णों की उपद्रवों से रक्षा करता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

क्षत्रं पालनरूपा वृत्तिस्तत्क्षत्रमनुव्रतोऽनुसृतः क्षत्रियोऽपि बाहुभ्योऽवर्तत इत्यर्थः । तदनुव्रतत्वमेवाह-य इति । पौरुषः पुरुषस्य विष्णोरंशः । कण्टकाश्चोरादयस्तेभ्यो यत्क्षतमुपद्रवस्तस्मात्त्रायते रक्षति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

क्षत्र शब्द से पालन स्वरूपिणी वृत्ति को कहा गया है । विराट् पुरुष की भुजाओं से पालन स्वरूपिणी वृत्ति और पालन वृत्ति का अनुसरण करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ । क्षत्रिय के पालन कर्तृत्व को बतलाते हुए कहते हैं । विराट् पुरुष का अंशभूत क्षत्रिय उत्पन्न होकर सभी वर्णों की उपद्रव से रक्षा करने का काम करता है ॥३१॥

विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः । वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

अन्वयः— तस्य विभोः उर्वोः लोकवृत्तिकरीः विश अवर्तन्त तदुद्भवः वैश्यः यः नृणां वार्तां समवर्तयत् ॥३२॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् की दोनों जंघाओं से कृषि आदि व्यवसाय रूप सबलोगों का निर्वाह करने वाली

वैश्य वृत्ति की उत्पत्ति हुयी और उसी से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी। यह वर्ण अपनी वृत्ति के द्वारा सभी लोगों की जीविका का निर्वाह करता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विशः कृष्यादिव्यवसायः। लोकस्य वृत्तिकरीर्जीविकाहेतवः। तस्य विभोरूर्वोः प्रवृत्ताः। तदुद्भव ऊरुजो वार्ता। जीविकां यः स्ववृत्त्या संपादितवान् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उन परमात्मा की दोनों जंघाओं से सभी लोगों का निर्वाह करने वाली कृषि आदि व्यवसाय स्वरूपिणी वृत्ति उत्पन्न हुयी। उन परमात्मा की जङ्घाओं से ही वैश्य वर्ण भी उत्पन्न हुआ और वह परमात्मा की जङ्घाओं से ही उत्पन्न अपनी वृत्ति से सबों की जीविका का सम्पादन किया ॥३२॥

पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये। तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

अन्वयः— भगवतः पदभ्यां धर्मसिद्धये शुश्रूषां जज्ञे तस्यां पुराशूद्रो जातः यद्वृत्त्या हरिः तुष्यते ॥३३॥

अनुवाद— सभी धर्मों की सिद्धि के लिए श्रीभगवान् के चरणों से शुश्रूषा (सेवावृत्ति) उत्पन्न हुयी और भगवान् के चरणों से उस सेवावृत्ति को अपनाने वाला शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ। उस सेवावृत्ति से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्यां निमित्तभूतायाम्। यस्य वृत्त्या हरिः स्वयमेव तुष्यति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों से सेवावृत्ति का प्राकट्य हुआ और उन चरणों से ही उस सेवावृत्ति का अधिकारी शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ उस सेवावृत्ति को अपनाने वाले पर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥३३॥

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम्। श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृत्तिभिः ॥३४॥

अन्वयः— एते वर्णाः आत्मविशुद्ध्यर्थं श्रद्धया स्वगुरुम् स्वधर्मेण यजन्ति यत् वृत्तिभिः सह जाताः ॥३४॥

अनुवाद— ये सभी वर्ण अपने अन्तःकरण की वृत्तियों की शुद्धि के लिए अपने-अपने धर्मों के द्वारा अपने गुरु श्रीहरि की पूजा करते है। चूकि ये सभी श्रीहरि से ही उत्पन्न हुए हैं अतएव उनका पूजन करना इन वर्णों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यत् यस्माज्जाताः गुरुत्वाज्जनकत्वाद्वृत्तिप्रदत्वाच्च हरेराराधनं तेषां परो धर्म इत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ये सभी अपनी-अपनी वृत्तियों के साथ श्रीहरि से ही उत्पन्न हैं, अतएव इनका सबसे बड़ा धर्म है श्रीहरि की पूजा करना। श्रीहरि इन सबों के गुरु, पिता तथा वृत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥३४॥

एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः। कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥

अन्वयः— क्षत्तः दैवकर्मात्मरूपिणः भगवतः एतत् योगमायाबलोदयम् उपाकर्तुं कः श्रद्दध्यात् ॥३५॥

अनुवाद— हे विदुर ! यह विराट् पुरुष काल, कर्म तथा स्वभाव शक्ति से युक्त श्रीभगवान् की योगमाया के बल से विजृम्भित है। इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की इच्छा कौन कर सकता है। उसकी इच्छा भी जब नहीं की जा सकती है तो फिर निरूपण करना तो दूर की बात है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भो क्षत्तः, देवकर्मात्मरूपिणः कालकर्मस्वभावशक्तिमता भगवतो योगमायाबलेनोज्जृम्भितमेतद्विराड्रूपमुपाकर्तुं साकल्येन निरूपयितुं कः श्रद्दध्यादिच्छेत् । इच्छाऽप्यशक्या निरूपणं तु दूरत इत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! श्रीभगवान् काल, कर्म तथा स्वभाव की शक्ति से सम्पन्न है । उनकी योगमाया के ही प्रभाव को प्रकट करने का काम यह विराट् करता है । इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की कोई इच्छा भी नहीं कर सकता है । ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण रूपेण वर्णन करने की बात तो बहुत दूर की है ॥३५॥

अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् । कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ॥३६॥

अन्वयः— अथापि हे अङ्ग अन्याभिधाऽसतीम् स्वाम् गिरम् सत्कर्तुम् यथामति यथाश्रुतम् हरेः कीर्तिं कीर्तयामि ॥३६॥

अनुवाद— फिर भी हे विदुरजी ! अन्य विषयों की चर्चा करने से अपवित्र बनी हुयी अपनी वाणी को पवित्र बनाने के लिए अपनी बुद्धि तथा अपने ज्ञान के अनुसार मैं श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर, अथापि हरेः कीर्तिं कीर्तयामि । यथाश्रुतं गुरुमुखात् । तदपि न सर्वात्मना, किंतु यथामति स्वमत्यनुसारेण। अन्याभिधा हरिव्यतिरिक्तार्थाभिधानं तया असतीं मलिनां स्वीयां वाचं सत्कर्तुं पवित्रीकर्तुम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुर ! यद्यपि श्रीहरि की कीर्ति का सामस्त्येन वर्णन नहीं किया जा सकता है फिर भी मैं गुरुमुख से सुने हुए ज्ञान और अपने बुद्धि के अनुसार श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ । इस वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि श्रीहरि व्यतिरिक्त विषयों की चर्चा करने के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गयी है । उसको पवित्र बनाने के लिए मैं यह कार्य कर रहा हूँ ॥३६॥

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥३७॥

अन्वयः— पुंसां वचसः एकान्तलाभं सुश्लोकमौलेः गुणवादम् विद्वद्भिरुपाकृतायां कथा सुधायाम् श्रुतश्च उपसम्प्रयोगम् आहुः ॥३७॥

अनुवाद— महापुरुषों ने कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ परम यशस्वी श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन तथा मनुष्यों के कानों का सबसे बड़ा लाभ विज्ञ पुरुषों के द्वारा ही जानी जाने वाली श्रीभगवान् की कथा में उपयोग ही है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञात्वापि यथामति कीर्तने श्रवणे वा आवश्यकं कैवल्यमित्याह । एकान्ततो लाभं नु निश्चितमाहुः । श्रुतेः श्रोत्रस्य। उपाकृतायां निरूपितायाम् उपसंप्रयोगं सन्निधापर्पणम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की महिमा को पूर्णरूप से जाने बिना भी यदि उसका अपनी बुद्धि तथा गुरुमुख से श्रवण जन्य ज्ञान के अनुसार कीर्तन और श्रवण करने मात्र से निश्चित रूप से कैवल्य की प्राप्ति होती है यही इस श्लोक में कहा गया है । महापुरुषों ने यह कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ यही है कि भगवान् की

कथाओं का कीर्तन किया जाय और कानों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनसे श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण किया जाय ॥३७॥

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना । संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ॥३८॥

अन्वयः— हे वत्स ! आदिना कविना योगविपक्वयाधिया संवत्सर सहस्रान्ते आत्मनो महिमा अवसिता ॥३८॥

अनुवाद— हे वत्स ! आदि कवि ब्रह्माजी के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त अपनी योग परिपक्व बुद्धि द्वारा विचार किए जाने पर भी क्या वे भगवान् की महिमा का पार पा सके ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

न चातीव ज्ञाने निर्बन्धः कर्तव्यः, ब्रह्मणोऽपि दुर्ज्ञेयत्वादित्याह । आत्मनो हरेर्महिमा योगविपक्वयापि धिया संवत्सरसहस्रान्तेऽप्यादिकविना ब्रह्मणापि किमवसितः किं ज्ञात इति काकूक्त्या एतावानिति न ज्ञात एवेत्युक्तम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की महिमा को पूर्ण रूप से जानने का आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि जब ब्रह्माजी उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हैं तो सामान्य मनुष्यों की क्या बात है । आदिकवि ब्रह्माजी के द्वारा भी अपनी योग परिपक्व बुद्धि के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त विचार किए जाने पर भी वे कितनी श्रीहरि की महिमा को जान सके ? इस काकूक्ति के द्वारा यह बतलाया गया है कि वे भी उसे पूर्णरूप से नहीं जान सके ॥३८॥

अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी । यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥३९॥

अन्वयः— अतः भगवतः माया मायिनाम् अपि मोहिनी यत् स्वयम् आत्मा आत्मवर्त्मा न वेद अपरे किमुत ॥३९॥

अनुवाद— अतएव श्रीभगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देने वाली है, क्योंकि स्वयं परमात्मा भी अपनी माया की गति को जब नहीं जान पाते हैं तो दूसरों की कौन सी बात है ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यत् यस्मात्स्वयमप्यात्मा हरिरात्मवर्त्म स्वमायागतिमेतावदिति न वेद, अनन्तत्वात् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

क्योंकि श्रीभगवान् की माया अनन्त है अतएव वे भी अपनी माया की महिमा का अन्त नहीं जान पाते हैं । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई उस माया को पूर्ण रूप से कैसे जान सकता है ?॥३९॥

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह । अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— यतः अप्राप्य मनसा सह वाचश्च अहं इमे देवाश्च न्यवर्तन्त तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

अनुवाद— चूकि श्रीभगवान् की महिमा का अन्त न पाकर मन के साथ-साथ वाणी अहङ्काराभिमानी रुद्र और ये सभी इन्द्रियाभिमानी देवगण भी लौट गये उन श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अतो दुर्ज्ञेयत्वात्केवलं नमस्करोति-यत इति । यस्य ज्ञानाय प्रवृत्ता वाचोऽपि मनसा सह तमप्राप्यैव न्यवर्तन्त दुर्ज्ञेयत्वात्। न केवलं वाङ्मनसी, अहमहंकारस्याधिष्ठाता रुद्रोऽपि । इमे इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा अन्ये च ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की महिमा दुर्ज्ञेय है। इसीलिए महर्षि मैत्रेय उसको **यतोऽप्राप्य० इत्यादि** द्वारा नमस्कार करते हैं। श्रीभगवान् की महिमा के अन्त का पता लगाने में प्रवृत्त मन के साथ वाणी भी असमर्थ होकर लौट गयी यही नहीं अहङ्काराभिमानी रुद्र और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण भी असमर्थ होकर लौट गये ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के छठे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ॥६॥

सातवाँ अध्याय

विदुरजी के प्रश्न

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः। प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं बुधः द्वैपायनसुतः विदुरः भारत्या प्रीणयन् इव प्रत्यभाषत ॥१॥

शुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले मैत्रेय महर्षि से बुद्धिमान विदुरजी ने उनको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे संशयच्छेदि प्रतिनन्द्य मुनेर्वचः। पुनः क्षत्त्रा कृता नाना प्रश्नाः सम्यगुदीरिताः। '**अथ ते भगवल्लीला-योगमायोपबृंहिताः**' इत्यादिना मायागुणैर्लीलया भगवान् सृष्ट्यादि करोतीत्येवं ब्रुवाणं मैत्रेयं भारत्या प्रार्थनारूपया प्रीणयन्निवेत्यभिप्रायाज्ञानेनाक्षेपात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में मैत्रेय महर्षि की बातों का अभिनन्दन करके, विदुरजी के द्वारा किए गये अनेक प्रश्नों का वर्णन किया गया है ॥१॥ पीछे के अध्यायों में **अथ ते भगवल्लीला इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैत्रेय महर्षि ने यह जो कहा है कि श्रीभगवान् माया के गुणों के द्वारा सृष्टि आदि के कार्यों को करते हैं। उन मैत्रेय महर्षि के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण उनको आक्षेप करके अपनी प्रार्थना रूपी वाणी के द्वारा प्रसन्न करते हुए विदुरजी कहे ॥१॥

विदुर उवाच

ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः। लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् चिन्मात्रस्य, अविकारिणः निर्गुणस्य भगवतः लीलया चापि गुणाः क्रियाः कथं युज्येरन् ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ज्ञान मात्र, विकार रहित एवं निर्गुण भी भगवान् से लीला द्वारा भी गुणों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

निर्विकारस्य क्रिया, निर्गुणस्य च गुणाः कथम्। लीलयेत्युक्तिः प्रयोजनाभावं परिहरति न वस्तुविरोधमिति भावः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पूछा कि श्रीभगवान् तो निर्गुण हैं उनसे गुणों का सम्बन्ध कैसे होता है ? या यदि वे निर्विकार हैं तो वे सृष्टि आदि क्रियाओं को कैसे करते हैं ? लीलया इस पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि इन सबों का एकमात्र प्रयोजन लीला ही है । भगवान् लीला करने के लिए ही गुणों और क्रियाओं से सम्पृक्त हो जाते हैं। अतएव इसमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ॥२॥

क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः । स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥३॥

अन्वयः— अर्भस्य क्रीडायाम् उद्यमः अन्यतः चिक्रीडिषा कामः स्वतः तृप्तस्य अन्यतः निवृत्तस्य च भगवतः कथम् ॥३॥

अनुवाद— बालक तो दूसरों के साथ खेलने की इच्छा से क्रीडा की कामना करता है किन्तु भगवान् तो स्वतः तृप्त हैं और दूसरों से असङ्ग हैं, उनमें क्रीडा के लिए भी इच्छा कैसे सम्भव हैं ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

अर्भकवल्लीलापि न युज्यते वैषम्यादित्याह । उद्यमयति प्रवर्तयतीत्युद्यमः । अर्भकस्य क्रीडायां प्रवृत्तिहेतुः कामोऽस्ति। अन्यतस्तु वस्त्वन्तरेण बालान्तरप्रवर्तनेन वा तस्य क्रीडेच्छा भवति । ईश्वरस्य तु स्वतस्तृप्तस्य कथं कामोऽन्यतः सदा निवृत्तस्य चासङ्गाद्वितीयस्य कथमन्यतश्चिक्रीडिषेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जिस तरह कोई बालक लीला करता है, उसी तरह श्रीभगवान् लीला के लिए ही सृष्ट्यादि कर्मों को करते हैं, तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की बालक के समान लीला भी सम्भव नहीं है । बालक तो खेलने की इच्छा से क्रीडा में प्रवृत्त होता है कि वह दूसरे बालक के साथ क्रीडा करे । किन्तु भगवान् स्वतः तृप्त हैं अतएव उनमें कामना सम्भव नहीं है वे असङ्ग हैं अतएव उनमें दूसरे के साथ क्रीडा करने की इच्छा भी नहीं हो सकती है ॥३॥

अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया । तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अन्वयः— भगवान् गुणमय्या आत्ममायया विश्वम् अस्राक्षीत् तया एतत् संस्थापयति भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपनी त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा विश्व की रचना की उसी के द्वारा वे इसकी रक्षा करते है और उसी के द्वारा वे पुनः इसका संहार भी करेंगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजे'** इत्यादिनाऽविद्योपाधेर्जीवस्य भोगार्थमीश्वरः सृष्ट्यादि करोतीति तदप्याक्षेप्तुमनुवदति-अस्राक्षीदिति । गुणमयी आत्मनो जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिमोहोत्पादिका या माया तया सृष्टवान् । तदुक्तं प्रथमे— **यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।'** इत्यादिना । अत्र च **अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी** इति । संस्थापयति पालयति । प्रत्यपिधास्यति प्रातिलोम्येन तिरोहितं करिष्यति। पाठान्तरे प्रातिलोम्येनात्मन्यपितो वारयिष्यति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पीछे के अध्यायों में **स्मरन् विश्वसृजामीशः इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह जो कहा गया है कि विश्व की सृष्टि करने वाले महदादिकों की प्रार्थना का स्मरण करने वाले श्रीभगवान् अविद्योपहित जीव के भोगों के लिए सृष्टि आदि के कार्यों को करते है । उस कथन पर आक्षेप करते हुए विदुरजी **अस्राक्षीत् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं।

श्रीभगवान् ने जीव में कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि मोह को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि की । इस बात को प्रथम स्कन्ध में कहा जा चुका है कि माया से परे होने पर भी जीव माया से मोहित होकर अपने को त्रिगुणात्मक मानने लगता है और उसी के कारण वह सुख दुःख आदि अनर्थों को प्राप्त करता है । इस स्कन्ध में भी कहा गया है कि भगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देती है । उसी माया के द्वारा वे विश्व की रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर सृष्टि के विपरीत क्रम से इसका उपसंहार भी करेंगे । पाठान्तर के अनुसार तो अर्थ होगा कि विपरीत क्रम से अपने में अच्छी तरह से धारण करेंगे ।।४।।

देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः । अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ।।५।।

अन्वयः— यः असौ आत्मा देशतः कालतः अवस्थातः स्वतः अन्यतः वा अविलुप्तावबोध स अजया कथं युज्येत ।।५।।

अनुवाद— यह जीव ब्रह्म स्वरूप है । उसके ज्ञान का किसी देश, काल एवं अवस्था या अपने आप या किसी दूसरे कारण से लोप नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में उसका अविद्या से कैसे सम्बन्ध हो सकता है ?।।५।।

भावार्थ दीपिका

एतच्च जीवस्याविद्याश्रयत्वे घटेत, नतु तत्संभवतीत्याह-देशत इति । योऽसौ देशादिभिरविलुप्तावबोध आत्मा जीवः, ब्रह्मस्वरूपत्वात् । स कथमजयाऽविद्यया युज्येत। तत्र देशतो दीपप्रभाया इव लोपो नास्ति, सर्वगतत्वात् । न कालतः विद्युत इव नित्यत्वात् । नावस्थातः, स्मृतिवदविक्रियत्वात् । न स्वतः, स्वप्नवत्सत्यत्वात् । नान्यतः, घटादिवदद्वितीयत्वात् । एवमेतैर्यस्य बोधो न लुप्यते स कथमजया युज्येत । अजा चात्राविद्यैव न माया, तस्य अवबोधेन विरोधाभावात् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यह तो तब सम्भव था जब कि जीव अविद्या का आश्रय बने, किन्तु जीव अविद्या का आश्रय इसलिए नहीं हो सकता है कि जीव ब्रह्मस्वरूप है । फलतः उसके ज्ञान का लोप देश, काल आदि के कारण नहीं हो सकता है । अतएव उसका अविद्या से सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? जैसे देश की भिन्नता के कारण दीप की प्रभा का लोप हो जाता है । किन्तु आत्मा (जीव) तो सर्व देश व्यापक है । अतएव उसके ज्ञान का लोप देश विशेष के कारण नहीं हो सकता है । जिस तरह से विद्युत् का प्रकाश कालान्तर में लुप्त हो जाता है किन्तु आत्मा का प्रकाश कालभेद के कारण इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह नित्य है । जिस तरह से अवस्था के भेद के कारण स्मृति का लोप हो जाता है उस तरह से आत्मा का प्रकाश इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह अविक्रिय (निर्विकार) है । जिस तरह से स्वप्न की बातें असत्य होने के कारण लुप्त हो जाती हैं उस तरह भी आत्मा का ज्ञान इसलिए लुप्त नहीं हो सकता है कि वह सत्य है । भेद के कारण जिस तरह घटादि का लोप हो जाता है, उस तरह भी आत्मा का ज्ञान लुप्त नहीं हो सकता है क्योंकि वह अद्वितीय है। जिस आत्मा का ज्ञान इनमें से किसी भी साधन से लुप्त नहीं होता उस आत्मा का अविद्या (अज्ञान) से कैसे सम्बन्ध होता है ? इस श्लोक में अजा शब्द से अविद्या ही कही गयी हैं माया नहीं, क्योंकि माया का ज्ञान से विरोध नहीं है ।।५।।

भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः । अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ।।६।।

अन्वयः— एष एक एव भगवान् सर्वक्षेत्रेषु अवस्थितः अमुष्य दुर्भगत्वं कर्मभिः क्लेशो वा कुतः ।।६।।

अनुवाद— ब्रह्म स्वरूप एक ही आत्मा सभी शरीरों में साक्षी रूप से विद्यमान है, अतएव उसके ज्ञान का भ्रंश अथवा कर्मों के कारण क्लेश की प्राप्ति कैसे सम्भव है ?।।६।।

भावार्थ दीपिका

किंच ब्रह्मरूपत्वादेव जीवस्य संसारोऽपि न विद्यत इत्याक्षिपति । सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितो भोक्तापि वस्तुतो भगवानेव,

चिद्रूपत्वेन तद्व्यतिरेकाभावात् । एवं च सत्यमुष्य जीवस्य दुर्भगत्वमानन्दादिभ्रंशःकर्मभिर्हेतुभूतैः क्लेशो वा कुतः, कर्मसंबन्धाभावात्। अन्यथेश्वरस्यापि तत्प्रसङ्गः स्यादिति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह है कि जीव ब्रह्म स्वरूप है अतएव उसका संसार होना भी सम्भव नहीं है । इसी अभिप्राय से विदुरजी अक्षेप करते हुए कहते हैं । सभी शरीरों में विद्यमान भोक्ता भी वस्तुतः भगवान् ही हैं क्योंकि जीव भी तो ज्ञान स्वरूप है, अतएव वह ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकता है । जब उससे कर्मों का सम्बन्ध होता ही नहीं तो फिर उसके आनन्दादि का भ्रंश और कर्मों के कारण क्लेशों की प्राप्ति कैसे होती है ? यदि ब्रह्म होने पर भी उसको दुर्भगत्व आदि होगा तब तो ईश्वर को भी क्लेशादि की प्राप्ति और दुर्भगत्व की प्राप्ति का प्रसङ्ग होगा ॥६॥

एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसंकटे । तन्नः पराणुद विभोकश्मलं मानसं महत् ॥७॥

अन्वयः— हे विद्वन् एतस्मिन् अज्ञानसंकटे मे मनः खिद्यते हे विभो तत् नः महत् मानसं कश्मलं पराणुद ॥७॥

अनुवाद— हे विद्वन् ! इस अज्ञानसंकट में पड़ा हुआ मेरे मन खिन्न हो रहा है । हे भगवन् आप मेरे मन के इस महान् मोह को दूर करें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञानमेव संकटं दुर्गं तस्मिन् । तन्मानसं कश्मलं मोहं पराणुद अपाकुरु ॥७॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि अज्ञान रूपी संकट में पड़ा हुआ मेरा मन अत्यन्त खिन्न हो रहा है । उपर्युक्त प्रकार का मेरे मन का बहुत बड़ा मोह है, आप अपने समाधान के द्वारा मेरा मन के इस मोह को दूर कर दें ॥७॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः । प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥

अन्वयः— तत्त्वजिज्ञासुना क्षत्त्रा इत्थं चोदितः भगचच्चितः गतस्मयः मुनिः स्मयन्निव प्रत्याह ॥८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— तत्त्वज्ञान प्राप्ति के इच्छुक विदुरजी द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर अहङ्कार रहित महर्षि मैत्रेय मुस्कुराते हुए कहने लगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

चोदित आक्षिप्तः स्मयन्निव प्रौढिमाविष्कुर्वन्निव । वस्तुतस्तु गतस्मयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के द्वारा इस प्रकार से प्रश्न किए जाने पर मानो अपनी प्रौढि आविष्कृत कर रहे हों, ऐसे मैत्रेयजी मुस्कुराते हुए उत्तर देने लगे । उनमें वास्तविक रूप से अहङ्कार था ही नहीं ॥८॥

मैत्रेय उवाच

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते । ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥९॥

अन्वयः— भगवतः सेयं माया यत् नयेन विरुध्यते यत् विमुक्तस्य ईश्वरस्य कार्पण्यं बन्धनम् उत ॥९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— अचिन्त्यशक्ति से युक्त श्रीभगवान् की यही माया है, जो युक्ति विरुद्ध है । उस माया के ही कारण पुरुष अविद्या के बन्धन में पड़ जाता है और दीन हो जाता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

भगवतोऽचिन्त्यशक्तेरीश्वरस्य सेयं माया नयेन तर्केण विरुध्यत इति यत् । तर्कविरोधमेवानुवदति । विमुक्तस्यैव पुंसोऽविद्याबन्धनं कार्पण्यं चेति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न श्रीभगवान् की माया युक्ति की कोई परवाह नहीं करती है । माया का युक्ति से होने वाले विरोध को बतलाते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं, कि मुक्त भी जीव माया के बन्धन में पड़कर दीनता का अनुभव करता है ॥९॥

यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः । प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥१०॥

अन्वयः— यत् अर्थेन विना उपद्रष्टुः पुंसः स्वशिरः छेदनादिकः प्रतीयते तद्वत् अमुष्य आत्मविपर्ययः ॥१०॥

अनुवाद— जिस तरह स्वप्न देखने वाले व्यक्ति को मिथ्या होने पर भी लगता है कि मेरा शिर इत्यादि कट गया उसी तरह बन्धन आदि के नहीं होने पर भी अज्ञानवशात् आविद्यिक बन्धनादि की प्रतीति होती है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अत्रोदाहरणमाह । यत् यथा अर्थेन शिरश्छेदादिना विनाप्युपद्रष्टुः स्वप्नसाक्षिणो ममेदं शिरश्छिन्नमित्यात्मविपर्ययः केवलं मृषैव प्रतीयते तद्वत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— जिस तरह शिरः छेदादि क्रिया के नहीं होने पर भी स्वप्न देखने वाले पुरुष को लगता है कि मेरा शिर कट गया, उसी तरह से बन्धनादि के नहीं होने पर भी जीव को अज्ञान वशात् बन्धनादि की प्रतीति होती है ॥१०॥

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः । दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ॥११॥

अन्वयः— यथा जले कम्पादिः तत्कृतः गुणः चन्द्रमसः प्रतीयते तथा द्रष्टुः आत्मनः असन अपि अनात्मनः गुणः दृश्यते ॥११॥

अनुवाद— जिस तरह जल में होने वाले कम्पन आदि गुण, प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा में प्रतीत होते हैं, यद्यपि कम्पादि चन्द्रमा में नहीं होते हैं, उसी तरह बन्धनादि शरीर के धर्म आत्मा में नहीं हैं, फिर भी वे जीव में अज्ञानवशात् प्रतीत होते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तर्हीश्वरस्यापि किं न प्रतीयेत, तत्राह । यथा जले प्रतिविम्बितस्यैव चन्द्रमसो जलोपाधिकृतः कम्पादिधर्मो दृश्यते, न त्वाकाशे स्थितस्य । तथाऽनात्मनो देहादेर्धर्मोऽसन्नपि तदभिमानिनो द्रष्टुरात्मनो जीवस्यैव नत्वीश्वरस्येत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि तो फिर इन बन्धनादि की प्रतीति ईश्वर में भी क्यों नहीं होती है, तो इसके उत्तर में मैत्रेयजी कहते हैं कि जिस तरह जल में प्रतिविम्बित होने वाले ही चन्द्रमा में जल रूपी उपाधि में होने वाले कम्पादि की प्रतीति होती है; किन्तु आकाश में रहने वाले चन्द्रमा में उन कम्पादि क्रियाओं की प्रतीति नहीं देखी जाती है । उसी तरह अनात्मा देह आदि के धर्म बन्धनादि हैं, वे आत्मा के धर्म नहीं है, फिर भी उन बन्धनादि धर्मों की प्रतीति देहादि उपाधियों में प्रतिम्बित जीव में ही होती है, ईश्वर में नहीं ॥११॥

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया । भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥

अन्वयः— स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया भगवद् भक्तियोगेन शनैः तिरोधत्ते ॥१२॥

अनुवाद— उस अनात्मधर्म की निवृत्ति निष्काम भागवत धर्म के द्वारा प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव की कृपा से प्राप्त भगवान् की भक्ति के द्वारा धिरे-धिरे हो जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तन्निवृत्त्युपायमाह । स वै अनात्मनो गुणो निवृत्तिधर्मेण वासुदेवस्यानुकम्पया च तस्मिन्भक्तियोगस्तेन तिरोधत्तेऽदृश्यो भवति । शनैरित्यनेन साधनानुसारेणेत्युक्तम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जब जीव निष्काम भाव से धर्मों का आचरण करता है तो उससे भगवान् वासुदेव की उस जीव पर कृपा होती है । भगवान् की कृपा से उस जीव में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उस भगवद्भक्ति को करने से धिरे-धिरे अनात्मा के जो बन्धनादि गुण जीव में प्रतीत होते हैं उनकी निवृत्ति हो जाती है ॥१२॥

यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ । विलीयते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥

अन्वयः— अथ यदा इन्द्रियोपरामः द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ तदा संसुप्तस्य इव कृत्स्नशः क्लेशाः विलीयन्ते ॥१३॥

अनुवाद— जब सभी इन्द्रियाँ विषयों से उपरत होकर साक्षी परमात्मा में निश्चल भाव से लग जाती हैं उसी समय समस्त क्लेशों का उसी तरह से नाश हो जाता है, जिस तरह सुषुप्त पुरुष के सभी राग द्वेष आदि सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वानर्थनिवृत्तिः कदेत्यपेक्षायामाह । यदेन्द्रियाणामुपरामो नैश्चल्यम् । क्व । द्रष्टुरात्मन्यन्तर्यामिरूपे । अथानन्तरमेव। कृत्स्नक्लेशविलयमात्रे दृष्टान्तः संसुप्तस्येवेति । नतु पुनरुत्थाने ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि जीवों के सम्पूर्ण क्लेशों की निवृत्ति कब होती है ? तो इसका उत्तर है कि जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से हटकर निश्चल रूप से परमात्मा में लग जाती हैं । उदाहरणार्थ जब तक मनुष्य जगता रहता है तब तक वह क्लेशों का अनुभव करता है और जब वह सुसुप्तावस्था में चला जाता है तब उसे किसी भी प्रकार के क्लेश की प्रतीति नहीं होती है । उसी तरह उस जीव के भी सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं ॥१३॥

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥

अन्वयः— मुरारेः गुणानुवादश्रवणं अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते, तच्चरणारविन्दपराग सेवारति आत्मलब्धा पुनः कुतः ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के गुणों का कीर्तन तथा श्रवण ही सम्पूर्ण क्लेशों को शान्त कर देने वाले हैं जिसके हृदय में भगवान् के चरण कमल की सेवा का प्रेम जग गया हो तो फिर उसके विषय में क्या कहना है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भक्तियोगेन क्लेशनिवृत्तिं दर्शयति-अशेषेति । गुणानामनुवादश्च श्रवणं च । आत्मनि मनसि लब्धा श्रवणकीर्तनापेक्षया सप्रेमध्याने किं पुनर्न्यायोक्तिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

भक्तियोग के द्वारा तो सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है इस बात को बतलाते हुए **अशेष संक्लेश० इत्यादि** श्लोक कहा गया है। श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करना तथा उनके गुणों का श्रवण करने से सारे क्लेशों का नाश हो जाता है। यदि मन में प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् का ध्यान करने पर क्लेशों का नाश होता है तो फिर यह क्या कहना है कि उसके सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं यह तो कैमुत्यन्याय से ही सिद्ध है ॥१४॥

विदुर उवाच

संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो। उभयत्रापि भगवन् मनो मे संप्रधावति ॥१५॥

अन्वयः— हे विभो ! तव सूक्तासिना मह्यं संशयः संछिन्नः मे मनः उभयत्र अपि संप्रधावति ॥१५॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी युक्तियुक्त वाणी के द्वारा मेरा सन्देह छिन्न-भिन्न हो गया है, अब मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतन्त्रता इन दोनों विषयों में अच्छी तरह से प्रवेश कर रहा है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

उत्तरमभिनन्दन्नात्मनः कृतार्थतामाविष्करोति-संछिन्न इति षड्भिः। चिद्रूपत्वाविशेषेऽपि कथमीश्वरस्य जगत्कर्तृत्वादि, कथं वा जीवस्य संसार इति यः संशयो ममासीत्स तव सूक्तं सोपपत्तिकं वाक्यमेवासिः खड्गस्तेन संछिन्नः। अत इदानीं मे मन उभयत्रापीश्वरस्वातन्त्र्ये जीवपरातन्त्र्ये च संप्रधावति सम्यक् प्रविशति। एवं वाऽविलुप्तावबोधरूपस्यात्मनः कथमविद्यया बन्धः, कुतो वा तन्निवृत्तिरिति संशयः। उभयत्रेति, बन्धे मोक्षे चेत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि द्वारा दिये गये उत्तर का अभिनन्दन करके विदुरजी अपनी कृतार्थता को प्रकट करते हुए छह श्लोकों में कहते हैं— जब जीव और ईश्वर दोनों ज्ञान स्वरूप हैं तो फिर ईश्वर जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता हैं और जीव इस संसार में कैसे संसरण करता है ? अर्थात् आविद्यिक बन्धन में पड़कर अज्ञान और कष्टादि का अनुभव करता है यह जो मेरा सन्देह था वह आपकी इस सुन्दर वाणी रूपी कृपाण के द्वारा विनष्ट हो गया। अतएव इस समय मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतंत्रता को अच्छी तरह से समझता है। अतएव मैंने यह जो प्रश्न किया था कि चूकि देश, काल आदि के कारण चिन्मात्र स्वरूप जीव के ज्ञान का लोप नहीं हो सकता है ऐसी स्थिति में जीव किस तरह अविद्या के बन्धन में बन्ध जाता है और फिर उसकी कैसे उससे मुक्ति होती है, इस बन्ध और मोक्ष दोनों ही विषयों को मेरा मन अच्छी तरह से समझता हैं ॥१५॥

साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः। आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥१६॥

अन्वयः— हे विद्वन् एतत् साधु व्याहृतं यत् एतत् हरेः मायायनम् अपार्थं निर्मूलं आभाति यद् बहि विश्वमूलं न ॥१६॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपने बिल्कुल ठीक कहा है कि जीव की जो क्लेश तथा अज्ञान आदि की प्रतीति हो रही है उसका एकमात्र आधार भगवान् की माया है। वह क्लेश आदि भी मिथ्या और निर्मूल हैं। इस जगत् का कारण भी अविद्या से अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वया साधु व्याहृतम्। किं तत्। हरेः शक्तिर्या आत्ममाया जीवविषया माया तदयनं तदाश्रयमेतद्दुर्भगत्वादिकं भातीति। यत् यस्मात्स्वशिरश्छेदादिवदपार्थमवस्तुभूतं निर्मूलं मूलशून्यं च। यस्मादस्य मूलं विश्वस्य मूलं स्वाज्ञानं बहिर्विना नास्ति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि आपने ठीक कहा है कि श्रीहरि की जो जीव को अपना विषय बनाने वाली माया है, उसी के द्वारा जीव के दुर्भगत्व (अज्ञता) आदि की प्रतीति होती है। वह स्वप्न में प्रतीत होने वाले अपने शिर: छेद आदि के समान ही मिथ्या है। उसका कोई भी मूल नहीं है। इस जीव के दुर्भगत्व तथा देह आदि प्रपञ्च का कारण भी अपने अज्ञान से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥१६॥

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः परं गतः । तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१७॥

अन्वयः— लोके यश्च मूढतमः यः च बुद्धेः परं गतः तौ उभौ सुखम् एधेते, अन्तरितः जनः क्लिश्यति ॥१७॥

अनुवाद— संसार में रहने वाले दो प्रकार के लोग सुखी होते हैं जो अत्यन्त अज्ञानी हैं अथवा अत्यन्त ज्ञानी होने के कारण श्रीभगवान् को प्राप्त कर चुके हैं। बीच की श्रेणी में रहने वाले संशयग्रस्त लोग तो दुःखी ही हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अल्पज्ञत्वात्पूर्वं मम संशयो जात इत्याह-यश्चेति । मूढतमो देहाद्यासक्तो यश्च बुद्धेः प्रकृतेः परमीश्वरं प्राप्तः, तौ सुखं यथा भवति तथा एधेते जीवत इत्यर्थः। संशयक्लेशाभावात् । यस्तु दुःखानुसंधानेन प्रपञ्चं जिहासति स्वानन्दसंवेदनाभावाद्धातुं न शक्नोति स तु क्लिश्यतीत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि अल्पज्ञ होने के कारण मुझे पहले संशय हुआ था। संसार में रहने वाले दो तरह के प्राणी सुख पूर्वक जीवित रहते है। वे लोग जो देह आदि में आसक्त होने के कारण अत्यन्त अज्ञानी हैं तथा वे लोग जो ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त करके ईश्वर को प्राप्त कर चुके हैं, क्योंकि इन दोनों प्रकार के लोगों को संशय रूपी क्लेश नहीं होता है। जो व्यक्ति दुःखानुभव करने के कारण इस प्रपञ्च का परित्याग करना चाहता है और आत्मानन्द का अनुभव नहीं कर सकने के कारण उसे त्याग भी नहीं पाता है, वह तो क्लेश का ही अनुभव करता है ॥१७॥

अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः । तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥१८॥

अन्वयः— अनात्मनः प्रतीतस्य अपि अर्थाभावं विनिश्चित्य युष्मत् चरणसेवया अहं तां चापि पराणुदे ॥१८॥

अनुवाद— हे भगवन्! आपके चरणों की सेवा के प्रभाव से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि ये अनात्म पदार्थ हैं नहीं, इनकी प्रतीति मात्र होती है, अब मैं उस प्रतीति को भी आपके चरणों की सेवा से हटा दूँगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तु कृतार्थोऽस्मि, यतस्त्वया संशयश्छिन्नः केवलं बाधितानुवृत्तिरेवावशिष्टा, सापि युष्मत्प्रसादान्निवर्तिष्यत इत्याह। नात्मनः अनात्मनः प्रपञ्चस्य प्रतीतस्याप्यर्थाभावमर्थोऽत्र नास्ति, किंतु प्रतीतिमात्रमिति युष्मच्चरणसेवया निश्चित्य तां प्रतीतिमप्यहं पराणुदे, अपनेष्यामीत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आपने मेरे संशय को विनष्ट कर दिया है, अतएव मैं कृतार्थ हो गया हूँ। अब केवल बाधितानुवृत्ति ही बची हुयी है, वह भी आपकी कृपा से दूर हो जायेगी इसी बात को इस श्लोक के द्वारा कहा गया है। यह प्रपञ्च भी अनात्मा है, इसकी प्रतीति तो होती है किन्तु यह है नहीं इसकी केवल प्रतीति होती है। आपके चरणों की सेवा से इसके अभाव का निश्चय करके मैं इसको भी त्याग दूँगा ॥१८॥

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः । रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥१९॥

अन्वयः— यत् पादयोः सेवया कूटस्थस्य मधुद्विषः भगवतः पादयोः व्यसनार्दनः तीव्रः रतिरासः भवेत् ॥१९॥

अनुवाद— आपके इन चरणों की सेवा से निर्विकार भगवान् मधुसूदन के चरणों में तीव्र एवं स्वाभाविक प्रेमोत्सव होता है, जिससे संसार चक्र विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मधुद्विषः पादयोः रतिरासः प्रेमोत्सवस्तीव्रो दुर्वारः स्वाभाविकः । व्यसनं संसारमर्दयति नाशयतीति तथा ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपके चरणों की सेवा करने से भगवान् मधुसूदन के चरणों में दुर्वार स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होता है, उससे संसारचक्र ही विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु । यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥२०॥

अन्वयः— अल्पतपसः वैकुण्ठवर्त्मसु सेवा दुरापा, यत्र देवदेवः जनार्दनः नित्यम् उपगीयते ॥२०॥

अनुवाद— वैकुण्ठ प्राप्ति के मार्गभूत महापुरुषों की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों को नहीं प्राप्त होता है । उन महात्माओं के यहाँ सदैव ही देवताओं के भी आराध्य भगवान् के गुणों का गायन होता रहता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अहो दुर्लभं प्राप्तं मयेत्याह । दुरापा दुर्लभा । वैकुण्ठस्य विष्णोस्तल्लोकस्य वा वर्त्मसु मार्गभूतेषु महत्सु । यत्र येषु। महत्सेवया हरिकथाश्रवणं, ततो हरौ प्रेम, तेन च देहाद्यनुसंधानमपि निवर्तत इति तात्पर्यम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैंने तो दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर लिया है । भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति के साधन भूत मार्ग स्वरूप महात्मागण की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों के लिए दुर्लभ है । उन महापुरुषों की सेवा करने से श्रीहरि की कथा सुनने को मिलती है । उससे श्रीहरि में प्रेम होता है और उसके कारण अपने शरीर आदि की भी प्रतीति विनष्ट हो जाती है । यही इस श्लोक का तात्पर्य है ॥२०॥

सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् । तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशाद्विभुः ॥२१॥

अन्वयः— अग्रे सविकाराणि महदादीनि सृष्ट्वा विभुः तेभ्यः विराजम् उद्धृत्य तम् अनुप्राविशत् ॥२१॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् का महदादिकों तथा उनके विकारों (कार्यों) की सृष्टि करके उन सबों के अंश से विराट् को उत्पन्न किया और उसके पश्चात् वे उसमें स्वयं प्रवेश कर गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अर्थान्तरं प्रष्टुं तदुक्तमनुवदति त्रिभिः-सृष्ट्वेति । विकारैरिन्द्रियादिभिः सहितानि । उद्धृत्य तदंशैर्विराजं सृष्ट्वा ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात पूछने के लिए विदुरजी मैत्रेय महर्षि की बातों का तीन श्लोकों से अनुवाद करते हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् महदादि के कार्यभूत इन्द्रियों आदि के साथ महदादि की सृष्टि किए और उन सबों से विराट् को उत्पन्न किए तथा उनमें प्रवेश कर गये ॥२१॥

यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् । यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥

अन्वयः— यम् सहस्राङ्घ्र्युरुपादकम् वेदा आद्यं पुरुषं आहुः यत्र इमे विश्वे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥

अनुवाद— उस हजारों पैरों, जङ्घाओं और भुजाओं वाले विराट् पुरुष को वेदों ने आदि पुरुष कहा है। उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् विस्तार पूर्वक स्थित है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रविष्टस्य रूपमाह-यमिति । विराजं विशिनष्टि-यत्रेति । ते इमे विश्वे सर्वे लोकाः । सविकाशमसंकोचेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रविष्ट पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुए कहा कि उस विराट् पुरुष के हजारो पैर इत्यादि हैं। वेद विराट् पुरुष को ही आदिपुरुष कहते हैं। उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् बिना किसी संकोच के निवास करता है ॥२२॥

यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् । त्वयेरितोयतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥२३॥
यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः । प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥२४॥

अन्वयः— यस्मिन् दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियः त्रिवृत् यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च गोत्रजैनप्तृभिः सह विचित्रा कृतयः प्रजा आसन् याभिः इदं ततम् यतः त्वया इरिताः वाणी तद्विभूतीः नः वदस्व ॥२३-२४॥

अनुवाद— जिस विराट् पुरुष में इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के साथ इन्द्रिय बल, मनोबल और शरीरबलरूप से दश प्रकार के प्राण हैं। तथा आपने कहा है कि उस विराट् पुरुष से ही ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए है। अब आप उनकी ब्रह्मा आदि विभूतियों को बतलायें जिनके पुत्र, पौत्र नाती और कुटुम्बियों के साथ विभिन्न प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयी हैं। जिन सबों से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर गया है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

प्राणादयः पञ्च नागादयः पञ्चेत्येव दशविधः । इन्द्रियाणि च अर्थाश्च इन्द्रियाणि चेति पुनरुक्तिस्तद्देवतालक्षणार्था, तत्सहितः। सर्वोपबृंहकत्वात्प्राणस्य तत्साहित्यम् । एवं त्रिवृत्त्रिविधः प्राणस्त्वयेरित उक्तः । तस्य विभूतीर्ब्रह्माद्या विसर्गशब्दवाच्याः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष में पाँच प्रकार के और नाग कृकर आदि इस तरह से दश प्रकार के प्राण हैं इन्द्रियों का बल, मनोबल तथा शरीरबल से युक्त प्राण, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय रूप, रस आदि तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता स्थित है। आपने उस विराट् पुरुष से ही ब्राह्मण आदि वर्णों की उत्पत्ति को बतलाया है। उनकी ब्रह्मा आदि विभूतियाँ जिनको विसर्ग शब्द से कहा गया है उनका वर्णन आप करें जिनके पुत्रों, पौत्रों, नप्ताओं और कुटुम्बियों के साथ विविध प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं, जिनसे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया ॥२३-२४॥

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् । सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

अन्वयः— सः प्रजातीनां पतिः कान् प्रजापतीन् सर्गान् चैव, अनुसर्गान् च मनून् मन्वन्तराधिपान् चक्लृपे ॥२५॥

अनुवाद— विराट् पुरुष प्रजापतियों के भी पति हैं। उन्होंने किन प्रजापतियों, सर्गों, अनुसर्गों, और मन्वन्तरों के स्वामी मनुओं की सृष्टि की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल इति परीक्षित्प्रश्नोत्तरतया विदुरमैत्रेयसंवादः प्रस्तावितः, अतस्तानेव विदुरेण

तान्प्रश्नानाह यावत्समाप्तिम् । प्रजापतीनां पतिर्ब्रह्मेत्यादीनां वर्णयेति वक्ष्यमाणेनान्वयः चक्लृपेऽकल्पयत् । सर्गान् नवविधान्। अनुसर्गास्तद्भेदान् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्नों को सुनकर श्रीशुकदेवजी कह चुके हैं कि इसी प्रकार से विदुर ने भी महर्षि मैत्रेय से पूछा था, इस प्रकार से उन्होंने विदुर मैत्रेय संवाद को प्रस्तावित किया था । अतएव उन्हीं विदुरजी के प्रश्नों का इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन किया गया हैं ।

प्रजापतीनाम्० इत्यादि प्रजापतियों के भी पति ब्रह्मा जी हैं, उन ब्रह्मा आदि का आप वर्णन करें । नव प्रकार की सृष्टियों, अनुसर्गों तथा उसके भेदों का जिनकी कल्पना विराट् पुरुष ने किया उसका आप वर्णन करें, इस तरह से विदुरजी ने मैत्रेयजी से कहा ।।२५।।

एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च । उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजाऽऽसते ।।२६।।
तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय । तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ।।
वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ।।२७।।

अन्वयः— हे मित्रात्मज ! एतेषाम् अपि वंशान्, य वंश्यानुचरितानि च, भूमेः उपरि अधश्च ये लोकाः आसते तेषां भूर्लोकस्य च संस्थां प्रमाणं च वर्णय, तिर्यङ्मानुष देवानां सरीसृपपतत्रिणाम् गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् सर्गसंव्यूहम् वर्णय ।।२६-२७।।

अनुवाद— हे मैत्रेयजी ! आप उन मनुओं के वंशों तथा उन वंशों के वंशधर राजाओं के चरित्र का, पृथिवी के ऊपर तथा नीचे के लोकों तथा भूलोक के विस्तार और स्थिति का भी वर्णन करें । आप यह भी बतलायें कि मनुष्य, तिर्यक् देवता और सरीसृप (सर्प आदि) पक्षी, जरायुज, स्वेदज अण्डज और उद्भिज ये चारो प्रकार के प्राणी किस तरह उत्पन्न हुए ।।२६-२७।।

भावार्थ दीपिका

हे मित्राया आत्मज । संस्थां सन्निवेशम् । सर्गाणां संव्यूहं संविभागम् । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् । गार्भा जरायुजाः, स्वेदाच्च द्वाभ्यां च जाताः स्वेदद्विजाः उद्भिदश्च तेषाम् ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

मित्रा देवी की पुत्र होने के कारण मैत्रेयजी को मित्रात्मज कहा गया है । संस्था शब्द स्थिति का बोधक है। सर्गसंव्यूह शब्द से नव प्रकार की सृष्टियों को कहा गया है । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् शब्द के द्वारा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिद् प्राणियों को कहा गया है ।।२६-२७।।

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् । सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ।।२८।।
वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः । ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ।।२९।।

अन्वयः— विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् गुणावतारैः सृजतः श्रीनिवास्य उदार विक्रमम् व्याचक्ष्व रूपशीलस्वभावतः वर्णाश्रमविभागान् च, ऋषीणां जन्म, कर्मादि, वेदस्यविकर्षणम् च व्याचक्ष्व ।।२८-२९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए अपने गुणवतारों से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सृष्टि कराने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं का आप वर्णन करें और रूप शील तथा स्वभाव के अनुसार ऋषियों के जन्म कर्म आदि तथा वेदों के भेद का भी आप वर्णन करें ।।२८-२९।।

भावार्थ दीपिका

सर्गादीनामाश्रयं च सृजतः । रूपं लिङ्गम्, शीलमाचारः स्वभावः शमादिः, ततः विकर्षणं विभागम् ।।२८-२९।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि तथा उनके करण की सृष्टि करने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं को आप बतलायें ।।२८-२९।।

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो । नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ।।३०।।
पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम्। जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ।।३१।।

अन्वयः— हे प्रभो यज्ञस्य च वितानानि, योगस्य नैष्कर्म्यस्य, सांख्यस्य च पथः वा भगवत्स्मृतं तन्त्रम्, पाखण्डपथ वैषम्यम् प्रतिमलोमनिवेशनम् गुणकर्मजाः जीवस्य यावतीः या च गतयः एतत् सर्वं वद ।।३०-३१।।

अनुवाद— हे प्रभो आप हमें, यज्ञों के विस्तार को, योग मार्ग, ज्ञान मार्ग और सांख्य मार्ग को, श्रीभगवान् के द्वारा कहे गये नारद पाञ्चरात्र आदि तन्त्रों को, पाखण्डमार्गों के प्रचार के कारण होने वाली विषमता को, नीच वर्ण के पुरुष से उच्चवर्ण की स्त्री से उत्पन्न होने वाली सन्तानों को तथा गुण, कर्म एवं स्वभाव जन्य जीवों की जितनी तथा जो गतियाँ होती हैं उन सबों को आप मुझे बतलाइये ।।३०-३१।।

भावार्थ दीपिका

वितानानि विस्तारान् । नैष्कर्म्यस्य च ज्ञानस्य तदुपायस्य च सांख्यस्य पथः मार्गान् तीव्रं चेत्यर्थः ।।३०।। पाखण्डानां पन्थाः प्रवृत्तिस्तदेव वैषम्यम् ।।३०-३१।।

भाव प्रकाशिका

रूप शब्द लिङ्ग (वेष) का वाचक है । शील शब्द आकार का तथा शम दम आदि को स्वभाव शब्द से कहा गया है । वेदस्यविकर्षणम् अर्थात् वेदो का विभाग वितान विस्तार का बोधक है । नैष्कर्म्य ज्ञानयोग का और उसके उपायभूत सांख्य का बोधक है । पथः का अर्थ है मार्गों को । तन्त्र शब्द नारद पञ्चरात्र को कहा गया है। पाखण्ड पथ वैषम्यम् शब्द का अर्थ है पाखण्डों की पाखण्ड के प्रचार से होने वाली विषमता ।।३०-३१।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः। वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ।।३२।।
श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गमेव च। ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ।।३३।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! धर्मार्थकाममोक्षाणाम् अविरोधतः निमित्तानि, वार्तायाः दण्डनीतेः य श्रुतस्य विधिम् श्राद्धस्य विधिम्, पितृणां सर्गम् एव च, ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम्, पृथक् वद ।।३२-३३।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप हमें धर्म, अर्थ और काम मोक्ष की प्राप्ति के परस्पर में अविरोधी साधनों को वाणिज्य, दण्डनीति और शास्त्र श्रवण की विधियों को, श्राद्ध की विधि को तथा पितरों की सृष्टि को अलग-अलग बतलाइये । आप कालचक्र में ग्रह, नक्षत्र और तारागण की स्थिति को भी अलग-अलग बतलाइये ।।३२-३३।।

भावार्थ दीपिका

निमित्तान्युपायान्परस्पराविरोधेन । ग्रहादीनां कालचक्रे संस्थितिम् ।।३२-३३।।

भाव प्रकाशिका

निमितान्यविरोधतः का अर्थ है परस्पर में विरोध रहित उपायों को । काल चक्र में ग्रहों, नक्षत्रों एवं तारा गणों की स्थिति को ।।३२-३३।।

दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम्। प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥
येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः । संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ॥३५॥

अन्वयः— हे अनघ ! दानस्य, तपसः, वापि, यत् च इष्टापूर्तयोः फलम्, प्रवासस्थस्य यः धर्म, उत आपदि पुंसः यः धर्मः येन वा धर्मयोनिः जनार्दनः तुष्येत् वा साम्प्रसीदति एतद् आख्याहि ॥३४-३५॥

अनुवाद— हे अनघ ! मैत्रेयजी आप मुझे दान, तपस्या, इष्टकर्म यज्ञादि तथा और पूर्तकर्म (कूप आदि का निर्माण) का फल बतलायें प्रवास के समय में मनुष्यों के धर्म को तथा आपद् धर्म को भी बतलायें । धर्म के मूल कारण भगवान् जनार्दन जिस आचरण से सन्तुष्ट होते हैं तथा जिन लोगों पर कृपा करते हैं, उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

भावार्थ दीपिका

येन मार्गेण संतुष्येत् येषामिति यादृशानाम् ॥३४-३५॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि धर्म के मूल कारण भगवान् जनार्दन ही हैं, वे जिस साधन से प्रसन्न होते हैं, उसे आप मुझे बतलायें तथा जिन लोगों पर वे प्रसन्न होकर जो करते हैं उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम । अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥३६॥

अन्वयः— हे द्विजोत्तम ! दीनवत्सलाः गुरवः अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणाम् अनापृष्टम् अपि हितम् ब्रूयुः ॥३६॥

अनुवाद— हे द्विजोत्तम ! दीनजनों पर कृपा करने वाले गुरुजन अपनी आज्ञा का पालन करने वाले शिष्यों तथा पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अनापृष्टमप्यपृष्टमपि मद्योग्यं वक्तव्यमिति भावः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि हे प्रभो ! गुरुजन तो दीन वत्सल होते हैं, वे अपने प्रिय तथा आज्ञा पालक शिष्यों और पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते है । अतएव मैं जो कुछ नही पूछे होऊँ मेरे कल्याण की उन बातों को भी आप बतला दें ॥३६॥

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः । तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥३७॥

अन्वयः— हे भगवन् तेषां तत्त्वानां कतिधा प्रतिसंक्रमः । तत्र इमं के उपासीरन् क उ स्विद् अनुशेरते ॥३७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! उन महदादि तत्त्वों के कितने प्रकार के प्रलय होते हैं । जब भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं उस समय उनकी सेवा कौन करते हैं और कौन उनमें लीन हो जाते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिसंक्रमः प्रलयः । तत्र प्रलये इमं परमेश्वरं शयानं राजानमिव चामरग्राहिणः के वाऽनुशेरते शयानमनुस्वपन्ति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

महदादि तत्त्वों का कितने प्रकार का प्रलय होता है ? जिस समय भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं, उस समय जिस तरह सोए हुए राजा की चामरग्राही सेवा करते हैं, उसी तरह सोये हुए परमात्मा की सेवा कौन-कौन तत्त्व करते हैं ? और कौन तत्त्व उनके ही साथ सो जाते हैं ॥३७॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च । ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥

अन्वयः— पुरुषस्य संस्थानं परस्य च स्वरूपम्, नैगमं ज्ञानं, गुरुशिष्य प्रयोजनम् च वद ॥३८॥

अनुवाद— जीव के स्वरूप को, परमात्मा के स्वरूप को, उपनिषत् प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु तथा शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्य संस्थानं जीवस्य तत्त्वम् । परमेश्वरस्य स्वरूपम् । येनांशेन तयोरैक्यम् । तथा ज्ञानं च । नैगममौपनिषदम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आप मुझे जीव के तत्त्व को, परमात्मा के स्वरूप को, जिस अंश में जीव और परमेश्वर की एकता है उसको, उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु एवं शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः । स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥

अन्वयः— हे अनघ ! इह सूरिभिः तस्य प्रोक्तानि, निमित्तानि पुंसां स्वतः ज्ञानं भक्तिवैराग्यं एव वा कुतः ॥३९॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन-जिन साधनों को बतलाया है, उन सबों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को अपने आप ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य की प्राप्ति का होना कैसे सम्भव है ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यानि सूरिभिः प्रोक्तानि तस्य ज्ञानस्य साधनानि तानि च ब्रूहि । गुरु विनैतन्न भवतीत्याह-स्वत इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन साधनों को बतलाया है, उन साधनों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की प्राप्ति तो गुरु के बिना अपने आप नहीं हो सकती है ॥३९॥

एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया । ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४०॥

अन्वयः— हरेः कर्मविवित्सया एतान् प्रश्नान् पृच्छतः अज्ञस्य अजया नष्टचक्षुषः मे मित्रत्वात् ब्रूहि ॥४०॥

अनुवाद— श्रीहरि की लीलाओं को जानने की इच्छा से इन प्रश्नों को मैं आपसे पूछ रहा हूँ । मैं तो अज्ञानी हूँ । माया ने मेरे ज्ञान को विनष्ट कर दिया है । आप मेरे परम मित्र हैं अतएव आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

मे प्रश्नान्मे मित्रत्वात्स्निग्धत्वादित्यन्वयभेदान्न मे पदस्य पौनरूक्त्यम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **मे** पद दो बार आया है उनमें से एक मे पद का प्रश्नान् के साथ अन्वय है और दूसरे मे पद का मित्रत्वात् पद के साथ अन्वय है अतएव इस श्लोक मे पुनरुक्त दोष के होने की सम्भावना नहीं की जा सकती है ॥४०॥

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥४१॥

अन्वयः— हे अनघ ! सर्वे वेदाश्च, यज्ञाश्च, दानानि च जीवाभयप्रदानस्य कलामपि न कुर्वीरन् ॥४१॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी समस्त वेद, यज्ञ तथा दान जीव को अभय प्रदान के अंश भी नहीं उत्पन्न कर सकते है । जीव को अभय प्रदान तो तत्त्वोपदेश के द्वारा ही सम्भव है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वोपदेशेन जीवाभयप्रदानस्य ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

आचार्य तत्त्वों का उपदेश करके जीव को जन्म तथा मरण से मुक्ति प्रदान करके जिस अभयको प्रदान कर देते हैं सभी वेद यज्ञ और दान मिलकर उस अभय प्रदान के एक अंश को भी नहीं प्रदान कर सकते हैं ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ।
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— कुरु प्रधानेन इत्थम् आ पृष्टः पुराणकल्पः मुनिप्रधानः सः प्रवृद्धहर्षः भगवत् कथायां संचोदितः प्रहसन्निव तं आह ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कुरुवंशियों में प्रधान विदुरजी के द्वारा इस तरह से पुराण विषयक प्रश्न पूछे जाने पर भगवत् चर्चा के लिए प्रेरित किए जाने के कारण मैत्रेय महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कुराकर उनसे कहने लगे ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के सातवें अध्याय का
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पुराणे कल्पते प्रकाशत इति पुराणाकल्पो बुभुत्सितोऽर्थः आपृष्टः पुराणकल्पोऽयं स मुनिप्रधानः ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जो पुराणों में ही प्रकाशित होता है उस जानने योग्य अर्थ के पूछे जाने पर मुनिगणों में प्रधान मैत्रेय महर्षि ने प्रसन्नता का अनुभव किया और वे मुस्कुराते हुए विदुरजी का उत्तर देने लगे ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥७॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी की उत्पत्ति

मैत्रेय उवाच

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्याभीक्ष्णम् ॥१॥

अन्वयः— बत पूरुवंशः सत्सेवनीयः यत इह भगवत्प्रधानः लोकपालः बभूविथ । अभीक्ष्णम् पदे पदे अजित-कीर्तिमालां नूतनयसि ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— निश्चित रूप से पुरुवंश सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय है; क्योंकि इस वंश में आप यमराज नामक लोकपाल जन्म लिए हैं और निरन्तर पद-पद पर आप श्रीहरि की कीर्तिमाला को नवीन सी बना रहे हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे समभूद्ब्रह्मा नाभेस्तु जलशायिनः । तमजानञ्जले बिभ्यत्तपसाऽतोषयद्विभुम् ॥१॥ श्रोतारमभिनन्दति । सतां सेवितुं योग्यः । बत अहो । यत् यस्मादिहास्मिन्वंशे लोकपालो धर्मराजस्त्वं बभूविथ जातोऽसि । कथंभूतः भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः । अत्र हेतुः-अजितेति । प्रतिक्षणं नूतनयसि नवीनां करोषि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस आठवें अध्याय में जलशायी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी श्रीभगवान् को नहीं जानने के कारण जल में अकेले डरने लगे । उन्होंने तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् को प्रसन्न किया; यही वर्णित है ॥१॥

इस श्लोक में श्रोता विदुरजी की प्रशंसा मैत्रेय महर्षि करते हैं । वे बतलाते हैं कि चूकि इस पूरु के वंश में आप जन्म लिए हैं । आप भगवद्भक्तों में प्रधान लोकपाल यमराज हैं । और आप निरन्तर श्रीभगवान् की कीर्ति को पद-पद पर नवीन बना रहे हैं । अतएव यह पुरुवंश सत्पुरुषों द्वारा सेवनीय है । **भगवत् प्रधानः** का विग्रह है **भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः** ॥१॥

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥२॥

अन्वयः— सोऽहं क्षुल्लसुखाय महददुखं गतानां नृणां विरमाय भागवतं पुराणं प्रवर्तये, यत् साक्षात् भगवान् ऋषिभ्यः आह ॥२॥

अनुवाद— मैं अल्पसुख प्राप्त करने के लिए महान् दुःख का अनुभव करने वाले जीवों के दुःखों का विराम करने के लिए, श्रीमद्भागवतपुराण को प्रारम्भ करता हूँ उसको साक्षात् भगवान् संकर्षण ने ऋषियों का सुनाया था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अल्पसुखाय महद्दुःखं प्राप्तानां तस्य दुःखस्य विरामाय प्रवर्तये प्रारभे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

क्षुद्र विषय सुख की प्राप्ति के लिए महान् दुःख को भोगने वाले मनुष्यों के दुःख को दूर करने के लिए मैं इस श्रीमद्भागवत पुराण को प्रारम्भ करता हूँ । इस पुराण को भगवान् संकर्षण ने ऋषियों को सुनाया था ॥२॥

आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥३॥

अन्वयः— अकुण्ठसत्त्वम् उर्व्यां आसीनम् आद्यं भगवन्तम् सङ्कर्षणं परस्य तत्त्वम् विवित्सवः कुमारमुख्याः मुनयः अन्वपृच्छन् ॥३॥

अनुवाद— अखण्ड ज्ञान सम्पन्न पृथिवी पर विराजमान आदि देव भगवान् सङ्कर्षण से परतत्त्व को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने पूछा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवान्, केभ्यश्चर्षिभ्य आह, कथं च त्वया प्राप्तमित्यपेक्षायामाह–आसीनमिति सप्तभिः । उर्व्यां पातालतले अकुण्ठसत्त्वमप्रतिहतज्ञानम् । अतः सङ्कर्षणात्परस्य श्रीवासुदेवस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वे भगवान् कौन है ? वे भगवान् किन ऋषियों को भागवत का उपदेश दिए ? आपने उस श्रीमद्भागवत पुराण को कैसे प्राप्त किया ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर मैत्रेय महर्षि ने **आसीनम्० इत्यादि** सात श्लोकों से इन सारी बातों को बतलाया । आदि भगवान् सङ्कर्षण पाताल में पृथिवी पर बैठे थे । वे भगवान् अखण्ड ज्ञान सम्पन्न हैं । अतएव सङ्कर्षण से भी श्रेष्ठ श्रीवासुदेव भगवान् के तत्त्वों को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि महर्षियों ने उनसे प्रश्न किया ॥३॥

स्वमेवधिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ।
प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥४॥

अन्वयः— स्वमेवधिष्ण्यं बहुमानयन्तं यं वासुदेवाभिधं आमनन्ति प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशम् विबुधोदयाय ईषदुन्मीलयन्तम् ॥४॥

अनुवाद— जिन भगवान् को वेद वासुदेव नाम से अभिहित करते हैं उन अपने आश्रयभूत श्रीभगवान् का अत्यन्त आदर पूर्वक मानसिक पूजन करने वाले, जिनके कमलकोश के समान सुन्दर नेत्र बन्द थे; ऐसे भगवान् सङ्कर्षण उन महर्षियों के प्रश्न को सुनकर उन ज्ञानी सनत्कुमार आदि को आनन्दित करने के लिए अपनी अधखुली आँखों से देखे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तमेव विशिनष्टि । स्वमेव धिष्ण्यं स्वीयमाश्रयं वासुदेवसंज्ञं परमानन्दरूपं ध्यानपथेऽनुभूय बहु मानयन्तं सर्वोत्कर्षेण पूजयन्तम् । प्रत्यग्धृतमन्तर्मुखीकृतं नेत्राम्बुजमुकुलं किंचिदुन्मीलयन्तम् । कृपावलोकेन सनत्कुमारादीनामभ्युदयार्थम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण की ही विशेषता इस श्लोक में बतलायी जा रही है । अपने आश्रयभूत परमानन्द स्वरूप भगवान् वासुदेव का ध्यान में अनुभव करके अत्यन्त आदर पूर्वक सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के रूप में उनकी पूजा करते हुए, जिनकी नेत्र कलिका अन्तर्मुखी हो गयी थी उन दोनों नेत्रों को थोड़ा सा खोलकर सनत्कुमारादि ऋषियों को आनन्दित करते हुए वे देखे ॥४॥

स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।
पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥५॥

अन्वयः— स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैः चरणोपधानम् पद्म स्पृशन्तः यत् अहिराजकन्याः वरार्थाः नानाबलिभिः सप्रेम अर्चयन्ति ॥५॥

अनुवाद— गङ्गा के जल से भिङ्गे हुए अपने जटा समूह से भगवान् सङ्कर्षण के चरण चौकी के रूप में स्थित कमल का उन महर्षियों ने स्पर्श किया अर्थात् भागवत की कथा सुनने के लिए प्रणाम किया, जिस कमल की पूजा नाग राजकुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने की इच्छा से अनेक उपहारों से किया करती हैं।।५।।

भावार्थ दीपिका

मुनीनां विशेषणं सार्धेन । स्वर्धुन्या उदकेनार्द्रैरिति । श्रीभागवतश्रवणार्थं सत्यलोकात्पातालं प्रत्यवतरन्तो निरन्तरं गङ्गामध्यत एवावतीर्णा इति भावः । चरणावुपाधीयेते । यस्मिन् पद्मे । तदुपस्पृशन्तो नमन्तः । कथंभूतं तदाह । यत्पद्मं प्रेमसहितं यथा भवत्येवं नानोपहारैः पूजयन्ति । वरार्थाः पतिकामाः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों की विशेषता डेढ श्लोकों में बतलायी गयी है । श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के लिए सत्यलोक से पाताल लोक में आते हुए सनकादिक महर्षियों के सिर गङ्गाजी के जल से भिङ्गा था क्योंकि वे गङ्गा के बीच से ही आ रहे थे । सङ्कर्षण भगवान् जिस पर चरण रखते थे उस कमल को उन लोगों ने नमस्कार किया । उसकमल की विशेषता बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उस कमल की पूजा नागराज की कुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपहारों से प्रेम पूर्वक किया करती हैं ।।५।।

मुहुर्गृणन्तो वचसानुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।
किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ।।६।।

अन्वयः— अस्य कृतानि तज्ज्ञाः अनुरागस्खलत्पदेन वचसा कृतानि मुहुर्गृणन्तः किरीट साहस्रमणिप्रवेक-प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ।।६।।

अनुवाद— भगवान् सङ्कर्षण की लीलाओं के ज्ञाता वे सनत्कुमार आदि महर्षि प्रेमातिरेक के कारण गद्‌गद वाणी से उनकी लीलाओं का बार-बार गायन कर रहे थे । उस समय शेष भगवान् के उठे हुए हजारों फण उनके हजारों किरीटों में लगी उत्तम मणियों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे थे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

कृतानि कर्माणि गृणन्तः । केन । अनुरागेण स्खलन्ति पदानि यस्मिंस्तेन वचसा । तानि जानन्तीति तज्ज्ञाः । सहस्रमेवसाहस्रं क्रिरीटानां साहस्रे ये मणिप्रवेका रत्नोत्तमास्तैः प्रद्योतितमुद्दामफणानां सहस्रं यस्य तमपृच्छन्निति पूर्वेणान्वयः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

वे सनत् कुमारादि ऋषि शेष भगवान् की लीलाओं के अभिज्ञ थे, अतएव वे प्रेम पूर्वक अपनी गद्गद वाणी से शेष भगवान् की लीलाओं का गायन कर रहे थे । शेष भगवान् की फणाओं के जो हजारो किरीट थे उनमें जटित उत्तम कोटि के रत्नों की किरणों से उनके उठे हुए हजारों फण जगमगा रहे थे । इस प्रकार के शेष भगवान् से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने प्रश्न किया ।।६।।

प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ।।७।।

अन्वयः— भगवतमेन तेन निवृत्तिधर्माभिरताय सनत्कुमाराय एतत् प्रोक्तं किल हे अङ्ग स च पृष्टः धृतव्रताय सांख्यायनाय आह ।।७।।

अनुवाद— भगवान् सङ्कर्षण ने निवृत्ति परायण सनत्कुमार को यह भागवत् सुनाया । यह प्रसिद्ध है । सनत्

कुमार महर्षि ने भागवत को सुनने के लिए ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन रूप परम व्रत धारण करने वाले सांख्यायन मुनि को उनके द्वारा पूछे जाने पर सुनाया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तेन सङ्कर्षणेन सनत्कुमाराय प्रोक्तम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम सङ्कर्षण भगवान् ने श्रीभगवान् को सनत् कुमार महर्षि को भागवत सुनाया क्योंकि वे निवृत्ति मार्ग के अनुयायी थे। उन्होंने सांख्यायन मुनि को श्रीमद्भागवत सुनाया ॥७॥

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥८॥

अन्वयः— पारमहंस्यमुख्यः सांख्यायनः भगवद्विभूतीः विवक्षमाणः बृहस्पतेः अन्विताय अस्मद्गुरवे पराशराय जगाद॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के इच्छुक परमहंसों में मुख्य संख्यायन महर्षि ने आचार्य बृहस्पति के शिष्य मेरे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पारमहंस्ये धर्मे मुख्यः । विवक्षमाण इत्यात्मनेपदं, ब्रूआदेशस्य वचेरुभयपदित्वात् । अन्वितायानुगताय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पारमहंस्य धर्म का पालन करने वालों में मुख्य सांख्यायन मुनि को जब भगवान की विभूतियों का वर्णन करने की इच्छा हुयी तो उन्होंने आचार्य बृहस्पति के शिष्य और हमारे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया । **विवक्षमाणः** में आत्मने पद इसलिए है कि ब्रूधातु के आदेशभूत वच् धातु उभयपदि है ॥८॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥९॥

अन्वयः— पुलस्त्येन उक्तः सः दयालुः मुनिः आद्यं पुराणम् मह्यम् प्रोवाच । हे वत्स ! सोऽहं नित्यमनुव्रताय श्रद्धालवे तव एतत् कथयामि ॥९॥

अनुवाद— पुलस्त्य मुनि के कहने से वे दयालु मुनि उस आदिपुराण को मुझे सुनाये । हे वत्स ! वही पुराण अब मैं तुमको सुना रहा हूँ, क्योंकि तुम श्रद्धालु हो तथा सदा अनुगत रहने वाले हो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पुलस्त्येनोक्त इत्यत्रैवमाख्यायिका । पितरं राक्षसभक्षितं श्रुत्वा पराशरो राक्षससत्रे प्रवृत्तो वसिष्ठवचनान्निवृत्तस्ततः पुलस्त्येन स्वसंततिरक्षणात्तुष्टेन वरो दत्तः पुराणप्रवक्ता भविष्यसीति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि पुलस्त्य के कहने से, कहने की, इस प्रकार की आख्यायिका है कि महर्षि पराशर ने जब यह जाना की उनके पिता शक्ति महर्षि को राक्षस ने खा लिया तो उसके पश्चात् वे राक्षस सत्र करने लगे । उस समय महर्षि वसिष्ठ ने आकर उनके उस सत्र को बन्द करवा दिया । उसके पश्चात् उनकी सन्तान की रक्षा हो जाने के कारण महर्षि पुलस्त्य ने कहा कि तुम पुराण के वक्ता होओगे ॥९॥

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

अन्वयः— यत् इदं विश्वम् उदाप्लुतं आसीत् तदा एकः अहीन्द्रतल्पे अधिशयानः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः निद्रया अमीलित दृङ्न्यमीलयत् ॥१०॥

अनुवाद— सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् जल में डूबा हुआ था । उस समय अकेले श्रीभगवान् शेष शय्या पर सोए थे । निद्रा के कारण नेत्रों के बन्द होने पर भी वे अपनी आँखें बन्द किए हुए थे । सृष्टि के कार्य को बन्द करके वे आत्मानन्द में मग्न थे । वे उस समय निष्क्रिय थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं संकर्षणात्संप्रदायप्रवृत्तिं प्रदर्श्य विभूतिकथनाय पद्मोद्भवं वक्तुमाह । उदाप्लुतमेकार्णवोदके निमग्नं यद्यदा आसीत्तदाऽमीलितदृगतिरोहितचिच्छक्तिरेव श्रीनारायणो नेत्रे निमीलितवानित्यर्थः । मायाविनोदं परित्यज्य स्वात्मरतौ स्वरूपानन्द एव कृतोत्सवः । अतएव निरीहो निष्क्रियः सन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् सङ्कर्षण से भागवत के सम्प्रदाय की प्रवृत्ति बतलाकर भगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी की उत्पत्ति का वर्णन करने के लिए मैत्रेयजी ने कहा जिस समय विश्व जल में डूबा हुआ था, वह एकार्णव की बेला थी । उस समय चित्शक्ति तिरोहित नहीं थी किन्तु शेष शय्या पर सोये हुए भगवान् अपनी आँखों को बन्द कर लिए थे माया के विनोद का परित्याग करके वे अपने स्वरूपानन्द में मग्न थे । फलतः वे निष्क्रिय हो गये थे ॥१०॥

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।
उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥

अन्वयः— अन्तः शरीरेऽर्पित भूतसूक्ष्मः सः दारुणि रुद्धवीर्यः अनलो यथा तस्मिन् स्वे पदे सलिले कालात्मिकां शक्तिम् उदीरयाणः उवास ॥११॥

अनुवाद— अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए श्रीभगवान् काष्ठ में व्याप्त तथा अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहने वाले अग्नि के समान, अपने अधिष्ठानभूत उस जल में शयन किये थे । उस समय उन्होंने केवल कालशक्ति को सृष्टि का समय आने पर जगाने के लिए जागृत रखा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कालशक्तेः प्रेरणं पुनः सृष्ट्यवसरे प्रबोधनार्थम् । स्वे पदेऽधिष्ठाने । बहिर्वृत्त्यभावे दृष्टान्तः-यथाऽनल इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

योगनिद्रा में शयन करते समय श्रीभगवान् ने काल शक्ति को इसलिए जागृत रखा था कि सृष्टि काल के आने पर वह उनको जगा दे । उस समय श्रीभगवान् की बहिर्वृत्ति का अभाव था । इसका उदाहरण है कि जिस तरह अरणि के काष्ठ में अग्नि व्यापक रहती है, किन्तु वह अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहती है, उसी तरह श्रीभगवान् अपने अधिष्ठानभूत जल में अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए निवास किए थे ॥११॥

चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।
कालाख्ययासादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

अन्वयः— चतुर्युगानां सहस्रम् अप्सु स्वपन् स्वया उदीरितया कालाख्यया स्वशक्त्या आसादित कर्मतन्त्रः स्वदेहे अपीतान् लोकान् ददृशे ॥१२॥

अनुवाद— अपनी चित् शक्ति के साथ एक हजार चतुर्युग पर्यन्त जल में शयन करने के पश्चात् अपने ही द्वारा नियुक्त कालात्मिका शक्ति ने उनको जीवों की कर्मशक्ति की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वया चिच्छक्त्या सह वर्तमान एव योगनिद्रया स्वपन् पूर्वमेव बोधनार्थं नियुक्तया स्वकालशक्त्या आसादितं प्रापितं कर्मतन्त्रं क्रियाकलापो यस्य सः। अपीतान् लीनान् ददर्श ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी चित्शक्ति के साथ ही योगनिद्रा में शयन करने वाले भगवान् सोने से पहले ही जगाने के लिए नियुक्त काल शक्ति के द्वारा जगाये जाने पर अपने कर्मतन्त्र को अपना कर उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥१३॥

अन्वयः— अर्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेः तस्य कालानुगतेन रजसा गुणेन विद्धः अन्तर्गतः तनीयान् अर्थान् सूष्यन् तदा नाभिदेशात् अभिद्यत ॥१३॥

अनुवाद— जिस समय श्रीभगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर वे सृष्टि की रचना के लिए उनके नाभिदेश से बाहर निकला ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

लोकसृष्ट्यर्थमर्थसूक्ष्मेऽभिनिविष्टा दृष्टिर्यस्य। कालानुसारिणा रजोगुणेन विद्धः संक्षोभितः सन् तनीयानतिसूक्ष्मोऽर्थः सूष्यन्प्रसोष्यन्नुद्भविष्यन्नाभिदेशादुद्भूत इत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

लोकों की सृष्टि करने के लिए लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर अत्यन्तसूक्ष्म तत्त्व उन सूक्ष्म विषयों को उत्पन्न करने के लिए श्रीभगवान् के नाभिप्रदेश से बाहर निकला ॥१३॥

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥१४॥

अन्वयः— कर्म प्रतिबोधनेन कालेन स आत्मयोनिः पद्मकोशः स्वरोचिषा तत् विशालं सलिलं स्वरोचिषा अर्क इव विद्योतयन् सहसा उदतिष्ठत् ॥१४॥

अनुवाद— कर्मशक्ति को जागृत करने वाले भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट हुआ वह कमलकोश अपनी कान्ति से उस विशाल जल को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए सहसा ऊपर की ओर उठा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स तनीयानर्थः पद्मकोशः सन्नुदतिष्ठत्। कर्माणि जीवादृष्टानि प्रतिप्रबोधयति यः कालस्तेन। आत्मा श्रीविष्णुर्योनिर्यस्य॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जीवों के आदृष्टों को जागृत करने वाले काल शक्ति के द्वारा प्रेरित वह सूक्ष्म तत्त्व ही भगवान् विष्णु की

नाभि से कमल कोश के रूप में ऊपर की ओर उठा वह अपनी कान्ति से उस विशाल जल समूह को प्रकाशित कर रहा था ॥१४॥

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥

अन्वयः— सर्वगुणावभासं तल्लोकपद्मं स विष्णुः एव प्रावीविशत् तस्मिन् सः स्वयं वेदमयो विधाता अभूत् यं स्वयम्भुवं वदन्तिस्म ॥१५॥

अनुवाद— सभी गुणों को प्रकाशित करने वाले उस लोककमल में भगवान् विष्णु ही अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये उसके पश्चात् उसमें से बिना पढ़ाये ही वेदों के ज्ञाता ब्रह्माजी प्रकट हुए जिनको लोग स्वयम्भू कहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तल्लोकात्मकं पद्मं सर्वान्गुणान् जीवभोग्यानर्थानवभासयतीति तथा । तद्यस्माज्जातं स एव विष्णुः । उ इति संबोधने। प्रावीविशत्प्रकर्षेणालुप्तशक्तिरेवान्तर्यामितया विवेश । तस्मिन्विष्णुनाऽधिष्ठिते पद्मे विधाता ब्रह्माऽभूत् । कथंभूतः स्वयमेव वेदमयो न त्वध्ययनेन प्राप्तवेदः । अदृष्टपितृत्वेन यं स्वयंभुवं वदन्ति सः । प्राक्कल्पान्ते नारायणेन सह निद्रयैकीभूत आसीत्तस्मिंश्च प्रबुद्धे तत एव पाद्मे कल्पे पद्मद्वारेणाभिव्यक्तिं प्राप्त इत्यर्थः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जीवों के समस्त भोग्य विषयों को प्रकाशित करने वाले उस लोकात्मक पद्म के भीतर जिनकी शक्ति बिल्कुल लुप्त नही हुयी थी ऐसे भगवान् विष्णु अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये । उस कमल के भगवान् विष्णु के द्वारा अधिष्ठित होने पर उससे ब्रह्माजी प्रकट हुए । वे वेदाध्ययन किए बिना ही वेद के ज्ञाता थे । अब प्रश्न है कि वे ब्रह्मा कौन हैं तो इसका उत्तर है, कि उनके पिता को नहीं देखने के कारण लोग उनको स्वयम्भू कहते हैं इस पाद्मकल्प से पहले जो कल्प था उसके अन्त में भगवान् नारायण के साथ ही उनमें मिलकर वे सो गये थे । पाद्मकल्प में जगने पर उस पद्म से ही वे प्रकट हुए ॥१५॥

तस्यां च चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ।
परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥१६॥

अन्वयः—तस्याम् अम्भोरुहकर्णिकायां अवस्थितः लोकमपश्यमानः व्योम्निपरिक्रमन् अनुदिशं चत्वारि मुखानि लेभे॥१६॥

अनुवाद— कमल की उस कर्णिका पर बैठे हुए ब्रह्माजी जब किसी भी लोक को नहीं देखा तो वे अपनी आँखों को अच्छी तरह से खोलकर चारो दिशाओं में देखने लगे, उस समय उनको चार दिशाओं में चार मुख प्राप्त हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स च तस्मिन्कल्पे चतुर्मुखोऽभूदित्याह- तस्यामिति । परिक्रमंस्तत्रस्थ एव ग्रीवां चालयन् लोकनिरीक्षणार्थं विवृत्ते विचलिते नेत्रे यस्य ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वे उस कल्प में चतुर्मुख हो गये इस अर्थ को **तस्यामित्यादि** श्लोक से कहा गया है । ब्रह्माजी जिस कमल पर प्रकट हुए थे उसी कमल की कर्णिका पर बैठकर वे देख लगे किन्तु उस समय उनको कोई लोक नहीं दिखायी पड़ा । इसके पश्चात् वे बैठे ही बैठे चारो दिशाओं में अपनी गर्दन घुमाकर तथा अच्छी तरह से आँखों को खोलकर देखने लगे । उसी समय उनके दिशाओं के अनुसार चार मुख हो गये ॥१६॥

तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥१७॥

अन्वयः— तस्मात् युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचकात् सलिलात् विरुढम् लोकतत्त्वे कञ्जम् उपाश्रितः आदिदेवः अद्धा नात्मानम् अविदत् ॥१७॥

अनुवाद— उस समय प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से उछलती जल की तरङ्गों से उस जल राशि से ऊपर उठे हुए कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को उस लोकतत्त्व स्वरूप कमल के तथा अपने रहस्य का कुछ भी पता नहीं चला ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य च श्रीनारायणोपासनयैवाविर्भूतज्ञानक्रियाशक्तेर्लोककर्तृत्वं न स्वत इति वक्तुं प्रथमं तस्य विमोहमाह । तस्मात्सलिलाद्विरूढमुद्गतं कञ्जश्मुपाश्रितोऽपि साकल्येन तत्कञ्जं लोकतत्त्वं चात्मानं च साक्षान्न ज्ञातवान् । उत इति विस्मये। कथंभूतात् । युगान्तश्वसनः प्रलयवायुस्तेनावघूर्णं तत्र तत्र प्रकम्पितं यस्मात्सर्वत ऊर्मिचक्रं यस्मिन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण की उपासना से ही ब्रह्माजी को ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और लोककर्तृत्व की शक्ति प्राप्ति हुयी अपने आप नहीं; इस अर्थ को बतलाने के ही लिए ब्रह्माजी के मोह का वर्णन मैत्रेय महर्षि इस श्लोक में करते हैं । श्लोक का उ शब्द आश्चर्य का बोधक है । उस समय चलने वाली वायु के झंकोरों के कारण एकार्णव में ऊँची लहरें उठ रही थीं । उस जल से निकले हुए कमल पर ब्रह्माजी बैठे हुए थे किन्तु वे पूर्णरूप से उस कमल को जान नहीं सके, और न लोकतन्त्र को जान सके, साथ ही अपने भी विषय में वे कुछ भी नहीं जान सके ॥१७॥

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ।
अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

अन्वयः— स असौअब्जपृष्ठे अहम् एषः कः, अनन्यत् एतत् अब्जं वा अप्सु कुतः । यत्र एतत् अधिष्ठितं इह अधस्तात् किञ्चन सता भाव्यम् नु ॥१८॥

अनुवाद— ब्रह्मजी सोचने लगे कि इस कमल के ऊपर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? जल के भीतर केवल यही कमल कैसे पैदा हो गया ? जिस पर यह कमल टिका हुआ है, ऐसी किसी वस्तु को इसके नीचे होना चाहिए जिसके आधार पर यह कमल स्थित है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अविदुषस्तस्य वितर्कमाह । योऽसावहमब्जपृष्ठे एष कः । अनन्यदेकमेवैतदब्जं कुतो वा जातम् । यत्रैतदधिष्ठितं तेनाधस्तात्सता वर्तमानेन तु निश्चितं भाव्यम् । स इत्थमुद्वीक्ष्येत्युत्तरेणान्वयः । तथा च श्रुतिः-**सोऽपश्यत्पुष्करपर्णे तिष्ठन्सोऽमन्यत अस्मि चैतद्यस्मिन्निदमधितिष्ठति'** इति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उस कमल तथा अपने विषय में कुछ नहीं जान पाने वाले ब्रह्माजी के वितर्क को ही इस श्लोक में कहा गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? इस विशाल जल राशि में यह अकेला कमल कहाँ से उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे किसी वस्तु को होना चाहिए जिसके ऊपर यह कमल स्थित है, श्रुति भी कहती है— **सोऽपश्यत् पुष्करपर्णे० इत्यादि** अर्थात् कमल दल के ऊपर बैठे हुए ब्रह्माजी ने सोचा कि कोई ऐसी वस्तु है जिसके ऊपर यह कमल स्थित है ॥१८॥

स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥१९॥

अन्वयः— इत्थम् उद्वीक्ष्य सः तदब्जनालनाडीभिः जलम् अन्तः आविवेश, अर्वाक् गतः अजः तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वन् तत् न अविन्दत ॥१९॥

अनुवाद— इस प्रकार से विचार करके ब्रह्माजी उस कमल के नाल के छिद्र से जल में प्रवेश कर गये उसके भीतर जाकर कमल नाल के आधार भूत नाभि का अन्वेषण करके भी उसे वे नहीं जान सके ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य च बहिर्मुखप्रवृत्त्या महतापि कालेन तदप्राप्तिमाह-स इति द्वाभ्याम् । तस्याब्जस्य यन्नालं तस्य नाडीभिरन्तश्छिद्रैः। तस्य खरनालस्य पद्मस्य यन्नालं तस्य नाभिमधिष्ठानं विचिन्वन्नर्वाग्गतोऽपि तत्तदा नाविन्दत ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की बहिर्मुखी प्रवृति होने के कारण ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रयास करके उस कमल के आधार को नहीं जान सके, इस बात को **स इत्थम् इत्यादि** दो श्लोकों से मैत्रेयजी ने कहा— उस कमल के नाल के छिद्रों के माध्यम से जल में प्रवेश करके भीतर जाने पर भी उस कमल के अधिष्ठान का पता ब्रह्माजी नहीं लगा सके॥१९॥

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ।
यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥

अन्वयः— हे विदुर ! अपारे तमसि आत्मसर्गं विचिन्वतः महान् त्रिणेमिः अभूत् यः अजस्य हेतिः भयम् ईरयाणः आयुः क्षिणोति ॥२०॥

अनुवाद— विदुरजी उस घोर अन्धकार में अपने उत्पत्तिस्थान को खोजते हुए बहुत समय बीत गया । वह काल भगवान् का चक्र है, जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करता रहता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हे विदुर, आत्मसर्गं स्वकारणम् । त्रिणेमिः कालः । अजस्य विष्णोर्हेतिः सुदर्शनरूपं शस्त्रम् । देहभाजां नराणां भयमुत्पादयन्निति संवत्सरशतमतिक्रान्तमित्युक्तं भवति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी ! उस घोर अन्धकार में अपनी उत्पत्ति का स्थान खोजते हुए ब्रह्माजी के सौ वर्ष से भी अधिक समय बीत गया । वह काल ही भगवान् का सुदर्शन चक्र है जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करने का काम करता है ॥२०॥

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ।
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥

अन्वयः— ततः अप्रतिलब्धकामः निवृत्तः पुनः स्वधिष्ण्यम् असाद्य स देवः शनैः जितश्वास निवृत्तचित्तः आरूढसमाधियोगः न्यषीदत् ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् विफल मनोरथ बह्माजी लौट आये फिर अपने स्थान पर आकर धीरे-धीरे प्राणवायु को जीतकर चित्त को सङ्कल्प रहित बनकर समाधिस्थ हो गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्मुखतया तु भगवन्तं दृष्टवानित्याह द्वाभ्याम् । ततोऽन्वेषणान्निवृत्तः । न प्रतिलब्धः कामो मनोरथो येन । स्वधिष्ण्यं पद्मम् । जितेन श्वासेन निवृत्तं संयतं चित्तं यस्य, अत एवारूढ आश्रितः समाधियोगो येन तथाभूतः सन्न्यषीददुपविवेश॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी अपनी बाह्य शक्तियों को निगृहीत करके केवल परमात्मध्यान परायण होकर श्रीभगवान् का साक्षात्कार किए । उसके पश्चात् अपने कारण तत्त्व के अन्वेषण से निवृत्त हुए ब्रह्माजी क्योंकि उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हो पाया था । पुनः आकर वे अपने स्थान पर बैठ गये । उन्होंने प्राणवायु को जीतकर अपने चित्त को सङ्कल्प विहीन बनाया और समाधि में वे स्थित हो गये ॥२१॥

कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥२२॥

अन्वयः— सोऽजः पुरुषायुषा कालेन अभिप्रवृत्तयोगेन विरुढबोधः सन् यत् पूर्वम् न अपश्यत तत् अन्तः हृदये स्वयम् अवभातम् अपश्यत् ॥२२॥

अनुवाद— किसी पुरुष के पूर्ण आयु का जितना काल होता है उतने काल तक अच्छी तरह से निष्पन्न योग के द्वारा ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ । उसके पश्चात् अपने जिस अधिष्ठान का अन्वेष्ण करके भी ब्रह्माजी नहीं देख पाये थे उसका अपने आप ही अन्तःकरण में प्रकाशित रूप से साक्षात्कार किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषायुषा संवत्सरशतेन कालेनाभिप्रवृत्तः सुनिष्पन्नो योगस्तेन विरूढ उत्पन्नो बोधो यस्य । यत्पूर्वं विचिन्वन्नपि नापश्यत्तत्स्वयमेवान्तर्हृदयेऽवभातमपश्यत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सौ वर्षों तक लगातार योग साधना करने से ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसके पश्चात् वे जिस अपने कारण तत्त्व का अन्वेषण करके भी दर्शन नहीं कर पाये थे । वे श्रीभगवान् अपने आप उनके अन्तःकरण में प्रकाशित हो गये और ब्रह्माजी ने उनका दर्शन किया ॥२२॥

मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।
फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥

अन्वयः— युगान्ततोये मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्के शयानम्, फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिः हतध्वान्तं एकं पुरुषम् अपश्यत् ॥२३॥

अनुवाद— उन्होंने देखा कि उस प्रलय कालीन जल में शेष नाग के कमल नाल के समान गौर एवं विशाल शरीर की शय्या पर पुरुषोत्तम भगवान् नारायण अकेले ही लेटे हुए हैं । शेषजी की हजार फणायें छत्र के समान फैली हुयी हैं । उनके सिर पर विद्यमान मुकुट की मणियों की कान्ति से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यदपश्यत्तद्वर्णयति-मृणालेति नवभिः । नवस्वप्यपश्यदित्यस्यैवानुषङ्गः । मृणालवद्गौरश्चासावायतश्च यः शेषस्तस्य भोगो देहः स एव पर्यङ्कस्तस्मिन् । कुत्र स्थिते पर्यङ्के फणातपत्रैरायुताः सर्वतो युक्ता ये मूर्धानस्तेषां रत्नानि किरीटस्थानि तेषां द्युभिः प्रभाभिर्हतध्वान्ते युगान्ततोये ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने जिसे देखा उसका वर्णन नव श्लोकों से करते हैं । इन नव श्लोकों में अपश्यत् क्रिया का सम्बन्ध

है। शेषजी का शरीर कमल नाल के समान गौर वर्ण का तथा विस्तृत था। उसी पर श्रीभगवान् सोये थे, शेषजी के हजारों फण छत्र के समान फैले थे। शेषजी के शिर पर विद्यमान किरीट की मणियों के प्रकाश से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा था ॥२३॥

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ।
रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥

अन्वयः— हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेः, ऊरुरुक्ममूर्ध्नः रत्नोदधारौषधिसौमनस्य वनस्रजः वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः च प्रेक्षां क्षिपन्तम् अपश्यत् ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का श्याम वर्ण का श्रीविग्रह मरकत मणि की शोभा को तिरस्कृत रहा था, उनकी कमर का पीताम्बर पर्वत के प्रान्तभाग में स्थित सायंकालीन मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण मुकुट सुवर्णमय पर्वत शिखर की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् की अनेक वर्णों वाली वनमाला पर्वत के रत्नों, जलप्रपात, ओषधियों और पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर ही थी उनके भुजदण्ड वेणुदण्ड की शोभा को तथा चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूतं पुरुषम्। हरितोपलाद्रेर्मरकतशिलामयपर्वतस्य प्रेक्षां शोभां क्षिपन्तं स्वलावण्यातिशयेन तिरस्कुर्वन्तम्। सन्ध्याभ्रं नीवी परिधानं यस्य तस्य शोभां पीताम्बरेण क्षिपन्तम्। उरुरुक्ममूर्ध्नोऽनेकस्वर्णशिखरस्य तस्य स्वकिरीटैः। रत्नानि च उदधाराश्च ओषधयश्च सौमनस्यानि च, पुष्पसमूहाः सुमनस एव वा तेषां वनस्रजो वनमाला यस्य, वेणव एव भुजा यस्य, अङ्घ्रिपा एवाङ्घ्रयो यस्य स चासौ स च तस्य। अयमर्थः-यदि तस्मिन्माला इव स्थिता रत्नादयो भवन्ति, वेणवश्च भुजा इव, वृक्षाश्च पादा इव तर्हि तस्य शोभां स्वीयरत्नमुक्तातुलसीपुष्पदामभिर्भुजैरङ्घ्रिभिश्च क्षिपन्तमिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शेष शय्या पर सोये हुए श्रीभगवान् की अतुलनीय शोभा का वर्णन किया गया है। श्रीभगवान् का शरीर श्याम वर्ण का था। वह अपनी शोभा से नील वर्ण के मरकत मणि के पर्वत की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् अपने कमर में पीला पीताम्बर धारण किये थे। उसकी शोभा पर्वत के प्रान्तभाग में विद्यमान सायंकालीन पीतिमासे पीत बने मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण का मुकुट अपनी शोभा से पर्वत के सुवर्णमय शिखरों की शोभा को फीका बना रहा था। अनेक वर्ण के पुष्पों से निर्मित श्रीभगवान् की वनमाला पर्वत के रत्नों, जलधाराओं, ओषधियों, तथा पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी, उनके भुजदण्ड पर्वत के वेणुदण्ड की शोभा को तथा उनके चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे।

अयमर्थः इत्यादि- कहने का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् की वनमाला में अनेक प्रकार के रत्न पुष्प एवं तुलसी पुष्प ग्रथित थे। अतएव उसकी शोभा पर्वत पर विद्यमान रत्नों, जलप्रपातों, औषधियों और पुष्पों की समुदित शोभा के समान प्रतीत हो रही थी। श्रीभगवान् की भुजाएँ वेणुदण्ड के समान सुदृढ थीं और उनके चरण वृक्षों के समान सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२४॥

आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ।
विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥

अन्वयः— आयामतः विस्तरतः लोकत्रयसंग्रहेण स्वदेहमानेन विचित्रदिव्याभरणांशुकानाम् कृतश्रियापाश्रित वेष देहम् अपश्यत् ॥२५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपनी लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा त्रैलोक्य के समान विस्तृत था। वह अपनी शोभा से विचित्र तथा दिव्य वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा को सुशोभित करने वाला होने पर भी पीताम्बर तथा आभूषणों आदि से अलंकृत था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच आयामतो दैर्घ्येण विस्तरतश्च स्वमानदेहेन मीयतेऽनेनेति मानमुपमा शोभनश्चासावमानो निरूपमो देहस्तेन। यद्वा सुष्ठु अमानोऽपरिच्छिन्नस्तेन। यद्वा ताभ्यां स्वानुरूपप्रमाणेन अतएव लोकत्रयं संगृह्यते यस्मिंस्तथा। विचित्राणि नानाविधानि दिव्यान्यपूर्वाणि चाभरणान्यंशुकानि च तेषां कृता आसमन्ताच्छ्रीः शोभा येन, तेन देहेन विशिष्टम्। एवं स्वत एवातिरम्यत्वेऽप्यपाश्रितवेषः स्वीकृतालंकारो देहो यस्य तमपश्यत्। यद्वा केन प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यपेक्षायामेवंभूतेन देहेनेति सम्बन्धः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की लम्बाई तथा चौड़ाई त्रैलोक्य के विस्तार के समान अत्यन्त विस्तृत थी। उनके शरीर की शोभा इतनी अच्छी थी कि उस शोभा से दिव्य एवं विचित्र वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा बढ़ जाती थी इतना सुन्दर होने पर भी भगवान् का श्रीविग्रह दिव्य पीताम्बर तथा आभूषणों आदि से समलंकृत था। इस प्रकार के श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया।

स्वमानदेहेन का मान शब्द उपमा का बोधक है। अर्थात् उनका श्रीविग्रह निरूपम था। स्वमान शब्द का सुष्ठ अमान: अपरिच्छिन्न: यह भी विग्रह हो सकता है। यह भी अर्थ सम्भव है कि श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपने स्वरूपानुरूप लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य के समान विस्तृत था।

अथवा किसके द्वारा शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे श्रीभगवान्? इस तरह की अपेक्षा होने का उत्तर है कि वे अपने इस प्रकार के निरूपम शरीर के द्वारा उपर्युक्त सबों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ॥२५॥

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम्।
प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥२६॥

अन्वयः— नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलि चारुपत्रम् स्वकामाय विविक्तमार्गैः अभ्यर्चतां पुंसां कृपया कामदुघाङ्घ्रिपदमम् प्रदर्शयन्तं पुरुषम् अपश्यत् ॥२६॥

अनुवाद— जिनके नखचन्द्र की चन्द्रिका से सुशोभित अङ्गुलियाँ ही सुन्दर दल के समान प्रतीत हो रही थीं ऐसे अपनी मन: कामना की पूर्ति के लिए शुद्ध वैदिक पद्धतियों से पूजा करने वाले भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमलों को कृपा पूर्वक प्रदर्शित करने वाले, श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वाभिलषितफलाय विविक्तैः शुद्धैर्वेदोक्तैर्मार्गैरभ्यर्चतां पुंसां कामदुघमङ्घ्रिपद्मं प्रदर्शयन्तं किंचिदुन्नमय्य समर्पयन्तम् नखा एव इन्दवस्तेषां मयूखा रश्मयस्तैर्भिन्नाः संभिन्ना अङ्गुलय एव चारूणि पत्राणि यस्य तत् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अपने अभिलाषित फल की प्राप्ति के लिए शुद्धवेदोक्त पद्धति से पूजा करने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमल को कृपा पूर्वक पदर्शित करने वाले, तथा जिन चरण कमलों की सुन्दर अङ्गुलियाँ नख चन्द्र की कान्ति से सुशोभित होने के कारण उस चरण कमल के दल के समान थीं ऐसे श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि भगवान् के चरण कमल ही भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥२६॥

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।
शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥२७॥

अन्वयः— लोकार्तिहरस्मितेन मुखेन, परिस्फुरत् कुण्डलमण्डितेन शोणायितेन अधरबिम्बभासा सुनसेन सुभ्रूवा प्रत्यर्हयन्तं अपश्यत् ॥२७॥

अनुवाद— संसार के कष्ट को विनष्ट करने वाले मुसकान से युक्त मुखारविन्द के द्वारा, चमकते हुए कुण्डल की शोभा से युक्त कानों के द्वारा, विम्बफल के समान नाक और सुन्दर भौहें के द्वारा, अपने आराधक भक्तों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

लोकार्तिहरं स्मितं यस्मिंस्तत् । परिस्फुरद्भ्यां कुण्डलाभ्यां मण्डितेन । अधरबिम्बदीप्त्या शोणवदाचरितेन शोभननासायुक्तेन सुभ्र्वा च प्रत्यर्हयन्तं पूजकान्प्रति पूजयन्तं संमानयन्तम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मुसकाम से मण्डित श्रीभगवान् का मुख मण्डल संसारी जीवों के कष्टों को विनष्ट कर देने वाला है, ऐसे मुख के द्वारा, उनके कानों में चमकते हुए कुण्डल विम्बफल के समान, लाल-लाल ओष्ठ की कान्ति से सुन्दर नासिका एवं मनोहर भौहों से अपने आराधकों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२७॥

कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृते मेखलया नितम्बे ।
हारेणचानन्त धनेन वत्स श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन ॥२८॥

अन्वयः— हे वत्स कदम्बकिञ्जल्क पिशङ्गवाससा मेखलया च नितम्बे अनन्तधनेन हारेण श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन स्वलङ्कृतं अपश्यत् ॥२८॥

अनुवाद— उनके नितम्ब वक्षःस्थल अनर्घ्यहार और सुनहरी रेखा वाले श्रीवत्सचिह्न की अपूर्व शोभा हो रही थी ऐसे श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

कदम्ब किञ्जल्कवत् पिशङ्गं यद्वासस्तेन मेखलया च नितम्बे स्वलङ्कृतम् । श्रीवत्सयुक्तं यद्वक्षःस्थलं तस्य बल्लभेन वक्षयमर्घ्येण हारेणस्वलङ्कृतमित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वे अपने कमर मे कदम्बपुष्प के पराग के समान पीताम्बर तथा सुवर्ण निर्मित करधनी को धारण किए थे। श्रीवत्स चिह्न से युक्त जो वक्षःस्थल था उसको प्रिय लगने वाले बहुमूल्य हार से अलंकृत श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥२८॥

परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्त्रशाखम् ।
अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥

अन्वयः— अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रम् परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्ड सहस्त्रशाखम् अहीन्द्र भोगैरधिवीत-वल्शम् अपश्यत् ॥२९॥

अनुवाद— वे श्रीभगवान् अव्यक्तमूल चन्दन वृक्ष के समान है, उत्तम मणियों से जटित महामूल्यवान् केयूर से सुशोभित उनके विशाल भुजदण्ड ही मानो उसकी सहस्त्रों शाखायें हैं जिस तरह के वृक्षों में सर्प लिपटे रहते हैं उसी तरह उनके कन्धों को शेषजी के फणों ने लपेट रखा है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

महाचन्दनवृक्षरूपकेण निरूपयितुं तं विशिनष्टि । पराध्र्यानि श्रेष्ठानि केयूराण्यङ्गदानि मणिप्रवेकाश्च मण्युत्तमास्तैः पर्यस्ता व्याप्ता दोर्दण्डा एव सहस्रमनन्ताः शाखा यस्य । चन्दनवृक्षोऽपि केयूरादितुल्यैः फलपुष्पादिभिर्व्याप्तशाखो भवति । अव्यक्तं प्रधानं मूलमधोभागो यस्य । यद्वा अव्यक्तं ब्रह्म मूलं यस्य, ब्रह्माभिव्यक्तिरूपत्वात् । वृक्षस्यापि मूलं न व्यक्तम् । भुवनात्मकमङ्घ्रिपेन्द्रम् । अहीन्द्रस्यानन्तस्य भोगैः फणैर्देहावयवैर्वाऽधिवीताः संवेष्टिताः स्पृष्टा वल्शाः स्कन्धा यस्य । 'वनस्पते शतवल्शो विरोह' इति श्रुतेः । सोऽपि सर्पैर्वेष्टितो भवति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को रूपकालंकार के माध्यम से महान् चन्दन वृक्ष के समान बतलाया गया है। जिसमें उत्तम मणियाँ जटित हैं ऐसे केयूर से मण्डित भगवान् की भुजाएँ ही उस महावृक्ष की अनन्त शाखायें हैं। चन्दन वृक्ष भी फल पुष्पादि को से व्याप्त होता है । श्रीभगवान् के नीचे अव्यक्त प्रकृति है । श्रीभगवान् ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं अतएव अव्यक्त ही उनका मूल है । वृक्ष का भी मूल व्यक्त नहीं होता है । ऐसे भगवान् भुवनात्मक महावृक्ष के समान हैं । सर्पों के स्वामी श्रीशेषनाग के देहों के अवयव उनसे लिपटे हुए हैं और चन्दन वृक्ष की भी शाखाओं में सर्प लिपटे रहते हैं । श्रुति भी कहती है **वनस्पते शतवल्शो विरोहः** अर्थात् हे वनस्पति स्वरूप भगवन् आप सैकड़ो शाखाओं से युक्त और आरोह रहित हैं ॥२९॥

चराचरौको भगवामहीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ।
किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥३०॥

अन्वयः— अहीन्द्रबन्धुम् सलिलोपगूढम् चराचरौको भगवान् महध्रम् किरीट साहस्र हिरण्यशृङ्गम् कौस्तुभरत्नगर्भम् भगवन्तम् अपश्यत् ॥३०॥

अनुवाद— नागराज शेष के बन्धु भगवान् नारायण जल से चारो तरफ से घिरे हुए पर्वत के समान थे। सम्पूर्ण चराचर के आश्रय स्वरूप भगवान् अनेक जीवों के आश्रय स्वरूप पर्वत के समान थे । जिस तरह भगवान् एकार्णव के जल से घिरे थे उसी तरह मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरे रहते हैं । उनके हजारों किरीट ही मेरु आदि पर्वतों के शिखर के समान थे, तथा रत्नों को उत्पन्न करने वाले पर्वत के समान श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी । इसप्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यत्रैव पर्वतरूपकेण निरूपितमपि विशेषणान्तरैः पुनर्निरूपयति । भगवानेव महीध्रस्तम् । चराचराणामोकः स्थानम् । सोऽपि तथा । अहीन्द्रस्य बन्धुम् । सोऽप्यहीन्द्राणां बन्धुः । सलिलेनोपगूढमावृतम् । पर्वतोऽपि मैनाकादिस्तथा । किरीटसाहस्रमेव हिरण्यशृङ्गाणि यस्य । सोऽपि मेर्वादिस्तथा यथा पर्वतस्य गर्भे क्वचिद्रत्नमाविर्भवति तथा आविर्भवत्स्पष्टं दृश्यमानं कौस्तुभरत्नं गर्भे मूर्तिमध्ये यस्य तम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इससे श्रीभगवान् को पर्वतरूपक के माध्यम से निरूपित किया जा चुका है, फिर भी दूसरे विशेषणों से श्रीभगवान् को पर्वत रूपक के माध्यम से निरूपित करते हैं । श्रीभगवान् ही पर्वत हैं सम्पूर्ण चराचरों के आश्रय स्थान हैं, पर्वत भी चराचरों का आश्रय है । श्रीभगवान् शेषनाग के बन्धु हैं और पर्वत भी सर्पो का बन्धु होता है । उस पर सर्पों का निवास होता है । भगवान् एकार्णव के जल से घिरे हैं । मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरा है । श्रीभगवान् सहस्रशीर्षा हैं । उनके हजारों किरीट ही शिखर हैं । सुमेरु पर्वत के शिखर भी सुवर्णमय हैं । जैसे पर्वत के भीतर कहीं पर रत्न मिलता है । श्रीभगवान् के भी वक्षःस्थल में कौस्तुभमणि दिखायी देती है ॥३०॥

निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।
सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥३१॥

अन्वयः— आम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया निवीतम् सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैः दुरासदम् हरिम् अपश्यत् ॥३१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने वेद रूपी भौरों से गुंजित अपनी कीर्तिमयी बनमाला से मण्डित, सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा अग्नि के लिए भी अगम्य त्रैलोक्य में निबाध रूप से विचरण करने वाले सुदर्शन चक्र आदि आयुधों के लिए भी दुष्प्राप्य श्रीहरि को देखा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच वनमालया निवीतं कण्ठलम्बिन्या व्याप्तम् । आम्नाया वेदा एव मधुव्रतास्तैः श्रीर्यस्यास्तया हरिमिति पर्वतादिरूपमपश्यत्, हरिरसाविति ज्ञातवानित्यर्थः । सूर्यादिभिरगममगम्यम् । स्वव्यापारैराकलयितुमशक्यमित्यर्थः । किंच त्रिष्वपि लोकेषु धाम स्फूर्तिर्येषां तैः, रक्षणार्थं परिक्रमद्भिः परितो धावद्भिः प्राधनिकैः प्रधनं संग्रामस्तत्प्रयोजनैः सुदर्शनादिभिर्हेतुभूतैर्दुरासदं दुष्प्रापम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

कण्ठ में लटकने वाली वनमाला जो वेद रूपी भौरों से गुंजित है, उससे व्याप्त पर्वतादि रूप श्रीहरि को ब्रह्माजी ने देखा, अर्थात् वे जाने कि ये ही श्रीहरि हमारे अधिष्ठान (आश्रय) हैं । वे श्रीहरि सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं के भी लिए अगम्य हैं । अर्थात् सूर्य चन्द्रमा उन श्रीभगवान् को अपने व्यापार से संतप्त नहीं कर सकते हैं । जिन लोगों की तीनों लोकों में अबाध रूप से गति हैं, अर्थात् जो त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए चारो ओर आते-जाते रहते हैं, ऐसे सुदर्शन चक्र आदि जो युद्ध में काम आने वाले आयुध हैं उन लोगों के लिए भी दुष्प्राप्य हैं वे श्रीभगवान् ॥३१॥

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ।
ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥३२॥

अन्वयः— तर्हि एव लोकविसर्गदृष्टिः जगतः विधाता तन्नाभिसरः सरोजम्, आत्मानम्, अम्भः श्वसनं वियत् च ददर्श अतः परं न किञ्चिदिति शेषः ॥३२॥

अनुवाद— उस समय विश्व रचना की दृष्टि वाले ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल को, अपने को, जल, वायु को तथा आकाश को इन पाँच वस्तुओं की देखा इनसे अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु को उन्होंने नहीं देखा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यदैवं हरिमपश्यत्तर्ह्येव तदैव लोकविसर्गदृष्टिः संस्तस्य नाभिसरसि सरोजं श्वसनं प्रलयवायुं वियदाकाशं च ददर्श॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय ब्रह्माजी ने इस प्रकार से श्रीहरि को देखा उसी समय उन्होंने जगत् की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रहह्माजी ने श्रीभगवान् के नाभि रूपी सरोवर में विद्यमान कमल को, जल को, अपने को, प्रलयकालीन वायु को तथा आकाश को देखा ॥३२॥

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।
अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— रजसा उपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन् स इयदेव कर्मबीजं दृष्ट्वा विसर्गाभिमुखः सन् अव्यक्तवर्त्मनि अभिवेशितात्मा अस्तौद् ॥३३॥

अनुवाद— रजोगुण से युक्त तथा प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी सृष्टि के कारण भूत इन पाँच ही वस्तुओं को देखकर सृष्टि करने के लिए उत्सुक होने के कारण अज्ञात गति श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कर्मबीजं लोकसृष्टेः कारणम् । रजसा उपरक्तो रजोगुणयुक्तः । अतः प्रजाः स्रष्टुमिच्छन्नियदेव नाभिसरोजादिपञ्चकमेव । विसर्गेऽप्यभिमुखो दत्तचित्तः अव्यक्तवर्त्मनि भगवति निवेशितचित्तः ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीय स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

रजोगुण से युक्त होने के कारण ब्रह्माजी सृष्टि करना चाहते थे और उन्होंने बत्तीसवें श्लोक में वर्णित कमल आदि पाञ्च वस्तुओं को ही सृष्टि के कारण रूप से देखा । उनका मन सृष्टि करने में लगा था अतएव उन्होंने अव्यक्त गति श्रीभगवान् की स्तुति की ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिकाटीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥८॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥

अन्वयः— अद्य मे सुचिरात् ज्ञातोऽसि ननु देहभाजां भगवतः गतिः न ज्ञायत इति अवद्यम्, भगवन् त्वदन्यत् न अस्ति। अपि तन्न शुद्धम् मायागुण व्यतिकरात् उरुः विभासि ॥१॥

अनुवाद— आज आप दीर्घकाल की तपस्या के पश्चात् ज्ञात हुए हैं । शरीर धारियों का यह बहुत अधिक दुर्भाग्य है कि वे आपके स्वरूप को जान नहीं पाते हैं । आपके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है । जिस वस्तु की प्रतीति होती है वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है । माया के गुणों से मिश्रित होकर आप ही अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे तपसा तुष्टं दृष्ट्वा नारायणं त्वजः । अस्तौदेकार्णवे सीदँल्लोकसर्गचिकीर्षया ॥१॥ भगवज्ज्ञानेनात्मनः कृतार्थतामाविष्कुर्वन्नज्ञांश्च शोचन्नाह । ज्ञातोऽसीति । सुचिराद्बहुकालोपासनेनाद्य मे मया ज्ञातोऽसि नन्वहो देहभाजामेतदवद्यं दोषः । किं तत् । यद्भगवतस्तव गतिसत्त्वं न ज्ञायत इति । यतस्त्वमेव ज्ञातुं योग्यः सत्यत्वान्नान्यदसत्यत्वादित्याह । त्वत् त्वत्तोऽन्यन्नास्ति । यदप्यस्तीति प्रतिभाति तदपि शुद्धं सत्यं न भवति । कथमसतः प्रतीतिस्तत्राह । यद्यतो मायागुणक्षोभात्त्वमेवोरुर्बहुरूपो विभासि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

विश्व की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रह्माजी किंकर्तव्यविमूढ होने के कारण एकार्णव की बेला में कष्ट का अनुभव कर रहे थे । ब्रह्माजी की तपस्या से प्रसन्न हुए भगवान् नारायण की की गयी स्तुति का वर्णन इस नवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ भगवत् तत्त्व का ज्ञान हो जाने के कारण अपनी कृत-कृत्यता का अनुभव करते हुए तथा भगवत् तत्त्व से अनभिज्ञ जीवों के विषय में शोक करते हुए ब्रह्माजी ने **ज्ञातोऽसि० इत्यादि** श्लोक को कहा है । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! बहुत समय तक उपासना के द्वारा आज मैं आपको जान सका हूँ । जीवों का यह बहुत बड़ा दोष है कि वे आपके तत्त्व को नहीं जान पाते हैं । इसका कारण यह है कि केवल आप ही जानने योग्य तत्त्व हैं, आप ही सत्य हैं । आप से भिन्न वस्तु असत्य होने के कारण जानने योग्य नहीं है । जिन वस्तुओं की सत्ता प्रतीत भी होती है वे भी सत्य नहीं हैं । यदि कहें कि असत् वस्तु की प्रतीति कैसे सम्भव हैं तो इसका उत्तर है कि आप ही माया के गुणों से युक्त होकर अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ॥१॥

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥

अन्वयः— अवबोध रसोदयेन शश्वत् निवृत्ततमसः स्वरूपं सदनुग्रहाय आदौ गृहीतम् अवतार शतैकबीजम्, यन्नाभिपद्म भवनात् अहम् आविरासम् ॥२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी चित्शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान सदा आपसे दूर रहता है, आपका यह रूप, जिसके नाभिकमल से मैं प्रकट हुआ हूँ, यह सैकड़ों अवतारों का मूल है । सत्पुरुषों पर कृपा करने के ही लिए आपने इसे सर्वप्रथम प्रकट किया है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वमपि सम्यङ् न जानासि । यत्त्वया दृष्टं रूपमेतदपि गुणात्मकमेव । निर्गुणं ब्रह्मैव तु सत्यं तत्राह-रूपमिति द्वाभ्याम् । अवबोधरसोदयेन चिच्छक्त्याविर्भावेन शश्वत्सदा निवृत्तं तमो यस्मात्तस्य तव यदेतद्रूपं त्वयैव स्वातन्त्र्येण सतामुपासकानामनुग्रहाय गृहीतमाविष्कृतमवतारशतस्य शुद्धसत्त्वात्मकस्य यदेकं बीजं मूलम् । तत्प्रदर्शनार्थं गुणावतारबीजत्वं दर्शयति-यन्नाभीति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम भी अच्छी तरह से नहीं जानते हो तुमने जिस रूप को देखा है, यह भी गुणात्मक ही है । निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है । तो इस पर ब्रह्माजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं— आपकी चित्शक्ति सदा अविर्भूत रहती है, उसके कारण आपसे अज्ञान सदा दूर ही रहता है । आपने इस अवतार को अपने उपासकों पर कृपा करने के लिए धारण किया है । यह आपके शुद्ध सत्त्वात्मक सैकड़ो अवतारों का मूल कारण है । आपके इसी रूप के नाभि कमल से मैं अविर्भूत हुआ हूँ । अतएव आपका यह अवतार गुणावतारों का मूल कारण है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **यन्नाभि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है ॥३॥

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

अन्वयः— अतः परम् भवतः यत् आनन्दमात्रम् अविकल्पम् अविद्धवर्चः स्वरूपम् तत् परं न, पश्यामि । हे आत्मन् ते अदः विश्वसृजम् अविश्वम् भूतेन्द्रियात्मकम् अदः रूपं उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! उससे भिन्न जो आपका आनन्दस्वरूप, भेद रहित अखण्डतेजोमय स्वरूप है । उसे मैं इससे भिन्न नहीं मानता हूँ, इसीलिए आपका यह, विश्व की सृष्टि करने वाला होने पर भी विश्वातीत भूतों तथा इन्द्रियों के कारण स्वरूप है इस रूप की मैंने शरण ली है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

हे परम्, अविद्धवर्चोऽनावृतप्रकाशम् । अतोऽविकल्पं निर्भेदम् । अत एवानन्दमात्रम् । एवंभूतं यद्भवतः स्वरूपं तदतो रूपात्परं भिन्नं न पश्यामि किंचिदमेव तत् । अतः कारणात्ते तव अदः इदं रूपमाश्रितोऽस्मि । योग्यत्वादर्पोत्याह । एकमुपास्येषु मुख्यम् । यतो विश्वसृजं विश्वं सृजतीति विश्वसृजमत एवाऽविश्वं विश्वस्मादन्यत् । किंच भूतेन्द्रियात्मकं भूतानामिन्द्रियाणां चात्मानं कारणमित्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हे आत्मस्वरूप परमात्मन् आपका जो अनावृत्त प्रकाशस्वरूप होने के कारण भेदरहित तथा आनन्दमात्र इससे भिन्न स्वरूप है, उसकी मैं इसलिए इससे भिन्न नहीं मानता हूँ कि आपका जो यह विश्व की सृष्टि करने वाला रूप है वह विश्वातीत है तथा भूतों एवं इन्द्रियों का कारण है ॥३॥

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥

अन्वयः— हे भुवनमङ्गल तद् वा इदं नः उपासकानाम् मङ्गलाय ध्याने दर्शितम्, तस्मै भगवते तुभ्यम् नमः अनुविधेम यः नरकभाग्भिः असत् प्रसङ्गैः अनादृतः ॥४॥

अनुवाद— हे संसार के कल्याण स्वरूप भगवन् आपका वह रूप हम उपासकों के लिए मङ्गलकारी है । इसीलिए आपने ध्यान में अपने इस रूप को दिखाया । हम आपके इसी रूप को बार-बार नमस्कार करते हैं । जो पापी विषयी जीव हैं वे ही आपके इस रूप का अनादर करते हैं । वे नरक के भागी हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमपि सोपाधिकमेतदर्वाचीनमेवेत्याशङ्क्याह । तद्वै तदेवेदम् । हे भुवनमङ्गल । यतस्ते त्वया नोऽस्माकमुपासकानां मङ्गलाय ध्याने दर्शितम् । न ह्यव्यक्तवर्त्माभिनिवेशितचित्तानामस्माकं सोपाधिकदर्शनं युक्तमिति भावः । अतस्तुभ्यं नमोऽनुविधेमाऽनुवृत्त्या करवाम । तर्हि किमिति केचिन्मां नाद्रियन्ते तत्राह–योऽनादृत इति । असत्प्रसङ्गैर्निरीश्वरकुतर्कनिष्ठैः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरा यह भी रूप सोपाधिक कहने के कारण अर्वाचीन है, तो इसका उत्तर है कि आपका यह वही रूप है । हे जगत् के लिए मङ्गल स्वरूप भगवन् ! आपने हम उपासकों का मङ्गल करने के लिए इस रूप का दर्शन ध्यान में कराया है । आप अविज्ञातगति हैं । आपमें अपने चित्त को लगाने वाले हमलोगों को सोपाधिक दर्शन कराना उचित नहीं है । अतएव मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । यदि कहें कि इससे क्या हुआ? कुछ लोग मेरा अनादर करते हैं । तो इसका उत्तर है कि वे पापी जीव हैं और निरीश्वर कुतर्कों को उपन्यस्त करते हैं । अतएव वे नरकगामी जीव हैं ॥४॥

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥

अन्वयः— हे नाथ ये तु श्रुतिवातनीतम् त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं कर्णविवरैः जिघ्रन्ति ह तेषां परया भक्त्या गृहीत चरणः तेषां स्वपुंसाम् हृदयाम्बुरुहात् नापैषि ॥५॥

अनुवाद— हे नाथ ! जो लोग वेदरूपी वायु के द्वारा लाये गये आपके चरण कमल रूपी कोश की सुगन्धि को अपने कर्णविवरों के द्वारा ग्रहण करते हैं वे अपनी परा भक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों को बाँध लेते हैं। फलत: उन अपने भक्तों के हृदय से आप नहीं निकल पाते हैं ।

भावार्थ दीपिका

आदरेण तु त्वां भजन्तः कृतार्था इत्याह-ये त्विति । श्रुतिर्वेदः स एव वातस्तेन नीतं प्रापितम् । नापैषि नापयासि । ये त्वत्कथाश्रवणमत्यादरेण कुर्वन्ति तेषां हृदि नित्यं प्रकाशसे इत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

जो जीव आपका भजन आदर पूर्वक करते हैं वे कृतार्थ हो जाते हैं इस अर्थ को **ये तु इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । ब्रह्माजी कहते हैं कि हे प्रभो ! जो लोग वेदों में वर्णित आपके चरण कमलों की महिमा का श्रवण करते हैं, वे अपनी पराभक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों के बांध लेते हैं, और अपने उन भक्तों के हृदय से आप निकल नहीं पाते हैं । उन लोगों के हृदय में आप सदा प्रकाशित होते रहते हैं ॥५॥

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवा विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

अन्वयः— यावत् लोकःते अभयम् अङ्घ्रि न प्रवृणीत तावत् द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं भयं, शोकः, स्पृहा, परिभवः विपुलः लोभः च तावत् अर्तिमूलं मम इति असद्ग्रहः ॥६॥

अनुवाद— जब तक मनुष्य आपके अभयप्रद चरणों को शरण रूप से नहीं अपनाता है । तब तक उसे धन, गृह तथा बान्धवों के द्वारा होने वाला भय शोक, लालसा, दीनता और अत्यधिक लोभ सताते रहते हैं ओर उतने ही समय तक समस्त दु:खों के मूल अहंत्व एवं ममत्व इत्यादि उसे सताते रहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-तावदिति । द्रविणादौ विद्यमाने भयं, गते शोकः, पुनश्च स्पृहा, ततः परिभव, तथापि विपुलो लोभस्तृष्णा पुनः कथंचित्प्राप्ते ममेत्यसदाग्रहः । आर्तिमूलं भयशोकादेः कारणम् । न प्रवृणीत नाश्रयेत् त्वत्पादाश्रयणमात्रेण, भयादिनिवृत्तिः किं पुनस्त्वत्प्रकाशे सतीति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भक्तों के हृदय में विद्यमान रहने मात्र से क्या हुआ ? तो इसके उत्तर में **तावत्० इत्यादि** यह श्लोक कहा गया है । धन इत्यादि के रहने पर उनके विनष्ट होने का भय बना रहता है और विनष्ट हो जाने पर शोक होता हैं उसके पश्चात् धन प्राप्त करने की लालसा होती है, तदर्थ अनादर भी होता है, फिर भी बहुत अधिक लोभ होता हैं । किसी तरह धन के प्राप्त हो जाने पर भी भय एवं शोक इत्यादि का कारण भूत धनादि में अहंत्व ममत्व आदि का दुराग्रह हो जाता है । ये सभी उत्पात तब तक होते हैं जब तक मनुष्य आप श्रीभगवान् के चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं अपनाता है । आपके चरणों का आश्रय प्राप्त हो जाने पर सारे भय आदि दूर हो जाते हैं । यदि आपका प्रकाश हृदय में बना रहे तो फिर क्या कहना है ॥६॥

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥

अन्वयः— ते दैवेन हतधियः ये सर्वाशुभोपशमनात् भवतः प्रसङ्गात् विमुखेन्द्रियाः कामसुखलेशलवाय दीनाः लोभाभिभूतमनसः शाश्वत् अकुशलानि कुर्वन्ति ॥७॥

अनुवाद— वे लोग अभागे हैं जो लोग समस्त कष्टों को दूर करने वाली आपकी कथा का श्रवण तथा कीर्तन आदि से अपने मन को हटाकर काम सुख के लेशमात्र की प्राप्ति के लिए दीन और सदा लालायित मना होकर निरन्तर पापकर्मों को किया करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ये निष्कामा अपि सन्तस्त्वां नाद्रियन्ते ते नरकभाज इत्युक्तं ये तु त्वत्कथाश्रवणादिविमुखाः सन्तः काम्यकर्मपरास्तेऽतिमन्दा इत्याह । दैवेन ते हतधियो नष्टमतयः । प्रसङ्गाच्छ्रवणकीर्तनादिरूपात्सर्वदुःखनिवर्तकाद्विमुखानीन्द्रियाणि येषाम् । अकुशलान्यक्षेमकराणि ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो लोग निष्काम हैं फिर भी आपका समादर नहीं करते हैं वे नरक के पात्र हैं, जो लोग काम्य कर्मों को करते है किन्तु आपकी कथा इत्यादि के श्रवण से विमुख रहते हैं वे अत्यन्तमन्द भाग्य वाले हैं । इसी अर्थ का प्रतिपादन **दैवेन ते इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । उनकी बुद्धि को दैव ने नष्ट कर दिया है । वे लोग समस्त दुःखों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् की कथा के श्रवण तथा कीर्तन से अपने मन को हटा लेते हैं । तथा क्षणिक कामसुख की प्राप्ति के लिए दीन होकर मन ही मन सदा लालायित रहते हैं और उसके कारण निरन्तर पाप ही करते रहते हैं ॥७॥

क्षुत्तृटत्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाऽच्युतरुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

अन्वयः— हे उरुक्रम हे अच्युत इमाः क्षुत् तृटत्रिधातुभिः शीतोष्णवात वर्षैःइतरेतराच्च, सुदुर्भरेण कामाग्निना रुषा च मुहुरर्द्यमानाः सम्पश्यतः मे मन सीदते ॥८॥

अनुवाद— हे भगवन् अच्युत इन प्रजाओं को भूख, प्यास, वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा तथा परस्पर में एक दूसरे को, जिसको पूरा करना अत्यन्त कठिन है उस कामाग्नि से तथा क्रोध से बार-बार कष्ट पाते हुए देखकर मेरा मन अत्यन्त कष्ट का अनुभव करता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अकुशलत्वमेव दर्शयति । क्षुच्च तृट् च त्रिधातवश्च वातपित्तश्लेष्माणस्तैः । इमाः प्रजाः सुदुर्भरेण दुःसहेन कामाग्निनाऽच्युतया रुषाऽविच्छिन्नक्रोधेन च पीड्यमानाः संपश्यतो मे मनः सीदति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जीवों की अकुशलता का ही वर्णन करते हैं । भूख, प्यास, कफ, वात और पित्त इन तीनो धातुओं से दुःसह कामाग्नि से तथा निरनतर क्रोध से पीड़ित होती हुयी इन समस्त प्रजाओं को देखकर मेरा मन अत्यन्त दुःखी होता है, सोचता हूँ कि इन जीवों को किस साधन से मैं मुक्त करूँ ?॥८॥

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥

अन्वयः— हे ईश यावत् असौ इन्द्रियार्थमायाबलं इदम् आत्मनः पृथक्त्वं न पश्यति तावत् असौ व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती संसृतिः न प्रतिसंक्रमेत ॥९॥

अनुवाद— हे भगवन् जब तक मनुष्य माया के प्रभाव से प्रतीत होने वाले इन्द्रियों के विषय से तथा आपसे अपने आप के पृथक्त्व का अनुभव नहीं करता है तब तक उसके संसारचक्र की निवृत्ति नहीं हो सकती है । यद्यपि यह मिथ्या है फिर भी कर्मों के फल का क्षेत्र होने के कारण कष्टों को प्रदान करता ही है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतायाः संसृतेरपरमार्थत्वात्किमर्थं विषादः क्रियते तत्राह यावदिति । आत्मन इदं पृथक्त्वं देहादिभावम् । भगवतस्तवेन्द्रियार्थरूपा या माया तया बलमाधिक्यं यस्य तत् । न प्रतिसंक्रमेत नोपरमेत । दुःखसमूहं प्रापयन्ती । क्रियाणामर्थः फलं यस्याम् । पृथक्तामिदमिति पाठे इदं देहादि त्वदिति त्वत्तः पृथक् पश्येद्यावत्तावद्व्यर्थापि नोपरमेत ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह संसारचक्र तो मिथ्या है, इसके लिए इतना विषाद क्यों करते ही तो इस पर ब्रह्माजी ने **यावत् इत्यादि** श्लोक को कहा— यह आपकी माया इन्द्रियों के विषय स्वरूपिणी है, उसके कारण यह संसार चक्र अधिक बल सम्पन्न है । जब तक मनुष्य आपकी माया से अपने देहादि भाव को अलग नहीं मानता है तब तक उसका संसारचक्र नहीं निवृत्त हो सकता है । यह संसारचक्र मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट प्रदान करता है। इसमें कर्मों का फल भोगना पड़ता है । जहाँ पर पृथक्तामिदम् पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि आपसे अलग देहादि भाव को वह नहीं देखता है तब तक व्यर्थ संसारचक्र से नहीं निवृत्त होता है ॥९॥

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥

अन्वयः— हे देव ! युष्मत् प्रसङ्गविमुख ऋषयः अपि अह्नि आपृतार्तकरणा, निशि निःशयानाः नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः दैवाहतार्थरचनाः इह संसरन्ति ॥१०॥

अनुवाद— हे देव ! आपके कथा प्रसङ्ग से विमुख रहने वाले मुनिजन भी दिन में अनेक प्रकार के व्यापारों के कारण विक्षिप्त चित्त वाले रहते हैं और रात्रि में अचेत होकर सोने वाले तथा सोते समय भी विभिन्न प्रकार के मनोरथों के कारण क्षण-क्षण में उनकी नीद खुल जाती है । तथा दैववशात् उनके सारे मनोरथ भग्न भी होते रहते हैं । इस तरह से उन ऋषियों को भी संसार चक्र में पड़ना पड़ता है तो औरों की क्या बात हैं ?॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भवत्वेवमविवेकिनां, विवेकिनस्तु मुक्ता एवेति किं तेषां भक्त्या कृत्यमत आह । अह्नि आपृतानि व्यापृतानि च तान्यार्तानि क्लिष्टानि करणानीन्द्रियाणि येषां रात्रौ विषयसुखलवोऽपि नास्ति, यतो निशि निःशयानाः स्वप्नदर्शनेन च क्षणे क्षणे भग्ननिद्रा दैवेनाहताः सर्वतः प्रतिहता अर्थरचना अर्थोद्यमा येषाम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अज्ञानी जीव तो संसार चक्र में पड़कर कष्ट भोगते हैं किन्तु जो विवेकी जीव हैं वे तो मुक्त हैं ही । उन लोगों को भक्ति करने की कौन सी आवश्यकता है ? इस पर ब्रह्माजी कहते हैं कि जो ऋषिजन भी आपकी कथा के श्रवण तथा कीर्तन आदि से पराङ्मुख रहते है वे भी संसारचक्र में फँसते हैं । दिन में अनेक

प्रकार के व्यापारों को करते रहने के कारण वे विक्षिप्तचित्त रहते हैं। उन लोगों को रात्रि में विषयों का सुख बिल्कुल नहीं प्राप्त होता है। वे रात्रि में अचेत सोये रहते हैं और स्वप्न देखने के कारण उनकी नींद बार-बार खुलती रहती है। दैववशात् उनके सारे प्रयास विहत भी होते रहते हैं ॥१०॥

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥

अन्वयः— हे नाथ त्वं ननु श्रुतेक्षितपथः पुंसां भावयोगपरिभावितहृतसरोजे आस्से । हे उरुगाय धिया यद् यद् विभावयन्ति तत् तत् वपुः सदनुग्रहाय प्रणयसे ॥११॥

अनुवाद— हे नाथ ! आपके मार्ग को केवल आपके गुणों के श्रवण के मार्ग से ही जाना जा सकता है। हे प्रभो ! भक्ति की भावना से परिशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके जन जिस-जिस भाव से आपका चिन्तन करते हैं अपने उन भक्तों पर कृपा करने के लिए उन-उन रूपों को आप धारण कर लेते हैं ॥११

भावार्थ दीपिका

तदेवमभक्तानां संसारानिवृत्तिमुक्त्वा भक्तानां तन्निवृत्तिमाह-त्वमिति । भक्तियोगेन शोधिते हृत्सरोजे आस्से तिष्ठसि । श्रुतेन श्रवणेनेक्षितः पन्था यस्य । किंच श्रवणं विनापि त्वद्भक्ता मनसा यद्यत्तव वपू रूपं स्वेच्छया ध्यायन्ति तत्तत्प्रणयसे प्रकटयसि । सतां भक्तानामनुग्रहाय ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवद् भक्त नहीं हैं उनकी मुक्ति नहीं होती है, इस बात को बतलाकर **त्वमित्यादि** इस श्लोक के द्वारा बतलाया जाता है कि भक्तों के संसार की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! जिस भक्ति की भावना से जिस पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। उसी व्यक्ति के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके गुणों के श्रवण के द्वारा ही आपके मार्ग को जाना जा सकता है। यही नहीं आपके जो भक्त आपके गुणों का श्रवण नहीं कर सके हैं, वे भी जिस-जिस रूप से आपकी भावना करते हैं अपने भक्तों पर कृपा करके आप उन-उन रूपों को ही धारण कर लेते हैं ॥११॥

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदयया सदलभ्यथैको नाना जनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥

अन्वयः— एकः नानाजनेषु अवहितः सुहृदन्तरात्मा, भगवान् हृदि बद्धकामैः उपचितोपचारैः सुरगणैः आराधितः नातिप्रसीदति यत् असदलभ्यया सर्वभूतदयया ॥१२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहने वाले आप उनके परम कल्याणकारी हैं। अन्तरात्मा हैं आप; अनेक प्रकार की हृदय में कामनायें रखकर बहुत अधिक पूजन सामग्रियों से देवताओं द्वारा पूजित होकर उतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं। किन्तु वह सभी जीवों पर दया करना असत् पुरुषों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तानां च निष्कामानां त्वमतिसुलभो नेतरेषामित्याह-नेति। उपचितैरूर्जितैरुपचारैः पुष्पोपहारादिभिः । यद्यथा असतामभक्तानामलभ्यया सर्वभूतदयया । प्रसादे हेतु एक इत्यादि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे है कि हे प्रभो ! आप कामनारहित भक्तों के लिए अत्यन्त सुलभ हैं; किन्तु उनसे भिन्न लोगो के लिए नहीं; यही इस श्लोक से कहा गया है । पुष्पोपहार आदि अत्यधिक उपहारों से अनेक प्रकार की कामना करने वाले देवताओं के द्वारा भी आराधित आप उतना प्रसन्न नहीं होते हैं, जितना सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं । सभी भूतों पर दया करने का गुण असत् पुरुषों के लिए दुर्लभ है । आपकी प्रसन्नता का कारण यह है कि आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहकर उन सभी जीवों का परम कल्याण करने वाले तथा उनकी अन्तरात्मा हैं ॥१२॥

पुसांमतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥१३॥

अन्वयः— अतः पुंसाम् अध्वराद्यैः विविध कर्मभिः दानेन, उग्रतपसा व्रतचर्यया च तव भगवतः आराधनं सत्क्रियार्थः यत्र अर्पितः धर्मः कर्हिचित् न म्रियते ॥१३॥

अनुवाद— अतएव पुरुषों द्वारा किये जाने वाले यज्ञ आदि अनेक कर्म, दान, कठोर तपस्या तथा व्रतों का पालन के द्वारा आप श्रीभगवान् को प्रसन्न करना ही कर्मों का सबसे बड़ा फल है, जो कर्म आपको अर्पित कर दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है । वह कभी भी क्षीण नहीं होता ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यतः सकामानां भवान्नातिप्रसीदत्यतः कामप्राप्तिः क्रियाणामुत्तमं फलं न भवति, किंतु त्वत्प्रीणनमेव । कामसंयोगस्त्ववान्तरफलेन प्ररोचनार्थमित्याह-पुंसामिति । भगवतस्तवाराधनमेव संश्चासौ क्रियार्थश्च श्रेष्ठं क्रियाफलम् । श्रेष्ठत्वे हेतुः-यत्रत्वय्यर्पितो धर्मो न कदाचिद्ध्रियते न नश्यति, कामार्थस्तु धर्मः कामं दत्त्वा नश्यतीत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! आप चूकि कामना पूर्वक आराधना करने वालों से अत्यधिक प्रसन्न नहीं होते हैं अतएव कामनाओं की पूर्ति, के लिए की जानने वाली क्रियाओं का उत्तम फल नहीं होता है, कर्मों का उत्तम फल तो आपकी प्रसन्नता ही है । कामना की पूर्ति तो परमात्मा की प्रसन्नताका अवान्तर फल है, वह केवल प्रलोभन के लिए है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **पुंसामतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । इसका अर्थ है कि मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञादि अनेक प्रकार के कर्म, दान, कठोर तपस्या एवं व्रतानुष्ठान का उत्तम फल आप श्रीभगवान् की प्रसन्नता ही है । जो कर्म आपको समर्पित कर दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता कामना विशेष की पूर्ति के लिए किया गया कर्म तो कामना की पूर्ति करके विनष्ट हो जाता है ॥१३॥

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥

अन्वयः— शश्वतस्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय परस्मै नमः, विश्वोदभवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय, ईश्वराय ते इदं नमः चकृम ॥१४॥

अनुवाद— आप अपने शश्वत स्वरूप तेज के ही द्वारा प्राणियों के भेदभ्रम को दूर किया करते हैं । आप ज्ञान के अधिष्ठान भूत परम पुरुष हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया की जो लीला होती है वह आपकी ही क्रीडा है । अतएव हे परमेश्वर आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वामेव वयं नता इत्याह । शश्वत्सर्वदा स्वरूपचैतन्येनैव निरस्तभेदभ्रमाय । पुनश्च बोध एवधिषणा विद्याशक्तिर्यस्य। यद्वा धिषणमाश्रयः । अतएव परस्मै । अत्र हेतुः-विश्वोद्भवादिनिमित्तं या माया तस्या लीला विलासस्तया रासः क्रीडा यस्य। ते तुभ्यमिदं नमः नमनं चकृम कृतवन्तो वयम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपको ही हम नमस्कार करते हैं । इस बात को ब्रह्माजी ने इस श्लोक में कहा है । आप अपने शाश्वत रूप ज्ञान के द्वारा प्राणियों को जो भेद भ्रम हो रहा है उसका नाश कर रहे हैं । ज्ञान ही आपकी विद्याशक्ति हैं, अथवा धिषणा शब्द आश्रय का बोधक है । अर्थात् आप ज्ञान के अधिष्ठान (आश्रय) हैं । ऐसे परम पुरुष आपको हम नमस्कार करते हैं । उसका कारण है कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया, का जो विलास है, वही आपकी रास (क्रीडा) है । आप परमेश्वर हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं ।।१४।।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ।।१५।।

अन्वयः— असुविगमे विवशा अपि यस्य अवतारगुणकर्मविडम्बानि नामानि गृणन्ति ते नैकजन्म शमलं सहसैव हित्वा अपावृतम् अमृतं यान्ति तम् अजं प्रपद्ये ।।१५।।

अनुवाद— शरीर परित्याग के समय जो लोग विवश होकर आपके अवतार गुण, तथा कर्मों से सम्बन्ध रखने वाले आपके नामों का उच्चारण कर लेते हैं, वे तत्काल अनेक जन्म के पापों से मुक्त होकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं । आप अजन्मा हैं मैं आपकी शरणागति करता हूँ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नामग्रहणमात्रतः कैवल्यप्रदत्वेनैश्वर्यं व्यञ्जयन्नमस्करोति-यस्येति । अवतारादीनां विडम्बनमनुकरणमस्ति येषु । तत्रावतारविडम्बनानि देवकीनन्दन इत्यादीनि । गुणविडम्बनानि सर्वज्ञो भक्तवत्सल इत्यादीनि । कर्मविडम्बनानि गोवर्धनोद्धरणः कंसारातिरित्यादीनि । असुविगमेऽपि विवशा अपि गृणन्त्युच्चारयन्ति केवलम् । शमलं पापम् । अपावृतं निरस्तावरणम् । ऋतं ब्रह्म प्राप्नुवन्ति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

केवल नामोच्चारण मात्र से भगवान कैवल्य प्रदान कर देते हैं, इस प्रकार के भगवान् के ऐश्वर्य को अभिव्यक्त करते हुए ब्रह्माजी श्रीभगवान् को **यस्यावतारः इत्यादि** श्लोक के द्वारा नमस्कार करते हैं । श्रीभगवान् के जो नाम हैं, उनमें से कुछ उनके अवतार के सूचक है जैसे देवी नन्दन इत्यादि । कुछ नाम गुणसूचक है जैसे भक्तवत्सल, सर्वज्ञ इत्यादि तथा कुछ नाम उनके कर्मों के व्यञ्जक हैं, जैसे गोवर्धनोद्धरण कंसाराति इत्यादि । इन नामों का यदि कोई भी व्यक्ति मृत्यु के समय में विवश भी होकर उच्चारण कर लेता है तो वह मृत्यु के पश्चात् माया के आवरण से रहित ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् आप सदा अजन्मा है, आपकी मैं शरणागति करता हूँ ।।१५।।

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम्।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ।।१६।।

अन्वयः— यः एकः आत्ममूलं भित्वा अहं वा गिरिशः च स्वयं विभुः च स्थित्युद्भव प्रलय हेतवः उरुप्ररोह त्रिपाद् ववृधे तस्मै भुवनदुमाय भगवते नमः ।।१६।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप इस विश्ववृक्ष के रूप में स्थित हैं । आप ही अपनी मूल प्रकृति को स्वीकार करके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए मेरे, अपने और शङ्करजी के रूप में प्रधान तीन शाखाओं

मे विभक्त है। फिर प्रजापति, मनु आदि शाखा प्रशाखाओं के रूप में फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र गुणावतारकर्माणि दर्शयन्प्रणमति। या वै एकस्त्रिपात् त्रयो ब्रह्मादयः पादाः स्कन्धा यस्य। प्रत्येकं च उरवः प्ररोहाः शाखोपशाखा मरीच्यादिमन्वादिरूपा यस्य तथाभूतः सन्ववृधे तस्मै भुवनाकाराय द्रुमाय नमः। किं कृत्वा ववृधे। आत्मा स्वयमेव मूलमधिष्ठानं यस्य तत्प्रधानं भित्त्वा गुणत्रयरूपेण विभज्य। त्रिपात्त्वमेवाह। अहं ब्रह्मा, गिरिशश्च, स्वयं विभुर्विष्णुश्चेति स्थित्युद्भवप्रलयहेतवो ये वयम्। त्रिपाद्भूत्वा यो ववृधे इत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों अवतारों तथा कर्मों को बोधित करते हुए उनको नमस्कार करते हैं। विश्वाकराकारित वृक्षस्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है। वे भुवनाकाराकारित वृक्ष स्वरूप श्रीभगवान् एक ही हैं किन्तु ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक तीन मुख्य शाखाओं के रूप में फैले हैं। इन तीनों शाखाओं का मरीचि आदि प्रजापतियों तथा मन्वादि के रूप में बहुत अधिक विस्तार हो गया है। इस प्रकार के श्रीभगवान् भुवनाकार रूपी वृक्ष के रूप में स्थित हैं। ऐसे आपको नमसकार है। वे भगवान् कैसे बढ़े इसको बतलाते हुए कहते हैं कि स्वयम् ही जिनके आश्रय हैं उस प्रकृति को तीन गुणों के रूप में विभक्त करके बढ़े। श्रीभगवान् रूपी वृक्ष की तीन शाखाओं को बतलाते हुए कहते हैं मैं, शिवजी तथा स्वयं भगवान् विष्णु ये तीनों क्रमशः जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार को करते है। वे ही त्रिपाद् होकर बढ़े ॥१६॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमतः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

अन्वयः— विकर्मनिरतः अयं लोकः त्वदुदिते भवदर्चने स्वकर्मणि कुशले प्रमत्तः यः बलवान्विद्अस्य जीविताशां सद्यः छिनति तस्मै अनिमिषाय तुभ्यं नमः अस्तु ॥१७॥

अनुवाद— हे भगवन् आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिए कल्याणकारी स्वधर्म बतलाया है। किन्तु वे इस ओर से उदासीन रहकर सदा निषिद्ध कर्मों को ही करते हैं। इस तरह से प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन की आशा को जो सदा सावधान रहकर काटता है, वह बलवान काल भी आपका स्वरूप है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं गुणावतारकर्मविडम्बनमुक्त्वा तस्यैव तत्कालाख्यं रूपं तत्कर्म च दर्शयन्प्रणमति–लोक इति द्वाभ्याम्। विकर्मनिरतो विरुद्धकर्मनिष्ठः कुशले हिते स्वे आत्मीये त्वदुदिते त्वयैव साक्षादुक्ते भवदर्चनरूपे कर्मणि। उक्तं हि गीतासु–**'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'** इति। तस्मिन्प्रमत्तोऽदत्तचितो यावद्वर्तते तावदस्य लोकस्य। अनिमिषाय कालाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से गुणावतार तथा कर्मों का अनुष्ठान बतलाकर ब्रह्माजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् का ही एक रूप काल है तथा वह उनका कर्म भी है। इस बात को बतलाकर वे श्रीभगवान् को दो श्लोकों से प्रणाम करते है। वे कहते हैं कि संसारी लोग शास्त्र विरुद्ध कर्म में सदा लगे रहते हैं। भगवान् ने स्वयम् अपनी अर्चना को प्राणियों का हितकारी बतलाया है, उस अपने हित के विषय में वे असावधान रहते हैं। ऐसे लोगों के जीवन को काल शरीरक परमात्मा शीघ्र ही क्षीण कर देते हैं। ऐसे आप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। श्रीभगवान्

ने गीता में कहा भी है **यत्करोषि० इत्यादि** अर्थात् हे अर्जुन तुम जो भी करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो एवं जो तपस्या करते हो उन सबों को मुझे समर्पित कर दो । इस तरह से साक्षात् परमात्मा के द्वारा उक्त भगवदर्चन रूपी अपने कल्याण के विषय में मनुष्यजब तक अनवधान रहता है तब तक परमात्मा उसकी आयु को काल रूप से क्षीण करते हैं । ऐसे काल स्वरूप आपको मैं प्रमाण करता हूँ ॥१७॥

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

अन्वयः— द्विपरार्द्धधिष्ण्यम् अध्यासितः यत् सकललोकनमस्कृतम्, अहमपि यस्माद् बिभेमि, अवरुरुत्समानः बहुसवः तपः तेपे तस्मै अधिमखाय भगवते नमः ॥१८॥

अनुवाद— मैं दो परार्द्ध पर्यन्त रहने वाले सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, मेरा वह लोक सर्वलोक वन्दनीय है, फिर भी मैं आपके उस काल रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने की इच्छा से मैंने अनेक यागों को करता हुआ बहुत काल तक तपस्या की आप ही मेरी इस तपस्या के अधियज्ञ रूप से साक्षी है, ऐसे अधियज्ञ स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावल्लोकस्य कथा, यस्मात्कालाख्यात् त्वत्तो यद्द्विपरार्धावस्थायि धिष्ण्यं स्थानं तदारूढोऽपि बिभेमि, भीतश्च संस्त्वामेवावरुरुत्समानः प्राप्तुमिच्छस्तपस्तप्तवान् । कथंभूतः । बहुसवः बहवः सवा यागाः संवत्सरा वा यस्य । बहून्यागान्कृत्वापि बहून्संवत्सरान्वा तपस्तप्तवानित्यर्थः । अधिमखाय मखाधिष्ठात्रे ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि लोगों की बात तो छोड़िये । दो परार्द्धकाल पर्यन्त रहने वाला जो मेरा सत्यलोक है, उसका अधिष्ठाता मैं हूँ । मेरा वह लोक सभी लोकों के द्वारा स्तुत है । फिर भी मैं आपके इस काल नामक रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने के लिए मैंने दीर्घ काल तक तपस्या भी की । अर्थात् बहुत से यागों को करके बहुत वर्षों तक तपस्या भी किया । आप अधियज्ञ रूप से मेरी उस तपस्या के साक्षी भी हैं । ऐसे अधियज्ञ शरीरक मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

अन्वयः— आत्मसेतु परीप्सया यः आत्मेच्छया निरस्तरतिः अपितिर्यङ्मनुष्य विबुधादिषु जीवयोनिषु अवरुद्ध देहः रेमे तस्मै पुरुषोत्तमाय भगवते नमः ॥१९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो पूर्णकाम हैं फिर भी आपके द्वारा निर्मित धर्म की मर्यादा पालन करने के लिए, आपको किसी भी विषय सुख की इच्छा नहीं है फिर भी अपनी इच्छा मात्र से आप देव, तिर्यक् तथा मनुष्य योनियों में शरीर धारण करके अनेक प्रकार की लीलाओं को करते हैं । ऐसे पुरुषोत्तम आपको मेरा नमस्कार है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तत्तत्कालभाविलीलावतारकर्माणि दर्शयन्नाह । तिर्यगादिषु जीवयोनिषु स्वेच्छया स्वीकृतमूर्तिः सन् स्वकृतधर्ममर्यादापालनेच्छया रेमे । वस्तुतः स्वानन्दानुभवेनैव निरस्तविषयसुखोऽपि योऽत एव पुरुषोत्तमः तत्तदुपाधिधर्मासंस्पर्शात्। तदुक्तं गीतासु-'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।' इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के लीलावतारों के कर्मों का वर्णन करते है । श्रीभगवान् अपने ही द्वारा निर्धारित धर्म की मर्यादा का पालन करने की इच्छा से तिर्यक् आदि जीवों की योनियों में अपनी इच्छा मात्र से शरीर धारण करके लीलाओं को किए । वे भगवान् अपने आत्मानन्द के अनुभव से ही समस्त विषय सुखों की इच्छा से रहित हैं । अतएव वे पुरुषोत्तम है । इसीलिए उन्होंने गीता में कहा भी हैं— **''यस्मात् क्षरादतीतोऽमक्षरादपि चोत्तमः । अतोस्मि लोक वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः** ।। अर्थात् मैं क्षर एवं अक्षर दोनों प्रकार के जीवों से उत्तम हूँ, इसीलिए मैं लोक तथा वेद दोनों में पुरुषोत्तम रूप से प्रख्यात हूँ ॥१९॥

योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥

अन्वयः— दशार्धवृत्त्या अविद्यया अनुपहत अपियः जठरीकृत सर्वलोकयात्रः भीमोऽर्मिमालिनि अन्तर्जले जनस्य सुखं विवृण्वन् अहिकशिपुस्पर्शानुकूलां निद्रामुवाह ।।२०।।

अनुवाद— जो श्रीभगवान् अविद्याः अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों प्रकार की अविद्याओं में से किसी से भी उपहत (आच्छन्न) नहीं है, सम्पूर्ण जगत् को अपने उदरस्थ करके, प्रलयकालीन भयङ्कर तरङ्ग मालाओं से तरङ्गायित जल के भीतर कोमल शेष शय्या पर पूर्वकल्प की कर्म परम्परा से श्रान्त हुए जीवों को विश्राम देने के ही लिए शयन कर रहे हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं दृश्यमानामेवमूर्तिं प्रणमति-योऽविद्ययेति द्वाभ्याम् । दशार्धाः पञ्च वृत्तयो यस्यास्तयाऽविद्यया निद्राहेतुभूतयाऽनभिभूतोऽपि योगनिद्रामुवाह तस्मै ते नम इत्युत्तरेणान्वयः । जठरीकृता उदरे प्रविलापिता लोकयात्रा लोकस्थितिर्येन। अहिरेव कशिपुः शय्या तस्याः स्पर्शोऽनुकूलो यस्यास्तां निद्राम् । भीमानामूर्मीणां माला विद्यन्ते यस्मिन्नन्तर्जले निद्राणस्याविवेकिनो जनस्य निद्रासुखमीदृगिति विवृण्वन्प्रदर्शयन्, उपहसन्नित्यर्थः । अत एवान्तर्जलादिविशेषणानि । यद्वा पूर्वकल्पे श्रान्तस्य जनस्य विश्रामसुखं विवृण्वन्स्फारयन् । तदा तु परोपकाराय स्वयं दुःसहमपि दुःखं सोढव्यमिति द्योतनार्थं विशेषणानि ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अब **योऽविद्यया इत्यादि** दो श्लोकों से दिखायी देने वाली श्रीभगवान् की मूर्ति को ही ब्रह्माजी प्रणाम करते हैं । श्रीभगवान् अविद्या के जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश या तम मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र जो पाँच प्रकार के भेद बतलाये गये हैं इनमें से कोई भी निद्रा के कारणों से अभिभूत नहीं हैं, फिर भी भयङ्कर तरङ्गमालाओं से युक्त प्रलयकालीन जल के भीतर अत्यन्त कोमल शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं ऐसे भगवान् को नमसकार है । इस समय श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को अपने उदर में लीन कर लिया है। शेष नामक सर्प के शरीर की शय्या अत्यन्त सुखस्पर्श होती है, उस पर वे शयन कर रहे है । वे भगवान् ऐसे जल में शयन कर रहे हैं जिसके भीतर भयङ्कर जलतरङ्गे विद्यमान हैं । निद्रा के कारण अविवेकी पुरुष की निद्रा भी इसी प्रकार की नहीं होती है, इस बात का उपहास करते हुए श्रीभगवान् सो रहे हैं । इसलिए भगवान् की योग निद्रा के **अन्तर्जलादि** विशेषण दिए गये हैं । अथवा पूर्व कल्प में श्रान्त हुए जीवों को विश्रामसुख प्रदान करने के लिए श्रीभगवान् योगनिद्रा में शयन करते है । ऐसा अर्थ करने पर विशेषणों के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि परोपकार के लिए दुःसह भी दुःख को सहना चाहिए ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

अन्वयः— हे इड्य यन्नाभिपद्मभवनात् अहम् आसम् यदनुग्रहेण अहम् लोकत्रयोपकरणः, तस्मै उदरस्थ भवाय योगनिद्रावसाने विकसन्नलिनेक्षणाय ते नमः ॥२१॥

अनुवाद— हे वन्दनीय भगवन् आपके जिस नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है, आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना रूपी उपकार में प्रवृत्त हूँ। जिस आपके उदर में यह सम्पूर्ण जगत् लीन है और योगनिद्रा की समाप्ति होने पर आपके नेत्र कमल विकसित हो रहे हैं; ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य नाभिपद्ममेव भवनं तस्मात् । लोकत्रयमुपकरणं यस्य । यद्वा लोकत्रयस्य सृष्ट्यादिद्वारेणोपकरोतीति तथा तादृशोऽहं यदनुग्रहेणाऽऽसम् । उदरे स्थितो भवः संसारप्रपञ्चो यस्य । योगनिद्रावसाने किंचिद्विकसन्नलिनवदीक्षणं यस्य ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कह रहे हैं कि आपके नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है। आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ। अथवा त्रैलोक्य की सृष्टि आदि कार्यों को करके आपका उपकार करता हूँ। आपके उदर में सम्पूर्ण प्रपञ्च स्थित है। उसको आपने अपने उदर में लीन कर लिया है। योगनिन्द्रा की समाप्ति के समय आपके ये नेत्रकमल कुछ विकसित हो रहे हैं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

अन्वयः— सोऽयं समस्तजगताम् एकः सुहृत आत्मा, प्रणतप्रियः असौ भगवान् सत्त्वेन भगेन यत् मृडयते तेनैव मे दृशम् अनुस्पृशतात् यथा अहं पूर्ववद् इदं स्रक्ष्यामि ॥२२॥

अनुवाद— वे ही आप सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र सुहृत् और आत्मा हैं तथा शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं। आप अपने जिस ज्ञान तथा ऐश्वर्य से जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से आप मुझे भी युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान इस जगत् की सृष्टि कर सकूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रार्थयते-सोऽयमिति चतुर्भिः । यद्येन सत्त्वेन ज्ञानेन भगेनैश्वर्येण च मृडयते सुखयति विश्वम् । दृशं प्रज्ञामनुस्पृशताद्योजयतु, यथाऽहं स्रष्टुं क्षमो भविष्यामि । यतः प्रणतप्रियोऽसावहं च प्रणतो न चान्यः प्रार्थनीयोऽस्ति । यतो भगवान् । स एव समस्तजगतां सुहृद्यतोऽसावेकोऽनुस्यूत आत्माऽन्तर्यामी ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके उनसे सोऽयम् इत्यादि चार श्लोकों से प्रार्थना करते हैं। ब्रह्माजी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप अपने जिस ज्ञान एवं ऐश्वर्य के द्वारा जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी दृष्टि को युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान जगत् की सृष्टि करने का कार्य कर सकूं। क्योंकि आप शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं। मैं भी आपका शरणागत हूँ कोई दूसरा नहीं है जिससे कि प्रार्थना की जा सके। आप तो भगवान् हैं। आप ही एकमात्र सम्पूर्ण जगत् के सुहृत् हैं और सबों के भीतर अनतर्यामी रूप से स्थित हैं ॥२२॥

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

अन्वयः— एषः प्रपन्नवरदः आत्मशक्त्या रमया सह गृहीतगुणावतारः यत् यत् करिष्यति तस्मिन् स्वविक्रमम् इदं सृजतः मे चेतः युञ्जीत यथा च कर्मशमलं विजह्याम् ॥२३॥

अनुवाद— हे भगवान् ! आप तो शरणगत जीवों को वरदान प्रदान करने वाले हैं । आप अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के साथ गुणावतारों को धारण करके जिन-जिन कर्मों को करेंगे मेरा यह जगत् की रचना करने का प्रयास भी उन्हीं कर्मों में से एक है । अतएव इस जगत् की रचना करते समय मेरे चित्त को ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे कि मैं सृष्टि रचना विषयक अभिमान का परित्याग कर सकूँ । यह कर्तृत्वाभिमान भी तो एक प्रकार का मल (दोष) ही है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मशक्त्या रमया सह यद्यत्कर्म करिष्यति । स्वविक्रमं स्वस्य विष्णोरेव विक्रमः प्रभावो यस्मिंस्तदिदं विश्वं सृजतोऽपि मे चेतः स एव युञ्जीत प्रवर्तयतु । कर्मासक्तिं तत्कृतं शमलं च वैषम्यादिपापं यथा विजह्यां त्यक्ष्यामि ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् आपकी अपनी शक्ति हैं लक्ष्मीजी, उनके साथ गुणावतारों को धारण करके आप जिन-जिन कर्मों को करेंगे आपके उन्हीं कर्मों में से मेरा विश्व रचना का प्रयास भी एक है । क्योंकि मैं तो आपकी आज्ञा से ही विश्व की रचना का कार्य करूँगा । अतएव आप ही मेरे चित्त को प्रेरित करें जिससे की मुझमें विश्व रचना के कर्तृत्वाभिमान रूप दोष न आ सके उससे मैं दूर रहूँ ॥२३॥

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरांविसर्गः ॥२४॥

अन्वयः— अम्भसि सतः अनन्तशक्तेः यस्य पुंसः अहं विज्ञानशक्तिः आसम् अस्य विचित्रं रूपं विवृण्वतः मे निगमस्य गिरां विसर्गः मा रीरिष्ट ॥२४॥

अनुवाद— इस प्रलय कालीन जल के भीतर शयन करने वाले अनन्त शक्तिसम्पन्न आपके नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ है । मैं आपकी विज्ञान शक्ति हूँ । इस जगत् के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेद रूपी वाणी का उच्चारण लुप्त न हो ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अम्भसि सतो यस्य नाभिह्रदादिहासम् । विज्ञाने शक्तिर्यस्य महत्तत्त्वात्मकस्य चित्तस्य तदभिमानी अस्य रूपमिदं विस्तारयतो मे निगमस्यावयवभूतानां गिरां विसर्ग उच्चारणं मारीरिषीष्ट । हलान्तं ब्रह्मवर्चसमिति न्यायेन मालुप्यतामित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे हैं कि जल के भीतर रहने वाले जिन अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के नाभिह्रद से उत्पन्न कमल से मेरा जन्म हुआ है । जिस महत् तत्त्व की विज्ञान में शक्ति है मैं उसका अभिमानी देवता हूँ, इस महत् तत्त्व को विश्वात्मक रूप का विस्तार करने वाले मेरी वेदों के अवयवभूत वेदवाणी का कभी **हलान्तं ब्रह्मवर्चसम्** न्याय से लोप न हो ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

अन्वयः— सः असौ अदभ्रकरुणः भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् विश्वविजयाय उत्थाय च नः विषादं माध्व्या गिरा अपनयतात् ॥२५॥

अनुवाद— वे आप श्रीभगवान् अपार करुणा सम्पन्न तथा पुराण पुरुष हैं । आप प्रेम पूर्ण मुसकान पूर्वक अपनी आँखें खोलें तथा विश्व की उत्पत्ति के लिए तथा हम लोगों पर कृपा करने के लिए अपनी मधुर वाणी से हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विवृद्धप्रेम्णा स्मितेन विजृम्भयन् । विश्वस्य विजयायोद्भवाय । चकारादस्मदनुग्रहाय चोत्थाय ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप तो अपार करुणासम्पन्न हैं तथा पुराणपुरुष हैं । आप समृद्ध प्रेम के कारण मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों को खोलें तथा उठकर विश्व की उत्पत्ति के लिए हमलोगों पर कृपा करने के लिए ही अपनी मधुरवाणी के द्वारा हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः । यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम सखिन्नावत् ॥२६॥

अन्वयः— एवं तपोविद्यासमाधिभिः स्वसंभवं निशाम्य यावन्मनोवचः स्तुत्वा सः खिन्नवत् विरराम ॥२६॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! इस प्रकार से तपस्या, ज्ञान और समाधि के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान को देखकर अपने मन एवं वाणी की शक्ति के अनुसार श्रीभगवान् की स्तुति करके ब्रह्माजी थके हुए के समान मौन हो गये॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्य संभवो यस्मात्तम्। तपः शारीरम्, विद्या उपासना, समाधिरैकाग्र्यम्, तैर्निशाम्य दृष्ट्वा यथाशक्ति स्तुत्वा श्रान्तवद्विरराम॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में तपः शब्द आत्मा का, विद्या शब्द उपासना का और समाधि शब्द एकाग्रता का बोधक है। इन तीनों के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्रीभगवान् का दर्शन करके ब्रह्मा जी ने अपनी वाणी और मन की शक्ति के अनुसार उनकी स्तुति की और उसके पश्चात् वे थके हुए के समान मौन हो गये ॥२६॥

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः । विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥
लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः । तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥२८॥

अन्वयः— तेन कल्पव्यतिकराम्भसा विषण्णचेतसं लोकसंस्थानविज्ञाने आत्मनः परिखिद्यतः ब्रह्मणः अभिप्रेतम् अन्वीक्ष्य मधुसूदनः अगाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव तम् आह ॥२७-२८॥

अनुवाद— प्रलयकालीन जलराशि से घबराये हुए तथा लोकरचना के विषय में कोई निरश्चित विचार नहीं होने के कारण अत्यन्त खिन्न ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् मधुसूदन उनके विषाद को शान्त सा करते हुए कहने लगे ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो लोकसंस्थानविज्ञान परिखिद्यतो ब्रह्मणोऽभिप्रेतमालक्ष्य तमाहेति द्वयोरन्वयः तेन प्रलयोदकेन विषण्णचेतसम्। कश्मलं मोहम् । इवेति समस्तमोहशमनं दर्शयति ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने लोक रचना विज्ञान के विषय में घबराये हुए ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् ने कहा।

क्योंकि ब्रह्माजी उस प्रलय कालीन जलराशि को देखकर घबराये हुए थे । उनके मोह को शान्त से करते हुए भगवान् ने कहा । इव पद के प्रयोग से यह बतलाया गया है कि वे ब्रह्मजी के मोह के पूर्ण रूप से शान्त नहीं कर रह थे ।।२७-२८।।

श्रीभगवानुवाच

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह । तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ।।२९।।

अन्वयः— वेदगर्भ तन्द्रीं मा गाः सर्गे उद्यमम् आवह भवान् यत् मां प्रार्थयते तत् मयाहि अग्रे आपादितम् ।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे वेदगर्भ विषाद के कारण तुम आलस्य मत करो, सृष्टि रचना का प्रयास करो, तुम जो कुछ भी मुझसे चाहते हो वह मैं पहले ही तुम्हें दे चुका हूँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

हे वेदगर्भ, तन्द्रीं विषादकृतमालस्यं मा गाः । तेनैव मे दृशमनुस्पृशतादित्यादि यत्प्रार्थयते तदग्रे पूर्वमेव संपादितम्।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वेदगर्भ ब्रह्मन् तुम विषाद के कारण अलस्य न करो तुमने जो यह प्रार्थना की है कि जिस ज्ञान के द्वारा आप जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी बुद्धि को सम्पन्न कर दें, वह मैं पहले से ही तुमको दे चुका हूँ ।।२९।।

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् । ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ।।३०।।

अन्वयः— ब्रह्मन् त्वं भूयः तप मदाश्रयां विद्यां च आतिष्ठ ताभ्यां अन्तर्हृदि अपावृतान् लोकान द्रक्ष्यसि ।।३०।।

अनुवाद— ऐ ब्रह्मन् ! तुम फिर एक बार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो उन दोनों के द्वारा तुम अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को देखोगे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमहं न जानामीत्यत आह-भूय इति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप मुझे पहले से ही प्रदान कर रखे हैं तो फिर मैं उसे क्यों नहीं देख रहा हूँ; इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि तुम फिर एकबार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो तब अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को स्पष्ट रूप से देखोगे ।।३०।।

तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः । द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ।।३१।।

अन्वयः— ततः हे ब्रह्मन् भक्तियुक्तः समाहितः आत्मनि लोके च ततं मां द्रष्टा असि मयि च आत्मनः लोकान् च द्रष्टा असि ।।३१।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उसके पश्चात् भक्ति और एकाग्रचित होकर तुम अपने में तथा सम्पूर्ण लोकों में मुझकों व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सभी जीवों तथा लोकों को देखोगें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

भक्तियुक्तः समाहितश्च सन्नात्मनि स्वस्मिन् लोके च मां ततं व्याप्य स्थितं द्रष्टासि द्रक्ष्यसि । आत्मनो जीवांश्च ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति पूर्वक समाहित होकर तुम अपने हृदय में तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रूप से मुझको देखोगे तथा मुझमें भी लोकों और जीवों को देखोगे ।।३१।।

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् । प्रतिचक्षीत मां लोके जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥

अन्वयः— यदा तु लोकः सर्वभूतेषु दारुषु अग्निमिव स्थितम् माम् प्रतिचक्षीत तर्ह्येव कश्मलं जह्यात् ॥३२॥

अनुवाद— जब मनुष्य काष्ठ में स्थित अग्नि के समान सभी भूतों में स्थित मुझको ही देखने लगता है, उसी समय वह अपने अज्ञान रूप मल से मुक्त हो जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वत्र मद्दर्शने मोहो निवर्तत इत्याह-यदा त्विति । प्रतिचक्षीत पश्येत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदा तु इस श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा है कि जो व्यक्ति सभी वस्तुओं के भीतर मुझको ही अन्तर्यामी रूप से देखता है तो उसका अज्ञान दूर हो जाता है । श्लोक के प्रतिचक्षीत् पद का अर्थ है देखने लगे तो ॥३२॥

यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः । स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥

अन्वयः— यदा भूतेन्द्रियगुणाशयैः रहितम् स्वरूपेण मया उपेतम् पश्यन् स्वाराज्यम् ऋच्छति ॥३३॥

अनुवाद— जब मनुष्य अपने को भूत, इन्द्रिय, गुण एवं कर्म से रहित और स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है तो वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदा च मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ मुच्यत इत्याह-यदेति । भूतादिभिर्विरहितमात्मानं जीवं शुद्धं त्वंपदार्थं स्वरूपेण स्वस्यात्मभूतेन मया तत्पदार्थेनोपेतमेकीभूतं पश्यन्भवति तदा स्वाराज्यं मोक्षं प्राप्नोति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उसके मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है; इस बात को **यदारहितमात्मानम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भूत इन्द्रिय आदि से रहित **जो तत्त्वमसि** वाक्य का जो त्वं पदार्थ है उस शुद्ध जीव को स्वरूपतः अपनी आत्माभूत तत् पदार्थ के साथ अभिन्न देखने वाला जीव स्वराज्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः । नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३४॥

अन्वयः— नानाकर्मवितानेन बह्वीः प्रजाः सिसृक्षतः ते आत्मा नावसीदति मत् वर्षीयान् अनुग्रहः ॥३४॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के कर्मों के संस्कार के कारण अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा होने पर तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता है यह मेरी महती कृपा है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यतो वर्षीयान् वृद्धतरः । अत्यधिकोऽस्तीत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भिन्न-भिन्न जीवों में भिन्न प्रकार के कर्मों के संस्कार पड़े हुए हैं उसी के अनुसार तुम अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि करना, चाहते हो; किन्तु इस कार्य में तुम्हारी बुद्धि मोहित इसलिए नहीं होती है कि तुम पर मेरी बहुत अधिक कृपा है ॥३४॥

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ।३५॥

अन्वयः— आद्यं ऋषिं त्वां पापीयान् रजोगुणः न बध्नाति यत् प्रजाः संसृजतः अपि ते मनः निर्बद्धः ।।३५।।

अनुवाद— तुम सर्वप्रथम ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) हो, प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी चूकि तुम्हारा मन मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहमेवाह-ऋषिमिति चतुर्भिः । यत् यतस्ते मनो मयि निर्बद्धम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिमाद्यम् इत्यादि चार श्लोकों से श्रीभगवान् अपने अनुग्रह का ही वर्णन करते हैं । प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी तुम्हारा मन चूकि मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता है ।।३५।।

ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३६॥

अन्वयः— यत् त्वं मां भूतेन्द्रियम् गुणात्मभिः अयुक्तं मन्यसे अतःदेहिनाम् दुर्विज्ञेयः अपि भवता अद्यः ज्ञातः ।।३६।।

अनुवाद— चूकि तुम भूत, इन्द्रियगण तथा अन्तःकरण से रहित मुझको मानते हो इसीलिए देहधारी जीवों के लिए कठिनाई से जानने योग्य होने पर भी तुमने मुझे आज जान लिया है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्भूतैरिन्द्रियैर्गुणैः सत्त्वादिभिरात्मनाऽहंकारेण चायुक्तं मन्यसे ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम मुझको भूतेन्द्रियों तथा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन गुणों तथा अहङ्कार से रहित मानते हो इसीलिए तुम मुझे जान पाये हो, क्योंकि मैं तो शरीरधारी जीवों के लिए दुर्विज्ञेय हूँ।।३६।।

तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः । नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

अन्वयः— मद्विचिकित्सायां पुष्करस्य नालेन सलिलस्य मूलं विचिन्वतः तुभ्य मे अबहिः आत्मा दर्शितः ।।३७।।

अनुवाद— तुमको अपने मूल के विषय में संदेह हुआ कि मेरा कोई मूल है कि नहीं ? उसके पश्चात् तुम कमल नाल के द्वारा जल में अपने मूल का अन्वेषण करने लगे इसीलिए मैंने तुम्हारे हृदय में ही अपने को प्रदर्शित कर दिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव नालेन मार्गेण पुष्करस्य मूलमधिष्ठानं सलिले विचिन्वतो मयि विचिकित्सायां भवितव्यमस्याश्रयेण, नच दृश्यते ततोऽस्ति नास्तीति संदेहे सत्यात्मा स्वरूपं मे मया अबहिरन्तर्हृदि दर्शितः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

तुम कमल नाल के मार्ग से जल के भीतर अपने मूल का अन्वेषण कर रहे थे । तुमको मेरे विषय में संदेह हुआ ही होगा । यदि है तो क्यों नहीं दिखायी दे रहा है, अतएव है कि नहीं हैं, मेरा मूल ? इस तरह से तुम्हें संदेह होने पर मैंने अपने को तुम्हारे हृदय में ही प्रदर्शित कर दिया ।।३७।।

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् । यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रगहः ॥३८॥

अन्वयः— अङ्ग मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् यत् मत्स्तोत्रं चकर्थ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ।।३८।।

अनुवाद— हे वत्स ! मेरी कथाओं के वैभव से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है तथा तुम्हारी जो तपस्या में निष्ठा है वह मेरी कृपा का ही फल है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे ब्रह्मन् चकर्थ कृतवानसि। मत्कथैवाभ्युदयस्तेनाङ्कितम्। स एव बन्धाभावो मयि मनोनिर्बन्धो मज्ज्ञानं मद्रूपस्य हृदि दर्शनं मत्स्तुतिस्तपोनिष्ठा चेति यद्येष सर्वोऽपि मदनुग्रहः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्मन् ! मेरी कथा रूपी ऐश्वर्य से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है, यह संसार के बन्धन का अभाव है, मुझ में जो तुम्हारा मन लगा रहता है, मेरा ज्ञान, तथा अपने अन्तःकरण में मेरे रूप का दर्शन तथा मेरी स्तुति में तथा तपस्या में निष्ठा का होना यह सब कुछ मेरी कृपा का ही फल है ॥३८॥

प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया। यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ॥३९॥

अन्वयः— लोकानां विजयेच्छया गुणमयं मा निर्गुणं अनुवर्णयन् यत् अस्तौषीः तेन अहं प्रीतः ते भद्रम् अस्तु ॥३९॥

अनुवाद— लोकों की रचना करने की इच्छा से गुण युक्त रूप से प्रतीत होने वाले भी मेरी स्तुति तुमने जो निगुर्ण रूप से की है उससे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

गुणमयत्वेन प्रतीयमानमपि निर्गुणमेवानुवर्णयन् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि मेरी प्रतीति सगुण रूप से होती है फिर भी तुमने मेरी स्तुति निगुर्ण रूप से की है, अतएव मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो ॥३९॥

य ऐतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत्। तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥

अन्वयः— यः पुमान् एतेन स्तोत्रेण मां स्तुत्वा नित्यं मां भजते तस्य सर्वकामवरेश्वरः अहं आशु संप्रसीदेयम् ॥४०॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करके मेरा भजन करता है उस पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

तव प्रीत इति किं वक्तव्यमित्याह-य इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

मुझे यह क्या कहना है कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जो काई दूसरा भी जीव इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करके नित्य ही मेरा भजन करेगा उस पर मैं प्रसन्न हो जाऊँगा ॥४०॥

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना। राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥४१॥

अन्वयः— पूर्तेन, तपसा यज्ञैः दानैः योगसमाधिना राद्धं निःश्रेयसा पुंसां मत्प्रीतिः तत्त्ववित् मतम् ॥४१॥

अनुवाद— तत्त्वज्ञ पुरुषों का मानना है कि मनुष्य पूर्व कर्म, तपस्या, यज्ञ, दान योग तथा समाधि के द्वारा जिस परम कल्याण को प्राप्त करता है वह मेरी प्रसन्नता का ही फल है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

नच मत्प्रीतेरप्यधिकं किंचिदस्तीत्याह। पूर्तादिभिः राद्धं सिद्धं यन्निःश्रेयसं फलं तन्मत्प्रीतिरेवेति तत्त्वविदां मतम्॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् बतला रहे है कि मेरी प्रसन्नता से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तत्त्वज्ञ पुरुषों का कहना है कि मनुष्य पूर्तकर्म कूप, सरोवर आदि जलाशयों को बनवाना तपस्या, यज्ञ, दान, योग तथा समाधि आदि साधनों के द्वारा जिन परम कल्याणमय फल को प्राप्त करता है, वह मेरी कृपा का ही फल है ॥४१॥

अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि । अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥४२॥

अन्वयः— धातः अहम् आत्मनाम् आत्मा प्रेयसाम् अपि प्रेष्ठः यत् कृते देहादिः प्रियः अतः मयि रतिं कुर्यात् ॥४२॥

अनुवाद— ब्रह्मन् मैं आत्माओं की भी आत्मा हूँ प्रियों का भी प्रिय हूँ, देह आदि भी मेरे लिए ही प्रिय हैं, अतएव मुझसे ही प्रेम करना चाहिए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-अहमिति । आत्मनाहंकारोपधीनां जीवानामात्मा । अतः प्रेयसामतिप्रियाणामपि मध्ये प्रेष्ठः प्रियतमः सन् निरवद्यः । यत्कृते यदर्थम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है। भगवान् ने कहा है— मैं अहंकरोपाधि जीवों की भी आत्मा हूँ तथा अत्यन्त प्रिय पत्नी पुत्रादिकों में भी मैं सबसे अधिक प्रिय हूँ मैं निर्दोष हूँ। मेरे लिए ही देह इत्यादि प्रिय हैं॥४२॥

सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना । प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥४३॥

अन्वयः— इदम् याश्च प्रजाः मयि अनुशेरते ताः आत्मयोनिना सर्ववेदमयेन आत्मना यथापूर्वं सृज ॥४३॥

अनुवाद— ब्रह्मन् तुम इस त्रैलोक्य को तथा जो लीन हुयी प्रजा मुझमें सो रही उसको, मुझसे उत्पन्न सर्ववेदमय स्वरूप से पहले के ही समान स्वयम् रचो ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वं कृतार्थ एव तथापि मत्प्रियार्थं सृष्टिं कुर्वित्याह-सर्वेति । आत्मा त्वमिदं त्रैलोक्यं या मय्यनुशेरते ताः प्रजाश्च सृज । केन आत्मनैवान्यनिरपेक्षेण । तत्र ज्ञापकापेक्षाभावमाह-सर्ववेदमयेनेति । आत्मा अहं योनिः कारणं यस्येति ज्ञानक्रियाशक्त्यतिशयं सूचयति । यथापूर्वमिति । तवात्राभ्यासोऽप्यस्तीत्युक्तम् । मय्यनुशेरत इति स्थितानामभिव्यक्तिमात्रमेव कर्तव्यमित्यनायासत्वमुक्तम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कारणों से तुम तो कृतार्थ ही हो। फिर भी मेरी प्रसन्नता के लिए सृष्टि करो। इस बात को इस श्लोक से कहा गया है। श्लोक का अर्थ है कि तुम इस त्रैलोक्य की तथा जो प्रजा मुझमें लीन होकर सो रही हैं उसकी सृष्टि निरपेक्ष होकर करो। उस सृष्टि के कार्य में ज्ञापक की कोई आवश्यकता नहीं है इस बात को बतलाते हुए भगवान् ने कहा कि तुम मुझसे सर्ववेदज्ञ रूप से उत्पन्न हो अतएव तुम ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति से सम्पन्न हो। इसमें तुमको कोई नया प्रयास भी नहीं करना है, पूर्व कल्प के ही समान सृष्टि करो ॥४३॥

मैत्रेय उवाच

तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः । व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसंवादे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— कञ्जनाभिः प्रधानपुरुषेश्वरः तस्मै जगत् स्रष्ट्रे एवं स्वेन रूपेण इदं अभिव्यज्य तिरोदधे ॥५५॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रकृति एवं पुरुष (जीव) दोनों के स्वामी जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ ऐसे भगवान् पद्मनाभ अपने स्वरूप से ही इस जगत् को ब्रह्माजी को प्रदर्शित करके तिरोहित हो गये ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ब्रह्माजी की उत्पत्ति के अन्तर्गत विदुरमैत्रेयसंवाद के अन्तर्गत नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

इदं सृज्यं व्यज्य प्रकाश्य पद्मनाभः श्रीनारायणरूपेण तिरोदधेऽदृश्योऽभवत् ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पद्मनाभ रूप से भगवान् नारायण इस जगत् को अभिव्यक्त करके अदृश्य हो गये ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या समपूर्ण हुयी ।।९।।

दसवाँ अध्याय

दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

विदुर उवाच

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ।।१।।

अन्वयः— भगवति अन्तर्हिते विभुः लोकपितामहः ब्रह्मा दैहिकीः मानसिकीः कतिधा प्रजाः ससर्ज ? ।।१।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मैत्रेयजी ! श्रीभगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी लोक पितामह ब्रह्माजी ने कितने प्रकार की दैहिकी तथा मानसिकी सृष्टियों को किया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

दशमे कालसंप्रश्नप्राप्तिं वक्तुं तदुद्भवः । प्राकृतादिविभागेन सर्गस्तु दशधोच्यते ।।१।।

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में कालविषयक प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए प्राकृत आदि विभागो वाली दश प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है ।।१।।

ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम । तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ।।२।।

अन्वयः— हे बहुवित्तम भगवन् ये अर्था मया त्वयि पृष्टाःतान् आनुपूर्व्येण वदस्व, नः संशयान् छिन्धि ।।२।।

अनुवाद— हे बहुज्ञों में श्रेष्ठ भगवन् ! आपसे मैंने जिन विषयों में प्रश्न किया है, आप इन सबों को क्रमशः बतलाकर मेरे सन्देह को दूर कीजिये ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मे मया । वदस्व वद । भासयस्वेति वा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैंने जिन-जिन प्रश्नों को आपसे पूछा है, आप उन सबों का उत्तर मुझे बतलायें । वदस्व पद की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी दो अर्थ लिखते हैं, वद अर्थात् कहें किन्तु वदस्व यह आत्मने पद में प्रयोग है अतएव दूसरा पर्यायवाची शब्द भासयस्व लिखा है । वादनोपसंभाषा इत्यादि के द्वारा वद धातु का भास आदेश होने पर लोट्लकार में भासयस्व रूप होगा ॥२॥

सूत उवाच

एवं संचोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः । प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥

अन्वयः— हे भार्गव : एवं तेन क्षत्त्रा संचोदितः अथ कौषारवो मुनिः प्रीतः सन् तान् हृदिस्थान् प्रश्नान् प्रत्याह॥३॥

अनुवाद— हे भृगुवंशीय शौनक महर्षे ! विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर उसके पश्चात् मैत्रेय महर्षि प्रसन्न होकर अपने हृदय में विद्यमान प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

संचोदितः प्रार्थितः । हृदिस्थानेवाह नतु ते प्रश्नास्तेन विस्मृता इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से विदुरजी द्वारा की गयी प्रार्थना को सुनकर मैत्रेय महर्षि को बड़ी प्रसन्नता हुयी । पहले विदुरजी ने जिन प्रश्नों को किया था । वे सभी प्रश्न मैत्रेय महर्षि को याद थे वे भूले नहीं थे और उन्होंने विदुरजी के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥३॥

मैत्रय उवाच

विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः । आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥

अन्वयः— यद् भगवान् अजः आह विरिञ्चः अपि आत्मनि आत्मानम् आवेश्य दिव्यं वर्षशतंतपः चक्रे ॥४॥

अनुवाद— जैसा कि श्रीभगवान् ने आदेश दिया था उसी के अनुसार ब्रह्माजी भी अपनी आत्मा भगवान् नारायण में अपने मन को लगाकर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनि श्रीनारायणे आत्मानं मन आवेश्य ॥४॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने कहा कि भगवान् नारायण ब्रह्माजी को तपस्या करने का आदेश देकर अदृश्य हो गये थे। उनके ही आदेशानुसार ब्रह्माजी भी भगवान् नारायण में ही लगाकर अपने मन को सौ दिव्यवर्षों तक तपस्या किये ॥४॥

तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः । पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥५॥

अन्वयः— अब्जसंभूतः यदधिष्ठितः तत् पद्मम् अम्भश्च कालकृतवीर्येण वायुना कम्पितम् विलोक्य ॥५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हैं प्रलयकालीन वायु के द्वारा वह कमल तथा जल दोनों काँप रहे हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अब्जसंभूतो ब्रह्मा यदधिष्ठाय स्थितः, कर्तरि क्तः । तत्पद्ममम्भश्च विलोक्य । कथंभूतं पद्ममम्भश्च । तेन प्रलयकालेन कृतं वीर्यं यस्य तेन वायुना कम्पितं, न्यापादित्युत्तरेणान्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कमल से उत्पन्न हेने वाले ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हुए हैं, वह कमल और जल प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से काँप रहे हैं ।।५।।

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया । विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ।।६।।

अन्वयः— एधमानेन तपसा हि आत्मसंस्थया विद्यया विवृद्धविज्ञानबलः अम्भसा सह वायुं न्यपात् ।।६।।

अनुवाद— बढी हुयी तपस्या एवं अपने हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान के द्वारा उनका विज्ञानबल बढ गया था और उन्होंने जल के साथ वायु को पी लिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विवृद्धं विज्ञानबलं च यस्य । न्यपात्सर्वं पीतवान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के आदेशानुसार ब्रह्माजी की तपस्या और हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान ये दोनों समृद्ध हो गये थे । उसके कारण उनके विज्ञान और बल दोनों बढ गये थे । उसी के सहारे उन्होंने सम्पूर्ण जल और वायु दोनों को पी लिया ।।६।।

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् । अनेन लोकान्प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ।।७।।

अन्वयः— यद् अधिष्ठितम् पुष्करं तद् वियद व्यापि विलोक्य अनेन प्राक् लीनान् लोकान् कल्पितास्मि इति अचिन्तयत् ।।७।।

अनुवाद— जिस कमल पर ब्रह्माजी बैठे थे उसको आकाश में व्याप्त देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि पूर्व कल्प में जो लोक लीन हो गये थे उन सबों की रचना मैं इसी कमल से ही करूँगा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

पुष्करं पद्मम् । प्राग्लीनान् त्रींल्लोकान् कल्पितास्मि स्रक्ष्यामि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अपने द्वारा अधिष्ठित कमल को आकाश व्यापी देखकर ब्रह्माजी ने विचार किया कि इस कल्प से पहले के कल्प में जो त्रैलोक्य लीन हो गया था उसकी सृष्टि मैं इस कमल के द्वारा ही करूँगा ।।७।।

पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः । एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ।।८।।

अन्वयः— तदा भगवत् कर्मचोदितः पद्मकोशं प्रावेश्य द्विसप्तधा, उरुधाभाव्यं एकं त्रिधाव्यभांक्षीत् ।।८।।

अनुवाद— भगवान् के द्वारा सृष्टि के कार्य में नियुक्त किए गये ब्रह्माजी उस कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उस एक ही कमल कोश को, जो चौदह भुवनो या उससे भी अधिक भागों में विभक्त होने के योग्य था उसको त्रिलोकी के रूप में विभक्त कर दिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

भगवता स्वयं करणीये कर्मणि चोदितो नियुक्तः संस्तदा पद्मकोशं प्रविश्य तमेकमेव त्रिधा लोकरूपेण व्यभाङ्क्षीद्विभाज। एकेन कमलमुकुलेन कथं लोकत्रयसृष्टिरित्यसंभावनां वारयितुं तस्य विशालतामाह । द्विसप्तधा चतुर्दशलोकरूपेण । उरुधा ततोऽपि बहुप्रकारेण । भाव्यं भावयितुं योग्यम् । अतो न तेन त्रिलोकीकरणं चित्रमित्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि कार्य किया जाना था और उस कार्य में श्रीभगवान् ने स्वयं ब्रह्माजी को नियुक्त किया था । वे ब्रह्माजी उस एक ही कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उसी को वे त्रैलोक्य के रूप में तीन भागों में विभक्त कर दिये । एक ही कमल की कली से त्रैलोक्य की सृष्टि कैसे की जा सकती है, यह तो असंभव है । इस असंभावना को दूर करने के लिए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उसका इतना अधिक विस्तार था कि उसको चौदहों भुवनों के रूप में अथवा उससे भी अधिक रूपों में विभक्त किया जा सकता था ॥८॥

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः । धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥

अन्वयः— जीवलोकस्य संस्थाभेदः एतावान् समाहृतः असौ परमेष्ठी अनिमित्तस्य हि धर्मस्य विपाकः ॥९॥

अनुवाद— जीवों के भोगस्थान के रूप में इन्हीं तीनों लोकों का विभाग शास्त्रों में वर्णित है । ब्रह्माजी आदि के जो महः, जनः तपः एवं सत्यम् लोक हैं वे निष्काम कर्म करने वालों के लोक के रूप में विभक्त हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकीरूपेणैव विभागे हेतुमाह । एतावांस्त्रिलोकीरूपो जीवलोकस्य जीवानां भोगस्थानस्य प्रत्यहं सृज्यस्य संस्थाभेदो रचनाविशेष उक्तः । ननु परमेष्ठिनोऽपि जीवत्वाविशेषाद् ब्रह्मलोकस्यापि किमिति प्रत्यहं सृष्टिर्न भवति तत्राह । हि यस्मादनिमित्तस्य निष्कामस्य धर्मस्य विपाकः फलरूपोऽसौ । उपलक्षणमेतत्सत्यलोकस्य महःप्रभृतिलोकानां तद्वासिनां च । त्रैलोक्यस्य काम्यकर्मफलत्वात्प्रतिकल्पमुत्पत्तिविनाशौ भवतः । महःप्रभृतीनामुपासनासमुचितनिष्कामधर्मफलत्वाद्द्विपरार्धपर्यन्तं न नाशः। तत्रस्थानां च ततःपरं प्रायेण मुक्तिरिति भावः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने त्रिलोकी के रूप में ही जो कमल कोशका विभाग किया उसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है । ब्रह्माजी अपने प्रत्येक दिन में त्रिलोकी रूप ही जीवलोकों की रचना करते हैं यह शास्त्रों में वर्णित है। यदि कोई कहे कि ब्रह्माजी भी तो जीव ही हैं, अतएव ब्रह्मलोक की भी प्रत्येक कल्प रूपी दिन में सृष्टि क्यों नहीं होती है । तो इसके उत्तर में कहा गया है कि त्रिलोकी के ऊपर जो चार लोक हैं वे लोक निष्काम कर्मों के फलस्वरूप हैं । ब्रह्माजी का लोक महर्लोक से लेकर सत्य लोक पर्यन्त के लोकों तथा उन लोकों में रहने वाले जीवों का उपलक्षण है । त्रैलोक्य की प्राप्ति काम्यकर्मों का फलस्वरूप है । अतएव त्रैलोक्य की उत्पत्ति और विनाश प्रत्येक कल्प में होते रहते हैं । महः इत्यादि लोकों की प्राप्ति तो उपसना स्वरूप निष्काम कर्मों का फलरूप है। अतएव उन लोकों का द्विपरार्द्धपर्यन्त नाश नहीं होता है । उन लोकों में रहने वाले जीव द्विपरार्द्ध के पश्चात् प्रायः मुक्त हो जाते हैं ॥९॥

विदुर उवाच

यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः । कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥१०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अद्भुतकर्मणः बहुरूपस्य हरेः यत् कालाख्यं लक्षणमाह हे प्रभो नः यथा वर्णय ॥१०॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मों को करने तथा विश्वरूप श्रीहरि की जिस काल नामक शक्ति का आपने वर्णन किया था हे प्रभो ! कृपया आप उसका विस्तार से वर्णन करें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कालभेदेन लोकसृष्टिभेदं श्रुत्वा तमेव कालं जिज्ञासुः पृच्छति । यत्कालाख्यं लक्षणं स्वयमात्थ अब्रवीः । कथं कालः कल्पते, किं वा तस्य सूक्ष्मं च रूपमिति यथावद्वर्णयेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

काल के भेद से लोकों की सृष्टि को सुनकर विदुरजी काल के विषय में जानने की इच्छा से पूछे कि प्रभो! आपने पहले श्रीभगवान् की काल नामक शक्ति का वर्णन किया था, मैं उसके विषय में जानना चाहता हूँ । उस काल का किस लक्षण के द्वारा अनुमान किया जाता है उसके सूक्ष्म तथा स्थूल भेद क्या है ? इन सारी बातों का आप वर्णन करें ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः । पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥११॥

अन्वयः— गुणव्यतिकराकारः निर्विशेषः अप्रतिष्ठितः पुरुषः तदुपादानम् लीलया आत्मानं असृजत् ॥११॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— गुणों का जिसके द्वारा महदादि के रूप में परिणाम होता है उसे ही काल कहते हैं । वह निर्विशेष तथा अनादि एवं अनन्त है । उसी को निमित्त बनाकर भगवान् लीलापूर्वक ही सृष्टि कर देते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सामान्यतः कालस्य स्वरूपमत्रोच्यते, उत्तराध्याये तु विशेषतः । गुणानां व्यतिकरो महदादिपरिणामस्तेनैवाक्रियते यः स काल इति शेषः । वक्ष्यते चैकादशे **गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च** इति । स्वतस्तु निर्विशेषः । अप्रतिष्ठितः क्वाप्यपर्यवसितः । आद्यन्तशून्य इत्यर्थः । एतदेव दर्शयितुमीश्वरः । सृष्ट्यादि तेन निमित्तभूतेन करोतीत्याह-पुरुष इति । उपादीयते निमित्ततया स्वीक्रियते इत्युपादानम् । स काल उपादानं निमित्तं यस्मिंस्तमात्मानमेव विश्वरूपेणासृजत् । स्वव्यतिरेकेण सृज्यस्याभावात् । एतच्च वस्तुकथनमात्रम् । कालेन निमित्तेन चासृजदित्येतावदेव विवक्षितम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर कल का सामान्य लक्षण कहा गया है । इसके बाद वाले अध्याय में उसका विशेष लक्षण कहा जायेगा । गुणों का महदादि के रूप में जिसके द्वारा परिणाम होता है, उसे काल कहते हैं । ग्यारहवें स्कन्ध में कहा भी जायेगा कि गुणों का महदादि के रूप में परिणाम जिसके द्वारा होता है उसे काल कहते है । वही स्वभाव तथा सूत्र है । कालस्वभावतः निर्विशेष है । वह किसी भी रूप में परिणत नहीं होता है अतएव वह आदि और अन्त से रहित है । इस काल को ही बतलाने के लिए ईश्वर उस निमित्तभूत काल के द्वारा सृष्टि आदि कार्य बिना किसी प्रयास के ही कर देते हैं । वे परमात्मा काल को ही निमित्त बनाकर अपने को ही विश्व के रूप में परिणत कर दिए । क्योंकि अपने से भिन्न कोई दूसरी वस्तु सृज्य है ही नहीं । यह केवल सिद्धान्त कथन मात्र है । सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का कार्य होने के कारण उनसे अभिन्न है । यहाँ पर केवल इतना ही विवक्षित है कि श्रीभगवान् ने काल रूपी निमित्त द्वारा जगत् की सृष्टि की ॥११॥

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया । ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥१२॥

अन्वयः— विष्णुमायया संस्थितं ब्रह्मतन्मात्रं वै विश्वं ईश्वरेण अव्यक्तमूर्तिना कालेन परिच्छिन्नम् ॥१२॥

अनुवाद— सृष्टि से पूर्व यह सारा विश्व भगवान् की माया में लीन होकर ब्रह्मरूप से स्थित था, उसी को अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा परमेश्वर ने पृथक् रूप से प्रकट किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वव्यतिरिक्तसृज्याभावं दर्शयन् कालस्य सृष्टिनिमित्ततां दर्शयति- विश्वमिति । विष्णुमायया संस्थितं संहृतं ब्रह्मतन्मात्रं सद्विश्वम् । ईश्वरेण कर्त्रा कालेन निमित्तेन परिच्छिन्नं पृथक् प्रकाशितम् । अव्यक्ता मूर्तिः स्वरूपं यस्येति स्वतो निर्विशेषता दर्शिता ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मव्यतिरिक्त सृज्य के अभाव को बतलाते हुए यह बतलाया जा रहा है कि काल ही सृष्टि का निमित्त है । भगवान् की माया के द्वारा संहत विश्व ब्रह्ममात्र ही था । अर्थात् ब्रह्मरूप में स्थित था । परमात्मा ने कालरूपी निमित्त के द्वारा ब्रह्म से पृथक् विश्व प्रकाशित कर दिया । काल अव्यक्त स्वरूप होने के कारण निर्विशेष है ।।१२।।

यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् । सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ।।१३।।

अन्वयः— एतद् यथा इदानीम् तथा अग्रे पश्चात् अपि एतत् इदृशम् तस्य नवविधः सर्गः तथा प्राकृतः वैकृतः तु यः।।१३।।

अनुवाद— यह जगत् इस समय जैसा है वैसा ही पहले भी था और भविष्य में भी यह वैसा ही होगा इसकी ही प्राकृत नव प्रकार की सृष्टि होती है और दशवीं वैकृत सृष्टि हुयी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अप्रतिष्ठितत्वं दर्शयितुं तत्कार्यविश्वप्रवाहस्याप्रतिष्ठामाह । यथेदानीमस्ति तथाऽग्रे पूर्वमप्यासीत्पश्चादपि भविष्यति । एवं सामान्यतः कालं निरूप्य विशेषतो निरूपयिष्यंस्तन्निमित्तस्य सर्गस्य पूर्वोक्तानेव भेदाननुवदति-सर्ग इति । यस्तु प्राकृतो वैकृतश्च स दशमः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

काल के आदि और अन्त राहित्य को दिखाने के लिए उसके कार्यभूत विश्व के प्रवाह की अनादिता और अनन्तता को इस **यथेदानीम् श्लोक** से कहा गया है । यह जगत् इस समय जैसा है, पहले भी वैसा ही था और भविष्य में भी यह वैसा ही रहेगा । इस तरह से काल का सामान्य रूप से निरूपण करके उसका विशेष रूप से निरूपण करने के लिए उसके कारणभूत सृष्टि के पूर्वोक्त भेदों का अनुवाद श्लोक के उत्तरार्द्ध से किया गया है । जो प्राकृत और वैकृत सृष्टि है वह दशवें प्रकार की है । इसी को कौमार सर्ग भी कहते हैं ।।१३।।

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः । आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ।।१४।।

अन्वयः— काल, द्रव्य गुणैः अस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः आद्यः महतः सर्गः आत्मनः गुणवैषम्यम् ।।१४।।

अनुवाद— इस जगत् का प्रलय काल द्रव्य एवं गुणों के भेद से तीन प्रकार का होता है । पहले मै दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन करता हूँ । पहली सृष्टि महत् तत्त्व की है । भगवान् की प्रेरणा से गुणों मैं वैषम्य का हो जाना ही उसका स्वरूप है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तन्निमित्तमेव त्रिविधं प्रलयमाह । कालेनैव केवलेन नित्यः प्रलयः । द्रव्येण संकर्षणाग्न्यादिना नैमित्तिकः । गुणैः स्वस्वकार्यं ग्रसद्भिः प्राकृतिकः । तानेव सर्गान्प्रपञ्चयति-आद्य इत्यादिना यावदध्यायसमाप्तिम् । महतो लक्षणमात्मनो हरेः सकाशाद्गुणानां वैषम्यमिति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

काल के कारण होने वाले तीन प्रकार के प्रलयों को बतलाया गया । केवल काल के कारण नित्यप्रलय होता है । सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि के कारण जो प्रलय होता है वह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है।

जब गुण अपने-अपने कार्यों को अपने में लीन करने लग जाते हैं तो उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। उन सृष्टियों का विस्तार से वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं। महान् का यही लक्षण है कि श्रीहरि की इच्छा से गुणों में विषमता का उत्पन्न हो जाना ॥१४॥

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः । भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥

अन्वयः— द्वितीयस्तु अहमः यत्र द्रव्यज्ञानक्रियादयः । तृतीयः तु द्रव्यशक्तिमान् तन्मात्रः भूतसर्गः ॥१५॥

अनुवाद— दूसरी अहङ्कार की सृष्टि है, जिससे महाभूतों ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि का नाम भूतसर्ग है। जिससे पञ्चमहाभूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्र समूह रहता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अहमोऽहंकारस्य । तस्य लक्षणम् यत्रेति । द्रव्यादयो वक्ष्यमाणास्त्रयः सर्गाः तन्मात्रो भूतसर्गः, भूतसूक्ष्मसर्ग इत्यर्थः। द्रव्यशक्तिमान् महाभूतोत्पादकः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अहम् शब्द अहङ्कार का वाचक है। **यत्र इत्यादि** के द्वारा अहङ्कार का लक्षण कहा गया है। **द्रव्यादयः** शब्द से आगे कहे जाने वाली तीन सृष्टियाँ कही गयी हैं। महाभूतों की सूक्ष्मावस्था तन्मात्र शब्द से कही जाती है। तन्मात्रों से ही महाभूतों की सृष्टि होती है। **द्रव्य शक्तिमान** का अर्थ है महाभूतों को उत्पन्न करने वाला ॥१५॥

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः । वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥

अन्वयः— चतुर्थः ऐन्द्रियः सर्गः यस्तु ज्ञानक्रियामयः । वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥

अनुवाद— चौथी सृष्टि इन्द्रियों की है। यह ज्ञान और क्रियामय है। पाञ्चवीं सृष्टि सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न होने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं की है, मन भी उसी के अन्तर्गत है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानकर्मेन्द्रियात्मकश्चतुर्थः । पञ्चमो वैकारिकः इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा मनश्च ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

चौथी सृष्टि ज्ञानेन्द्रियात्मक और कर्मेन्द्रियात्मक हैं। सात्त्विक अहङ्कार जन्य इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं और मन की सृष्टि है। मन की सृष्टि भी पाञ्चवीं सृष्टि के अन्तर्गत ही है ॥१६॥

षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो । षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥१७॥

अन्वयः— प्रभो षष्ठः तु तामसः सर्गः यस्तु अबुद्धिकृत इमे षट प्राकृताः सर्गाः वैकृतान् अपि मे शृणु ॥१७॥

अनुवाद— छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व हैं, तम, मोह, महाहोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। ये छह प्राकृत सृष्टियाँ हैं अब आप वैकृत सृष्टियों को सुनें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठस्तु तमसः पञ्चपर्वाऽविद्यायाः । अबुद्धिर्जीवानामावरणं विक्षेपश्च तां करोतीत्यबुद्धिकृत्तस्य । मत्तः शृणु ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व है, तम, मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र। यह जीवों का आवरण और विक्षेप करती है अतएव यह अबुद्धिकृत है। अबुद्धिकृतः षष्ठी का रूप है। अब आप अविकृत की सृष्टि मुझसे सुनें ॥१७॥

रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः । सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥१८॥

अन्वयः— रजोभाजः भगवतः हरिमेधसः इयं लीला सप्तमः मुख्यसर्गः तु तस्थुषां यः षड्विधः ॥१८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपना चिन्तन करने वालों के दुःखों को हर लेते हैं अतएव वे हरिमेधस शब्द वाच्य हैं। यह सारी लीला उन श्रीहरि की ही है। वे ही रजोगुण को अपनाकर जगत् की रचना करते हैं। सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि छह प्रकार के स्थावर वृक्षों की है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अनुद्वेगेन श्रोतव्यतामाह । यद्विषया मेधा संसारं हरति तस्य हरेर्लीला । यद्वा इयमिति । तमआदिसर्गरूपा । रजोभाज इति ब्रह्मरूपस्येत्यर्थः । अस्मिन्पक्षे अबुद्धिकृत इति प्रथमान्तम् । अनवधानकृत इत्यर्थः । मुखमिव प्रथमं कृतो मुख्यसर्गः। तस्थुषां स्थावराणाम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सावधान मन से इसको सुनना चाहिये। इस बात को बतलाते हुए कहते हैं। जिन श्रीभगवान् का चिन्तन संसार के बन्धन को विनष्ट कर देता है। उन्हीं श्रीहरि की यह लीला है। अथवा **इयम्** पद से तम आदि की सृष्टि कही गयी है। रजोगुण को स्वीकार करके भगवान् ब्रह्माजी का रूप धारण कर लेते हैं। इस तरह का अर्थ करने पर अबुद्धिकृतः पद को प्रथमान्त मानना होगा। अर्थात् अनवधान जन्य है। सातवीं मुख्यसृष्टि छह प्रकार के स्थावरों की है ॥१८॥

वनस्पत्यौषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥१९॥

अन्वयः— वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसः तमः प्रायाः अन्तः स्पर्शा विशेषिणाः ॥१९॥

अनुवाद— वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ये छह प्रकार के स्थावर है। इनका संचार नीचे से ऊपर की ओर होता है। इनमें ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती है, ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं। इनमें से किसी में भी कोई विशेष गुण नहीं होता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

षड्विधत्वमेवाह। ये पुष्पं बिना फलन्ति ते वनस्पतयः । ओषधयः फलपक्वान्ताः । लता आरोहणापेक्षाः । त्वक्सारा वेण्वादयः । लता एव काठिन्येनारोहणानपेक्षा वीरुधः । ये पुष्पैः फलन्ति ते द्रुमाः । तेषां साधारणं लक्षणमाह ऊर्ध्वं स्रोतः आहारसंचारे येषाम् । तमःप्राया अव्यक्तचैतन्याः । अन्तःस्पर्शाः स्पर्शमेव जानन्ति नान्यत् । तदप्यन्तरेव न बहिः । विशेषिणोऽव्यवस्थितपरिणामाद्यनेकभेदवन्तः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में स्थावरों के छह भेदों को बतलाया गया है। जो पुष्प दिए बिना ही फल जाते हैं वे स्थावर वनस्पति कहलाते हैं। जो फल के पकने पर विनष्ट हो जाते हैं ऐसे स्थावर ओषधि कहलाते हैं। जो किसी के सहारे से ऊपर की ओर चढते हैं उनको लता कहते हैं। जिनके छिलके में ही बल होता है ऐसे बांस आदि त्वक्सार हैं। जो लताएँ कठिन पदार्थ के बिना ही ऊपर चढ जाती हैं वे वीरुध हैं और जो स्थावर पुष्प देकर फल देते हैं वे द्रुम कहलाते हैं। स्थावरों का साधारण लक्षण है कि उनके आहार का संचार ऊपर की ओर होता है। उनका ज्ञान अनुद्भूत होता है। वे केवल स्पर्श का ही अनुभव करते हैं और किसी दूसरी बात को नहीं जानते। वह भी भीतर ही अनुभव करते हैं बाहर नहीं। उनके परिणाम तथा पुष्प आदि अनेक प्रकार के होते हैं ॥१९॥

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः । अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥२०॥

अन्वयः— तिरश्चामष्टमः सर्गः सः अष्टाविंशविधः मतः अविदः भूरितमसः घ्राणज्ञाः हृद्यवेदिनः ॥२०॥

अनुवाद— आठवीं सृष्टि पशु-पक्षियों की है, उसके अठाइस भेद कहे गये हैं । इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता है । तमोगुण की अधिकता के कारण वे खाना-पीना सोना आदि ही जानते हैं । सूंघने मात्र से ही उनको वस्तुओं का ज्ञान होता है । उनके हृदय में विचार शक्ति नहीं होती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तिर्यक्स्रोतसां सर्गमाह–तिरश्चामिति । स चाष्टाविंशतिभेदः । तिरश्चां लक्षणम् । अविदः श्वस्तनादिज्ञानशून्याः । भूरितमसः आहारादिज्ञानमात्रनिष्ठाः । घ्राणेनैवेष्टमर्थं जानन्ति । हृदि अवेदिनो दीर्घानुसंधानशून्याः । तथा च श्रुतिः '**अथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानं न विज्ञातं वदन्ति न विज्ञातं पश्यन्ति न विदुः श्वस्तनं न लोकालोकौ** इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पशुपक्षियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं । इस सृष्टि के अठाइस भेद हैं । पशु-पक्षियों का यही लक्षण है कि उनको आज और काल का ज्ञान नहीं होता है । तमोगुण की अधिकता होने के कारण वे केवल अपने आहार को जानते हैं । वे सूंघकर ही जान लेते हैं कि यह प्रियवस्तु है यह अप्रिय वस्तु है । उनको दीर्घ अनुसन्धान नहीं होता है । श्रुति भी कहती है— **अथेतरेषाम्० इत्यादि** मनुष्यों से भिन्न जो पशु हैं उनको अपने भूख प्यास का ही ज्ञान होता है । वे किसी को जानकर उससे बातें नहीं करते हैं और न तो किसी परिचित को देखते हैं । उनको न तो आज और कल का ज्ञान होता है और न तो उन्हें प्रकाश और अन्धकार का ज्ञान होता है ॥२०॥

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो रुरुः । द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥

अन्वयः— हे सत्तम ! गौः, अजः, महिषः, कृष्णः, सूकरः, गवयः, रुरुः, अविः, उष्ट्रः च इमे पशवः द्विशफाः ॥२१॥

अनुवाद— हे साधु श्रेष्ठ ! गौ, बकरा, भैंसा, कालामृग, सूकर, नीलगाय, रुरुमृग, भेंड़ तथा ऊँट ये सभी पशु दो खुरों वाले हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशतिभेदानेवाह । गवादय उष्ट्रान्ता द्विशफा द्विखुरा नव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

पशुओं के अट्ठाइस भेदों को बतलाते हैं । गौ से लेकर ऊँट पर्यन्त पशु दो खुरों वाले हैं इनकी संख्या नव है ॥२१॥

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा । एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥२२॥

अन्वयः— खरः अश्वः अश्वतरः, गौरः शरभः तथा चमरी हे क्षतः एते एकशफाः पञ्चनखान् पशून् शृणु ॥२२॥

अनुवाद— गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग शरभ तथा चमरी ये सभी पशु एक खुर वाले हैं । अब आप पाँच नख वाले पशुओं को सुनें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

खरादय एकशफाः षट् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गधे आदि छह पशु एक खुर वाले हैं । अब पाँच नख वाले पशुओं को बतलाया जा रहा है ॥२२॥

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ । सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥२३॥

अन्वयः— श्वा, शृगालः, वृकः व्याघ्रः, मार्जारः, शशशल्लकौ, सिंहः, कपिः गजः कूर्मः गोधा मकरादयः च ॥२३॥

अनुवाद— कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, विडाल, खरगोश, साहिल, सिंह, बन्दर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि ये सभी पाँच नखों वाले पशु हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

श्वादयो गोधान्ताः पञ्चनखा द्वादश । एवमेते भूचराः सप्तविंशतिः । मकरादयो जलचराः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वर्णित कुत्ते से लेकर गोह पर्यन्त बारह पशु पाँच नख वाले हैं । इसतरह पृथिवी पर चलने वाले सत्ताइस पशु गिनाये गये हैं । मगर इत्यादि जल में रहने वाले हैं ॥२३॥

कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः । हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

अन्वयः— कङ्क-गृध-वट-श्येन-भास-भल्लूक-वर्हिणः हंस-सारस-चक्राह्व-काकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

अनुवाद— कङ्क (बगुला) गृध्र, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू ये आकाश में उड़ने वाले जीव पक्षी हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कङ्कादयश्च खगा अभूचरत्वेनैकीकृत्या गृहीताः तदेवमष्टाविंशतिभेदा भवन्ति । तेषु कृष्णरुरुगौरा मृगविशेषाः । अन्येषामपि तिर्यक्प्राणिनां यथायथमेतेष्वेवान्तर्भावः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

कङ्क (बगुला) आदि पक्षी है । ये पृथिवी पर रहने वाले नहीं है । अतएव इन सबों को एक ही में गिना गया है । इस तरह से पशु-पक्षियों के अठाइस भेद हो गये । दूसरे भी तिर्यक् प्राणियों का यथायोग्य इनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ॥२४॥

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् । रजोधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अन्वयः— क्षत्तः नृणाम् अर्वाक्सोतः तु नवमः एकविधः रजोधिकाः कर्मपराः दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! जिनके आहार का प्रचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, उन मनुष्यों की सृष्टि एक प्रकार की होती है । उनमें रजोगुण की अधिकता होती है, वे कर्मपरायण होते हैं । तथा दुख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अध आहारसंचारो यस्य सोऽर्वाक्स्रोताः । ह्रस्वत्वमार्षम् । नृणां सर्गो नृणां लक्षणम् । रजोऽधिकं येषु ते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिनके आहार का संचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, वे अर्वाक्स्रोत मनुष्य हैं । अर्वाक्स्रोत यह आर्ष प्रयोग है अन्यथा अर्वाक् स्रोता रूप होना चाहिए । यह मनुष्यों की सृष्टि नवीं सृष्टि है । मनुष्यों का लक्षण यह है कि उनमें रजोगुण की अधिकता होती है । वे कर्मपरायण और दुःख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम । वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥

अन्वयः— हे सत्तम ! एते त्रय एव वैकृताः, देवसर्गं च, यः वैकारिकः प्रोक्तः कौमारस्तु उभयात्मकः ॥२६॥

अनुवाद— हे साधुवर्य विदुरजी स्थावर, पशुपक्षी और मनुष्य और देवसर्ग ये वैकृत सर्ग है । महतत्त्व आदि को प्राकृत सर्ग कहा जा चुका है । कौमारसर्ग यह प्राकृत एवं वैकृत दोनों प्रकार का है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एते त्रयो वैकृता एव न कौमारवदुभयात्मकाः । देवसर्गश्च वैकृत इत्यनुषङ्गः । वैकारिकस्तु देवसर्गः प्राकृतेषु पूर्वमेव प्रोक्तः । अयं तु ततो न्यूनत्वाद्वैकृतो देवसर्गत्वात्तदन्तर्भूतश्च । सनत्कुमारादीनां सर्गस्तु प्राकृतो वैकृतश्च देवत्वेन मनुष्यत्वेन च सृज्य इत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

स्थावर, तिर्यक् तथा मनुष्यों की सृष्टि ये तीनों सृष्टियाँ, वैकृत सृष्टि हैं देवों की सृष्टि भी वैकृत ही है । सात्त्विक अहङ्कार जन्य देवों की सृष्टि को पहले ही प्राकृत सृष्टियों में कहा गया है । यह मनुष्यों की सृष्टि देव सृष्टि से न्यून होने के कारण वैकृत कही गयी है । देवसर्ग होने के कारण उसके अन्तर्गत है । सनत्कुमार आदि की सृष्टि को प्राकृत एवं वैकृत दोनों इसलिए कहा गया है कि उनकी सृष्टि देव और मनुष्य रूप में होती है ॥२६॥

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः । गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः । दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥

अन्वयः— हे विदुर ! देवसर्गः च अष्टविधः, विबुधा, पितरः, असुराः गन्धर्वाप्सरसः, सिद्धाः यक्षरक्षांसि चारणाः। भूतप्रेत पिशाचाः च विद्याध्राः किन्नरादयः, एतेदश सर्गाः विश्वसृक् कृता ते आख्याताः ॥२७-२८॥

अनुवाद— देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, चारण, विद्याधर, भूत प्रेत, पिशाच और किन्नर इत्यादि के भेद से देवताओं की सृष्टि आठ प्रकार की है । हे विदुरजी ! इस तरह से ब्रह्माजी द्वारा की गयी दस प्रकार की सृष्टियाँ हैं । यह मैंने आपको बतला दिया ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

वैकृतश्च देवसर्गोऽष्टविधः । तत्र विबुधादयस्त्रयो भेदाः । गन्धर्वाप्सरस एकः । यक्षरक्षांस्येकः । भूतप्रेतपिशाचा एकः। सिद्धचारणविद्याधरा एकः । किन्नरादय एकः । आदिशब्दत्किंपुरुषाश्वमुखादयः । एतद्विंशेऽध्याये स्पष्टं भविष्यति ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

वैकृत देवसर्ग आठ प्रकार का है विबुध, पितर और असुर ये तीन उनके विभाग हुए । गन्धर्वाप्सरों का चौथा विभाग है । यक्षों एवं राक्षसों का पाँचवाँ विभाग है, भूतप्रेत तथा पिशाचों का छठा भेद है, सिद्धों चारणों एवं विद्याधरों को सातवाँ भेद हैं और किन्नरों आदि का आठावाँ भेद है । किन्नरादि के आदि शब्द से किंपुरुष अश्वमुख आदि सूचित हैं । बीसवें अध्याय में ये सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी ॥२७-२८॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च । एवं रजःप्लुतः स्त्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥
सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥

अन्वयः— अतः परं वंशान् मन्वतराणि च प्रवक्ष्यामि । रजः प्लुतः स्त्रष्टा अमोघ सङ्कल्पः हरिः कल्पदिषु आत्मभूः आत्मन आत्मैव सृजति ॥२९॥

अनुवाद— इसके पश्चात् मैं वंशों तथा मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा इस तरह रजोगुण प्रधान सत्य सङ्कल्प श्रीहरि ही कल्पों के प्रारम्भ में ब्रह्मा बनकर जगत् के रूप में अपनी ही रचना करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥२९॥

**गुणव्यत्यय एतस्मिन्मायावित्वादधीशितुः। न पौर्वापर्यमिच्छन्ति नद्यां भ्राम्यद्भ्रमेरिव ॥३०॥
देवासुरादयः क्षत्तः कल्पेऽस्मिन्ये च कीर्तिताः। त एव नामरूपाभ्यामासन्मन्वन्तरान्तरे ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— हे क्षत्तः एवम् अधीशितुः मायावित्वात् एतस्मिन् गुणव्यत्यये, नद्यां भ्रमेः, इव पौर्वापर्यं न इच्छन्ति । अस्मिन् कल्पे ये च देवासुरादयः कीर्तिताः ते एव मन्वन्तरान्तरे नामरूपाभ्याम् आसन् ॥३०-३१॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! इस तरह से परमात्मा के माया का स्वामी होने के कारण गुणों के परिणाम में कोई भी पौर्वापर्य भाव उसी तरह से नहीं होता है जिस तरह नदी में प्रकट होने वाले चकोह में कोई भी पौर्वापर्य भाव नहीं होता है । इस कल्प में जो देवता तथा असुर इत्यादि कहे गये हैं वे ही दूसरे भी मन्वन्वतरों में उन्हीं नामों और रूपों से युक्त थे ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथं तर्हि प्रथमं सृष्टिः प्रलयो वा, तत्राह-गुणेति । गुणव्यत्यये सर्गे भ्राम्यन्भ्रमणशीलो भ्रमिरविशेषाद्भ्राम्यद्भ्रमिस्तस्य नद्यां भ्रमतो यथा नादिर्नान्तस्तथा सृष्टिसंहारयोरित्यर्थः । संसारस्यानादित्वमेकरूपत्वं चाह-देवासुरादय इति । त एवेति । तन्नामानस्तद्रूपाश्चेत्यर्थः ॥३०-३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न हाता है कि तो फिर प्रथम सृष्टि अथवा प्रथम प्रलय कैसे कहा जाता है ? तो उसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि **गुणव्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । गुणो के परिणाम स्वरूप सृष्टि के होने में कोई भी आदि और अन्त उसी प्रकार नहीं होता है जिस तरह नदियों में होने वाले चकोहों में कोई भी प्रथम अथवा अन्तिम नहीं होता हैं संसार अनादि एवं एकरूप ही रहता है । इस बात को बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने **देवासुरादयः इत्यादि** श्लोक को कहा है । प्रत्येक कल्पों में देवताओं और असुरों के वे ही नाम और वे ही रूप रहते हैं । वे सदा एक समान ही होते हैं ॥३०-३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भार्वार्थदीपिकाटीका के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मन्वन्तर आदि कालों का विभाग

मैत्रेय उवाच

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा । परमाणु स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥

अन्वयः— सद्विशेषाणाम् चरमः, सदा अनेकः असंयुतः सः परमाणुः विज्ञेयः यतः नृणाम् ऐक्यभ्रमः भवति ॥१॥

अनुवाद— विदुरजी ! पृथिवी आदि का जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है जिसका कोई भी विभाग नहीं हो सकता है तथा जो कार्यरूप को नहीं प्राप्त हुआ है तथा जिसका दूसरे परमाणुओं से संयोग भी नहीं हुआ है उसे परमाणु जानना चाहिए । अनेक परमाणुओं के मिलने से ही मनुष्यों को भ्रम के कारण उनमें एकत्व का भ्रम होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तत एकादशे कालः परमाण्वादिलक्षणैः । युगमन्वन्तरादिभ्यः कल्पमानादि वर्ण्यते ।।१।। तदेवं सामान्यतः कालस्योपलक्षणभूतं गुणव्यतिकरं दशविधं निरूप्येदानीं तस्यैव विशेषं निरूपयितुं तत्परिच्छेद्यं वस्तु लक्षयति द्वाभ्याम् सतः कार्यस्य विशेषाणामंशानां यश्चरमोऽन्त्यो यस्यांशो नास्ति । अनेकः कार्यावस्थामप्राप्तः । असंयुतः समुदायावस्थां चाप्राप्तः। अतएव सदा कार्यसमुदायावथयोरपगमेऽप्यस्ति स परमाणुर्विज्ञेयः । किं तत्र प्रमाणमत आह । यतो येभ्यः समुदितेभ्यो नृणां व्यवहर्तॄणामैक्यभ्रमोऽवयविबुद्धिः । तथा च पञ्चमेऽवयविनिराकरणे वक्ष्यति, येषां समूहेन कृतो विशेष इति । कार्यानुपपत्त्या कल्प्यत इति भावः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् ग्यारहवें अध्याय में परमाणु आदि लक्षणों से युक्त काल के युग, मन्वन्तर आदि तथा कल्प आदि के परिमाणों का वर्णन किया जा रहा है ।।१।। इस तरह काल के उपलक्षण स्वरूप दस प्रकार की सृष्टियों का निरूपण करके उसके भेदों का निरूपण करने के लिए दो श्लोकों से उसके परिचछेद्य वस्तु का लक्षण बतलाते हैं । **सतः कार्यस्य० इत्यादि** कार्य के अंशों का जो सबसे अन्तिम भाग, जिसका कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता है, उसको परमाणु कहते हैं । वह कार्यावस्था और समुदायावस्था को अप्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्यावस्था और समुदायावस्था के विनष्ट हो जाने पर भी जो बना रहता है वही परमाणु है। यदि कोई कहे कि इसमें क्या प्रमाण है ? तो उसके उत्तर में कहते हैं, क्योंकि उन परमाणुओं के समुदित हो जाने पर मनुष्यों को उनमें अवयवी का भ्रम होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में अवयवी के निराकरण के समय **येषां समूहेन कृतो विशेषः** अर्थात् जिन परमाणुओं के समूह के कारण ही अवयवी की प्रतीति होती है । अर्थात् कार्य के नहीं होने के कारण उनमें अवयवित्व की कल्पना की जाती है ।।१।।

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् । कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ।।२।।

अन्वयः— स्वरूपावस्थितस्य सत एव पदार्थस्य यत् कैवल्यं निरन्तरः विशेषः परममहान् ।।२।।

अनुवाद— परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है अपने सामान्य स्वरूप में स्थित उस पृथिवी आदि कार्यों की एकता का नाम परम महान् है । इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्था भेदों की स्फूर्ति होती है और न तो काल भेद की प्रतीति होती है । उसमें घट पट आदि वस्तुओं की भी कल्पना नहीं होती है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सूक्ष्ममुक्त्वा स्थूलमाह-सत एवेति । यस्य चरमोंऽशः परमाणुस्तस्यैव सतः कार्यमात्रस्य स्वरूपावस्थितस्य परिणामान्तरमप्राप्तस्य यत्कैवल्यमैक्यं स परममहान् । पुंस्त्वं तु परमाणुप्रतियोगित्वात् । ननु नानाविशेषवान् परस्परं भिन्नश्च सर्वः पदार्थः, कथमैक्यं तस्य तत्राह। अविशेषो विशेषविवक्षारहितो निरन्तरो भेदविवक्षारहितश्च सर्वोऽपि प्रपञ्चः परममहानित्यर्थः।।२।।

भाव प्रकाशिका

सूक्ष्म काल का वर्णन करके काल के स्थूल रूप को **सत एव इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । जिसका अन्तिम (सूक्ष्मतम) अंश परमाणु है इसी कार्यमात्र की जो स्वरूपतः स्थिति है, जिसका कोई भी दूसरा परिणाम नहीं हुआ है । उसका एकत्व ही परम महान् कहलाता है । परमाणु का प्रतियोगी होने के कारण परम महान् यह पुलिङ्ग प्रयोग हुआ है । **ननुनानाविशेषणवान इत्यादि** प्रश्न है कि जो परस्पर में एक दूसरे से भिन्न सभी पदार्थ अनेक भेदों से युक्त हैं । अतएव उनकी कैसे एकता हो सकती है ? तो उसका उत्तर है कि वह विशेष (भेद की विवक्षा रहित है) इस तरह से सम्पूर्ण प्रपञ्च (जगत्) परम महान् है ।।२।।

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम । संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥

अन्वयः— हे सत्तम एवं सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च कालोऽप्यनुमितः अव्यक्तो विभुः भगवान्संस्थान भुक्त्या व्यक्तभुक्।।३।।

अनुवाद— हे साधुवर्य ! जैसे सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ होते हैं उसी तरह सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था से युक्त काल का भी अनुमान किया जाता है । यह काल श्रीहरि की शक्ति स्वरूप है और परमाणु आदि सबों में व्यापक है । वह स्वयं अव्यक्त है किन्तु समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक होकर उन सबों को एक दूसरे से अलग करता है । यह उत्पत्ति इत्यादि में निपुण होने के कारण विभु हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यथा सूक्ष्मस्थूलश्चायं पदार्थः। एवं कालोऽप्यनुमितः । चकारान्मध्यमावस्था गृह्यते । संस्थानं परमाण्वाद्यवस्थानस्य भुक्तिर्व्याप्तिस्तया भगवानिति हरेः शक्तिः स्वतोऽव्यक्तो व्यक्तं भुङ्क्ते व्याप्नोति परिच्छिनत्तीति तथा । विभुरुत्पत्त्यादिषु दक्षः।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह पदार्थों के सूक्ष्म और स्थूल भेद होते हैं उसी तरह से काल का भी सूक्ष्म और स्थूल रूप से अनुमान होता है । चकार के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म इन दोनों के बीच की मध्यम अवस्था को सूचित किया गया है । यह काल श्रीभगवान् की शक्ति है तथा परमाणु आदि सभी पदार्थों में यह व्याप्त है । काल स्वयं तो अव्यक्त है किन्तु यह समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक रूप से विद्यमान है ॥३॥

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् । ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥

अन्वयः— यः परमाणुताम् भुंक्ते स वै कालः परमाणुः । यः तु ततोऽविशेषभुक् स कालः परमो महान् ।।४।।

अनुवाद— जो काल जगत् की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्यापक रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है तथा जो काल सृष्टि से लेकर उसके प्रलयकाल पर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं का भोग करता है वह परम महान् है।।४।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-स इत्यादिना । सतः प्रपञ्चस्य परमाणुतां परमाण्ववस्थां यो भुङ्क्ते स कालः परमाणुः । तस्यैवाविशेषं साकल्यं यो भुङ्क्ते स परम महान् । अयमर्थः-ग्रहर्क्षताराचक्रस्थ इत्यादिना यत्सूर्यपर्यटनं वक्ष्यते, तत्र सूर्यो यावता परमाणुदेशमतिक्रामति तावान्कालः परमाणुः, यावता च द्वादशराश्यात्मकं सर्वं भुवनकोशमतिक्रामति स परममहान् संवत्सरात्मकः कालः, तस्यैवावृत्त्या युगमन्वन्तरादिक्रमेण द्विपरार्धान्तत्वमिति । तथा च पञ्चमे सूर्यगत्यैव कालादिविभागं वक्ष्यति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सः कालः इत्यादि श्लोक के द्वारा काल की सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था का विस्तार से वर्णन किया गया है । जगत् की अत्यन्त सूक्ष्म परमण्वावस्था का भोग करने वाला काल परमाणु कहलाता है और जो सम्पूर्ण प्रपञ्च में व्यापक रहता है । उसका सृष्टिकाल से लेकर प्रलय काल पर्यन्त भोग करने वाला काल परम महान् है । **अयमर्थः इत्यादि-** आगे चलकर ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः इत्यादि श्लोक के द्वारा सूर्य का पर्यटन बतलाया जायेगा। जितने समय में सूर्य परमाणु देश को पार करते हैं वह काल परमाणु काल कहलाता है और जितने समय में द्वादशराशि स्वरूप सम्पूर्ण भुवन को पार कर जाते हैं वह संवत्सर स्वरूप काल है । उसी की आवृत्ति करने से युग, मन्वन्तर आदि के क्रम से द्विपरार्ध प्रर्यन्त का काल होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में सूर्य की गति से काल आदि विभाग का निरूपण करेंगे ॥४॥

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः । जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥५॥

अन्वयः— द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयः त्रसरेणु स्मृतः । जलाकिरश्म्यवगतः खमेव अनुपतन अगात् ॥५॥

अनुवाद— दो परमाणुओं का एक अणु होता है । तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु होता है । जो खिड़की के जलरंध्र से आती हुयी सूर्य की रोशनी में आकाश में उड़ते हुए दिखायी देता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं द्व्यणुकादिलक्षणपूर्वकं मध्यमकालावस्थां कथयति । द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयोऽणवस्त्रसरेणुः । स तु प्रत्यक्ष इत्याह-जालार्केति। गवाक्षप्रविष्टेष्वर्करश्मिष्ववगतः । कोऽसौ योऽतिलघुत्वेन खमेवानुपतन्नगाद्गतः । पाठान्तरे खमेवानुपतन्नवगतो नतु गां पृथ्वीम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अब द्वयणुक आदि के लक्षण पूर्वक काल की मध्यमावस्था का वर्णन करते हैं । दो परमाणुओं के मिलने से अणु (द्वयणुक) होता है । तीन अणुओं के मिलने से त्रसरेणु होता है । त्रसरेणु का प्रत्यक्ष होता है । इस बात को श्लोक के उत्तरार्द्ध द्वारा कहा गया है । गवाक्ष मार्ग से आयी हुयी सूर्य की किरणों के प्रकाश में त्रसरेणुओं का पता चलता है । वह अत्यन्त लघु होने के कारण आकाश में ही उड़ता हुआ प्रतीत होता है । अनुपतन इस पाठ के अनुसार अर्थ होगा कि त्रसरेणु आकाश में ही उड़ता हुआ ज्ञात होता है, पृथिवी पर नहीं ॥५॥

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः । शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥६॥

अन्वयः— यः कालः त्रसरेणु त्रिकं भुंक्ते सः त्रुटिः स्मृतः । शतभाग तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिः तु लवः स्मृतः ॥६॥

अनुवाद— सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं । उसके सौ गुना काल को वेध कहते हैं और तीन वेध को लव कहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

शतं भागाः त्रुटिरूपा यस्मिन्स वेधः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जो समय लगता है, उस काल को त्रुटि कहते हैं । त्रुटि के सौ गुना काल को वेध कहते है । और वेध के तीन गुना काल को लव कहते है ॥६॥

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः । क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

अन्वयः— त्रिलवः निमेषः ज्ञेयः ते त्रयः क्षण आम्नातः, पञ्च क्षणान् काष्ठां विदुः ताः दशपञ्च च लघु ॥७॥

अनुवाद— तीन लवों के काल को निमेष जानना चाहिए । तीन निमेषों का एक क्षण जानना चाहिए । पाच क्षणों के काल को काष्ठा कहा गया है । पन्द्रह काष्ठाओं के काल को लघु कहते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ते निमेषास्त्रयः क्षण इत्याम्नाताः । काष्ठाः पञ्चदश एकं लघु ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तीन लवों का एक निमेष जानना चाहिए, तीन निमेषों का एक क्षण होता है, पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है और पन्द्रह काष्ठाओं का एक लघु होता है ॥७॥

लघूनि वै समाम्नात दश पञ्च च नाडिका । ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्याम सप्त वा नृणाम् ॥८॥

अन्वयः— दश पञ्च लघूनि नाडिका समाम्नाता, ते द्वे मुहूर्तः नृणाम् षट् सप्तवा नाडिकाः प्रहरः याम वा ॥८॥

अनुवाद— पन्द्रह लघुओं की एक नाड़िका (दण्ड) कही गयी है । दो नाड़िकाओं का एक मुहूर्त होता है । छह या सात मुहूर्तों का एक प्रहर या याम होता है । मनुष्यों के दिन या रात्रि के चौथाई भाग को प्रहर कहते हैं॥८॥

भावार्थ दीपिका

नाडिकाः षट् सप्त वा प्रहरः । स एव यामो दिनस्य रात्रेश्च चतुर्थो भागः । ह्रासे षट् वृद्धौ सप्त । सन्ध्यांशमुहूर्तद्वयं विनेति ज्ञातव्यम् । तत्राप्यनियमार्थो वा शब्दः । प्रत्यहं तद्भेदानां गणयितुमशक्यत्वात् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

छह या सात नाडिकाओं का एक याम या प्रहर होता है । दिन या रात्रि के घटने पर छह नाडिकाओं का प्रहर होता है, तथा बढ़ने पर सात नाडिकाओं का प्रहर होता है । यह दिन या रात्रि का चतुर्थ भाग होता है । यह गणना दिन एवं रात्रि की दोनों संधियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर होती है । प्रहर छह नाडिकाओं का हो या सात नाडिकाओं का हो यह कोई नियम नहीं है, इस अर्थ को वा शब्द सूचित करता है । प्रतिदिन पल विपल इत्यादि के भेदों को गिनना अशक्य है ॥८॥

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥

अन्वयः— द्वादशार्धपलोन्मानं यावत्प्रस्थजलाप्लुतम् चतुरङ्गुलैः चतुर्भिः स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रम् ॥९॥

अनुवाद— छह पल ताम्बे का एक ऐसा बर्तन बनाये जिसमें एकप्रस्थ जल अँट सके और चार माशे सोने की चार अङ्गुल लम्बी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस वर्तन के पेंदे में छेद करके उसे जल में छोड़ दिया जाय जितने समय में एकप्रस्थ जल उसमें भर जाय और वह वर्तन पानी में डूब जाय उतने समय को एक नाडिका कहते हैं॥९॥

भावार्थ दीपिका

नाडिकाया उन्मानमाह । उन्मीयतेऽनेनेत्युन्मानं पात्रं षटपलताम्रविरचितम् । पञ्चगुञ्जो माषस्तैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुला-यामशलाकारूपेण रचितैः कृतमूलच्छिद्रं तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्लुतं निमग्नं भवति तावान्कालो नाडिका अत्र पलच्छिद्रयोराधिक्ये शीघ्रं निमज्जेदल्पत्वे च विलम्बेनेति पलशलाकयोर्नियमः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उन्मान पात्र को कहते हैं । छह पल ताम्बे से निर्मित हो वह पात्र । पाञ्च गुञ्जों का एक माष होता है । चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी शलाका से उस पात्र के पेंदी में छिद्र करे । उस छिद्र से जितने समय में उस पात्र में एक प्रस्थ जल प्रवेश कर जाय और उस जल से भरा हुआ पात्र जल में डूब जाय उस समय को नाडिका कहते हैं । यदि पल और शलाका का नियम नहीं किया जाय तो छिद्र के बड़ा हो जाने पर पात्र शीघ्र भर जायेगा । और छिद्र के छोटा होने पर पात्र देर से भरेगा । इसीलिए पल और शलाका का नियम किया गया है कि पात्र छह पल ही ताम्बे का हो और श्लाका चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी ही होनी चाहिए॥९॥

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे । पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥

अन्वयः— हे मानद । चत्वारः चत्वारः यामाः मर्त्यानाम् उभे अहनी पञ्चदशाहानि पक्षः शुक्लः कृष्ण; च ॥१०॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! चार-चार प्रहरों के मनुष्यों के दिन और रात होते हैं । पन्द्रह दिनों का पक्ष होता है । पक्ष दो होते हैं शुक्ल और कृष्ण ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अहनी अहोरात्रम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

दिन और रात दोनों ही चार-चार प्रहरों के होते हैं, पन्द्रह दिन और रात का एक पक्ष होता है ॥१०॥

तयोः समुच्चयो मासः पितृणां तदहर्निशम् । द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥११॥

अन्वयः— तयोः समुच्चयो मासः तत् पितृणाम् अहर्निशम् द्वौ तौ ऋतुः, षड्अयनं दिवि दक्षिणम् उत्तरं च ॥११॥

अनुवाद— दो पक्षों का एक मास होता है । मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन रात होता है। दो मासों का एक ऋतु होता है। छह मासों का एक अयन होता है और अयन दो होते हैं उत्तरायण और दक्षिणायन॥११॥

भावार्थ दीपिका

षण्मासा अयनम् । दिवीत्यस्योत्तरेणान्वयः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

छह मासों का एक अयन होता है। दिवि पद का अगले श्लोक के साथ अन्वय है ॥११॥

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥१२॥

अन्वयः— अयने च दिवि अहनी, वत्सरो द्वादशः स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुः निरूपितम् ॥१२॥

अनुवाद— दो अयनों का देवताओं का एक दिन और एक रात होता है । मनुष्य लोक में इसे बारह मास अथवा संवत्सर कहा जाता है । सौ संवत्सरों की मनुष्यों की परमायु बतलायी गयी है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

दिवीति देवानामहोरात्रे प्राहुः । द्वादश मासाः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

दोनों अयनों का देवताओं के दिन और रात होते है । देवताओं के एक दिन रात में मनुष्यों के बारह महीने होते हैं ॥१२॥

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् । संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥१३॥

अन्वयः— ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः अनिमिषः विभुः परमाण्वादिना संवत्सरावसानेन पर्येति ॥१३॥

अनुवाद— ग्रहों, नक्षत्रों और तारा समूह में ही विद्यमान कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त काल में द्वादशराशि रूप सम्पूर्ण भुवन कोश की परिक्रमा किया करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनेन क्रमेणासौ सूर्यो नित्यमायुः क्षपयतीत्याह । ग्रहाश्चन्द्रादयः, ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि, तारा अन्यानि नक्षत्राणि, तदुपलक्षितं यत्कालचक्रं तत्र स्थितोऽनिमिषः कालात्मा विभुरीश्वरः सूर्यो जगद्द्वादशराश्यात्मकं भुवनकोशं पर्येति पर्यटति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस क्रम से यह बतलाया गया कि सूर्य नित्य ही मनुष्यों की आयु के क्षीण करते हैं । चन्द्रमा आदि ग्रह अश्विनी आदि नक्षत्र, तथा दूसरे नक्षत्र इन सबों से उपलक्षित कालचक्र के भीतर रहने वाले कालस्वरूप सूर्य ही ग्रहादि के अधिष्ठाता हैं, और वे द्वादशात्मक भुवन कोश में पर्यटन करते रहते हैं ॥१३॥

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च । अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥

अन्वयः— विदुर ! संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरः, अनुवत्सरः वत्सरः च एवं प्रभाष्यते ॥१४॥

अनुवाद— हे विदुर ! सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र सम्बन्धी महीनों के भेद से यह वर्ष ही संवत्सर परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर के नाम से अभिहित किया जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

संवत्सरादिभेदश्च सौरबार्हस्पत्यसावनचान्द्रनाक्षत्रमासभेदेन द्रष्टव्यः । केचित्पुनरेवमाहुः । यद शुक्लपक्षप्रतिपदि संक्रान्तिर्भवति सौरचान्द्रमासयोर्युगपदुपक्रमो भवति च संवत्सरः । ततः सौरमानेन वर्षे षट् दिनानि वर्धन्ते चान्द्रमानेन वर्षे षट् दिनानि ह्रसन्तीति द्वादशदिनव्यवधानादुभयोरग्रपश्चाद्भावो भवति । एवं व्यवधानतारतम्येन पञ्चवर्षाणि गच्छन्ति । तन्मध्ये द्वौ मलमासौ भवतः । पुनः षष्ठः संवत्सरो भवति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

संवत्सर आदि के भेद सूर्य, बृहस्पति, सावन, चन्द्र और नक्षत्र सम्बन्धी मासों के भेद से वर्ष को ही कहा जाता है । **केचित् पुनराहुः इत्यादि** कुछ लोगों का कहना है कि जब शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों की एक समय संक्रान्ति होती है । उस समय से प्रारम्भ होने वाला वर्ष संवत्सर कहलाता है । उसके कारण सूर्य के मान से वर्ष भर में छह दिन बढ जाते हैं और चन्द्रमा सम्बन्धी मान से छह दिन घट जाते हैं। इस तरह से बारह दिन का व्यवधान होने के कारण पाञ्च वर्ष के बाद छठे वर्ष में पुनः संवत्सर होता है । इन छह वर्षों में दो पुरुषोत्तम मास होते हैं । व्यवधान की दृष्टि से जिसका व्यवहार होता है वह तीस दिनों का सावन मास होता है । बारह सावन मासों का एक इडावत्सर होता है । आमावस्या पर्यन्त होने वाला मास चान्द्र मास कहलाता है । बारह चान्द्र मासों का एक अनुवत्सर होता है ॥१४॥

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥

अन्वयः— यः भूतभेदः स्वशक्त्या कालख्यया सृज्यशक्तिम् उरुधा उच्छ्वसयन् पुंसः अभ्रमाय क्रतुभिः गुणमयं वितन्वन् दिवि धावति तस्मै वत्सरपञ्चकाय बलिं हरत ॥१५॥

अनुवाद— ये सूर्यदेव पञ्च भूतों में तेजः स्वरूप हैं अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा सृज्य कार्य पदार्थों की अङ्कुर उत्पन्न करने की शक्ति को अनेक प्रकार से कार्योन्मुख करते हैं । पुरुषों की मोह निवृत्ति के लिए उनकी आयु का क्षय करते हुए आकाश में विचरण करते हैं । ये ही सकाम पुरुषों को यज्ञादि कर्मों से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि फलों का विस्तार करते हैं, ऐसा पाँच प्रकार के वर्षों को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की तुम अनेक प्रकार के पूजोपहारों द्वारा पूजा करो ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतः कालात्मा नित्यमप्रमत्तैः पूजनीय इत्याह–य इति । सृज्यं कार्यमङ्कुरादि तद्विषयां बीजादीनां शक्तिं कालरूपया स्वशक्त्या बहुधोच्छ्वसयन्कार्याभिमुखीकुर्वन् दिव्यन्तरिक्षे धावति । कोऽसौ । भूतभेदो महाभूतविशेषस्तेजोमण्डलरूपी सूर्यः। किमर्थं धावति । पुरुषस्याभ्रमाय भ्रमो मोहस्तन्निवृत्तये । आयुरादिव्ययेन विषयासक्तिं निवर्तयन्नित्यर्थः । सकामानां तु गुणमयं स्वर्गादिफलं क्रतुभिर्विस्तारयन् । तस्मै संवत्सरपञ्चकप्रवर्तकाय पूजां कुरुत ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह कालस्वरूप भगवान् सूर्य की पूजा सदा सावधानी पूर्वक करनी चाहिए इस बात को **यः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । इस तरह के भगवान् सूर्य सृज्य जो अङ्कुर आदि हैं उनके बीज आदि की शक्ति

को अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार से कार्योन्मुख बनाते हुए आकाश मे विचरण करते है । अब प्रश्न है कि ये कौन हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे महाभूतों के तेजः स्वरूप भगवान सूर्य हैं । वे क्यों आकाश में विचरण करते हैं तो इसका उत्तर है कि पुरुषों के मोह को दूर करने के लिए । आयु आदि को क्षीण करके मनुष्यों की विषयो में होने वाली आसक्ति को दूर करने के लिए । वे सकाम पुरुषों को गुणमय स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल का विस्तार करते हुए विचरण करते हैं । इस तरह से पाञ्च प्रकार के संवत्सर को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की आप लोग पूजा करें ॥१५॥

विदुर उवाच

पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् । परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥१६॥

अन्वयः— इदम् पितृदेवमनुष्याणाम् परम आयुः स्मृतम् । परेषां कल्पाद् बहिः विदः ये स्युः तेषां गतिम् आचक्ष्व॥१६॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— यह तो आपने पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परम् आयु का निरूपण किया है, अब आप उन लोगों की आयु को बतलाएँ जो त्रिलोकी से बाहर है तथा कल्पों से भी बाहर ज्ञानी पुरुष हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इदं स्वस्वमानेन वर्षशतं गणितमायुर्मानम् । प्रत्यहं कल्प्यते सृज्यते इति कल्पस्त्रैलोक्यं तस्माद्बहिर्गताः । विदो ज्ञानिनः॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो बतलाया है कि अपने अपने प्रमाणानुसार सौ वर्षों की आयु पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परमायु होती है । जिसकी प्रतिदिन रचना ब्रह्माजी करते हैं यह तो उन त्रिलोकी के जीवों की बात हुयी । त्रिलोकी से बाहर तथा कल्प से भी बाहर रहने वाले जो ज्ञानी सनकादि महर्षि हैं उनकी आयु का आप निरूपण करें ॥१६॥

भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु । विश्वं विचक्षते धीरा योगाराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

अन्वयः— भगवान् ननु भगवतः कालस्य गतिं वेद । धीराः योगाराद्धेन चक्षुषा विश्वं विचक्षते ॥१७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप भगवान् काल की गति को भलीभांति जानते है । ज्ञानी पुरुष अपनी योग सिद्ध दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देख लेते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

योगराद्धेन योगसिद्धेन ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

योगराद्धेन पद का अर्थ योगसिद्ध अपनी दिव्य दृष्टि से ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

अन्वयः— कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुर्युगम् दिव्यैः द्वादशभिः वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चारो युग अपनी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश के साथ देवताओं के बारह हाजर वर्षों के होते हैं, यह कहा गया है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशभिर्वर्षसहस्रैरित्युत्तरश्लोकसमाथ्योज्ञातव्यम् । अवधीयत इत्यवधानं सन्ध्या चांशश्च तत्सहितम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ये चारो युग देवताओं के बारह हजार वर्ष पर्यन्त अपनी संध्या एवं संन्ध्यांश के साथ रहते हैं इस बात का अगले श्लोक के सामर्थ्य से ज्ञान होता है। **सावधानं** का विग्रह बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं— **अवधीयते इति अवधानम्** अर्थात् सन्ध्या और सन्ध्यांश तत्सहितम् अर्थात् संन्ध्या और सन्ध्यांश के साथ यह **सावधानम्** पद का अर्थ है ॥१८॥

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् । संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

अन्वयः— कृतादिषु यथाक्रमम् चत्वारि, त्रीणि, द्वे, एकंच सहस्राणि संख्यातानि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

अनुवाद— सत्ययुग आदि चारो युगों में क्रमशः चार हजार, तीन हजार, दो हजार औरएक हजार दिव्य वर्ष होते हैं। और इन युगों की सन्ध्या और संध्यांश कृतयुग आठ सौ वर्ष, त्रेतायुग की सन्ध्या एवं संध्यांश छह सौ वर्ष, द्वापर युग की सुन्ध्या एवं संध्यांश चार सौ वर्षों की और कलियुग की संध्या एवं संध्यांश में दो सौ वर्षों की होते हैं। इस तरह चार युग अपनी संध्या संध्यांश के साथ बारह हजार दिव्य वर्षों पर्यन्त में होते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कृतयुगे चत्वारि सहस्राणि सन्ध्यासन्ध्यांशयोश्चत्वारिचत्वारीत्यष्टौ शतानि च । एवं त्रेतादिष्वपि योज्यम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग में चार हाजर दिव्य वर्ष होते हैं और उसकी संध्या चार सौ वर्ष की और संध्यांश चार सौ वर्ष का होता है। इसी तरह से त्रेता आदि युगों में उन युगों की संध्या और संध्यांश आदि को भी जोड़ना चाहिए॥१९॥

सन्ध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः । तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥

अन्वयः— संध्यांशयोः शतसंख्ययोः अन्तरेण यः कालः तमेव तज्ज्ञाः युगं आहुः यत्र धर्मोविधीयते ॥२०॥

अनुवाद— चूकि आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश होता है, इन दोनों की गणना सैकड़ों में बतलायी गयी है। इन दोनों के बीच का जो काल होता है उसी को कालवेत्ताओं ने युग कहा है। प्रत्येक युग मे एक-एक धर्म का विधान होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

युगस्यादौ सन्ध्या अन्तेंऽशः सन्ध्यांशः । उक्तानि शतानि संख्या ययोस्तयोरन्तरेण मध्ये युगम् । तस्य विशेषमाह- यत्रेति । गवालम्भादिधर्मविशेषो यत्र विधीयत इत्यर्थः । साधारणधर्मस्तु सन्ध्यांशयोरप्यस्त्येव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

युग के आदि में संध्या होती और अन्त में संध्याशं अंश होता है। दोनों मिलकर संध्यांश होते हैं। जिन संध्या और अंशों की संख्या सैकड़ों में बतलायी गयी है उन दोनों के बीच के काल को युग कहते हैं। उन युगों में ही गावालम्भन आदि कर्म किए जाते हैं। साधारण धर्म तो सन्ध्या और संध्याशं का भी होता ही है ॥२०॥

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते । स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

अन्वयः— कृते मनुजान् धर्मः चतुष्पात् अनुवर्तते स एव अन्येषु वर्धता अधर्मेण पादेन व्येति ॥२१॥

अनुवाद— सत्ययुग के मनुष्यों में धर्म चार पैरों वाला होकर रहता है। दूसरे युगों में अधर्म के बढने के कारण उस धर्म के क्रमशः एक-एक चरण क्षीण होते जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चतुष्पात् संपूर्णः । त्रेतादिषु पादेन पादेन व्येति ह्रसति । पादेन पादेन वर्धमानेनाधर्मेण हेतुना । एतश्च स्वरूपकथनमात्रं वैराग्यार्थं न तु धर्मसंकोचनार्थम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

कृतयुग में धर्म सम्पूर्ण रहता है । त्रेता आदि युगों में धर्म का एक-एक चरण क्षीण होता जाता है । उसका कारण अधर्म की वृद्धि होती है । यह युगों का स्वरूप बतलाने के लिए कहा गया है जिससे कि मनुष्यों में संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाय । इस वर्णन का उद्देश्य धर्म का संकोच करना नहीं है ।।२१।।

त्रिलोक्या युगसाहस्त्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् । तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ।।२२।।

अन्वयः— हे तात ! त्रिलोक्याः बहिः युगसाहस्रं ब्रह्मणो दिनम् । तावती एव निशा यत् विश्वसृक् निमीलति ।।२२।।

अनुवाद— हे विदुरजी ! त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त त्रिलोकी के एक हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात भी होती है । इस रात में ब्रह्मा जी शयन करते हैं।।२२।।

भावार्थ दीपिका

त्रिलोक्या बहिर्महर्लोकप्रभृति ब्रह्मलोकमभिव्याप्य चतुर्युगसहस्रमेकं दिनम् । यत् यस्यां विश्वसृक् ब्रह्मा निमीलति स्वपिति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर ब्रह्माजी के लोक पर्यन्त चार लोक है । इन लोकों में एक हजार चतुर्युग का एक दिन होता है । यही ब्रह्माजी का दिन होता है और ब्रह्माजी की इतनी बड़ी रात भी होती है । रात में ब्रह्माजी शयन करते हैं ।।२२।।

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते । यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ।।२३।।

अन्वयः— निशावसाने आरब्धः लोककल्पः अनुवर्तते । भगवतः यावद् दिनम् चतुर्दश मनून् भुञ्जन् ।।२३।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की रात्रि के बीत जाने पर इस लोक का कल्प प्रारम्भ होता है । जब तक ब्रह्माजी का दिन रहता है तब तक उसका क्रम चलता रहता है । उस एक कल्प में चौदह मनु हो जाते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र दिनस्थितिमाह-निशावसान इत्यादिसार्धैश्चतुर्भिः । चतुर्दशमनून्भुञ्जन्पालयन् । व्याप्नुवन्नित्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उसमें भी दिन की स्थिति को मैत्रेय जी साढे चार श्लोकों में बतलाते हैं । ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु भोग करते हैं । भुञ्जन् को अर्थ पालन करते हैं भी होगा । अर्थात् चौदह मनुओं के भोग काल पर्यन्त ब्रह्माजी का एक दिन होता है ।।२३।।

स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् । मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥
भवन्ति चैव युगपत् सुरेशाश्चानु ये च तान् ।।२४।।

अन्वयः— मनुःहि स्वं एवं कालं एक सप्ततिम् साधिकां भुङ्क्ते । मन्वन्तरेषु मनवः तद्वंश्याः, ऋषयः सुराः युगपत् भवन्ति ये च सुरेशाशाश्च अनु तान् ।।२४।।

अनुवाद— प्रत्येक मनु इकहतर चतुर्युगों से कुछ अधिक चतुर्युगों का भोग करते हैं । प्रत्येक मन्वन्तर में

भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा लोग सप्तर्षिगण देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्व आदि भी साथ ही साथ अपना अधिकार भोगते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

किंचिदधिकां युगानामेकसप्ततिम् । मनुवंश्याः पृथ्वीपालकाः क्रमेण भवन्ति । सप्तर्षिप्रभृतयस्तु युगपत्समकालमेव भवन्ति । सुरेशा इन्द्राः ।ताननुवर्तन्ते ये गन्धर्वादयस्तेऽपि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक मनु एकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल तक अपने अधिकार का भोग करते हैं । इन मनुओं के काल में मनुवंशीय राजा लोग होते हैं । वे सब क्रमशः होते हैं । किन्तु सप्तर्षि आदि तो एक ही समय में होते हैं । सुरेशा शब्द से इन्द्रों को कहा गया है । और इन्द्र आदि के अनुयायी जो गन्धर्व आदि होते हैं वे भी समकाल में ही उत्पन्न होते हैं ॥२४॥

एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः । तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥२५॥

अन्वयः— एषः त्रैलोक्यवर्तनः ब्राह्मः दैनन्दिनः सर्गः यत्र तिर्यङ्नृपितृदेवानां कर्मभिः संभवः ॥२५॥

अनुवाद— यह ब्रह्माजी की प्रतिदिन की सृष्टि है । इसमें त्रैलोक्य की रचना होती है । इसमें ही अपने-अपने कर्मानुसार पशु, पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

त्रैलोक्यं वर्तयतीति तथा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की इस दैनन्दिनी सृष्टि में ही त्रैलोक्य की रचना होती है । इसी में अपने-अपने कर्मों के अनुसार पशु पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ॥२५॥

मन्वन्तरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः । मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥२६॥

अन्वयः— मन्वन्तरेषु भगवान् सत्त्वं बिभ्रत् मन्वादिभिः स्वमूर्तिभिः उदितपौरुषः सन् विश्वमवति ॥२६॥

अनुवाद— इन मन्वन्तरों में भगवान् सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अपनी मनु आदि मूर्तियों द्वारा अपने पौरुष को प्रकट करते हुए सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वमूर्तिभिर्मन्वन्तरावतारैर्मन्वादिभिर्द्वारभूतैराविष्कृतपुरुषाकारः सन्विश्वं रक्षति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मन्वन्तरों में अवतीर्ण होने वाले मनु आदि मूर्तियों के माध्यम से अपना पुरुषाकार प्रकट करके श्रीभगवान् जगत् की रक्षा करते हैं ॥२६॥

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः । कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२७॥

अन्वयः— कालेनानुगताशेष दिनात्यये तमोमात्राम् उपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः तुष्णीं अस्ते ॥२७॥

अनुवाद— कालक्रम से जब ब्रह्माजी का पूरा दिन बीत जाता है उस समय वे तमोगुण की मात्रा को स्वीकार करके सृष्टि रचना रूप अपने पौरुष को स्थगित करके निश्चेष्ट रूप से स्थित हो जाते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

रात्रिगतां स्थितिमाह पञ्चभिः। तमसो मात्रां लेशम्। प्रतिसंरुद्धः प्रत्याहृतो विक्रमो येन। अनुगतमनुप्रविष्टमशेषं यस्मिन्।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की रात्रि में होने वाली स्थिति को मैत्रेयजी ने पाँच श्लोकों में वर्णित किया है। रात्रि के आ जाने और दिन के बीत जाने पर ब्रह्माजी तमोगुण की मात्रा को स्वीकार कर लेते हैं। और अपनी सृष्टि की रचना रूप प्रयास को स्थगित कर देते हैं। उस समय सम्पूर्ण जीव समुदाय काल में लीन हो जाता है ।।२७।।

तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः । निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ।।२८।।

अन्वयः— निशायामनुवृत्तायाम् भूरादयः त्रयः लोकाः निर्मुक्तशशिभास्करम् तमेवानु अपिधीयन्ते ।।२८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की रात्रि के आ जाने पर भूलोक आदि तीनों लोक सूर्य तथा चन्द्रमा से रहित होकर ब्रह्माजी में ही लीन हो जाते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तदेव स्पष्टयति-तमेवेति। अन्वपिधीयन्त इति कर्मकर्तरिप्रयोगः। तिरोहिता भवन्तीत्यर्थः। कथम् निर्मुक्तो रहितः शशी भास्करश्च यथा भवति तथा ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

तमेव इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी की रात्रिकाल की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। **अन्वपिधीयन्ते** यह कर्मकर्ता में प्रयोग है। अन्वपिधीयन्ते का अर्थ है कि लीन हो जाते हैं। अर्थात् उस समय त्रैलोक्य में सूर्य एवं चन्द्रमा नहीं रहते हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य ब्रह्माजी में ही लीन हो जाता है ।।२८।।

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना । यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ।।२९।।

अन्वयः— सङ्कर्षणाग्निना शक्त्या त्रिलोक्यां दह्यमानायां उष्मणा अर्दिताभृग्वादयः महर्लोकाज्जनलोकं यान्ति ।।२९।।

अनुवाद— उस समय शेषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि रूपी शक्ति से त्रैलोक्य जलने लगता है उस समय उसकी गर्मी से व्याकुल होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

भगवच्छक्तिरूपो यः संङ्कर्षणमुखाग्निस्तेनोष्मणाऽर्दिताः सन्तो जनलोकं यान्ति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की शक्ति रूपी जो सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि उसकी गर्मी से सन्तप्त होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं ।।२९।।

तावत्त्रिभुवनं सद्यःकल्पान्तैधितसिन्धवः । प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ।।३०।।

अन्वयः— तावत् उत्कटाटोपचण्डऽवातेरितोर्मयः कल्पान्तैधितसिन्धवः सद्यः त्रिभुवनं प्लावयन्ति ।।३०।।

अनुवाद— उसी समय सातो समुद्र प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु से उमड़कर अपनी विशाल तरङ्गों से शीघ्र ही त्रिभुवन को डुबा देते हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कल्पान्तेनैधिताः सिन्धवः समुद्राः । उत्कट आटोपः क्षेभो येषां ते च ते चण्डवातैरीरितोर्मयश्च ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण के मुख की अग्नि से त्रिलोकी के जल जाने पर उसी समय प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु चलने लगती है और उसके कारण सातों समुद्रों में अत्यन्त बड़ी-बड़ी लहरियाँ उठने लगती हैं और सारा त्रैलोक्य उन बड़े समुद्र की लहरियों में डूब जाता है ॥३०॥

अन्तःस तस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः । योगनिद्रानिमीलिताक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥३१॥

अन्वयः— तस्मिन् सलिले अन्तःसः अनन्तासनः हरिः योगनिद्रानिमीलिताक्षः जनालयैः स्तूयमानः आस्ते ॥३१॥

अनुवाद— उस जल के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं और जनलोक निवासी मुनिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

जनलोक आलयो येषां महर्लोकगतानामन्येषां च तैः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय एकार्णव के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं, उस समय महर्लोक से जनलोक में गये हुए भृगु आदि महर्षिगण तथा दूसरे जनलोक में रहने वाले ऋषिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥३१॥

एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः । अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयः शतम् ॥३२॥

अन्वयः— कालगत्योपलक्षितैः एवं विधैरहोरात्रैः अस्यापि परमायुः वयः शतम् अपक्षितमिव ॥३२॥

अनुवाद— इस प्रकार की काल की गति से एक एक हजार चतुर्युग के रूप में प्रतीत होने वाले बदलते रहने वाले दिनों और रातों के द्वारा ब्रह्माजी सौ वर्षों की आयु भी बिती हुयी सी प्रतीत होती है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

वैराग्यार्थमाह । एवंविधैरहोरात्रैर्वर्षशतं सर्वेषां प्राणिनामायुषः परमधिकमस्य ब्रह्मणो यदायुस्तदप्यपक्षितमिव क्षीणमिवेति लोकोक्तिः । गतप्रायमित्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी की ही आयु सबसे बड़ी मानी जाती है एक-एक हजार चतुर्युगों की उनका दिन और रात होती है । उस गणना के अनुसार जब ब्रह्माजी की भी आयु बीत जाती है तो फिर मनुष्यादि की आयु की कौन सी बात है ? अतएव इस क्षणभङ्गुर संसार से सभी जीवों को विरक्त हो जाना चाहिए इस तरह से मनुष्यों के मन में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए मैत्रेय महर्षिने इस श्लोक को कहा है । **एवं विधैरहोरात्रैः इत्यादि** इस प्रकार के दिनों एवं रात्रियों वाली ब्रह्माजी की सौ वर्ष की आयु भी जब बीत जाती है तो फिर मनुष्यों की आयु के विषय में क्या कहना है ॥३२॥

यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते । पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥३३॥

अन्वयः— तस्य आयुषः यद् अर्ध तत् परार्धम् अभिधीयते पूर्वः परार्धः अपक्रान्तः अद्य अपरः प्रवर्तते ॥३३॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की आयु का जो आधा भाग होता है उसको परार्ध कहते हैं । ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है, उसका द्वितीय परार्ध इस समय चल रहा है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-यदिति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आयु बीत सी चुकी है इसी बात को **यदधर्म इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा जा रहा है। ब्रह्माजी की आयु के आधे भाग को परार्ध शब्द से कहा जाता है । ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है और इस समय उनकी आयु का दूसरा परार्ध चल रहा है ॥३३॥

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् । कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥३४॥

अन्वयः— पूर्वस्य परार्धस्य आदौ ब्राह्मः नाम महान् कल्पः अभूत् यत्र ब्रह्मा अभवत् यं शब्दब्रह्म इति विदुः ॥३४॥

अनुवाद— प्रथम परार्ध के अन्त में ब्राह्म नामक महान् कल्प हुआ था, उसी कल्प में ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी थी उसी को पण्डितजनों ने शब्दब्रह्म कहा है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वस्य परार्धस्यादविति त्रिभिर्वस्तु कथनम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वस्यादौ० इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा वस्तु का वर्णन किया गया है ॥३४॥

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते । यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥३५॥

अन्वयः— तस्यैव च अन्ते यः कल्पः अभूत् यं पाद्मम् अभिचक्षते । यत् हरेः नाभिसरसः लोकसरोरुहम् आसीत्॥३५॥

अनुवाद— उस परार्द्ध के अन्त में जो कल्प हुआ था उसको पाद्मकल्प कहते हैं । इसी में श्रीहरि के नाभिसरोवर से सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

पाद्मत्वे हेतुः यदिति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

पाद्मकल्प नाम का कारण **यद्धरेः इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । चूंकि इसी कल्प में श्रीहरि के नाभि सरोवर से सर्वलोकमय कमल पैदा हुआ था इसी से इस कल्प को पाद्मकल्प कहते हैं॥३५॥

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत । वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥३६॥

अन्वयः— हे भारत ! द्वितीयस्यापि आदौ अयं तु कल्पः वाराह इति ख्यातः यत्र हरिः सूकर आसीत् ॥३६॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! द्वितीय परार्ध के आदि में जो यह कल्प हुआ, उसको वाराह कल्प कहते हैं, इस कल्प में श्रीहरि ने सूकर का रूप धारण कर लिया था ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अयं तु द्वितीयस्यादौ कथितः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यह जो कल्प है वह द्वितीय परार्ध का प्रथम कल्प है । इसे वाराह कल्प कहते हैं क्योंकि इस कल्प मे श्रीभगवान् वाराह का रूप धारण कर लिए थे ॥३६॥

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते । अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥३७॥

अन्वयः— अयं द्विपरार्धाख्यः कालः अव्याकृतस्य अनन्तस्य अनादेः जगदात्मनः निमेष उपचर्यते ॥३७॥

अनुवाद— यह जो दो परार्धों का काल है, वह अव्यक्त, अनन्त तथा अनादि सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् का निमेष माना जाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं कालेन निमित्तेन सृज्यानामायुःपरिमाणमुक्त्वा कालपरिच्छेदरहितं तत्त्वमाह–कालोऽयमिति पञ्चभिः । उपचर्यते केवलं न त्वनेनापि क्रमेणायुर्गणनं तस्येत्याह। अव्याकृतस्य कार्योपाधिशून्यस्य अत एवानन्तस्यानादेश्च जगदात्मनो जगत्कारणस्य।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह कालरूपी साधन के द्वारा सृज्य जीवों की आयु के परिमाण को बतलाकर काल की सीमा से रहित परमात्मतत्त्व का वर्णन मैत्रेय महर्षि पाँच श्लोकों से करते हैं । द्विपरार्द्ध रूपी काल को निमेष के द्वारा उपचारित किया जाता है न कि उसके द्वारा परमात्मा की आयु की गणना की जाती है । परमात्मा तो कार्योपाधि से रहित है अतएव वे अनन्त और अनादि हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं ।।३७।।

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः । नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ।।३८।।

अन्वयः— परमाण्वादिः द्विपरार्धान्तः अयं कालः ईश्वरः भूम्नः ईशितुं नैव प्रभुः अयं तु धाममानिनाम् प्रभुः ।।३८।।

अनुवाद— परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त फैला हुआ यह काल सर्वसमर्थ है किन्तु वह सर्वात्मा श्रीहरि पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं रखता है। वह तो देह गेह आदि में अभिमान रखने वाले जीवों का नियामक है।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्परिच्छेदे कालस्यासामर्थ्यादित्याह । कालोऽयमीश्वरः समर्थोऽपि भूम्नः परिपूर्णस्येशितुं नैव प्रभुः समर्थः । यतो धाममानिनां देहगेहाभिमानिनामेवेश्वरः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के परिसीमन में काल के असामर्थ्य को बतलाते हुए कहते हैं । यह काल नियामक है तथा सामर्थ्य सम्पन्न भी है, किन्तु श्रीभवान् तो परिपूर्ण हैं, वह उनके नियमन में समर्थ नहीं है । क्योंकि काल तो देह और गेह में अभिमान रखने वाले जीवों का ही नियामक है ।।३८।।

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः । आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ।।३९।।

अन्वयः— विकारैः युक्तैः सहितः विशेषादिभिः आवृतः अयं अण्डकोशः पञ्चाशत् कोटिविस्तृतः ।।३९।।

अनुवाद— प्रकृति, महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र इन आठ प्रकृतियों के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों पञ्च कर्मेन्द्रियों मन तथा पञ्च महाभूतों के साथ सोलह विकार इन सबों के सम्मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड भीतर से पच्चास करोड़ योजन विस्तृत है और बाहर से सात आवरणों से आवृत है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

भूम्न इत्युक्त तत्प्रपञ्चयन्नाह । विकारैः षोडशभिर्युक्तैरष्टप्रकृतिसंयुतैः सहितस्तदारब्ध इत्यर्थः । अयमाण्डकोशो यत्र प्रविष्टः परमाणुवल्लक्ष्यते इत्युत्तरेणान्वयः । कीदृशः । अन्तः पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तृतः, बहिश्च विशेषादिभिः पृथिव्यादिभिः सप्तभिरावृतः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

भूम्नः कहकर जिस परमात्मा का वर्णन किया जा चुका है उन्हीं का विस्तार से वर्णन करते है । सोलह विकारों तथा आठ प्रकृतियों के मिलने से बने ब्रह्माण्ड भीतर से पचास करोड़ विस्तृत है और बाहर पृथिवी आदि के सात आवरणों से आवृत है, यह ब्रह्माण्ड परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है ।।३९।।

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् । लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४०॥

अन्वयः— दशोत्तराधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते । अन्ये च यत्रान्तर्गताः कोटिशः अण्डराशयः हि परमाणुवत् लक्ष्यन्ते ॥४०॥

अनुवाद— उत्तरोत्तर दसगुने परिमाण वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड परमाणु के समान प्रतीत होता है और उनमें विद्यमान करोड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कीदृशैः । अण्डकोशप्रमाणाद्दशगुणमुत्तरोत्तरोऽधिको येषु तैः । न केवलमयमेक एव अपित्वन्येऽपि लक्ष्यन्ते ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माण्ड के परिमाण से दस गुना उत्तरोत्तर विस्तार वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है और दूसरे भी उनमें विद्यमान कराड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के ही समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— तत् सर्वकारणकारणम् अक्षरं ब्रह्म आहुः, तत् साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः विष्णोर्धाम ॥४१॥

अनुवाद— वे इन समस्त कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म हैं । यही पुराण पुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का परंधाम (सर्वश्रेष्ठ स्वरूप) है ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कारणानां कारणम् । धाम स्वरूपम् ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही प्रधान आदि सभी कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म तथा पुराणपुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का श्रेष्ठ स्वरूप है ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

सृष्टि का विस्तार

मैत्रेय उवाच

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः । महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥१॥

अन्वयः— हे क्षत्तः इति परमात्मनः कालाख्यः महिमा ते कथितः अथ वेदगर्भः यथा अस्राक्षीत् तत् मे निबोध ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी यहाँ तक मैंने आपको श्रीभगवान् की काल नामक महिमा को सुनाया अब मैं यह आपको बतला रहा हूँ कि ब्रह्माजी ने जगत् की रचना कैसे की उसे आप सुनें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे तु कुमारादिमनःसर्गाऽसमेधनात् । कायद्वैधेन यौनस्तु मनुसर्गोऽनुवर्ण्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में कुमार आदि की मानसिक सृष्टि की समृद्धि होने के कारण दो शरीरों के सम्बन्ध से योनिज मानव सृष्टि का वर्णन किया गया है ॥१॥

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् । महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥

अन्वयः— अग्रे आदिकृत् अन्धतामिस्रम् तामिस्रम् महामोमहम् मोहम् तमः च अज्ञानवृत्तयः ससर्ज ॥२॥

अनुवाद— सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अन्धतामिस्र तामिस्र, महामोह, मोह एवं तमस् नामक अज्ञान की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अग्र इति । ब्रह्मा स्वसृष्टौ प्रथममविद्यावृत्तीः ससर्ज । तत्र तमो नाम स्वरूपाप्रकाशः । मोहो देहाद्यहंबुद्धिः । महामोहो भोगेच्छा । तामिस्रं तत्प्रतिघाते क्रोधः । अन्धतामिस्रं तन्नाशेऽहमेव मृतोऽस्मीति बुद्धिः । तदेवोक्तं वैष्णवे-'**तमोविवेको मोहः स्यादन्तःकरणाविभ्रमः । महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषणा । मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रः क्रोध उच्यते । अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः** । इति पातञ्जलेऽप्येत एवोक्ताः । **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः** इति, श्रीविष्णुस्वामीप्रोक्ता वा अज्ञानविपर्यासभेदभयशोकाः । तदुक्तम् स्वादृगुत्थविपर्यास इत्यादि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने अविद्या (अज्ञान) की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की । स्वरूप का प्रकाश न होना ही तम कहलाता है । देह आदि में होने वाली आत्मत्व की बुद्धि को ही मोह कहते हैं । भोगों की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग की प्राप्ति में किसी के द्वारा बाधा डाले जाने पर जो क्रोध उत्पन्न होता है उसको तामिस्र कहते हैं । भोग का नाश हो जाने पर यह सोचना कि अरे मैं ही नष्ट हो गया इसी को अन्धतामिस्र कहते हैं । **तदेवोक्तम्० इत्यादि** इस बात को श्रीविष्णुपुराण में कहा गया है । विवेक के अभाव को ही तमस् कहते हैं । अन्तःकरण में होने वाले भ्रम को मोह कहते हैं । ग्राम्य सुखों तथा ग्राम्य भोगों को प्राप्त करने की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग के साधन के नष्ट हो जाने पर यह सोचना कि मैं ही मर गया इस तरह की बुद्धि को अन्धतामिस्र कहते हैं । भोग की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होने पर होने वाले क्रोध को तामिस्र कहते हैं । इस तरह से ब्रह्माजी ने ही पाँच पर्वों वाली अविद्या की सृष्टि की है । पातञ्जलयोगदर्शन में भी कहा गया है— अविद्या, अस्मिता, राग,

द्वेष तथा अभिनिवेष ये पाँच प्रकार के क्लेश हैं । श्रीविष्णु स्वामी ने कहा है कि अज्ञान के विपर्यास, भय तथा शोक ये अज्ञान के भेद हैं । स्वरूपाज्ञान जन्य विपर्यास भ्रम को ही अज्ञान कहते है ॥२॥

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत । भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ॥३॥

अन्वयः— पापीपसीं सृष्टिं दृष्ट्वा आत्मनं बहु न अमन्यत । ततः भगवद्ध्यानपूतेन मनसा अन्यां असृजत् ॥३॥

अनुवाद— इस पापमयी सृष्टि को देखकर उनको प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् श्रीभगवन् के ध्यान से पवित्र बने हुए मन से उन्होंने दूसरी सृष्टि की ॥३॥

भावार्थ दीपिका

न बह्वमन्यत नाभ्यनन्दत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्च वृत्तियों वाली अविद्या की सृष्टि पापमयी थी । उसको देखकर ब्रह्माजी को प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् का ध्यान किया और दूसरी सृष्टि की ॥३॥

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः । सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥

अन्वयः— अथ आत्मभूः सनकं, सनन्दनं, सनातनं सनत्कुमारं च निष्क्रियान्, ऊर्ध्वरेतसः मुनीन् असृजत् ॥४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन निवृत्त परायण ऊर्ध्व रेता मुनियों की सृष्टि की ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि प्रतिकल्पं सनकादिसृष्टिर्नास्ति तथापि ब्राह्मसर्गत्वादिहोच्यते । वस्तुतस्तु मुख्यसर्गादय एव प्रतिकल्पं भवन्ति सनकादयस्तु ब्राह्मकल्पसृष्टा एवानुवर्तन्ते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि प्रत्येक कल्पों में सनकादि की सृष्टि नहीं होती है फिर भी ब्राह्मसृष्टि का वर्णन होने के कारण उन लोगों की सृष्टि यहाँ बतलायी गयी है । वास्तविकता यह है कि प्रत्येक कल्प में मुख्य सृष्टि ही होती है । इन सनकादिकों की ब्राह्मकल्प में सृष्टि होती है, वे ही अन्य कल्पों में बने रहते हैं ॥४॥

तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः । तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥

अन्वयः— स्वभूःतान् पुत्रान् बभाषे पुत्रकाः प्रजाः सृज तत् मोक्षधर्माणः वासुदेव परायणाः न ऐच्छन् ॥५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने उन पुत्रों से कहा कि पुत्रों प्रजाओं की सृष्टि करो; किन्तु मोक्षमार्ग परायण तथा भगवान् वासुदेव का भक्त होने के कारण उन लोगों ने सृष्टि करना नहीं चाहा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

स्वभूर्ब्रह्मा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी को आत्मभू इसलिए कहा गया है कि वे श्रीभगवान् से उत्पन्न हुए हैं ॥५॥

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः । क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥६॥

अन्वयः— प्रत्याख्यातानुशासनैः एतैः एवं अवध्यातः सः जातं दुर्विषहं क्रोधम् नियन्तुम् उपचक्रमे ॥६॥

अनुवाद— आज्ञा का उल्लंघन करने वाले अपने पुत्रों से इस प्रकार से अपमानित ब्रह्माजी को असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ, ब्रह्माजी ने उस क्रोध को रोकने का प्रयास किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अवध्यातोऽवज्ञातः । प्रत्याख्यातमनङ्गीकृतमनुशासनं यैः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अवध्यातः पद का अर्थ है अपमानित और प्रत्याख्यातानुशासनैः का अर्थ है आज्ञा का पालन नहीं करने वालों से ।।६।।

धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः । सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ।।७।।

अन्वयः— धिया निगृह्यमाणः अपि तन्मन्युः प्रजापते भ्रुवोः मध्यात् सद्यः नीललोहितः कुमारः अजायत ।।७।।

अनुवाद— बुद्धि के द्वारा रोके जाने पर भी वह क्रोध शीघ्र ही ब्रह्माजी की भौहों के बीच से नीललोहित (नीले और लाल रङ्ग के) बालक के रूप में उत्पन्न हो गया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

स चासौ मन्युश्च तन्मन्युः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

पहले जो क्रोध उत्पन्न हुआ था वह क्रोध ही नीललोहित कुमार के रूप में उत्पन्न हो गया ।।७।।

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः । नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ।।८।।

अन्वयः— स वै देवानां पूर्वजः भगवान् भवः रुरोद, हे जगद्गुरो धातः मे नामानि स्थानानि च कुरु ।।८।।

अनुवाद— देवताओं के पूर्वज भगवान् शिव रोकर कहने लगे हे जगत् रचयिता ब्रह्माजी आप मेरा नाम और मेरे रहने के स्थान को बतलाइये ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

भाव प्रकाशिका

नीललोहित बालक भगवान् शिव ही थे । उन्होंने ब्रह्माजी से रोकर पूछा कि मेरा नाम क्या है ? और मेरे रहने का स्थान कौन सा है ?।।८।।

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् । अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ।।९।।

अन्वयः— इति तस्य वचः परिपालयन् भगवान् पाद्मः भद्रया वाचा अभ्यधात् मा रोदीः ते तत् करोमि ।।९।।

अनुवाद— इस तरह की उस बालक की वाणी को सुनकर कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने कल्याणमयी मधुरवाणी से कहा; रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान को बतलाता हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उस रोते हुए बालक की प्रार्थना को सुनकर ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने कहा कि रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान का निरूपण करता हूँ ।।९।।

यदरोदीः सुरश्रेष्ठः सोद्वेग इव बालकः । ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ।।१०।।

अन्वयः— हे सुरश्रेष्ठ ! यत् त्वम् बालक इव सोद्वेग अरोदीः ततः त्वाम् प्रजाः रुद्र इति नम्ना अभिधास्यन्ति ।।१०।।

अनुवाद— हे सुरश्रेष्ठ ! चूकि तुम जन्म लेते ही बालक के समान रोने लगे इसलिए तुमको सारी प्रजायें रुद्र इस नाम से अभिहित करेंगी ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

बालक इव ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

बालक इव कहकर ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम तो देवताओं मे श्रेष्ठ हो ? फिर भी तुम बालक के समान जन्म लेते ही रोने लगे । तुम्हारे रोने के कारण तुम्हारा नाम रुद्र होगा ।।१०।।

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही । सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ।।११।।

अन्वयः— हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुः अग्निः जलम् मही, सूर्यः चन्द्रः तपश्चैव मे अग्रे स्थानानि कृतानि ।।११।।

अनुवाद— हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा और तपस्या इन ग्यारह स्थानों को तुम्हारे रहने के लिए मैंने बना रखा है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अग्रे पूर्वमेव मे मया कृतानि ।।११।।

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम्हारे रहने के लिए मैंने इन ग्यारह स्थानों को बना रखा हैं ।।११।।

मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः । उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ।।१२।।

अन्वयः— मन्युः मनुः, महेशानः, महान्, शिवः, ऋतध्वजः, उग्ररेता, भवः, कालेः वामदेवो, धृतव्रतः ।।१२।।

अनुवाद— मन्यु, मनु, महेशान महान् शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, कालः, वामदेव, और धृतव्रत ये तुम्हारे ग्यारह नाम हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने शिवजी के ग्यारह नामों को बतलाया है ।।१२।।

धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका । इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ।।१३।।

अन्वयः— हे रुद्रः ! धीः, वृत्तिः, उशना, उमा, नियुत् सर्पिः इला, इरावती, सुधा, दीक्षा, इति ते रुद्राण्यः स्त्रियः।।१३।।

अनुवाद— हे रुद्र, धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत् सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा और दीक्षा ये ग्यारह रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने रुद्र की ग्यारह पत्नियों के नाम को बतलाया है ।।१३।।

गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः । एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ।।१४।।

अन्वयः— सयोषणः एतानि नामानि, स्थानानि च गृहाण, एभिः बह्वीः प्रजाः सृज, यत् प्रजानाम् पतिः असि ।।१४।।

अनुवाद— अपनी इन पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और इन सबों के द्वारा बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करो क्योंकि तुम प्रजापति हो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सयोषण: सस्त्रीक: । एभि: स्थानैर्नामभिश्च युक्त: प्रजा: सृज ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि इन अपनी पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और बहुत सी प्रजाओं की सृष्टि करो; क्योंकि तुम प्रजापति हो ।।१४।।

इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः । सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ।।१५।।

अन्वय:— इति गुरुणा आदिष्ट: स: भगवान् नीललोहित: सत्त्वाकृति: स्वभावेन आत्मसमा: प्रजा: ससर्ज ।।१५।।

अनुवाद— इस तरह लोकपितामह ब्रह्माजी के द्वारा आदेशित होकर भगवान् नीललोहित ने अपने बल, आकार तथा आकार के समान ही बल, आकार और स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

सत्त्वं बलम् । आकृतिर्नीललोहितता । स्वभावस्तीव्रता तेन ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके भगवान् नीललोहित ने अपने ही समान बलवान, नीललोहित आकार वाली और तीव्र स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् । निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ।।१६।।

अन्वय:— रुद्रसृष्टानाम्, रुद्राणां समन्तात् जगत् ग्रसतां असंख्यश: यूथान् निशाम्य प्रजापति: अशङ्कत ।।१६।।

अनुवाद— रुद्र के द्वारा सृष्ट उन रुद्रों को जो असंख्य यूथ बनाकर सम्पूर्ण संसार का भक्षण कर रहे थे, उसे देखकर ब्रह्माजी को बड़ी शङ्का हुयी ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

रुद्राणां यूथानि दृष्ट्वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

रुद्रों के समूहों को देखकर ब्रह्माजी को लगा कि ये सब तो संसार को ही खा जायेंगे ।।१६।।

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम । मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्वणैः ।।१७।।

अन्वय:— हे सुरोत्तम ! ईदृशीभि:, सृष्टाभि:, उल्वणै:, चक्षुभि: मया सह दिश: दहन्तीभि: प्रजाभि: अलम् ।।१७।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा सुरोत्तम ! तुम्हारे द्वारा रची गयी जो प्रजा है वह अपनी तीव्र दृष्टि से मेरे साथ ही सम्पूर्ण दिशाओं को जलाये जा रही हैं, अतएव इस प्रकार की सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा सुरश्रेष्ठ ! तुमने जिन प्रजाओं की सृष्टि की है वे तो अपनी भयङ्कर दृष्टि से मुझको तथा सारी दिशाओं को जलाये जा रही हैं अतएव अब तुम अपनी सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् । तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥

अन्वयः— ते भद्रम् ! सर्वभूतसुखवहम् तप अतिष्ठ तपसैव भवान् यथापूर्वम् इदं विश्वं स्रष्टा ॥१८॥

अनुवाद— तुम्हारा कल्याण हो, तुम सम्पूर्ण जगत् को सुख देने वाली तपस्या करो । तपस्या के द्वारा ही तुम पहले के समान इस विश्व की सृष्टि कर सकोगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्रष्टा स्रक्ष्यति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि तुम तपस्या करो तपस्या के प्रभाव से ही तुम पूर्व कल्प के समान संसार की सृष्टि करोगे ॥१८॥

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् । सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

अन्वयः— पुमान् तपसा एव परं ज्योतिः सर्वभूतगुहावासम् भगवन्तम् अधोक्षजम् अञ्जसा विन्दते ॥१९॥

अनुवाद— पुरुष तपस्या के ही द्वारा परम प्रकाश स्वरूप सभी जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले इन्द्रियातीत श्रीभगवान् को अनायास ही प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या के प्रभाव से पुरुष परंप्रकाश स्वस्वरूप सर्वान्तर्यामी श्रीभगवान् को भी प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरांपतिम् । बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

अन्वयः— आत्मभुवा एवम् आदिष्टः अमुम् बाढम् इति आमन्त्र्य गिरां पतिम् परिक्रम्य तपसे वनं विवेश ॥२०॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी का इस प्रकार का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने कहा बहुत अच्छा; उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वे वन में चले गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या करने के लिए ब्रह्मजी का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥२०॥

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे । भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥

अन्वयः— अथ लोकसन्तानहेतवे सर्गम् अभिध्यायतः भगवच्छक्तियुक्तस्य दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् संसार की सृष्टि के लिए श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि का सङ्कल्प किया तो उनके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र के तपस्या करने के लिए वन में चले जाने के पश्चात् श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि करने का सङ्कल्प किया तो उससे उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

अन्वयः— मरीचिः अत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः भृगुःवसिष्ठः दक्षश्च दशमः तत्र नारदः ॥२२॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के उन पुत्रों के नाम हैं मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दशवें नारदजी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने अपने सङ्कल्प के द्वारा जिन दस पुत्रों को उत्पन्न किया उन सबों का नाम इस श्लोक में क्रमशः गिनाया गया है ॥२२॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः । प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥२३॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोरृषिः । अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥

अन्वयः— स्वयम्भुवः उत्सङ्गात् नारदः जज्ञे, दक्षः अङ्गुष्ठात् वसिष्ठः प्राणात् सञ्जातः भृगु त्वचि, क्रतुः करात्, पुलहः नाभितः जज्ञे, ऋषिः पुलस्त्यः कर्णयोः, अङ्गिरा मुखतः, अत्रिः अक्षणोः, मरीचिः मनसः अभवत् ॥२३-२४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की गोद से नारदजी उत्पन्न हुए, दक्ष ब्रह्माजी के अङ्गूठे से पैदा हुए, वसिष्ठ महर्षि उनके प्राण से पैदा हुए, महर्षि भृगु ब्रह्माजी की त्वचा से उत्पन्न हुए, क्रतु महर्षि ब्रह्माजी के हाथ से पैदा हुए, पुलस्त्य महर्षि ब्रह्माजी के कानों से पैदा हुए, अङ्गिरा महर्षि ब्रह्माजी के मुख से पैदा हुए, अत्रि महर्षि उनके नेत्रों से पैदा हुए और मरीचि महर्षि ब्रह्माजी के मन से पैदा हुए ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३-२४॥

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् । अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥२५॥

अन्वयः— दक्षिणतः स्तनात् धर्मः यत्र नारायणः स्वयम् जज्ञे । अधर्मः पृष्ठतः यस्मात् मृत्युः लोकभयङ्करः जज्ञे॥२५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के दाहिने स्तन से धर्म उत्पन्न हुए जिनके पुत्र साक्षात् भगवान् नारायण हुए और ब्रह्माजी के पृष्ठ से अधर्म उत्पन्न हआ और उससे संसार को भयभीत करने वाला मृत्यु उत्पन्न हुआ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् । आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः॥२६॥

अन्वयः— हृदि कामः भ्रुवोः क्रोधः अधरदच्छदात् लोभश्च, आस्याद् वाक्, सिन्धवो मेढ्रात पायोः अघाश्रयः निऋतिः ॥२६॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के हृदय से काम, भौंहों से क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्ग से समुद्र और गुदा से पाप के निवास स्थान (राक्षसों के स्वामी) निऋृति पैदा हुए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अधरदच्छदादधरोष्ठात् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अधरदच्छदात् शब्द का अर्थ है नीचे के ओठ से ॥२६॥

छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्या पतिः प्रभुः । मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥

अन्वयः— छायायाः देवहुत्याः पतिः प्रभुः कर्दमः जज्ञे विश्वकृतः मनसः देहतः च इदं जगत् जज्ञे ॥२७॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की छाया से देवहुती के पति महर्षि कर्दम उत्पन्न हुए, इस तरह ब्रह्माजी के मन और शरीर से यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः । अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

अन्वयः— हे क्षत्तः अकामां मनः हरतीं तन्वीं दुहितरं वाचं सकामः चकमे इति नः श्रुतम् ॥२८॥

अनुवाद— हे विदुरजी, ब्रह्माजी एक बार अपनी निष्काम, मनोहर, तथा सुकुमारी पुत्री वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को देखकर कामार्त हो गये और उसको प्राप्त करना चाहे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

देहान्तरेण कृतं सर्गं वक्तुं तद्देहत्यागे कारणमाह-वाचमित्यादिना ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने जिस शरीर से सृष्टि किया था उस शरीर का परित्याग करने का कारण बतलाने के लिए **वाचम् इत्यादि** श्लोक को कहा गया है ॥२८॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः । मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

अन्वयः— अधर्मे कृतमतिं तम् प्रितरं विलोक्य मरीचिमुख्याः मुनयः विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की अधर्ममयी बुद्धि को देखकर मरीचि इत्यादि महर्षियों ने अपने उस पिता को विश्वास पूर्वक समझाया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे । यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

अन्वयः— यत् प्रभुः त्वम् अङ्गजम् अनिगृह्य दुहितरं गच्छेः एतत् त्वत् पूर्वैः न कृतम् ये त्वत् अपरे तेऽपि न करिष्यन्ति ॥३०॥

अनुवाद— आप समर्थ होकर भी इस मन से उत्पन्न होने वाले काम को अपने वश में न करके पुत्री गमन का जो सङ्कल्प करते हैं, यह आपसे पहले जो ब्रह्मा थे वे ऐसा नहीं किए और न तो आपके बाद होने वाले भी ब्रह्मा ऐसा काम करेंगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

त्वत् त्वत्तो ये पूर्वे ब्रह्मादयोऽन्ये वा तैरेतेत्र कृतम् । अपरे त्वत्तोऽर्वाचीनास्तेऽपि न करिष्यन्ति । अङ्गजं कामम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मन में उत्पन्न होने वाले काम को जीतकर अपने वश में न करके आप जो पुत्री गमन रूपी कार्य कर रहे हैं ऐसा कार्य आपसे पहले जो ब्रह्मा आदि थे उन लोगों ने नहीं किया और न तो आपके बाद जो ब्रह्मा होंगे वे ऐसा कार्य करेंगे ॥३०॥

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो । यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

अन्वयः— जगद्गुरो तेजीयसामपि हि एतत् सुश्लोक्यं न यद् वृत्तम अनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

अनुवाद— हे जगद्गुरो ! तेजस्वी पुरुषों का भी ऐसा कर्म करना सराहनीय नहीं होता है, क्योंकि आप जैसे तेजस्वी पुरुषों के ही आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तेजीयसामपितेजस्विनामपि सुश्लोक्यं सत्कीर्तिदं न भवति । येषां तेजीयसाम् वृत्तम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त तेजस्वी भी आप जैसे महापुरुषों के द्वारा ऐसा पापमय कार्य का किया जाना सराहनीय नहीं होता है, क्योंकि जो तेजस्वी पुरुष होते हैं उन्हीं के आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा । आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

अन्वयः— तस्मै भगवते नमः यः आत्मस्थं इदं स्वेन रोचिषा व्यञ्जयामास सः धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् को नमस्कार है जिन्होंने अपने स्वरूप में स्थित इस जगत् को अपने प्रकाश के द्वारा प्रकाशित किया, वे ही धर्म की रक्षा कर सकते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि से पूर्व यह जगत् श्रीभगवान् के स्वरूप में स्थित होने के कारण अव्यक्त था । सृष्टि काल के आ जाने पर श्रीभगवान् ने अपने तेज के द्वारा इस जगत् को प्रकाशित किया । वे ही श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं, अतएव उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३२॥

स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् । प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥३३॥

अन्वयः— स इत्थं गृणतः प्रजापतीन् पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापति पतिः तदा व्रीडितः तन्वं तत्याज । तां घोरां दिशः जगृहुः यत् निहारं तमः विदुः ॥३३॥

अनुवाद— अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियों को अपने सामने इस प्रकार की बातों को कहते हुए देखकर प्रजापतियों के भी पति ब्रह्माजी लज्जित हो गये और अपने उस शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया । उस घोर शरीर को दिशाओं ने ले लिया । वही कुहरा हो गया । उसे ही अन्धकार कहते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तन्वं तनुम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तन्व शब्द शरीर का वाचक है ॥३३॥

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् । कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥३४॥

अन्वयः— कदाचित् समवेतान् लोकान् यथापुरा कथम् अहं स्रक्ष्यामि इति ध्यायतः स्रष्टुः चतुर्मुखात् वेदाः आसन् ॥३४॥

अनुवाद— एक बार जब ब्रह्माजी इस बात का विचार कर रहे थे कि मैं किस प्रकार पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की सृष्टि करूँ तो उनके चारो मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कथं स्रक्ष्यामीत्यभिध्यायतः स्रष्टुर्ब्रह्मणश्चतुःसंख्यायुक्तान्मुखात् । समवेतान्सुसङ्गतान् । यथापुरा प्राक्कल्पे ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी जब इस बात का चिन्तन कर रहे थे कि पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की रचना मैं कैसे करूँ ? उसी समय उनके मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ।।३४।।

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह । धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ।।३५।।

अन्वयः— चातुर्होत्रं कर्मतंत्रं उपवेदनयैः सह धर्मस्य चत्वारः पादाः तथैव आश्रम वृत्तयः चतुर्मुखात् आसन्नित्यन्वयः।।३५।।

अनुवाद— साथ ही उपवेद तथा न्याय शास्त्र के साथ होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण और चारो आश्रम एवं उनकी वृत्तियाँ ये सब भी ब्रह्माजी के मुखों से ही प्रकट हुए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रं होत्रादीनां चतुर्णां कर्म । कर्मतन्त्रं यज्ञविस्तारः । उपवेदैर्न्यायैश्च सह । आश्रमाद्वृत्तयश्चासन् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

चातुर्होत्र शब्द से होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म कहे गये है । कर्म तनत्रम् पद से यज्ञों के विस्तार को कहा गया है । **उपवेदनयैः सह** का अर्थ है आयुर्वेद इत्यादि उपवेद तथा न्याय शास्त्र इन सबों के साथ धर्म के चारो पैर, चारो आश्रम और उनकी वृत्तियों की भी उत्पत्ति ब्रह्माजी के मुखों से ही हुयी है ।।३५।।

विदुर उवाच

स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् । यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ।।३६।।

अन्वयः— हे तपोधन ! सवै विश्वसृजामीशः देवः येन मुखतः यद् वेदादीन् असृजत् तन्मे ब्रूहि ।।३६।।

अनुवाद— हे तपोधन ! वे प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने अपने जिस मुख से जिन वेदादि की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलाइये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

मुखतो मुखेभ्यः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेय जी से प्रार्थना की कि आप मुझे यह बतलाइये कि ब्रह्माजी ने अपने किन मुखों से किन वेदादिकों को उत्पन्न किया ।।३६।।

मैत्रेय उवाच

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः । शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ।।३७।।

अन्वयः— पूर्वादिभिमुखैः ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् शस्त्रम् इज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं क्रमात् व्यधात् ।।३७।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मुख से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की और इसी क्रम से उन्होंने शस्त्र (होता के कर्म) इज्या (अध्वर्यु के कर्म) स्तुतिस्तोम (उद्गाता के कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्मा के कर्म) की भी रचना की ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रसृष्टिक्रममाह । शस्त्रमप्रगीतमन्त्रस्तोत्रं होतुः कर्म । इज्यामध्वर्योः कर्म । स्तुतिस्तोमं स्तुतिः संगीतं, स्तोमं तदर्थमृक्समुदायं 'त्रिवृत्स्तोमो भवति' इत्यादिविहितमुद्गातृप्रयोज्यम् । प्रायश्चित्तं ब्राह्मम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में चातुर्होत्रसृष्टिक्रम का वर्णन मैत्रेय महर्षि ने किया है । शस्त्र अर्थात् अप्रगीतमन्त्रस्तोत्र होता के कर्म । स्वर तथा आनुपूर्वीरहित मन्त्रों के द्वारा जो स्तुति की जाती है उसे अप्रगीतमन्त्र स्तोत्र कहते हैं । इज्या अर्थात् देवता के लिए किए जाने वाले द्रव्य के त्याग रूप अध्वर्यु के कर्म को इज्या कहते हैं । स्तुति स्तोम, स्तुति संगीत को कहते है और संगीतोपयोगी ऋचाओं के समूह को स्तोम कहते है । त्रिवृत्स्तोमोभवति इत्यादि श्रुतियाँ उसका विधान करती हैं । यह उद्गाता नामक ऋत्विज का कर्म है । ब्राह्मकर्म को प्रायश्चित्त कहते हैं । इन सबों की सृष्टि ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों से हुयी हैं ।।३७।।

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ।।३८।।

अन्वयः— आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेद स्थापत्यं च वेदम् च क्रमात् पूर्वादिभिः मुखैः असृजत् ।।३८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने पूर्वादि मुखों से क्रमशः आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) धनुर्वेद (शस्त्र विद्या) गान्धर्ववेद (सङ्गीत शास्त्र) और स्थापत्य वेद (शिल्प विद्या) इन उपवेदों की सृष्टि की ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

उपवेदक्रममाह -आयुर्वेदमिति । आत्मनो मुखैः । स्थापत्यं विश्वकर्मशास्त्रम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आयुर्वेद इत्यादि चार उपवेदों की सृष्टि का क्रम बतलाया गया है । **आत्मनोमुखैः** का अर्थ है अपने पूर्वादि मुखों से ही ब्रह्माजी ने आयुर्वेदादि उपवेदों की क्रमशः सृष्टि की स्थापत्य विश्वकर्मा की शिल्प विद्या को कहते हैं ।।३८।।

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः । सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।३९।।

अन्वयः— सर्वदर्शनः ईश्वरः सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदम् ससृजे ।।३९।।

अनुवाद— सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्माजी ने अपने सभी मुखों से इतिहास एवं पुराण नामक पाञ्चवें वेद की रचना की ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इतिहासों और पुराणों को पाञ्चवाँ वेद कहा गया है । इन सबों की रचना ब्रह्माजी ने अपने सभी मुखों से की है । पुराणों की संख्या अठारह है और रामायण और महाभारत ये दो इतिहास प्रख्यात हैं ।।३९।।

षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ । आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।

अन्वयः— पूर्ववक्त्रात् षोडश्युक्थौ, अथ पुरीष्याग्निष्टुतौ, आप्तोर्यामातिरात्रौ च, वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।

अनुवाद— इसी तरह ब्रह्माजी के पूर्वमुख से षोडशी तथा उक्थ, दक्षिणमुख से पुरीषी (चयन) और (अग्निष्टोम) पश्चिम मुख से आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय और गोसव ये दो याग उत्तर मुख से उत्पन्न हुए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कर्मतन्त्रक्रममाह-षोडश्युक्थाविति । पुरीषी चयनम् । अग्निष्टुदग्निष्टोमः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्म तन्त्र अर्थात् यज्ञ विस्तार की उत्पत्ति के क्रम को बतलाया गया है । षोडशी तथा उक्थ ये दो याग ब्रह्माजी के पूर्व मुख से उत्पन्न हुए । पुरीषी चयन याग को कहते हैं । अग्निष्टुत् अग्निष्टोम याग को कहते हैं ॥४०॥

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च । आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥४१॥

अन्वयः— विद्या, दानम् तपः सत्यं इति धर्मस्य पदानि, यथा संख्यम् आश्रमान् च वृत्तिभिः सह असृजत् ॥४१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से क्रमशः विद्या, दान, तप और सत्य इन धर्म के चार चरणों की और वृत्तियों के साथ चार आश्रमों की भी रचना अपने पूर्वादि मुखों से की ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

विद्येति शौचम् । '**क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता**' इति स्मृतेः । दानमिति दया । '**भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्**' इति वचनात् । एवं च '**तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः**' इति प्रथमस्कन्धोक्तेरविरोधः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानद्विशुद्धिः परमा मता अर्थात् जीव की ईश्वर के ज्ञान से सर्वश्रेष्ठ विशुद्धि मानी गयी है, इस स्मृति वाक्य में अनुसार शौच को ही यहाँ विद्या शब्द से अभिहित किया गया है । दान शब्द से यहाँ पर दया कही गयी है । स्मृति भी कहती है **भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोड्शीम्** जीवों को अभय प्रदान के सोहलवें भाग के भी बराबर सभी दान मिलकर भी नहीं हो सकते हैं । इस तरह से प्रथम स्कन्ध के **तपः शौचम् दया सत्यम् इत्यादि** जो श्लोक है उससे इस श्लोक का किसी प्रकार से विरोध नहीं है ॥४१॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा । वार्ता संचयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥
वैखानसा बालखिल्यौदुम्बराः फेनपावने । न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥४३॥

अन्वयः— अथ सावित्रं, प्राजापत्यं, ब्राह्मं तथा बृहत्, वार्ता, संचयशालीन, शिलोञ्छ इति वै गृहे । वैखानसा, बालखिल्योदुम्बराः फेनपा वने, पूर्वं कुटीचकः बहवोदः, हंसनिष्क्रियौ न्यासे ॥४२-४३॥

अनुवाद— ब्रह्मचारियों के चार भेद हैं । सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म तथा बृहत्; गृहस्थों की भी चार वृत्तियाँ हैं— वार्ता, संचय, शालीन और शिलोञ्छ, वानप्रस्थियों की चार वृत्तियाँ हैं- वैखानस, बालखिल्य, औदुम्बर और फेनप तथा संन्यासियों की भी चार वृत्तियाँ हैं कुटीचक, बहवोद, हंस और निष्क्रिय (परमहंस) ॥४२-४३॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मचर्याद्याश्रमेष्वेकैकस्य चातुर्विध्यमाह । सावित्रं ब्रह्मचर्यं, उपनयनादारभ्य गायत्रीमधीयानस्य त्रिरात्रम् । प्राजापत्यं व्रतान्याचरतः संवत्सरम् । ब्राह्मं वेदग्रहणान्तम् । बृहन्नैष्ठिकम् । वार्ता अनिषिद्धकृष्यादिवृत्तिः । संचयो याजनादिवृत्तिः । शालीनमयाचितवृत्तिः । शिलोञ्छः पतितकणिशकणवृत्तिः । एकवचनमार्षम् । इत्येता गृहे वृत्तय इति । यद्वा शिलोञ्छ इति द्वन्द्वैक्ये सप्तमी । एवं वृत्तिभेदे सति गृहे स्थिता भवन्तीत्यर्थः । वने थिताश्चत्वारः । तत्र वैखानसा अकृष्टपच्यवृत्तयः । बालखिल्या नवेऽन्ने लब्धे पूर्वसंचितान्नत्यागिनः । औदुम्बराः प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत आहृतैः फलादिभिर्जीवन्तः । फेनपाः स्वयं पतितैः फलादिर्भिजीवन्तः । कुटीचकः स्वाश्रमकर्मप्रधानः । बह्वोदः कर्मोपसर्जनीकृत्य ज्ञानप्रधानः । हंसो ज्ञानाभ्यासनिष्ठः, निष्क्रियः प्राप्ततत्त्वः । एते च सर्वे यथोत्तरं श्रेष्ठाः ॥४२-४३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी आदि चारो आश्रमों के प्रत्येक आश्रमों के चार-चार भेद इन दोनों श्लोकों में बतलाये गये हैं। १. सावित्र ब्रह्मचर्य— उपनयन के पश्चात् गायत्री का अध्ययन करने के लिए धारण किया जाने वाला तीन दिन का ब्रह्मचर्य व्रत । २. प्राजापत्य ब्रह्मचर्य— एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, ३. ब्राह्मब्रह्मचर्य— वेदाध्ययन की समाप्ति काल पर्यन्त धारण किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और ४. बृहत् ब्रह्मचर्य— आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का धारण ये ब्रह्मचर्य के चार भेद है ।

गार्हस्थ्य के चार वृत्ति भेद इसप्रकार हैं **१. वार्तावृत्ति**— शास्त्र विहित कृषि आदि वृत्तियों को अपनाना, **२. संचयवृत्ति**— यज्ञादि कराना । **३. शालीनवृत्ति**— अयाचित वृत्ति (बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाय उसी से निर्वाह करना) और **४. शिलोञ्छवृत्ति**— खेत कट जान पर पृथिवी पर पड़े हुए तथा अनाज की मण्डी में गिरे हुए अन्न के दानों को बीन कर निर्वाह करना । संचयशालीन शिलोञ्छ में एक वचनान्त प्रयोग आर्ष है । ये चारो गृहस्थों की वृत्तियाँ है । अथवा संचयशाली शिलोञ्छ में द्वन्द समास में सप्तमी एक वचनान्त है । इस तरह से भिन्न-भिन्न वृत्तियों वाले गृहस्थ होते हैं ॥४२॥

वनेस्थिताः इत्यादि- वन में रहने वाले वानप्रस्थों के भी चार भेद हैं— **१. वैखानसवृत्ति**— बिना जोती बोयी भूमि से उत्पन्न पदार्थों से निर्वाह करना । **२. बालखिल्यवृत्ति**— नवीन अन्न मिलने लगने पर संचित प्राचीन अन्न का दान कर देना । **औदुम्बुरवृत्ति**— प्रातःकाल उठने पर जिस दिशा की ओर मुख हो उसी दिशा से फलादि लाकर जीवन निर्वाह करना और **४. फेनपवृत्ति**— अपने आप पककर गिरे हुए फल आदि खाकर जीवन निर्वाह करना ।

संन्यासियों की वृत्तियाँ— १.कुटीचकवृत्ति— कुटी बनाकर एक जगह रहना और अपने आश्रम के धर्म का पूर्ण रूप से पालन करना । **२. बह्वोदवृत्ति**— कर्म को गौण मानकर ज्ञान को ही प्रधान मानना । **३. हंसवृत्ति**— ज्ञान के ही अभ्यास में निरन्तर लगे रहना और **४. निष्क्रियपरमहंसवृत्ति**— ज्ञानी जीवनमुक्त । ये सभी जो गृहस्थ आदि हैं इनमें उत्तरोत्तर वृत्ति वाले श्रेष्ठ माने गये हैं ॥४३॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च । एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥४४॥

अन्वयः— आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति तथैव च एवं व्याहृतयः च आसन् अस्य हि दह्रतः प्रभावः ॥४४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के पूर्वादिमुखों से ही अन्विक्षिकी त्रयी, वार्ता दण्डनीति ये चार विद्यायें और चार व्याहृतियाँ उत्पन्न हुयीं और ब्रह्माजी के हार्दाकाश से प्रणव की उत्पत्ति हुयी ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

न्यायादीनां पूर्वादिक्रमेणोत्पत्तिमाह-आन्वीक्षिकीति । आन्वीक्षिक्याद्या मोक्षधर्मकामार्थविद्याः । भूर्भुवःस्वरिति व्यस्तास्तिस्रः। समस्ता चतुर्थी । यथाहआश्वलायनः-एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः समस्ताः' इति । यद्वा मह इति चतुर्थी । तथा च श्रुतिः- **भूर्भुवःसुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं माहाचमस्यः प्रवेदयते मह इति'** इति । दह्रतो हृदयाकाशात् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

न्याय आदि की भी ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों के क्रम से उत्पत्ति बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं- आन्विक्षिकी आदि मोक्ष धर्म काम तथा अर्थ विषयिणी विद्यायें हैं । भूः भुवः स्वः ये अलग-अलग तीन व्याहृतियाँ हैं और भूर्भुवःस्वः यह समस्त रूप से चौथी व्याहृति है । महर्षि आश्वालयन ने कहा भी है **एवं० इत्यादि** अर्थात् इस तरह से व्यस्त एवं समस्त व्याहृतियाँ बतलायी गयी हैं । अथवा महः चतुर्थी व्याहृति है । श्रुति भी कहती है—

भूर्भुवःसुवरिति वा इत्यादि अर्थात् भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ हैं । उनमें चौथी व्याहृति माहाचमस्य महर्षि महः इस व्याहृति को मानते हैं । श्लोक का दह्र शब्द हृदयाकाश का बोधक है ॥४४॥

तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः । त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥४५॥

अन्वयः— तस्य प्रजापतेः लोमभ्यः उष्णिक् त्वचःगायत्री, मांसात् त्रिष्टुप् स्नुतः अनुष्टुप् प्रजापतेः अस्थ्नः जगती आसीत् ॥४५॥

अनुवाद— प्रजापति ब्रह्माजी के रोमों से उष्णिक् छन्द, त्वचा से गायत्री छन्द, मासं से त्रिष्टुप् छन्द, स्नायु से अनुष्टुप् छन्द तथा अस्थियों से जगती छन्द की उत्पत्ति हुयी ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

स्नुतः स्नायुतः । अनुष्टुप् स्नावान् इति श्रुतेः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

स्नुतः पद का अर्थ स्नायुएँ से है । श्रुति भी कहती है अनुष्टुप् स्नावान् अर्थात् अनुष्टुप छन्द स्नायुओ वाला है ॥४५॥

मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् । स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥

अन्वयः— मज्जयाः पंक्ति उत्पन्ना प्राणतः बृहती अभवत् । तस्य जीवः स्पर्शः अभवत् देहः स्वर उदाहृतः ॥४६॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की मज्जा से पंक्ति छन्द और प्राणों से बृहती छन्द उत्पन्न हुआ । उनका जीव ही स्पर्श वर्ण हुआ और देह स्वर वर्ण कहलाया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

महाकल्पे ब्रह्मा शब्दब्रह्मरूपोऽभवदित्युक्तं तदेव दर्शयन्वर्णानामुत्पत्तिमाह-स्पर्श इति सार्धेन । स्पर्शः कादिवर्गपञ्चकम् स्वरोऽकारादिः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

पहले कहा जा चुका है कि महाकल्प में ब्रह्माजी शब्दब्रह्म स्वरूप थे । उसी को बतलाते हुए वर्णों की उत्पत्ति स्पर्श इत्यादि डेढ श्लोकों से कहते हैं । 'क' से लेकर 'म' तक पांचो (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग) वर्गों के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं । अकार आदि को स्वरवर्ण कहते हैं ॥४६॥

ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तस्था बलमात्मनः । स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥

अन्वयः— इन्द्रियाणि उष्माणम् आहुः आत्मनः बलम् अन्तस्थाः । प्रजापतेः विहारेण सप्त स्वराः भवन्ति स्म ॥४७॥

अनुवाद— ब्रह्मजी की इन्द्रियों को ही उष्मा वर्ण (श, ष, स, ह) कहा गया है । बल को अन्तस्थ (य र ल और व) वर्ण कहा गया है । उनकी क्रीडा से सात स्वर (निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत और पञ्चम) उत्पन्न हुए हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ऊष्माणं शषसह चतुष्कम् । अन्तस्था यरलवाः । सप्त स्वराः षड्जादयः । विहारेण क्रीडया ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

श, ष, स और ह ये चार वर्ण उष्मा वर्ण हैं । य, र, ल और व ये चार वर्ण अन्तस्थ वर्ण हैं । षड्ज आदि सात स्वर ब्रह्माजी की क्रीडा से उत्पन्न हैं ॥४७॥

शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः । ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥४८॥

अन्वयः— शब्द ब्रह्मात्मनः व्यक्ताव्यक्तात्मनः परं ब्रह्म विततः अवभाति नाना शक्त्युपबृंहितः अवभाति ॥४८॥

अनुवाद— शब्द ब्रह्म स्वरूप ब्रह्माजी हैं। वे वैखरी रूप से व्यक्त हैं और ओङ्कार रूप से अव्यक्त है। उनसे परे जो परिपूर्ण ब्रह्म है वे अनेक प्रकार की शक्तियों से विकसित होकर इन्द्रादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अतएव शब्दतनुत्वाद्ब्रह्मणः परमेश्वरो नित्यं प्रकाशत इत्याह । व्यक्ता वैखरी अव्यक्तः प्रणवस्तदात्मनस्तस्य ब्रह्मणः परः परमेश्वरोऽवभाति । कीदृशः । ब्रह्म परिपूर्णः तत्राव्यक्तात्मनो ब्रह्मरूपो विततोऽवभाति व्यक्तात्मनो नानाभक्त्युपबृंहित इन्द्रादिरूपोऽवभाति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

वर्णों को उत्पन्न करने वाला होने के कारण ही ब्रह्माजी शब्दशरीरक है। उनको नित्य ही परमेश्वर प्रकाशित होते हैं। वैखरी रूप से वे व्यक्त हैं और तथा प्रणाव रूप से वे अव्यक्त हैं। उनसे परे जो परमेश्वर हैं, वे उनको नित्य ही प्रकाशित होते हैं। वे ब्रह्म परिपूर्ण हैं। अव्यक्त रूप से जो ब्रह्माजी का रूप है वह विस्तृत प्रतीत होता है व्यक्त रूप से ब्रह्म अनेक प्रकार की शक्तियों से समृद्ध होकर इन्द्र आदि के रूप में प्रतीत होते हैं ॥४८॥

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे । ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥४९॥

अन्वयः— ततः अपरम् उपादाय सः सर्गाय मनोदधे भूरिवीर्याणाम् अपि ऋषीणाम् सर्गम् अविस्तृतम् ॥४९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने पहला कामशक्त शरीर जो कुहरा बन चुका था उस को त्याग कर दूसरा शरीर धारण करके विश्व की सृष्टि की विचार किये, क्योंकि अत्यधिक शक्ति सम्पन्न मरीचि आदि ऋषियों से भी सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ था ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

यां पूर्वं विसृष्टा सती नीहारं तमोऽभवत् । ततोऽपरामनिषिद्धकामासक्तां तनुम् । शब्दब्रह्मतनुस्तु सदाऽस्त्येव । तन्वन्तरग्रहणे कारणमाह-ऋषीणामित्यादिना ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

जो पहला शरीर था उसको ब्रह्माजी ने त्याग दिया वही कुहरा हो गया। उसके पश्चात् जो निषिद्ध कामासक्त शरीर नहीं था उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया उनका शब्द ह्म स्वरूप शरीर तो सदा रहता ही है। दूसरे शरीर को धारण करने का कारण यह था कि अत्यन्त पराक्रम सम्पन्न भी मरीचि आदि महर्षियों से सृष्टि का विस्तार नहीं हो सका था ॥४९॥

ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव । अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥
न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् । एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥५१॥

अन्वयः— हे कौरव ! तद् ज्ञात्वा हृदये चिन्तयामास, व्यापृतस्य अपि मे एतद् अद्भुतम् नित्यदा प्रजाः न एधन्ते अत्र नूनं दैवं विघातकम्, तदा एवं युक्तकृतः तस्य दैवं च अवेक्षतः ॥५०-५१॥

अनुवाद— हे विदुर ! उसको जानकर ब्रह्माजी अपने हृदय में चिन्तन करने लगे कि यद्यपि मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ फिर भी प्रजाओं की वृद्धि नहीं हो रही है, लग रहा है कि इस कार्य में दैव ही बाधा कर रहा है। ब्रह्माजी इस प्रकार से दैव के विषय में विचार कर रहे थे ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह-अहो इति । व्यापृतस्य व्यापारं कुर्वाणस्य । युक्तकृतो यथोचितं कुर्वतः ।।५०-५१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी विचार कर रहे थे कि मैं सृष्टि का विस्तार करने का प्रयास भी कर रहा हूँ और उसके लिए उचित कार्य भी कर रहा हूँ फिर भी सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है, इसका क्या कारण हो सकता है ? लग रहा है कि मेरे इस कार्य में दैव ही बाधा डाल रहा है ।।५०-५१।।

कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते । ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।।५२।।

अन्वयः— कस्य रूपम् द्वेधा अभूत् यत् कायम् अभिचक्षते ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनम् समपद्यत ।।५२।।

अनुवाद— जिस समय ब्रह्माजी इस प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया । क ब्रह्माजी का नाम है । उनके शरीर का दो भाग होने के कारण उसे काय कहते हैं । शरीर के उन दोनों विभागों से स्त्री-पुरुष का जोड़ा हो गया ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

अतएव कस्य ब्रह्मणो रूपं द्विधा भूतमित्याश्चर्यात्कायमद्याप्यभिचक्षते ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

क ब्रह्माजी का ही नाम है उनका शरीर दो भागों में बँट गया इस आश्चर्य के कारण ही शरीर को आज भी काय शब्द से अभिहित किया जाता है ।।५२।।

यस्तु तत्र पुमान्योऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्यामहिष्यस्य महात्मनः ।।५३।।

अन्वयः— तत्र यस्तु पुमान् सः स्वराट् स्वायंभुवमनुः अभूत् या स्त्री सा महात्मनः शतरूपाख्या महिषी आसीत्।।५३।।

अनुवाद— उसमें जो पुरुष था वह सार्वभौम राजा स्वायम्भुवमनु हुए और जो स्त्री थी वह उनकी महारानी शतरूपा हुयी ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

या स्त्री सा अस्य महष्यासीत् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के शरीर का दोनों भाग स्त्री और पुरुष हो गया था उसमें जो पुरुष था वह महाराज स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा नाम की उनकी महारानी हो गयी ।।५३।।

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे । स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ।।५४।।

अन्वयः— तदा मिथुन धर्मेण प्रजा हि एधाम्बभूविरे स च अपि शतरूपायां पञ्च अपत्यानि, अजीजनत् ।।५४।।

अनुवाद— उसी समय स्त्री पुरुष सम्भोग रूप मिथुन धर्म से प्रजाओं की वृद्धि हुयी । महाराज मनु ने भी शतरूपा के गर्भ से पाँच सन्तानों को उत्पन्न किया ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

एधांबभूविरे वृद्धिं प्राप्ताः । तदेवाह-स चापीति ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

एवधाम्बभूविरे पद का अर्थ है बढी हुई प्रजाओं की समृद्धि को ही **स चापि इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । उन महाराज स्वयम्भुव मनु की पाञ्च सन्तानें हुयीं ।।५४।।

प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत । आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥५५॥

अन्वयः— हे भारतसत्तम प्रियव्रतोत्तानपादौ, तिस्रः कन्याश्च आकूतिः देवहूतिः प्रसूतिः ॥५५॥

अनुवाद— हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ उन सन्तानों में दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद और तीन कन्यायें हुयीं आकूति देवहूति और प्रसूति ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

महाराज स्वायम्भुव मनु की पाँच सन्तानों में दो पुत्र थे और तीन कन्यायें थीं ।

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् । दक्षायाऽदात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अन्वयः— आकूतिं रुचये प्रादात् मध्यमाम् कर्दमाय प्रसूतिंच दक्षाय अदात्; यत जगत् पूरितम् ॥५६॥

अनुवाद— महाराज मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया, देवहूति का विवाह कर्दम महर्षि से किया और प्रसूति का विवाह दक्ष से कर दिया । इन तीनों कन्याओं की सन्तानों से सारा संसार भर गया ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यतो यासां सन्ततिभिः ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उन तीनों पुत्रियों की सन्तानों से संसार भर गया ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावप्रकाशिका टीका की बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

वाराहवतार की कथा

श्रीशुक उवाच

निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप । भूयः प्रपच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥१॥

अन्वयः— नृप ! वदतः मुनेः पुण्यतमां वाचं विशम्य वासुदेवकथाहृतः कौरव्यः भूयः पृपच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् मैत्रेय महर्षि की पवित्रतम वाणी को सुनकर भगवान् वासुदेव की कथा में आदर रखने वाले कुरूवंशी विदुरजी ने पुनः उनसे पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे सिसृक्षायां मनोराकस्मिकाप्लुताम् । धरामुद्धर्तुमुद्भूतात्क्रोडाद्दैत्यानुसूदनम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में स्वायम्भुव मनु की अचानक सृष्टि करने की इच्छा होने पर जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए उत्पन्न वराह भगवान् के द्वारा हिरण्याक्ष नामक दैत्य के वध का वर्णन है ॥१॥

विदुर उवाच

स वै स्वयंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः । प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥२॥

अन्वयः— हे मुने: ततः स वे स्वयम्भुवः प्रियः पुत्रः सम्राट् स्वायम्भुवः प्रियां पत्नीं प्रतिलभ्य किं चकार ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मुने ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी के प्रिय पुत्र सम्राट् स्वायम्भुव मनु ने अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त करके क्या किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स्वयंभुवः पुत्रस्तद्देहांशत्वात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के देह के अंश ये स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए इसी लिए उनको ब्रह्माजी का पुत्र कहा गया है ॥२॥

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम । ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥३॥

अन्वयः— हे सत्तम तस्य आदिराजस्य राजर्षेः चरितं श्रद्दधानस्य मे ब्रूहि असौ हि विष्वक्सनाश्रयः ॥३॥

अनुवाद— हे साधु शिरोमणे । आप उन आदि राज का चरित मुझे सुनाइये वे भगवान् विष्णु के शरणागत हैं, अतएव मेरी उनमें श्रद्धा है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

विष्वक्सेनो हरिरेवाश्रयो यस्य सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

विष्वक्सेन भगवान् विष्णु का नाम है । उनके शरणापन्न हैं । आदिराज **स्वयम्भुवमनु** । इसीलिए मेरी उनमें श्रद्धा है । अतएव आप मुझे उनका चरित सुनाइये ॥३॥

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

अन्वयः— येषां हृदयेषु मुकन्दपादारविन्दम् यत् तदगुणानुश्रवणं पुंसां श्रुतस्य सुचिरश्रमस्य ननु अञ्जसा सूरिभिः ईडितोऽर्थः ॥४॥

अनुवाद— जिन लोगों के हृदय में भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द विद्यमान हैं उन भक्तजनों के गुणों का श्रवण करना ही मनुष्यों को बहुत दिनों तक किए हुए शास्त्राभ्यास का मुख्य फल है, यह विज्ञपुरुषों का कहना है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तस्य चरितं श्रोतव्यमित्याह । सुचिरं श्रमो यस्मिंस्तस्य पुंसां श्रुतस्याञ्जसा मुख्यत्वेनायमेवार्थ ईडितः स्तुतो ननु। मुकुन्दपादारविन्दं येषां हृदयेष्वस्ति तेषां भागवतानां गुणानुश्रवणमिति यत् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

वे आदिराज चूंकि भगवद्भक्त है अतएव उनके चरित का श्रवण करना चाहिए; इस बात को इस श्लोक मे कहा गया है । मनुष्यों द्वारा दीर्घकाल पर्यन्त शास्त्रश्रवणजन्य श्रम का यही मुख्य फल है कि जिन भक्तों के हृदय में श्रीभगवान् के चरण कमल विराजमान है उन भक्तों के गुणों का श्रवण किया जाय ॥४॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥५॥

अन्वयः— सहस्रशीर्ष्णः चरणोपधानम् विनीतं विदुरं इति ब्रुवाणम् प्रणीयमानः प्रहृष्टरोमा मुनि अभ्यचष्ट ॥५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सहस्रशीर्षा श्रीहरि के भक्त तथा नम्र विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रेरित किए जाने पर जिनके शरीर में रोमाञ्च हो आया था वे मैत्रेय मुनि कहना प्रारम्भ किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रशीर्षा श्रीकृष्णस्तच्चरणावुपधीयेते यस्मिन्, श्रीकृष्णः प्रीत्या यस्योत्सङ्गे चरणौ प्रसारयतीत्यर्थः । तमभ्यचष्ट अभ्यभाषत । मुनिर्मैत्रेयः । प्रणीयमानस्तेन प्रवर्त्यमानः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ही सहस्रशीर्षा हैं । भगवान् श्रीकृष्ण जिनकी गोद में अपने चरणों को फैलाते थे ऐसे विदुरजी ने विनम्रता पूर्वक महर्षि मैत्रेय को प्रेरित किया । उनके द्वारा प्रेरित होकर मैत्रेय महर्षि के शरीर में रोमाञ्च हो आया और उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ॥५॥

मैत्रेय उवाच

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः । प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥६॥

अन्वयः— यदा स्वभार्यया साकं स्वायम्भुवः मनुः जातः तदा प्राञ्जलिः प्रणतः च वेदगर्भम् इदम् अभाषत ॥६॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— जब स्वयम्भुव मनु का अपनी पत्नी शतरूपा के साथ जन्म हुआ उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक ब्रह्माजी से यह कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

वेदगर्भं ब्रह्माणम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक मे वेदगर्भ शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है ॥६॥

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता । अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥७॥

अन्वयः— एकः त्वम् सर्वभूतानां जन्मकृत् वृत्तिदः पिता अथापि नः प्रजानां केन वा ते शुश्रूषा भवेत् ॥७॥

अनुवाद— यद्यपि आप ही केवल सभी जीवों को जन्म देने वाले और जीविका प्रदान करने वाले पिता है । हम आप की सन्तान हैं फिर भी हम ऐसा कौन सा कार्य करें जिससे आपकी सेवा हो ?॥७॥

भावार्थ दीपिका

त्वमेवैक: पिता सर्वेषाम् । यतो जन्मकृद्वृत्तिद: पोषकश्च त्वमेव । अतस्तव यद्यप्यन्यापेक्षा नास्त्यथाप्यस्माकं ते शुश्रूषा केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहीत्युत्तरेणान्वय: ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आप ही सभी जीवों के पिता हैं; क्योंकि आप सबों को जन्म और जीविका प्रदान करते हैं तथा सबों को पोषते पालते हैं । अतएव आपको यद्यपि किसी की अपेक्षा नहीं है, फिर भी हमलोगों के किन कर्मों के द्वारा आपकी सेवा होगी उसे आप बतलायें ? इस तरह से अगले श्लोक से अन्वय है ।।७।।

तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु । यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गति: ।।८।।

अन्वय:— हे ईड्य तुभ्यं नम: आत्मशक्तिषु कर्मसु यत् कृत्वा इह विष्वक् यश: अमुत्र गति: च भवेत् तद् विधेहि।।८।।

अनुवाद— हे पूज्यपाद आपको नमस्कार है । हमलोगों द्वारा किया जाने योग्य कौन सा ऐसा कार्य है जिसके करने से सम्पूर्ण संसार में यश फैले और परलोक में सद्गति हो ।।८।।

भावार्थ दीपिका

हे ईड्य, आत्मशक्तिष्वस्मच्छक्येषु कर्मसु मध्ये केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहि इदं कर्तव्यमिति कथय । यत्कृत्वा यस्मिन्कृते सति । विष्वक् सर्वत: । अमुत्र परलोके ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हे पूज्यपाद हमलोगों द्वारा किए जाने योग्य कार्यों में से कौन सा ऐसा काम हो सकता है जिससे कि आपकी सेवा बन सके, उसे आप बतलाइये ।।८।।

ब्रह्मोवाच

प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर । यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ।।९।।

अन्वय:— हे क्षितीश्वर ! वां स्वस्ति स्तात् तात ! तुभ्यम् अहं प्रीत: यत् निर्व्यलीकेन हृदा मे शाधि इत्यात्मनाऽर्पितम्।।९।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— पृथिवीपते ! आप दोनों का कल्याण हो । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने निष्कपटभाव से मुझे आज्ञा प्रदान करें इस तरह से अपने आपको समर्पित कर दिया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

वां युवाभ्यां स्वस्ति भद्रं स्तात् भूयात् । यद्यतो मा मां शाध्यनुशिक्षयेत्यात्मना स्वयमेवर्पितं निवेदितमत: प्रीतोऽस्मि।।९।।

भाव प्रकाशिका

मैं तुम दोनों पर इसलिए प्रसन्न हूँ कि तुमने निष्कपट भाव से कहा है कि आप मेरा प्रशासन करें ।।९।।

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ । शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरै: ।।१०।।

अन्वय:— हे वीर ! आत्मजै: गुरौ एतावती अपचिती कार्या । गतमत्सरै: अप्रमत्तै: शक्त्या सादरं गृह्येत ।।१०।।

अनुवाद— वीर पुत्रों को अपने पिता की इसी प्रकार से पूजा करनी चाहिए कि दूसरों के प्रति ईर्ष्या का भाव रखे बिना अपने पिता की आज्ञा का अपनी शक्ति के अनुसार पालन करें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अपचिति: पूजा। गृह्येत आज्ञेति शेष: । सनकादयो न कुर्वन्ति वयं किमिति करिष्याम इत्येवंभूतो गतो मत्सरो येभ्य:।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अपचिति पूजा को कहते हैं। ब्रह्माजी ने कहा कि पुत्रों को अपने पिता की इतनी ही सेवा करनी चाहिए कि वे किसी द्वेष से इर्ष्या किए बिना ही अपनी शक्ति के अनुसार पिता की आज्ञा का पालन करें। तुम लोगों को इस प्रकार की ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए कि सनकादि तो आपकी सेवा नहीं करते हैं, हमलोग क्यों करें ?॥१०॥

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः । उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

अन्वयः— स त्वम् अस्याम् गुणैः आत्मनः सदृशानि अपत्यानि उत्पाद्य धर्मेण गां शास, यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

अनुवाद— तुम अपनी इस पत्नी से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और यज्ञों के द्वारा परम पुरुष परमात्मा की आराधना करो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

गां शास शाधि । पालयेत्यर्थः । पुरुषं हरिम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने महाराज मनु को तीन आदेश दिया है । १. अपनी इस शतरूपा से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करो । २. धर्म पूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और ३. यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना करो ॥११॥

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप । भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशो नु तुष्यति ॥१२॥

अन्वयः— हे नृप प्रजारक्षया मह्यं परं शुश्रूषणं स्यात् ते प्रजाभर्तुः भगवान् हृषीकेशः नु तुष्यति ॥१२॥

अनुवाद— हे राजन् ! प्रजाओं की रक्षा करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी और तुमको प्रजाओं का पालन करते देखेकर भगवान् हृषीकेश को भी प्रसन्नता होगी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापालकस्य ते तुष्टो भविष्यति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापालक तुमसे श्रीहरि भी प्रसन्न होंगे और प्रजाओं का पालन करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा तो होगी ही ॥१२॥

येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः । तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥

अन्वयः— येषां यज्ञलिङ्गो भगवान् जनार्दनः न तुष्टः तेषां श्रमो हि अपार्थाय यत् स्वयम् आत्मा नादृतः ॥१३॥

अनुवाद— जिन लोगों पर यज्ञपुरुष भगवान् जनार्दन नहीं प्रसन्न होते हैं उन लोगों का सारा श्रम व्यर्थ ही होता है, क्योंकि ऐसे लोगों ने अपनी आत्मा का ही अनादर किया है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उदासीनस्य भगवतोऽतोषे मे को दोषस्तत्राह येषामिति । यज्ञलिङ्गो यज्ञमूर्तिः । अपगतोऽर्थो यस्मात्। केवलं श्रमायैवेत्यर्थः। यद्यस्मादात्मैव स्वयं नादृतः । तस्मिन्नतुष्टे स्वार्थस्यैवासिद्धेः सर्वात्मत्वाच्च तस्य ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् तो उदासीन हैं। वे यदि मुझ पर नहीं प्रसन्न होते हैं तो इसमें मेरा क्या दोष है। तो इसके उत्तर में **येषाम् इत्यादि** श्लोक कहा गया है। अर्थात् जिस व्यक्ति पर श्रीभगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं तो फिर उसके द्वारा किया जाने वाला सारा परिश्रम व्यर्थ है; क्योंकि उनके अप्रसन्न रहने पर उसके किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है। सबों की आत्मा श्रीभगवान हैं ॥१३॥

मनुरुवाच

आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन । स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

अन्वयः— हे अमीवसूदन ! अहं भगवतः आदेशे अनुवर्तेय प्रभो मम, प्रजानां च इह तु स्थानम् अनुजानीहि ॥१४॥

मनु ने कहा

अनुवाद— हे पाप विनाशक ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हूँ, किन्तु पहले आप मेरे तथा मेरी प्रजा के रहने का स्थान बतलायें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वर्तेय वर्तिष्ये । अमीवसूदन पापनाशन । अनुजानीह्यत्र स्थातव्यमित्यनुज्ञां देहि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु ने कहा भगवन् मैं आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ । हे पापों के विनाशक पहले आप उस स्थान को बतलायें जहाँ मैं और मेरी प्रजाएँ रहेंगी ॥१४॥

यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि । अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

अन्वयः— देव ! यत् सर्वसत्त्वानाम् ओकः सा मही महाम्भसि मग्ना देव ! अस्या देव्याः उद्धरणे यत्नः विधीयताम्॥१५॥

अनुवाद— हे देव जो पृथिवी सभी जीवों का निवास स्थान है, वह पृथिवी महार्णव के जल में डूबी हुयी है । पहले आप इस भूदेवी के उद्धार का प्रयास कीजिये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

महीति चेदत आह । यदोकः स्थानं सा मही । हे देव, अस्या देव्याः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम और तुम्हारी प्रजायें पृथिवी पर रहें, तो ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि पृथिवी तो महार्णव के जल में डूबी हुयी हैं; अतएव सर्वप्रथम आप भूदेवी को इस महार्णव के जल से निकालने का प्रयास करें ॥१५॥

मैत्रेय उवाच

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् । कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

अन्वयः— परमेष्ठी तु अपां मध्ये तथा सन्नां गाम् अवेक्ष्य एनां कथम् समुन्नेष्ये इति धिया चिरं दध्यौ ॥१६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी जल के भीतर उस तरह से डूबी हुयी पृथ्वी को देखकर बहुत देर तक इस बात का विचार करते रहे कि मैं इस पृथिवी को ऊपर कैसे लाऊँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं पाने कृतेऽपि पुनरकाण्ड एवोद्भूतानामपां मध्ये सन्नामवसन्नां निमग्नाम् । समुन्नेष्ये उद्धरिष्यामि ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पहले पान कर लिए जान पर भी बिना अवासर के ही उत्पन्न इस जल समूह में डूबी हुयी इस पृथिवी को मैं कैसे ऊपर लाऊँगा । इस बात का ब्रह्माजी ने देर तक चिन्तन किया ॥१६॥

**सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता । अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयाजितैः ॥
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥१७॥**

अन्वयः— मे सृजतः क्षितिः वार्भिः प्लाव्यमना रसागता अथ अत्र सर्गयाजितैः अस्माभिः किम् अनुष्ठेयम् अहं यस्य हृदयादासम् स ईशः मे विदधातु ॥१७॥

अनुवाद—जिस समय मैं सृष्टि के कार्य में लगा था उस समय पृथिवी जल में डूबने जाने के कारण रसातल में चली गयी, इस समय हमलोग सृष्टि के कार्य में नियुक्त हैं । अतएव इसके लिए हमें क्या करना चाहिए ? मेरे इस कार्य को वे ही श्रीभगवान् करें जिनके सङ्कल्प मात्र से मैं उत्पन्न हुआ था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह । सृजतः सतः । वार्भिरद्भिः । रसां रसातलम् । ईश्वरेण सर्गे नियुक्तैः मेऽनुष्ठेयं स एव विदधातु संपादयतु॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि जब मैं सृष्टि के कार्य में लगा हुआ था उसी समय पृथिवी पानी में डूबकर रसातल में चली गयी । इस समय मैं परमात्मा के द्वारा सृष्टि के कार्य में लगाया जा चुका हूँ । अतएव इसके लिए जो मेरे द्वारा किया जाना हो उस कार्य को श्रीभगवान् ही पूरा कर दे ॥१७॥

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ । वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥

अन्वयः— हे अनघ ! इति अभिध्यायतः नासाविवरात् सहसा अङ्गुष्ठपरिमाणकः वाराहतोकः निरगात् ॥१८॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! विदुरजी इस तरह से ब्रह्माजी जब विचार कर रहे थे उसी समय उनकी नाक के छिद्र से अङ्गुष्ठ परिमाण वाला एक छोटा सा वाराह निकला ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

वाराहतोकः सूक्ष्मो वराहः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

वराहतोक शब्द का अर्थ है छोटा सा वराह ॥१८॥ .

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत । गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥

अन्वयः— हे भारत ! तस्य अभिपश्यतः किल खस्थः क्षणेन गजमात्रः प्रववृधे तत् महत् अद्भुतम् अभूत् ॥१९॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के देखते ही देखते आकाश में स्थित वह वराह क्षणभर में हाथी के बराबर हो गया यह बड़े ही आश्चर्य की बात हुयी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

खस्थ आकाशे स्थितः सन् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वह छोटा सा वराह आकाश में ही स्थित था और ब्रह्माजी की आँखों के सामने ही क्षणभर में बढ़कर हाथी के समान बड़े आकार का हो गया ॥१९॥

मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह । दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

अन्वयः— मरीचि प्रमुखैः विप्रैः कुमारैः मनुनना च सह तत् सौकरं रूपं दृष्ट्वा चित्रधा तर्कयामास ॥२०॥

अनुवाद— मरीचि आदि ऋषियों, सनकादिकों तथा मनु के साथ ही वराह के उस रूप को देखकर ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार से विचार किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

चित्रधा अनेकधा ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस सूकर रूप को देखकर ब्रह्माजी अनेक प्रकार के विचार प्रकट करने लगे ॥२०॥

किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् । अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

अन्वयः— सौकरव्याजं एतत् किं दिव्यं सत्त्वम् अवस्थितम् ? अहो बत आश्चर्यम् इदं मे नासायाः विनिःसृतम्॥२१॥

अनुवाद— हरे यह सूकर के रूप में यहाँ कौन सा दिव्यप्राणी प्रकट हो गया है । यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि यह अभी-अभी मेरी नाक से निकला है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को आश्चर्य हो रहा था कि अभी-अभी यह मेरी नाक से छोटा सा वराह निकला था और क्षणभर में यह हाथी के बराबर हो गया ॥२१॥

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः । अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥

अन्वयः— अङ्गुष्ठशिरोमात्रः दृष्टः क्षणाद् गण्डशिलासमः, अपिस्वित् एष यज्ञो भगवान् मे मनः खेदयन् वर्तते॥२२॥

अनुवाद— इसको तो हमलोग अभी-अभी अङ्गूठे के ऊपरी भाग के समान परिमाण वाले के रूप में देखे थे और क्षण भर में यह बढ़कर विशाल शिला के समान आकार वाला हो गया है । कहीं ये यज्ञपुरुष भगवान् ही हमलोगों के मन को इस तरह से मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वमङ्गुष्ठाग्रप्रमाणो दृष्टः । गण्डशिला स्थूलपाषाणस्तत्समः । यज्ञो विष्णुः । निजरूपतिरोधानेन मे मनः खेदयन्॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी आदि सोच रहे थे कि पहले तो अङ्गूठे के अग्रभाग के समान परिमाण वाले दिखे और क्षणभर में बहुत बड़ी पाषाण की शिला के आकार के समान आकार वाले दिख रहे हैं । कहीं भगवान् विष्णु ही अपने रूप को तिरोहित करके हमलोगों के मन को मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः । भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥

अन्वयः— सूनूभिः सह इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः अगेन्द्रसन्निभः यज्ञपुरुषो भगवान् जगर्ज ॥२३॥

अनुवाद— जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ इस प्रकार से विचार कर ही रहे थे कि पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् यज्ञपुरुष गर्जना किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इति मीमांसमानस्य सतः । जगर्जगर्जत् । गिरीन्द्रतुल्यः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ उपर्युक्त प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् गर्जना किए ॥२३॥

ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् । स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥

अन्वयः— स्व गर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुःहरिः ब्रह्माणं तान् द्विजोत्तमान् च हर्षयामास ॥२४॥

अनुवाद— दिशाओं को प्रतिध्वनित करने वाली गर्जना के द्वारा व्यापक श्रीहरि ने ब्रह्माजी तथा उन सभी विप्रों को प्रहर्षित कर दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

गर्जनप्रयोजनमाह- ब्रह्माणमिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की गर्जना का प्रयोजन **ब्रह्माणम् इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । उस गर्जना का प्रयोजन ब्रह्माजी और उनके पुत्रों को प्रहर्षित करना था ॥२४॥

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।
जनस्तपः सत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥२५॥

अन्वयः— मायामयसूकरस्य स्वखेदक्षयिष्णु ते घर्घरितं निशम्य जनस्त सत्यनिवासिनः ते मुनयः त्रिभिः पवित्रैः अगृणन्स्म ॥२५॥

अनुवाद— मायामय वराह भगवान् की अपने खेद को दूर करने वाली घुर्घराहट को सुनकर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक निवासी मुनियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

घर्घरितं तज्जात्यनुकरणध्वनिम् । अनिश्चयेन यः स्वखेदस्तस्य क्षयिष्णु क्षपयिष्णु नाशकम् । ते इति पुनरुक्तिः प्रसिद्धिख्यापनार्था । त्रिभिः पवित्रैर्ऋग्यजुःसाममन्त्रैरगृणन्नस्तुवन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सूकर जाति का अनुकरण करने वाली ध्वनि निश्चय नहीं कर पाने के कारण जो खेद था उसको विनष्ट करने वाली उस ध्वनि को सुनकर जनलोक, तपोलोक एव सत्यलोक में रहने वाले जो मुनिजन थे वे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२५॥

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।
विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥

अन्वयः— तेषां सतां वेदवितानमूर्तिः आत्मगुणानुवादम् ब्रह्म अवधार्य विबुधोदयाय भूयः विनद्य गजेन्द्रलीलः जलम् अविवेश ॥२६॥

अनुवाद— उन मुनीश्वरों द्वारा की जाने वाली स्तुति को अपना गुणानुवाद रूप वेद मानकर वेदों में वर्णित देवताओं का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् एक बार फिर गरजकर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए जल के भीतर प्रवेश कर गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

वेदैर्वितन्यते स्तूयत मूर्तिर्यस्य सः । अत एवात्मनो गुणाननुवदति तथा ततेषां ब्रह्म उच्चारितं वेदमवधार्य ज्ञात्वा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

वेद श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह की स्तुति करते हैं । वे वेद जिस तरह से श्रीभगवान् के गुणों का जैसा वर्णन करते हैं वैसा ही उन मुनियों के द्वारा उच्चरित वेद का निश्चय करके भगवान् ने देवताओं का कल्याण करने के लिए पुन: एक बार गर्जना किया ओर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए वे जल में प्रवेश कर गये ।।२६।।

उत्क्षिप्तवाल: खचर: कठोर: सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ।
खुराहताभ्र: सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्र: ।।२७।।

अन्वय:— उत्क्षिप्तबाल:, खचर: कठोर: सटा विधून्वन् खररोमशत्वक्, खराहताभ्र: सितदंष्ट्र: ईक्षा ज्योति: महीध्र भगवान् बभासे ।।२७।।

अनुवाद— सूकर रूपधारी भगवान् अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले, उनका शरीर कठोर था, वे अपने कन्धे के आयालों को फड़फड़ा रहे थे, त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे तथा जो अपने खुरों से मेघों को तितर-वितर कर रहे थे, उनके दाँत सफेद थे तथा उनकी आँखे चमक रही थीं इस तरह से पृथिवी का उद्धार करने वाले भगवान् सुशोभित हुए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूत: सत्राविवेशेत्यपेक्षायामाह द्वाभ्याम् । उच्चै: क्षिप्तो बाल: पुच्छं येन । खचर आकाशचारी । कठोर: कठिन: । सटा: स्कन्धबालान् । खराणि तीक्ष्णानि रोमाणि यस्या: सा त्वग्यस्य । खुरैराहतान्यभ्राणि येन । सितदंष्ट्रोऽतिशुक्लदंष्ट्र: । ईक्षा निरीक्षणमेव ज्योतिरालोको यस्य । तदा प्रकाशान्तराभावात् । बभासेऽशोभत । महीध्र: पृथिव्या उद्धर्ता ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार का अपना रूप बनाकर भगवान् जल में प्रवेश किए इस प्रकार की आकांक्षा होने पर उसका वर्णन महर्षि मैत्रेय ने दो श्लोकों में किया है । सर्वप्रथम वे अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले वे अपनी गर्दन के बालों को फड़-फड़ाकर अपने खुरों के आघात से बादलों को तितर वितर करने लगे । उनका शरीर कठोर था । उनकी त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे, उनके दाँत श्वेत थे और आँखों से तेज निकल रहा था वही प्रकाश का काम करता था, क्योंकि उस समय दूसरा कोई प्रकाश था ही नहीं, इस तरह से वराह भगवान् सुशोभित हो रहे थें ।।२७।।

घ्राणेन पृथ्व्या: पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेश: स्वयमध्वराङ्ग: ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ।।२८।।

अन्वय:— एवम् अध्वराङ्ग: क्रोडापदेश: घ्राणेन पृथ्व्या: पदवीं विजिघ्रन् कराल दंष्ट्र अपि अकारालदृग्भ्यां गृणत विप्रान् उद्वीक्ष्य कम् आविवेश ।।२८।।

अनुवाद— भगवान् स्वयम् यज्ञ पुरुष होने पर भी सूकर का रूप बनाये रहने के कारण वे अपनी नाक से सूंधकर पृथिवी का पता लगा रहे थे । उनकी दाढें कठोर थीं अतएव देखने में भयङ्कर लगते थे फिर भी वे अपनी सौम्य दृष्टि से स्तुति करने वाले मुनियों को देखकर जल में प्रवेश किए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

क्रोडापदेशो वराहच्छद्मा । अत: स्वयमध्वराङ्गोऽपि पशुरिव घ्राणेन विजिघ्रन् । गृणत: स्तोतृन्विप्रानुद्वीक्ष्योर्ध्वं वीक्ष्य कं जलमाविशत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

वराह का रूप बनाये रखने के कारण भगवान् यज्ञपुरुष होने पर भी पशु के समान नाक से सूंघकर वे पृथिवी का पता लगा रहे थे। कठोर दाढों के कारण देखने में भयङ्कर लगने पर भी वे स्तुति करने वाले मुनियों को अत्यन्त सौम्य दृष्टि से देखकर जल में प्रवेश किए ॥२८॥

स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।
उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥

अन्वयः— वज्रकूटाङ्गनिपातवेगःसः उदन्वान् विशीर्णकुक्षिः स्तनयन् उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैः इव आर्तः सन् चुक्रोश यज्ञेश्वर ! मा पाहि इति ॥२९॥

अनुवाद— वज्र समूह के समान कठोर अङ्ग वाले श्रीभगवान् के गिरने के वेग के कारण समुद्र का पेट मानो फट गया गरजता हुआ वह अपनी ऊँची-ऊँची तरङ्ग रूपी भुजाओं को उठाकर चिल्ला पड़ा हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तदानींतनसमुद्रध्वनिमुत्प्रेक्षते । सह उदन्वान्समुद्र आर्त इव स्तनयन् शब्दं कुर्वन् भो यज्ञेश्वर, मा मां पाहि माम् अव इत्येवं चुक्रोश । आर्तसादृश्यमाह । । उत्सृष्टाः प्रसारिता दीर्घा ऊर्मय एव भुजास्तैर्विशिष्टः । आर्तत्वे हेतुः-वज्रकूटो वज्रमयः पर्वतस्तद्वदङ्गं यद्भगवततस्तस्य निपातवेगेन विशीर्णा कुक्षिर्यस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र के जल में प्रवेश करते समय समुद्र में जो ध्वनि हुई उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं जिस समय वज्रसमूह के समान कठोर अङ्गों वाले श्रीभगवान् उस महार्णव के जल में कूदे उस समय समुद्र का पेट मानो फट गया । उस समय बड़ी-बड़ी लहरें समुद्र में उठने लगीं । वे ही जैसे समुद्र की भुजाएँ हों । उन तरङ्ग रूपी हाथों को ऊपर उठाकर जैसे समुद्र चिल्ला रहा हो कि हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

अन्वयः— क्षुरप्रैः खुरैः तदा आपः दारयन् त्रिपरू उत्पारपारं रसायां गां ददर्श तत्र सुषुप्सुः अग्रे यां जीवधानीम् स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

अनुवाद— उस समय बाण के समान तीक्ष्ण खुरों से जल को चिरते हुए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् उस अपार जल राशि के उस पार पहुँच गये और रसातल में विद्यमान जीवों के आश्रयभूत पृथिवी को देखे, जिसको कल्प के अन्त में शयन करने के इच्छुक श्रीभगवान् अपने भीतर लीन कर लिए थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदा रसायां रसातले गां पृथ्वी ददर्श । कः । त्रिपरुः त्रीणि परूंषि सवनात्मकानि पर्वाणि यस्य । यज्ञमूर्तिरित्यर्थः । किं कुर्वन् । क्षुरप्रा आयताग्रगाः शरास्तत्सदृशैः खुरैरपो दरयन् । कथम् । उत्पारपारं उत्पाराणां पारशून्यानामप्यपां पारमवसानं यथा भवति तथा विदारयन् । कथंभूतः । अग्रे प्रलयसमये तत्र तास्वप्सु सुषुप्सुः शिशयिषुः सन् जीवा धीयन्ते यस्यां सर्वजीवाधारभूतां यां स्वयमभ्यधत्त आभिमुख्येन दधार । जठरे धृतवानित्यर्थः । अनेन तदुद्धरणेऽनायासं द्योतयति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उस समय यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् जिनके अग्रभाग विस्तृत हों ऐसे क्षुरप्र बाणों के समान खुरों के द्वारा उस अपार जल राशि को चीरते हुए उसके पार पहुँच गये और वहाँ उन्होंने रसातल में विद्यमान पृथिवी को देखा। प्रलय काल की बेला में सोने के लिए उद्यत श्रीभगवान् सभी जीवों के आश्रय भूत पृथिवी को उदरस्थ कर लिए थे। भगवान् को **त्रिपरू** कहा गया है। उसका विग्रह है त्रीणि परूंषि अस्मिन्। अर्थात् जिसमें तीन परु अर्थात् सवन होते हों उसको त्रिपरू कहेंगे। यज्ञ में तीन सवन होते हैं। श्रीभगवान् यज्ञपुरुष है, अतएव उनको त्रिपरू कहा गया है। **उत्पारपारम्** का विग्रह है **उत्पाराणां पारशून्यानां पारम् उत्पारपारम्** अर्थात् अपार। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि पृथिवी का उद्धार करने में श्रीभगवान् को कोई प्रयास नहीं करना है। क्योंकि उस पृथिवी को भगवान् प्रलयकाल में जठरस्थ कर लिए थे ॥३०॥

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः।
तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥
जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवाम्भसि।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

अन्वयः— निमग्नां महीं स्वदंष्ट्रया उदधृत्य स उत्थितः रसाया संरुरुचे तत्रापि गदया आपतन्तं दैत्यं सुनाभसंदीपिततीव्र मन्युः असह्यविक्रमं रुन्धानं स लीलया इभं मृगराडिव अम्भसि जघान। तद्रक्त पंङ्कांकितगण्डतुण्डः जगतीं विभिन्दन् गजेन्द्रः यथा संकरूचे ॥३१-३२॥

अनुवाद— जल में डूबी हुयी पृथिवी को अपने दाँतों पर उठाकर वे रसातल से ऊपर आये। उस समय भी अपनी गदा लेकर पीछा करने वाले तथा असह्य पराक्रमी हिरण्याक्ष जो प्रहार कर रहा था उसके कारण उनका क्रोध चक्र के समान तीव्र हो गया और उसको वे जल में ही लीला पूर्वक वैसे ही मार डाले जैसे कोई सिंह किसी हाथी को लीला पूर्वक मार डालता है। उस समय उसके रक्त से सने हुए उनकी कनपटी और थुथुन उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे कोई हाथी लाल मिट्टी वाली भूमि को खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

रसायाः सकाशादुत्थितः संरुरुचे सम्यगशोभत। तत्राप्यम्भसि गदामुद्यम्यागच्छन्तं रुन्धानं प्रतिघ्नन्तं न सह्यः सहनानर्हो विक्रमो यस्य तं दैत्यं सुनाभं चक्रं तद्वत्संदीपितस्तीव्रो मन्युर्यस्य। यद्वा मयि विद्यमाने किमिति परिभवं सहस इति सुनाभेन संदीपितस्तीव्रमन्युः स भगवान्सिंहो जगर्जमिव लीलया जघानेत्युत्तरेणान्वयः। गजेन्द्रो जगतीं क्रीडया विदारयन् गैरिकया यथा अरुणगण्डतुण्डो भवति तथा तस्य रक्तमेव पङ्कस्तेनाङ्कितौ गण्डौ तुण्डं च यस्य सः ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जल में डूबी हुयी पृथीवी को अपने दाँतों पर उठा लिया और उसको लेकर वे रसातल से ऊपर निकले। उस समय पृथिवी को अपने दाँतों पर उठाये रखने के कारण श्रीभगवान् की अत्यधिक शोभा हो रही थी। वहाँ भी हिरण्याक्ष अपनी गदा लेकर उनका पीछा किया उसका पराक्रम असह्य था और वह श्रीभगवान् पर गदा से प्रहार कर रहा था। उसके कारण श्रीभगवान् का क्रोध चक्र के समान तीक्ष्ण हो गया। **सुनाभसंदीपित तीव्रमन्युः** यह भी अर्थ हो सकता है कि चक्र श्रीभगवान् के क्रोध को यह कहकर अत्यधिक बढ़ा दिया कि मेरे रहते हुए आप इतना परिभव क्यों सह रहे हैं ? भगवान् बड़ी आसानी से उसको उसी तरह मार डाले जैसे कोई सिंह हाथी को मार डालता है। हिरण्याक्ष के खून से वराह भगवान् की कनपटी और थुथुन उसी तरह लाल हो गया था जिस तरह कोई हाथी गैरिक मिट्टी को लीलापूर्वक खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाऽङ्ग ।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥

अन्वयः— अङ्ग तमालनीलम् सितदन्तकोट्या गजलीलयाक्ष्माम् उत्क्षिपन्तम् प्रज्ञाय बद्धञ्जलयः विरिञ्चिमुख्याः अनुवाकैः ईशम् उपतस्थुः ॥३३॥

अनुवाद— तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, जिस तरह कोई हाथी अपने दाँतों पर तमाल पुष्प को धारण किए हो उस तरह से अपने श्वेत दाँतों पर पृथिवी को धारण किए हुए जल से बाहर निकले वराह भगवान् को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण थे वे हाथ जोड़कर वैदिक अनुवाकों के समान वाक्यों के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रज्ञाय आलक्ष्य । अनुवाको वैदिकं सूक्तं तत्सदृशैर्वाक्यैस्तुष्टुवुः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पृथिवी का उद्धार कर रहे हैं इस बात को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण वहाँपर विद्यमान थे वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् की स्तुति वैदिक सूक्तों के समान वाक्यों से करने लगे ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलील्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥३४॥

अन्वयः— हे यज्ञभावन, अजित ! जितं जितम्, स्वां त्रयी तनुं परिधुन्वते नमः, यद्रोमगर्तेषु अध्वराः निलिल्युः तस्मै कारण सूकराय ते नमः ॥३४॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे यज्ञपते अजित भगवन् आपकी जय हो , जय हो, अपने त्रयीरूपी शरीर को फड़फड़ाने वाले आपको नमस्कार है । आपके रोमकूपों में सभी यज्ञ लीन हो गये ऐसे सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप सूकर रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भो अजित, ते त्वया जितं जितमिति संभ्रमे वीप्सा । यज्ञैर्भाव्यते आक्रियत इति तथा । त्रयीं वेदमयीम् । निलिल्युर्लीनप्रायाः। कारणं पृथिव्युद्धरणं तेन सूकराय ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हे अजित आपकी जय हो ! जय हो ! यहाँ पर संभ्रम के अर्थ में वीप्सा है । हे यज्ञों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाले भगवन् आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ा रहे हैं । आपके रोमकूपों में ही सभी यज्ञ लीन हो गये। आप पृथिवी का उद्धार करने के ही लिए सूकर शरीर धारण किए हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥३४॥

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

अन्वयः— हे देव ! तव एतत् यत् अध्वरात्मकम् रूपं तत् दुष्कृतात्मनां ननु दुर्दर्शनं, यस्य ते त्वचि छन्दांसि रोमसु बर्हिः दृशि आज्यं त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

अनुवाद— हे देव ! आपका यह जो यज्ञात्मक रूप है, इसका दर्शन प्राणियों को होना कठिन है । आपके त्वचा में छन्दों का, रोमों पंक्तियों में कुश, नत्रों में घृत तथा चरणों में होता, उध्वर्यु, उद्गता और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म विद्यमान हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञात्मतां प्रपञ्चयन्त· स्तुवन्ति–रूपमित्यादिचतुर्भिः । छन्दांसि गायत्र्यादीनि । यज्ञाङ्गभूतच्छन्दआद्यनुवादेन भगवदवयवता **विधीयते । बर्हिःशब्दे दीर्घाभाव आर्षः । दृशि चक्षुषि । चातुर्होत्रं होत्रादिकर्मचतुष्टयम् ॥३५॥**

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण भगवान के यज्ञात्मक रूप का विस्तार करते हुए चार श्लोकों से उनकी स्तुति करते हैं वे कहते हैं कि आपकी त्वचा में गायत्री आदि छन्दों का निवास है । यज्ञ के अङ्गभूत छन्द आदि का अनुवाद करके उनको श्रीभगवान् की अङ्गता का विधान किया गया है । बर्हिशब्द में आर्ष प्रयोग होने के कारण दीर्घ नहीं किया गया है । आपके नेत्रों में ज्योति का निवास और चरणों में चातुर्होत्र का निवास बतलाया गया है । होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चारो प्रकार के ऋत्विजों के कर्म को चातुर्होत्र कहते हैं ॥३५॥

स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥

अन्वयः— हे ईश ! तुण्डे स्रुक् आसीत् नासयोः स्रुवः उदरे इडा, कर्णरन्ध्रे, चमसाः, आस्ये प्राशित्रम्, ते ग्रसने ग्रहाः, हे भगवन् यत् ते चर्वणभूतम् अग्निहोत्रम् ॥३६॥

अनुवाद— हे परमात्मन् आपके तुण्ड (थुथुन) में सुक् है, नाकों में सुवा है, उदर (पेट) में इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र, कानों के छिद्र में चमस है) मुख में प्राशित्र (ब्रह्मभाग पात्र) है, कण्ठ के छिद्र में ग्रह (सोमपात्र) हैं। हे भगवन् आपका जो चबाना है वही अग्निहोत्र है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

स्रुक् जुहूस्तुण्डे मुखाग्रे । स्रुवो नासिकयोः । इडा भक्षणपात्री । चमसा ग्रहाश्च सोमपात्राणि । प्राशित्रं ब्रह्मभागपात्रम्। ग्रस्यतेऽनेनेति ग्रसनं मुखान्तर्वर्तिच्छिद्रम् । चर्वणं भक्षणम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा हे भगवन् आपके मुख के अग्रभाग में स्रुक है, नाकों में स्रुवा है, उदर में इडा (भक्षणपात्री) है, कानों के छिद्रों में चमसों का निवास है, मुख में प्राशित्र ब्रह्मभाग पात्र है । **ग्रसन** शब्द से **ग्रस्यते अनेन** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कण्ठछिद्र को कहा गया है । चर्वण शब्द खाने का बोधक है ॥३६॥

दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥

अन्वयः— अनुजन्म दीक्षा, शिरोधरम् उपसदः, प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः, जिह्वा प्रवर्ग्यः, तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं ते असवः चितयः ॥३७॥

अनुवाद— हे यज्ञ स्वरूप भगवन् बार-बार आपका अवतार ग्रहण करना ही आपकी दीक्षणीय इष्टि है, आपकी गरदन ही उपसद (तीन इष्टियाँ हैं), आपके दोनों दाढें प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) है और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं, जिह्वा ही प्रवर्ग्य प्रत्येक उपसद के पहले किया जाने वाला महावीर नामक कर्म है । आपका शिर सभ्य (होम रहित अग्नि) और अवसथ्य (औपासनाग्नि) हैं आपके प्राण ही चिति (इष्टिका चयन) है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

दीक्षा दीक्षणीयेष्टिः । अनुजन्म बारंबारमभिव्यक्तिः । उपसदस्तिस्त्रइष्टयः । शिरोधरं ग्रीवा । प्रायणीया दीक्षाऽनन्तरेष्टिः, उदयनीया समाप्तीष्टिः, ते एव दंष्ट्रे यस्य । प्रवर्ग्यो महावीरः प्रत्युपसदं पूर्वं क्रियते । सभ्यो होमरहितोऽग्निः आवसथ्यमौपासनाग्निः तयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तत्तव क्रतुरूपस्य शीर्षं के शिरः । चितय इष्टिकाचयनानि पञ्चासवः प्राणाः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

दीक्षणीय इष्टि को ही दीक्षा कहते हैं । आपका बार-बार अवतार ग्रहण करना ही दीक्षा है । उपसद शब्द से तीन इष्टियाँ कहीं जाती हैं । गरदन को शिरोधर कहा गया है । आपके दोनों दाँत ही प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं । आपकी जिह्वा ही प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसद से पूर्व किया जाने वाला महावीर कर्म) हैं । आपका शिर ही सभ्य (होम रहित अग्नि) है और अवसथ्य (औपासनाग्नि) है । आप स्वयं यज्ञस्वरूप हैं आपके पाँचो प्राण ही (इष्टिकाचयन) हैं ॥३७॥

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥३८॥

अन्वयः— रेतः तु सोमः,अवस्थितिः सवनानि, हे देव तव धातवः संस्थाविभेदाः, शरीरसन्धिः सर्वाणि सत्त्राणि, त्वं सर्वयज्ञः क्रतुः, बन्धनः इष्टिः ॥३८॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपका वीर्य ही सोम है, आपका बैठना ही प्रातः सवन इत्यादि तीनों सवन हैं, आपकी सातों धातुएँ ही अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की संन्धियाँ ही सम्पूर्ण सत्र हैं । इस तरह आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोम रहित याग और क्रतु) (सोम सहित याग) स्वरूप हैं आपके शरीर अंगों को मिलाये रखने वाली मांसपेशियाँ ही इष्टियाँ हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

प्रातःसवनादीन्यवस्थितिरासनं बाल्याद्यवस्था वा । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्र आप्तोर्याम इति सप्तसंस्थादिभेदास्त्वङ्मासादि सप्तधातवः । सत्राणि द्वादशाहादीनि बहुयागसङ्घातरूपाणि । असोमा यज्ञाः, ससोमाः क्रतवः, तद्रूपस्त्वम् । इष्टिर्यजनमनुष्ठानं तदेव बन्धनं यस्य सः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा भगवन् आपका बैठना अथवा आपकी बल्यावस्था इत्यादि अवस्थाएँ ही प्रातः सवन इत्यादि तीन सवन हैं । आपके त्वक् मांस, आदि सात धातुएँ ही अग्निवेश, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आतोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की सन्धियाँ ही द्वादशाह आदि अनेक यज्ञ समूह हैं। सोम रहित याग यज्ञ कहलाता है और सोम सहित याग क्रतु कहलाता है । ये सब आपके रूप हैं । और आपके अङ्गों को बाँधे रखने वाली मांसपेशियाँ इष्टि हैं । जो अनुष्ठान स्वरूप होती हैं ॥३८॥

नामो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

अन्वयः— अखिल मन्त्र देवता द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ते नमो नमः । वैराग्य भक्त्यात्मजयानु भावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण मन्त्र देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके स्वरूप हैं । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है । वैराग्य, भक्ति तथा मन की एकाग्रता से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह ज्ञान आपका स्वरूप है । आप सबों के विद्यागुरु हैं आपको बारम्बार नमस्कार हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तमेव सपरिकरं कीर्तयन्तः प्रणमन्ति नमो नम इति । अखिलमन्त्रादिरूपाय । क्रियात्मने सामान्यव्यापाररूपाय। किंच वैराग्ययुक्तकर्मसाध्या सत्त्व शुद्धिस्ततो भक्तिस्तत आत्मजयश्चित्तस्थैर्यं तेनानुभावितं साक्षात्कृतं यज्ज्ञानं तस्मै । एवं भूतज्ञानप्रदाय गुरवे च ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का ही परिकर के साथ वर्णन करते हुए ऋषिगण श्रीभगवान् को प्रणाम करते हैं । श्रीभगवान् सम्पूर्ण मन्त्रादि रूप हैं तथा वे ही सम्पूर्ण व्यापार स्वरूप हैं । साथ ही वैराग्य पूर्वक किए जाने वाले कर्मों के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है उसके कारण भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति के द्वारा उपासक का चित्त स्थिर हो जाता है । उसके द्वारा जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान स्वरूप हैं श्रीभगवान् ऐसे आपको बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार के ज्ञान को प्रदान करने वाले सबों के विद्यागुरु आप ही हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।३९।।

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ।।४०।।

अन्वयः— हे भूधर भगवन् त्वया दंष्ट्राग्रकोटया धृता सभूधरा भूः वनात् निःसरतः मत्त गजेन्द्रस्य दता सपत्रापद्मिनी धृता यथा विराजते ।।४०।।

अनुवाद— हे पृथिवी को धारण करने वाले भगवन् आपके द्वारा अपने दाँत के अग्रभाग में धारण की गयी पर्वतों से युक्त पृथिवी उसी तरह (सुशोभित) हो रही है जैसे जल से बाहर निकलने वाला कोई मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों पर पत्तों से युक्त किसी कमलिनी को धारण कर रखा हों ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

हे भूधर ! सभूधरा सपर्वता । वनादुदकान्निर्गच्छतो गजेन्द्रस्य । दत्ता दन्तेन ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने श्रीभगवान् को भूधर पद से संबोधित करते हुए कहा है कि आपके अपने दाँतों के ऊपर पर्वतों से युक्त धारण की गयी पृथिवी उसी तरह से सुशोभित हो रही है जिस तरह से जल से निकलने वाला मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों के ऊपर पत्तों से युक्त कमलिनी को धारण कर रखा हो ।।४०।।

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ।।४१।।

अन्वयः— अथ दत्ता घृतेन भूमण्डलेन ते इदं त्रयीमयं सौकरं रूपं भूयसा शृङ्गोढघनेन कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः चकास्ति ।।४१।।

अनुवाद— आपके दाँतों के ऊपर रखे हुए भूण्डल के साथ आपका यह वेदमय सूकर रूप इस तरह से सुशोभित हो रहा है जिस तरह शिखरों पर बहुत अधिक मेघसमूह से कुलाचल पर्वत की शोभा होती है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

त्वया धृता भूर्विराजत इत्युक्तम्, इदानीं भूमण्डलेन त्वद्रूपं विराजत इत्याहुः-त्रयीति । अथेत्यर्थान्तरे । ते इदं रूपं दन्तेन धृतं यद्भूमण्डलं तेन चकास्ति शोभते । शृङ्गेणोढो घृतो यो घनस्तेन । भूयसाऽतिमहता विभ्रमो विलासः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि आपके द्वारा धारण की गयी पृथिवी सुशोभित हो रही है । इस श्लोक में यह कहा जा रहा है कि भूमण्डल के द्वारा आपका श्रीविग्रह सुशोभित हो रहा है । इस श्लोक में श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह के सुशोभित होने के अर्थ में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । आप अपने दाँतों के ऊपर भूमण्डल धारण कर रखे हैं, उससे आपका यह यज्ञवाराह रूप अत्यधिक सुशोभित हो रहा है । मेघमाला से युक्त शिखर वाले कुलाचल पर्वत की शोभा को बहुत अधिक धारण करता है आपका यह रूप ॥४१॥

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥

अन्वयः— लोकाय ते पत्नीम् सतस्थुषां जगतां मातरम् संस्थापय यतः पिता असि । त्वया सह अस्यै नमसा विधेम यस्यां अरणौ अग्निम् इव स्वतेजः अधाः ।।४२।।

अनुवाद— हे नाथ ! चराचर जीवों के सुख पूर्वक रहने के लिए आप अपनी पत्नी तथा जगत् की माता पृथ्वी को आप जल पर स्थापित करें । आप जगत् के पिता हैं । अरणि में विद्यमान अग्नि के समान इसमें आपने धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया है । हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं।।४२।।

भावार्थ दीपिका

लोकाय वासस्थानार्थम् । ते पत्नीम् । जगतां मातरम् । यतस्त्वं पितासि । एवं सति तत्र स्थिताः सन्तस्त्वया पित्रा सहास्यै मात्रे मनसा विधेम नमनं करिष्यामः, नमस्कारेण परिचरेमेति वा । स्वतेजोधारणशक्तिं याज्ञिका मन्त्रतोऽग्निमरणाविवाधाः निहितवानसि ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जीवों के निवास स्थान के लिए आप अपनी पत्नी तथा चराचर जगत् की माता भूदेवी को जल के ऊपर स्थापित कर दें । आप जगत् के पिता हैं । यहाँ पर विद्यमान हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं । अथवा नमस्कार के द्वारा इनकी सेवा करते हैं । जिस तरह याज्ञिकगण मन्त्र के द्वारा अरणि में अग्नि का आधान कर देते हैं उसी तरह आपने पृथिवी में धारण शक्ति रूपी अपने तेज का आधान कर दिया हैं ॥४२॥

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥४३॥

अन्वयः— प्रभो ! तव अन्यतमः रसां गतायाः भुवः उदविबर्हणम् कः श्रद्दधीत ? विश्व विस्मये त्वयि असौ विस्मयो न यः मायया अतिविस्मयं इदं ससृजे ।।४३।।

अनुवाद— प्रभो, रसातल में गयी हुयी इस पृथिवी का आपसे भिन्न कोई दूसरा उद्धार करना कौन चाहेगा? आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एकमात्र आश्रय हैं, अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपने तो अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चर्यमय इस विश्व की रचना की है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

इदं च त्वयाऽतिदुष्करं कृतमित्याहुः-क इति । प्रभो, तव त्वया कृतं भुव उद्विबर्हणमुद्धरणं त्वदन्यः कः श्रद्दधीत स्पृहयेत् । अध्यवस्येदित्यर्थः । त्वयि पुनरसौ विस्मयो न भवति यतो विश्वे सर्वे विस्मया यस्मिन् । कुतः । यो भवान् । अतिविस्मयमत्यद्भुतमिदं विश्वम् । क्रियाविशेषणं वा । ससृजे सृष्टवान् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने कहा है कि आपने यह अत्यन्त कठिन कार्य किया है । हे प्रभो ! आपने जो पृथिवी का उद्धार किया है उसे आपसे भिन्न दूसरा कौन करने का साहस कर सकता है । किन्तु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एक मात्र आश्रय हैं अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि आपने अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चर्यमय विश्व की रचना की हैं ॥४३॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपः सत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥४४॥

अन्वयः— हे ईश ! वेदमयं निजं वपुः विधुन्वता सटाशिखोद्धूत शिवाम्बुबिन्दुभिः जनस्तपः सत्यनिवासिनः वयम् विमृज्यमाना भृशं पाविताः ॥४४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जब आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ाते हैं तो आपके गर्दन के बालों से निकली हुयी पवित्र जल की बुन्दों से जनलोक, तपोलाक तथा सत्यलोक निवासी हमलोग भींगकर अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं॥४४॥

भावार्थ दीपिका

विस्मयं दर्शयन्तः प्रार्थयन्ते- विधुन्वतेति द्वाभ्याम् । सटानां शिखाभिरग्रैरुद्धूता उच्छलिता ये शिवा अम्बुबिन्दवस्तैः सिच्यमाना वयं पवित्रीकृताः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

आश्चर्य को प्रदर्शित करते हुए ऋषिगण दो श्लोकों से प्रार्थना करते हैं । आपके कन्धे के बालों के अग्रभाग से निकले हुए पवित्र जल की बूंदों से सींचित होकर हमलोग पवित्र हो जाते हैं । इस प्रकार से इस श्लोक में ऋषिगण श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं ॥४४॥

स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥४५॥

अन्वयः— यः अपारकर्मणः ते एष तव पारम् अवलोकयति स वै बत भ्रष्टमतिः । यत् योगमाया गुणयोगमोहितं समस्तं विश्वं भगवन् शं विधेहि ॥४५॥

अनुवाद— आपके कर्मों का कोई पार (अन्त) है ही नहीं ऐसे आपके कर्मों का जो पार जानना चाहता है वह अवश्य भ्रष्टबुद्धि वाला पुरुष है । आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तव कर्मणां पारं य एष तेऽवलोकयति ज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः । यस्य तव योगमायया यो गुणैः सह योगस्तेन मोहितम्। अतो विश्वस्य शं मङ्गलं विधेहि । यथा त्वामचिन्त्यानन्तशक्तिं ज्ञात्वा भजे तथाऽनुगृहाणेत्यर्थः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण प्रार्थना करते हैं कि आपके कर्मों का कोई अन्त नहीं है, फिर भी जो व्यक्ति आपके कर्मों का अन्त जानना चाहता है, वह निश्चित रूप से भष्टबुद्धि वाला पुरुष है । यह सारा विश्व आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से मोहित है अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें । अर्थात् आप ऐसी कृपा करें कि हमलोग अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न आपको जानकर आपका भजन करें ॥४५॥

मैत्रेय उवाच

इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः । सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥

अन्वयः— ब्रह्मवादिभिः तै मुनिभिः इति उपस्थीयमानः अविता स्वखुराक्रान्ते सलिले अवनिम् उपाधत्त ॥४६॥

अनुवाद— हे विदुर ! उन ब्रह्मवादी मुनियों द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाते हुए सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने अपने खुरों से जल को स्तम्भित करके उसके ऊपर पृथिवी को रख दिया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

उपस्थीयमानः स्तूयमानः । स्वखुराक्रान्त इति जलेऽपि धारणशक्त्याधानं दर्शयति । अविता रक्षकः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हैं । वे उन ब्रह्मवादी महर्षियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर दिये और उसके ऊपर पृथिवी को स्थापित कर दिए । **स्वखुराक्रान्ते** इस पद के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि श्रीभगवान् ने जल में भी धारण शक्ति का आधान कर दिया ॥४६॥

स इत्थं भगवानुर्वी विष्वक्सेनः प्रजापतिः । रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

अन्वयः— इत्थं रसायाः लीलया उन्नीताम् उर्वीं सः विष्वक्सेनः प्रजापतिः भगवान् अप्सुन्यस्य ययौ ॥४७॥

अनुवाद— इस प्रकार से लीला पूर्वक रसातल से लायी गयी पृथ्वी को प्रजाओं के स्वामी भगवान् श्रीहरि जल पर स्थापित्त करके अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।
शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

अन्वयः— यः हरिमेधसः एवम् एताम् कथनीय मयिनः सुभद्रां उशतीं कथां शृण्वीत श्रवयेत वा अस्य हृदि जनार्दनः आशु प्रसीदति ॥४८॥

अनुवाद— जो भगवद्भक्त इस प्रकार से मायापति श्रीहरि की कहने योग्य कमनीय मङ्गलमयी कथा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, उसके हृदय में भगवान् जनार्दन शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

कथनीयानि मायीनि मायावन्ति चरित्राणि यस्य । श्रवयेत श्रावयेत । ह्रस्वत्वमार्षम् । उशतीं कमनीयाम् । हृदि प्रसीदति स्वमनसि संतुष्यतीत्यर्थः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की ये मायामयी कथाएँ कहने योग्य हैं । इन कथाओं को जो भक्ति पूर्वक सुनता है अथवा सुनाता है । श्रवयेत में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है । श्रीभगवान् की ये कथायें कमनीय और मङ्गलमयी है । इनके सुनने और सुनाने वाले पर श्रीभगवान् अपने अन्तःकरण से प्रसन्न होते हैं ॥४८॥

तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥

अन्वयः— सकलाशिषाम् प्रभौ तस्मिन् प्रसन्ने किं दुर्लभम् लवात्मभिः ताभिः अलम् । अनन्यदृष्ट्या भजताम् गुहाशयः परः पराम् स्वगतिं स्वयं विधत्ते ॥४९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं । उनके प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी दुर्लभ

नहीं रह जाता है । तुच्छ कामनाओं को करने से कोई भी लाभ नहीं है । जो पुरुष श्रीभगवान् का अनन्या भक्ति से भजन करते हैं उनको तो अन्तर्यामी भगवान अपने आप अपना परम पद प्रदान कर देते हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

आशिषो यद्यपि सुलभास्तथापि न प्रार्थनीय इत्याह । ताभिराशीर्भिरलम् । लवात्मभिस्तुच्छाभिः । न च तदा भजनस्य वैफल्यं शङ्कनीयमित्याह । भगवद्भजनव्यतिरेकेण फलान्तरदृष्टिं विना भजतां स्वपदप्राप्तिं स्वयमेव विधत्ते । गुहाशयत्वादहैतुकीं भक्तिं जानन् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् से मनोरथों की पूर्ति के लिए प्रार्थना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि वे तो कामनाएँ तुच्छ हैं । यदि कहें के तब तो भगवान् की भक्ति व्यर्थ है तो ऐसी बात नहीं है । श्रीभगवान् के भजन से भिन्न किसी दूसरे फल की प्राप्ति की कामना से रहित भक्तों को श्रीभगवान् अपने आप अपना पद प्रदान कर देते हैं । क्योंकि वे सबों के हृदय में निवास करते हैं ओर अपने भक्तों की अहैतुकी भक्ति को जानते हैं ॥४९॥

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे वराहप्रादुर्भावानुवर्णने त्रयोदशोऽध्याय: ॥१३॥

अन्वयः— नरेतरम् बिना पुरुषार्थसारवित् को नाम लोक भवापहाम् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् कर्णाञ्जलिभिः आपीय अहो विरज्येत ।।५०।।

अनुवाद— पशुओं को छोड़कर अपने पुरुषार्थ के सार को जानने वाला संसार का कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो संसार के बन्धन से मुक्त कर देने वाली श्रीभगवान् की प्राचीन कथा सुधा को अपने कानों से सुनकर पुनः उससे विरक्त हो जाय ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के वराह प्रादुर्भावानुभाव वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतः को नाम पुराकथानां पूर्ववृत्तानां मध्य कथंचिदापीय विरज्येत विरमेत् । नरेतरं पशुं बिना ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा जो पुरुषार्थ के सार को जानता हो और श्रीभगवान् की प्राचीन कथाओं में से किसी कथा को एक बार भी किसी प्रकार से सुनकर पुन: उन सबों से विरक्त हो जाय । ऐसा तो कोई पशु ही हो सकता है मनुष्य नहीं है ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

दिति का गर्भ धारण

श्रीशुक उवाच

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।
पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥

अन्वयः— कौषारविणा उपवर्णिता कारणसूकरात्मनः हरेः कथां निशम्य सः उद्यताञ्जलिः धृतव्रतः विदुरः न च अतितृप्तः पुनःपप्रच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मैत्रेयजी के द्वारा वर्णित प्रयोजनवशात् सूकर बने हुए श्रीहरि की कथा को सुनकर हाथ जोड़े हुए तथा श्रीहरि की कथा सुनने का व्रत लिए हुए विदुरजी पूर्णरूप से तृप्त नहीं होने के कारण उनसे पुनः पूछे॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे निदानं तु तद्वधे वक्तुमुच्यते । संध्यायां कश्यपाद्गर्भसंभवः कामतो दितेः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष के वध का कारणभूत सनकादिकों के शाप को बतलाने के लिए, संध्या की बेला में कामार्त दिति में कश्यप महर्षि के द्वारा गर्भाधान का वर्णन इस चौदहवें अध्याय में किया जा रहा है ॥१॥

विदुर उवाच

तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिण यज्ञमूर्तिना । आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

अन्वयः— हे मुनिश्रेष्ठ ! तेनैव यज्ञमूर्तिना हरिणा आदिदैत्यः हिरण्याक्षः हतः इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मुनियों में श्रेष्ठ उन्हीं यज्ञमूर्ति श्रीहरि ने आदिदैत्य हिरण्याक्ष को मारा ऐसा हमने सुना है॥२॥

भावार्थ दीपिका

तेनैव येन भूमिरुद्धृता ।अनुशुश्रम त्वन्मुखात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विदूरजी ने कहा कि जिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का उद्धार किया उन्हीं श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष का वध किया यह आपने अभी-अभी बतलाया है ॥२॥

तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया । दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया क्षोणी च उद्धरतः तस्य दैत्यराजस्य च कस्माद् हेतोः मृधः अभूत् ॥३॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जिस समय श्रीभगवान् पृथिवी को अपने दाँतों पर रखकर उसका उद्धार कर रहे थे उस समय उस दैत्यराज और श्रीहरि का किस कारण से युद्ध हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मृधो युद्धम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

मृध शब्द युद्ध का बोधक है ॥३॥

मैत्रेय उवाच

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः । यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥४॥

अन्वयः— हे वीर त्वया साधु पृष्टम् यत् त्वम् मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् हरेः अवतार कथां पृच्छसि ॥४॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । क्योंकि आपने मनुष्यों के मृत्यु के पाश को विनष्ट करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को पूछा है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

साधुत्वे हेतुः-यद्यस्मात्त्वं हरेरवतारकथां पृच्छसीति । मृत्योः पाशं विशातयति मोचयतीति तथा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है क्योंकि आप मनुष्यों को मृत्यु के पाश से मुक्त करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को आप पूछ रहे हैं ॥४॥

ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः । मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥५॥

अन्वयः— यया मुनिना गीतया उत्तानपदः अर्भक एव पुत्र मृत्योः मूर्ध्नि अङ्घ्रिम् कृत्वा हरेः पदम् आरुरोह ॥५॥

अनुवाद— श्रीनारदजी के द्वारा सुनायी गयी श्रीहरि की कथा के द्वारा उत्तानपाद का छोटा सा पुत्र ध्रुव मृत्यु के शिर पर पैर रखकर श्रीहरि के लोक में चला गया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति । यया कथया उत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः । मुनिना नारदेन । अर्भक एव । यदा ध्रुवाय सुनन्दादिभिर्विमानमानीतं तदाऽस्य देहत्यागोऽपेक्षितः स्यादिति मत्वा मृत्यावासन्नेऽपि देहं न तत्याज किंतु सोपान इव तस्य मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानमारुह्य विष्णुपदमारूढः । वक्ष्यति हि 'परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः। इत्येष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ।' इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कथा के मृत्युपाशमोचकत्व का वर्णन इस श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । नारद मुनि के द्वारा वर्णित श्रीहरि की कथा के प्रभाव से ही बाल्यावस्थावस्थित उत्तानपाद का पुत्र मृत्यु के शिर पर अपना पैर रखकर श्रीहरि के पद को प्राप्त कर लिया । जब सुनन्द आदि ध्रुव के लिए विमान लेकर आये उस समय मृत्यु ने समझा कि ध्रुव को शरीर त्याग आवश्य करना होगा, किन्तु सन्निकट में मृत्यु के विद्यमान रहने पर ध्रुव ने अपने शरीर का परित्याग नहीं किया; अपितु सोपान के समान वह मृत्यु के शिर पर पैर रखकर विमान पर बैठ गया और श्रीभगवान् के लोक में चला गया । आगे चलकर ध्रुव की कथा के प्रसङ्ग में कहेंगे भी **परीत्य० इत्यादि** ध्रुव ने उस श्रेष्ठ विमान की परिक्रमा की, ब्राह्मणों ने उनका स्वस्तिवाचन पहले ही कर दिया था, अपने सुवर्णमय शरीर को धारण किए हुए ध्रुव ने उस विमान पर बैठने की इच्छा की ॥५॥

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा । ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥

अन्वयः— अथ देवानाम् अनुपृच्छताम् अत्र देवदेवेन ब्रह्मणा पुरा वर्णितः अयम् इतिहासः मे श्रुतः ॥६॥

अनुवाद— एक बार भगवान् वाराह और हिरण्याक्ष के युद्ध के विषय में देवताओं द्वारा पूछे जाने पर देवताओं के आराध्य ब्रह्माजी के द्वारा प्राचीन काल में वर्णित इस इतिहास को मैंने सुना है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तयोः संग्रामे हेतुं वक्तुमितिहासं प्रस्तौति-अथेति । अनुपृच्छतां देवानां ब्रह्मणा वर्णित इतिहासो मया श्रुतः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

वाराह भगवान् और हिरण्याक्ष में हुए युद्ध का कारण बतलाने के लिए मैत्रेय जी इतिहास का वर्णन करते हैं । देवताओं द्वारा इस विषय में कारण पूछे जाने पर प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने जिस इतिहास को बतलाया उसे मैंने सुना है ।।६।।

दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् । अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ।।७।।

अन्वयः— हे क्षतः दाक्षायणी दितिः मारीचं कश्यपं पतिम् हृच्छयार्दिता अपत्यकामा संध्यायां चकमे ।।७।।

अनुवाद— हे विदुर दक्ष की पुत्री दिति मरीचि महर्षि के पुत्र अपने पति कश्यप महर्षि को कामार्त होकर पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से सन्ध्या की बेला में सङ्गम करने की कामना की ।।७।।

भावार्थ दीपिका

देवप्रश्नप्रस्तावाय प्रथमं हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिप्रसङ्गमाह- दितिरित्यादिना यावदध्यायपरिसमाप्ति । मरीचेः पुत्रं कश्यपम् । हृच्छयः कामस्तेनार्दिता । अतः सन्ध्यायामेव कामितवती ।।७।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं के प्रश्न को प्रस्तुत करने के लिए पहले हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति का प्रसङ्ग **दितिःइत्यादि** श्लोक के द्वारा इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते है । महर्षि मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप थे । वे दिति के पति थे । एक बार सायंकाल की बेला में दिति कामार्त हो गयी और महर्षि कश्यप से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से उनसे सङ्गम करने की इच्छा की ।।७।।

इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् । निम्लोचत्यर्क आसीनामग्न्यगारे समाहितम् ।।८।।

अन्वयः— पयसा अग्निजिह्वं यजुषां पतिं पुरुषं इष्ट्वा निम्लोचति अर्के अग्न्यागारे समाहितम् आसीनम् ।।८।।

अनुवाद— महर्षि कश्यप भी हविष्य से अग्निजिह्व यज्ञपति भगवान् विष्णु की आराधना करके सूर्यास्त की बेला में अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तदप्याग्निहोत्रशालायाम् । तत्रापि समाहितम् । अग्निर्जिह्वा यस्य । यजुषां यज्ञानां पतिं पुरुषं श्रीविष्णुम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सूर्यास्त की बेला थी । महर्षि कश्यप भी हविष्य के द्वारा यज्ञपति भगवान् की आराधना करके अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे । अग्निजिह्व यज्ञ का नाम है ।।८।।

दितिरुवाच

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशारासनः । दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ।।९।।

अन्वयः— हे विद्वन् त्वत्कृते एषः कामः आत्तशरासनः विक्रम्य, दीनां मां रम्भाम् मतङ्गज इव दुनोति ।।९।।

दिति ने कहा

अनुवाद— हे विद्वन् ! आपके लिए यह कामदेव अपने हाथ में धनुष धारण करके अपना पराक्रम प्रकट करके मुझे उसी तरह बेचैन कर रहा है जैसे कोई मतवाला हाथी कदली स्तम्भ को मसल डालता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

कृपणां बहुभाषिणीम् इति वक्ष्यति, तत्र एष मामिति द्वाभ्यां कार्पण्यं, भर्तरीति चतुर्भिश्च बहुभाषणं वर्ण्यते । दुनोति पीडयति । विक्रम्य शौर्यमाविर्भाव्य रम्भांकदलीम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आगे चलकर दिति का वर्णन करते हुए कहेंगे भी कि कामार्त और बहुत बोलने वाली दिति को । **एष काम** इन दो श्लोकों के द्वारा उसके कार्पण्य को तथा **भर्तरि** इत्यादि चार श्लोकों द्वारा बहु भाषित्व का वर्णन करेंगे ।।९।। दुनेति का अर्थ पीड़ित करता है । **विक्रम्य** पद का अर्थ अपना पराक्रम प्रकट करके है । **रम्भा** शब्द से यहाँ केले का स्तम्भ कहा गया है ।।९।।

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः । प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ।।१०।।

अन्वयः— तद भवान् प्रजावतीनां सपत्नीनाम् समृद्धिभिः दह्यमानायां मयि अनुग्रहम् आयुंक्ताम् ते भद्रं स्यात् ।।१०।।

अनुवाद— अपनी पुत्रवती सौतों की समृद्धि को देखकर मैं ईर्ष्या की आग में जली जा रही हूँ, अतएव आप मुझ पर कृपा कीजिए, आपका कल्याण हो ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

आयुङ्क्तां सर्वतो युनुक्तु सम्यक्करोतु ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आप मुझ पर अच्छी तरह पूर्ण रूप से कृपा करें ।।१०।।

भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः । पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ।।११।।

अन्वयः— यासां ननु भवद्विधः पतिः प्रजया जायते तासां भर्तरि आप्तोरुमानानां यशः लोकान् आविशते ।।११।।

अनुवाद— जिन स्त्रियों के गर्भ से आप जैसे पति पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं वे ही स्त्रियाँ अपने पति से सम्मानित मानी जाती हैं और उन सबों का यश सम्पूर्ण लोकों में फैल जाता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

भर्तरि प्राप्तबहुमानानां स्त्रीणां यशो लोकानाविशते व्याप्नोति । प्रजया पुत्ररूपेण । **'तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः'** इति श्रुतेः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जिन स्त्रियों को अपने पति से बहुत अधिक सम्मान प्राप्त होता है, उन स्त्रियों का यश लोकों में फैल जाता है । पति ही पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है । श्रुति भी कहती है- **तज्जाया जाया भवति इत्यादि** वही पत्नी वास्तविक रूप से पत्नी होती है जिसके गर्भ से उसका पति पुत्र रूप में उत्पन्न होता है ।।११।।

पुरा पिता नो भगवान् दक्षो दुहितृवत्सलः । कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ।।१२।।

अन्वयः— पुरा नः दुहितृवत्सलः पिता भगवान् दक्षः पृथक्-पृथक् वत्सा कम् वरं वृणीत इति अपृच्छत् ।।१२।।

अनुवाद— पूर्वकाल में अपने पुत्रियों पर स्नेह युक्त हमारे पिता दक्ष प्रजापति हम सबों से अलग-अलग पूछे कि पुत्रि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं पिता नोऽस्मान्पृथगपृच्छत्। अयं भावः-त्रयोदशानामप्यस्माकं त्वयि भावसाम्ये वैषम्याचरणं तवानुचितमिति।।१२।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के पिता दक्ष प्रजापति ने हमलोगों से अलग-अलग बुलाकर पूछा कि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो । हम तेरह पुत्रियों ने आपका वरण किया । हम सभी आपकी पत्नियाँ है । हम सबों का आपमें एक समान प्रेम है । ऐसी स्थिति में आपका वैषम्याचरण ठीक नहीं हैं ॥१२॥

स विदित्वात्मजानां नो भावं सन्तानभावनः । त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥१३॥

अन्वयः— सन्तानभावनः सः न आत्मजानां भावं विदित्वा तासां त्रयोदश अददात् याः ते शीलम् अनुव्रताः ॥१३॥

अनुवाद— अपनी सन्तानों से प्रेम करने वाले हमलोगों की भावना को जानकर पिता अपनी उन पुत्रियों में से तेरह पुत्रियों का विवाह आपसे कर दिया, क्योंकि हम तेरहों आपके शील और स्वभाव के अनुकूल थीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हम तेरहों पुत्रियों का शील और स्वभाव आपके अनुकूल था अतएव उन्होंने हम तेरहों का विवाह आप से कर दिया ॥१३॥

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन । आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥१४॥

अन्वयः— हे कल्याण ! कञ्जविलोचन मे कामं कुरु हे भूमन्, महीयसि आर्तोपसर्पणं मोघं न ॥१४॥

अनुवाद— हे मङ्गलकर्तः कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूर्ण करें । हे महापुरुष ! आप जैसे महान् पुरुषों के पास दीनजनों का आना विफल नहीं होता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मोघं न भवति हि । महीयसि त्वादृशे महत्तमे ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

आप जैसे पुरुष के पास दीनजनों का आना विफल नहीं ही होता है, अतएव आप मेरी इच्छा पूरी करें॥१४॥

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् । प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥१५॥

अन्वयः— हे वीर अथ मारीचः तां कृपणां बहुभाषिणीम् प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् वाचा अनुनयन् प्रत्याह ॥१५॥

अनुवाद— हे विदुरजी इसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने दीन तथा बहुत अधिक बोलने वाली एवं काम के बढ जाने से अत्यधिक मोहित दिति को अपनी मधुर वाणी से समझाते हुए कहा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृद्धानङ्गेन कश्मलं मोहो यस्यास्ताम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

काम के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण मोहित उस दिति को मधुर वाणी से समझते हुए महर्षि कश्यप ने कहा ॥१५॥

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि । तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

अन्वयः— हे भीरु! यत् इच्छसि एष अहं ते प्रियं विधस्यामि । यत् त्रैवर्गिकी सिद्धिः तस्याः कामं कः न कुर्यात्॥१६॥

अनुवाद— प्रिये ! तुम जो चाहती हो तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति मैं अभी-अभी करता हूँ । जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है, भला उसकी इच्छा की पूर्ति कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सन्ध्याकालवञ्चनाय भार्याप्रशंसा एष इति पञ्चभिः । यतो यस्याः सकाशात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप चाहते थे कि यह भयङ्कर संध्याकाल बीत जाय इसीलिए वे पाँच श्लोकों मे अपनी पत्नी की प्रशंसा करते हैं । उन्हांने दिति से कहा कि मनुष्यों के धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति पत्नी से ही होती है । अतएव कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति न करे ।।१६।।

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् । व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ।।१७।।

अन्वयः— कलत्रवान् सर्वाश्रमान् उपादाय स्वाश्रमेण जलयानै अर्णवम् इव व्यसनार्णवम् अत्येति ।।१७।।

अनुवाद— गृहस्थाश्रमी सभी आश्रमों को आश्रय प्रदान करके अपने आश्रम के द्वारा इस दुःखपूर्ण संसार सागर को उसी तरह पार कर लेता है । जिस तरह जहाज पर सवार होकर मनुष्य समुद्र को पार कर लेता है।।१७।।

भावार्थ दीपिका

सर्वाश्रमानुपादायेति । तानप्यन्नादिदानेन कृच्छ्रतस्तारयन् स्वयं तरतीत्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

गृहस्थ सभी आश्रमों को अन्न आदि प्रदान करके उनके भूखजन्य पीडा को दूर करके स्वयम् भी इस दुःखमय संसार से उसी तरह पार हो जाता है; जैसे कोई जलयान के द्वारा सागर को पार कर लेता है इसी अर्थ को उन्होंने इस श्लोक में कहा है ।।१७।।

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि । यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ।।१८।।

अन्वयः— मानिनि याम् श्रेयस्कामस्य आत्मनः हि अर्धं आहुः यस्यां धुरम् अध्यस्य पुमान् विज्वरः चरति ।।१८।।

अनुवाद— मानिनि ! पत्नी को तो कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग कहा गया है । पत्नी पर ही गृहस्थी का सारा भार सौंप कर मनुष्य निश्चिन्त होकर विचरण करता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो देहस्यार्धम् । कर्मसु द्वयोः सहाधिकारात् । यच्छब्दानां तां त्वामिति तृतीयश्लोकेन सम्बन्धः । स्वधुरं दृष्टादृष्टकर्मभारम् । विज्वरो निश्चिन्तः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

शास्त्रों में बतलाया गया है कि पत्नी कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग होती है, क्योंकि कर्मों को करने में दोनों का साथ-साथ अधिकार है । इस श्लोक के यत् शब्दों का तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है। गृहस्थ पत्नी पर ही दृष्ट तथा अदृष्ट कर्मों का भार सौंप कर निश्चिन्त होकर विचरण किया करता है ।।१८।।

यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः । वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ।।१९।।

अन्वयः— याम् आश्रित्य इतराश्रमैः दुर्जयान् इन्द्रियारातीन् वयम् दस्यून् दुर्गपतिः यथा हेलाभिः जयेम ।।१९।।

अनुवाद— इन्द्रिय रूपी शत्रु दूसरे आश्रम वालों के लिए अत्यन्त दुर्जय हैं । किन्तु जिस तरह किले का स्वामी लूटने वाले शत्रुओं को आसानी से अपने वश में कर लेता है, उसी तरह हमलोग अपनी पत्नी का आश्रय लेकर बड़ी आसानी से इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जित लेते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हेलाभिर्लीलाभिः । जयेमेति । सभार्यस्येन्द्रियाणि प्रायेणेतस्ततो न सर्पन्तीति भावः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हेलाभि का अर्थ है बड़ी आसानी से । जो गृहस्थ व्यक्ति होता है, उसकी इन्द्रियाँ प्रायः इधर-उधर नहीं जाती है ॥१९॥

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि । अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥२०॥

अन्वयः— हे गृहेश्वरि ! वयं ये च अन्ये गुणगृध्नवः ते आयुषा अपि वा कार्त्स्न्येन तां त्वाम् अनुकर्तुं न प्रभवः ॥२०॥

अनुवाद— हे गृहस्वामिनि ! तुम जैसी पत्नी के उपकारों का बदला मैं अथवा दूसरे जो गुणग्राही पुरुष हैं वे भी अपनी पूरी आयु भर में अथवा जन्मान्तर में भी पूर्णरूप से नहीं चुका सकते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तामनेकोपकारकर्त्रीं त्वां कार्त्स्न्येनानुकर्तुं प्रत्युपकारैस्त्वत्सदृशा भवितुं न प्रभवो न समर्थाः । ये चान्ये गुणगृध्नवो गुणप्रियास्तेऽपि न समर्थाः । संपूर्णेनाप्यायुषा । वाशब्दाज्जन्मान्तरैरपि न प्रभव इत्युक्तम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अनेक प्रकार का उपकार करने वाली तुम पत्नी का प्रत्युपकारों के द्वारा मैं अथवा दूसरे भी गुणग्राही पुरुष पूर्णरूप से जीवन भर में अथवा जन्मान्तरों में भी तुम्हारे जैसा होने में समर्थ नहीं है ॥२०॥

अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् । यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अन्वयः— अथापि ते प्रजात्यै एतत् अलम् करवाणि, यथा मां नातीवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अनुवाद— फिर भी मैं तुम्हारी इस सन्तान प्राप्ति की इच्छा को यथाशक्ति पूर्ण करूँगा । किन्तु अभी एक मुहूर्त रुक जाओ जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वदनुकरणमशक्यम् । प्रजात्यै पुत्रोत्पत्त्यै नातिवोचन्ति न निन्दति । प्रतिपालय प्रतीक्षस्व ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुम्हारा अनुसरण करना तो असम्भव है फिर भी तुम्हारी सन्तानप्राप्ति की इच्छा को मैं अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण करूँगा, किन्तु इस समय तुम एक मुहुर्त तक प्रतीक्षा करो, जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें॥२१॥

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना । चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥

अन्वयः— एष घोराणां घोरतमा वेला घोरदर्शना यस्यां भूतेशानुचराणि भूतानि चरन्ति ह ॥२२॥

अनुवाद— यह अत्यन्त घोर बेला राक्षस आदि घोर जीवों की है और यह देखने में भी अत्यन्त भयानक है । इसमें भूतों के स्वामी शङ्करजी के अनुचर भूतप्रेत घूमा करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स्वनिन्दामगणयन्तीं भीषयन् श्रीरुद्रमनुवर्णयति-एषेति सप्तभिः । घोराणामेषा वेला । स्वयं च घोरदर्शना ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी निन्दा की परवाह नहीं करने वाली दिति को डराने के लिए कश्यप महर्षि श्रीरुद्र का वर्णन **एष इत्यादि** सात श्लोकों से करते हैं । यह भयङ्कर जीवों राक्षसों आदि की बेला है और स्वयम् भी देखने में भयङ्कर है । इस बेला में भगवान् शिव के गण भूत प्रेत आदि विचरण किया करते हैं ॥२२॥

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः । परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥

अन्वयः— हे साध्वि ! एतस्यां सन्ध्यायां भूतराट् भगवान् भूतभावनः भूतपर्षद्भिः परीतः वृषेण अटति ॥२३॥

अनुवाद— हे साध्वि ! इस सन्ध्या की बेला में भूतभावन भूतों के स्वामी भगवान् शङ्कर भूत प्रेत आदि को साथ लेकर बैल पर सवार होकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भूतपर्षद्भिर्भूतगणैः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने बतलाया कि सायंकाल की बेला में भगवान् शङ्कर अपने भूत-प्रेत आदि पार्षदों को साथ लेकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ।
भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥

अन्वयः— श्मशानचक्रा निलधूलि धूम्र विक्रीर्णविद्योतजटाकलापः । भस्मावगुण्ठामल रुक्मदेहः देवः ते देवरः त्रिभि पश्यति ॥२४॥

अनुवाद— श्मशान भूमि में उठे बवण्डर की धूलि से धूसरित होकर जिनका जटाजूट देदीप्यमान है तथा जिनके सुवर्णकान्तिमय शरीर में भस्म लगा हुआ है वे तुम्हारे देवर शङ्करजी अपने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि रूप तीन नेत्रों से सबको देखते रहते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि तत्संमुखत्वमात्रं वर्जनीयमिति चेत्त्राह । श्मशाने यश्चक्रानिलो वातमण्डली तस्मिन् या धूलिस्तया धूम्रो विकीर्णो विद्योतो द्युतिमाञ्जटाकलापो यस्य । भस्मनाऽवगुण्ठः प्रावृतोऽमलो रुक्मवद्देहो यस्य स देवस्त्रिभिः सोमार्काग्निनेत्रैः पश्यतीत्यस्योत्तमश्लोकत्रयेऽप्यनुषङ्गः । एकस्य जामातरः परस्परं भ्रातरो व्यवह्रियन्ते । अतो मम भ्राता असौ तव देवर इति लज्जार्थमुक्तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस पर यदि दिति कहें कि ठीक है इस काम को उनके सामने नहीं करना चाहिए परोक्ष में कोई आपत्ति है नहीं । तो इस पर वे धूसरित जिनका जटा कलाप देदीप्यमान है । और इधर-उधर विखरा हुआ है तथा जिनके गौरवर्ण के शरीर में भस्म लगा है ऐसे भूतभावन भगवान् शङ्कर अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि रूपी तीन नेत्रों से इस समय सबको देखते हैं वे तुम्हारे देवर हैं अतएव तुमको लज्जित होना चाहिए । किसी एक व्यक्ति के सभी दामाद परस्पर में भाई होते हैं । अतएव मेरे भाई शङ्करजी तुम्हारे देवर हैं ॥२४॥

न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ।
वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥

अन्वयः— लोके यस्य न स्वजनः न वा परः नात्यादृतः न उत कश्चित् विगर्ह्यः वयं व्रते यच्चरणापविद्धाम् भुक्ताभोगाम् अजां बत आशास्महे ॥२५॥

अनुवाद— संसार में उनका न तो कोई अपना है न पराया है । न तो उनका कोई अधिक आदरणीय है और न निन्दनीय है, हमलोग तो अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करके उनकी माया को ही प्राप्त करना चाहते हैं जिस माया का उन्होंने भोगकर अपने से दूर कर दिया है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि महत्त्वेनादरणीयस्य स्वजनस्य च तव स सर्वं क्षमेतैव तत्राह । यस्य स्वजनादिर्नास्ति समत्वादीश्वरस्य । ऐश्वर्यमेवाह । येन चरणेनापविद्धां निर्माल्यवद्दूरतस्त्यक्तां तेन भुक्तभोगामजां मायां तन्मयीं विभूतिं महाप्रसाद इत्याशास्महे । व्रतैस्तमाराध्य ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यदि दिति कहें कि आप तो उनसे बड़े हैं अतएव उनके लिए आदरणीय हैं फलतः आपके सारे अपराधों को वे क्षमा ही कर देंगे । इस पर महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका न तो कोई अपना है न पराया है । वे ईश्वर हैं और वे सबों के प्रति एक समाम दृष्टि रखते हैं । भगवान् शिव के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं । शङ्करजी ने जिस माया को भोगकर उसका परित्याग कर दिया है हमलोग अनेक प्रकार के व्रतों के द्वारा उनका महाप्रसाद समझकर उसी माया को प्राप्त करना चाहते हैं ।।२५।।

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ।।२६।।

अन्वयः— अविद्यापटलं विभित्सवः मनीषिणः यस्य अनवद्याचरितं गृणन्ति निरस्तसाम्यतिशयोऽपि यत् स्वयम् गतिः पिशाचचर्याम् अचरत् ।।२६।।

अनुवाद— विवेकी पुरुष अपनी अविद्या के आवरण को दूर करने के लिए जिनके निर्मल चरित्र का गान किया करते हैं । जब कोई भी उनके सदृश ही नहीं है तो उनसे बढ़कर होने की कोई बात ही नहीं है । ऐसा होने पर भी वे सत्पुरुषों के आश्रय हैं ऐसे भगवान् शङ्कर स्वयं पिशाच जैसा आचरण करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अनिषिद्धसुखत्यागादसौ पिशाच इत्युपहासो न कार्य इत्याह द्वाभ्याम् । यस्यानवद्यं विषयासक्तिशून्यमाचरितम् । विभित्सवो भेत्तुमिच्छवः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अनिषिद्ध सुख का परित्याग कर देने के कारण के इनको पिशाच कहकर इनका उपहास नहीं करना चाहिए इस अर्थ का प्रतिपादन महर्षि कश्यप दो श्लोकों से करते हैं । अपने अज्ञान के आवरण को दूर करने के लिए मनीषीगण उनके निर्दोष तथा विषयासक्ति से रहित चरित का गायन किया करते हैं ।।२६।।

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम् ।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ।।२७।।

अन्वयः— स्वात्मन् रतस्य समीहितम् आचरितं त एव हसन्ति यैः श्वभोजनम वस्त्रमाल्याभरणानुलपनैःस्वात्मतया उपलालितम् ।।२७।।

अनुवाद— आत्माराम भगवान् शङ्कर के लोक शिक्षा रूप आचरण का वे ही लोग उपहास करते हैं जो अज्ञानी लोग कुत्तों के भोजन स्वरूप इस शरीर को वस्त्र माला तथा आभरण तथा चन्दनादि से सजाकर आत्मा के समान उसका पालन पोषण करते हैं । ऐसे लोग निश्चित रूप से अभागे हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

समीहितमभिप्रेतं लोकशिक्षारूपम् । अविदुषोऽविद्वांसः । यद्वा न विद्वानन्यो यस्मादिति तस्य । सर्वज्ञस्येत्यर्थः । दुर्भगानेवाह–यैरिति । श्वभोजनं शुनां भोज्यं शरीरम् । स्वात्मतयाऽयमेवात्मेति बुद्ध्या ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शिव के चरित लोक शिक्षा रूप होने के कारण अभिप्रेत हैं । लेकिन अज्ञानी पुरुष उनके चरित का उपहास करते हैं । अथवा अविदुषः पद का अर्थ जिससे अधिकज्ञानी कोई है ही नहीं अर्थात् भगवान् शिव के आचरण का अभागे लोग ही उपहास करते हैं । उन अभागों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं- शरीर तो कुत्तों का भोजन हैं किन्तु उन अज्ञानियों की इस शरीर में ही आत्मबुद्धि हो जाती है । उसी को वे आत्मा के समान वस्त्र, माला, आभरण और चन्दन आदि से सजाते रहते हैं ॥२७॥

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।
आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

अन्वयः— ब्रह्मादयः यत्कृतसेतुपालाः यत् कारणं विश्वमिदम् माया च तस्याज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

अनुवाद— जिन भगवान् शङ्कर के द्वारा की गयी धर्म की मर्यादा का पालन ब्रह्मा आदि देवगण किया करते हैं । इस सम्पूर्ण जगत् के जो कारण हैं । जिनकी आज्ञा का पालन यह माया किया करती है उनके द्वारा की जाने वाली यह पिशाच जैसा आचरण अत्यन्त आश्चर्य की बात है । उन जगद् व्यापक प्रभु की लीला कुछ समझ में नहीं आती है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अहो अतर्क्य। तस्याचरणमित्याह । ब्रह्मादयो येन कृतान्सेतूंस्वस्वाधिकारान्पालयन्ति यः कारणं यस्य । येन कृतमिदं विश्वम् । माया च यस्याज्ञाकरी । विभूम्नः परमेश्वरस्य विडम्बनमतर्क्यमित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका आचरण कुछ समझ में नहीं आता है । ब्रह्मा आदि देवता उनके द्वारा निर्धारित मर्यादा का अपने-अपने अधिकार के अनुसार पालन करते हैं । जो इस जगत् के कारण हैं और यह विश्व जिनका कार्य है । माया जिनकी आज्ञा का पालन करती है । ऐसे परमेश्वर की लीला तर्क से परे हैं ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया । जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥

अन्वयः— भर्त्रा एवं संविदिते मन्मथोन्मथितेन्द्रिया सा गतत्रपा वृषलीव ब्रह्मर्षेः वासो जग्राह ॥२९॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अपने पति महर्षि कश्यप के द्वारा इस प्रकार से समझाये जाने पर भी काम के द्वारा व्याकुल इन्द्रियों वाली दिति ने निर्लज्ज वेश्या के सामने महर्षि कश्यप के वस्त्र को पकड़ लिया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

भर्त्रा निरूपकेणैवं संविदिते ज्ञापितेऽपि सति । वृषलीव वेश्येव ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

समझाने वाले अपने पति के द्वारा इस प्रकार से समझायी जाने पर भी कामार्त होने के कारण दिति ने निर्लज्ज वेश्या के समान ब्रह्मर्षि कश्यप के वस्त्रों को पकड़ लिया ॥२९॥

स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि । नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥३०॥

अन्वयः— अथ सः भार्यायाः विकर्मणि निर्बन्धं विदित्वा दिष्टाय नत्वा तया सह रहसि उपविवेश ह ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप उन निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह जानकर दैव को नमस्कार करके उसके साथ एकान्त स्थान में चले गये और उसके साथ समागम किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विकर्मणि निषिद्धे कर्मणि । दिष्टाय दैवरूपायेश्वराय । उपविवेशेति मैथुनं लक्ष्यते ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने उस निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह समझ लिया । उन्होंने दैवरूप ईश्वर को नमस्कार किया और एकान्त स्थान में जाकर उन्होंने उसके साथ समागम किया । **उपविवेश** इस पद के द्वारा मैथुन को लक्षित किया गया है ॥३०॥

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः । ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अन्वयः— अथ सलिलम् उपस्पृश्य प्राणानायम्य, वाग्यतः सनातनं ज्योतिः ध्यायन् विरजं ब्रह्म जजाप ॥३१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप जल में स्नान करके अपने प्राण एवं वाणी का संयम किए तदनन्तर विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हुए उसी का जप करने लगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उपस्पृश्य स्नात्वा भर्गशब्दवाच्यं विरजं ज्योतिर्ध्यानम् सनातनं ब्रह्म गायत्रीं प्रणवं वा जजाप ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने स्नान किया उसके पश्चात् प्राणायाम करके वे मौन हो गये तदनन्तर भर्ग शब्द वाच्य निर्मल ज्योति स्वरूप परंब्रह्म का ध्यान करते हुए वे सनातन ब्रह्म गायत्री अथवा प्रणव का जप किए ॥३१॥

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत । उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥

अन्वयः— हे भारत ! तेन कर्मावद्येन व्रीडिता दितिःतु विप्रर्षिम् उपसंगम्य अधोमुखी अभ्यभाषत ॥३२॥

अनुवाद— विदुरजी दिति को भी उस निन्दित कर्म को करने के कारण अत्यधिक लज्जा आयी वह ब्रह्मर्षि के पास जाकर नीचे मुख करके कहने लगी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कर्मावद्येन कर्मदोषेण ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सायंकाल कि बेला में पति के साथ किया जाने वाला समागम निन्दित कर्म है, इसको सोचकर दिति अत्यधिक लज्जित थी । वह महर्षि कश्यप के पास गयी और अपना मुख नीचे करके उनसे कहने लगी ॥३२॥

दितिरुवाच

मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभोऽवधीत् । रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! मे इमं गर्भम् भूतानामृषभः भूतानां पतिः । हि ऋषभः रुद्रः मा अवधीत् यस्य अहम् अंहसम् अकरवम् ॥३३॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मैंने रुद्र का अपराध किया है किन्तु भूतों के स्वामी रुद्र मेरे इस गर्भ को विनष्ट न करें ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

माऽवधीन्मा हन्त्वित्यर्थः । वधशङ्काबीजमाह-रुद्र इति । अंहसमंहोऽपराधमकरवं कृतवत्यस्मि ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

माऽवधीत् का अर्थ है न मारें । उस गर्भ के मारे जाने की शङ्का का कारण बतलाती हुयी दिति ने कहा मैंने भूतों के स्वामी रुद्र का अपराध किया है, फिर भी वे मेरे इस गर्भ का वध न करें ॥३३॥

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे । शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥३४॥

अन्वयः— महते, रुद्राय, उग्राय, देवाय, मीढुषे, शिवाय, न्यस्तदण्डाय, धृतदण्डाय, मन्यवे, नमः ॥३४॥

अनुवाद— मैं भक्तों के दु:ख को दूर करने वाले महान् रुद्र को नमस्कार करती हूँ । जिनका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है । सकाम भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले कल्याणकारी दण्ड देने की भावना से रहित दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं और प्रलय के बेला में क्रोध करने वाले रुद्र को मैं नमस्कार करती हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

रुत दुःखं तद्द्रावयतीति रुद्रस्तस्मै । उग्रायानतिलङ्घ्याय मीढुषे सकामेषु फलसेचनकर्त्रे । निष्कामेषु शिवाय । वस्तुतो न्यस्तदण्डाय । दुष्टेषु धृतदण्डाय संहारे मन्यवे ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र अपने भक्तों के दु:खों को दूर करते हैं, इसलिए रुद्र कहलाते हैं, उनका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है अतएव वे उग्र कहलाते हैं, कामना युक्त भक्तों की कामना को पूर्ण करते हैं अतएव वे मीढुष हैं, वे निष्काम भक्तों का कल्याण करते हैं; अतएव शिव हैं । स्वाभाविक रूप से वे दण्ड देने की भावना से रहित है। अतएव न्यस्त दण्ड हैं और वे दुष्टों को दण्ड देते हैं अतएव वे धृतदण्ड है । प्रलय की बेला में वे क्रोध करके जगत् का संहार करते हैं अतएव मन्यु शब्द वाच्य हैं । ऐसे शङ्करजी को मैं नमस्कार करती हूँ ॥३४॥

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः । व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥

अन्वयः— स नः उर्वनुग्रहः भगवान् भामः व्याधस्य अपि अनुकम्प्यानां स्त्रीणाम् सतीपतिः देवः नः प्रसीदताम्॥३५॥

अनुवाद— भगवान् रुद्र अत्यधिक कृपा करने वाले हैं मेरी बहिन सती के पति हैं अतएव मेरे बहनाई हैं, ऐसे रुद्र व्याध जैसे क्रूर प्राणियों के भी कृपा का पात्र बनने वाली हम स्त्रियों पर प्रसन्न हो जायँ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भामो भगिनीभर्ता । उरुरनुग्रहो यस्य । व्याधस्य निर्दयस्यापि । सतीपतिरित्यनेन स्त्रीणां स्वभावं स्वयमपि वेत्तीति सूचयति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र हमारी छोटी बहिन सती के पति हैं अतएव वे मेरे भाम बहनोई है । वे अत्यधिक कृपा करने वाले हैं, हम स्त्रियाँ तो व्याध जैसे क्रूर प्राणी के भी कृपा का पात्र हैं अतएव वे मुझ पर प्रसन्न हो जायँ । सती पति कहकर दिति ने सूचित किया कि वे भी स्त्रियों के स्वभाव को जानते है अतएव वे मुझपर अवश्य कृपा करेंगे॥३५॥

मैत्रेय उवाच

स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् । निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥

अन्वयः— निवृत्तसन्ध्यानियमः प्रजापतिः स्वसर्गस्य लोक्यामाशिषं अशासानां प्रवेपतीम् भार्यामाह ॥३६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— सन्ध्या के नियमों से निवृत्त होकर प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा की दिति अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय का आशीर्वाद माँगती हुयी काँप रही है तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

स्वसर्गस्य स्वसन्तानस्याशिषं शुभम् । लोक्यां लोकद्वयार्हाम् । सन्ध्यायां यो नियमः स निवृत्तो यस्य ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

सन्ध्या का नियम समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा कि उनकी पत्नी दिति काँप रही है और वह अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक कल्याण का आशीर्वाद माँग रही है ॥३६॥

कश्यप उवाच

अप्रत्ययादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत । मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥३७॥
भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ । लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

अन्वयः— ते आत्मनः अप्रत्ययात् मौहूर्तिकात् दोषात् उत मन्निदेशातिचारेण देवानां च अतिहेलनात् हे अभद्रे चण्डि तव अभद्रौ जाठराधमौ भविष्यतः सपालान् लोकान् मुहुः आक्रन्दयिष्यतः च ॥३७-३८॥

महर्षि कश्यप ने कहा

अनुवाद— तुम्हारे चित्त के अशुद्ध होने के कारण और सन्ध्या रूपी मुहूर्त के दोष के कारण, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तथा रुद्रानुचरों की अवहेलना करने के कारण ऐ अमङ्गलमयी चण्डि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र होंगे और वे लोकों तथा लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे ॥३७-३८॥

भावार्थ दीपिका

ते आत्मनश्चित्तस्याप्रत्ययादशुचित्वात् । मौहूर्तिकात्सन्ध्यारूपात् । उत अपि मम निदेशस्याज्ञाया अतिचारेणातिक्रमेण। देवानां रुद्रानुचराणाम् । एतैश्चतुर्भिर्हेतुभिर्जाठराधमौ पुत्रापसदौ । हे चण्डि कोपने ॥३७-३८॥'

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि कश्यप ने कहा है कि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे वे सम्पूर्ण लोकों और लोकपालों को रुलाने का काम करेंगें । तुम्हारे पुत्रों के ऐसा होने के चार कारण हैं— १. तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं हैं । २. तुमने जिस काल में संगम किया वह सन्ध्याकाल की भयङ्कर बेला थी और वह अनेक दोषों से युक्त थी । ३. तुमने मेरी भी आज्ञा का उल्लंघन किया है और ४. तुमने भगवान् रुद्र के अनुचरों का अपमान किया है ॥३७-३८॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् । स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥३९॥
तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः। हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥४०॥

अन्वयः— दीनानाम् अकृतागसां प्राणिनां हन्यमानानाम्, स्त्रीणां निगृह्यमाणानां, महात्मसु कोपितेषु तदा विश्वेश्वरः लोकभावनः भगवान् क्रुद्धः अवतीर्य असौ अद्रीन् शतपर्वधृक् यथा हनिष्यति ॥३९-४०॥

अनुवाद— जब उन दोनों के द्वारा बहुत से दीन और निरपराध प्राणी मारे जाने लगेंगे, वे जब स्त्रियों पर अत्याचार करने लगेंगे, तथा अपने अत्याचारों से जब वे महात्माओं को क्रुद्ध बना देंगे उस समय सम्पूर्ण संसार के स्वामी तथा सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् क्रुद्ध होकर अवतार ग्रहण करेंगे और उन दोनों का उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्र धारण करने वाले इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिये थे ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

हन्यमानानां सताम् । शतपर्वधृक् वज्रधर इन्द्रः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने कहा जब वे तुम्हारे दोनों पुत्र साधु सन्तों को मारने लग जायेंगे, उस समय श्रीभगवान् का क्रोध उदीर्ण हो जायेगा और वे अवतार ग्रहण करेगें तथा उन दोनों का वे उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिए थे। शतपर्व वज्र का नाम है ॥३९-४०॥

दितिरुवाच

वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना । आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥४१॥

अन्वयः— हे विभेकथं भगवता साक्षात् सुनाभोदारबाहुना मह्यं पुत्रयोः आशासे क्रुद्धात् ब्राह्मणात् मा ॥४१॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे विभो मैं भी यह चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों का वध चक्रधारी भगवान् विष्णु ही करें। उनका वध क्रुद्ध हुए ब्राह्मणों के शाप से न हो ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सुनाभेनोदारो बाहुर्यस्य । मह्यं मम कोपितेष्वित्युक्तत्वाच्छङ्कितचित्ता सती प्रार्थयते-ब्राह्मणान्मा भूदिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

सुनाभ चक्र का नाम है। चक्रधारी भगवान् ही मेरे पुत्रों का वध करे। महर्षि कश्यप पहले कह चुके हैं कि तुम्हारे पुत्र ब्राह्मणों को क्रुद्ध बना देंगे। इस भय से व्याकुल चित वाली दिति प्रार्थना करती हैं कि ब्राह्मणों के शाप से मेरे पुत्रों का वध न हो ॥४१॥

न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च । नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥४२॥

अन्वयः— ब्रह्मदण्डदग्धस्य, भूतभयदस्य च असौ यां यां योनिं गतः नारकाः च न अनुगृह्णन्ति ॥४२॥

अनुवाद— ब्राह्मण के शाप से दग्ध हुआ तथा जीवों को जो भय प्रदान करता है, ऐसा जीव जिस-जिस योनि में जाता है वहाँ-वहाँ उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

नारका अपि तथा यां यां योनिमसौ गतो भवति तत्रस्थाश्च नानुगृह्णन्ति कृपां न कुर्वन्ति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के शाप से दग्ध और प्राणियों को भय प्रदान करने वाला जो होता है, इन दोनों प्रकार का जीव चाहे जिस योनि में जाय उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं दूसरों कि बात कौन करें ॥४२॥

कश्यप उवाच

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् । भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥४३॥
पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः । गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥४४॥

अन्वयः— कृत शोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् भगवति उरु मानाच्च, भवे मयि अपि च आदरात् पुत्रस्यैव पुत्राणां एकः सतां मतः भविता, यत् शुद्धं यशः भगवद् यशसा समं गास्यन्ति ॥४३-४४॥

कश्यप महर्षि ने कहा

अनुवाद— देवि ! तुने जो अपराध किया है उस अपने अपराध पर तुमने शोक और पश्चात्ताप किया हैं शीघ्र ही तुमने उचित और अनुचित का विचार भी किया है, भगवान् विष्णु, शिव और मेरे प्रति बहुत अधिक तुम्हारी समादर की भावना होने के कारण, इन, पाँच कारणों से तुम्हारे पुत्रों के पुत्रों में से एक ऐसा भी पुत्र होगा, जिसका सत्पुरुष भी सम्मान करेंगे उसके शुद्धयश का भक्तजन भगवान् के यश के समान लोग गायन करेंगें ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

कृतो योऽपराधस्तेन शोकस्ततोऽनुतापस्तेन । प्रत्यवमर्शनाद्युक्तायुक्तविचारात् । भगवति हरौ । भवे श्रीरुद्रे । एतैः पञ्चभिः कारणैः । पुत्रस्य हिरण्यकशिपोः पुत्राणां मध्ये एकः सतां मतो भविष्यति । तमेव वर्णयति–गास्यन्तीति सार्धैः पञ्चभिः । समं सह सदृशं वा ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

अपने किये अपराधों के कारण तुमने शोक किया और पश्चाताप भी किया है और शीघ्र ही तुमने उचित अनुचित का विचार किया है साथ ही तुम्हारा श्रीहरि, भगवान् शिव तथा मुझमें समादर भी है इन पाञ्च कारणों के कारण तुम्हारे पुत्र के पुत्रों में से एक पुत्र ऐसा भी होगा जिसका भक्तजन भी समादर करेंगे तथा उसके यश का श्रीभगवान् के यश के ही समान गायन करेंगे ॥४३-४४॥

योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः । निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥

अन्वयः— दुर्वर्णं हेमेव साधवः योगैः यत्शीलम् निर्वैरादिभिः अनुवर्तितुम् आत्मानं भावयिष्यन्ति ॥४५॥

अनुवाद— जिस तरह अशुद्ध सुवर्ण को शुद्ध बनाने के लिए उसको कई बार तपाया जाता है उसी तरह तुम्हारे पौत्र के शील का अनुवर्तन करने के लिए उसके निर्वैर आदि योगों के द्वारा साधु पुरुष अपने हृदय को शुद्ध बनायेंगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

हीनवर्णं हेम यथा योगैर्दाहादिभिरुपायैः शोध्यते तथा यस्य शीलं स्वभावमनुवर्तितुमनुगन्तुं प्राप्तुं निर्वैरादिभिर्योगैरात्मानं भावयिष्यन्ति शोधयिष्यन्ति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से हीन वर्ण (अशुद्ध) सोने को शुद्ध बनाने के लिए उसको बार-बार अग्नि में तपाया जाता है, उसी तरह से तुम्हारे पौत्र के शील और निर्वैर आदि स्वभाव को प्राप्त करने के लिए साधुपुरुष तुम्हारे पौत्र के निर्वैर आदि योगों के द्वारा अपने को शुद्ध बनाने का काम करेंगे ॥४५॥

यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् । स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥४६॥

अन्वयः— यत प्रसादात् इदं विश्वं प्रसीदति, यदात्मकं च स स्वदृग् भगवान् यस्य अनन्यया दृशा तोष्यते ॥४६॥

अनुवाद— जिनकी कृपा प्राप्त करके यह सम्पूर्ण जगत् प्रसन्नता का अनुभव करता है, तथा जो भगवान् इस सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं वे स्वयं प्रकाश भगवान् उसकी अनन्या भक्ति से सन्तुष्ट हो जायेंगे ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

विश्वप्रसादे हेतुर्यदात्मकम् । स्वदृगात्मसाक्षी । यस्यानन्यया भगवानेव सत्य इत्येवंभूतया दृशा तोष्यते तोषं प्राप्स्यते।।४६।।

भाव प्रकाशिका

विश्व की प्रसन्नता का कारण यह है कि यह विश्व परमात्मात्मक है । श्रीभगवान् ही सबकी आत्मा के साक्षी हैं उस तुम्हारे पौत्र की अनन्या भक्ति से श्रीभगवान उस पर प्रसन्न हो जायेंगे ।।४६।।

स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ।
प्रवृद्धभक्तया ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ।।४७।।

अन्वयः— स वै महाभागवतः महात्मा महानुभावः महतां महिष्ठः प्रवृद्धभक्त्या हि अनुभाविताशये वैकुण्ठं निवेश्य, इमम् विहास्यति ।।४७।।

अनुवाद— दिति ! वह बालक महान् भगवद्भक्त होगा, वह उदारहृदय अत्यन्तप्रभावशाली महानों का भी पूज्य होगा । अपनी समृद्धभक्ति के द्वारा अपने विशुद्धअन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके देहाभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- स वा इति । महात्माऽपरिच्छिन्नदृष्टिः महानुभावो महाप्रभावः । महतामपि मध्ये महिष्ठोऽतिशयेन महान्। प्रवृद्धया भक्त्याऽनुभाविते शोधिते चित्ते वैकुण्ठं हरिं निवेश्य देहाद्यभिमानं त्यक्ष्यति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

स वै इत्यादि श्लोक में श्रीभगवान् के संतोष का कारण बतलाया गया है । महात्मा कहकर उसको उदार हृदय बतलाया गया । वह महाप्रभावशाली होगा, वह महानों में भी अत्यन्त महान् होगा । समृद्ध भक्ति के द्वारा शुद्ध बने अपने अन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके वह देहादि के अभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ।
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाधिकं तापमिवोडुराजः ।।४८।।

अन्वयः— अलम्पटः शीलधरः गुणाकरः परर्द्ध्या हृष्टः, दुःखितेषु व्यथितः, अभूतशत्रुः, नैदाधिकं ताप उडुराज इव जग्रतः शोकहर्ता ।।४८।।

अनुवाद— वह विषयों की आसक्ति से रहित, शीलगुण सम्पन्न, गुणों का आकर, दूसरों की समृद्धि से प्रसन्न होने वाला और दूसरों के दुःखी रहने पर दुःखी होने वाला होगा । उसका कोई भी शत्रु नहीं होगा । जिस तरह चन्द्रमा ग्रीष्म के संताप को दूर कर देते हैं उसी तरह संसार के शोक को वह विनष्ट करने वाला होगा ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

महाभागवत्वमाह-अलम्पट इति । शीलधरः सुस्वभावः । गुणानां धैर्यादीनामाकरो जन्मभूमिः । परेषां समृद्ध्या हृष्टः। परेषु दुःखितेषु सत्सु । न भूतो जातः शत्रुर्यस्य । निदाघे भवं तापं चन्द्रो यथा हरत्येवं जगतः शोकहर्ता भविष्यति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

दिति के पौत्र के महाभागवत्व का वर्णन करते हुए महर्षि कश्यप ने कहा कि वह विषयों से अनासक्त सुखस्वभाव वाला, धैर्य आदि गुणों का आश्रय, दूसरों की समृद्धि में प्रसन्न रहने वाला और दूसरों के दुःख में दुःखी रहने वाला होगा । वह अजातशत्रु होगा । जिस तरह गर्मी के दिनों के सन्ताप को चन्द्रमा दूर कर देते हैं उसी तरह तुम्हारा पौत्र संसार के कष्ट को दूर करेगा ।।४८।।

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।
पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥

अन्वयः— अन्तर्बहिश्चामलमब्ज नेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीत रूपम् श्रीललनाललामं, स्फुरत् कुण्डलमण्डिताननम् तव पौत्रः द्रष्टा ॥४९॥

अनुवाद— इस संसार के भीतर बाहर जो व्याप्त हैं, जिनके स्वच्छ नेत्र कमल के समान मनोहर हैं, वे अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार शरीर धारण करते हैं, शोभा स्वरूपिणी लक्ष्मीजी की भी शोभा को जो बढ़ाते हैं, तथा जिनका मुख मण्डल चमकते हुए कुण्डलों से अलंकृत है, ऐसे श्रीभगवान् का तुम्हारा पौत्र साक्षात् दर्शन करेगा ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अपरिच्छिन्नदृष्टित्वमाह-अन्तरिति । स्वपुरुषाणामिच्छया पुनः पुनर्गृहीतानि रूपाणि येन । श्रीरेव ललना सुन्दरी तस्या ललामं मण्डनम् । द्रष्टा द्रक्ष्यति ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अन्तर्बहि० इत्यादि श्लोक से दिति के पौत्र की अव्याहत दृष्टि बतलायी गयी है । श्रीभगवान् अपने भक्तों की इच्छा से ही बार-बार विभिन्न रूपों को धारण करते हैं । श्रीदेवी साक्षात् सौन्दर्य मूर्ति हैं श्रीभगवान् उनको भी सुशोभित करते हैं । द्रष्टा पद का अर्थ है, दर्शन करेगा ॥४९॥

मैत्रेय उवाच

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् । पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दितिकश्यप संवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— भागवतं पौत्रं श्रुत्वादितिः भृशम् अमोदत पुत्रयो च कृष्णात् वधं विदित्वा महामनाः आसीत् ॥५०॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी दिति को यह सुनकर प्रसन्नता हुयी कि उनका पुत्र भागवत (भगवद् भक्त) होगा । उन्हें यह सुनकर और अधिक उत्साह हुआ कि उनके पुत्र भगवान् के हाथों मारे जायेंगे ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

महामनाः सोत्साहचित्ता । हरिणा सह युद्धेन मरणे पुत्रयोः कीर्तिः सद्गतिश्च भवेदिति ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

महामना कहकर (दिति) को उत्साह युक्त चित्तवाली कहा गया है । वह जानती थी कि श्रीहरि के साथ युद्ध में मरने पर उन दोनों की कीर्ति तथा सद्गति भी होगी ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

जय विजय को सनकादिकों का शाप

मैत्रेय उवाच

प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः । दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥१॥

अन्वयः— सुरार्दनात् शङ्कमाना दितिः तु परतेजोहनं प्राजापत्यं तत् तेजः शतं वर्षाणि दधार ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— देवताओं द्वारा पीड़ित होने की शङ्का से दिति ने दूसरे के तेज को विनष्ट करने वाले प्रजापति कश्यप के तेज को सौ वर्षों तक धारण किए रही ॥१॥

भावार्थ दीपिका

हतप्रभैः सुरैः पृष्टः प्राह पञ्चदशे विधिः । तद्बीजं विप्रशापादि वैकुण्ठे विष्णुभृत्ययोः । तदेवं देवानां ब्रह्मणश्च संवादप्रस्तावमुक्त्वेदानीं तं संवादं वक्तुमाह । प्राजापत्यं काश्यपं तेजो वीर्यं परेषां तेजो हन्तीति तथा । आर्षः । स्वपुत्राभ्यां करिष्यते यत्सुराणामर्दनं पीडनं तस्माच्छङ्कमाना ॥१॥

भाव प्रकाशिका

निस्तेज बने हुए देवताओं द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने उस युद्ध का कारण बतलाया कि वैकुण्ठलोक में सनकादि ब्राह्मणों ने भगवान् विष्णु के भृत्यों को शाप दे दिया था । यही कथा इस पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

तदेवंमित्यादि— इस तरह से देवताओं और ब्रह्माजी के संवाद की प्रस्तावना को बतलाकर इस अध्याय में उस संवाद को बतलाने के लिए मैत्रेयजी ने कहा कि प्रजापति कश्यप का वीर्य दूसरों के तेज को विनष्ट कर देने वाला है । देवतागण कहीं उसके पुत्रों को पीड़ित न करें इस शङ्का से दिति उस तेज को सौ वर्षों तक अपने गर्भ में धारण किए रही । **परतेजोहनम्** यह आर्ष प्रयोग है, अन्यथा यहाँ परतेजोघ्नं पाठ होना चाहिए ॥१॥

लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः । न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

अन्वयः— तेन हतालोके लोके हतौजसः लोकपालाः दिशाम् ध्वान्तव्यतिकरं विश्वसृजे न्यवेदयन् ॥२॥

अनुवाद— उस गर्भ के तेज के द्वारा संसार का प्रकाश जब क्षीण हो गया तब तेजोहीन होकर लोकपालों ने अन्धकार के कारण दिशाओं में होने वाली अव्यवस्था को ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तेन गर्भतेजसा हतालोके निरस्तसूर्यादिप्रकाशे हतौजसो हतप्रभावाः । ध्वान्तेन व्यतिकरं संकरम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस गर्भ के तेज से संसार में सूर्य आदि का प्रकाश क्षीण हो गया, सभी लोकपालों का तेज क्षीण हो गया, दिशाओं में अन्धकार के फैल जाने से अव्यवस्थाएँ फैल गयीं । इस बात को लोकपालों ने जाकर ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

देवा ऊचुः

तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् । न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥

अन्वयः— विभो एतत् तमो वेत्थ, कालेन अस्पृष्टवर्त्मनः भगवतः किञ्चित् अव्यक्तं नहि यत् वयं भृशम् संविग्नाः ॥३॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— आप इस अन्धकार को तो जानते ही हैं, क्योंकि काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है । हमलोग तो इससे बहुत अधिक भयभीत हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

वेत्थ जानासि किं विचारयसि । यद्यतो वयं संविग्ना भीताः । अव्यक्तमज्ञातम् । न स्पृष्टं वर्त्म ज्ञानप्रचारो यस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

वेत्थ पद का अर्थ है आप जानते ही हैं । देवताओं ने कहा कि आप इस फैले हुए अन्धकार को जानते ही हैं । इसके विषय में आप क्या सोच रहे हैं ? इसके कारण हमलोग तो अत्यन्त भयभीत हैं । काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है, अतएव आपको कुछ भी अज्ञात नहीं है ॥३॥

देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे । परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥४॥

अन्वयः— हे देवदेव ! हेजगद्धातः ! हे लेकनाथ शिखामणे ! त्वम् परेषाम् अपरेषां च भूतानाम् भाववित् असि॥४॥

अनुवाद— हे देवाधिदेव ! हे जगत् की रचना करने वाले, हे सभी लोकपालों के मुकुट मणि (श्रेष्ठ) ! आप छोटे बड़े सभी जीवों के भाव को जानते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्माणं परमेश्वरत्वेन स्तुवन्तः प्रार्थयन्ते-देवदेवेति सप्तभिः लोकनाथानां शिखामणे । भावविदभिप्रायज्ञोऽसि । केनाभिप्रायेण दितेर्गर्भो वर्धत इति जानासीत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

देवगण ब्रह्माजी की परमेश्वर रूप से स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना सात श्लोकों में करते हैं- देवताओं ने कहा कि आप सभी लोकपालों में श्रेष्ठ हैं, आप सभी जीवों के अभिप्राय को जानते हैं । आप यह भी जानते है कि किस अभिप्राय से दिति का गर्भ बढ रहा है ॥४॥

नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे । गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥५॥

अन्वयः— विज्ञानवीर्याय, मायया इदम् उपेयुषे गृहीतगुणभेदाय नमः अव्यक्तयोनये ते नमस्ते ॥५॥

अनुवाद— हे विज्ञान के बल से सम्पन्न ! माया के द्वारा इस चतुर्मुख रूप को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा से ही इस रजोगुण को धारण किए हैं अतएव आपको नमस्कार है । हे अव्यक्तयोनि आपको नमस्कार है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञानं वीर्यं बलं यस्य । इदं ब्रह्मदेहमुपेयुषे प्राप्तवते । गृहीतो गुणभेदो रजोगुणो येन । व्यक्तस्य प्रपञ्चस्य योनये कारणाय । न व्यक्ता केनापि प्रमाणेन विज्ञाता योनिर्यस्येति वा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा कि विज्ञान ही आपका बल है आपने अपनी माया से ही इस ब्रह्मा के शरीर को धारण किया है । आपने अपनी इच्छा से ही रजोगुण को धारण किया है । आप इस जगत् के कारण हैं । अथवा कोई भी आपके कारण को किसी प्रमाण के द्वारा नहीं जान सकता है । व्यक्तयोनये पाठ मानने पर जगत् के कारण अर्थ होगा और अव्यक्तयोनये पाठ मानने पर निष्कारण अर्थ होगा ॥५॥

ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम्। आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥६॥
तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् । लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥

अन्वयः— ये त्वा अनन्यभावेन, आत्मभावनम् आत्मनि प्रोक्तभुवनं सदसदात्मकम् परं, भावयन्ति सुपक्वयोगानाम् जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् लब्धयुष्मत् प्रसादानां तेषां कुतश्चित् परा भवो न ॥६-७॥

अनुवाद— जो लोग अनन्य भाव से समस्त जीवों के उत्पत्ति स्थान जिनमें सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत (स्थित) है । कार्य कारण रूप सारा प्रपञ्च जिनका शरीर है, और वस्तुतः उन सबों से परे रूप से आपका ध्यान करते हैं उनका योग परिपक्व हो जाता है, वे अपने श्वास इन्द्रिय और मन को अपने वश में कर लेते हैं और वे आपकी कृपा को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे लोगों का कहीं भी पराभव नहीं होता है ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

सकामतया प्रतिक्षणं दुःखमनुभवन्तो निष्कामभक्तान् स्तुवन्त आहुर्द्वाभ्याम् । ये त्वा त्वामनन्येन निष्कामेन भावेन भक्त्या ध्यायन्ति । आत्मनो जीवान्भावयतीति तथा । स्वस्मिन्प्रोतानि ग्रथितानि भुवनानि येन । चेतनाचेतनप्रपञ्चकारणमित्यर्थः। तत्र हेतुः-सदसदात्मकं कार्यकारणरूपं वस्तुतस्ताभ्यां परम् । जितः श्वास इन्द्रियाण्यात्मा मनश्च यैः । अतः सुपक्वयोगाः । अतएव प्राप्तो युष्मत्प्रसादो यैस्तेषाम् ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

कामनायुक्त होने के कारण दुःख का अनुभव नहीं करने वाले तथा निष्काम भक्तों का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं । **ये त्वा० इत्यादि** जो लोग निष्काम भाव से भक्ति पूर्वक आपका ध्यान जीवों को उत्पत्ति स्थान रूप से, तथा जिस आप में ही यह सारा भुवन ग्रथित (स्थित) है । चेतनाचेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप, आपका ध्यान करते हैं, क्योंकि कार्यकारण रूप जगत् से आप वस्तुतः परे हैं । वे लोग अपने श्वास, इन्द्रिय और मन को अपने वश में कर लिए रहते हैं । अतएव उनका योग सुपक्व हो जाता है; फलतः वे आपकी कृपा को प्राप्त कर लिए रहते हैं ॥६-७॥

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः । हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥

अन्वयः— यस्य वाचा गावः तन्त्या इव सर्वा प्रजाः आयत्ताः बलिम् हरन्ति तस्मै ते मुख्याय नमः ॥८॥

अनुवाद— आपकी वेदवाणी से सारी प्रजा उसी तरह से जकड़ी हुयी है, जिस तरह बैल रस्सी से बँधे रहते हें । आपके अधीन रहने वाली सारी प्रजायें कर्मानुष्ठान के द्वारा आपको बलि प्रदान करती हैं । ऐसे आप सबों के मुख्य प्राण हैं आपको नमस्कार है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अन्ये तु नित्यं कर्मक्लेशिन इत्याहुः-यस्येति । तन्त्या दामन्या आयत्ता अधीनाः । मुख्याय नियन्त्रे प्राणरूपायेति वा। तथाच श्रुतिः— **'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि'** इत्यादिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जो सकाम भक्त हैं वे तो कर्मों के चक्र में फँसे हुए सदैव कष्ट का अनुभव करते हैं, इसी अर्थ को इस श्लोक में कहा गया है । श्लोक का तन्ती शब्द रस्सी का वाचक है । आयत्त शब्द का अर्थ अधीन है । अर्थात् सारी प्रजा आपके अधीन है । सकाम कर्म करने वाली प्रजा सदा आपके अधीन रहकर कर्मानुष्ठानों के द्वारा आप की पूजा करती है । जिस तरह प्राण सभी प्राणों में मुख्य है, उसी तरह आप भी सबों के नियामक होने के कारण सबों के प्राण हैं । ऐसे आपको नमस्कार है । श्रुति भी कहती है- **तस्य वाक्तन्ति र्नामानि दामानि** अर्थात् परमात्मा की वेद रूपी वाणी ही रस्सी है और नाम ही पगहा है ॥८॥

स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् । अदभ्रदयया दृष्टा आपन्नानर्हसभीक्षितुम् ॥९॥

अन्वयः— तमसा लुप्तकर्मणाम् हे भूमन् सत्वं शं विधत्स्व अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नान् ईक्षितुम् अर्हसि ॥९॥'

अनुवाद— इस अन्धकार के कारण दिन और रात का विभाग नहीं हो पाने के कारण कर्मों का लोप होता जा रहा है, इसके कारण वे सारी प्रजाएँ दुःखी हो रही हैं । आप उन सबों का कल्याण कीजिये और अपनी अपार दयादृष्टि से इन शरणागतों को देखिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तमसा अहोरात्रविभागाभावेन लुप्तानि कर्माणि येषाम् । आपन्नानापद्गतानस्मान् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने ब्रह्माजी से निवेदित किया कि अन्धकार के कारण यह पता ही नहीं चलता है कि कब दिन हुआ और कब रात हुयी । उसके कारण उन प्रजाओं के सारे कर्मों का लोप होता जा रहा है । उसके कारण हम सभी प्रजायें आपत्तिग्रस्त हो गयी हैं । आप हमलोगों का कल्याण कीजिये ॥९॥

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् । दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥

अन्वयः— हे देव ! काश्यपम् अर्पितम् ओजः एषः दितेः गर्भः सर्वाः दिशः तिमिरयन् एधसि अग्निरिव वर्धते॥१०॥

अनुवाद— महर्षि कश्यप के द्वारा निक्षिप्त वीर्य ही यह दिति का गर्भ है वही सम्पूर्ण दिशाओं को अन्धकारमय बनाते हुए उसी तरह बढ रहा है जिस तरह इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आपत्कारणमाहुः । एष गर्भः तस्य विशेषणम् । अर्पितं निक्षिप्तं काश्यपमोजो वीर्यम् । दिशस्तिमिरयन् तमोव्याप्ताः कुर्वन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विपत्ति के कारण को बतलाते हुए देवताओं ने कहा— महर्षि कश्यप ने जो दिति के गर्भ में अपने वीर्य का आधान किया वह दिति का गर्भ बन गया है । वही सभी दिशाओं को अन्धकार व्याप्त सा बनाते हुए उसी तरह बढ़ रहा है जैसे इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः । प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

अन्वयः— महाबाहो शब्दगोचरः स भगवान् आत्मभूः प्रहस्य देवान् रुचिरया गिरा प्रीणन् प्रत्याचष्ट ॥११॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाबाहो ! विदुरजी देवताओं की प्रार्थना को सुनकर आत्मभू ब्रह्माजी ने जोर से हंसकर अपनी मधुरवाणी से प्रसन्न करते हुए कहे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दितेः कुचेष्टितं ज्ञात्वा प्रहस्य देवानां ये शब्दा विज्ञप्तिवाक्यानि तेषां गोचरो विषयभूतः प्रत्यभाषत ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दिति की निन्दित चेष्टाओं को जानकर ब्रह्माजी जोर से हँसे और देवताओं की प्रार्थना के विषयभूत ब्रह्माजी ने उनकी प्रार्थना को सुनकर कहा ॥११॥

ब्रह्मोवाच

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः । चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥१२॥

अन्वयः— मे मानसाः सुताः सनकादयः युष्मत् पूर्वजाः लोकेषु विगतस्पृहाः विहायसा लोकान् चेरुः ॥१२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— मेरे मानस पुत्र सनकादि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) हैं । वे तुमलोगों से पहले ही उत्पन्न हुए थे । उन लोगों की लोक में किसी भी प्रकार की स्पृहा नहीं है । वे एक बार आकाश मार्ग से लोकों में विचरण कर रहे थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

युष्मत्सकाशात्पूर्वं जाताः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षिगण सभी देवताओं से पहले उत्पन्न हुए हैं । वे सदा निःस्पृह रहने वाले हैं किसी भी लोक को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते है । निवृत्तिमार्गी हैं । वे सभी एक बार आकाश मार्ग से तत्-तत् लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण कर रहे थे ॥१२॥

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः । ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥

अन्वयः— वे एकदा अमलात्मनः भगवतः वैकुण्ठस्य सर्वलोकनमस्कृतम् वैकुण्ठनिलयं ययुः ॥१३॥

अनुवाद— वे एक बार भगवान् विष्णु के शुद्ध सत्त्वगुण मय समस्त लोकों द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठ धाम में गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वैकुण्ठाख्यं लोकं ययुः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त चारो सनकादि महर्षिगण भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ नामक नगर में गये ॥१३॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः । येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥१४॥

अन्वयः— यत्र सर्वे पुरुषाः वैकुण्ठमूर्तयः वसन्ति, ये अनिमित्त निमित्तेन धर्मेण हरिम् अराधयन् वर्तन्ते ॥१४॥

अनुवाद— वहाँ पर भगवान् विष्णु के ही समान शरीर वाले होकर सभी जीव रहते हैं तथा जो निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तं वर्णयति–वसन्तीत्यादिद्वादशभिः । वैकुण्ठस्य हरेरिव मूर्तिर्येषां ते । निमित्तं फलं न निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् । निष्कामेन धर्मेणेत्यर्थः । आराधयन् आराधितवन्तः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वसन्ति इत्यादि बारह श्लोकों के द्वारा श्रीवैकुण्ठ लोक का वर्णन किया गया है । वैकुण्ठ लोक में रहने वाले सभी जीवों का शरीर श्रीहरि के ही आकार का होता है । वे सभी जीव निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते रहते हैं अनिमित्तनिमित्त का विग्रह है । **न निमित्तं फलं निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् तेन,** अर्थात् जिस धर्म को किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से नहीं किया जाता है । अर्थात् निष्काम धर्म ॥१४॥

यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः । सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥१५॥

अन्वयः— यत्र शब्दगोचरः आद्यः पुमान् भगवान् विष्णु सत्त्वंविष्टभ्य स्वानां वृषः मृडयन् आस्ते ॥१५॥

अनुवाद— वहाँ पर वेदान्त प्रतिपाद्य आद्य पुरुष धर्ममूर्ति भगवान् नारायण रजोगुण रहित शुद्धसत्त्वमय शरीर धारण करके अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यत्रेति । शब्दगोचरो वेदान्तैकवेद्यः । विरजं सत्त्वमूर्तिं विष्टभ्य धृत्वा । वृषो धर्ममूर्तिः । स्वानां स्वान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उस लोक में आदि पुरुष भगवान् अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं । वे भगवान् वेदान्तैकवेद्य हैं शुद्धसात्त्विक शरीर को धारण करके रहते हैं । वृष शब्द से श्रीभगवान् को धर्ममूर्ति बतलाया गया है ॥१५॥

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः । सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥१६॥

अन्वयः— यत्र कैवल्यम् इव मूर्तिम, सर्वकामदुघैः द्रुमैः सर्वर्तु श्रीभिः विभ्राजत् नैः श्रयेसं नाम वनम् ॥१६॥

अनुवाद— उस वैकुण्ठ लोक में मूर्तिमान कैवल्य के समान, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्षों से युक्त तथा सभी ऋतुओं की शोभा से सुशोभित नैःश्रेयस् नामक वन है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्रत्यं वनं विशिनष्ट-यत्रेति चतुर्भिः । सर्वेष्वप्यृतुषु श्रीः पुष्पादिसंपद्येषां तैः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यत्र इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा वैकुण्ठ लोक में विद्यमान वन का वर्णन किया गया है । उस वन का नाम निःश्रेयस् है । उस वन में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष विद्यमान है । वहाँ पर सभी ऋतुओं के पुष्पादि की शोभा सदा बनी रहती है । वह मूर्तिमान कैवल्य के समान है ॥१६॥

वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

अन्वयः— अन्तर्जले अनुविकसन् मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियः अपि अनिलं क्षिपन्तः सललनाः वैमानिकाः लोकशमलक्षपणानि भर्तुः चरितानि गायन्ति ॥१७॥

अनुवाद— उस वन में सरोवरों में खिली हुयी मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवीलता की सुमुधर गन्ध जब चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है तो उस वायुका तिरस्कार करके अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण लोगों के सम्पूर्ण पापों को प्रणष्ट करने वाले श्रीभगवान् के चरित का ही गायन करते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

चरितानि चरित्राणि । भर्तुः प्रभोः । अनुविकसन्त्यो मधु मकरन्दस्तद्युक्ता माधव्यो वासन्त्यो लताः । यद्वा अनुविकसन्मधवः प्रसरन्मकरन्दा माधव्यो मधुकालीनाः सुमनसस्तासां गन्धेन खण्डिता विघ्निता धीर्येषां तेऽपि तद्गन्धप्रापकमनिलं क्षिपन्तस्तिरस्कुर्वन्तो गायन्ति । अनेन भगवत्पार्षदानां निरतिशयविषयसुखेऽपि भगवद्गजनानन्दासक्तिर्दर्शिता ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

चरित शब्द चरित्र का बोधक है । भर्तुः शब्द से श्रीभगवान् को कहा गया है । **अनुविकसन् इत्यादि** पद्यांश

का अर्थ है कि विकसित होने वाले मधु पराग से युक्त जो वासन्तिक लताएँ, अथवा फैलने वाले वसन्त कालीन पुष्पों के परागों की सुगन्धि से युक्त वायु के द्वारा उनके चित्त के विचलित किए जाने पर वायु की ओर ध्यान न देकर गन्धर्वगण अपनी पत्नियों के साथ लोकपापप्रणाशक चरितों का गान करते रहते हैं। इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि निस्सीम विषय सुख के रहने पर भी भगवान के पार्षदों की श्रीभगवान् के भजन में आसक्ति बनी रहती है॥१७॥

पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥१८॥

अन्वयः— भृङ्गाधिपे उच्चैः हरिकथामिव गायमाने पारावत-अन्यभृत-सारस-चक्रवाक-दात्यूह-हंस-शुक-तित्तिर-बर्हिणाम् यः कोलाहलः अचिरमात्रम् विरमते ॥१८॥

अनुवाद— जिस समय भ्रमरराज जोर से गुञ्जार करते हुए मानों श्रीहरि की कथा का गान करते हैं, उस समय थोड़ी देर के लिए कबूत्तर कोयल, सारस चकवा, पपीहा, हंस, शुकपक्षी, तित्तिर तथा मयूर आदि पक्षियों की ध्वनि रुक सी जाती है मानों वे भी उस कीर्तनानन्द में बेसुध हो जाते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अन्यभृताः कोकिलाः । दात्यूहचातकः । अचिरमात्रं क्षणमात्रं विरमति । अनेन तत्रत्यपक्षिणामपि हरिकथाश्रवणादिपरमानन्दो दर्शितः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अन्यभृत कोयल को कहते हैं । दात्यूह का अर्थ चातक है । अचिरमात्रम् का अर्थ है क्षणभर के लिए । इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि वहाँ के पक्षीगण को भी श्रीहरि की कथा सुनने में परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥१८॥

मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ।
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥१९॥

अन्वयः— तुलसिकागन्धेन गन्धे अर्चिते सति यस्मिन् वने मन्दार-कुन्द-कुरब-उत्पल-चम्पक-अर्ण-पुन्नाग-बकुल अम्बुज-पारिजाता सुमनसः तस्याः तपः बहु मानयन्ति ॥१९॥

अनुवाद— जब श्रीभगवान् अपने को तुलसी के अलङ्कार से सजाते हैं और तुलसी की सुगन्धि का समादर करते हैं तो उस वन में विद्यमान मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष) उत्पल (रात्रि में खिलने वाला कमल) कमल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग केसर बकुल, अम्बुज (दिन में खिलने वाला कमल) और पारिजात आदि पुष्प तुलसी के ही तप का अधिक महत्त्व मानते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मन्दारपारिजातौ सुरतरुविशेषौ, कुरवस्तिलकवृक्षः, उत्पलं रात्रिविकासि, अम्बुजं दिनविकासि, नागो नागकेसरः, एताः सुमनसः पुष्पजातयः सुगन्धा अपि तुलसिकाभरणेन श्रीहरिणा तुलस्या गन्धेऽर्चिते सति यस्मिन्वने तस्यास्तपो बहु मानयन्ति। अनेन तत्रस्था गुणग्राहिण एव न मत्सरिण इत्युक्तम् । एवंभूतं वनं यत्र तद्वैकुण्ठं ययुरिति पूर्वेणान्वयः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मन्दार और पारिजात ये दोनों वृक्ष विशेष हैं । तिलक वृक्ष को कुरव कहते हैं । रात्रि में विकसित होने वाले कमल को उत्पल कहते हैं । दिन में विकसित होने वाले कमल को अम्बुज कहते हैं । नाग केसर का ही

नाम नाग है । इन सभी पुष्पों की जातियाँ सुगन्धित हैं । फिर भी श्रीहरि तुलसी के आभरण से अपने को सजाते हैं और तुलसी के द्वारा ही उनकी अर्चना की जाती है । यह देखकर उस वन के पुष्प तुलसी की ही तपस्या को बहुत मानते हैं । इस कथन से उस वन के स्थावरों को भी गुणग्राही बतलाया गया है ईर्ष्यालु नहीं बतलाया गया है । इस प्रकार का जहाँ पर वन है उस वैकुण्ठ में सनकादि महर्षिगण गये यह पहले श्लोक से अन्वय है ॥१९॥

यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ।
येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥२०॥

अन्वयः— हरिपदानतिमात्रदृष्टैः वैदूर्यमारकतहेममयैः विमानैः यत् संकुलम् । येषां कृष्णात्मनां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः उत्स्मयाद्यैः रजः न आदधुः ॥२०॥

अनुवाद— श्रीहरि के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक नमस्कार करने मात्र से प्राप्त होने वाले, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय विमानों से जो वैकुण्ठ भरा हुआ है । श्रीभगवान् में ही जिनका मन सदा लगा रहता है, उन भगवद् भक्तों के मन में, बड़े-बड़े नितम्बों वाली तथा मुसकान से मानोहर मुखवाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्वैकुण्ठमेव विशिनष्टि । यत्संकुलं व्याप्तं भवति । कैः । हरिपदयोरानतिः प्रणामस्तावन्मात्रेण दृष्टैर्भक्तानां विमानैर्न कर्मादिप्राप्यैर्वैदूर्यमारकतैर्हेममयैश्च विमानैः । बृहन्ति कटितटानि यासाम् । स्मितशोभीनि मुखानि यासां ता अपि । कृष्णे आत्मा येषाम् रजःकाममुत्स्मयाद्यैः परिहासादिभिर्न आदधुर्न जनयामासुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी पुनः वैकुण्ठ की ही विशेषता बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरण कमलों में प्रणाम करने मात्र से ही प्राप्त होने वाले कर्मादिकों से नहीं, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय भक्तों के विमानों से जो वैकुण्ठ लोक भरा हुआ है । उन विमानों में रहने वाले भगवत्प्राण भक्तों के मन में विशाल नितम्बों वाली तथा मुस्कान से मनोहर मुख वाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ऐसे वैकुण्ठ लोक में वे सनकादि महर्षिगण गयें ॥२०॥

श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ।
सँल्लक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥२१॥

अन्वयः— यदनुग्रहणे अन्य यत्नः तादृशी श्री रूपिणी हरिसद्मानि मुक्तदोषा चरणारविन्दं क्वणयन्ती, लीलाम्बुजेन, स्फटिक कुड्ये उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव ॥२१॥

अनुवाद— जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं वे परम सौन्दर्य शालिनी श्रीलक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में अपनी चञ्चलता रूपी दोष को त्यागकर निवास करती हैं । वे अपने चरणों के नूपुर का झनकार करती हुए अपने लीला कमल को जब घुमाती हैं, उस समय सुवर्ण से युक्त स्फटिक मणि की दिवारों में प्रतिबिम्बित होती हुयी लगता है कि जैसे वे श्रीहरि के गृह को झाड़ रही हों ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

श्रीर्लक्ष्मीः रूपिणी मनोहरमूर्तिधारिणी सती श्रीहरेः सद्मनि संमार्जनं कुर्वतीव यस्मिन् लोके सँल्लक्ष्यते । चरणारविन्दं क्वणयती नूपुरेण शब्दयन्ती । मुक्तो दोषश्चाञ्चल्यं यया । यद्वा मुक्तेन दोषा प्रसारितेन बाहुना । कीदृशे सद्मनि । स्फटिकमयानि कुड्यानि यस्मिन् । मध्ये मध्ये च शोभार्थमुपेतं संयुक्तं हेम यस्मिन् । यस्या अनुग्रहेण श्रीरनुग्रहं करोत्वित्येतदर्थमन्येषां

ब्रह्मादीनां यत्नः सा । अयं भावः-यद्यपि तत्र रजो नास्त्येव तथापि स्वर्णपट्टिकावच्छिन्नभित्तिभागेषु बहुधा प्रतिबिम्बिता सती लीलाम्बुजं भ्रामयन्ती विनयभक्तिभ्यां तथा लक्ष्यते इति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिस वैकुण्ठ लोक में मनोहर शरीर धारण की हुयी लक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में झाड़ू लगाती हुयी सी प्रतीत होती हैं । वे अपने पैरों के नूपुर की झनकार करती हुयी, तथा अपने चाञ्चल्य नामक दोष का परित्याग करके, अथवा मुक्तदोषा पद का यह अर्थ है कि वे अपनी फैलायी हुयी भुजाओं से जब अपने लीला कमल को घुमाती हैं । तब जिनके बीच-बीच में शोभा के लिए सुवर्ण जटित है, ऐसे स्फटिक मणि से निर्मित दिवालों में प्रतिबिम्बित होती हैं तो लगता है कि वे भक्तिपूर्वक श्रीहरि के गृह को झाड़ रही हैं । ये वे ही लक्ष्मीजी हैं जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं । **अयंभावः**- कहने का अभिप्राय है कि यद्यपि वैकुण्ठ लोक में धूलि नामक वस्तु है ही नहीं फिर भी स्वर्ण पट्टिका से जटित दिवार के भागों में अनेक बार वे प्रतिबिम्बित जब होती हैं और लीला कमल को घुमाती हैं तो लगता है कि वे विनय और भक्ति से भरकर श्रीहरि के गृह को जैसे झाड़ रही हों ।।२१।।

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ।
अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग यत् श्री निजवने प्रेष्यान्विता तुलसीभिः ईशम् अभ्यर्चती विद्रुमतटासु अमलामृताप्सु स्वलकम् उन्नसम् वक्त्रम् ईक्ष्य भगवता ऊच्छेषितम् इति अमत ।।२२।।

अनुवाद— हे देवताओं, जिस लोक में, लक्ष्मीजी अपनी दासियों के साथ तुलसी दल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हैं, जिनके घाट मूंगों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है । ऐसी वावलियों में प्रतिविम्बित सुन्दर केशों और ऊँची नाक से युक्त अपने मुख को जब वे देखती हैं तो इसका श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है यह सोचकर उसका बहुत अधिक समादर करती हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे देवाः, यद्यस्मिँल्लोके श्रीरेवं अमत अमंस्त मेने । किं कुर्वती । विद्रुममयानि तटानि यासाम् । अमला अमृततुल्या आपो यासां तासु वापीषु निजवने लक्ष्मीवने परिचारिकाभिरन्विता तुलसीभिः श्रीविष्णुं पूजयन्ती । तदोदके प्रतिबिम्बितं शोभनालकयुक्तमुत्कृष्टनासिकायुक्तं च स्ववक्त्रं वीक्ष्य भगवता उच्छेषितं चुम्बितमित्यमन्यत । अनेन लक्ष्म्या अपि सौभाग्यसुखं भगवदनुग्रहेणैवेति द्योतितम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे देवताओं जिस वैकुण्ठ लोक में दासियों के साथ अपने वन में लक्ष्मीजी तुलसीदल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हुयी जिसके तट विद्रुमों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है ऐसी बावलियों में सुन्दरकेश कलाप तथा उन्नत नासिका से युक्त अपने मुख को प्रतिम्बित देखकर उसका इसलिए बहुत अधिक समादर करती हैं कि मेरे इस मुख का श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है । इस कथन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि श्रीलक्ष्मीजी का सौभाग्य सुख भी श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण है ।।२२।।

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥२३॥

अन्वयः— ये अघभिद रचनानुवादात् न व्रजन्ति, ये अन्यविषया मतिघ्नीः कुकथाः शृण्वन्ति, या तु श्रुता हतभगैः नृभिः आत्तसाराः तान् अशरणेषु तमस्सु क्षिपन्ति ।।२३।।

अनुवाद— जो लोग श्रीभगवान् की पापविनाशिका सृष्ट्यादिविषयिणी कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को, जो बुद्धि को विनष्ट करने वाली है उनको सुनते है वे वैकुण्ठ लोक में नहीं जाते हैं। वे कथायें, सुनने वालों के पुण्य को विनष्ट कर देती हैं और उन सबों को आश्रयहीन नरकों में डाल देती है यह शोक का विषय हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पुनः कथंभूतं तत्। यद्वैकुण्ठं न व्रजन्ति। के ये कुकथाः शृण्वन्ति। कास्ताः। अघं भिनत्तीत्यघभित् तस्य हरेः रचना सृष्ट्यादिलीला तस्या अनुवादादन्यविषया अर्थकामादिवार्ता मतिभ्रंशिकाः। तेषामव्रजने हेतुः-यास्तु हतभाग्यैर्नरैः श्रुताः सत्यस्तांस्तान् श्रोतॄनशरणेषु निराश्रयेषु तमःसु नरकेषु क्षिपन्ति। हन्त खेदे। कथंभूताः। आत्तः सारः श्रोतॄणां पुण्यं याभिस्ताः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जिसमें लोग नहीं जा सकते हैं। जो लोग पापविनाशिका श्रीभगवान् की सृष्ट्यादि की लीलाओं से सम्बन्धित कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न बुद्धि को विनष्ट करने वाली अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को सुनते हैं। उन लोगों के वैकुण्ठलोक में नहीं जाने का कारण है कि वे अर्थ और काम सम्बन्धी कथाएँ वे उनको सुनने वाले लोगों के पुण्यों को ले लेती है और उन जीवों को आश्रय रहित घोर नरकों में डाल देती हैं ॥२३॥

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥२४॥

अन्वयः— **या नः अभ्यर्थिताम् अपि नृगतिं प्रपन्नाः यत्र च धर्म सह तत्त्वविषयं ज्ञानं ये तत्र अमुष्य भगवतः आराधनं न वितरन्ति ते बत विततया मायया मोहिताः ॥२४॥**

अनुवाद— जिस मनुष्य योनि को हम देवलोग भी प्राप्त करना चाहते हैं, उस मनुष्य योनि को प्राप्त करके जो लोग श्रीभगवान् की आराधना नहीं करते हैं, क्योंकि मनुष्य योनि में ही धर्म के साथ-साथ तत्त्व की प्राप्ति होती है, वे लोग श्रीभगवान् की फैली हुयी माया के द्वारा मोहित हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्तान् शोचन्ति। नोऽस्माभिर्ब्रह्मादिभिरप्यभ्यर्थितां नृगतिं मनुष्यजातिं प्रपन्नाः प्राप्ताः सन्तोऽपि हरेराराधनं न कुर्वन्ति। कीदृशीं नृगतिम्। यत्र यस्यां धर्मसहितं तत्त्वज्ञानं भवति। तदुभयसाधकत्वात्तस्याः। तेऽमुष्य भगवतो विस्तृतया मायया ननु संमोहिताः। वतेति खेदे। यदि वैवं संबन्धः। केवलं त एव न व्रजन्ति, किंतु ये भगवदाराधनं न कुर्वन्ति तेऽपि तेषां मायामोहितत्वादिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् देवगण उन हतभाग मनुष्यों के विषय में खेद प्रकट करते हुए कहते हैं। जिस मनुष्य योनि को हम ब्रह्मा आदि देवगण भी प्राप्त करना चाहते हैं उस मनुष्य योनि को प्राप्त करके भी जो लोग श्रीहरि की आराधना नहीं करते हैं, क्योंकि उस मनुष्य योनि में ही धर्म के साथ-साथ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, इन दोनों धर्म और तत्त्वज्ञान को प्रदान करने वाली है मनुष्य योनि। उस योनि को भी प्राप्त करके भगवदाराधन नहीं करने वाले लोग श्रीभगवान् की विस्तृत माया से मोहित हैं। इस श्लोक में बत अव्यय का प्रयोग खेद के अर्थ में हुआ है। पूर्वोक्त श्लोक में वर्णित लोग ही भगवान् के लोक में नहीं जाते हैं ऐसी बात नहीं है अपितु जो लोग भगवदाराधन नहीं करते हैं वे भी उस वैकुण्ठ लोक में नहीं जाते हैं, क्योंकि वे लोग श्रीभगवान् की माया से मोहित होते हैं ॥२४॥

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरे मया ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥२५॥

अन्वयः— यच्च नः उपरि हि अनिमिषाम् ऋषभानुवृत्त्या यमाः दूरे व्रजन्ति स्पृहणीयशीलाः मिथः भर्तुः सुयशः कथनानुरागवैक्लव्य वाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ते तत्र व्रजन्ति ॥२५॥

अनुवाद— हमलोगों से ऊपर वैकुण्ठ लोक में रहने वाले देवाग्रगण्य श्रीभगवान् का निरन्तर अनुसरण करने के कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं । ऐसे स्पृहणीय शील स्वभाव वाले महात्मगणों के आपस में चर्चा चलने पर अनुराग वशात् जिनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती हैं और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है, ऐसे परम भागवत ही श्रीभगवान् के उस वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

पुनः कथंभूतम् । यच्च नः उपरि स्थितं व्रजन्ति । के । अनिमिषां देवानामृषभः श्रेष्ठो हरिस्तस्यानुवृत्त्या दूरे यमो येषाम्। यद्वा दूरीकृतयमनियमाः । पाठान्तरे दूरीकृताहंकारा इत्यर्थः । स्पृहणीयं करुणादि शीलं येषाम् । किंच भर्तुहरिर्यत्सुयशस्तस्य मिथः कथने योऽनुरागस्तेन वैक्लव्यं वैवश्यं तेन वाष्पकला तया सह पुलकीकृतमङ्गं येषाम् । यद्वा नः उपरीति व्रजतां विशेषणम् । निरहंकारत्वादस्मत्तेऽपि येऽधिकास्ते यद्व्रजन्तीत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

पुनः वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जो हमलोगों से ऊपर स्थित है तथा जिसमें कौन लोग जाते हैं ? प्रश्न है कि कौन लोग जाते हैं ? तो इसका उत्तर है कि सभी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीहरि का निरन्तर चिन्तन करने के कारण जिनसे यमराज सदा दूर रहा करते हैं । अथवा जिन लोगों ने यम नियम आदि योग के साधनों का त्याग कर दिया हो । जहाँ **दूरेयमा उपरि** पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन लोगों ने अहङ्कार का परित्याग कर दिया। तथा जिन लोगों का शील स्वभाव अत्यन्त स्पृहणीय है, तथा परस्पर में श्रीहरि की सुन्दर कथाओं का वर्णन करते समय अनुरागातिरेक के कारण जिनकी आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगती है, और साथ ही साथ जिनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है । वे महाभागवत अहङ्कार रहित होने के कारण हमलोगों से भी श्रेष्ठ है, वे उस वैकुण्ठ लोक में जाते हैं । यह अर्थ उपरिअव्ययव्रजता का विशेषण मानने पर होगा ॥२५॥

तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ।
आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥२६॥

अन्वयः— अथो मुनयः योगमायाबलेन विश्वगुर्वधिकृतम् भुवनैकवन्द्यम् दिव्यं विचित्र विबुधाग्र्य विमानशोचिः तद् अपूर्वं विकुण्ठम् उपेत्य परां मुदम् आपुः ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे सनाकादि मुनिगण अपने योग के बल से जगद्गुरु श्रीभगवान् के द्वारा अधिष्ठित सम्पूर्ण लोकों के वन्दनीय दिव्य तथा विचित्र श्रेष्ठ देवताओं के विमानों से विभूषित उस अपूर्व वैकुण्ठ धाम में जब पहुँचे तो उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुयी ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्तदा तदपूर्वं विकुण्ठं अथो अनन्तरमुपेत्य मुनयः परामुत्कृष्टां मुदमापुः । अपूर्वत्वे हेतवः-विश्वगुरुणा हरिणाऽधिकृतमधिष्ठितम् । भुवनानामेकमेव वन्द्यम् । दिव्यमलौकिकम् । विचित्राणि विबुधाग्र्याणां विमानानि तेषां शोचिर्दीप्तिर्यस्मिन्। योगमायाबलेनेति अष्टाङ्गयोगप्रभावेणोपेत्य परमेश्वरे तु योगमायेति चिच्छक्तिविलास इति द्रष्टव्यम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उस अपूर्व वैकुण्ठ लोक में जाकर उन सनकादि महर्षियों को अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के आनन्द की प्राप्ति हुयी । इस श्लोक में वैकुण्ठ के अपूर्वत्व के प्रतिपादन में ये सब हेतु उपन्यस्त किए गये है । वह वैकुण्ठ श्रीहरि के द्वारा अधिष्ठित था, वह सभी लोकों के लिए परम वन्दनीय था, उसमें श्रेष्ठ देवताओं के विमानों की कान्ति फैल रही थी । उस लोक में सनकादि महर्षि अपने योगबल से पहुँच गये । परमेश्वर की योगमाया का अर्थ है उनकी चित् शक्ति का विलास ॥२६॥

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥

अन्वयः— तस्मिन् असज्जमानाः मुनयः षट्कक्षा अतीत्य अथ सप्तमायाम् समानवयसौ गृहीतगदौ परार्ध्य केयूर कुण्डल किरीट विटङ्कवेषौ देवौ अचक्षत ॥२७॥

अनुवाद— उस वैकुण्ठ की किसी भी वस्तु की दर्शन में आसक्ति नहीं होने के कारण वे मुनिगण छह कक्षाओं को पार करके सातवीं कक्षा में एक समान अवस्था वाले हाथ में गदा लिए हुए, महामूल्यवान् बाजूबन्द कुण्डल, किरीट से अलंकृत सुन्दर वेष वाले दो देवों को देखे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्वैकुण्ठे षट् कक्षाः प्राकारद्वाराणि । असज्जमानाः भगवद्दर्शनोत्कण्ठया तत्तदद्भुतदर्शन आसक्तिमकुर्वाणाः । द्वारपालौ देवावपश्यन् । समानं वयो ययोः । गृहीते गदे याभ्याम् । परार्ध्यैः केयूरादिभिर्विटङ्कः सुन्दरो वेषो ययोः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों को श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा बनी हुयी थी किसी भी अद्भुत वस्तु को देखने की उनमें आसक्ति नहीं थी, अतएव वे छह कक्षाओं के द्वारों को पार करके सातवीं कक्षा में पहुँचकर वहाँ पर उन लोगों ने दो द्वारपालों को देखा । उन दोनों की अवस्था एक समान थी वे अपने हाथ में गदा लिए थे तथा वे अत्यन्त मूल्यवान बाजूबन्द कुण्डल तथा किरीट धारण किए हुए सुन्दर वेष में थे ॥२७॥

मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितचतुष्टयबाहुमध्ये ।
वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥

अन्वयः— असित चतुष्टय बाहुमध्ये विन्यस्तया मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ कुटिलया भ्रुवा स्फुटिनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग् रभसं वक्त्रं दधानौ अचक्षत ॥२८॥

अनुवाद— श्यामवर्ण की चार भुजाओं के बीच में धारण की गयी, मतवाले भ्रमरों से गुंजरित वनमाला से सुशोभित, टेढी भौहे तथा फड़कती नासिका छिद्र में अरूण वर्ण के नेत्रों के द्वारा थोड़ी सी क्षोभ के चिह्न से युक्त मुख को धारण किए हुए उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तावेव वर्णयति । मत्ता द्विरेफा यस्यां तया वनमालया निवीतौ कण्ठलम्बिन्या अलंकृतौ । असिता नीलाश्चतुष्टये चतुःसंख्याका बाहवस्तेषां मध्ये विन्यस्तया । वक्त्रं च मनाग्रभसं किंचित्क्षुब्धं दधानौ स्फुटावुल्फुल्लौ निर्गमौ श्वासमार्गौ नासापुटे ताभ्याम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में उन्हीं दोनों द्वारपालों का वर्णन किया जा रहा है। वे दोनों गले में लटकने वाली वनमाला से अलंकृत थें । और उन वनमालाओं पर मतवाले भौंरे गुनगुना रहे थे । वह वनमाला उन दोनों द्वारपालों की

चारो भुजाओं के बीच में विन्यस्त थीं । उनका मुख कुछ क्षुब्ध सा था । उनकी नाकों के छिद्र फड़क रहे थे । ऐसे उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ॥२८॥

द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ।
सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये संचरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥२९॥

अन्वयः— तयोः मिषतोः द्वारि पुरटवज्रकपाटिकायाः पूर्वाः यथा अपृष्ट्वा निविविशुः ते मुनयः अविषमया स्वदृष्ट्या विगताभिशङ्काः अविहता ये सर्वत्र संचरन्ति ॥२९॥

अनुवाद— उन दोनों की आँखों के सामने ही उस द्वार में उसी तरह प्रवेश किए जिस तरह इससे पहले के सुवर्ण और व्रजमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को लाँघकर वे आये थे । उनकी दृष्टि सर्वत्र एक समान थी और वे निःशङ्का होकर सर्वत्र विचरते थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

एतयोर्मिषतोः पश्यतोस्तावनादृत्यापृष्ट्वैव याः पूर्वाः षट्-द्वारः । पुरटालंकृतवज्रमय्यः कवाटिका यासु ता यथा विविशुस्तथा सप्तमायामपि द्वारि ते निविविशुः । अप्रश्ने हेतुः-सर्वत्र ये अविहता अनिवारिताः संचरन्ति । निःशङ्कत्वे हेतुः-अविषमया स्वदृष्ट्येति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वे सभी सनकादि महर्षिगण उन दोनों को देखते ही रहने पर दोनों से पूछे बिना ही जिस तरह से सुवर्णालंकृत वज्रमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को पार करके आये थे उसी प्रकार इस सातवीं कक्षा में प्रवेश कर गये । क्योंकि वे मुनिगण तो समदृष्टि थे अतएव बिना शङ्का के वे सर्वत्र विचरते थे । उन लोगों को कोई भी रोकता नहीं था ॥२९॥

तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ।
वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥३०॥

अन्वयः— वातरशनान् वृद्धान् दशार्धवयसः विदितात्म तत्त्वान् तान् चतुरः कुमारान् वीक्ष्य अतदर्हणान् तेजोविहस्य भगवतः प्रतिकूलशीलौ तो वेत्रेण च आस्खलयताम् ॥३०॥

अनुवाद— दिगम्बर ब्रह्माजी की सृष्टि में सबसे वृद्ध किन्तु देखने में पाँच वर्ष की अवस्था वाले के समान लगने वाले, तथा तत्त्वज्ञ उन चारो कुमारों को देखकर उन मुनियों के तेज का उपहास करके श्रीभगवान् के प्रतिकूल स्वभाव वाले उन दोनों ने बेंत से रोक दिया यद्यपि वे उस व्यवहार के योग्य नहीं थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

वातरशनान्नग्रान्वृद्धानपि पञ्चवर्षबालकवत्प्रतीयमानान् । चकारादाज्ञया च । अस्खलयतां निवारितवन्तौ । न तत् स्खलनमर्हन्तीति तथा तान् । अहो अत्रापि धाष्टर्यमित्येवं तेषां तेजो विहस्य । भगवतो ब्रह्मण्यदेवस्य प्रतिकूलं शीलं ययोः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

वे चारो महर्षि नङ्गधडङ्ग थे । वे आयु में सबसे वृद्ध होने पर देखने में पाँच वर्ष के प्रतीत होते थे । उन चारो महर्षियों को उन दोनों द्वारपालों ने बेंत लगाकर रोक दिया और चकारात् उन लोगों को नही प्रवेश करने की आज्ञा भी दी । यद्यपि वे महर्षिगण द्वारपालों द्वारा किए जाने वाले इस तरह के व्यवहार के योग्य नही थे। उन महर्षियों के तेज का उपहास करते हुए उन दोनों ने कहा कि अरे यहाँ आकर भी इस तरह धृष्टता करते हो । श्रीभगवान तो ब्रह्मण्यदेव हैं और उन दोनों का शील श्रीभगवान् के प्रतिकूल था ॥३०॥

ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ।
ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥३१॥

अन्वयः— ताभ्यां हरेः प्रतिहाराभ्याम् मिषत्सु अनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा हि अपि सुहृत्तम दिदृक्षितभङ्गईषत् कामानुजेन सहसा उपप्लुताक्षाः ते ऊचुः ॥३१॥

अनुवाद— श्रीहरि के दोनों द्वारपालों द्वारा वहाँ के देवताओं के सामने ही पूजा के सर्वश्रेष्ठ पात्र उन मुनियों को रोके जाने पर अपने सुहृत्तम श्रीहरि के दर्शन में भङ्ग होने पर उन मुनियों को थोड़ा सा क्रोध आ गया और उनकी आँखें लाल हो गयीं । मुनियों ने कहा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्द्वारपालपतिभ्यां देवेषु पश्यत्सु वार्यमाणास्ते मुनयः '**को वाम्**' इत्यादिश्लोकत्रयीमूचुः । सुहृत्तमः श्रीहरिस्तस्य दिदृक्षितं दर्शनेच्छा तस्य भङ्गे सति कामस्यानुजः क्रोधस्तेन सहसाऽकस्मादेवोपप्लुतानि क्षुभितान्यक्षीणि येषां ते । सुष्टु पूज्यतमा अपीति निषेधानर्हत्वे क्रोधानर्हत्वे वा हेतुः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के द्वारपालों के स्वामियों द्वारा सभी देवताओं के सामने ही रोके जाते हुए उन दोनों को मुनियों ने **को वाम** तुम दोनों कौन हो इत्यादि तीन श्लोकों को कहा । उन मुनियों के सुहृत् श्रीहरि हैं, उनको देखने की इच्छा के भङ्ग हो जाने पर मुनियां को थोड़ा क्रोध हो आया, उनकी आँखें लाल हो गयीं और उन मुनियों ने कहा ॥३१॥

मुनय ऊचुः

को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ।
तस्मिन्प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥३२॥

अन्वयः— उच्चैः भगवत् परिचर्यया इह एत्य निवसतां तद्धर्मिणां वाम् इह विषमः स्वभावः कः तस्मिन् प्रशान्त पुरुषे गतविग्रहे वां आत्मवत् कुहकयोः वां कः परिशङ्कनीयः ॥३२॥

मुनियों ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् की अत्यधिक सेवा के द्वारा यहाँ इस वैकुण्ठ लोक में आकर निवास करने वाले भगवद् भक्तों में तुम दोनों का यह विषम स्वभाव कैसे है ? तुम भी यहाँ निवास करने वालो में ही हो, फिर तुम दोनों का इस तरह से विपरीत स्वभाव कैसे हो गया ? इस लोक के स्वामी तो अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले हैं उनका किसी के भी साथ विग्रह नहीं है । फिर भी जिस तरह तुमलोग कपटी हो उस तरह से यहाँ दूसरा कौन हैं ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका

उच्चैर्महत्या भगवत्परिचर्यया एत्य प्राप्य वैकुण्ठे निवसतां तद्धर्मिणां भगवद्धर्मिणा समदर्शिनां मध्ये वां युवयोरेव कोऽयं विषमः स्वभावः । कैश्चित्प्रवेष्टव्यं कैश्चिन्नेत्येवंभूतः । ननु स्वामिनो रक्षार्थं द्वारपालयोरेष स्वभावो गुण एवेति चेदत आहुः-तस्मिन्निति । कुहकयोः कपटयोः । आत्मवत्स्वदृष्टान्तेन । यथा आवां कपटौ तथाऽन्योऽपि कश्चित्कपटः प्रवेक्ष्यतीति। अयं भावः-न ह्यत्र भगवद्भक्तं बिना कश्चिदागच्छति । न चेश्वरे प्रशान्तत्वादविद्यमानविरोधे भयशङ्का । अतो युवां केवलं धूर्तावेवेति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की बहुत अधिक सेवा करके ही कोई जीव इस वैकुण्ठ में आकर निवास करता है । यहाँ रहने

वाले सभी लोग समदर्शी हैं । उन समदर्शियों के बीच में तुम दोनों की यह विषम दृष्टि कैसे हो गयी ? कि तुमलोग यह समझते हो कि यहाँ कुछ लोगों को ही प्रवेश करने देना चाहिए कुछ लोगों को नहीं । **ननु० इत्यादि** यदि यह कहो कि अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए इस तरह का स्वभाव होना रक्षकों का गुण ही है । तो इसका उत्तर इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से दिया गया है । श्रीभगवान् तो प्रशान्त पुरुष हैं, अतएव उनका किसी से भी विरोध नहीं है । तुम दोनों ही कपटी हो अतएव यह समझते हो कि तुम दोनों के ही समान कोई कपटी यहाँ प्रवेश कर जा सकता है । कहने का अभिप्राय है कि भगवद्भक्त से भिन्न कोई दूसरा यहाँ आता ही नहीं है । जब श्रीभगवान् अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले हैं तो उनका किसी से विरोध भी नहीं है । अतएव भय की यहाँ कोई शङ्का है ही नहीं । केवल तुम ही दोनों यहाँ धूर्त हो ॥३२॥

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥३३॥

अन्वयः— कुक्षौ धीराःनभसि नभ इव धीरा भगवति आत्मनि आत्मानं पश्यन्ति अन्तरं नहि पश्यन्ति युवयोः सुरलिङ्गिनोः उदरभेदिभयं किं व्युत्पादितं यतः अस्यभयम् ॥३३॥

अनुवाद— इस परमात्मा की कुक्षि में सारा विश्व है । उसमें ज्ञानीजन भेद नहीं देखते हैं वे परमात्मा में ही अपने को महाकाश में विद्यमान घटाकाश के समान देखते हैं । तुम दोनों देवरूपधारी हो तुम ऐसा क्या देखते हो ? जिससे तुमने भगवान् के साथ भेदभाव के कारण भय की कल्पना कर ली ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भयशङ्काबीजं च भेदः स च कस्याप्यस्मिन्नास्तीत्याहुः-न हीति । समस्तं विश्वं कुक्षौ यस्य यत्र यदेह भगवति धीरा विद्वांस आत्मनोऽन्तरं भेदं न पश्यन्ति किंत्वस्मिन्परमात्मन्यात्मानमन्तर्भूतं पश्यन्ति महाकाशे घटाकाशमिव तदा यथान्यस्य राजादेरुदरभेद्युदरभेदयुक्तं भयं भवति तथास्य श्रीहरेस्तादृग्भयं यतो येन कारणेन सुरवेषधारिणोर्युवयोर्विशेषेणोत्पादितं तत्किम्, न किंचिदित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने कहा भय की शङ्का का कारण भेद होता है । इस परमात्मा से किसी का भी भेद नहीं है । सारा विश्व श्रीभगवान् के उदर में है । उसमें थोड़ा सा भी भेद होने पर भय होता है । ज्ञानी पुरुष परमात्मा से आत्मा का अन्तर उसी तरह से नहीं देखते हैं जिस तरह महाकाश में घटाकाश होता है । जैसे किसी दूसरे राजा का दूसरे राजा आदि से थोड़ा सा भेद होता है, उस तरह से परमात्मा का कोई भेद नहीं हैं फिर भी देवरूप धारी तुम लोगों ने यह विशेष भेद कैसे उत्पन्न कर दिया ? जबकि वह भेद है ही नहीं ॥३३॥

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥

अन्वयः— अमुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः प्रकृष्टं कर्तुम् वाम् मन्दधीभ्याम् धीमहि । अन्तरभावदृष्ट्या इतो लोकान् व्रजतम् यत्र अस्य इमे त्रयः पापीयसः रिपवः ॥३४॥

अनुवाद— अतएव वैकुण्ठनाथ के पार्षद होने पर भी मन्दबुद्धि वाले तुम दोनों का कल्याण करने के लिए हम उचित दण्ड का विचार करते है । तुम दोनों अपने मन्द भेद बुद्धि के कारण इस लोक से निकलकर उन पापमय योनियों में जाओं जहाँ पापियों के काम, क्रोध और लोभ ये तीनों प्रबल शत्रु रहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मादमुष्य वैकुण्ठनाथस्य भृत्याभ्यां युवाभ्यां प्रकृष्टं भद्रमेव कर्तुमिहास्मिन्नपराधे यद्युक्तं तद्धीमहि चिन्तयेम ।

तदेवाहुः । अन्तरस्य भेदस्य भावः सत्ता तद्दर्शिनेन इतो वैकुण्ठलोकाद्व्रजतम् । यत्र येषु लोकेष्वस्य पापीयसोऽन्तरभावद्रष्टुरिमे 'कामः क्रोधस्तथा लोभः' इति गीतोक्तास्त्रयो रिपवो भवन्ति । इतो वैकुण्ठात्पापीयसो लोकानिति वा ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुम दोनों इन वैकुण्ठनाथ के अनुचर हो फिर भी तुम दोनों का कल्याण करने के लिए इस अपराध के लिए उचित दण्ड देने के लिए हम उचित दण्ड का विचार कर रहे हैं । उस दण्ड को बतलाते हुए मुनियों ने कहा भेद की सत्ता देखने के ही कारण तुम यहाँ से उन लोकों में जाओ जहाँ पर पापमय भेद को सत्ता देखने वाले गीतोक्त काम, क्रोध तथा लोभ ये तीन शत्रु हुआ करते हैं । वे लोक वैकुण्ठ लोक से अत्यधिक पापमय लोक हैं ।।३४।।

तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ।
सद्यो हरेरनुचरावुरुबिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ।।३५।।

अन्वयः— तेषाम् इतीरितम् उभौ घोरम् अवधार्य, तं ब्रह्मदण्डम् अस्त्रपूगैः अनिवारणम् अवधार्य उरुबिभ्यतः हरे अनुचरौ सद्यः अतिकातरेण पादग्रहौ अपतताम् ।।३५।।

अनुवाद— उन सनकादिकों के इस कठोर वचन को सुनकर और यह जानकर कि इस भयङ्कर ब्रह्मदण्ड को किसी दूसरे अस्त्र से नहीं रोका जा सकता है, श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त भयभीत होकर अत्यन्त दीनता पूर्वक उनके चरण को पकड़कर लोट गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

इति तेषामीरितं भाषणं घोरमवधार्य, तं च ब्रह्मदण्डं ब्रह्मशापमवधार्य, तं चास्त्रसमूहैरप्यनिवार्यमवधार्य । हरेरनुचरावतिकातर्येण भयेन तत्पादग्रहणं कुर्वन्तौ सन्तौ दण्डवदपतताम् । कथंभूतस्य हरेः । एवंभूतेभ्यो मुनिभ्यस्ताभ्यामप्युरु अधिकं बिभ्यतो भयं भावयतः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों के इस वचन को अत्यन्त भयङ्कर निश्चय करके और उसको ब्रह्मशाप जानकर और यह भी जानकर कि इस ब्रह्मशाप को किसी दूसरे अस्त्र समूह से नहीं रोका जा सकता है इस तरह से निश्चय करके श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त अधीर होकर भय के कारण उन ब्राह्मणों के चरण को पकड़कर पृथिवी पर गिर पड़े श्रीहरि की विशेषता को बतलाते हुए कहते हैं कि ऐसे मुनियों से तो वे दोनों जैसे डरे हुए थे उनसे भी अधिक भय का अनुभव श्रीहरि ब्राह्मणों से करते हैं ।।३५।।

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ।
मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोधः ।।३६।।

अन्वयः— अघोनि भूयात् भगवद्भिः दण्डः अकारि यो नौ अशेषम् सुरहेलनम् हरेत, वः अनुतापकलया तु अधोऽधः व्रजतोः नौ भगवत स्मृतिघ्नः मोहः मा भवेत् ।।३६।।

अनुवाद— हम दोनों ने अपराध किया है और उसके लिए आपलोगों ने उचित ही दण्ड दिया है, इससे हमदोनों का सम्पूर्ण आपलोगों का अपमानजन्य पाप धुल जायेगा । यदि आपको थोड़ा सा भी अनुताप हो तो आप लोग इतनी ही कृपा करें कि मैं चाहे जिस योनि में जाऊँ, मुझे श्रीभगवान् की स्मृति बनी रहे, उसे हम न भूलें।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अहो अपराद्धमस्माभिरित्यनुतप्यमानान्प्रत्यूचतुः । अघोन्यघवति य उचितो दण्डः सएव भगवद्भिरकारि । नात्र भवतामपराधः

कश्चित् । अतोऽसौ नौ आवयोर्भूयात् । योऽशेषमपि सुरहेलनमीश्वराज्ञातिक्रमरूपं पापं हरेत्, किंतु युष्माकं यः कृपानिमित्तोऽनुतपस्तस्य लेशेन नौ अधोऽधो मूढयोनीर्व्रजतोरपि भगवत्स्मृतिप्रतिघातको मोहो मा भवेत्, किंतु मोहोऽपि स्मृतिमेव प्रवहतादिति प्रार्थना।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों द्वारपालों को शाप देने के पश्चात् मुनिगण पश्चात्ताप कर रहे थे कि हमलोगों ने अपराध कर दिया है । ऐसा पश्चात्ताप करते हुए मुनियों से उन दोनों ने प्रार्थना किया कि हमलोगों ने जो अपराध किया है, उसके कारण आप लोगों ने जो शाप दिया है वह उचित ही है। उससे हमदोनों का अपराधजन्यपाप पूर्ण रूप से समाप्त हो जायेगा । इसमें आप लोगों का थोड़ा सा भी अपराध नहीं है । किन्तु आपलोगों को कृपा करने के कारण थोड़ा भी अनुताप हो तो इतना ही करें कि नीच से नीच योनियों में जाते हुए हमलोगों को कभी भी श्रीभगवान् की विस्मृतिकारक मोह न हो किन्तु मोह श्रीभगवान् स्मृति में ही प्रवाहित हो जाय ।।३६।।

एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ।
तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ।।३७।।

अन्वयः— एवं तदैव आर्यहृदयः भगवान् अरविन्दनाभः स्वानां सदतिक्रमम् विबुध्य सह श्रीः परमहंसमहामुनीनाम् अन्वेषणीयचरणौ चलयन् तस्मिन् ययौ ।।३७।।

अनुवाद— साधु पुरुषों के परम प्रिय भगवान् पद्मनाभ अपने अनुचरों द्वारा सनकादि साधुपुरुषों का अनादर सुनकर श्रीलक्ष्मीजी के साथ अपने उन्हीं चरणों से चलकर उस स्थान पर आ गये जिन चरणों का ध्यान मुनिजन अपने हृदय में ही किया करते हैं और फिर भी श्रीभगवान् के चरणों का दर्शन नहीं कर पाते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवं स्वानां महत्स्वतिक्रममपराधं तत्क्षणमेव विबुध्य तस्मिन्यत्र ते रुद्धास्तं देशं ययौ । आर्याणां हृद्यो मनोज्ञः । चरणौ चलयन्निति । अयं भावः-मच्चरणदर्शनप्रतिघातजं क्रोधं तौ दर्शयन् शमयिष्यामीति त्वराव्याजेन पद्भ्यामेव ययौ । श्रीसाहित्यं च निष्कामानपि विभूतिभिः पूरयित्वा क्षमापयितुम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को उसी समय पता चल गया कि मेरे अनुचरों ने सनकादिक सत्पुरुषों का अपमान किया है वे स्वयं उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ पर मुनिजन रुके हुए थे । वे श्रीभगवान् सत्पुरुषों के लिए मनोज्ञ हैं । वे अपने पैरों से चलकर वहाँ चले आये । श्रीभगवान् का ऐसा करने में अभिप्राय था कि मेरे चरणों के दर्शनमें जो बाधा हुयी है उसी के कारण मुनियों को क्रोध हुआ है । अतएव इन चरणों का दर्शन कराकर मैं उनके क्रोध को शान्त कर दूँगा । इस तरह से शीघ्रता करने के बहाने भगवान् अपने पैरों से चलकर आये । किञ्च ये मुनिजन तो यद्यपि निष्काम हैं फिर भी उन लोगों को विभूतियों से परिपूर्ण बनाकर मैं अपराध क्षमा कराऊँगा, इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ वहाँ आये ।।३७।।

तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ।
हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरसीकराम्बुम् ।।३८।।

अन्वयः— स्वपुंभिः प्रतिहृतौपयिकं स्वसमाधिभाग्यम् हंसश्रियोः व्यजनयोः शिववायु लोलत् शुभ्रातपत्र शशि केसर शीकराम्बुम् तंतु आगतम् अक्षविषयं ते अचक्षत ।।३८।।

अनुवाद— जिनके अनुचर गमनोपयोगी छत्र पादुका आदि शीघ्र ला दिए थे, तथा उन मुनिजनों की समाधि में भजन करने योग्य तथा हंसों के समान श्वेत वर्ण के दो चामरों की कल्याणमयी वायु से हिलते हुए श्वेत छत्र के केसर रूपी जल बूंदों से युक्त आये हुए श्रीभगवान् को जो उनके नेत्रों के सामने थे उनको उन मुनियों ने देखा।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तैर्दृष्टं देवमनुवर्णयति पञ्चभिः । तं त्वागतं तेऽचक्षत अपश्यन् । आपञ्चमादिदमेव क्रियापदम् । स्वपुंभिः शीघ्रं प्रतिहृतमानीतमौपयिकं गमनोचितं छत्रपादुकादि यस्य । कथंभूतम् । स्वसमाधिना भाग्यं भजनीयं फलं यद्ब्रह्म तदेवाक्षविषयम्। हंसवच्छ्रीर्ययोस्तयोरुभयतश्चलयोर्व्यजनयोर्यः शिवोऽनुकूलो वायुस्तेन लोलन्तश्चलन्तः शुभ्रातपत्रशशिकेसराः शुभ्रं यदातपत्रं तदेव शशिसादृश्याच्छशीतस्य केसरा मुक्ताहारविलम्बास्तेभ्यो गलन्ति सीकाराम्बूनि यस्मिंस्तम् । सीकरोऽम्बुकणः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों द्वारा देखे जाते हुए तथा उस स्थान पर पधारे हुए श्रीहरि का वर्णन पाँच श्लोकों में किया जा रहा है । आये हुए श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा इस श्लोक से पाँचवें श्लोक तक अचक्षत यह क्रिया अन्वित होगी । श्रीभगवान् के अनुचर शीघ्र ही गमनोपयोगी उनके छत्र पादुका आदि को ला दिये थे । ऐसे श्रीभगवान् को जो उन सनकादिकों की समाधि के फल स्वरूप थे उनका दर्शन वे अपनी आखों से कर रहे थे । हंसों के समान श्वेत शोभा सम्पन्न दो चामर उनके दोनों बगल में चलाये जा रहे थे उनकी शीतल वायु से जिनके श्वेत चमर में लगी हुयी मोतियों के झालर हिल रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे चन्द्रमा की किरणों से अमृत की बूंदें झर रही हों ॥३८॥

कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ।
श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥३९॥

अन्वयः— स्पृहणीयधाम, कृत्स्नप्रसादसुमुखम् स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम्, श्यामे पृथौ उरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिमिव स्वधिष्ण्यम् सुभगयन्तमिव अचक्षत ॥३९॥

अनुवाद— सबों पर कृपा करने के कारण प्रसन्नता पूर्ण सुन्दर मुख वाले सम्पूर्ण स्पृहणीय गुणों के एक मात्र आश्रय, अपनी स्नेहमयी दृष्टि से मानों सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, श्याम वर्ण के विस्तृत वक्षः स्थल में सुशोभित होने वाली लक्ष्मीजी के द्वारा स्वर्गादि लोकों के चूड़ामणि अपने वैकुण्ठ धाम को सुशोभित करते हुए से श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

कृत्स्नस्य द्वारपालमुनिवृन्दस्य प्रसादे सुमुखम् । स्पृहणीयानां गुणानां धाम स्थानम् । स्नेहावलोककलया सप्रेमकटाक्षेण हृदि संस्पृशन्तं सुखयन्तम् । त्रैलोक्यविवक्षापक्षे सत्यलोकपर्यन्तः स्वर्गस्तस्य चूडामणिवत्स्थितं स्वधिष्ण्यं वैकुण्ठं सुभगयन्तं शोभयन्तम् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

सभी द्वारपालों तथा मुनिजनों पर कृपा की वर्षा करने के कारण सुन्दर प्रसन्न मुख वाले समस्त स्पृहणीय गुणों के आश्रय स्वरूप, प्रेम पूर्वक सबों को देखने के कारण जैसे वे सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, और सबों को सुख प्रदान कर रहे हों त्रैलोक्य की विवक्षा मानने पर सत्यलोक पर्यन्त स्वर्ग के चूड़ामणि के समान स्थित अपने स्थान वैकुण्ठ धाम को वे जैसे सुशोभित कर रहे थे ॥३९॥

पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥४०॥

अन्वयः— पीतांशुके पृथुनिताम्बिनी विस्फुरन्त्या, काञ्चया, विरूतया अलिभिः वनमालया च, वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तम् इतरेण अब्जम् धुनानम् अचक्षत ॥४०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के पीताम्बर मण्डित विस्तृत नितम्बों पर चमकती हुयी करधनी और गले में लटकती हुयी भ्रमरों से गुंजायमान वनमाला सुशोभित हो रही थी। वे अपनी कलाइयों में सुन्दर कङ्कन धारण किए थे। वे अपना एक हाथ गरुड़ के कंधे पर रखकर दूसरे हाथ से कमल को घुमा रहे थे ऐसे भगवान् को मुनियों ने देखा।।४०।।

भावार्थ दीपिका

पृथुर्नितम्ब आश्रयत्वेन विद्यते यस्य तस्मिन्पीतांशुके। अलिभिर्नादितया वनमालया च युक्तम्। सुभगयन्तमिति पूर्बेणैव वा सम्बन्धः। वल्गुषु प्रकोष्ठेषु वलयानि यस्य। गरुडस्य स्कन्धे विन्यस्त एको हस्तो येन। इतरेणान्येनाब्जं लीलाकमलं धुनानं भ्रामयन्तम्। विन्यस्येति पाठे च वल्गित्वादि हस्तस्य विशेषणम्।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् विस्तृत नितम्ब जिसका आश्रय है उस पीताम्बर पर चमकती हुई करधनी से तथा गुनगुनाते भौरों के गुञ्जन से युक्त, वनमाला से सुशोभित श्रीहरि अपनी कलाई में सुन्दर कङ्कन धारण किए थे, एक हाथ को वे गरुड के कन्धे पर रखे थे और दूसरे हाथ से वे कमल को घुमा रहे थे। जहाँ पर विन्यस्य पाठ होगा वहाँ बल्गु इत्यादि हाथ के विशेषण होंगे ।।४०।।

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम्।
दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ।।४१।।

अन्वयः— विद्युत्क्षिपन् मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं, मणिमत् किरीटम् दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्येण हारेण कौस्तुभेन च सुशोभितं भगवन्तम् अचक्षत ।।४१।।

अनुवाद— विद्युत् की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाले मकराकृति कुण्डल को भी अलंकृत करने वाले कपोलों; उठी हुयी नाक से युक्त मुख वाले, मणि जटित किरीट को धारण किए हुए भुज समूह के बीच में विराजमान बहुमूल्य हार तथा कन्धे पर लटकने वाली कौस्तुभमणि से सुशोभित श्रीभगवान् को मुनियों ने देखा ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

स्वकान्त्या विद्युतः क्षिपती ये मकराकारे कुण्डले तयोर्मण्डनस्यार्हे गण्डस्थले यस्मिंस्तच्च तदुन्नसं च मुखं यस्य। मणियुक्तं किरीटं यस्य। दोर्दण्डानां षण्डं समूहस्तस्य विवरे मध्ये स्थितेन हरता मनोहरेण विहरतेति वा परार्ध्यं उत्कृष्टस्तेन हारेण। कंधरायां स्थितेन ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अपनी कान्ति से विद्युत् की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले दोनों मकराकृतिकुण्डलों को अलंकृत करने योग्य दो कपोलों से तथा उठी हुई नासिकाओं से युक्त मुख वाले, मणिमय किरीट को धारण किए हुए, भुज समूह के बीच विद्यमान अत्यन्त मूल्यवान हार तथा कन्धे से लटकने वाले कौस्तुभमणि को धारण किए हुए श्रीहरि को मुनियों ने देखा ।।४१।।

अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम्।
मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशा मुदा कैः ।।४२।।

अन्वयः— इन्दिरायाः उत्स्मितम् अत्र उपसृष्टम् इति स्वानां धिया बहुसौष्ठवाढ्यं विरचितं मह्यम्, भवस्य भवतां च अङ्गम् भजन्तम् निरीक्ष्य मुदा कैः नेमुः न वितृप्तदृशः ।।४२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के सौन्दर्य के समक्ष मैं ही सर्वाधिक सुन्दर हूँ इस प्रकार लक्ष्मीजी का सौन्दर्याभिमान मानो विनष्ट हो गया, उनके अपने भक्तों द्वारा इस प्रकार से अपने मन में वितर्कित अत्यधिक सौन्दर्य सम्पन्न, मेरे

शिवजी के तथा आप सभी देवताओं के लिए शरीर धारण किए हुए, श्रीभगवान् को देखकर ब्रह्माजी के पुत्रों ने नमस्कार किया किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उन मुनियों के नेत्र तृप्त नहीं हुए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

किंबहुना । इन्दिराया उत्स्मितमहमेव सर्वसौन्दर्यनिधिरित्यहंकरणमत्र भगवत्सौन्दर्ये उपसृष्टमस्तंगतमिति स्वानां भक्तानां धिया विरचितम् । भृत्यैः स्वमनस्येवं वितर्कितमित्यर्थः । कुतः । बहुसौष्ठवेन सौन्दर्येणाढ्यं युक्तम् । किंच मह्यं मम भवस्येश्वरस्य भवतां च कृतेऽङ्गं भजन्तं मूर्तिं प्रकटयन्तमचक्षत । निरीक्ष्य च कैः शिरोभिर्मुदा नेमुर्नमश्चक्रुः । न विशेषेण तृप्ता दृशो नेत्राणि येषां ते ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहा जाय, लक्ष्मीजी का यह जो अहङ्कार था कि मै ही सम्पूर्ण सौन्दर्यों का आकर हूँ; वह श्रीभगवान् के सौन्दर्य के सामने गलित हो गया । इस प्रकार के भगवद् भक्तों के मन में वितर्कित विचार था। क्योंकि भगवान् का वह रूप सौन्दर्य से समृद्ध था । ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरे लिए, शिवजी के लिए तथा तुमलोगों के लिए ऐसा शरीर धारण किए श्रीभगवान् के रूप को देखकर सनकादिकों ने नमस्कार किया; किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उनके नेत्र तृप्त नहीं हुए ॥४२॥

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥४३॥

अन्वयः— अरविन्दनयनस्य तस्य पदारविन्द किञ्जल्कमिश्रतुलसी मकरन्दवायुः स्वविवरेण अन्तर्गतः तेषां अक्षरजुषां चित्ततन्वो संक्षोभं चकार ॥४३॥

अनुवाद— कमल नयन भगवान् के चरणारविन्द के पराग मिश्रित तुलसी की सुगन्धि युक्त वायु ने उन सनकादियों की नासिका के छिद्र के माध्यम से भीतर प्रवेश करके अक्षर ब्रह्म में मग्न रहने वाले सनकादियों के मन में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

स्वरूपानन्दादपि तेषां भजनानन्दाधिक्यमाह । तस्य पदारविन्दयोः किञ्जल्कैः केसरैर्मिश्रा या तुलसी तस्या मकरन्देन युक्तो वायुः स्वविवरेण नासाछिद्रेण । अक्षरजुषां ब्रह्मानन्दसेविनामपि । संक्षोभं चित्तेऽतिहर्षं तनौ रोमाञ्चम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

उन सनकादिक महर्षियों में स्वरूपानन्द की अपेक्षा भजनानद अधिक था इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग से युक्त तुलसी की सुगन्धि से युक्त वायु ने उनकी नाक के छिद्र से प्रवेश करके उनके चित्त और शरीर में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ॥४३॥

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥४४॥

अन्वयः— ते वै अमुष्य असितपद्मकोशम् सुन्दरतराधर कुन्दहासम् उद्वीक्ष्य लब्धाशिषः पुनः तदीयमङ्घ्रि द्वन्द्वम् नखारुणमणिश्रयणं अवेक्ष्य निदध्युः ॥४४॥

अनुवाद— वे मुनिगण कुन्दकली के समान मनोहर हँसी से युक्त नील कमल के कोश के समान मुख को देखकर अपने मनोरथ को प्राप्त कर लिए, पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त श्रीभगवान् के चरण युगल को देखकर वे उसका ध्यान करने लगे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

हर्षकारितं संभ्रममाह द्वाभ्याम् । ते वै किलामुष्य वदनमेवासितपद्मस्य कोशोऽन्तर्भागस्तम् । असितपद्मकोशमित्यभूतोपमा। सुन्दरतरे अरुणे अधरोष्ठे कुन्दवद्धासो यस्मिंस्तम् । उत् ऊर्ध्वं वीक्ष्य लब्धमनोरथाः सन्तो नखा एवारुणमणयस्तेषां श्रयणमाश्रयभूतमङ्घ्रिद्वन्द्वं पुनरवेक्ष्याऽधोदृष्ट्या वीक्ष्य पुनःपुनरेवं निरीक्ष्य युगपत्सर्वाङ्गलावण्यग्रहणाशक्तेः पद्मविदध्युर्ध्यातवन्तः।।४४।।

भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से हर्ष जनित शीघ्रता का वर्णन करते हैं । श्रीभगवान् का मुख ही नील कमल के कोश के समान था । अर्थात् नील कमल का भीतरी भाग था, असितपद्म कोश में अभूतोपमा नामक अलङ्कार है । क्योंकि नील कमल का कोष पीला होता है नील नहीं, यदि नील कमल कोश भी नीला हो जाय तब जाकर उसके समान श्रीभगवान् का मुख हो, इसतरह इस पद में उपमित समास है । श्रीभगवान् के अत्यन्त सुन्दर लाल-लाल ओष्ठ थे । तथा उसमें कुन्द के समान श्वेत वर्ण की हंसी थी इस तरह के श्रीभगवान् के मुखमण्डल को देखकर उन मुनिजनों का मनोरथ पूर्ण हो गया । उसके पश्चात् वे पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त उनके दोनों चरणों को देखकर उसका ध्यान करने लगे ।।४४।।

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ।
पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ।।४५।।

अन्वयः— योगमार्गैः गतिं मृगयताम् पुंसां ध्यानास्पदं बहुमतम् पौंस्नं वपुः दर्शयानम् अनन्यसिद्धै औत्पत्तिकैः अष्टभोगैः युतम् समगृणन् ।।४५।।

अनुवाद— योग मार्ग के द्वारा मोक्षमार्ग का अन्वेषण करने वाले पुरुषों के ध्यान के विषयभूत अत्यन्त समादरणीय नयनानन्द को बढ़ाने वाले अपने पौरुष (पुरुष सम्बन्धी) रूप का दर्शन देने वाले स्वाभाविक अष्टसिद्धियों से युक्त श्रीहरि की वे स्तुति करने लगे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

योगमार्गैर्गतिं मृगयतां पुंसां ध्यानस्य विषयभूतम् । बहुमतमत्यादरास्पदम्, बहूनां तत्त्वदृशां संमतमिति वा । पौंस्नं पौरुषं वपुर्दर्शयन्तम् । अन्येष्वसिद्धैरसाधारणैरौत्पत्तिकैर्नित्यैरणिमाद्यष्टैश्वर्यैर्युतम् । समगृणन् सम्यगस्तुवन् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग योगमार्ग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके ध्यान का विषय बनने वाले, देखने वालों के नेत्रानन्द को प्रदान करने वाले अत्यन्त आदरणीय, अपने सुन्दर पौरुष रूप का दर्शन देने वाले तथा स्वाभाविक रूप से नित्य अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न श्रीहरि का वे मुनिगण स्तुति करने लगे ।।४५।।

कुमारा ऊचुः

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ।
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ।।४६।।

अन्वयः— हे अनन्त यः त्वम् दुरात्मनां हृदि गतोऽपि अन्तर्हितः सः त्वम् अद्यैव नः नयनमूलराद्धः । भवदुद्भवेन पित्रा यर्ह्येव अनुवर्णितरहा कर्णविवरेण नः गुहां गतः ।।४६।।

कुमार ने कहा

अनुवाद— हे अनन्त आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहकर भी दुष्ट हृदय वालों की दृष्टि से दूर ही रहते हैं । वही आप आज हमारी आँखों के सामने साक्षात् विराजमान हैं । जिस समय आपसे

उत्पन्न हमारे पिता ब्रह्माजी ने आपके रहस्य का हमें उपदेश दिया उसी समय आप मेरे कर्ण विवरों के माध्यम से हृदय में तो आ गये थे किन्तु आपका दर्शन आज ही हमें मिला है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

नित्यं ब्रह्मरूपेण प्रकाशसे, न तच्चित्रम्। इदानीं तु परममङ्गलविशुद्धसत्त्वश्रीमूर्त्या प्रत्यक्षोऽसि। अहो भाग्यमस्माकमित्याहुः हे अनन्त, यस्त्वं हृद्गतोऽपि दुरात्मनामन्तर्हितो न स्फुरसि स नोऽस्माकमन्तर्हितो न भवसि। नयनमूलं त्वद्यैव राद्धः प्राप्तोऽसि। अन्तर्धानाभावे हेतुः-भवतः सकाशादुद्भवो यस्य तेनास्मत्पित्रा यर्हि यदैवानुवर्णितरहा उपदिष्टरहस्यस्तदैव नः कर्णमार्गेण गुहां बुद्धिं गतः प्राप्तोऽसीति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

आप ही नित्य ही ब्रह्मरूप से प्रकाशित होते हैं, किन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस समय परममङ्गल विशुद्धसत्त्व विग्रह के द्वारा आप हमारे नेत्रों के समक्ष हैं। अर्थात् आज आपके परम मङ्गलमय शुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह का हमलोगों को दर्शन मिला है। यह हमलोगों का परम सौभाग्य है। इसी बात को इस श्लोक में कहा गया है। हे अनन्त यद्यपि आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी आप दुष्टों को नहीं प्रकाशित होते हैं। किन्तु वही आप आज हमलोगों को प्रकाशित हो रहे हैं। श्रीभगवान् के प्रकाशित होने का कारण बतलाते हुए मुनियों ने कहा— आपसे ही उत्पन्न हमलोगों के पिता ब्रह्माजी ने जब हमलोगों को आपके रहस्य का उपदेश दिया उसी समय से आप हमलोगों के हृदय में आ गये थे; किन्तु आपका साक्षात् दर्शन तो आज ही मिला है ॥४६॥

तं त्वां विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम्।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥४७॥

अन्वयः— हे भगवन् तं त्वाम् परमात्मतत्त्वं सम्प्रति सत्त्वेन एषाम् रतिं रचयन्तम्, यत् ते अनुतापविदितैः दृढभक्तियोगैः उद् ग्रन्थयः विरागाः मुनयः हृदि विदुः ॥४७॥

अनुवाद— हे भगवन्! हम आपको साक्षात् परमात्म तत्त्व मानते हैं इस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्वमय दिव्य विग्रह के द्वारा अपने भक्तों को आनन्दित कर रहे हैं। आपके इस सगुण और साकार मूर्ति को राग तथा अहङ्कार से रहित संसार से विरक्त मुनिजन आपकी ही कृपा से प्राप्त सुदृढ़ भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय मे प्राप्त करते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु पित्रोपदिष्टं भवतामन्यादृशमदृश्यमात्मतत्त्वमहं त्वन्य एव स्यां दृश्यत्वात्। नैवम्। अस्मत्प्रत्यभिज्ञया भेदनिरासादित्याहुः-तमिति। हे भगवन्, आत्मतत्त्वमेव परं त्वां विदाम विद्मः प्रत्यभिजानीमः। ननु निरुपाधेरात्मतत्त्वस्य कथमीदृशमैश्वर्यं स्यादत आहुः। सत्त्वेन विशुद्धसत्त्वमूर्त्या। एषां भक्तानाम्। सम्यक् प्रतिक्षणं संप्रति रतिः प्रीतिस्तां रचयन्तम्। आत्मतत्त्वमेवाहुः। तेऽनुतापः कृपा तेन विदितैर्ज्ञातैर्दृढैर्भक्तियोगैः श्रवणादिभिर्मुनयो हृदि यद्विदुः। कीदृशाः। उद्ग्रन्थयः निरहंमाना अतएव विगतरागाः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट अदृश्य आत्मतत्त्व दूसरे प्रकार का है और मैं तो उससे भिन्न ही हूँ। क्योंकि मैं तो दृश्य हूँ आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्व अदृश्य हैं। तो ऐसी बात नहीं है। क्योंकि हमलोगों की प्रत्यभिज्ञा के द्वारा दोनों रूपों में कोई भेद नहीं प्रतीत होता है। इसी अर्थ का प्रतिपादन मुनियों ने **तंत्वा॰ इत्यादि** इस श्लोक में किया है। मुनियों ने कहा हे भगवन् हमलोग आपको परमात्म तत्त्व

ही जानते हैं । यदि कहें कि आत्मतत्त्व निरुपाधिक निर्विशेष है उसका ऐसा ऐश्वर्य कैसे हो सकता है ? इस पर मुनियों ने कहा आप अपने विशुद्ध सत्त्व के द्वारा अपने भक्तों के हृदय में प्रेम उत्पन्न कर रहे हैं । अतएव आप आत्म तत्त्व ही हैं । आपकी ही कृपा से जिन अहङ्कार और मान रहित तथा संसार से विरक्त भक्तों को सुदृढ भक्तियोग प्राप्त हो जाता है, वे अपने भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय में आपके इस रूप का साक्षात्कार करते हैं ।।४७।।

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किंत्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ।।४८।।

अन्वयः— अङ्ग ये भवदंघ्रिशरणाः कीर्तन्यतीर्थयशसः भवतः कथायाः कुशलाः रसज्ञाः ते आत्यन्तिकं प्रसादं आत्यन्तिकम् न विगणयन्ति किन्तु अन्यत् ते भ्रुवः उन्नयैः अर्पितभयम् ।।४८।।

अनुवाद— हे प्रभो जो भक्त एकमात्र आपके चरणों को ही अपना रक्षक मानते हैं तथा आपके मनोहर तथा पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ हैं वे आपके द्वारा प्रदत्त मोक्ष नामक भी प्रसाद का बहुत अधिक महत्त्व नहीं देते हैं तो फिर दूसरे इन्द्र आदि के पद की कामना वे कैसे कर सकते हैं । जिस इन्द्र पद को आपकी थोड़ी से टेढी भौहों से ही भय उत्पन्न हो जाता है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

स्वयमपि भक्तिं प्रार्थयितुं भक्तानां सुखातिशयमाहुः । आत्यन्तिकं मोक्षाख्यमपि तव प्रसादं ते न गणयन्ति नाद्रियन्ते। किंतु किमुतान्यदिन्द्रादिपदम् । ते भ्रुव उन्नयैरुज्जृम्भैरर्पितं निहितं भयं यस्मिंस्तत् । ते के । अङ्ग हे भगवन्, ये भवतः कथाया रसज्ञाः । कथंभूतस्य । रमणीयत्वेन पावनत्वेन च कीर्तन्यं कीर्तनार्हं तीर्थं पवित्रं च यशो यस्य ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनिजन स्वयं भी भक्ति प्राप्ति की प्रार्थना करने के लिए भक्तों के सुखातिशय का वर्णन करते हैं । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! जो भक्तजन आपके चरणों को ही अपना एकमात्र रक्षक मानते हैं तथा आपकी मनोहर तथा पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ हैं । वे आपके द्वारा दी जाने वाली मुक्ति को भी अधिक महत्त्व नहीं देते हैं । अतएव जिस इन्द्र इत्यादि के पद को केवल आपकी थोड़ी सी भौहों के टेढी कर देने मात्र से भय उत्पन्न हो जाता है, उस इन्द्र आदि के पद को वे क्यों प्राप्त करना चाहेंगे ?।।४८।।

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ।।४९।।

अन्वयः— नः चेतः अलिवत् यदि ते पदयोः रमेत नः वाचः च तुलसिवत् यदि ते अङ्घ्रिशोभाः यदि कर्णरन्ध्रः ते गुणगणैः पूर्येत तर्हि स्ववृजिनैः नः भवः निरयेषु कामं स्तात् ।।४९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यदि भौंरे के समान हमारा मन आपके चरणों में ही रमण करता रहे, हमारी वाणी यदि तुलसी के समान आपके चरणों को ही सुशोभित करती रहे और हमारे कर्णरन्ध्र यदि आपके गुणगणों से ही परिपूर्ण होते रहें तो फिर अपने पापों के कारण हमारा जन्म यदि नारकीय योनियों में ही होता रहे तो भी कोई बात नहीं है।।४९।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं स्वीयापराधं द्योतयन्तो भक्तिं प्रार्थयन्ते-काममिति । हे भगवन्नितः पूर्वमस्माकं वृजिनं नाभवत् । इदानीं सर्वाण्यपि जातानि । यतस्त्वद्भक्तौ शप्तौ । अतस्तैः स्ववृजिनैर्निरयेषु कामं नोऽस्माकं भवो जन्म स्तात्स्यात् । नु वितर्के । यदि तु नश्चेतस्ते पदयो रमेत अलिर्यथा कण्टकैराविध्यमानोऽपि पुष्पेषु रमते तद्वद्विघ्नानविगणय्य यदि रमेत । अङ्घ्रिभ्यां शोभा यासाम् । यथा च तुलसी गुणनैरपेक्ष्येण त्वदङ्घ्रिसंबन्धेनैव शोभते तथा यदि नो वाचः शोभेरन् । यदि च ते गुणगणैरापूर्येत । कर्णरन्ध्र

इत्यल्पस्य पूरणमेव याचकरीत्या प्रार्थयन्ते । अयं तु गूढोऽभिप्रायः । कर्णरन्ध्रस्याकाशत्वाद्गुणगणानां चामूर्तत्वान्न कदाचित्पूरणम्। अतो नित्यमेव श्रवणं फलिष्यतीति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

कामम् इत्यादि इस श्लोक में अपने अपराध को सूचित करते हुए सनकादि महर्षि श्रीभगवान् से भक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! इससे पहले हमलोगों ने कोई पाप नहीं किया है; किन्तु इस समय तो हमलोग सभी प्रकार के पापों को कर लिए हैं । क्योंकि हमलोगों ने आपके दोनों भक्तों को शाप दे दिया है। अतएव उन पापों के कारण हमलोगों का जन्म नरकों में हो जाय तो भी कोई बात नहीं है । किन्तु जिस तरह कांटों से विद्ध होकर भी भौंरा पुष्पों में ही रमण करता रहता है, उसी तरह से विघ्नों से बाधित होकर भी हमलोगों का मन आपके चरणों में रमण करता रहे, जिस तरह तुलसी श्रीभगवान के चरणों को ही सुशोभित करती है उसी तरह हमारी वाणी भी यदि आपके चरणों का ही गुणगान करती रहे और हमारे कानों के छिद्र यदि आपके कल्याणमय गुणगणों के श्रवण से परिपूर्ण होते रहें । कानों के छिद्र तो बहुत छोटे हैं; किन्तु उनकी पूर्ति वे उसी तरह से चाहते हैं जिस तरह छोटी सी भिक्षा से ही अपने अञ्जली की पूर्ति प्राप्त करना चाहता है । **अयं तु इत्यादि**- इस कथन का गूढ अभिप्राय है कि आकाश विशेष को ही कर्ण (श्रोत्रेन्द्रिय) कहते हैं और गुण समूह भी अमूर्त हैं । उनसे कभी भी उनकी पूर्ति नहीं हो सकती अतःएव हमलोग आपके गुण समूह का नित्य ही श्रवण करते रहें ।।४९।।

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः— हे ईश ! हे पुरुहूत ! यदिदं रूपं प्रादुश्चकर्थ तेन न दृशः अलं निवृर्तिं अवापुः यो भगवान् अनात्मनां दुरुदयः प्रतीतः तस्मै भगवते इत् नमः विधेम ।।५०।।

अनुवाद— हे परम यशस्वी प्रभो आपने हमारे सामने यह जो रूप प्रकट किया है उससे हमारे नेत्रों को बहुत सुख मिला है । अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए आपका दर्शन मिलना कठिन है । आप साक्षात् भगवान् है हम आपको नमस्कार करते हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अद्य वयं कृतार्थाः स्मेत्याहुः । हे पुरुहूत विपुलकीर्ते, यदिदं प्रादुश्चकर्थ प्रकटितवानसि । दृशो नेत्राणि अनात्मनामजितेन्द्रियाणां दुरुदयोऽप्रकटोऽपि इत् इत्थं यः प्रतीतोऽसि । तस्मै तुभ्यमिदं नमो विधेम ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनियों ने कहा कि हमलोग कृतार्थ हो गये हैं । हे परम यशस्वी प्रभो आपने यह जो रूप प्रकट किया है, इससे हमारे नेत्र अत्यन्त आनन्दित हुए हैं । आपके इस रूप का दर्शन अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए असम्भव है । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

जय विजय का वैकुण्ठ से पतन

ब्रह्मोवाच

इति तद्‌गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् । प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥

अन्वयः— इति तद् गृणतां तेषां योगधर्मिणां मुनीनां प्रतिनन्द्य विकुण्ठनिलयो विभुः इदं जगाद ॥१॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी ने कहा— हे देवगण ! जब योगनिष्ठ मुनियों ने इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की उस समय वैकुण्ठ में निवास करने वाले श्रीहरि ने उनकी प्रशंसा की और यह कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

हरिणा सन्त्वितैर्विप्रैरनुतप्तैस्तु षोडशे । तयोरसुरभावेऽपि कृतोऽनुग्रह ईर्यते ॥१॥ इति गृणतां तेषां तद्वाक्यं प्रतिनन्द्येदं जगाद एतावित्येकादशभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि से सान्त्वना प्राप्त प्रभाव सम्पन्न उन मुनियों द्वारा उन दोनों द्वारपालों पर किये गये अनुग्रह का वर्णन सोलहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

इस तरह से स्तुति करने वाले उन सनकादि महर्षियों की प्रशंसा करके श्रीभगवान् ने जो कहा उसको **एतौ० इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च । कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥

अन्वयः— एतौ जयविजयौ एव मह्यं पार्षदौ तौ माम् कदर्थीकृत्य बहु अतिक्रमम् अक्राताम् ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— ये जय वियज मेरे पार्षद हैं इन दोनों ने मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किया है ।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मान्मां कदर्थीकृत्य तुच्छीकृत्य बहु यथा भवति तथा अतिक्रमं वः कृतवन्तौ ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने मुनियों से कहा कि ये मेरे दोनों पार्षद मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किए हैं ॥२॥

यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः । स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥

अन्वयः— हे मुनयः मामनुव्रतैः भवद्भि यस्तु एतयोः दण्डो धृतः स एव अस्माभिः अनुमतः देवहेलनात् ॥३॥

अनुवाद— हे मुनिगण ! आपलोग हमारे अनुगत भक्त है । इस तरह से मेरी अवज्ञा करने के कारण आपलोगो ने इन दोनों को जो दण्ड दिया है; वह हमको भी अभिमत है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्स एव दण्डोऽङ्गीकृतः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इन दोनों ने आपलोगों की अवमानना करके मेरी ही अवमानना की है, अतएव इन दोनों को जो दण्ड मैं देना चाहता था उसी दण्ड को आपलोगों ने दिया है ॥३॥

तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे । तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥४॥

अन्वयः— ब्रह्म ही मे परं दैवं यत् स्वपुम्भिः असत्कृताः तत् हि आत्मकृतं मन्ये तद्वः अद्य प्रसादयामि ॥४॥

अनुवाद— ब्राह्मण ही मेरे परम आराध्य हैं, मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का अपराध किया है, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ । इसीलिए मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

हि यस्माद्ब्रह्म ब्राह्मणा एव मे परमं दैवं दैवतं तत्तस्मादद्य वः प्रसादयामि । तव कोऽपराध इति चेत्तत्राह- तद्धीति। मदीयैः पुंभिरसत्कृतास्तिरस्कृता इति यत्तदात्मकृतमेव मन्ये ॥४॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि ब्राह्मण ही मेरे परमाराध्य है । अतएव आज मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ । यदि आपलोग कहें कि आपका कौन सा अपराध है ? तो इसका उत्तर है कि मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का तिरस्कार किया है, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ ॥४॥

यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि । सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥५॥

अन्वयः— भृत्ये आगसि कृते लोकः यत् नामानि गृह्णाति, सः असाधुवादः तत्कीर्तिम् आमयः त्वचम् इव हन्ति॥५॥

अनुवाद— भृत्यों के अपराध करने पर संसार उनके स्वामी का ही नाम लेता है । वह अपयश उसकी कीर्ति को उसी तरह दूषित कर देता है जिस तरह श्वेतकुष्ठ त्वचा को दूषित कर देता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

किंच ममैवैताभ्यामनिष्टं कृतमित्याह । यस्य स्वामिनो नामानि तस्य कीर्तिम् । आमयोऽत्र श्वेतकुण्ठम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि इन दोनों ने मेरा ही अनिष्ट किया है, क्योंकि जिसके अपराध करने पर अपराध करने वाले के जिस स्वामी का नाम होता है, उसकी कीर्ति दूषित होती है । यहाँ पर आमय शब्द से श्वेतकुष्ठ को कहा गया है ॥५॥

यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥

अन्वयः— यस्य मे अमृतामलयशः श्रवणावगाहः आश्वपचात् जगत् सद्यः पुनाति सोऽहम् विकुण्ठः भवद्भ्यः उपलब्ध सुतीर्थकीर्तिः वः प्रतिकूलवृत्तिम् स्वबाहुमपि छिन्द्याम् ॥६॥

अनुवाद— मेरे अमृत के समान निर्मल सुयश रूपी सरोवर में श्रवण के माध्यम से अवगहन (गोता) लगाने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है, इसीलिए मैं **विकुण्ठ** कहा जाता हूँ । वही मैं। आपलोगों से प्राप्त कीर्ति वाला आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि मेरी भुजा भी होगी तो उसे मैं काट डालूँगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यस्य मेऽमृतरूपेऽमले यशसि श्रवणेनावगाह: प्रवेश: श्वपचमभिव्याप्य जगत्सद्यस्तत्क्षणमेव पुनाति सोऽहं विकुण्ठो भवद्भ्यो हेतुभूतेभ्य उपलब्धा प्राप्ता सु शोभना तीर्थभूता कीर्तिर्येन स: । स्वबाहुस्थानीयं लोकेश्वरमपि हन्यां, काऽन्यस्य कथेत्यर्थ: । स्वगुणानुवर्णनं तु ब्राह्मणोत्कर्षार्थमेव ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मेरे अमृत रूपी निर्मल यश में श्रवण के द्वारा अवगाहन करने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है । इसीलिए मैं विकुण्ठ कहलाता हूँ । यह कीर्ति मुझे आप जैसे मुनियों से ही प्राप्त हुयी है । मेरी यह कीर्ति सुन्दर तथा पवित्रकारिणी है । अतएव आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि कोई मेरे बाहुस्थनीय लोकेश्वर ही क्यों न हो उसे मैं शीघ्र ही मार डालूँगा । अतएव दूसरों की कौन सी बात है? मेरे गुणों का वर्णन तो ब्राह्मणों के उत्कर्ष के ही लिए है ।।६।।

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहन्ति ।।७।।

अन्वयः— यत् सेवया चरणपद्मपवित्रेरेणुं सद्यः क्षताखिलमलम् प्रतिलब्ध शीलम् माम् विरक्तम् अपि श्रीः न विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थे इतरे नियमान् वहन्ति ।।७।।

अनुवाद— आपलोगों की ही सेवा करने के कारण मेरे चरण कमलों की पवित्र धूलि को ऐसी पवित्र कीर्ति प्राप्त हुई है कि वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देती है । और मुझे इस तरह का स्वभाव मिला है कि मेरे उदासीन रहने पर श्रीलक्ष्मीजी मेरा परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं लक्ष्मीजी के कृपा कटाक्ष को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण नियमों का पालन करते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

चरणपद्मयोः स्थितः पवित्रो रेणुर्यस्य । अतएव क्षतो निरस्तोऽखिलस्य लोकस्य मलो येन । यद्वा चरणपद्माल्लग्नः पवित्रो रणुर्यस्मिन्निति, क्षतोऽखिलो मलो यस्येति च विग्रहः । प्रतिलब्धं प्राप्तं शीलं येन । येषां सेवया एते गुणा मम, अतएव श्रीर्मां न विजहाति प्रेक्षालवार्थेऽवलोकनलेशार्थम् । इतरे ब्रह्मादयः । तेषां वः प्रतिकूलवृत्तिं छिन्द्यामिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि यह आपलोगों की सेवा करने का ही फल है कि मेरे चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि सम्पूर्ण लोकों के पापों को तत्काल विनष्ट कर देती है । अथवा आपलोगों के चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि से मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये हैं । और मुझे उसी के कारण ऐसा स्वभाव प्राप्त हो गया है। ऐसे आपलोगों की सेवा के द्वारा मुझको ये सारे गुण प्राप्त हुए है । इसीलिए श्रीदेवी मेरा कभी भी परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं श्रीदेवी की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवता विभिन्न नियमों का पालन करते हैं । इस प्रकार के आपलोगों के प्रातिकूल आचरण करने वाली अपनी भुजाओं को भी मैं काट दे सकता हूँ दूसरों की क्या बात है ।।७।।

नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ।।८।।

अन्वयः— मयि अवहितैः कर्मपाकैः तुष्टस्य यजमानस्य विताने श्चोतद्घृतप्लुतम् हुतभुङ्मुखेन अदन् अहं यजमान हविः तथा न अद्मि यद् ब्राह्मणस्य मुखतः अनुघासं चरतः अद्मि इति शेषः ।।८।।

अनुवाद— अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को समर्पित करके सन्तुष्ट रहने वाले निष्काम यजमान के यज्ञ में जिससे घी टपक रहा हो ऐसे पुरोडाश हविष्य इत्यादि को मैं अपने अग्नि रूपी मुख के द्वारा उस तरह से नही सन्तुष्ट होता हूं जिस तरह घृतप्लुति से युक्त तरह-तरह के पकवानों का भोजन करने वाले ब्राह्मणों के प्रत्येक ग्रास से मैं सन्तुष्ट होता हूँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

किंच ब्राह्मणो ममैव श्रेष्ठं मुखम्, अतो युष्मदवज्ञया मन्मुखतिरस्कार एव कृत इत्याह–नाहमिति । विताने यज्ञे यजमानस्य हविश्चरुपुरोडाशादि हुतभुगग्निस्तेन मुखेन अदश्नन्नपि तथा नाद्मि नाश्नामि । यद्यथा श्च्योतता क्षरता घृतेन प्लुतं विलोडितं पायसादि प्रतिग्रासं रसास्वादपूर्वकं चरतो भुञ्जानस्य ज्ञानिनो ब्राह्मणस्य मुखतोऽश्नामि । मयि समर्पितैः कर्मफलैस्तुष्टस्य निष्कामस्येत्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च ब्राह्मण मेरे श्रेष्ठ मुख हैं । अतएव आप सबों की अवमानना मेरे मुख का ही तिरस्कार है । इस बात को **नाहम्०** **इत्यादि** इस श्लोक में कहा गया है । यज्ञ में यजमानों के हविष्य पुरोडाश आदि को अपने अग्निमुख के द्वारा ग्रहण करके मैं उतना तृप्त नहीं होता हूँ जितना कि जिससे घी चू रहा हों, ऐसे घृतप्लुत पायस आदि को प्रत्येक ग्रास में रस आदि का अनुभव पूर्वक भोजन करने वाले ज्ञानी ब्राह्मण रूपी मुख से ग्रहण करके मैं तृप्त होता हूँ । ऐसे ब्राह्मण जो अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को मुझे समर्पित करके सन्तुष्ट हो जाते हैं । अर्थात् निष्काम ब्राह्मणों के ।।८।।

येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।
विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ।।९।।

अन्वयः— अखण्ड विकुण्ठयोगमाया विभूतिः अहं बिभर्मि, येषां विमलाङ्घ्रिरजः अहंकिरीटैः बिभर्मि, यदर्हणाम्भः सहचन्द्रललामलोकाम् सद्यः पुनाति तान् विप्रान् को न विषहेत ।।९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण योगमाया का अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है, वह मैं जिन ब्राह्मणों के चरण रज को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ तथा मेरे चरणोदक का गङ्गा रूपी जल को और चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण करने वाले शिवजी सहित सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करता है ऐसे ब्राह्मणों के कर्म को कौन नहीं सहन करेगा ।।९।।

भावार्थ दीपिका

किंच येषाममलमङ्घ्रिरजोऽहं किरीटैर्बिभर्मि तान्विप्रानपकुर्वतोऽपि कोऽन्यो न विषहेत । कथंभूतोऽहम् । अखण्डाऽनवच्छिन्ना विकुण्ठाऽप्रतिहता च योगमायाविलासभूता विभूतिर्यस्य सः । तथा यस्य ममार्हणाम्भः पादोदकं चन्द्रललामेनेश्वरेण सहितान्लोकान् सद्यः पुनाति । एवं परमेश्वरः परमपावनोऽपि सन्नहं बिभर्मीति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिन ब्राह्मणों के निर्मल चरणों की धूलि को मैं अपने मुकुट के ऊपर धारण करता हूँ, उन अपकार करने वाले भी ब्राह्मणों के कर्मों को कौन नहीं बर्दास्त करेगा ? भगवान् अपनी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि अखण्ड अर्थात् देश की सीमा से रहित, विकुण्ठ अर्थात् काल की सीमा से रहित योग माया मेरी विलास अर्थात् विभूति है तथा मेरा चरणोदक (स्वरूप गङ्गा) चन्द्रमा की कला से सुशोभित श्रीशङ्करजी के साथ सभी लोकों को पवित्र बना देता है इस तरह का परमेश्वर अर्थात् अत्यन्त पवित्र होकर भी मैं ब्राह्मणों की चरण धूलि को अपने शिर पर धारण करता हूँ ।।९।।

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥

अन्वयः— द्विजवरान् दुहतीः अलब्धशरणानि, भूतानि मे तनूः अघक्षतदृशः मदीया भेदबुद्ध्या द्रक्ष्यन्ति तान् अधिदण्डनेतुः ममरुषा अधिदण्डनेतुः अहिमन्यवः गृध्राः कुषन्ति ॥१०॥

अनुवाद— ब्राह्मण; दूध देने वाली गायें तथा अनाथ जीव ये तीनों मेरे शरीर हैं, पापों के कारण जिनकी विवेकदृष्टि विनष्ट हो गयी है, वे लोग इन सबों को मुझसे भिन्न समझते हैं उनको मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के सर्प के समान क्रोधी गृध्र के समान दूत क्रोध करके नोचते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच मे तनूरधिष्ठानानि । कास्ताः । द्विजवरान्दुहतीर्दोग्ध्रीः गा इत्यर्थः । दुहितुरिति पाठेऽपि गा एव । विष्णुरूपात्सूर्या-दुत्पन्नत्वात् । **'सूर्यसुताश्च गावः'** इति वचनात् । अलब्धशरणानि रक्षकहीनानि भेदबुद्ध्या मदधिष्ठानं न भवन्तीति पृथग्दृष्ट्या ये द्रक्ष्यन्ति । अघेन क्षता नष्टा दृष्टिर्येषां तान् । मदीयोऽधिकृतो दण्डनेता यो यमस्तस्य गृध्राकारा ये दूताः । अहिवन्मन्युर्येषाम् रुषा क्रोधेन कुषन्ति चञ्चुभिश्छिन्दन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मण, दूध देने वाली गायें और अनाथ प्राणी ये तीनों मेरे शरीर हैं गौएँ विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न हैं कहा भी गया है **सूर्यसुताश्च गावः** अर्थात् गौए सूर्य की पुत्रियाँ है । इन तीनों को जिनकी अज्ञान के कारण बुद्धि मारी गयी है, वे लोग मुझसे भिन्न मानते हैं, इनको मेरा शरीर नहीं मानते हैं । उनकी आँखों को मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के गृध्र के समान आकार वाले तथा सर्पों के समान क्रोधी दूत अपनी चोंचों से नोचते हैं ॥१०॥

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयात्मजवद्‌गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥

अन्वयः— क्षिपतो ब्राह्मणान् ये मयि धिया अर्चयन्तः, स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः तुष्यद्धृदः आत्मजवत् अनुरागकलया गृणन्तः अहमिव सम्बोधयन्ति तैः अहम् उपाहृतः ॥११॥

अनुवाद— ब्राह्मणों के कठोर वाणी बोलने पर भी जो लोग ब्राह्मणों में मेरी बुद्धि करके उनकी पूजा करते हैं एवं मुस्कान रूपी अमृत से मनोहर मुख कमल से प्रसन्नता पूर्वक उनकी उसी तरह से स्तुति करते हैं जिस तरह कोई पुत्र अपने नाराज पिता को उसी तरह से मनाता है जिस तरह से मैं आप लोगों को प्रसन्न कर रहा हूँ । वे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतास्तु मां वशीकुर्वन्तीत्याह । ये क्षिपतः परुषं भाषमाणानपि ब्राह्मणान्संबोधयन्ति । मयि या धीस्तया वासुदेवदृष्ट्याऽर्चयन्तः सन्तः तुष्यद्धृदः प्रीयमाणचित्ताः स्मितमेव सुधा तयोक्षितं सिक्तं पद्मतुल्यं वक्त्रं येषाम् । अनुरागकलया प्रेमशोभया वाचा गृणन्तः स्तुवन्तः । यथा कुपितमात्मजं स्निग्धः पिता सत्पुत्रो वा पितरम् । अहमिव भृगुं युष्मान्वा । तैरहमुपाहृतो वशीकृतः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

निम्नांकित प्रकार के मनुष्य मुझको अपने वश में कर लेते हैं । जो लोग कठोर वाणी बोलने वाले भी ब्राह्मणों को अच्छी तरह से सम्बोधित करते हैं । और उन ब्राह्मणों को मुझ वासुदेव के ही समान मानकर उनकी प्रसन्नता

पूर्वक पूजा करते हैं एवं मुसुकान रूपी अमृत से मनोहर बने अपने मुख कमल के द्वारा प्रेमभरी वाणी से उसी तरह उनकी स्तुति करते हैं जिस तरह कोई सत्पुत्र अपने क्रुद्ध पिता की स्तुति करता है । जैसे मैं महर्षि भृगु की तथा आपलोगों की स्तुति करता हूँ ऐसे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥

अन्वयः— तत् स्वभर्तुः मे अवसाय अलक्ष्मणो युष्मद् व्यतिक्रमगतिं प्रपद्य सद्यः मे भृतयोः विवासः अचिरतः भूयः मम अन्तिकम् इताम् तद् मे अनुग्रहः ॥१२॥

अनुवाद— अतएव इनके स्वामी मेरे अभिप्राय को नहीं समझने वाले इन दोनों ने आपलोगों का जो अपमान किया है उसके फल को प्राप्त करके इन दोनों का यहाँ से निर्वासन काल जल्दी ही समाप्त हो जाय और ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ, यही आपलोगों का मुझपर अनुग्रह होगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ततस्मान्मेऽवसायमभिप्रायमलक्षमाणावजानन्तौ युष्मदपराधोचितां गतिं सद्यः प्राप्य मत्समीपं इतां प्राप्नुताम् । तदिति स मेऽनुग्रहः । तमेवाह । यत् भृतयोर्विवासोऽचिरतः शीघ्रं कल्पतां संपद्यतां समाप्यतामिति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि इन लोगों ने मेरे अभिप्राय का अपमान किया है, और आप लोगों का अपराध किया है । उसके फलस्वरूप अपराधानुरूप गति को शीघ्र प्राप्त करके ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ यही आपलोगों की कृपा होगी । अतएव मेरे इन दोनों अनुचरों का निर्वासन काल शीघ्र ही समाप्त हो जाय ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् । नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥१३॥

अन्वयः— मन्यु दष्टानां तेषां अथ तस्य उशतीं ऋषिकुल्यां सरस्वतीम् देवी आस्वाद्य आत्मा अपि न अतृप्यत ॥१३॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— यद्यपि सनकादिक मुनिगण क्रोध रूपी सर्प के द्वारा दंश लिए गये थे फिर भी श्रीभगवान् की मनोहर मन्त्र स्वरूपिणी वाणी को सुनने से उन लोगों का अन्तःकरण तृप्त नहीं हुआ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उशतीं कमनीयां प्रियां देवीं द्योतमानामृषिकुल्यां ऋषयो मन्त्रास्तत्प्रवाहरूपाम्, ऋषिकुलयोग्यामिति वा । सरस्वतीं वाचमास्वाद्य तन्माधुर्यमनुभूय सर्पप्रायेण मन्युना दष्टानामपि । क्रोधाविषयव्याप्तानां हि मनो रसानुभवाभावात्प्रियभाषणमपि न सहते, तेषां त्वात्मा मनो नातृप्यत अलमिति नामन्यत ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मनोहर वाणी अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाली थी । वह मन्त्रों के प्रवाह स्वरूपिणी थी । अथवा ऋषियों के वंश के योग्य थी श्रीभगवान् की उस वाणी के माधुर्य का अनुभव करके सर्प के समान क्रोध के द्वारा दंश लिए गये लोगों का मन रस का अनुभव नहीं कर पाने के कारण उसको भी नहीं सह पाता है, किन्तु उन सनकादिक महर्षियों का मन उन बातों को सुनने से पूर्ण रूप से नहीं तृप्त हुआ । वे यह नहीं सोचे कि अब मन भर गया वे और श्रीभगवान् की बातों को सुनना चाहते थे ॥१३॥

सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् । विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥१४॥

अन्वयः— सतीम् लघ्वीं, गुर्वर्थगह्वराम् विगाह्यागाध गम्भीराम् वाचम् व्यादाय शृण्वन्तः तच्चिकीर्षितम् न विदुः ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की वाणी अत्यन्त मनोहर थी, कम अक्षरों वाली अत्यधिक अर्थों से युक्त होने के कारण अत्यन्त गम्भीर थी । अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण उन बातों को अत्यन्त ध्यान पूर्वक सुनकर भी वे महर्षिगण इस बात को नहीं जान सके कि श्रीभगवान् क्या करना चाहते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सतीं श्रेष्ठाम् । व्यादाय प्रसार्य । कर्णं दत्त्वेत्यर्थः । लघ्वीं मिताक्षराम् । गुरुभिरर्थैर्गह्वरां दुष्प्रवेशाम् । अगाधामभिप्रायतः । गम्भीरामर्थतः । विगाह्य विचार्यापि किमस्मानभिनन्दति निन्दति वाऽस्मत्कृतं दण्डं वा संकोचयतीति न विदुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् की वाणी की चार विशेषताएँ बतलायी गयीं है । सतीं, लघ्वीम्, गुर्वर्थगह्वराम् और अगाधगम्भीराम् । सती शब्द के द्वारा उसकी श्रेष्ठता को बतलाया गया है, लघ्वीम् कहकर उसको कम अक्षरों वाली बतलाया गया, अर्थ गह्वराम् कहकर उस वाणी को महान अर्थों से युक्त होने के कारण उसके अभिप्राय को समझपाना कठिन बतलाया गया है । अगाधगम्भीराम् कहकर यह बतलाया गया है कि श्रीभगवान् की उस वाणी के वाच्यार्थ को भी समझना कठिन था । इसीलिए सनकादि मुनिजन ध्यान पूर्वक श्रीभगवान् की उस वाणी को सुनकर भी यह नहीं समझ पाये कि श्रीभगवान् अपनी इस वाणी से हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं अथवा हमलोगों ने इस जय और विजय को दण्ड दिया है, उसको कम कर रहे हैं ॥१४॥

ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् । प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥१५॥

अन्वयः— योगमायया आरब्ध पारमेष्ठ्यमहोदयम् ज्ञात्वा ते विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः प्राञ्जलयः प्रोचुः ॥१५॥

अनुवाद— योगमाया के प्रभाव से अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले श्रीभगवान् की इस अद्भुत उदारता को जानकर उन सनकादि महर्षियों का सारा अङ्ग पुलकित हो गया, वे अत्यन्त प्रसन्न थे और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ततश्चाभिनन्दतीति ज्ञात्वा ते प्रहृष्टाः सन्तः प्रोचुः । क्षुभितया रोमाञ्चिता त्वक् येषाम् । कूषितेति पाठे संजातरोमकूपोक्त्या रोमाञ्चितत्वमेकोक्तम् । आरब्ध आविष्कृतः पारमेष्ठ्यस्य परमैश्वर्यस्य महोदयः परमोत्कर्षो येन तम् । अधिराजत्वमाविष्कृत्य राजशिक्षार्थं ब्राह्मणान्मानयतीति ज्ञात्वेत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जब सनकादि महर्षियों ने यह जान लिया कि श्रीभगवान् हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये, उन लोगों का शरीर रोमाञ्चित हो गया । **कुषितत्वचः** जहाँ पाठ है वहाँ भी रोमाञ्चित ही अर्थ होगा । और वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे । **योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्** का अर्थ है कि योगमाया के द्वारा अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले, अर्थात् राजाओं को शिक्षा देने के लिए श्रीभगवान् ब्राह्मणों को राजाओं का भी राजा बतलाकर ब्राह्मणों का सम्मान कर रहे हैं इस बात को जानकर वे मुनिजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ॥१५॥

ऋषय ऊचुः

न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् । कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

अन्वयः— हे भगवन् अध्यक्षः कृतोमेऽनुग्रहश्चेति, यत् प्रभाषसे हे देव ! तव चिकीर्षितम् वयं न विद्मः ॥१६॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी है, फिर भी आप यह कह रहे हैं कि आप लोगों ने मुझ पर कृपा की है, यह कहकर आप क्या कहना चाहते हैं, इस बात को हमलोग नहीं समझ पाते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अध्यक्षः सर्वेश्वरः सन् '**तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये**' इत्युक्त्या मयाऽपराधः कृत इति, '**तथा तदनुग्रहो मे**' इत्यादिवचनेन ममानुग्रहश्चेति यत्प्रभाषसे तेन तव यच्चिकीर्षितं तन्न विद्मः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षियों ने कहा प्रभो आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, फिर भी आप यह जो कह रहे हैं कि तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये, अर्थात् इन दोनों के द्वारा किए गये अपराध को मैं अपना अपराध मानता हूँ । **तथा तदनुग्रहोमे'** अर्थात् आपलोगों ने हमारे ऊपर कृपा की है, इस तरह की जो बातें आप कह रहे हैं इन बातों का क्या अभिप्राय है इस बात को हमलोग नहीं जान पा रहे हैं ॥१६॥

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो । विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते, विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप ब्राह्मणों के परम हितकारी हैं और ब्राह्मण आपके परमाराध्य हैं। वास्तविकता यही है कि ब्राह्मणों और देवताओं के आराध्य ब्रह्मादि देवताओं के लिए आप ही देवता भी हैं और आत्मा भी हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किलेति लोकशिक्षार्थं सूचितं परमार्थमाहुः-विप्राणामिति । देवदेवानां देवपूज्यानामपि भगवांस्त्वमात्मा च दैवतं च॥१७॥

भाव प्रकाशिका

किल इस अव्यय पद के द्वारा संसार के जीवों को शिक्षा देने के लिए सूचित परमार्थका निरूपण सनकादिक महर्षियों ने **विप्राणाम् इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से कहा है । वास्तविकता यही है कि आप (श्रीभगवान्) ही ब्राह्मणों के परं दैवत परमाध्य हैं । यह दूसरी बात है कि संसार को शिक्षा देने के लिए आप यह मानते हैं कि ब्राह्मण मेरे आराध्य है । ब्राह्मण तथा ब्रह्मा आदि देवताओं की आत्मा भी आप हैं और परमाराध्य भी हैं ॥१७॥

त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव । धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥१८॥

अन्वयः— सनतनः धर्मः त्वत्तः (समुत्पन्नः) तव तनुभिः रक्ष्यते च निर्विकारो भवान् धर्मस्य परमः गुह्यः मतः॥१८॥

अनुवाद— सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न है और समय-समय पर अवतारों को धारण करके आप धर्म की रक्षा करते हैं । निर्विकार स्वरूप आप ही धर्म के परम रहस्य हैं यही शास्त्रों का मत हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

लोकशिक्षार्थताप्रपञ्चः-त्वत्त इत्यष्टभिः । धर्मस्त्वत्त एव भवति रक्ष्यते च त्वदवतारैः । परमः फलरूपोऽत एव गुह्यो गोप्यः । नच स्वर्गादिफलवद्विकारी भवान् किंतु निर्विकारो मतः । अत एवंभूतस्य तवेदं लोकशिक्षामात्रमिति भावः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

त्वत्तः इत्यादि आठ श्लोकों द्वारा सनकादि महर्षि लोक शिक्षार्थ ही श्रीभगवान् की उपर्युक्त बातें ये है इस बात का विस्तार से वर्णन करते हैं। सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न होता है और उसकी रक्षा भी आप ही अवतारों को ग्रहण करके करते हैं। धर्म के फलस्वरूप होने के कारण आप ही अत्यन्त गोपनीय हैं। जिस तरह धर्म के फलस्वरूप स्वर्ग आदि विकृत होते रहते हैं, किन्तु आप तो निर्विकार हैं। अतएव आप उन सबों से भिन्न ही हैं। इस प्रकार से आप जो हैं आपकी उपर्युक्त सारी बाते लोक शिक्षार्थ ही हैं ॥१८॥

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् । योगिनः स भवान्किंस्विदनुगृह्णीत यत्परैः ॥१९॥

अन्वयः— यदनुगहात् निवृत्ता योगिनः अञ्जसा मृत्युं तरन्ति, स भवान् परैः किंस्वित् अनुगृह्णते ॥१९॥

अनुवाद— आपकी ही कृपा को प्राप्त करके योगिजन संसार से विरक्त होकर असार एवं मृत्युरूप संसार सागर को पार कर जाते हैं। ऐसे आप हैं। दूसरा कौन है जो आप पर कृपा करे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

विपरीतं चेदमित्याहुः-तरन्तीति । यस्यानुग्रहादेव निवृत्ता विरक्ता योगिनश्च सन्तो मृत्युं तरन्ति स भवान्परैरनुगृह्णीतेति किंस्वित् । न किंचिदित्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि आपलोगों ने मुझ पर कृपा की है यह वास्तविकता के विपरीत है। यह तो आप संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए कहें हैं। आपकी ही कृपा प्राप्त करके संसार से उदासीन रहने वाले योगिजन बड़ी आसानी से मृत्यु रूप संसार सागर को पार करते हैं। इस तरह के आप है। ऐसे आप पर दूसरा कौन है जो कृपा करें। ऐसा दूसरा कोई भी नहीं प्रतीत होता है ॥१९॥

यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ।
धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥२०॥

अन्वयः— अन्यैः अर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसी नवदाम धाम्नः मधुपतेः लोकं कामयाना इव विभूतिः अनुबेलम् उपयाति ॥२०॥

अनुवाद— हे भगवन् दूसरे अर्थार्थी जन श्रीलक्ष्मीजी के चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हैं। वे लक्ष्मीजी आपके चरणों की सेवा करती रहती हैं। लगता है कि आपके भाग्यवान भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की मालाओं को चढ़ाते हैं, उसको हीअपना धाम मानने वाले भ्रमर राज के समान वे भी आपके तुलसीमण्डित चरणों को ही अपना स्थान बनाना चाहती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **'यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम्'** इत्यादि, तदत्यन्तमसंभावित-मित्याहुर्द्वाभ्याम् । यं वै विभूतिर्लक्ष्मीरनुवेलमवसरेऽवसरे उपयाति सेवते । धृतः पादरेणुर्यस्याः । धन्यैः सुकृतिभिरर्पितमङ्घ्रौ यत्तुलस्या नवं दाम माला तद्धाम स्थानं यस्य तस्य । मधुव्रतपतेर्भ्रमरमुख्यस्य लोकं स्थानमङ्घ्रि कामयमानेव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने पीछे के सातवें श्लोक में यह जो कहा कि **यत्सेवया चरणपद्मपवि० इत्यादि** अर्थात् जिन ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करने के ही कारण मेरे चरणरज को ऐसी पवित्रता प्राप्त हुयी है कि वह शीघ्र ही पापों को शान्त कर देता है और उसी के ही कारण मुझे ऐसा स्वभाव प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त असंभव है इस बात

को सनकादि महर्षियों ने दो श्लोकों से कहा है । तथाहि जिन लक्ष्मीजी के चरणरज को अर्थार्थी पुरुष आपने शिर पर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी आप श्रीभगवान् के चरणों की सेवा सदैव करती रहती हैं । लगता है कि आप के भाग्यवान् भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की माला चढ़ाते हैं उन पर गुञ्जार करने वाले भ्रमर राज के समान वे लक्ष्मीजी भी आपके चरणों को ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहती हैं ॥२०॥

यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ।
स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥

अन्वय;— यः परमभागवतप्रसङ्ग त्वं विविक्तचरितैरनुवर्तमानां तां न अत्यद्रियत् । भगभाजनः त्वम् द्विजानुपथ पुण्यरजः श्रीवत्सलक्ष्म पुनीतः किमगाः ॥२१॥

अनुवाद— अपने पवित्र चरित्रों से आपकी सेवा करने वाली उन लक्ष्मीजी का भी आप अत्यधिक अनादर नहीं करते हैं, क्योंकि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं । आप स्वयम् ही सम्पूर्ण भजनीय गुणों के आश्रय हैं । जहाँ-तहाँ विचरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की धूलि अथवा श्रीवत्सचिह्न आपको पवित्र बना सकते हैं क्या ? उपर्युक्त सारी बातों को तो आपने लोकसंग्रह के ही लिए कहा है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विविक्तचरितैर्विशुद्धैः परिचरणैरनुवर्तमानां सेवमानामपि यो नात्याद्रियत् नातीवादृतवान्, स एवंभूतस्त्वम् । अयं भावः- इत्थं नामातिलम्पटतया लक्ष्मीस्त्वां सेवते । कथम् । एवं हि सा मेने । अयं हि सारग्राही मधुव्रतश्चञ्चलश्च स चाङ्घ्रिगतायां तुलस्यां सपरिवारो निश्चलः सन् रमते अतोऽङ्घ्रिलावण्यमत्यधिकं स्यात्ततोऽहं वक्षसि स्थितापि योगिजनादिबहुसेवक-संघर्षमङ्गीकृत्यापि तुलस्या सह सापत्न्येनापि चरणौ सेविष्यामीति तदेवमत्यौत्सुक्येनानुवर्तमानामपि तां त्वं नातीवाद्रियसे । यतः परमभागवतेष्वेव प्रकृष्टसङ्गवान् । स एवं परमसौभाग्यनिधिस्त्वम् । अतो ब्राह्मणप्रसादान्मां श्रीर्नविजहातीत्यलभ्यलाभत्वेन निर्देशो न समञ्जस इति । किंच स्वत एव त्वं भगभाजनो भजनीयानां गुणानामाश्रयः परमशुद्धश्च तं त्वां द्विजानामनुपथं पथि पथि लग्नं यत्पुण्यं रजस्तथा श्रीवत्सलक्ष्म्या च किं पुनीतः पवित्रीकुरुतः । किं किमर्थं च ते उभे अगाः प्राप्तो भूषणत्वेन स्वीकृतवानसि । अतो '**यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुम्**' इत्यादिवचनं लोकसंग्रहमात्रमित्यर्थः॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अपने पवित्र चरित्रों के द्वारा जो लक्ष्मी आपकी सेवा किया करती हैं उनका भी आप बहुत अधिक आदर नहीं करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि लक्ष्मीजी तो आपकी सेवा अत्यन्त प्रेमपूर्वक करती हैं । क्योंकि वे मानती हैं कि यह भ्रमर सारग्राही है अर्थात् पुष्पों के पराग का ही ग्रहण करता है तथा चञ्चल भी है, किन्तु वह अपने परिवार के साथ श्रीभगवान् के चरणों पर चढी हुयी तुलसी में रमता है । इसका अर्थ है कि श्रीभगवान् के चरणों का सौन्दर्य अधिक हो सकता है । अतएव श्रीभगवान् के वक्षः स्थल में रहकर तथा योगिजन इत्यादि अनेक सेवक समूह को स्वीकार करके भी तुलसी के साथ ही यद्यपि तुलसी तो मेरी सौत है फिर भी उसके ही साथ मैं श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करूँगी । इस तरह से अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक आपकी सेवा करने वाली लक्ष्मीजी का आप अत्यधिक समादर नहीं करते हैं । इसका कारण है कि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं । अतएव आप परम सौभाग्य सागर हैं । अतएव आपने यह जो कहा है कि ब्राह्मणों की कृपा से ही लक्ष्मी मेरा कभी परित्याग नहीं करती हैं, इस तरह से ब्राह्मणों की कृपा को अलभ्य लाभ रूप से आपका बतलाना समन्वित नहीं हो सकता है । किंच स्वभावतः ही आप भजनीय गुणों के आश्रय हैं तथा परम शुद्ध हैं । ऐसे आपको विभिन्न मार्गों पर सञ्चरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की पवित्र धूलि तथा श्रीवत्सचिह्न क्या पवित्र करेंगे ? फिर भी आप इन दोनों ब्राह्मणों की चरण धूलि और श्रीवत्सचिह्न को भूषणरूप से क्यों धारण किए है फलतः आपका यह कथन कि **यत्सेवया चरणपद्म पवित्ररेणुम्** केवल संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए है ॥२१॥

धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ।
नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

अन्वयः— हे त्रियुग धर्मस्य ते भगवतः त्रिभिः पद्भिः द्विजदेवतार्थम् नूनमिदं चराचरं भृतं वरदया सत्त्वेन तनुवा तदभिघात्ति रजस्तमश्च निरस्य ॥२२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, आप सत्यादि तीनों युगों मे प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हैं एवं ब्राह्मणों एवं देवताओं के लिए तप, शौच और दया अपने इन तीन चरणों से चराचर जगत की रक्षा करते हैं । अब आप शुद्ध सत्त्व गुण सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर से धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को विनष्ट कर दें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

धर्ममूर्तेश्च तवेदमुचितमेवेत्याहुः-धर्मस्येति त्रिभिः । त्रिष्वेव युगेष्वाविर्भवतीति त्रियुगः । यद्वा त्रीणि युगानि युगलानि त्रियुगाः षड्गुणा भगशब्दवाच्याः सन्त्यस्येति त्रियुगः । हे त्रियुग, धर्मरूपस्य तव त्रिभिः पद्भिः स्वैरसाधारणैस्तपःशौचदयाभिः। सत्यस्य धर्मविप्लवेऽपि कलावनुवर्तमानत्वात्त्रिभिरित्युक्तम् । भृतं पालितम् । किं कृत्वा । नोऽस्माकं वरदया सत्त्वेन तनुवा तन्वा सत्त्वमूर्त्या तदभिघाति तेषां पादानामभिघातकं रजश्च तमश्च निरस्य निराकृत्य । द्विजानां देवतानां च प्रयोजनाय नूनं भृतम्। यद्वा हिलोपे रूपं निरस्येति । अस्माकं तन्निवर्तयेत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

धर्मस्य इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा सनकादि महर्षि कहते हैं कि आप तो धर्ममूर्ति हैं अतएव आप को इस तरह से कहना उचित ही है । श्रीभगवान् त्रियुग हैं क्योंकि वे तीनों युगों में आविर्भूत रहते हैं अथवा श्रीभगवान् को त्रियुग इसलिए कहा जाता है कि उनमें तीन युगल अर्थात् भग शब्द से अभिहित किए जाने वाले ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, शक्ति, ज्ञान और बल विद्यमान हैं । सनकादि महर्षि कहते हैं हे त्रियुग ! आपके तीन तप, शौच और दया नामक असाधारण पैर हैं धर्म के कलियुग में उपद्रुत होने पर भी सत्य नामक चौथा धर्म का पैर बना रहता है, इसीलिए यहाँ धर्म के तीन ही पैर गिनाये गये हैं । आप अपने शुद्ध सत्त्व सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर के द्वारा धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को दूर करके हमलोगों का पालन करें । आप अपने तीन चरणों से ही जगत् की रक्षा करते हैं । आप देवताओं और ब्राह्मणों का कल्याण करने के ही लिए उन चरणों को धारण किये है । अथवा हि का लोप करके निरस्य यह लोट् लकार के मध्यम पुरुष का रूप है । और उसका अर्थ है दूर करें ॥२२॥

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदि हात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।
तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥

अन्वयः— द्विजोत्तमकुलम् आत्मगोपं यदि वृषः त्वं स्वर्हणेन ससूनृतेन न गोप्ता हे देव । तर्हि एव तव शिवः । पन्था नङ्क्ष्यति । लोको हि ऋषभस्य हि तत् प्रमाणम् अग्रहिष्यत् ॥२३॥

अनुवाद— हे देव ! यह ब्राह्मणों का उत्तम वंश आपके ही द्वारा रक्षा किए जाने योग्य है । यदि धर्मस्वरूप होकर भी आप इसकी रक्षा अपनी मधुरवाणी और पूजा इत्यादि के द्वारा न करें तो फिर आपके द्वारा निश्चित किया गया कल्याणमार्ग ही नष्ट हो जायेगा । क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषों के ही आचरण को प्रमाण रूप से मानता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मगोपं त्वयैव रक्षणीयं द्विजोत्तमानां कुलम् । यदि ह स्फुटं त्वं न गोप्ता न रक्षिता । तृन्प्रत्ययान्तत्वान्न षष्ठीप्रयोगः।

वृषः श्रेष्ठः । हे देव, पन्था वेदमार्गो नङ्क्ष्यति नाशं यास्यति । ऋषभस्य श्रेष्ठस्य । हि यस्मात्तदनर्हणमसूनृतं चाग्रहीष्यत् । तदुक्तं गीतासु 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।' इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के वंश की रक्षा आपको ही करनी चाहिए । यदि आप ब्राह्मणों के वंश की रक्षा नहीं करें तो हे धर्मस्वरूप भगवन् ! श्रेष्ठ वैदिक मार्ग नष्ट हो जायेगा । गोप्ता शब्द तृन् प्रत्ययान्त है इसीलिए यहाँ पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है । आप यदि ब्राह्मण वंश की मधुरवाणी और पूजा के बिना ही अनुगृहीत न करें तो उससे कल्याणकारी वैदिक मार्ग, विनष्ट होगा ही । गीता में कहा भी गया है **यद्यद आचरति श्रेष्ठः इत्यादि** श्रेष्ठ पुरुष जैसा भी आचरण करता है, दूसरे लोग भी उसी तरह का कार्य करते हैं । वह जिसको प्रमाणित करता है, उसी का लोग भी अनुसरण करते हैं । श्लोक का ऋषभ शब्द श्रेष्ठ का वाचक हैं ।।२३।।

तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ।
नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ।।२४।।

अन्वयः— निजशक्तिभिः उद्धृतारेः सत्त्वनिधेः जनाय क्षेमं विधित्सोः तत् ते अनभिष्टमिव । बत त्र्यधिपतेः विश्वभर्तुः अवनतस्य तव एतावता तेजः क्षतं न यतः स ते विनोदः ।।२४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सत्त्वगुण के आकर हैं, और सदा सभी जीवों का कल्याण करने में लगे रहते हैं । इसीलिए आप राजा इत्यादि के द्वारा धर्म के शत्रुओं का विनाश किया करते हैं । क्योंकि धर्म का नाश होना आपको अभिप्रेत नहीं है । यद्यपि आप त्रैलोक्य के स्वामी है तथा सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं । फिर भी आप ब्राह्मणों के प्रति इस तरह से नम्र बने रहते हैं यही कारण है कि आपका तेज कभी भी क्षीण नहीं होता है । यह आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

नश्यत्विति चेत्तत्राहुः । तद्वेदमार्गनाशनम् । इति लोकोक्तिः । सत्त्वनिधित्वाज्जनाय क्षेमं शं विधातुमिच्छोरत एव निजशक्तिभी राजादिभिरुत्पाटितधर्मप्रतिपक्षस्य । अतस्तव ब्रह्मकुलेऽवनतिर्युक्तैव । ननु महतोऽन्येष्ववनतिस्तेजोहानिकरी तत्राहुः। एतावता तु धर्मत्राणप्रयोजनेनावनतस्य नमनं कृतवतस्तव तेजः प्रभावो न क्षतं न क्षीणम् । यतः स नमनादिस्ते विनोदः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वेदमार्ग विनष्ट हो जाय इससे क्या होगा ? तो इस पर मुनियों ने कहा कि आपको वेदमार्ग का नष्ट होना अभिप्रेत नहीं है । इव शब्द के द्वारा सूचित किया गया है कि यह सारा संसार जानता है। आप चूंकि सत्त्वगुण की खान हैं अतएव आप सम्पूर्ण जीवों का कल्याण करने के लिए उत्सुक बने रहते हैं इसीलिए आप राजा इत्यादि अपनी शक्तियों के द्वारा धर्म के शत्रुओं का नाश किया करते हैं । अतएव आपका ब्राह्मणवंश के प्रति नम्रतायुक्त रहना उचित ही है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि महान् पुरुष का दूसरे लोगों के प्रति झुककर रहना उनके तेज को नष्ट कर देता है तो इस पर महर्षियों ने कहा धर्म की रक्षा करने के लिए आप ब्राह्मणों के प्रति नम्र बने रहते है इसीलिए आपका तेज कभी क्षीण नहीं होता है । क्योंकि वह ब्राह्मणों के प्रति नम्रता आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनु मन्महि निर्व्यलीकम् ।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ।।२५।।

अन्वयः— हे अधीश ! भवान् अनयोः यं वा दमम् विधत्ते वृत्तं नु वा तत् निर्व्यलीकम् अनुमन्महि, वा अस्मासु यः उचितो दण्डः स ध्रियताम् ये वयम् अनागसौ किल्बिषेण अयुंक्ष्महि ।।२५।।

अनुवाद— हे स्वामिन् ! आप इन दोनों को जैसा चाहें वैसा दण्ड दें अथवा इन दोनों की वृत्ति को बढ़ा

दें हमलोग दोनों में निष्कपट भाव से सहमत हैं । अथवा आप के इन दोनों निरपराध अनुचरों को हमलोगों ने जो शाप दे दिया है उसके कारण आप हमलोगों को ही यदि दण्ड तो उसे भी हम निष्कपट भाव से स्वीकार करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

शापाग्रहं परित्यज्य विज्ञापयन्ति । यं वाऽन्यं दण्डं विधास्यति भवान्, वृत्तिं नु अधिकजीविकां वा तत्सर्वमनुमन्यामहे। ये वयं निरपराधावेतौ किल्विषेण शापेनायुङ्क्ष्महि योजितवन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षियों ने शाप के आग्रह का परित्याग करके श्रीभगवान् से प्रार्थना किया कि आप चाहें तो इन दोनों को और अधिक दण्ड दें अथवा इन दोनों को और अधिक जीविका बढ़ा दें हमलोग दोनों में शुद्ध हृदय से सहमत हैं । हमलोगों ने चूकि आपके इन दोनों निरपराध अनुचरों को शाप दिया है । अतएव आप चाहें तो उसके लिए हमें दण्डित करें, उसमें भी हमलोग सहमत हैं ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ।
भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥२६॥

अन्वयः— **एतौ सद्यः सुरतेरगतिं प्रतिद्य, संरम्भ समाध्यनुबद्धयोगौ भूयः आशु सकाशम् उपयास्यतः वः यः शापः स मयैव निमितः, तदवैत ॥२६॥**

श्रीभगवान ने कहा

अनुवाद— अब ये दोनों शीघ्र ही दैत्य योनि को प्राप्त करेंगे, वहाँ भी क्रोधावेश के कारण बढ़ी हुयी एकाग्रता के कारण सुदृढ योग सम्पन्न ये दोनों शीघ्र ही मेरे पास आ जायेगें । आपलोगों ने जो शाप दिया है, वह मेरे द्वारा ही निर्मित है, इस बात को आप लोग जानें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

मत्कारितत्वाच्छापस्य युष्माकं नापराध इत्याश्वासयन्नाह । एतौ सद्य एवासुरयोनिं प्राप्य भूयोऽप्याशु मत्समीपमागमिष्यतः । संरम्भेण क्रोधावेशेन संभृतः संवृद्धो यः समाधिरेकाग्रता तेनानुबद्धो दृढीकृतो योगो ययोः । हे विप्राः, यो वः शापो युष्मत्कृतः शापस्तदिति स मयैव निमितो निर्मित इत्यवैत जानीत ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा ऋषियों आपलोगों के द्वारा शाप मैंने दिलवाया है, उसमें आप लोगों का कोई भी अपराध नहीं है । इस तरह से आश्वासन प्रदान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा ये दोनों शीघ्र ही आसुरयोनि को प्राप्त करके पुनः शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेगें । उस योनि में क्रोधावेश के कारण समृद्ध एकाग्रता के कारण सुदृढयोग सम्पन्न ये दोनों मेरे पास आयेंगे । इस बात को आपलोग जान लें ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् । वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम्॥२७॥
भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च । प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥

अन्वयः— अथ ते मुनयः नयनान्दभाजनम् वैकुण्ठं तदधिष्ठानं स्वयम्प्रभम् विकुण्ठं च दृष्ट्वा भगवन्तं परिक्रम्य, प्रणिपत्य, अनुमान्य च प्रमुदिताः वैष्णवीं श्रियम् शंसन्तः प्रतिजग्मुः ॥२७-२८॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् उन मुनियोंने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का और उनके निवास स्थान स्वयम्प्रकाश वैकुण्ठ धाम का दर्शन करके श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त करके वे श्रीभगवान् के ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वहाँ से लौट आये ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

नेत्रोत्सवजनकं विकुण्ठं हरिं तन्निवासं च वैकुण्ठं लोकम् । स्वयंप्रकाशं प्रकाशान्तरानपेक्षम् । सत्त्वपरिणामत्वात् । अनुमान्यानुज्ञाप्य । परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । वैष्णवीं श्रियं वैकुण्ठे वर्णितम् ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा आश्वस्त होने के पश्चात् मुनियों ने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीहरि तथा उनके निवास स्थान स्वयंप्रकाश वैकुण्ठ का दर्शन किया तदनन्तर उन लोगों ने श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसके पश्चात् वे वैकुण्ठ वर्णन के प्रसङ्ग में जिसका वर्णन किया जा चुका है उस ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वे लोग वैकुण्ठ से लौट गये ॥२७-२८॥

भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् । ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥२९॥

अन्वयः— भगवाननुगावाह, यातम् मा भैष्ट, शम् अस्तु ब्रह्मतेजः हन्तुं समर्थः अपि हन्तुं नेच्छे तु मे मतम् ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान ने अपने अनुचरों से कहा तुम दोनों डरो मत तुम दोनों का कल्याण होगा । ब्राह्मणों के शाप को विनष्ट करने में मैं समर्थ हूँ फिर भी उसका विनाश इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि ऐसा मुझको अभिमत है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ममैव तु मतं संमतम् । इदमत्र तत्त्वम्-यद्यपि सनकादीनां क्रोधो न संभवति, न च भगवत्पार्षदयोर्ब्राह्मणप्रातिकूल्यम्, नच भगवतः स्वभक्तोपेक्षा, नच वैकुण्ठगतानां पुनर्जन्म, तथापि भगवतः सिसृक्षादिवत्कदाचिद्युयुत्सा समजनि तदाऽन्येषामल्पबलत्वात्स्वपार्षदानां तुलयबलत्वेऽपि प्रातिपक्ष्यानुपपत्तेरेतावेव ब्राह्मणनिवारणे प्रवर्त्य तेषु च क्रोधमुद्दीप्य तच्छापव्याजेन प्रतिपक्षौ विधाय युद्धकौतुकं संपादनीयमिति भगवतैव व्यवसितं, अतः सर्वं संगच्छते । तदिदमुक्तं शापो मयैव निमित इति, मा भैष्टमिति, अस्तु शमिति, हन्तुं नेच्छे मतं तु मे इत्यादि च ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने अपने अनुचरों से कहा कि यह शाप मुझे अभिमत है । उसका अभिप्राय है कि यद्यपि सनाकदियों को क्रोध नहीं होता है, और न तो श्रीभगवान के पार्षदों के वे ब्राह्मण कभी प्रतिकूल आचरण कर सकते हैं, भगवान् भी अपने भक्तों की कभी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । वैकुण्ठ पहुँचे जीव का कभी जन्म भी नहीं होता है, फिर भी जिस तरह श्रीभगवान् की सृष्टि करने की इच्छा होती है, उसी तरह उनकी कभी युद्ध करने की भी इच्छा हो जाती है । **तदान्येषाम्० इत्यादि-** ऐसी स्थिति में दूसरे जीव तो अत्यन्त अल्प बल वाले हैं । उनके जो पार्षद हैं, उनका श्रीभगवान् के समान ही बल है । किन्तु वे भगवान् के प्रतिपक्षी नहीं हो सकते हैं । इसीलिए उन ब्राह्मणों को उन दोनों के द्वारा रोकवाकर तथा ब्राह्मणों में क्रोध को उत्पन्न करके ब्राह्मणों के शाप के व्याज से, उन दोनों को अपना प्रतिपक्षी बनाकर मुझे युद्ध के कुहूल को पूरा करना चाहिए, इसीलिए भगवान् ने ऐसा कराया । अतएव सबकुछ समन्वित हो गया । **तदिदमित्यादि-** इसीलिए श्रीभगवान् ने कहा कि मेरे द्वारा ही प्रेरित होकर आपलोगों ने शाप दिया है । अनुचरों को भगवान् ने कहा कि तुम दोनों डरो मत । तुम दोनों का कल्याण हो । मैं इस शाप को विनष्ट करना नहीं चाहता हूँ । यह ब्राह्मणों का शाप मुझे अभिमत है इत्यादि ॥२९॥

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा । पुराऽपवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥

अन्वयः— पुरा मयि उपारते द्वारि विशन्ती यदा अपवारिता क्रुद्धया रमया एतत निर्दिष्टम् ॥३०॥

अनुवाद— एक बार जब मैं योगनिद्रा में स्थित हो गया था उस समय द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण क्रुद्ध होकर उन्होंने इस शाप को पहले ही दे दिया था ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

यदा मयि उपारते योगनिद्रां गतवति सति द्वारि । विशन्ती युवाभ्यां पुराऽपवारिता तदा क्रुद्धया रमया एतद्यद्ब्राह्मणैरिदानीमुक्तं तत्पुरैव निर्दिष्टम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

जब मैं योगनिद्रा में चला गया था उस समय मेरे द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण वे क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने इस शाप को उसी समय दे दिया था जिस शाप का आज ब्राह्मणों ने उच्चारण किया है ॥३०॥

मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् । प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥३१॥

अन्वयः— मयि संरम्भयोगेन ब्रह्महेलनम् निस्तीर्य अल्पीयसा कालेन पुनः मे निकाशं एष्यतम् ॥३१॥

अनुवाद— इस दैत्य योनि में मेरे प्रति क्रोध स्वरूपिणी वृत्ति होने के कारण तुमलोगों की जो एकाग्रता प्राप्त होगी, उसके कारण तुमलोग ब्राह्मण के तिरस्कारजन्य पाप से मुक्त हो जाओगे और उसके पश्चात् थोड़े ही दिन में मेरे पास लौट आओगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्येष्यतं प्रत्येष्यथः । निकाशं समीपम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येषतम् पद का अर्थ है तुम दोनों आओगे । निकाशम् अर्थात् समीप । भगवान् ने कहा कि तुम दोनों शीघ्र ही मेरे समीप आ जाओगे ॥३१॥

द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् । सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥३२॥

अन्वयः— द्वास्थौ आदिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् सर्वातिशया लक्ष्म्या जुष्टम् स्वधिष्ण्यम् आविशत् ॥३२॥

अनुवाद— अपने दोनों द्वारपालों को इस प्रकार की आज्ञा देकर श्रीभगवान् विमान समूह से विभूषित तथा सर्वाधिक शोभा सम्पन्न अपने धाम में प्रवेश कर गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३२॥

तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः । हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥३३॥

अन्वयः— तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद् हरिलोकतः ब्रह्मशापात् हतश्रियौ विगतविस्मयौ अभूताम् ॥३३॥

अनुवाद— वे देवश्रेष्ठ, जय विजय ब्रह्मशाप के कारण उस अलंघनीय श्रीभगवान् के लोक में ही श्रीहीन हो गये और उनका गर्व गलित हो गया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

दुस्तराद्ब्रह्मशापात् हरिलोकतः पतन्ताविति शेषः। हरिलोकत एव हतश्रियावभूतामिति वा। विगतस्मयौ नष्टगर्वौ च॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि ब्राह्मणों का उपर्युक्त शाप अनुलङ्घनीय था। इसलिए दोनों जय और विजय का उस लोक से पतन हो गया अथवा वे दोनों श्रीहरि के लोक में ही निःश्रीक हो गये और उनका गर्व नष्ट हो गया ॥३३॥

तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः । हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥३४॥

अन्वयः— हे पुत्रकाः तदा तयोः विकुण्ठधिषणात् निपतमानयोः विमानाग्र्येषु महान् हाहाकारः आसीत् ॥३४॥

अनुवाद— हे देवताओं ! जिस समय वैकुण्ठ लोक से उन दोनों का पतन हो रहा था उस समय श्रेष्ठ विमान पर बैठे हुए वैकुण्ठ वासियों में महान् हाहाकार मच गया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

विकुण्ठस्य धिषणात्स्थानात् । पुत्रका हे देवाः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यहाँ देवताओं को पुत्रक शब्द से सम्बोधित किया। उन्होंने कहा कि जब वे दोनों श्रीभगवान् के स्थान वैकुण्ठ लोक से पतित हो रहे थे, उस समय जो वैकुण्ठवासी श्रेष्ठ विमानों पर बैठकर देख रहे थे, उन लोगों में घोर हाहाकार मच गया ॥३४॥

तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः । दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

अन्वयः— तौ एव हरेः पार्षदप्रवरौ अधुना उल्बणम् काश्यपं तेज दितेः जठर निर्विष्टौ ॥३५॥

अनुवाद— श्रीहरि के वे ही दोनों श्रेष्ठ पार्षद इस समय उग्र कश्यप महर्षि के तेज के माध्यम से दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

काश्यपं तेजो वीर्यं प्राप्तौ ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप के वीर्य में प्रवेश करके दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः । आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥

अन्वयः— तयो यमयोः असुरयोः तेजसा अद्य वः तेजः आक्षिप्तं एतर्हि भगवान् तद् विधित्सति ॥३६॥

अनुवाद— उन दोनों जुड़वे असुरों के ही तेज से आप देवताओं का तेज फीका पड़ गया है। इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

सहैव गर्भे प्रविष्टौ यमौ तयोस्तेजसा वस्तेज आक्षिप्तं तिरस्कृतम् । नचात्र प्रतिविधिः शक्यः । यत एतर्हीदानीं भगवानेव तदेवं विधातुमिच्छति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

वे दोनों एक साथ चूकि दिति के गर्भ में प्रवेश किए हैं अतएव यम अर्थात् जुड़वे हैं। उन दोनों के तेज के कारण आपलोगों का तेज तिरस्कृत है। इसका कोई प्रतिकार भी नहीं है। क्योंकि इस समय भगवान् ही ऐसा करना चाहते हैं ॥३६॥

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— यः विश्वस्य आद्यः स्थितिलयोद्भवहेतुः, यः योगमायः योगेश्वरैरपि दुरत्ययः सः त्र्यधीशः भगवान् नः क्षेमं विधास्यति । इह अस्मदीयविमर्शेन कियान् अर्थः ॥३७॥

अनुवाद— जो श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के प्रधान कारण है, जिनकी योगमाया को बड़े-बड़े योगीश्वर बड़ी कठिनाई से पार कर पाते है जो श्रीभगवान् सत्वादि तीनों गुणों के नियामक हैं, वे ही भगवान् हम सबों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करने से कोई भी लाभ नहीं होने वाला है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तथापि कोऽप्युपायो विचार्यतामिति चेत्तत्राह-विश्वस्येति त्रयाणां गुणानामीशः स एव सत्त्वोत्कर्षकाले नः क्षेमं विधास्यति। विमृशेन विमर्शनेन ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायांटीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यदि देवता कहें कि फिर भी आप कोई उपाय सोचिए । इस पर ब्रह्माजी ने कहा श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और लय का कार्य करते हैं । वे तीनों गुणों के नियामक है जब सत्त्वगुण का उत्कर्ष (उद्रेक) होगा उस समय श्रीभगवान् ही हमलोगों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करना व्यर्थ है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म और हिरण्याक्ष की दिग्विजय यात्रा

मैत्रेय उवाच

निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः । ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

अन्वयः— ततः आत्मभुवागीतं कारणं निशम्य शङ्कयोज्झिताः सर्वे दिवौकसः त्रिदिवाय न्यवर्तन्त ।।१।।

अनुवाद— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा वर्णित अन्धकार के कारण को सुनकर शङ्का रहित सभी देवता स्वर्गलोक में लौट आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे जन्म तयोर्लोकभयंकरम् । हिरण्याक्षप्रभावश्च वर्ण्यते दिग्जयेऽद्भुतः । क्षेमं विधास्यतीति ब्रह्मवचनानन्तरं शङ्कया त्यक्ताः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन दोनों का लोकों में भय उत्पन्न कर देने वाले जन्म का वर्णन तथा दिग्विजय के प्रसङ्ग में हिरण्याक्ष के प्रभाव का वर्णन इस सत्रहवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ जब देवताओं ने ब्रह्माजी के मुख से अन्धकार के कारण को सुन लिया तो उनकी शङ्का समाप्त हो गयी और वे स्वर्गलोक में लौट गये ॥१॥

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशाङ्किनी । पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥

अन्वयः— अपत्य परिशङ्किनी साध्वी दिति तु वर्षशते पूर्णे भर्तुः आदेशात् यमौ पुत्रौ प्रसुषुवे ॥२॥

अनुवाद— अपने पुत्रों के विषय में देवताओं द्वारा भय की शङ्का करने वाली दिति ने सौ वर्ष पूरा हो जाने पर अपने पति के आदेश को पाकर जुड़वे दो पुत्रों को जन्म दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

भर्तुरादेशात् **'लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः'** इति वाक्यात् । अपत्याभ्यां परिशङ्किनी देवोपद्रवं शङ्कमाना ॥२॥'

भाव प्रकाशिका

पहले ही महर्षि कश्यपने कहा था कि हे चाण्डि वे दोनों सभी लोकों और लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे। अपने पति के उसी आदेश के अनुसार सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर दिति ने अपने दोनों जुड़वे पुत्रों को उत्पन्न किया, क्योंकि दिति को भय था कि कहीं देवता हमारे दोनों पुत्रों को मार न दें ॥२॥

उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥३॥

अन्वयः— तत्र जायमानयोः दिवि, भुवि, अन्तरिक्षे च लोकस्य उरु भयावहाः बहवः उत्पाताः निपेतुः ॥३॥

अनुवाद— उन दोनों के जन्म के समय स्वर्ग में, भूलोक में तथा अन्तरिक्ष लोक में अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले बहुत से उत्पात हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा निपेतुरुद्बभूवुः । उरु भयमासमन्ताद्वहन्तीति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों दैत्यों के जन्म के समय लोकों में अत्यधिक भय उत्पन्न कर देने वाले उत्पात हुए ॥३॥

सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः । सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥४॥

अन्वयः— सहाचलाः भुवः चेलुः सर्वाः दिशः प्रजज्वलुः, सोल्काः अशनयः च पेतुः आर्तिहेतवः केतः च पेतुः ॥४॥

अनुवाद— पर्वतों के साथ पृथिवी काँपने लगी, सभी दिशाओं में दाह होने लगा, स्थान-स्थान पर उल्कापात होने लगा, बिजलियाँ गिरने लगीं और आकाश में धूमकेतु (पुच्छल तारे) दिखने लगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अचलैः सहिता भुवः प्रदेशाः । केतवश्चोदयं चक्रुरिति शेषः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उस समय पर्वतों के साथ पृथ्वी के प्रदेश काँपने लगे, आकाश में पुच्छल तारे उदित हो गये ॥४॥

ववौ वायुः सदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः । उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥५॥

अन्वयः— फूत्कारान् ईरयन् इव नगपतीन् उन्मूलयन् सुदुःस्पर्शः वात्यानीकः रजोध्वजः वायुः ववौ ॥५॥

अनुवाद— उस समय सांय-सांय करती हुयी, महावृक्षों का उखाड़ती हुयी, विकट और असह्य वायु चलने लगी । उस समय आँधी ही उसकी सेना थी और उड़ती हुयी धूल उसकी ध्वजा प्रतीत होती थी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

फूत्कारानिति तीव्रवायुशब्दानुकरणम् । नगपतीन् महावृक्षान् । वात्या एवानीकं यस्य । रज एव ध्वजो यस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

तेज चलने वाली वायु के शब्द का अनुकरण ही **फूत्कारान् ईरयन् इव** के द्वारा बतलाया गया है । अर्थात् उस समय साँय-साँय करती हुयी हवा चल रही थी । वह अपने वेग के द्वारा बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ दे रही थी । उस हवा की वात्या (चक्रवात) ही सेना थी और उड़ती हुयी धूल ही उसकी ध्वजा थी ॥५॥

उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे । व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

अन्वयः— उद्धसत्तडि दम्भोदघटया नष्टभागणे, व्योम्नि प्रविष्टतमसा पदम् न व्यादृश्यते स्म ॥६॥

अनुवाद— जोर-जोर से चमकती हुयी बिजलीयों से युक्त मेघ की घटा के द्वारा सभी सूर्य चन्द्रमा तथा तारे आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में घोर अन्धकार छा गया तथा कहीं कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

उच्चैर्हसन्त्य इव तडितो येषु तेषामम्बुदानां घटया समूहेन नष्टो भागणः सूर्यादिप्रभासमूहो यस्मिन् । पदं स्थानं न व्यादृश्यते स्म ईषदपि नादृश्यत ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें बिजलियाँ मानो जोर-जोर से चमककर, हँस रही थीं ऐसे मेघों के समूह से सभी प्रकाशक सूर्य चन्द्रमा तथा तारों आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में ऐसा अन्ध्कार छा गया कि कहीं कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था ॥६॥

चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः । सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥७॥

अन्वयः— क्षुभितोदरः उदूर्मिः विमना वार्धिः चुकोश, शुष्कपङ्कजाः सोदपानश्च सरितः चुक्षुभुः ॥७॥

अनुवाद— जिसके भीतर विद्यमान जलचर व्याकुल हो गये थे ऊँची-ऊँची लहरियाँ उठ रही थीं और दुःखी मनुष्य के समान समुद्र चिल्ला रहा था, दूसरे जलाशय और नदियाँ क्षुब्ध हो गये और उनमें विद्यमान कमल सूख गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वार्धिः समुद्रो विमना इव । उद्गता ऊर्मयो यस्मात् । क्षुभिता उदरस्था मकरादयो यस्मिन् । उदपानैर्वापीकूपादिभिः सहिताः । शुष्काणि पङ्कजानि यासु ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वार्धि समुद्र को कहते हैं, उस समय समुद्र दुःखी मनुष्य के समान चिल्ला रहा था । उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, उस समुद्र के भीतर रहने वाले घड़ियाल इत्यादि जीव भी क्षुब्ध हो गये थे, बावलियों तथा कूपों आदि के साथ नदियों में भी खलबली मची हुयी थी और उनमें विद्यमान कमल भी सूख गये ॥७॥

मुहुः परिधयोऽभूवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः । निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

अन्वयः— सराह्वो शशिसूर्ययोः मुहुः परिधयः अभूवन् निर्घाताः विवरेभ्यः रथनिर्ह्रदा प्रजज्ञिरे ॥८॥

अनुवाद— सूर्य और चन्द्रमा बार-बार ग्रस्त होने लगे और उनके चारो ओर बार-बार अमङ्गल सूचक मण्डल बैठने लगे, बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि होने लगी और गुफाओं में रथ की घर्घराहट की ध्वनि होने लगी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

परिधयः परिवेषाः । सराह्वो राहुग्रस्तयोः । निर्घाता निरभ्रगर्जितानि । रथनिर्ह्रादतुल्या ध्वनयः । विवरेभ्यो गिरिगुहाभ्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अमङ्गल सूचक मण्डल को परिधि अर्थात् परिवेष कहते हैं । बार-बार सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगना और उनके चारो ओर मण्डल का बैठना ये दोनों अमङ्गल सूचक हैं । बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि के होने को निर्घात कहते हैं । गुफाओं से रथ की घरघराहट की ध्वनि का होना ये सबके सब उत्पात सूचक हैं ॥८॥

अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् । सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥

अन्वयः— अन्तर्ग्रामेषु शृगालोलूकटङ्कारै मुखतः उल्बणम् बहिनम् वमन्त्यः शिवाः अशिवं प्रणेदुः ॥९॥

अनुवाद— गावों के भीतर गीदड़ और उल्लुओं के भयानक ध्वनि के साथ ही अपने मुख से दहकती हुयी आग उगलती हुयी स्यारियाँ अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सृगालानामुलूकानां च टङ्कारैर्ध्वनिभिः सह । शिवाः सृगाल्यः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस समय गावों के भीतर ही गीदड़ों ओर उल्लुओं के शब्द के साथ अपने मुख से आग उगलती हुयी स्यारियाँ अत्यन्त अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् । व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥१०॥

अन्वयः— ततः ततः ग्रामसिंहाः शिरोधराम् उन्नमय्य संगीतवत् रोदनवत् विविधा वाचः व्यमुञ्चन् ॥१०॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर कुत्ते अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गाने के समान और कभी रोने के समान अनेक प्रकार के शब्द करने लगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहाः श्वानः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं । उन दोनों के जन्म के समय जहाँ-तहाँ अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गाने के समान तथा कभी रोने के समान अनेक प्रकार की ध्वनि करने लगे । कुत्तों का ऊपर की ओर मुख उठाकर इस तरह की ध्वनि करना भी अमङ्गलकारक होता है ॥१०॥

खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् । खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥११॥

अन्वयः— हे क्षत्तः वरूथशः खरश्च कर्कशैः खुरैः धरातलम् घ्नन्तः खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन् ॥११॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! झुंड के झुंड गधे भी अपने खुरों से पृथिवी को खोदते हुए तथा रेंकने का शब्द करते हुए मदमत्त होकर दौड़ने लगे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कर्कशैस्तीक्ष्णै: । हे क्षत्त: खार्कारो गर्दभजातिशब्दस्तस्मिन् रभसः संभ्रमा येषाम् । वरूथश: सङ्घश: ।।११।।

भाव प्रकाशिका

कर्कश अर्थात् तीक्ष्ण ध्वनि । जोर-जोर से गधों को रेंकने की ध्वनि को खार्काररभस कहते हैं उस समय झुण्ड के झुण्ड अपने तीक्ष्ण और कठोर खुरों से पृथिवी को खनते हुए तथा जोर-जोर से रेंकते हुए गधे मदमत्त से होकर चारो ओर दौड़ने लगे ।।११।।

रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगा: । घोषेऽरण्ये च पशव: शकृन्मूत्रमकुर्वत ।।१२।।

अन्वय:— रासभत्रस्ता: खगा: रुदन्त: नीडाद् उदपतन् पशव: घोषे अरण्ये च शकृन्मूत्रम् अकुर्वत ।।१२।।

अनुवाद— गधों क रेंकने की ध्वनि से डरकर पक्षीगण डरकर रोते चिल्लाते हुए अपनी घोसलों से उड़ गये तथा गोशालाओं में बँधे हुए और वनों में चरते हुए गौ आदि पशुगण डरकर मलमूत्र त्याग करने लगे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

रासभशब्दत्रस्ता: सर्वत: क्रोशन्त: ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

गधों की लगातर जोर-जोर से रेंकने की ध्वनि को सुनकर पक्षीगण डर गये और आवाज करते हुए अपने घोसलों में से निकलकर उड़ने लगे । गौ बैल आदि पशु भी जो गोशालाओं में बंध थे और वनों में चर रहे थे वे सब भी डर गये और डर के कारण वे मलमूत्र का त्याग करने लगे ।।१२।।

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदा: पूयवर्षिण: । व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमा: पेतुर्विनाऽनिलम् ।।१३।।

अन्वय:— गाव: अत्रसन् असृग्दोहा: तोयदास्पूयवर्षिण:, देवलिङ्गानि व्यरुदन् द्रुमा: अनिलम् विना पेतु: ।।१३।।

अनुवाद— गायें इतना डर गयीं कि दूहने पर उनके स्तनों से खून निकलने लगा, मेघों से पीब की वर्षा होने लगी । देवताओं की मूर्तियों की आँखों से आँसू बहने लगा, विना हवा के ही वृक्ष गिर पड़े ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

गावोऽत्रसन् त्रस्ता: । असृग्दोहाश्च बभूवु: । देवलिङ्गानि व्यरुदन्, प्रतिमानामश्रुस्राव आसीदित्यर्थ: ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

गधों के उन भयङ्कर रेंकने की ध्वनि को सुनकर गायें इतना डर गयीं कि उनके स्तनों से दूध के बदले खून निकलने लगा । मेधों से पीब की वर्षा होने लगी । देवमूर्तियों की आँखों से आंसू प्रवाहित होने लगा और बिना हवा के ही पेड़ गिरने लगे ।।१३।।

ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिता: । अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ।।१४।।

अन्वय:— पुण्यतमान् ग्रहान् भगणान् अपि च अन्ये दीपिता: वक्रगत्या अतिचेरु: परस्परम् युयुधुश्च ।।१४।।

अनुवाद— चन्द्रमा, बृहस्पति आदि सौम्य ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह वक्रगति से लाँघकर परस्पर में युद्ध करने लगे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

पुण्यतमान् गुरुबुधादीन्भगणान् । बहूनि नक्षत्राणि चान्ये क्रूरग्रहा मङ्गलादयोऽतिचेरुरतिक्रम्य जग्मुर्वक्रगत्या प्रत्यावृत्य ययुधुश्च ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त सौम्य बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को मङ्गल आदि अत्यन्त क्रूर ग्रह लाँधकर आगे निकल गये और पुनः लौटकर युद्ध करने लगे ॥१४॥

दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः । ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥१५॥

अन्वयः— अन्यांश्च महोत्पातान् दृष्ट्वा अतत् तत्त्वविदः प्रजाः ब्रह्मपुत्रान् विना भीता विश्वसंप्लवम् मेनिरे ॥१५॥

अनुवाद— दूसरे भी महान् उत्पातों को देखकर सनकादिक महर्षियों को छोड़कर सारी प्रजायें भयभीत होकर सोचने लगीं कि अब संसार का प्रलय होने वाला है, क्योंकि उन उत्पातों का कारण उन सबों को ज्ञात नहीं था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मपुत्रानृते बिना, तेषां स्वशापाद्विज्ञानात् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

सनकादिक महर्षियों को भय इसलिए नहीं हुआ कि वे लोग तो जानते ही थे कि उनलोगों के शाप के ही कारण जय और विजय के दैत्ययोनि में उत्पन्न होने के कारण ये सारे उत्पात हो रहे हैं ॥१५॥

तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ । ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥

अन्वयः— तौ आदिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ अश्मसारेण कायेन ववृधाते ॥१५॥

अनुवाद— वे दोनों आदिदैत्य जन्म के पश्चात् शीघ्र ही अपने पौरुष को अभिव्यक्त करते हुए पत्थर के समान कठोर शरीर के द्वारा बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

व्यज्यमानात्मपौरुषं पूर्वसिद्धं स्वपौरुषं ययोः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों का पूर्व पराक्रम भी अभिव्यक्त हो गया । उन दोनों का शरीर पत्थर के समान कठोर था और वे दोनों शीघ्र ही बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।
गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

अन्वयः— हेमकिरीट कोटिभिः दिविस्पृशौ, निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गभुजौ पदे-पदे चरणै गांकम्पयन्तौ कट्याः सुकाञ्च्यअर्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

अनुवाद— वे दोनो इतने लम्बे थे कि उनके किरीट का अग्रभाग स्वर्ग को छू लेता था, उनके विशाल शरीर से दिशायें ढँक जाती थीं, उन दोनों की भुजाओं में बाजूबन्द चमकता था, वे जब चलते थे तो उनके पग-पग पर पृथिवी काँपने लगती थी, उनके कमर में लगी हुयी सुन्दर चमकती हुयी करधनी के समक्ष सूर्य का तेज फीका पड़ जाता था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

निरुद्धा व्याप्ताः काष्ठा दिशो याभ्याम् । स्फुरन्त्यङ्गदानि येषु ते भुजा ययोः । अङ्गदेति टाबन्तत्वमार्षम् । शोभना काञ्ची यस्यां तया कट्या ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों के विशाल शरीर से सारी दिशाएँ भर जाती थीं उन दोनों की भुजाओ में बाजूबन्द चमकते रहते थे । अङ्गदा में टाप प्रत्यय आर्ष है । उन दोनों के कमर में सुन्दर करधनी चमकती थी उसके समक्ष सूर्य का भी प्रकाश फीका पड़ जाता था ॥१७॥

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥१८॥

अन्वयः— प्रजापतिः तयोः यमयोः नाम अकर्षीत् यः स्वदेहात् प्राक् अजायत तं वै प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः यं सा अग्रतः असूत तं प्रजाः हिरण्याक्षम् विदुः ॥१८॥

अनुवाद— वे दोनों जुड़वे थे । उन दोनों का प्रजापति कश्यप ने नामकरण किया । जो उनके वीर्य से दिति के गर्भ में पहले स्थापित हुआ उसको प्रजाएँ हिरण्यकशिपु के नाम से जानती थीं और जिसको दिति ने पहले जन्म दिया उसको प्रजा हिरण्याक्ष के नाम जानी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यमयोर्मध्ये यः स्वदेहात्प्रथममजायत तं प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः । सा दितिः प्रथमं यमसूत तं हिरण्याक्षं यथा विदुस्तथा नाम कृतवानित्यर्थः । अयं भावः- यदा हि गर्भाधानसमये योनिपुष्पं विशद्वीर्यं द्विधा विभक्तं आदिपश्चाद्भावेन प्रविशति तदा यमौ भवतस्तयोश्च पितृतः प्रवेशक्रमविपर्ययेण मातृतः प्रसूतिः । '**यदा विशेदिद्विकया भूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्। द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात्** ।' इति पिण्डसिद्धिस्मरणात् । अतः स्वदेहात्पूर्वं यो जातस्तस्य हिरण्यकशिपुरिति दितिः प्रथमं यमसूत तस्य हिरण्याक्ष इति नाम कृतवानिति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों जुड़वों में से महर्षि कश्यप के शरीर से जो पहले उत्पन्न हुआ उसको प्रजाओं ने हिरण्यकशिपु के नाम से जाना और दिति ने जिसको पहले जन्म दिया उसका नाम उन्होंने हिरण्याक्ष रखा और प्रजाओं ने उसको इसी नाम से जाना । **अयं भावः** कहने का अभिप्राय है कि जब गर्भाधान के समय योनि रूपी पुष्प में वीर्य दो भागों में विभक्त होकर प्रवेश करता है तब जुड़वे बच्चे होते हैं । पिता से निकलकर प्रवेश करने का जो क्रम होता है उसके उलटा माता के जन्म देने का क्रम होता है । पिण्डसिद्धि नामक ग्रन्थ में कहा गया है- **यदाविशेत इत्यादि** जब निकलने वाला वीर्य दो भागों में विभक्त होकर योनि रूपी पुष्प में प्रवेश करता है, उस समय प्रसूति के प्रकार के विपरीत दो गर्भ हो जाते हैं । **अतः स्वदेहात्० इत्यादि**- इसीलिए कहा गया है कि जो अपने शरीर से पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजापति ने हिरण्यकशिपु रखा और जिसका दिति ने पहले पैदा किया उसका नाम हिरण्याक्ष रखा ॥१८॥

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च । वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥१९॥

अन्वयः— हिरण्यकशिपुः ब्रह्मवरेण अकुतोमृत्युः उद्धतः दोर्भ्यां सपालान् त्रीन् लोकान् वशे चक्रे ॥१९॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त होकर अत्यन्त उद्धत हो गया था, उसने अपनी भुजाओं के बल पर लोकपालों सहित तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

दोर्भ्यामुद्धतो ब्रह्मवरेणाकुतोमृत्युः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु अपनी भुजाओं के बल पर उद्धत हो गया और ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त हो गया था ॥१९॥

हिरण्याक्षाऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् । गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥२०॥

अन्वयः— तस्यप्रियः अनुजः हिरण्याक्षः अन्वहम् प्रियकृत् रणम् मृगयन् युयुत्सुः गदापाणिः दिवं यातः ॥२०॥

अनुवाद— उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष, सदैव अपने बड़े भाई को प्रिय लगने वाला काम करता था। एक बार वह गदा हाथ में लेकर युद्ध करने की इच्छा से स्वर्गलोक में गया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

रणं युद्धम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष युद्ध करना चाहता है अतएव युद्ध करने के लिए वह स्वर्ग में गया ॥२०॥

तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् । वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥२१॥

अन्वयः— दुःसहजवं, रणत्काञ्चननूपुरम्, वैजयन्त्या स्रजा जुष्टं अंसन्यस्तमहागदम् तं वीक्ष्य ॥२१॥

अनुवाद— असह्य वेग सम्पन्न, तथा जिसके पैरों में सुवर्ण का नूपुर बज रहा था, और गले में विजय सूचक माला पड़ी थी तथा कन्धे पर विशाल गदा धारण किये हुए उस हिरण्याक्ष को देखकर ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

दुःसहो जवो वेगो यस्य । रणन्तौ काञ्चनमयौ नुपूरौ यस्य । अंसेन्यस्ता महती गदा येन ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष का वेग असह्य था, उसके पैरों में सुवर्ण के नूपुर झनकार कर रहे थे तथा वह अपने कन्धे पर विशाल गदा को धारण किए हुए था, इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देवताओं ने देखा ॥२१॥

मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् । भीता निलिल्यिरे देवास्ताक्ष्यर्त्रस्ता इवाहयः ॥२२॥

अन्वयः— मनोवीर्य वरोत्सिक्तम् असृणि, अकुतोभयम् (वीक्ष्य) भीताः देवाः ताक्ष्यर्त्रस्ता अहय इव निलिल्यिरे॥२२॥

अनुवाद— मनोबल, शारीरिक बल और ब्रह्माजी के वरदान से मदमत्त बने हुए निरङ्कुश तथा निर्भय हिरण्याक्ष को देखकर देवतागण भयभीत हो गये और डर के मारे जहाँ-तहाँ उसी तरह छिप गये जिस तरह गरुड़ को देखकर सर्प छिप जाते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मनसा शौर्येण वीर्येण बलेन वरेण चोत्सिक्तं गर्वितम् । असृण्यं निरङ्कुशम् । निलिल्यिरे लीना बभूवुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

शौर्य, वीर्य और ब्रह्माजी के वरदान के बल से हिरण्याक्ष मदमत्त और निरङ्कुश हो गया था। वह बिल्कुल निर्भय था। उसको देखकर सभी देवता भयभीत हो गये, और डर कर जहाँ तहाँ छिप गये ॥२२॥

स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् । सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥२३॥

अन्वयः— सः दैत्याराट् स्वेन महसा सेन्द्रान् देवगणान् क्षीबान् अपश्यन् भृशम् व्यनदत् ॥२३॥

अनुवाद— वह दैत्यराज हिरण्याक्ष अपने तेज के द्वारा इन्द्र इत्यादि बड़े गर्वीले देवताओं को अपने सामने नहीं देखकर भयङ्कर गर्जना किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

स्वेन महसा तेजसा तिरोहितान्स दृष्ट्वा ज्ञात्वा क्षीबान्मत्तानपश्यन्सन् । 'क्लीबान्' इति पाठे पौरुषहीनान् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने देखा कि उसके तेज के कारण भयभीत होकर बड़े-बड़े गर्वीले देवता कहीं छिप गये हैं उन सबों को हिरण्याक्ष ने अपने सामने नहीं देखा तो उसने घोर गर्जना की । जहाँ क्लीबान् पाठ है वहाँ पौरुषहीन अर्थ होगा ॥२३॥

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरभीमनिःस्वनम् । विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥२४॥

अन्वयः— ततः निवृत्त क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनम् वार्धिं महासत्त्वः मत्तः द्विप इव विजगाहे ॥२४॥

अनुवाद— वहाँ से लौटकर वह क्रीडा करने की इच्छा से गहरे और बड़ी लहरों के कारण गरजने वाले समुद्र में मदमत्त हाथी के समान प्रवेश कर गया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२४॥

तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।
अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

अन्वयः— तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका, यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिताः दूरतरं प्रदुद्रुवः ॥२५॥

अनुवाद— उसके समुद्र में प्रवेश करते ही वरुण के सैनिक और जलचर जीव किं कर्तव्य विमूढ और भी भयभीत हो गये । उसके द्वारा नहीं भी मारे जाने पर वे उसके तेज से अभिभूत होकर उससे दूर चले गये॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सन्ना अवसन्ना धीर्येषाम् । वर्चसा तेजसा प्रधर्षिता अभिभूता सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र में प्रवेश किए हुए हिरण्याक्ष को देखकर वरुण के सैनिक तथा सभी जलचर किं कर्तव्य विमूढ हो गये । यद्यपि हिरण्याक्ष ने किसी के साथ छेड़-छाड़ भी नहीं किया किन्तु वे सब उसके तेज से अभिभूत हो गये और उससे दूर चले गये ॥२५॥

स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ।
मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

अन्वयः— हे तात ! सः महाबलः वर्षपूगान् उदधौ चरन् श्वसनेरितान् महोर्मीन मुहुः मौर्व्या गदया अभिजघ्ने प्रचेतसः पुरीं विभावरीम् आसेदिवान् ॥२६॥

अनुवाद— महाबलवान् वह हिरण्याक्ष अनेक वर्षों तक उस समुद्र में सञ्चरण करता हुआ, अपने किसी प्रतिपक्षी को न पाकर वायु के द्वारा प्रेरित समुद्र की लहरियो पर बार-बार अपनी लौहमयी गदा से प्रहार करता रहा, उसके पश्चात् वह घूमता हुआ वरुण की राजधानी विभावरी पुरी में पहुँच गया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

महोर्मीनभिजघ्ने । मौर्व्या मारयतीति मौर्वं कार्ष्णायसं तन्मय्या । यद्वा मूर्वा नाम तृणविशेषः, तन्मयरज्ज्वा दृढनिबद्धयेत्यर्थः। विभावरीसंज्ञां आसेदिवान् प्राप्तः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र में जब उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं मिला तो वह वायु से प्रेरित समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरियों पर ही अपनी गदा से प्रहार करता रहा । काले लोहे को मार्व कहते हैं । उससे निर्मित होने के कारण उसकी मौर्वी गदा थी । अथवा एक तृण का नाम मूर्वा है, उससे निर्मित रस्सी से अच्छी तरह बँधी होने के कारण उसकी गदा मौर्वी थी । उसके पश्चात् घूमता हुआ वह वरुण की विभावरी नामक नगरी में पहुँच गया ॥२६॥

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।
स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥२७॥

अन्वयः— तत्र असुरलोकपालकम् यादोगणानाम् ऋषभं प्रचेतसम् उपलभ्य स्मयन् प्रलब्धुं नीचवत् प्रणिपत्य जगाद अधिराज मे संयुगं प्रदेहि ॥२७॥

अनुवाद— वहाँ पताल लोक के स्वामी और जलचरों के अधिपति वरुण देव को देखकर उनका उपहास करते हुए नीच मनुष्य के समान प्रणाम किया और कहा महराज मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

असुराणां लोकः पातालं तत्पालकम् । प्रलब्धुमुपहसितुं प्रणिपत्य ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

असुरों का लोक पाताल है । उसके स्वामी वरुण देव हैं, उनका उपहास करने के लिए उसने प्रणाम करके कहा मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ॥२७॥

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।
विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ॥२८॥

अन्वयः— प्रभो ! त्वं लोकपालः अधिपतिः बृहच्छ्रवा दुर्मदवीरमानिनाम् वीर्यावहः लोके अखिलान् दानवान् विजित्य यत् पुरा राजसूयेन अयजत् ॥२८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप लोक का पालन करने वाले राजा और अयन्त यशस्वी हैं । जो लोग अपने को श्रेष्ठ वीर मानने वाले थे उनके पराक्रम के मद को आप विनष्ट कर चुके हैं । पहले आपने संसार के सभी दानवों को जीतकर राजसूय यज्ञ भी किया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्राजसूये भवानयजत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने कहा आप लोकपाल है, राजा हैं और महायश्वी है । बड़े-बड़े वीरों के वीर्यमद को आप चूर कर चुके हैं । संसार के सभी दानवों को जीतकर आपने राजसूय यज्ञ भी किया है ॥२८॥

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपांपतिः ।
रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥२९॥

अन्वयः— एवम् उत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धः भगवान् अपां पतिः समुत्थं रोषं स्वया धिया शमयन् व्यवोचत् अङ्ग वयम् उपशमं गताः ॥२९॥

अनुवाद— इस प्रकार उस मदोन्मत्त शत्रु के द्वारा बहुत अधिक उपहास किये जाने पर वरुण देव को क्रोध तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको वे अपनी बुद्धि के बल से शान्त कर दिए और कहे हे भाई मैं तो युद्ध इत्यादि के कौतुक से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उपशमं युद्धादिकौतुकादुपरमम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वरुण देव ने कहा कि मैं युद्धादि की उत्कण्ठा से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।
आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

अन्वयः— असुरर्षभ पुरातनात् पुरुषात् नान्यं पश्यामि यः त्वां रणमार्गकेविदम् ईहितं आराधयिष्यति यं भवादृशाः मनस्विनः गृणते ॥३०॥

अनुवाद— हे असुरश्रेष्ठ ! पुराणपुरुष श्रीभगवान् को छोड़कर हमें कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता है जो तुम जैसे युद्ध कुशल वीर की कामना पूरी कर सके । वे ही तुम्हारी कामना पुरी करेंगे । उन्हीं के पास जाओ। तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर उनकी ही स्तुति करते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

युद्धमार्गनिपुणं त्वां यस्तोषयिष्यति तमिहि गच्छ । गृणते स्तुवन्ति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

तुम युद्धविद्या में निपुण हो अतएव ऐसे पुरुष के पास जाओ जो तुमको युद्ध की कला से सन्तुष्ट कर सके । तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर पुराणपुरुष परमात्मा की ही स्तुति करते है, अतएव तुम उन्हीं के पास जाओ ॥३०॥

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्ष दिग्विजये सप्तदशोऽध्याय: ॥१७॥

अन्वयः— तं वीरम् आरात् अभिपद्य विस्मयः वीरशये श्वभिर्वृतः शयिष्यसे । यः सदनुग्रहेच्छया त्वद्विधानाम् असतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते ॥३१॥

अनुवाद— उन परम पुरुष नामक वीर के पास जाकर शीघ्र ही तुम्हारा गर्व विनष्ट हो जायेगा । और कुत्तो से घिरे हुए वीर शय्या पर सो जाओगे । वे श्रीभगवान् सत्पुरुषों पर कृपा करने की इच्छा से तथा तुम जैसे दुष्टों का वध करने के लिए अनेक रूपों को धारण करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

आराच्छीघ्रम् । विस्मयो नष्टगर्वः । वीरशये रणाङ्गणे । रूपाणि वराहाद्यवतारान् ।।३१।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

वरुणदेव ने हिरण्याक्ष से कहा कि तुम उन आद्यपुरुष के पास जाओगे तो तुम्हारा गर्व शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा । और रणाङ्गण में उनके द्वारा मारे जाकर वीरशय्या पर सो जाओगे । वे सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिए तथा तुम्हारे जैसे दुष्टों का नाश करने के लिए वाराह इत्यादि अनेक रूपों को धारण करते हैं ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षदिग्विजय के अन्तर्गत सत्रहवें अध्याय की भावर्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी।।१७।।

अठारहवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष और वाराह भगवान का युद्ध

मैत्रेय उवाच

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ।।१।।

अन्वयः— तदेवम् जलेशभाषितम् आकर्ण्य, दुर्मदः महामनाः तद्विगमणय्य, नारदात् हरेः गतिं विदित्वा त्वरान्वितः रसातलं निर्विविशे ।।१।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुर जी ! वरुण देव की उस तरह की वाणी को सुनकर मदोन्मत्त वह दैत्य उसकी परवाह किए बिना ही नारदजी से श्रीहरि की गति को जानकर शीघ्रतापूर्वक रसातल में प्रवेश कर गया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे हिरण्याक्षधरोद्धर्तृवराहयोः । निर्विशेषं महायुद्धं देवक्षोभि निरूप्यते । प्रतियोद्धारं श्रुत्वा महामनाः शयिष्यस इति युदक्तं तद्विगणय्यागणयित्वा । यतो दुर्मदः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में पृथिवी का उद्धार करने वाले श्रीहरि और हिरण्याक्ष का देवताओं को क्षुब्ध कर देने वाला सामान्य महायुद्ध वर्णित है ।।१।। **प्रतियोद्धारं श्रुत्वा** वरुणदेव के मुख से अपने प्रतियोद्धा के विषय में सुनकर वरुणदेव ने जो यह कहा था कि तुम वीर शय्या पर सो जाओगें, उसकी परवाह किए बिना ही हिरण्याक्ष नारदजी से श्रीभगवान् का पता लगाकर शीघ्र ही रसातल में चला गया क्योंकि वह तो मदमत्त था ।।१।।

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ।।२।।

अन्वयः— तत्र धराधरं अग्रदंष्ट्रया प्रोन्नीयमानावनिम् अरुणश्रिया अक्ष्णा स्वरुचो भुष्णन्तम् जहास च अहो वन गोचरो मृगः।।२।।

अनुवाद— वहाँ पर अपने दाँतों के अग्रभाग पर पृथिवी को धारण किए हुए और उसको ऊपर की ओर लाते हुए विश्वविजयी श्रीवराह भगवान् को उसने देखा। वे भगवान् अपनी लालरक्त की आखों से उसके तेज को हर ले रहे थे। ऐसे भगवान् को देखकर हिरण्याक्ष जोर से हँसकर कहा अरे यह तो बनैला पशु है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अभितो जयतीत्यभिजित्तं श्रीहरिम्। प्रकर्षेणोर्ध्वं नीयमानाऽवनिर्येन। अग्रदंष्ट्रया दंष्ट्राग्रेण स्वरूचो हिरण्याक्षतेजांस्यरूणश्रिया युक्तं यत्तेनाक्ष्णा नेत्रेण मुष्णन्तं तिरस्कुर्वन्तम्। अहो चित्रं वनगोचरो मृगो वारिचरो वराहः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी हैं अतएव वे अभिजित् कहे जाते हैं ऐसे श्रीहरि को उसने देखा कि वे पृथिवी को लिए अपने दाँतों के अग्रभाग में रखकर ऊपर की ओर उठाये ले जा रहे हैं और अपने लाल-लाल आँखों की कान्ति से हिरण्याक्ष के तेज को तिरस्कृत कर रहे हैं। उनको देखकर हिरण्याक्ष ने कहा यह तो अद्भुत जल में सञ्चरण करने वाला वराह है ॥२॥

आहैनमेह्यज्ञ मही विमुञ्च नो रसौकसां विश्व सृजेयमर्पिता ।
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥३॥

अन्वयः— एनम् आह–अज्ञ एहि मही विमुञ्च, इयम् विश्वसृजा नः रसौकसाम् अर्पिता, हे सुराधम ! आसादितसूकरा कृते, मम इक्षतः अनया स्वस्ति न यास्यसि ॥३॥

अनुवाद— उसने वराह भगवान् से कहा मूर्ख इधर आओ पृथिवी को छोड़ दो इसको ब्रह्माजी ने हम रसातल वासियों को प्रदान कर दिया है। हे सूकर का रूप धारण किए हुए सुराधम ! मेरे देखते-देखते इसको लेकर तुम कुशल पूर्वक नहीं जा सकते हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

एह्यागच्छ। रसौकसां पातालवासिनां नोऽस्माकं समर्पिता। अन्यथा पातालावतरणमस्या न घटत इति भावः। हिरण्याक्षेणाधिक्षेपार्थं प्रयुक्तापि भारती वस्तुतो भगवन्तं स्तौति। तथाहि वनगोचरो जले शयानः श्रीनारायणः स एव योगिभिर्मृग्यते, दुष्टान्वा हन्तुं मृगयत इति मृगः। अज्ञ नास्ति ज्ञो यस्मात् सर्वज्ञेत्यर्थः। सुरा अधमा यस्मात् हे सुरोत्तम ! ममेक्षमाणस्यापि सतो मामनादृत्यापि त्वमनया सह वर्तमानो नोऽस्मदीयं स्वस्ति समस्तं मङ्गलं राज्यं यास्यसि प्राप्स्यसि नात्र संदेहः। तथाप्यस्मत्कृपया विमुञ्चेत्यर्थः। आसादिता लीलया स्वीकृता सूकराकृतिर्येन ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने कहा अरे मूर्ख इधर आओ। इसको ब्रह्माजी ने हम पातालवासियों को ही प्रदान कर दिया है, अन्यथा यह पाताल में कैसे आती ? **हिरण्याक्षेण० इत्यादि** हिरण्याक्ष ने श्रीभगवान् पर अधिक्षेप के लिए इस वाणी का प्रयोग किया है। परन्तु इस श्लोक का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है- **वनगोचरो मृगः** का अर्थ है जल में शयन करने वाले भगवान् नारायण हैं उनका ही योगिजन अन्वेषण किया करते हैं। भगवान् इसलिए भी मृग है कि वे दुष्टों को मारने के लिए उन सबों को खोजते हैं। **नास्तिज्ञो यस्मात्** जिससे बढ़कर कोई ज्ञानवान् नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ। हे सुराधम का अर्थ है जिनकी अपेक्षा सभी देवता अधम है, अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ। **ममेक्षतः इत्यादि** वाक्य का अर्थ है कि मेरे देखते रहने पर भी मेरी अवहेलना करके भी तुम इसके साथ रहकर हमलोगों के समस्त मङ्गल और राज्य को भी प्राप्त कर लोगे इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। फिर भी हमलोगों पर कृपा करके इसको छोड़ दो। तुमने लीला पूर्वक सूकर का आकार बना रखा है ॥३॥

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ।
त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढप्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥

अन्वयः— यः परोक्षजित् असुरान् मायया हन्ति त्वं सपत्नैः नः अभवाय भृतः किम् । मूढ योगमाया बलम् अल्प पौरुषं त्वां संस्थाप्य सुहृच्छुचः प्रमृजे ॥४॥

अनुवाद— तुम माया से छिप कर ही दैत्यों को मार देते है । हमारे शत्रुओं देवताओं द्वारा तुम हमलोगों के नाश के लिए ही पाले गये हो क्या ? मूढ ! तुम में तो योगमाया का ही बल है पुरुषार्थ तो बहुत कम है। तुमको मारकर मैं अपने बान्धवों का शोक दूर करता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अभवाय नाशाय भृतः पुष्टः । वस्तुतस्तु मोक्षाय भृतो धृत आश्रित इत्यर्थः । यो भवान्परोक्षेण चौर्येण जयतीति तथा। वस्तुतस्तु दूरत एव स्थित्वा जयतीति । संस्थाप्य हत्वा । वस्तुतस्तु योगमायारूपमचिन्त्यं बलं यस्य । अल्पं पौरुषं यस्मात्। तं त्वां सम्यक् स्थापयित्वा । भक्त्या हृदि स्थिरीकृत्येत्यर्थः । हे मूढप्र, मूढान्प्रति आप्यायतीति तथा । प्रा पूर्ताविति धातुः। सुहृदां शुचः संसारदुःखानि मृजे नाशयामि । यतस्त्वं स्मर्तुर्बान्धवानपि मोचयसीति भावः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यह भी श्लोक द्वयर्थक है । तुम हमलोगों के नाश के लिए पाले गये हो । इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि अभवाय अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनाये गये हो । आप परोक्ष अर्थात् चोरी से जित लेते हैं । यह सामान्य अर्थ है। विशेष अर्थ है कि आप दूर से ही हमलोगों का जित लेते हैं । संस्थाप्य पद का अर्थ है मारकर। वास्तविकता यह है कि आपका योगमाया रूपी बल अचिन्त्य बल है । आपके समक्ष जीवों का बल अल्प है । ऐसे आपको अच्छी तरह से अपने हृदय में सुस्थिर करके । हे मूढप्र ! अर्थात् आप भक्ति विवश जीवों को मुक्ति प्रदान कर देते हैं । प्राधातु पूर्त्यर्थक है । ऐसे आपको अपने हृदय में रखकर अपने बान्धवों के शोक को मैं दूर कर देता हूँ । क्योंकि जो आपका स्मरण करता है उसके बान्धवों को भी आप मुक्ति प्रदान कर देते हैं ॥४॥

त्वयि संस्थिते गदयाऽशीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।
बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥

अन्वयः— अस्मद् भुजया च्युतया गदया शीर्णशीर्षणि संस्थिते त्वयि ये च ऋषयः देवाः तुभ्यं बलिं हरन्ति, अमूलाः सर्वे स्वयं न भविष्यन्ति ॥५॥

अनुवाद— हमारे हाथ से छुटी हुयी गदा के द्वारा शिर फूट जाने के कारण जब तुम मर जाओगे तो तुम्हारी आराधना करने वाले ऋषिगण और देवगण, कटे हुए मूल वाले वृक्ष के समान अपने आप विनष्ट हो जायेंगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अस्मद्भुजच्युतयापि गदया अशीर्णं शीर्षं यस्य तथाभूते त्वयि सुखं स्थिते सति ये तुभ्यमधुना बलिं हरन्ति नवीना भक्ताः ये च पूर्वे भक्ता देवाश्च ते सर्वे स्वयमेवोद्यमं विनैवामूला न भविष्यन्ति किंतु दृढमूला एव भविष्यन्तीत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

हमारे भुजा से छुटी हुयी गदा के द्वारा जब आपका शिर नहीं फूटेगा और आप सुख पूर्वक बने रहेंगे तो, जो आपकी इस समय आराधना करने वाले नवीन भक्त हैं और तथा जो आपके पुराने भक्त ऋषिगण और देवगण है वे सबके सब बिना प्रयास के ही मूलहीन न होकर सुदृढ मूल वाले हो जायेगें । उनकी जड़ मजबूत हो जायेगी॥५॥

स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।
तोदं मृषान्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥

अन्वयः— अरिदुरुक्त तोमरैः तुद्यमानः सः दंष्ट्रग्रगां भीताम् गाम् उपलक्ष्य तोदं मृषन अम्बुमध्यात् ग्राहाहतः सकरेणुः इभः यथा निरगात् ॥६॥

अनुवाद— हिरण्याक्ष दुर्वचन रूपी बाणों से छेदे जा रहा था किन्तु श्रीभगवान् अपने दाँत के नोक पर स्थित पृथिवी को भयभीत देखकर उस चोट को बर्दास्त कर लिए और पृथिवी के साथ जल से ऊपर उसी तरह निकले जैसे ग्राह से आहत होकर हाथी हथिनी के साथ बाहर आ जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स हरिररेर्दुरुक्तान्येव तोमराः शस्त्रविशेषास्तैस्तुद्यमानो व्यथ्यमानो दंष्ट्राग्रगतां पृथिवीं भीतामालक्ष्य तोदं दुरुक्तव्यथां मृषन्सहमान एव निर्गतः । करेणुर्हस्तिनी । वस्तुतस्त्वरिदुरुक्ततोमरैर्निमित्तभूतैस्तुद्यमानः । यथाश्रुतार्थग्राहिणां ब्रह्मादीनां व्यथां दृष्ट्वानुकम्पया पीड्यमान इत्यर्थः । तोदं मृषन्नित्यस्याप्ययमेवार्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वे श्रीहरि शत्रु की दुरुक्ति रूपी तोमर अर्थात् शस्त्रविशेष के द्वारा दुःखी बनाये जा रहे थे, किन्तु अपने दाँतों के अग्रभाग में स्थित पृथिवी देवी को भयभीत देखकर उस दुरुक्तिजन्य व्यथा को वराह भगवान् सह लिए और जल से बाहर निकल आये । करेणु शब्द हस्तिनी का बोधक है । **वस्तुतस्तु० इत्यादि** इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि वस्तुतः लज्जित होने पर भी जिनके कारण सन्त पुरुष दुःखी न रहें उन कृपालुओं के लिए कुछ भी निन्दित नहीं है । अतएव दयालु होने के कारण अपने दाँत पर स्थित भूदेवी की रक्षा के लिए कुछ पलायन करना भी निन्दत नहीं है । **यद्वा० इत्यादि**- अथवा संसार का उपकार करने के लिए पृथ्वी का उद्धार करने वाले श्रीभगवान् का पीछा करना अनुचित है यह मानने वाला वह दैत्य अपनी ही निन्दा करता है । हमलोग केवल स्वार्थ परायण होने के कारण निर्लज्ज पुरुष हैं । ऐसे हमलोगों द्वारा किए जाने वाले निन्दित कर्मों की कोई भी गणना नहीं है। अतएव हमलोगों को धिक्कार है ॥७॥

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ।
अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥

अन्वयः— स सलिलस्य उदस्तात् गाम् गोचरे विन्यस्य तस्याम् एव सत्त्वम् अदधात् अरेः पश्यतः विबुधै प्रसूनैः आपूर्यमाणः विश्वसृजा अभिष्टुतः ॥८॥

अनुवाद— वे भगवान् जल के ऊपर पृथिवी को स्थापित करके उसमे अपनी धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिये । उससमय हिरण्याक्ष की आँखों के सामने ही देवताओं ने श्रीभगवान् पर फूलों की वर्षा की और ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की ॥८॥

भावार्थ दीपिका

स भगवान्विश्वसृजाभिष्टुतो विबुधैश्च प्रसूनैरापूर्यमाणः । पाठान्तरे विश्वसृजां प्रसूनैर्विबुधैरभिष्टुत इति । सलिलस्योदस्तादुपरि व्यवहारगोचरे देशे गां पृथ्वीं विन्यस्य तस्यां स्वसत्त्वमाधारशक्तिं निहितवान् । अरेस्तस्य पश्यत एव ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जब श्रीभगवान् ने जल के ऊपर व्यवहार योग्य स्थान में पृथिवी को स्थापित करके उसमें अपनी धारणा शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया उस समय हिरण्याक्ष की परवाह किए बिना ही ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की और देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की । पाठान्तर होने पर तो विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापतियों की पुष्पों से पूजित श्रीभगवान् की स्तुति देवताओं ने की ॥८॥

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।
मर्मण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥९॥

अन्वयः— परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् दुरुक्तैः अभीक्ष्णं मर्माणि तुदन्तं पच्चण्डमन्युः प्रहसन् तं बभाषे ॥९॥

अनुवाद— अपने पीछे आते हुए सुवर्ण के आभूषणों से भूषित विशाल गदा को धारण किए हुए तथा सुवर्ण निर्मित अद्भुत कवच पहने हुए एवं अपनी दुरुक्तियों द्वारा निरन्तर व्यथित करने वाले उस हिरण्याक्ष को भयङ्कर क्रोध करने वाले श्रीभगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

परा परात् पृष्ठतोऽनुषक्तं लग्नम् । तपनीयोपकल्पं सुवर्णाभरणम् । काञ्चनमयश्चित्रो दंशः कवचं यस्य तं दैत्यम्। प्रचण्डमन्युत्वमधिक्षेपादिकं चानुकरणमात्रं दैत्यवाक्यभीतानां देवानां भयनिवृत्तये । वस्तुतस्तेन तथाऽनुक्तत्वेन कोपादिहेत्वभावात् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष श्रीभगवान् का पीछा कर रहा था, वह सुवर्णालङ्कारों से भूषित था, विशाल गदा लिए हुए तथा सुवर्णनिर्मित अद्भुत कवच को धारण किए था । उस पर भयङ्कर क्रोध करके भगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।
न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥१०॥

अन्वयः— हे अभद्र ! सत्यं वयं वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् ग्रामसिंहान् मृगये मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य तव विकत्थनं न गृह्णन्ति ॥१०॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— तुम सत्य कहते हो; हम जङ्गली जीव हैं और तुम जैसे कुत्तों को खोजते रहते हैं । दुष्ट वीरपुरुष तुम जैसे मृत्यु के पाश में बँधे अभागे जीवों की आत्मश्लाघा पर हम ध्यान नहीं देते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहान् शुनः । प्रतिमुक्तस्य बद्धस्य । विकत्थनं श्लाघाम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं प्रतिमुक्त अर्थात् बद्ध विकत्थन अर्थात् आत्मश्लाघा । श्रीभगवान् ने कहा कि तुम ठीक ही कहते हो कि मैं जङ्गली जीव हूँ और तुम जैसे कुत्तों को मैं खोजता रहता हूँ । तुम तो मृत्यु के पाश में बन्ध चुके हो; अतएव आत्मश्लाघा कर रहे हो । किन्तु वीरों का स्वभाव होता है कि वे मृत्यु के पाश में बंधे जीवों की आत्मश्लाघा पर ध्यान नहीं देते हैं ॥१०॥

एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविताास्ते ।
तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥

अन्वयः— एते वयं रसौकसांन्यासहराः गतह्रियः ते गदया द्राविताः अथापि कथंचिदाजौ तिष्ठमहे स्थेयम् बलिना वैरम् उत्पाद्य क्व यामः ॥११॥

अनुवाद— हाँ हम रसातल वासियों की धरोहर को चुराने वाले निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। मुझमें तुम्हारे साथ युद्ध करने का सामर्थ्य ही नहीं है। सामर्थ्य के नहीं होने पर भी किसी तरह युद्धभूमि में रुके हुए हैं। हम को तो युद्ध करना ही पड़ेगा तुम जैसे बलवान वीर से वैर करके हम जा भी कहाँ सकते हैं ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

न्यासहारा निक्षेपहराः । द्राविताः पलायनं कारिताः । अथाप्यसमर्था अपि तिष्ठामः । तत्किम् । यतः स्थेयं स्थातव्यमेवास्माभिः। तत्किमित्यत आह । क्व यामः । गन्तव्यदेशाभावात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा— हाँ हमलोग रसातल के धरोहर को चुराने वाले तथा निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। यद्यपि हम तुम्हारे साथ युद्ध करने में असमर्थ हैं फिर भी युद्ध करने के लिए यहाँ रुके भी हैं। यदि पूछो कि क्यों रुके हो तो उसका उत्तर है कि मुझको यहाँ रुकना ही होगा। तुम्हारे जैसे बलवान से वैर करके हम कहाँ जा सकते हैं ? कोई ऐसा स्थान भी तो नहीं है जहाँ कि हम जाकर रहें। जहाँ जायेंगे वही तुम आ जाओगे ॥११॥

त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ।
संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञा नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥१२॥

अन्वयः— त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपः अनूहः आशु नः अस्वस्तये घटस्व अस्मान् संस्थाप्य च स्वकानां अश्रु प्रमृज, यः स्वप्रतिज्ञां नातिपिपर्ति स असभ्यः ॥१२॥

अनुवाद— पैदल वीरों के जो यूथप (सेनापति) होते हैं उनका भी तुम स्वामी हो, अतएव बिना किसी सोच विचार किए शीघ्र ही हमारा अनिष्ट करने में लग जाओ। मुझको मारकर तुम अपने बान्धवों को आँसू को पोंछ डालो। इसमें अब देर न करो। जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है वह असभ्य कहलाता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पद्रथानां पदातीनां ये यूथपास्तेषामधिपः मुख्य इत्यर्थः । अस्वस्तये पराभवार्थमाशु घटस्व यतस्व । अनूहो निर्वितर्कः। यो नातिपिपर्ति न पूरयति पालयति वा असावसभ्यः सभायामनर्हः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि तुम पैदल सेनाओं के जो स्वामी हैं, उन सबों के तुम स्वामी हो अतएव तुम मुझको पराजित करने का प्रयास बिना सोचे विचारे करो। जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नही करता है, वह असभ्य होता है ॥१२॥

मैत्रेय उवाच

सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् । आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥१३॥

अन्वयः— सः भगवता रुषा भृशम् अधिक्षिप्तः प्रलब्धः च क्रीडमानः अहिराडिव उल्बणं क्रोधम् आजहार ॥१३॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! जब भगवान् ने क्रोध करके इस तरह उसका खूब उपहास किया और तिरस्कार किया तो वह भी पकड़कर खेलाये जाते हुए सर्प के समान अत्यधिक क्रोध किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सोऽधिक्षिप्तः सत्यं वयमिति श्लोकेन । रुषा प्रलब्ध उपहसितश्च एते वयमिति द्वाभ्याम् । क्रीडां कार्यमाणोऽहिराट् महासर्प इव ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने **सत्यंवयम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा हिरण्याक्ष का अत्यधिक उपहास किया तथा क्रोध पूर्वक **एतेवयम्० इत्यादि** दो श्लोकों से उसका खूब तिरस्कार भी किया, अतएव हिरण्याक्ष ने उसी तरह से अत्यधिक क्रोध किया जिस तरह पकड़कर खेलाया जाता हुआ महासर्प भयङ्कर क्रोध करता है ।।१३।।

सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः । आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यनद्धरिम् ।।१४।।

अन्वयः— अमर्षितः दैत्यः श्वसन् सृजन् मन्युप्रचलितेन्द्रियः । तरसा आसाद्य गदया हरिम् अहनत् ।।१४।।

अनुवाद— असहिष्णु वह दैत्य क्रोध से लम्बी श्वास लेने लगा, क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं । वह वेगपूर्वक गदा उठाकर श्रीहरि पर गदा से प्रहार किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

मन्युना प्रचलितानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के द्वारा उपहसित और तिरस्कृत होकर क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रयाँ क्षुब्ध (व्याकुल) हो गयी थीं ।।१४।।

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि । अवञ्चयत्तिरश्चीना योगारुढ इवान्तकम् ।।१५।।

अन्वयः— भगवान् तु रिपुणा उरसि विसृष्टं गदावेगं तिरश्चिनः योगारूढः अन्तकम् इव अवञ्चयत् ।।१५।।

अनुवाद— किन्तु श्रीभगवान् ने कुछ टेढा होकर शत्रु के द्वारा उनकी छाती पर चलायी गयी गदा से प्रहार को उसी तरह बचा लिया जिस तरह योगारूढ योगी मृत्यु के आक्रमण से अपने को बचा लेता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अन्तकम् मृत्युम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अन्तकम् पद मृत्यु का बोधक है ।।१५।।

पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः । अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ।।१६।।

अन्वयः— पुनः दष्टदच्छदम् स्वां गदाम् आदाय अभीक्ष्णशः भ्रामयन्तम् क्रुद्ध हरिः संरम्भात् अभ्यधावत् ।।१६।।

अनुवाद— फिर अपने ओष्ठ को चबाता हुआ अपनी गदा को लेकर बार-बार घुमते हुए हिरण्याक्ष पर क्रोध करके श्रीहरि बड़े वेग से दौड़े ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

ततश्च गदयाऽरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः । आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ।।१७।।

अन्वयः— हे सौम्य ! ततः प्रभुः गदया अरातिम् दक्षिणस्यां भ्रुवि, आजघ्ने स तु कोविदः तां गदया अहनत् ।।१७।।

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले विदुरजी उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने गदा के द्वारा अपने शत्रु की दाहिनी भौहे पर प्रहार किया किन्तु गदा युद्ध में निपुण हिरण्याक्ष ने उसे अपनी गदा से रोक लिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

सौम्य विदुर, तां गदामप्राप्तामेवाहनत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! किन्तु उस हिरण्याक्ष ने अपने तक पहुँचने से पहले ही उस गदा के प्रहार को रोक लिया ।।१७।।

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च । जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।।१८।।

अन्वयः— एवं गुर्वीभ्यां गदाभ्यां हर्यक्षः हरिः एव च जिगीषया सुसंरब्धौ अन्योन्यम् अभिजघ्नतुः ।।१८।।

अनुवाद— इस प्रकार अपनी भारी गदाओं से हिरण्याक्ष और श्रीहरि एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से अत्यधिक क्रोध करके एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

हर्यक्षो हिरण्याक्षः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष को ही हर्यक्ष कहा गया है ।।१८।।

तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ।
विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ।।१९।।

अन्वयः— तिग्मगदाहतांङ्गयोः तयोः स्पृधोः क्षतस्रवघ्राण विवृद्धमन्यवोः जिगीषया विचित्रमार्गान् चरतोः, इलयाम् शुष्मिणोः मृध इव व्यभात् ।।१९।।

अनुवाद— तीक्ष्ण गदा के प्रहार से उन दोनों के अङ्ग घायल हो गये थे, घावों से बहने वाले रक्त की गन्ध दोनों का क्रोध बढ़ रहा था । एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से वे तरह-तरह के पैंतरे चल रहे थे । उन दोनों की शोभा उसी तरह से हो रही थी जिस तरह एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए दो सांड लड़ रहे हों ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

स्पृधोः स्पर्धमानयोः । तिग्माभ्यां गदाभ्यां आहतान्यङ्गानि ययोः । क्षतादास्रवतीति क्षतास्रवं रुधिरं तस्य घ्राणमवघ्राणं तेन विवृद्धो मन्युर्ययोः । विचित्रान्मार्गान् गदायुद्धभ्रमणभेदान् । इला गौस्तस्यां निमित्तभूतायां शुष्मिणोः मत्तयोर्वृषभयोः । प्रस्तुतेऽपि इला पृथ्वी तदर्थम् । वृषभौ हि खलु बहूनि दिनानि संग्रथितोतुङ्गशृङ्गसंघर्षविदीर्णाङ्गगलद्रुधिरौ परस्परोपमर्दव्यग्रोग्रसंरम्भौ चमत्कारितगजयूथपौ युध्यमानौ तिष्ठत इति प्रसिद्धम् ।।१९।।'

भाव प्रकाशिका

स्पृधोः का अर्थ है एक दूसरे से स्पर्धा करने वाले उन दोनों के अङ्ग तीक्ष्ण गदा के प्रहार से घायल हो गये थे । उन दोनों के घावों से रुधिर बहा जा रहा था और उस रक्त की गन्ध से उन दोनों का क्रोध बढ गया था। वे दोनों एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से गदायुद्ध के अनेक और अद्भुत पैंतरे चल रहे थे । लग रहा था की दो मदमत्त सांड एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे हों । यहां पर इला पृथिवी है वही प्रस्तुत है, उसी के लिए वे दोनो युद्ध कर रहे थे । इला शब्द का अर्थ गौ भी होता है । **वृषभौ हि० इत्यादि-** यह प्रसिद्ध है कि अपने सिंगों को एक दूसरे के सिंग से सटाकर दो सांड बहुत दिनों तक युद्ध करते हैं, यद्यपि उन दोनों के अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं, और उससे रक्त बहता रहता है । किन्तु वे अपनी अभिप्रेत गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं । इसी तरह दो गज यूथाधिपति भी अपने अभिप्रेत हस्तिनी को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं, यह भी प्रसिद्ध है ।।१९।।

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।
कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥२०॥

अन्वयः— कौरव्य ! दैत्यस्य मायागृहीत वराहतनोः यज्ञावयवस्य महात्मनः मह्यां द्विषतोः विमर्दनं दिदृक्षुः ऋषिभिः वृतः स्वराट् अगात् ॥२०॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! दैत्य हिरण्याक्ष और अपनी माया से वाराह शरीर को धारण करने वाले यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे थे । उन दोनों के द्वारा किए जाने वाले युद्ध को देखने के लिए वहाँ पर ऋषियों के साथ ब्रह्माजी आ गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञा एवावयवा यस्य च । मह्यां महीनिमित्तं द्विषतोः । एवंविधं विमर्दनं युद्धं दिदृक्षुः स्वराट् ब्रह्मा तत्रागात् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् यज्ञ शरीरक हैं वे तथा हिरण्याक्ष दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे थे । इस प्रकार के युद्ध को देखने के लिए ऋषियों के साथ वहाँ ब्रह्माजी आये ॥२०॥

आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।
विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगाद नारायणमादि सूकरम् ॥२१॥

अन्वयः— आसन्न शौण्डीरम् अपेतसाध्वसम्, कृतप्रतिकारम्, अहार्य विक्रमम्, दैत्यं विलक्ष्य आदि सूकरम् नारायणम् जगाद ॥२१॥

अनुवाद— हजारों ऋषियों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने शौर्य प्राप्त एवं मदमत्त, निर्भय श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ तथा जिसके पराक्रम को चूर्ण नहीं किया जा सकता है ऐसे उस दैत्य को देखकर आदि सूकर भगवान् नारायण से कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आगत्य च नारायणमाह । किं कृत्वा । दैत्यं विलक्ष्य । कथंभूतम् आसन्नं प्राप्तं शौण्डीर्यं शौर्यं मदो वा येन । अपेतं साध्वसं यस्मात् । कृतः प्रतीकारो येन । अहार्योऽप्रतिकार्यो विक्रमो यस्य । सहस्रणीः सहस्राणामृषिसहस्राणां नेता ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी हजारों ऋषियों के नेता थे । उन्होंने जब देखा कि यह दैत्य शौर्य सम्पन्न और मदमत्त है, इसमें भय का लेश भी नही हैं, और यह श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ है इसके पराक्रम को विनष्ट करना कठिन है । यह देखकर वे आदि सूकर भगवान् नारायण से कहे ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमलमुपेयुषाम् । विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥
आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः । अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥२३॥

अन्वयः— हे देव अस्मद्राद्धवरः एषः ते अङ्घ्रिमूलम् उपेयुषाम् देवनाम् विप्राणाम् सौरभेयीणां अनागसाम् भूतानाम् अपि आगस्कृत् भयकृत्, दुष्कृत् अप्रतिरथः कण्टकः अन्वेषन् लोकान् अटति ॥२२-२३॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे देव ! मुझसे वरदान प्राप्त करके यह अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले देवताओं, ब्राह्मणों गौओं तथा दूसरे निरपराध जीवों को बहुत हानि करने वाला दुःख देने

वाला और भयभीत करने वाला है । इसके समान कोई भी दूसरा योद्धा नहीं है । अतएव सम्पूर्ण जगत् का शत्रु अपने सदृश योद्धा की खोज करते हुए लोकों में घूम रहा है ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

हे देव, तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्तानां देवादीनाम् । एषोऽसुरः । आगस्कृद्वृथैवापराधान्वेषकः । तत्परिहाराय प्रवृत्तो भयकृत् । भीतं ज्ञात्वा दुष्कृदर्थप्राणादिहर्ता अस्मत्तो राद्धो लब्धो वरो येन । अन्वेषन् प्रतिरथमवलोकयन् । अप्रतिरथः प्रतिपक्षशून्यः ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा— हे भगवन् यह असुर मुझसे वरदान प्राप्त करके अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले जीवों का व्यर्थ ही अपराध करता है । उसका प्रतिकार करने वालों में यह भय उत्पन्न कर देता है । उन सबों को जब यह भयभीत जान जाता है तो उन सबों को मार कर उनकी सम्पत्ति को ले लेता है । चूकि इसके सदृश कोई दूसरा वीर है नहीं इसलिए यह अपने समान प्रबल विरोधी की खोज करते हुए लोकों में घूम रहा है ॥२२-२३॥

मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् । आक्रीड बालवद्देव यदाशीविषमुत्थितम् ॥२४॥

अन्वयः— हे देव ! मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशम् असत्तमम् एनं बालवत् मा क्रीड यत् उत्थितम् आशीविषम् ॥२४॥

अनुवाद— हे देव ! यह मायवी, घमण्डी, निरङ्कुश और अत्यन्त दुष्ट है । इसके साथ आप सर्प के साथ खेलने वाले बालक के समान खेल न करें क्योंकि यह जगे हुए विषैले सर्प के समान भयङ्कर है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मादेवंभूतोऽयं तस्मादेनं मा क्रीड मा क्रीडय । हे देव, यथोत्थितं क्षुभितमाशीविषं सर्पं बालः पुच्छाकर्षणादिना क्रीडयति तद्वत् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि यह मायावी घमण्डी और निरङ्कुश है अतएव इसके साथ आप उस तरह से खेल न करें जैसे कोई बालक क्रुद्ध विषैले सर्प की पूंछ पकड़कर उसको घसीटता है ॥२४॥

न यावदेष वर्धेत स्वां बेलां प्राप्य दारुणः । स्वां देव मायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥२५॥

अन्वयः— हे अच्युत ! यावत् एषः दारुणः स्वां बेलां प्राप्य न वर्धेत तावत् स्वां देवमायाम् आस्थाय अघम् जहि ॥२५॥

अनुवाद— हे अच्युत ! जब तक यह भयङ्कर दैत्य आपनी बेला को प्राप्त न कर सके उससे पहले ही आप अपनी देवमाया को अपना कर इस पापी को मार डालिये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स्वामासुरीम् । हे देव, स्वां मायाम् । अघं पापरूपम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि जब तक यह अपनी आसुरी बेला को प्राप्त करके प्रबल न हो जाय उससे पहले ही आप अपनी माया को अपनाकर इसका वध कर दें ॥२५॥

एषा घोरतमा संध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो । उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥२६॥

अन्वयः— प्रभो एषा संध्या घोरतमा लोकच्छम्बट्करी हे सर्वात्मन् उपसर्पति सुराणां जयम् आवह ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह संध्या अत्यन्त भयङ्कर है । यह जगत् का विनाश करने वाली है । यह संध्या धीरे-धीरे आ रही है । आप देवताओं को विजय प्रदान करें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

बेलामेवाह-एषेति । लोकानां छम्बट्करी विनाशकरी । छम्बडित्यव्ययं विनाशे वर्तते ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी आसुरी बेला को ही बतलाते हैं । उन्होंने कहा कि यह संध्या की बेला अत्यन्त भयङ्कर है । यह लोकों का विनाश करने वाली है और यह धीरे-धीरे आ भी रही है । अतएव आप देवताओं को विजय प्रदान करें । छम्बट् यह अव्यय विनाश के अर्थ का बोधक है ।।२६।।

अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् । शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ।।२७।।

अन्वयः— अधुना एषः अभिजित् नाम मौहूर्तिकः योगः ह्यगात् नः सुहृदां शिवाय त्वम् आशु दुस्तरम् निस्तर ।।२७।।

अनुवाद— इस समय यह अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है । अतएव आप हमलोगों के कल्याण के लिए शीघ्र ही इस दुर्जय दैत्य को मार दें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अभिजिन्मध्याह्नः । स एव मौहूर्तिको योगः सन् । मुहूर्तः शुभदः कालः अगाद्गतप्राय । अतो यावन्मुहूर्तशेषोऽस्ति तावदेव सुदुस्तरमेनं निस्तर जहि ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि इस समय मध्याह्न की बेला में आने वाला अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है अतएव इस मुहूर्त के बितने से पहले ही इस दुर्जय दैत्य का आप वध कर दीजिये, जिससे कि आपके सुहृद् हम देवताओं का कल्याण हो ।।२७।।

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् । विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधेऽष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— दिष्ट्या विहितं मृत्युं त्वां अयं स्वयम् आसादितः । एनं विक्रम्य मृधे हत्वा लोकान् शर्मणि आधेहि ।।२८।।

अनुवाद— सौभाग्यवशात् इसकी मृत्यु आपसे ही होने वाली है । अतएव यह स्वयम् ही आपके पास आ गया है । अतएव इसको युद्ध में बलपूर्वक मारकर लोकों को आप सुखी बना दें ।।२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुरण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

त्वां मृत्युं त्वयैव शापानुग्रहकाले विहितं निर्मितम् । आसादितः प्राप्तः । शर्मणि सुखे आधेहि स्थापय ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इसके शापानुग्रह के समय मे आपने ही अपने को ही इसकी मृत्यु का कारण बना लिया था और सौभाग्यवशात् यह आपके पास आ भी गया है, अतएव इस दुर्जय दैत्य को मारकर आप संसार को सुखी बना दें ।।२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष का वध

मैत्रेय उवाच

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः । प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥१॥

अन्वयः— विरिञ्चस्य निर्व्यलिकामृतं वचः अवधार्य प्रेमगर्भेण प्रहस्य तदपाङ्गेन सः अग्रहीत् ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी ! ब्रह्माजी के उपर्युक्त वचन कपट रहित और अमृतमय थे, उनको सुनकर श्रीभगवान् प्रेमपूर्वक मुस्कुराये और कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे विरिञ्च्यादिप्रार्थितेन महामृधे । वराहेण हिरण्याक्षवधः श्लाघ्योऽनुवर्ण्यते । निर्व्यलीकं च तदमृतं च । पाठान्तरे निष्कपटाभिप्रायं च तदृत च । कालात्मनोऽपि मम मुहूर्तबलमुपदिशतीति प्रहस्यापाङ्गालोकनेन स्वीकृतवान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वराह भगवान् के द्वारा प्रशंसनीय हिरण्याक्ष के वध का वर्णन किया गया है । **निर्व्यलीकम्० इत्यादि**- ब्रह्माजी की उपर्युक्त **विक्रम्यैनं मृधे हत्वा'** वाणी कपट रहित तथा अमृतमय थी जहाँ **निर्व्यलीक ऋतेवचः** पाठान्तर है वहाँ अर्थ होगा निष्कपट और सत्य । उसको सुनकर भगवान् इसलिए मुसकुराये कि मैं तो स्वयं कालस्वरूप हूँ और ये ब्रह्मा मुझको शुभ मुहूर्त का उपदेश दे रहे हैं। इसलिए वे हँसकर कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् । जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥२॥

अन्वयः— ततः मुखतः चरन्तम् अकुतोभयम् सपत्नं असुरम् अक्षजः उत्पत्य गदया हनौ जघान ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सामने विचरण करते हुए निर्भय अपने शत्रु हिरण्याक्ष की ठुड्डी पर श्रीभगवान् ने गदा मारी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मुखतः अभिमुखे । हनौ कपोलस्याधोभागे । अक्षजो ब्रह्मणो घ्राणेन्द्रियादाविर्भूतः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वराह भगवान् ब्रह्माजी की घ्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुए थे अतएव उनको अक्षज कहा गया है । उन्होंने देख कि उनका शत्रु असुर उनके सामने ही निर्भय विचरण कर रहा है अतएव उन्होंने उछलकर उसकी ठूढी पर गदा से प्रहार किया ॥२॥

सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् । विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥३॥

अन्वयः— तेन हतया गदया हता सा भगवत् करात् विहता विघूर्णिता अपतत् रेजे । तत् अद्पुतमिव अभवत् ॥३॥

अनुवाद— किन्तु हिरण्याक्ष के द्वारा प्रहार की गयी गदा से टकराकर भगवान की गदा उनके हाथ से छूटकर चक्कर काटती हुयी जमीन पर गिरकर सुशोभित हुयी । किन्तु यह अत्यनत अद्भुत सी घटना हुयी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सा स्वगदया तेन हता ततो विहता विच्युता सती विघूर्णिता भूत्वाऽपतद्रेजे च । तद्भगवत्करात्पतनम् । यद्वा तत्पदस्यावृत्त्या रेजे इत्यनेनापि संबन्धः तद्दैत्यपौरुषं रेजे इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

वह उस दैत्य के द्वारा किए गये प्रहार के कारण टकराकर श्रीभगवान् के हाथ से भगवान् की गदा छूट गयी और नाचकर पृथिवी पर गिर गयी । वह श्रीभगवान् के हाथ से गदा का गिरना अद्भुत सी घटना थी । अथवा तत् पद की दो बार आवृत्ति करने के कारण उसका रेजे पद से सम्बन्ध है । अर्थात् उससे उस दैत्य का पौरुष सुशोभित हुआ ॥३॥

स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् । मानयनस्य मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥

अन्वयः— सः तदा लब्धतीर्थः अपि विष्वक्सेनं प्रकोपयन् मृधे धर्मं मानयन् निरायुधम् न बबाधे ॥४॥

अनुवाद— उस समय अवसर प्राप्त करके भी वह दैत्य श्रीभगवान् के क्रोध को बढाते हुए तथा युद्ध के धर्म का पालन करते हुए निरायुध श्रीभगवान् पर प्रहार नहीं किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

लब्धतीर्थो लब्धावसरः स च न बबाधे न प्राहरत् । स मानयन्बभूवेति वाक्यभेदात्स इत्यस्यपौनरुक्त्यम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अवसर प्राप्त करके भी निरायुध श्रीभगवान् पर उसने प्रहार नहीं किया । उसने युद्ध धर्म का पालन किया। इस तरह से वाक्य की भिन्नता होने के कारण सः पद की पुनरुक्ति नहीं है ॥४॥

गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते । मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चाऽस्मरद्विभुः ॥५॥

अन्वयः— गदायाम् अपविद्धायाम् हाहाकारे विनिर्गते, तद्धर्मं मानयामास सुनाभं च अस्मरत् ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान के हाथ से गदा के गिर जाने पर हाहाकार मच गया । श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष की धर्म बुद्धि की प्रशंसा की और उन्होंने चक्र का स्मरण किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ।
चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥६॥

अन्वयः— दितिपुत्रधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानं व्यग्रचक्रं तं अतद्विदाम् खेचराणां तत्र ते स्वस्ति, अमुं जहि इति चित्रा वाचः आसन् ॥६॥

अनुवाद— दिति के अधम पुत्र तथा अपने मुख्य पार्षद के साथ क्रीडा करते हुए तथा चञ्चल चक्र को धारण किए हुए श्रीभगवान् से उनके प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं की इस तरह की विचित्र बातें सुनायी पड़ी कि भगवन् आपका कल्याण हो; आप इसका शीघ्र वध कर दें । इसे अधिक न खेलाइये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

व्यग्रं ससंभ्रमं चक्रं यस्य । विषज्जमानं विशेषेण सङ्गं प्राप्नुवन्तं प्रति । अतद्विदां तत्प्रभावमजानताम् । आसमन्तादासन् स्म ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने पार्षद मुख्य हिरण्याक्ष के साथ क्रीडा कर रहे थे और उनके हाथ में व्यग्र चक्र विद्यमान था । श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं ने श्रीभगवान् से निवेदन किया कि आप इसका वध कर दें देर न करें ॥६॥

स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ।
विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥

अन्वयः— अग्रतः आत्तरथाङ्गम् पद्मपलाशलोचनं तं व्यवस्थितं निशाम्यं विलोक्य च सः आमर्षपरिप्लुतेन्द्रियः रुषा श्वसन् स्वदन्तच्छदम् आदशत् ॥७॥

अनुवाद— अपने सामने चक्र धारण किए हुए कमलनयन श्रीभगवान् को तैयार देखकर हिरण्याक्ष ने उनको देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला उठीं वह लम्बी श्वास लेकर अपने ओष्ठों को चबा लिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स दैत्यस्तमात्तचक्रं निशाम्य दृष्ट्वाऽग्रतो व्यवस्थितं च विलोक्यामर्षेण क्रोधेन परिप्लुतानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य सः । आदशत् दष्टवान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वह दैत्य हाथ में चक्र धारण किए हुए श्रीभगवान् को देखकर और युद्ध के लिए तैयार देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला गयीं और लम्बी श्वास लेकर उसने अपने ओष्ठों को काट लिया ॥७॥

करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव । अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥

अन्वयः— करालदंष्ट्रः चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः अभिप्लुत्य स्वगदया हृत असि इति हरिम् अहनत् ॥८॥

अनुवाद— भयङ्कर दाँतों वाला तथा अपने नेत्रों को जलते हुए के समान देखकर वह दैत्य उछलकर अब मरे कहकर अपनी गदा से श्रीहरि पर प्रहार किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः पश्यन् । इवेति । वस्तुतः क्रोधभावमाह । हतोऽसि ज्ञातोऽसीति वास्तवोऽर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने नेत्रों से भस्म करते हुए के समान यहाँ इव शब्द के द्वारा वस्तुतः क्रोधाभाव को कहा गया है । हतोऽसि का वास्तविक अर्थ है ज्ञात हो गये ॥८॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः । लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥

अन्वयः— साधो यज्ञसूकरः भगवान् शत्रोः मिषतः लीलया सव्येन पदा वातरंहसम् तम् प्राहरत्॥९॥

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी यज्ञवराह भगवान् शत्रु की आँखों के सामने ही लीलापूर्वक अपने बायें पैर से उसकी वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार करके गिरा दिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

वातरंहसं वायुवेगाम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार किये ॥९॥

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥१०॥

अन्वयः— आह च आयुधम् आधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः सः तदा भूयः ताडयन् भृशम् व्यनदत् ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् ने कहा अपना आयुध उठाओ और प्रयास करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो । इस तरह से भगवान् के द्वारा कहे जाने पर उसने पुनः प्रहार किया और बहुत अधिक गर्जना किया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

घटस्वोद्यमं कुरु । यतस्त्वं जेतुमिच्छसि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने कहा पुनः प्रहार करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो ॥१०॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः । जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥११॥

अन्वयः— आपततीं तां वीक्ष्य स भगवान् समवस्थितः पन्नगीम् गरुत्मानिव लीलया जग्राह ॥११॥

अनुवाद— अपनी ओर आती हुयी उस गदा को देखकर अपनी जगह पर खड़े रहकर ही श्रीभगवान् उस गदा को बिना किसी प्रयास के उसी तरह पकड़ लिए जैसे गरुड़ किसी सर्पिणी को पकड़ लेते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥११॥

स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः । नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥

अन्वयः— स्व पौरुषे प्रतिहते हतमानो विगतप्रभः महासुरः हरिणा दीयमानां गदां नैच्छत् ॥१२॥

अनुवाद— अपने पौरुष को विफल हुए देखकर उस महान् असुर का गर्व विनष्ट हो गया उसकी कान्ति क्षीण हो गयी श्रीहरि के द्वारा दिए जाने पर भी वह उस गदा को नहीं लेना चाहा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

हतोमानो गर्वो यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उस असुर का गर्व विनष्ट हो गया ॥१२॥

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् । यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥

अन्वयः— विप्राय अभिचरन् यथा धृतरूपाय यज्ञाय ज्वलज्ज्वलन् लोलुपम् त्रिशिखं शूलं जग्राह ॥१३॥

अनुवाद— जैसे कोई ब्राह्मण पर निष्फल मारण आदि अभिचार कर्म करे उसी तरह से सूकर का रूप धारण किए हुए श्रीभगवान् के लिए उसने अग्नि के समान लपलपाते हुए त्रिशूल उठाया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ज्वलन्यो ज्वलनस्तद्वल्लोलुपं ग्रसनव्यग्रम् । यज्ञाय विष्णुमालक्ष्य । आकर्यकरत्वे दृष्टान्तः-विप्रमुद्दिश्याभिचारं कुर्वन्यथा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जलती हुयी अग्नि के समान दहकता हुआ वह त्रिशूल था वह मानो श्रीभगवान् को भस्म करने के लिए व्यग्र हो; किन्तु वह श्रीभगवान् के लिए उसी तरह से व्यर्थ था जैसे किसी तत्त्वज्ञ ब्राह्मण पर मारणादि अभिचार कर्म करता है तो वह व्यर्थ हो जाता है ॥१३॥

तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ।
चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥१४॥

अन्वय:— तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं उदीर्णदीधिति: अन्त: खे चकासत तत् हरि: निशातनेमिना चक्रेण तार्क्ष्य पतत्रम् उज्झितं हरि: यथा चिच्छेद ॥१४॥

अनुवाद— महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा गया वह ओजस्वी त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा उसको श्रीहरि ने अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र के द्वारा उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा परित्यक्त एक पङ्ख को इन्द्र ने अपने अमोध वज्र से काट डाला था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्तः खे आकाशमध्ये चकासत्प्रकाशमानम् । उदीर्णोत्कटा दीधितिर्दीप्तिर्यस्य । निशातनेमिना शितधारेण । हरिरिन्द्रो यथा तार्क्ष्यस्य पतत्रमुज्झितं चिच्छेद । देवान्विनिर्जित्य अमृतकलशं नयता गरुडेनेन्द्रप्रयुक्तवज्रस्यामोघस्य मानं दातुं पिच्छमेकं त्यक्तं तद्यथेन्द्रश्चिच्छेद छिन्नं च तद्यथा खे प्रचकाशे तद्वत्प्रकाशमानमित्यभिसन्धिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा हुआ वह त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा । उस त्रिशूल को श्रीभगवान् ने अपने तीव्र धार वाले चक्र से उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा छोड़े गये उनके पङ्ख को इन्द्र ने अपने वज्र से काटा डाला था । एक बार अपनी माता विनता को सर्पों की माता कद्रु के दासित्त से मुक्त करने के लिए अमृत कलश लाने के लिए गरुड स्वर्ग लोक में गये और वहाँ के देवताओं को परास्त करके जब वे अमृत कलश को ला रहे थे उस समय इन्द्र ने गरुड़जी पर अपने वज्र का प्रयोग किया । चूकि वज्र अमोघ है, वह कभी विफल नहीं होता है, इसलिए गरुडजी ने अपना एक पङ्ख छोड़ दिया और इन्द ने अपने वज्र से उसे काट डाला, उसी तरह श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काट डाला ॥१४॥

वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ।
प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥

अन्वय:— अरिणा स्वशूले बहुधा वृक्णे प्रवृद्धरोष: स: प्रत्येत्य हरे: विभूतिमत् उर: कठोरमुष्टिना नदन् प्रहृत्य असुर: अन्तर्धीयत् ॥१५॥

अनुवाद— श्रीहरि के चक्र के द्वारा अनेक टुकड़े हुए अपने त्रिशूल को देखकर हिरण्याक्ष का क्रोध बढ गया वह भगवान् के सन्निकट आकर उनके विशाल वक्षस्थल जो श्रीवत्सचिह्न से विभूषित था उस पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके जोर से गर्जना करके अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अराः सन्त्यस्येत्यरि चक्रं तेन बहुधा वृक्णे छिन्ने सति प्रत्येत्याभिमुखमागत्य हरेरुरो वक्षः प्रहृत्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अराः सन्त्यस्य इस विग्रह के अनुसार अरि शब्द चक्र का वाचक है । अपने चक्र से श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काटकर अनेक टुकड़ों में कर दिया । यह देखकर क्रुद्ध हुए हिरण्याक्ष श्रीहरि के समक्ष आकर उनके श्रीवत्सचिह्न से भूषित वक्ष:स्थल पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके गर्जना किया और अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः । नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

अन्वयः— हे क्षत्तः तेन इत्थम् आहतः आदिसूकरः भगवान् स्रजा हतः द्विप इव क्वापि मनाक् न अकम्पत ॥१६॥

अनुवाद— हे विदुरजी हिरण्याक्ष के द्वारा इस तरह से प्रहार किए जाने पर आदि वराह भगवान् अपने स्थान से टस से मस उसी तरह नहीं हुए जिस तरह फूलों की माला से हाथी पर किए गये प्रहार का कोई असर नही होता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मनागीषदपि । क्वाप्यंशे ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष के उस मुष्टिप्रहार से भगवान् आदि वराह बिल्कुल टस से मस नहीं हुए ॥१६॥

अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ । यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥१७॥

अन्वयः— अथ योगमायेश्वरे हरौ उरुधा मायां असृजत् यां विलोक्य त्रस्ता प्रजाः अस्य उपसंयमम् मेनिरे ॥१७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वह दैत्य मायापति श्रीभगवान् पर माया का प्रयोग करने लगा, उसको देखकर भयभीत प्रजाओं को लगा कि अब जगत् का प्रलय होने वाला है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अस्य जगतः । उपसंयमम् प्रलयम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अस्य पद के द्वारा इस जगत् का परामर्श किया गया है, और **उपसंयमम्** पद से प्रलय का । अर्थात् हिरण्याक्ष की माया को देखकर सारी प्रजायें भयभीत हो गयीं और सोचने लगीं की प्रलय हाने वाला है क्या ?॥१७॥

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् । दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

अन्वयः— चण्डाः वायवः प्रववुः पांसवम् तमः ऐरयन् क्षेपणैः प्रहिता इव दिग्भ्यः ग्रावाणः निपेतुः ॥१८॥

अनुवाद— जोर से आँधी चलने लगी धूल के उड़ने से अन्धकार छा गया । क्षेपणी यन्त्र से फेंके गये के समान दिशाओं से पत्थर गिरने लगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पांसुकृतं तमश्च प्रेरितवन्तः क्षेपणैर्यन्त्रैः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तेज आंधी के कारण धूलि के भर जाने से अन्धकार छा गया और लग रहा था जैसे क्षेपणी यन्त्र के द्वारा दिशाओं से पत्थर फेंके जा रहे हों ॥१८॥

द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः । वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥१९॥

अन्वयः— सविद्युत् स्तनयित्नुभिः पूयकेश-असृग्-विट-मूत्र-अस्थीनि-असकृत् वर्षद्भिः नष्टभगणा द्यौः जाता ॥१९॥

अनुवाद— बिजली की चमचमाहट और गर्जना से युक्त, बार-बार पीब, केश, रक्त, विष्ठा, मूत्र तथा हड्डियों की वर्षा करने वाले मेघों से आकाश के सारे सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे छिप गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नष्टो भगणो नक्षत्रसमूहो यस्याम् । अनेन दैत्यबलातिरेकाद्ब्रह्मदत्तमुहूर्तातिक्रमो गम्यते । अह्नि नक्षत्राणामसंभवात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आकाश के तारे आदि छिप गये। इससे दैत्य के बल के अतिरेक के कारण ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त मुहूर्त का अतिक्रमण प्रतीत होता है, क्योंकि दिन में तो तारे नहीं हो सकते है ॥१९॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ । दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥

अन्वयः— हे अनघ ! नानायुधमुचः गिरयः प्रत्यदृश्यन्त दिग्वाससः मुक्तमूर्धजाः शूलिन्यः यातुधान्यः च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

अनुवाद— विदुरजी अनेक प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने वाले पर्वत दिखायी देने लगे तथा हाथ में त्रिशूल लिए खुले केशों वाली नङ्गी राक्षसियाँ दिखने लगीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नानायुधानि मुञ्चन्तीति तथा यातुधान्यश्च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के आयुधों की वर्षा करने वाले पर्वत तथा नङ्गी त्रिशूल लिए राक्षसियाँ दिखने लगी ॥२०॥

बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः । आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥

अन्वयः— बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः आततायिभिः, अतिवैशसाः हिंस्रा वाचः उत्सृष्टाः ॥२१॥

अनुवाद— पैदल घुड़सवार, रथी तथा हाथियों पर चढ़े हुए सैनिकों के साथ आततायी यक्षों एवं राक्षसों का काटो, मारो, इस प्रकार की क्रूर तथा हिंसामय शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हिंसाश्छिन्धिभिन्धीत्येवंभूता अतिवैशसा अत्युग्रा वाच उत्सृष्ट इत्यत्रैव वाक्यसमाप्तिः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

काटो, मारो इस तरह की हिंसा बहुल शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् । सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

अन्वयः— प्रादुष्कृतानां आसुराणां मायानाम् विनाशयत् भगवान् त्रिपात् दयितम् सुदर्शनास्त्रं प्रायुंक्त ॥२३॥

अनुवाद— प्रकट हुयी उन आसुरी मायाओ को विनष्ट करने के लिए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् ने अपने प्रिय सुदर्शनास्त्र का प्रयोग किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रादुष्कृतानामिति प्रकटिता माया विनाशयत् । **'विनाशनम्'** इति पाठे यथाश्रुतैव षष्ठी । त्रीणि सवनानि पादा यस्य। यज्ञमूर्तिरित्यर्थः । **'त्रयो अस्य पादाः'** इति श्रुतेः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने जिन मायाओं को प्रकट किया था उन सबों को विनष्ट करने के लिए । जहाँ पर विनाशनम् यह पाठभेद है वहाँ पर भी षष्ठी विभक्ति का अर्थ सम्बन्ध सामान्य ही है । त्रीणि सवनानि पादा यस्य अर्थात् प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों सवन ही जिनका चरण है । यज्ञों में ये तीनों सवन होते हैं । अतएव यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् को त्रिपात् कहते हैं । श्रुति भी कहती है त्रयः अस्य पादाः ॥२३॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् । रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥

अन्वयः— स्वमायासु विनष्टासु केशवम् आव्रज्य रुषा उपगूहमानः अमूं बहि अवस्थितं ददृशे ॥२४॥

अनुवाद— अपनी मायाओं के विनष्ट हो जाने पर हिरण्याक्ष पुनः भगवान् केशव के पास आकर क्रोध पूर्वक अपनी दोनों भुजाओं के बीच दबाकर रगड़ते हुए श्रीभगवान् को उसने देखा कि भगवान् उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उपगूहमानो बाह्वोरन्तर्निधाय सङ्घट्टयन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपगूहमानः पद का अर्थ है कि अपनी दोनों भुजाओं के बीच में रखकर उनको रगड़ते हुए । उसने देखा कि भगवान् जो उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं व्रजसारैरधोक्षजः । करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

अन्वयः— वज्रसारैः मुष्टिभिः विनिघ्नन्तं तं अधोक्षजः त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः यथा करेण कर्णमूले अहन् ॥२५॥

अनुवाद— जब वह हिरण्याक्ष वज्र के समान मुक्कों से मार रहा था तो भगवान् ने उसकी कनपटी पर उस तरह से अपने थप्पड़ से प्रहार किया जिस तरह देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर पर प्रहार किया था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अहन् जघान । त्वाष्ट्रं वृत्रम् । मरुत्पतिरिन्द्रः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अहन् का अर्थ है मारा । त्वाष्ट्र वृत्रासुर का नाम है । मरुत्पति इन्द्र का नाम है । हिरण्याक्ष तो श्रीभगवान् को अपने व्रज के समान मुक्कों से मार रहा था और भगवान् ने उसकी कनपटी पर थप्पड़ से मारा ॥२५॥

स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ।
विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥२६॥

अन्वयः— विश्वजिता अवज्ञया आहतः परिभ्रमद् गात्रः उदस्तलोचनः विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहः नभस्वता लुलितः नगेन्द्रो यथा अपतत् ॥२६॥

अनुवाद— यद्यपि श्रीभगवान् उसको उपेक्षा पूर्वक ही थप्पड़ से मारे किन्तु उसकी चोट से उसका शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये, उसके हाथ, पैर तथा केश बिखर गये और वह निष्प्राण होकर पृथिवी पर उसी तरह गर पड़ा जिस तरह आँधी के द्वारा उखाड़ा गया महान् वृक्ष पृथिवी पर गिर पड़ता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परितो भ्रमद्गात्रं शरीरं यस्य । उदस्ते बहिर्निर्गते लोचने यस्य । विशीर्णा बाह्वादयो यस्य । नगेन्द्रो महाद्रुमः । लुलित उन्मूलितः । नभस्वता वायुना ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी है । उन्होंने उपेक्षा पूर्वक ही हिरण्याक्ष को थप्पड़ से मारा किन्तु उसके चोट से हिरण्याक्ष का शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये । उसकी भुजा इत्यादि विशीर्ण हो गये और वह वायु के द्वारा उखाड़े गये महावृक्ष के समान निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । नभस्वत् वायु को कहते

हैं । लुलित का अर्थ है उखाड़ा गया । नगेन्द्र महावृक्ष का नाम है । उदस्तलोचनः का विग्रह है । उदस्ते बहिर्गते लोचने यस्य ॥२६॥

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।
अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिम् ॥२७॥

अन्वयः— क्षितौ शयानम् अकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्र परिदष्टदच्छदम् तम् वीक्ष्य आगता अजादयः शशंसुः अहो इमां संस्थितिम् को नु लभेत ॥२७॥

अनुवाद— पृथिवी पर पड़े हुए हिरण्याक्ष का तेज अब भी बना हुआ था । वह अपने भयङ्कर दाँतो से अपने ओष्ठों को चबाये हुए था । इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देखकर आये हुए ब्रह्मा आदि ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा— इस तरह की मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती है ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

संस्थितिं मृत्युम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

संस्थिति का अर्थ मृत्यु है ॥२७॥

यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।
तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥२८॥

अन्वयः— योगिनः रहः असतः लिङ्गात् मुमुक्षया यं योगसमाधिना ध्यायन्ति, तस्य पदाहतः एष दैत्यऋषभः मुखं प्रपश्यन् तनुम् उत्ससर्ज ह ॥२८॥

अनुवाद— अपनी मिथ्या उपाधि से मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन जिनका समाधियोग के द्वारा ध्यान करते हैं, उन्हीं के चरण प्रहार से मारा गया यह दैत्य उन्हीं श्रीभगवान् के मुख को देखते हुए अपने शरीर का परित्याग किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

असत आरोपिताल्लिङ्गाल्लिङ्गशरीरान्मोक्तुमिच्छया । वराहस्य पूर्वपादयोरेव करत्वात्करेणाहन्निति पदा हत इति चाविरुद्धम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

लिङ्ग शरीर चूकि आरोपित है अतएव मिथ्या है, उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन श्रीभगवान् का ध्यान करते हैं । उन्हीं भगवान के चरणों के प्रहार से मरा था हिरण्याक्ष । यदि कोई कहे कि भगवान् ने तो अपने हाथ से हिरण्याक्ष को मारा था चरण से नहीं तो ऐसी बात नहीं है । श्रीभगवान् वाराहावतार में थे उनका पूर्वपद ही हाथ का काम करता था इसीलिए पीछे के पैरों से मारे गये हिरण्याक्ष को कराहत कहा गया है ॥२८॥

एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् । पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येतेह जन्मभिः ॥२९॥

अन्वयः— एतौ तौ अस्य पार्षदौ शापात् सद्गतिं यातौ पुनः कतिपयैः जन्मभिः स्थानं प्रपत्स्येते ॥२९॥

अनुवाद— ये दोनों श्रीभगवान् के पार्षद हैं शाप के कारण इन दोनों को अधोगति की प्राप्ति हुयी । अब कुछ जन्मों में ये पुनः अपने स्थान को प्राप्त कर लेंगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

देवा ऊचुः

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥३०॥

अन्वयः— अखिलयज्ञतन्तवे ते नमो नमः स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये । अयं जगताम् अरुन्तुदः दिष्ट्या हतः हे ईश त्वत्पादभक्त्या वयम् निर्वृताः ॥३०॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है । संसार की रक्षा करने के लिए आप शुद्ध सत्त्वमय मङ्गल विग्रह धारण करते है । भाग्यवशात् संसार को कष्ट देने वाला यह हिरण्याक्ष मारा गया । आपके चरणों की भक्ति करने के कारण ही हमलोगों को सुख शान्ति की प्राप्ति हुई है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अखिलयज्ञानां तन्तवे विस्ताराय कारणायेति वा । अरुंतुदो मर्मभेत्ता ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आप सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले होने से उनके कारण स्वरूप है । अरुन्तुद का अर्थ मर्मस्थल का भेदन करने वाला ॥३०॥

मैत्रेय उवाच

एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ।
जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥३१॥

अन्वयः— एवम् असह्यविक्रमं हिरण्याक्षं सादयित्वा आदिसूकरः हरिः पुष्करविष्टरादिभिः समीडितः अखण्डितोत्सवं लोकं जगाम ॥३१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी महापराक्रमी हिरण्याक्ष का इस प्रकार से वध करके आदि वाराह श्रीहरि ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए अपने उस लोक में चले गये जहाँ पर निरन्तर अखण्ड रूप से महोत्सव हुआ करता है॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सादयित्वा हत्वेत्यर्थः । पुष्करविष्टरादिभिर्ब्रह्मादिभिः संस्तुतः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मूल के सादयित्वा पद का अर्थ है मारकर पुष्करविष्टर ब्रह्माजी का नाम है । ब्रह्माजी के साथ जो देवता और देवगण थे वे श्रीभगवान् के अपने लोक में जाते समय उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३१॥

मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।
यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥

अन्वयः— हे सुमित्र ! मया कृतावतारस्य हरेः चेष्टितम् यथा च उदार विक्रमः हिरयाक्ष महामृधे यथा क्रीडनवत् निराकृतः यथा अनूक्तम् त अवादि ॥३२॥

अनुवाद— हे मित्र विदुर ! वराहावतार धारण करके श्रीभगवान् ने जिन लीलाओं को किया तथा महापराक्रमी

हिरण्याक्ष को उन्होंने जैसे महासंग्राम में खिलौने के समान मार दिया उसे मैंने अपने गुरुजनों से जैसा सुना था उसी तरह से आपको सुना दिया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यथाऽनूक्तं गुरूक्तिमनतिक्रम्य मयाऽवादि तव कथितम् । हे सुमित्र । यथा येन प्रकारेण ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मैत्रेयजी ने विदुरजी को सुमित्र शब्द से सम्बोधित किया है । उन्होंने कहा कि जैसा मैंने अपने गुरुजनों से सुना है वैसा आपको वराह भगवान् की चेष्टाओं को तथा हिरण्याक्ष वध को सुना दिया ॥३२॥

सूत उवाच

इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् । क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥३३॥

अन्वयः— हे द्विज ! इति कौषारवाख्यातां भगवत् कथां आश्रुत्य महाभागवतः क्षत्ता परं आनन्दं लेभे ॥३३॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकजी इस तरह से मैत्रेयजी द्वारा कही गयी वराह भगवान् की कथा को सुनकर महाभागवत विदुरजी को परम् आनन्द की प्राप्ति हुयी ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

हे द्विज शौनक ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में द्विज शब्द से महर्षि शौनक को सूतजी ने सम्बोधित किया है ॥३३॥

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् । उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥३४॥

अन्वयः— अन्येषां पुण्यश्लोकानाम् उद्दामयशसां सताम् उपश्रुत्य मोदो भवेत् किं पुनः श्रीवत्साङ्कस्य ॥३४॥

अनुवाद— जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति वाले महापुरुषों की कथाओं को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है। तो फिर श्रीवत्स चिह्न से मण्डित श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द के विषय में क्या कहना है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कथामुपश्रुत्य ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति महापुरुषों की कथा को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है तो फिर श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द की प्राप्ति के विषय में क्या कहना हैं ॥३४॥

यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् । क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ॥३५॥

अन्वयः— यः झषग्रस्त— चरणाम्बुजम् ध्यायन्तं गजेन्द्रं क्रोशन्तीनां केरणूनाम् द्रुतम् कृच्छ्रतः अमोचयत् ॥३५॥

अनुवाद— घड़ियाल के द्वारा पकड़ लिए जाने पर गजेन्द्र श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान कर रहा था और हस्तिनियाँ दुःख से व्याकुल होकर चिग्घाड़ रही थी उस समय जो भगवान् शीघ्र ही गजेन्द्र के कष्ट से मुक्त कर दिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिमात्रेण पशूनामपि सुलभोऽन्यथा देवानामपि दुर्लभ इति तत्कथाश्रवणे कस्यानन्दो न स्यादित्याह–य इति द्वाभ्याम्। झषो ग्राहः । क्रोशन्तीनां सतीनामिति कृपालुत्वमुक्तम् । सङ्कटादमोचयत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् केवल भक्तिमात्र से पशुओं के लिए भी सुलभ हो जाते हैं अन्यथा देवताओं के भी लिए वे दुर्लभ है । ऐसे श्रीभगवान् की कथा सुनने से किसको आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी ? इस बात को **यो गजेन्द इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं । झष घड़ियाल को कहते हैं । गजेन्द्र को ग्राहग्रस्त देखमकर उसकी हस्तिनयाँ दुःखी होकर चिग्घाड़ रही थीं । उस गजेन्द्र पर श्रीभगवान् कृपा किए और उसको सङ्कट से मुक्त किए ॥३५॥

तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः । कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥३६॥

अन्वयः— ऋजुभिः अनन्यशरणैः नृभिः सुखाराध्यम् असाधुभिः दुराराध्यम् कः कृतज्ञः न सेवेत ॥३६॥

अनुवाद— जो संसार के लोगों से निराश होकर एकमात्र श्रीभगवान् को ही अपना रक्षक मानकर उनकी शरणागति करते हैं ऐसे ऋजु बुद्धि वाले मनुष्यों से भगवान् आसानी से प्रसन्न हो जाते हैं और दुष्ट पुरुषों के लिए जो परमात्मा दुराराध्य हैं, ऐसे श्रीभगवान् की आराधना कौन कृतज्ञ पुरुष नहीं करेगा ?॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ।
शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥३७॥

अन्वयः— हे द्विजाः ! यो वै कारणसूकरात्मनः हिरण्याक्षवधं महद्भुतं विक्रीडितम् शृणोति, गायति, अनुमोदते अञ्जसा ब्रह्मवधादपि विमुच्यते ॥३७॥

अनुवाद— हे महर्षियों ! जो मनुष्य आदिवाराह भगवान् के अत्यन्त अद्भुत हिरण्याक्षवध नामक क्रीडा को सुनता है, गायन करता है और उसका अनुमोदन करता है वह आसानी से ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कारणेन पृथिव्युद्धरणादिना सूकररूपस्य हरेः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी आदि का उद्धार करने के लिए वराहरूप धारण करने वाले श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध एक अद्भुत क्रीडा थी । इसको सुनने वाला, कहने वाला तथा इसका समर्थन करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ॥३७॥

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्षवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग एतत् महापुण्यम् अलं पवित्रम् धन्यं यशस्यम् आयुराशिषाम् पदम् युद्धिप्राणेन्द्रियाणां शौर्यवर्धनं शृण्वताम् अन्ते नारायणो गतिः ॥३८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का यह चरित्र अत्यन्त पुण्यमय पवित्र धन्य, यश तथा आयु को प्रदान करने वाला

युद्ध में प्राणों और इन्द्रियों के शौर्य को बढ़ाने वाला है । इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एतद्धरेर्विक्रीडितं शृण्वतामन्ते श्रीनारायणो गतिर्भवति । महापुण्यं स्वर्गादिप्रदम् । अलं पवित्रमतिशयेन शोधकम् । धन्यं धनावहम्। यशस्यं कीर्तिकरम्। आयुषश्चाशिषां च पदं स्थानं परित्राणं वा प्राणानामिन्द्रियाणां च पदम् । अङ्ग हे विदुर।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध की जो लीला है, इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है । यह आख्यान स्वर्गादि लोकों को प्रदान करने वाला है । यह अत्यन्त स्वच्छ बना देने वाला है । धन्य है अर्थात् धन प्रदान करने वाला है, यश प्रदान करने वाला है आयु को बढ़ाने वाला और आशिषाम् (कामनाओं) को पूर्ण करने वाला है । यह प्राणों तथा इन्द्रियों का पद स्थान है । इस श्लोक मे अङ्गशब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा की गयी अनेक प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

शौनक उवाच

महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः । कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ।।१।।

अन्वयः— हे सौते ! महीं प्रतिष्ठाम् अध्यस्य स्वायम्भुवमनुः अवरजन्मनाम् मार्गाय कानि द्वाराणि अन्वतिष्ठत् ।।१।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे सूतजी ! पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके स्वायम्भुव मनु ने अपने पश्चात् उत्पन्न होने वाली सन्तान को उत्पन्न करने के लिए किन उपायों को किया ?।।१।।

भावार्थ दीपिका

विंशे बराहजन्मदिव्यवधानादथादितः । सर्गोऽनुस्मार्यते वक्तुमन्वयं प्रस्तुतं मनोः ।।१।। प्रतिष्ठां स्थानम् । अध्यस्य प्राप्य। सौते सूतस्य रोमहर्षणस्य पुत्र । अवरमर्वाचीनं जन्म येषां तेषां ईश्वरे लीनानां मार्गाय निर्गमाय कानि द्वाराणि कृतवान्। अर्वाचीनान्प्राणिनः कैरुपायैः सृष्टवानित्यर्थः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

बीच में वराह जन्म आदि की कथा का व्यवधान आ जाने के कारण बीसवें अध्याय में प्रस्तुत मनु की सन्तान का वर्णन करने के लिए सृष्टि का स्मरण कराये हैं ।।१।। **प्रतिष्ठा** का अर्थ आधार है, **अध्यस्य** अर्थात्

प्राप्त करके । **सौते** पद के द्वारा रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा को सम्बोधित किया गया है । शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा कि पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके, स्वायम्भुव मनु के पश्चात् जन्म लेने वाले जो प्रलय काल में परमात्मा में लीन हो गये थे, उन जीवों को उत्पन्न करने के लिए स्वायम्भुव मनु ने किन उपायों को किया॥१॥

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् । यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥२॥

अन्वयः— क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्य ऐकान्तिकः सुहृत् यः कृष्णे अघवान् इति सापत्यम् अग्रजं तत्याज ॥२॥

अनुवाद— विदुरजी महान् भगवद्भक्त और उनके सुहृद् थे इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को उनके पुत्रों के साथ वे त्याग दिए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

विदुरमैत्रेयसंवादेनैवैतज्ज्ञास्यत इति तमेव संवादं प्रष्टुमाह- क्षत्तेति पञ्चभिः । श्रीकृष्णसुहृत्त्वे हेतुः- य इति । दुर्योधनादिभिरपत्यैः सहितमग्रजं धृराष्ट्रमघवान्कृतापराध इति हेतोः श्रीकृष्णोक्तमन्त्रानादरात् यः तत्याज ॥२॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि इस बात को विदुर मैत्रेय संवाद के द्वारा ही जाना जा सकता है, अतएव उस संवाद को ही पूछने के लिए **क्षत्ता० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से कहते हैं । **श्रीकृष्णसुहृत्त्वे० इत्यादि**- विदुरजी भगवान् श्रीकृष्ण के सुहृद् थे उसका कारण बतलाते हुए वे कहते हैं कि धृतराष्ट्र भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करते थे अतएव विदुरजी ने धृतराष्ट्र को और उनके पुत्रों को भी त्याग दिया । क्योंकि धृतराष्ट्र ने भगवान् श्रीकृष्ण की बातों का अनादर कर दिया था ॥२॥

द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः । सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥

अन्वयः— द्वैपायनात् अनवरः महित्वे तस्य देहजः सर्वात्मना कृष्णं श्रितः तत्परान् च अनुव्रतः ॥३॥

अनुवाद— वे कृष्ण द्वैपायन के पुत्र थे और महिमा में वे किसी भी प्रकार से कम नही थे । वे हर प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित थे और भगवान् कृष्ण के भक्तों के अनुगामी थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अनवरोऽन्यूनः । महित्वे महिम्नि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अनवर अर्थात् समान, महित्वे अर्थात् महिमा के विषय में । विदुरजी महर्षि द्वैपायन के ही पुत्र थे और उनकी महिमा भी उनके ही समान थी ॥३॥

किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया । उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

अन्वयः— तीर्थ सेवया विरजाः कुशावर्ते आसीनम् तत्त्ववित्तमम् मैत्रेयम् उपगम्य किम् अन्वपृच्छत् ॥४॥

अनुवाद— तीर्थों का सेवन करने के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, कुशावर्त (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ मैत्रेयजी के पास जाकर उन्होंने क्या पूछा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कुशावर्ते गङ्गाद्वारे ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हरिद्वार का ही नाम कुशावर्त और गङ्गाद्वार है ॥४॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः । आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५॥

अन्वयः— हे सूत ! तयोः संबदतोः गाङ्गाः आपः इव अघघ्नीः हरेः पादाम्बुजाश्रयाः अमलाः हि कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

अनुवाद— हे सूतजी उन दोनों के संवाद में पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गाजी के जल के ही समान श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली निर्मल कथाएँ अवश्य हुयी होंगी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यत्किमपि पृच्छतु किं तवेति चेत्तत्राह-तयोरिति । अघघ्नीरघघ्नयोः नूनं कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वे चाहे जो कुछ भी पूछे हों उससे आपको क्या लेना-देना है, तो इसका उत्तर है कि उन दोनों के संवाद के समय श्रीगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली पापों को विनष्ट करने वाली कथायें अवश्य हुयी होंगी जिस तरह भगवान् के चरणों से सम्बनध रखने वाली गङ्गाजी का जल पापों का विनाश करने वाला है, उसी तरह श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ भी पापों का विनाश करने वाली हैं ॥५॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः । रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥६॥

अन्वयः— ते भद्रं कीर्तन्योदारकर्मणः ताः कथाः नः वर्णय कः न रसज्ञः हरिलीलामृतं पिबन् तृप्येत् ॥६॥

अनुवाद— सूतजी आपका मङ्गल हो, उदार चरित्र वाले श्रीहरि के कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली उन कथाओं को आप हमलोगों को सुनाइये । कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो श्रीहरि के लीलामृत का पान करने से तृप्त हो जायेगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कीर्तन्यानि कीर्तनार्हाण्युदाराणि कर्माणि यस्य हरेः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के जितने भी चरित हैं वे सबके सब कीर्तन करने योग्य और औदार्यगुण सम्पन्न हैं ॥६॥

एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः । भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥

अन्वयः— एवम् नैषिषायनैः ऋषिभिः पृष्टः उग्रश्रवाः भगवति अर्पिताध्यात्मः श्रूयतामिति तान् आह ॥७॥

अनुवाद— इस तरह से नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत श्रीभगवान् ने अपने चित्त को लगाकर कहा कि आप लोग सुनें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवमिति व्यासवाक्यम् । उग्रश्रवा रोमहर्षणपुत्र । नैमिषमयनमाश्रयो येषाम् अर्पितमध्यात्मं मनो येन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि यह श्लोक व्यासजी का वाक्य है । रोमहर्षण सूत के पुत्र थे उग्रश्रवा सूत । नैमिषायनैः पद का अर्थ है नैमिषारण्य में रहने वाले, भगवत्यर्पिताध्यात्म श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाने वाले । अर्थात् व्यासजी ने बतलाया कि नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत ने श्रीभगवान् में अपने मन को लगाकर कहा कि आपलोग सुनिये ॥७॥

सूत उवाच

हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ।
लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥

अन्वयः— स्वमायया धृतक्रोडतनोः हरे रसातलात् गोरुद्धरणं अवज्ञया हिरण्याक्षहतं लीलां निशम्य संजातहर्षः भारतः मुनिमाह ॥८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— अपनी माया के द्वारा सूकर शरीर धारण करने वाले श्रीहरि की रसातल से भूमि के उद्धार की तथा तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष के वध की लीला को सुनकर विदुरजी को बहुत अधिक प्रसन्नता हुयी और उन्होंने मैत्रेयजी से कहा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

गोरुद्धरणं लीलां हिरण्याक्षं चावज्ञया हतं निशम्य । भारतो विदुरः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वे जब मैत्रेय महर्षि के मुख से सुने कि श्रीगवान् ने अपनी माया से अपना सूकर का शरीर बना लिया और उन्होंने लीला करते हुए पृथिवी का रसातल से उद्धार किया और तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष का वध किया। यह सुनकर उनको बड़ी ही प्रसन्नता हुयी और उन्होंने पुनः महर्षि मैत्रेय से पूछा ॥८॥

विदुर उवाच

प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् । किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥

अन्वयः— हे अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्मन् प्रजासर्गे प्रजापतिपतिः प्रजापतीन् सृष्ट्वा किमारभत मे प्रब्रूहि ॥९॥

अनुवाद— हे परोक्ष विषयों को भी जानने वाले ब्रह्मन् प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने मरीचि आदि प्रजापतियों की सृष्टि करके प्रजासर्ग में सृष्टि को बढ़ाने के लिए क्या किया ? यह मुझे आप बतलायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वमव्यक्तमार्गवित् । ब्रह्मणो वा विशेषणम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेयजी को अव्यक्त मार्गवित् कहा है । अर्थात् आप श्रीभगवान् की प्राप्ति के मार्ग को जानते हैं । और हमलोगों को अज्ञात वस्तु को भी आप जानते हैं । यह अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्माजी का विशेषण होगा तो अर्थ होगा कि ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग को जानने वाले ॥९॥

ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः । ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥१०॥

अन्वयः— ये मरीच्यादयः विप्राः यः तु स्वायम्भुवः मनुः ते वै ब्रह्मणः आदेशात् कथम् एतद् अभावयन् ॥१०॥

अनुवाद— मरीचि आदि मुनीश्वरों ने तथा स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके किस प्रकार से सृष्टि को बढ़ाने का काम किए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एतज्जगत् । अभावयन्नुत्पादयामासुः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

एतदभवायन् का अर्थ कि इस जगत् को उन लोगों ने कैसे उत्पन्न किया ?॥१०॥

सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु । आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥

अन्वयः— सद्वितीयाः किम् असृजन् ? उत कर्मसुस्वतंत्राः ? आहोस्वित् सर्वे संहताः इदं समकल्पयन् स्म ॥११॥

अनुवाद— क्या वे लोग पत्नियों का सहारा लेकर इस जगत् की सृष्टि किये अथवा अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर अथवा सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

सद्वितीयाः सभार्याः । स्वतन्त्रा भार्यानपेक्षाः कर्मसु प्रजासर्गादिषु । संहताः परस्परापेक्षाः । इदं जगत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नियों के साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि किये ? या पत्नी निरपेक्ष रहकर अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर ? या सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

मैत्रेय उवाच

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च । जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥१२॥

अन्वयः— दुर्वितर्क्येण दैवेन परेण अनिमिषेण च जातक्षोभात् भगवतः गुणत्रयात् महान् आसीत् ॥१२॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी जिसकी गति को जानना अत्यन्त कठिन है उस दैव (जीवादृष्ट) प्रकृति के नियन्ता पुरुष तथा काल इन तीन हेतुओं से तथा श्रीभगवान् के सन्निधान से त्रिगुणात्मिका प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुयी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मा किमारभतेति प्रश्नस्य यक्षादीन् सृष्टवानित्युत्तरं वक्तुं पूर्वोक्तां सृष्टिमनुस्तारयति–दैवेनेति सप्तभिः । मन्वादिप्रश्नानां तूत्तराध्यायमारभ्योत्तरं भविष्यति । दुर्वितर्क्येण दैवेन जीवादृष्टेन, परेण प्रकृत्यधिष्ठात्रा महापुरुषेणानिमिषेण कालेन च हेतुना भगवतो निर्विकाराज्जातक्षोभं यद्गुणत्रयं प्रधानं तस्मान्महानासीत् । तदुक्तं तन्त्रे **विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ।**' इति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने यह जो पूछा है कि सृष्टि को बढाने के लिए ब्रह्माजी ने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर है कि उन्होंने यक्ष इत्यादि की सृष्टि की, इस उत्तर को बतलाने के लिए वे पूर्ववर्णित सृष्टि को पुनः **दैवेन इत्यादि** सात श्लोकों से याद दिलाते हैं । मनु आदि के विषय में जो उन्होंने प्रश्न किया है उसका उत्तर तो इस अध्याय के पश्चात् वाले अध्याय से दिया जायेगा । जीवों का अदृष्ट दुर्वितक्य है, उसके विषय में कुछ भी नही कहा जा सकता, प्रकृति के नियामक महापुरुष और काल इन तीन कारणों से निर्विकार श्रीभगवान् के सान्निधान से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे त्रिगुणात्मिका प्रकृति से महान् की उत्पत्ति हुयी । इसी बात को विष्णुतन्त्र में कहा भी गया है **विष्णोस्तुत्रीणि० इत्यादि** अर्थात् भगवान् विष्णु के तीन रूप हैं । उन तीनों को पुरुष कहा गया है। पहला महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है, दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है और तीसरा रूप सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । उन तीनों रूपों को जानने वाला संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१२॥

रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् । जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥

अन्वयः— दैवचोदितात् रजः प्रधानात् महतः त्रिलिङ्गः, जातः भूतादिः वियदादीनि पञ्चशः ससर्ज ॥१३॥

अनुवाद— दैव की प्रेरणा से प्रेरित रजःप्रधान महत्तत्त्व से सात्त्विक, राजस एवं तामस ये तीन प्रकार के अहङ्कार उत्पन्न हुए और उसने पाँच तत्त्वों के पाँच वर्गों को उत्पन्न किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

महतो जातो भूतादिरहंकारस्त्रिलिङ्गस्त्रिगुणः । रजःप्रधानादिति स्वतः सत्त्वप्रधानस्यापि महतोऽहंकारोत्पत्तिकाले कार्यानुरूपं रजःप्रधानत्वं भवतीति भावः । पञ्चशः तन्मात्राणि महाभूतानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि तत्तद्देवताश्चेति पञ्च पञ्च ससर्जेत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उस महान् से उत्पन्न अहङ्कार त्रिगुणात्मक हुआ । सात्त्विक, राजस एवं तामस । यद्यपि महत्तत्त्व स्वाभाविक रूप से सत्त्व प्रधान है फिर भी अहङ्कार की उत्पत्ति के समय वह रजः प्रधान हो जाता है । उस अहङ्कार ने पाँच-पाँच के वर्गों की सृष्टि की । वे हैं पञ्चतन्मात्र, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और उनके पाँच अधिष्ठातृ देवता ॥१३॥

तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् । संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥१४॥

अन्वयः— तानि च एकैकशः भौतिकम् स्रष्टुम् असमर्थानि दैव योगेन संहत्य हैमम् अण्डम् अवासृजन् ॥१४॥

अनुवाद— वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे दैवयोग से परमात्मा की शक्ति से एक साथ मिलकर वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले ब्रह्माण्ड की रचना किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भौतिकं हैममण्डमेकैकशः प्रत्येकं स्रष्टुमसमर्थानि सन्ति संहत्य ससृजुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर बह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे अतएव परमात्मा की शक्ति से प्रेरित होकर परस्पर में एक दूसरे से मिल गये और ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए ॥१४॥

सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः । साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥

अन्वयः— सः निरात्मकः आण्डकोशः अब्धिसलिले साग्रं वर्षसाहस्रम् अशयिष्टतम् ईश्वरः अवात्सीत् ॥१५॥

अनुवाद— वह चैतन्य रहित ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल में हजार वर्ष से भी अधिक समय तक पड़ा रहा उसके पश्चात् उसमें श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अन्ववात्सीदधिष्ठितवान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रवेश किए ॥१५॥

तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति । सर्वजीवनिकायैको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥१६॥

अन्वयः— तस्य नाभेः सहस्रार्कोरुदीधिति सर्वजीव निकायौकः पदम् अभूत् यत्र स्वयम् स्वराट् अभूत् ॥१६॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् की नाभि से हजारों सूर्यों के समान देदीप्यमान तथा सभी जीव समूह के आश्रय भूत एक कमल पैदा हुआ । उसी से स्वयं ब्रह्माजी का भी अविर्भाव हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रार्कार्णामिवोरुर्दीधितिर्यस्य तत् । सर्वजीवनिकायानामोकः स्थानं पद्मम् । स्वराट् ब्रह्मा ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उस कमल की कान्ति हजारों सूर्य के समान अत्यधिक थी वह सभी जीवों के समूह का एकमात्र आश्रय था । उसी कमल से ब्रह्माजी का अविर्भाव हुआ । ब्रह्माजी का ही नाम स्वराट् है ॥१६॥

सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये । लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥

अन्वयः— यः सलिलाशये शेते तेन भगवता अनुविष्टः सः स्वया संस्थया यथापूर्वं लोकसंस्थां निर्ममे ॥१७॥

अनुवाद— जो भगवान् जल के भीतर साते हैं वे भगवान् जब ब्रह्माजी के भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किये तो वे पूर्वकल्प में अपने ही द्वारा निश्चित किए गये नाम रूप व्यवस्था के अनुसार लोकों की रचना करने लगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

यः सलिलाशये गर्भोदकस्यान्तः शेते तेन भगवताऽनुविष्टोऽधिष्ठितः सन् । स स्वराट् । स्वया संस्थया नामरूपादिक्रमेण ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जो भगवान् गर्भोदक के भीतर शयन करते हैं उनके द्वारा अधिष्ठित होने पर ब्रह्माजी नाम रूप आदि के क्रम से अपने ही द्वरा निश्चित की गयी व्यवस्था के क्रम से सृष्टि करने लगे ॥१७॥

ससर्ज छाययाऽविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः । तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥

अन्वयः— अग्रतः छायया पञ्चपर्वाणम् ससर्ज । तामिस्रम्, अन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥

अनुवाद— सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अपनी छाया से तामिस्र अन्धतामिस्र, तम, महातम और मोह की सृष्टि की॥१८॥

भावार्थ दीपिका

छाया प्रभाप्रतियोगिनी तथा । अबुध्येत्यर्थः । 'यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभोः' इत्युक्तत्वात् । महातम इति महामोहः । स्वरूप निर्देशमात्रविवक्षया मोह इति प्रथमाप्रयोगः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रकाश के अभाव को छाया कहते हैं । अर्थात् अज्ञान के द्वारा । कहा भी जा चुका है **यस्त्वबद्धि कृतः प्रभोः** । अर्थात् जो ब्रह्माजी के जो अज्ञान से उत्पन्न है । महातम शब्द से महामोह को कहा गया है । अब प्रश्न होता है कि यह सृष्टि का प्रकरण है अतएव मोह इत्यादि में द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए किन्तु सर्वत्र प्रथमा विभक्ति क्यों है ? तो इसके उत्तर में श्रीधर स्वामी कहते है कि केवल स्वरूप का ही निर्देश करना विवक्षित होने के कारण प्रथमान्त निर्देश किया गया है ॥१८॥

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् । जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥१९॥

अन्वयः— तमोमयम् आत्मनः कायम् न अभिनन्दन् विससर्ज, क्षुतृत्विटसमुदभवाम् रात्रिं यक्षरक्षांसि जगृहुः ॥१९॥

अनुवाद— अन्धकार स्वरूप वह शरीर ब्रह्माजी को अच्छा नहीं लगा अतएव उन्होंने उस शरीर का परित्याग कर दिया । उसके बाद परित्यक्त रात्रि रूप शरीर जिससे भूख और प्यास की उत्पत्ति हुयी उसको यक्षों ओर राक्षसों ने स्वीकार कर लिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमोक्तां साधारणां सृष्टिमनूद्य केनचिद्विशेषेणासाधारणां सृष्टिमाह- विससर्जेत्यादिना यावत्समाप्ति । तद्विसृष्टं कायं रात्रिरूपं तत एव जातानि यक्षरक्षांसि जगृहुः । क्षुतृषोः समुद्भवो यस्यां ताम् । अत्र च **'याऽस्य सा तनूरासीत् तामपाहत सा तमिस्राभवत'** इत्यादिश्रुतिरनुसन्धेया ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है उस साधारण सृष्टि का अनुवाद करके कुछ विशेषताओं से विशिष्ट आसाधारण सृष्टि का वर्णन **विससर्ज इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया गया है । जिस शरीर का ब्रह्माजी ने परित्याग कर दिया वह रात्रि रूप शरीर था । उसी से उत्पन्न यक्ष और राक्षस उस शरीर को ग्रहण कर लिए । क्षुत्तृट्समुद्भवाम् का विग्रह है । जिसमें भूख और प्यास की उत्पत्ति होती है ऐसी रात्रि रूपी शरीर को । इस विषय में **यास्य तानूरासीत्** अर्थात् ब्रह्माजी का जो शरीर था उसको उन्होंने त्याग दिया वही रात्रि हो गयी। इस श्रुति का अनुसन्धान करना चाहिए ॥१९॥

क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टस्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः । मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥२०॥

अन्वयः— क्षुततृड्भ्याम् उपसृष्टाः ते तं जाग्धुम् अभिदुद्रुवुः क्षातृडर्दिता ते एनं मा रक्षत जक्षध्वम् इत्युचुः ॥२०॥

अनुवाद— भूख तथा प्यास से युक्त वे ब्रह्माजी को खा जाने के लिए दौड़े । भूख तथा प्यास से व्याकुल उन सबों को राक्षसों ने कहा इसे बचाओ मत खाओ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

उपसृष्टा अभिभूताः । जग्धुमत्तुं भक्षयितुम् । यतो वयं क्षुत्तृड्भ्यामर्दिता अत एनं पितेति कृपया मा रक्षतेत्येके । अन्ये तु जक्षध्वं भक्षयतेति ब्रुवन्तः । जक्ष भक्षहसनयोरिति धातुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उपसृष्टः पद का अर्थ है, अभिभूत, **जग्धुम्** का अर्थ है खा जाने के लिए । उन सबों ने कहा हमलोग चूकि भूख और प्यास से व्याकुल हैं अतएव ये हमारे पिता हैं यह सोचकर कृपा पूर्वक इनकी रक्षा मत करो इस तरह के एक प्रकार के राक्षसों जीवों ने कहा दूसरे तरह के जीवों ने कह खा जाओ जक्ष और भक्ष धातु खाने के अर्थ में होते हैं ॥२०॥

देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत । अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥२१॥

अन्वयः— संविग्नो देवः तान् आह मां मा जक्षत रक्षत । अहो यक्षरक्षांसि यूयं मे प्रजा बभूविथ ॥२१॥

अनुवाद— उन सबों से भयभीत होकर ब्रह्माजी ने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्ष राक्षसों तुम लेग मेरी सन्तान हो ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

देवो ब्रह्मा संविग्नो भीतः सन्मां मा जक्षत मा भक्षयत, किंतु रक्षत । अहो हे यक्षरक्षांसि, यूयं मे प्रजाः सुता बभूविथ जाताः स्थ एवमुग्रस्वभावा यक्षराक्षसा जाता इत्यर्थः । तत्र ये जक्षध्वमित्यूचुस्ते यक्षाः ये तु मा रक्षतेति ते राक्षसा इति ज्ञेयम्। एतच्च तिर्यगादितामससर्गस्याप्युपलक्षणम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों को देखकर ब्रह्माजी डर गये और उन्होंने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्षों और राक्षसों तुमलोग मेरी सन्तान हो । इस तरह से उग्र स्वभाव वाले यक्ष और राक्षस हो गये । जिन सबों

ने खा जाओ यह कहा वे यक्ष हो गये और जिन सबों ने कहा बचाओ मत खाओ वे राक्षस हो गये । यह तिर्यक् इत्यादि तामस सृष्टि का भी उपलक्षण है ॥२१॥

देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् । ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥

अन्वयः— प्रभया दीव्यन् या या देवताः ताः प्रमुखतः असृजत् देवयन्तः ते विसृष्टां तां प्रभम् अहः अहार्षुः ॥२२॥

अनुवाद— पुनः ब्रह्माजी प्रभा से देदीप्यमान होकर जो मुख्य देवता थे उनकी सृष्टि किए । क्रीडा करते हुए उन सबों ने ब्रह्माजी के त्यागने पर दिन रूप प्रकाशमय उस शरीर को ग्रहण कर लिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रभया दीव्यन् द्योतमानो या या देवता द्युतिमत्यः सात्त्विक्यस्तास्ताः प्रमुखतः प्राधान्येनासृजत् । ते देवाः । देवता इति स्त्रीत्वेन निर्दिष्टानामप्यर्थमात्रविवक्षया त इति पुंस्त्वेन प्रतिनिर्देश । एवं यक्षरक्षांसीत्यत्रापि ज्ञेयम् । तेन विसृष्टां त्यक्तां प्रभामहः दिव्यरूपां सतीं देवयन्तः क्रीडयन्तोऽहार्षुर्जगृहुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सात्त्विक प्रभा से देदीप्यमान ब्रह्माजी ने जो-जो सात्त्विक देवता थे उन सबों की मुख्य रूप से सृष्टि की। देवों का यद्यपि देवता इस स्त्रीलिङ्ग शब्द से निर्देश किया जाता है फिर भी केवल अर्थ की विवक्षा से पुल्लिङ्ग पद से निर्देश किया गया है । इसी तरह से यक्षरक्षांसि में भी अर्थ मात्र की ही विवक्षा से प्रति निर्देश समझना चाहिए। ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त दिन रूपी प्रभामय शरीर को देवताओं ने क्रीडा करते हुए ग्रहण कर लिया ॥२२॥

देवोऽदेवान् जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् । त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥

अन्वयः— देवः जघनतः अदेवान् अतिलोलुपान् सृजतिस्म ते लोलुपतया एनं मैथुनाय अभिपेदिरे ॥२३॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने जघन प्रदेश से कामासक्त असुरों को उत्पन्न किया । अत्यन्त कामलोलुप होने के कारण उत्पन्न होते ही वे सब मैथुन करने के लिए ब्रह्माजी के पास आये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अदेवानितिच्छेदः । '**स जघनादसुरानसृजत**' इत श्रुतेः । अतिलोलुपान् स्त्रीलम्पटान् । अभिपेदिरे प्राप्ताः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

देवोऽदेवान् में अदेवान् यह पद विभाग करना चाहिए । ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की । श्रुति भी कहती है **सजघनादसुरान् असृजत** । अर्थात् ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की। वे स्त्री लम्पट थे और वे मैथुन के लिए ब्रह्माजी की ओर दौड़े ॥२३॥

ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः । अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥

अन्वयः— ततः स भगवान् हसन् निरपत्रपैः असुरैः अन्वीयमानः भीतः परापतत् ॥२४॥

अनुवाद— यह देखकर ब्रह्माजी हँस पड़े और उसके पश्चात् वे निर्लज्ज असुरों के द्वारा पीछा किए जाते हुए डर कर भागे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

परापतदपलायत ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

परापतत् पद का अर्थ है भाग चले ॥२४॥

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् । अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥

अन्वयः— भक्तानाम् अनुग्रहाय अनुरूपात्मदर्शनम् वरदं प्रपन्नार्तिहरं वरदं हरिम् उपव्रज्य प्राह ॥२५॥

अनुवाद— भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी भावना के अनुसार दर्शन देने वाले वरदान देने वाले तथा शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले श्रीहरि के पास जाकर कहें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भक्तेच्छानुरूपमात्मानं दर्शयतीति तथा तमुपव्रज्य ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जो भगवान् भक्तों की इच्छा के अनुसार अपना दर्शन देते हैं, ऐसे भगवान् के पास जाकर ब्रह्माजी ने कहा ॥२५॥

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः । ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

अन्वयः— हे भगवन् मां पाहि ते प्रेषणेन प्रजाः असृजं हे प्रभो इमाः पापाः मां जभितुम् उपक्रामन्ति ॥२६॥

अनुवाद— हे भगवन् । आप मेरी रक्षा करें आपकी ही आज्ञा से मैंने प्रजाओं की सृष्टि की । वे सब पाप में प्रवृत्त होकर मैथुन के द्वारा मेरा उपभोग करना चाहते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पाहीति द्वाभ्यां प्रार्थितवान् । यभितुं मैथुनेन धर्षयितुम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पाहि० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की । **जभितुम्** का अर्थ है मैथुन के द्वारा अभिभूत करने के लिए ॥२६॥

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः । त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥२७॥

अन्वयः— त्वम् एकः किल क्लिष्टानां लोकानां क्लेश नाशनः अनासन्नपदां तव त्वमेकः क्लेशदः ॥२७॥

अनुवाद— एक मात्र आपही दुःखी जीवों के दुःख को दूर करने वाले हैं और जो लोग आपके चरणों के शरण में नहीं आते हैं ऐसे लोगो को केवल आप ही दुःख देने वाले हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

लोकानां जनानाम् । तव अनासन्नावनाश्रितौ पादौ यैस्तेषाम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा कि एक मात्र आप ही दुःखी जीवों के कष्ट को दूर करते हैं और जो आपके चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं मानते हैं उन जीवों को आप ही कष्ट भी देते हैं ॥२७॥

सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः । विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

अन्वयः— विविक्ताध्यात्मदर्शनः सः अस्य कार्पण्यमवधार्य घोराम् आत्मतनुं विमुञ्च, इत्युक्तः विमुमोच ह ॥२८॥

अनुवाद— श्रीहरि दूसरे के मन की बातों को ठीक-ठीक जानते हैं ब्रह्माजी की आतुरता को देखकर उन्होंने कहा इस कलुषित शरीर का परित्याग कर दो । इस तरह से कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विविक्तमसन्दिग्धमध्यात्मदर्शनं परचित्तज्ञानं यस्य हरेः । घोरां कामकश्मलां स्वतनुं विमुञ्चेति उक्तवानिति शेषः । इत्युक्तश्च ब्रह्मा तां तनुं विमुमोच । सर्वत्र तनुत्यागो नाम तत्तन्मनोभावत्यागो विवक्षितः । ग्रहणं च तत्तद्भावापत्तिरिति द्रष्टव्यम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् दूसरे के मन की बात को असंदिग्ध रूप से जानते हैं । उन्होंने कहा कि तुम अपने इस कामकलुषित शरीर का त्याग कर दो । यह कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ।

सर्वत्रतनुत्यागोनाम० इत्यादि सर्वत्र जो शरीर त्यागने की बात कही गयी है उसका अभिप्राय है विभिन्न मनोभावों का परित्याग करना और शरीरों के ग्रहण का अर्थ है विभिन्न मनोभावों को स्वीकार करना ।।२८।।

तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् । काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसाम् ।।२९।।

अन्वयः— क्वणच्चरणाम्भोजां, मदविह्वललोचनाम् काञ्चीकलापविलसदुकूलच्छन्नदरोधसाम् ।।२९।।

अनुवाद— (ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं संध्या सुन्दरी के रूप में परिणत हो गया । उसी का वर्णन करते हैं) उसके चरणों के नूपुर बज रहे थे मद के कारण उसके नेत्र अलसाये से थे, करधनी से सुशोभित वस्त्र से उसकी कमर ढँकी हुयी थी ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

'साऽहोरात्रयोः सन्धिरभवत्' इति श्रुतेः । सा तेन विसृष्टा तनुः सायन्तनी सन्ध्या बभूव । सा च कामोद्रेकवेला । असुराश्च राजसत्वात्स्त्रीलम्पटाः । अतस्तां सन्ध्यामेव स्त्रियं कल्पयित्वा ते संमोहं प्राप्ता इत्याह– तामिति त्रिभिः । नूपुराभ्यां क्वणती चरणाम्भोजे यस्याः । मदेन विह्वले लोचने यस्याः । काञ्चीकलापेन विलसद्दुकूलं तेन छन्नं रोधः कटितटं यस्यास्ताम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वह शरीर दिन तथा रात्रि की सन्धि संध्या हो गयी । इस श्रुति के अनुसार ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं सन्ध्या बन गया । सन्ध्या की बेला कामोद्रेक की बेला होती है । असुर भी राजस स्वभाव वाले होने के कारण स्त्रीलम्पट होते हैं । अतएव उस संध्या को ही स्त्री मानकर वे मोहित हो गये इसी अर्थ का प्रतिपादन **ताम्० इत्यादि** तीन श्लोकों में किया गया है । उसके दोनों चरण कमलों में नूपुर का झनकार हो रहा था, मद के कारण उसके नेत्र विह्वल थे । करधनी से सुशोभित साड़ी से उस सन्ध्या सुन्दरी के कमर ढँके थे ।।२९।।

अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् । सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।

अन्वयः— अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्ग निरन्तरपयोधराम् सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।

अनुवाद— उसके उन्नत स्तन एक दूसरे से ऐसे सटे थे कि दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था। उसकी नाक और दन्तपंक्ति सुन्दर थी । वह मधुर-मधुर मुस्कुराती हुयी असुरों को देख रही थी ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यं श्लेषयोपमर्देन हेतुनोत्तुङ्गौ निरन्तरौ पयोधरौ यस्याः । सुद्विजां सुदतीम् । स्निग्धो हासो लीलावलोकनं च यस्याः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उसके उन्नत स्तन परस्पर में ऐसे सट गये थे कि उन दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था । उसकी दंतपंक्ति सुन्दर थी वह मधुर मुस्कान पूर्वक हावभाव से देखती थी ।।३०।।

गृह्णन्तीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् । उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

अन्वयः— व्रीडया आत्मानं गृह्णतीम् नीलालकवरूथिनीम् स्त्रियम् उपलभ्य धर्म असुरा संमुमुहुः ॥३१॥

अनुवाद— कालेकेशों से सुशोभित वह लज्जा के कारण अपने आँचल में ही सीमटी सी जा रही थीं हे विदुरजी ! ऐसी स्त्री को प्राप्त करके वे सभी असुर अत्यन्त मोहित हो गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

गृह्णन्तीं वस्त्राञ्चलेनावृण्वानाम् । नीलानामलकानां वरूथः स्तोमो विद्यते यस्याः । हे धर्म विदुर, तां स्त्रियमुपलभ्य मत्वा॥३१॥

भाव प्रकाशिका

गृह्णन्ती अर्थात् वह अपने वस्त्र के आँचल से मानों अपने को ढँक लेना चाहती थी । उसके केश समूह काले-काले थे । उस सुन्दरी को ही असुरों ने स्त्री मान लिया और मोहित हो गये । धर्म शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । धर्म ही विदुर के रूप में जन्म लिए थे ॥३१॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः । मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥

अन्वयः— अहो अस्याः रूपम्, अहो धैर्यम्, अहो अस्या नवं वयः कामयमानानाम् मध्ये अकामा इव विसर्पति ॥३२॥

अनुवाद— वे सब मन ही मन सोच रहे थे कि इसका कितना सुन्दर रूप है, इसका कितना अधिक धैर्य है और इसकी कैसी अच्छी जवानी है ? यह कामपीडित हमलोगों के बीच में काम रहित के समान विचर रही है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

संमूढानां विभावनाक्रममाह-अहो इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

संध्या सुन्दरी को देखकर मोहित हुए उन असुरों की कल्पना के प्रकार को **अहोरूपम्० इत्यादि** वाक्य के द्वारा बतलाया गया है ॥३२॥

वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् । अभिसंभाव्यविश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥३३॥

अन्वयः— तां प्रमदाकृतिम् संध्यां बहुधा वितर्कयन्तः अभिसंभाव्य कुमेधसः विश्रम्भात् पर्यपृच्छन् ॥३३॥

अनुवाद— स्त्री रूपिणी संध्या के विषय में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करके उसका अत्यधिक समादर करते हुए उन कुबुद्धि असुरों ने उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक पूछा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अभिसंभाव्य सत्कृत्य । विश्रम्भात्प्रणयात् । कुबुद्धयस्ते तां पप्रच्छुः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

असुरों ने उस संध्या सुन्दरी का सत्कार करके प्रेमपूर्वक उससे पूछा ॥३३॥

कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनि । रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥३४॥

अन्वयः— हे रम्भोरु कासि, कस्यासि, हेभामिनि अत्रते कः अर्थः ? रुपद्रविणपण्येन नः दुर्भगान् विबाधसे ॥३४॥

अनुवाद— हे सुन्दरी ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? तुम अपने इस अनर्घ्य रूप सम्पत्ति को दिखाकर और उसे नहीं देकर हम अभागों को तरसा रही हो ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कासीति त्रिभिः । कासि जात्या । कस्य वा कन्या । हे भामिनि कोपने, रूपमेव द्रविणमनर्घ्यं वस्तु तदेव पण्यं क्रयार्हं तेन तदसमर्पणेन नो विबाधसे ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

कासि इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा असुरों ने संध्या सुन्दरी से पूछा । तुम कौन हो ? अर्थात् तुम्हारी कौन सी जाति है ? किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारा रूप ही अनमोल सम्पत्ति है । वह ख़रीदने योग्य है, किन्तु तुम उसे समर्पित न करके हमलोगों को तरसा रही हो ॥३४॥

या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संदर्शनं तव । उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥३५॥

अन्वयः— हे अबले ! या वा काचित् त्वम् तव दर्शनं दिष्ट्या कन्दुकक्रीडया इक्षमाणानां मनः उत्सुनोषि ॥३५॥

अनुवाद— हे अबले तुम चाहे जो भी हो, हमलोगों को तुम्हारा दर्शन सौभाग्य की बात है । कन्दुक क्रीडा करती हुयी तुम हम देखने वालों के मन को मथ डाल रही हो ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

किं जातिकुलादिप्रश्नेन या वा काचिद्भव । दिष्ट्येदं तावद्भद्रं जातं यत्तव दर्शनम् । किंतु केवलं नो मन उत्सुनोषि विमथ्नासि ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारी जाति और कुल चाहे जो हो हमारे सौभाग्य से यह तुम्हारा कल्याणमय दर्शन हुआ है । किन्तु तुम केवल हमलोगों के मन को मथे जा रही हो ॥३५॥

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥३६॥

अन्वयः— हे शालिनि ! करतलेन पतत् प्रतङ्गं मुहुः घ्नन्त्या ते पादपद्मं नैकत्र जयति । बृहत् स्तनभारभीतं मध्यं विषीदति । ते अमला दृष्टिः शान्तेव सुशिखा समूहः ॥३६॥

अनुवाद— हे सुन्दरि ! जब तुम उच्छलते हुए गन्दे पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे चरण कमल एक स्थान पर न ही ठहरते हैं । बड़े स्तनों के भार से तुम्हारा कटिप्रदेश थक सा जाता है । तुम्हारी निर्मलदृष्टि शान्त सी हो जाती है । तुम्हारे ये केशपाश अत्यन्त मनोहर हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

क्षुभितचित्तानां वाक्यं नैकत्रेति । हे शालिनि श्लाघ्ये । एकत्र न जयति न स्थिरीभवति । यद्वा नैकत्रानेकगतिविलासेषु जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । पतत्पतङ्गमुच्छलन्तं कन्दुकम् । बृहतोः स्तनयोर्भाराद्भीतं तव कृशं मध्यं विषीदति श्राम्यति । शान्ता मन्थरेव प्रसरति । सुशिखासमूहः शोभनः केशकलापस्ते । पाठान्तरे सुशिखाः शोभनान्केशानवकीर्यमाणान्समूहः बधानेति । अत्र चास्तं गच्छन्सूर्य एव पतत्पतङ्गः, मेघविच्छेदो मध्यविषादः तारकारूपा दृष्टिः, तम एव केशा इत्याद्यूह्यम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यह श्लोक क्षुभितमन वाले असुरों का है । **हे शलिनि** अर्थात् हे प्रशंसनीय सन्ध्ये, जिस समय तुम उछलते गेंद पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे पैर एक स्थान पर नहीं रहते हैं । अथवा **नैकत्रजयति** का अर्थ है उस समय तुम्हारे पैरों में सर्वोत्कृष्ट गतिविलास होता है । पतत्पतङ्ग का अर्थ है उछलता हुआ गेन्द । विशाल

स्तनों के भार से तुम्हारी पतली कमर थक सी जाती है । तुम्हारी दृष्टि भी मन्दगति से प्रसृत होती है । तुम्हारे केशकलाप अत्यन्त सुन्दर हैं । जहाँ पर सुशिखसमूह यह पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा । अपने सुन्दर तथा बिखरे हुए केशों को तुम समेट लो । यहाँ डूबते हुए सूर्य ही पतत्पतङ्ग हैं । मेघों का विच्छेद ही मध्य का विषाद है। दृष्टि ही तारा रूप है। और अन्धकार ही संध्या सुन्दरी के केश है । इसी तरह से कल्पना करनी चाहिए ॥३६॥

इति सायन्तनीं सन्ध्यामसुराः प्रमदायतीम् । प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥

अन्वयः— इति प्रमदायतीम् प्रलोभयन्तीं सायन्तनीं संध्याम् स्त्रियम् मूढधियः असुराः जगृहुः ॥३७॥

अनुवाद— इस प्रकार से स्त्री रूप से प्रकट हुयी तथा अत्यधिक अपनी ओर आकृष्ट करती हुयी सायं कालीन सन्ध्या को स्त्री मानकर असुरों ने उसको स्वीकार कर लिया ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रमदेवाचरन्तीं स्त्रियं मत्वा जगृहुः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

स्त्री रत्न के समान आचरण करती हुयी सायं सन्ध्या को ही स्त्री जानकर असुरों ने ग्रहण कर लिया ॥३७॥

प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना । कान्त्या ससर्ज भगवान्गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥

अन्वयः— भगवान् भावगम्भीरं प्रहस्य आत्मानम् आत्मना जिघ्रन्त्या कान्त्या गन्धर्वाप्सरसां गणान् ससर्ज ॥३८॥

अनुवाद— ब्रह्माजी गम्भीर भाव से हँसकर अपनी कान्तिमयी मूर्ति जो अपने से ही अपने सौन्दर्य का आस्वादन करती थी उससे गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूह की सृष्टि किए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

प्रहस्यात्मानमात्मना जिघ्रन्त्या । कान्त्या सौन्दर्येण । प्रहसनमात्मावघ्राणं च सौन्दर्यानुभावचातुर्यविकारः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

हँसकर अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करने वाली सौन्दर्य के द्वारा प्रहसन और अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करना सौन्दर्यानुभव की चातुरी नामक विकार है ॥३८॥

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् । त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥३९॥

अन्वयः— ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां तां वै तनुं विससर्ज । ते एव च विश्वावसु पुरोगमाः प्रीत्या आददुः ॥३९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने ज्योत्स्ना रूपी कान्तिमयी तथा प्रिय शरीर का परित्याग कर दिया और उसको विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण कर लिया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ज्योत्स्नां चन्द्रिकारूपाम् । त एव गन्धर्वादिगणाः । विश्वावसुः पुरोगमो मुख्यो येषु ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का वह शरीर चन्द्रिका (चाँदनी) रूप था उसको उन्हीं गन्धर्वों ने ग्रहण किया जिनमें विश्वावसु प्रमुख थे ॥३९॥

सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा । दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥४०॥

अन्वयः— आत्मतान्द्रिणा भगवान् भूतपिशाचान् च सृष्ट्वा दिग्वाससः मुक्तकेशान् वीक्ष्य दृशौ आमीलयत् च ।।४०।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि करके उन सबों को नग्न तथा खुले केश वाला देखकर अपने दोनों आँखों को मूंद लिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनस्तन्द्रिणा आलस्येन । तांश्च मुक्तकेशान्वीक्ष्य नेत्रे निमीलितवान् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

तन्द्रि आलस्य को कहते है । ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि की । वे भूत पिशाच नङ्गे थे और उनके केश खुले हुए थे । उनको देखकर ब्रह्माजी ने अपनी दोनों आँखों को बन्द कर लिया ।।४०।।

जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः। निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥
येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

अन्वयः— प्रभोः विसृष्टां जृम्भणाख्यां तां तनुं तद् जगृहुः । निद्राम् यया भूतेषु इन्द्रियविक्लेदः दृश्यते । येनउच्छिष्टान् धर्षयन्ति तम् उन्मादं प्रचक्षते ।।४१।।

अनुवाद— ब्रह्माजी द्वारा परित्यक्त जम्भाई नामक उस शरीर को भूतों पिशाचों ने ले लिया । उसी को निद्रा कहा जाता है । जिसके द्वारा इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है । उसे निद्रा कहते हैं । यदि कोई जूठे मुँह सो जाता है तो उस पर भूत पिशाच आदि आक्रमण करते हैं, उसे ही उन्माद कहा जाता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियाणां विक्लेदः स्रावो यया तां निद्रां प्रचक्षते । येनेन्द्रियविक्लेदेन हेतुनोच्छिष्टांश्च सतो धर्षयन्ति भ्रान्तान्कुर्वन्ति तं भूतादिगणमुन्मादं प्रचक्षते । तन्द्राजृम्भिकानिद्रोन्मादहेतुत्वेन भूतादीनां तनूनां च चातुर्विध्यमुक्तम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा इन्द्रियों में शैथिल्य आ जाता है उसे निद्रा कहते हैं । उस इन्द्रिय शैथिल्य के ही कारण जूठे मुँह सोने वाले लोगों को भूतगण भ्रान्त बना देते हैं । उन भूतों आदि के गणों को उन्माद कहते हैं । तन्द्रा (आलस्य) जम्भाई, नींद, तथा उन्माद के कारण होने से भूतों के चार भेद बतलाये गये हैं ।।४१।।

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः । साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥

अन्वयः— भगवान् अजः आत्मानं ऊर्जस्वन्तं मन्यमानः प्रभुः साध्यान्गणान् पितृगणान् परोक्षेण असृजत् ।।४२।।

अनुवाद—अपने को बलवान मानने वाले ब्रह्माजी ने परोक्ष रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ऊर्जस्वन्तं बलवन्तम् । परोक्षेणादृश्यरूपेण ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

ऊर्जस्वान् बलवान को कहते है । अपने को बलवान् मानते हुए ब्रह्माजी ने अदृश्य रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की ।।४२।।

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥४३॥

अन्वयः— ते आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । यत् कवयः साध्येभ्यः पितृभ्यः वितन्वते ॥४३॥

अनुवाद— अपनी उत्पत्ति स्थान उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया, उसी को लक्ष्य करके पण्डित जन, साध्यगणों और पितृगणों को हव्य तथा कव्य प्रदान करते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः सर्गो यस्मात्तम् । यद्येन कार्येण संप्रदानत्वनिमित्तेन । कवयः कर्मकोविदाः । साध्येभ्यः पितृभ्यश्च स्वपितृरूपेभ्यः । वितन्वते श्राद्धादिना हव्यं कव्यं च ददति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

अपनी उत्पत्ति स्थान स्वरूप उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया । जिनको प्रसन्न करने के लिए कर्मों के ज्ञाता पण्डितजन श्राद्ध इत्यादि के द्वारा अपने पितरों को कव्य तथा साध्यगणों को हव्य प्रदान करते हैं ॥४३॥

सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् । तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥४४॥

अन्वयः— सः सिद्धान् विद्याधरान् चैव तिरोधानेन असृजत् । तेभ्यः तम् अन्तर्धानाख्यम् अद्भुतम् आत्मानम् अददात् ॥४४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने सिद्धों और विद्याधरों की सृष्टि तिरोधान शक्ति से की और उन सबों को उन्होंने अद्भुत अन्तर्धान नामक शरीर प्रदान किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तिरोधानेन दृश्यत्वे सत्यप्यन्तर्धानशक्त्या ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

तिरोधानेन पद का अर्थ है कि दृश्य होने पर भी अन्तर्धान होने की शक्ति के द्वारा ॥४४॥

सकिन्नरान्किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः । मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥

अन्वयः— आत्माभासं विलोकयन् प्रभुः आत्मना आत्मानं मानयन् सकिन्नरान् किंपुरुषान् प्रत्यात्म्येन असृजत् ॥४५॥

अनुवाद— अपने प्रतिबिम्ब को देखकर ब्रह्माजी ने अपने को बहुत सुन्दर माना । अपने उस प्रतिबिम्ब से उन्होंने किन्नरों और किम्पुरुषों की सृष्टि की ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यात्म्येन प्रतिबिम्बेन । आत्माभासं प्रतिबिम्बमात्मनात्मनो मानः प्रतिबिम्बदर्शिनः सुन्दरस्य शिरः कम्पादिचेष्टा । अतएव तत्सृष्टानां मिथः संमाननेन नित्यं मिथुनीभावः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यात्म्य का अर्थ प्रतिबिम्ब है । आत्माभास भी प्रतिबिम्ब को कहते है । उन्होंने अपने विम्ब को देखकर अपने को बहुत सुन्दर माना । इसीलिए प्रतिबिम्ब के द्वारा जिनकी सृष्टि हुयी उनका सदैव मिथुनीभाव बना रहता है॥४५॥

ते तु तज्जगृहु रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना । मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥४६॥

अन्वयः— यत् परमेष्ठिना व्यक्तं तत् रूपं ते जगृहुः । उषसि मिथुनीभूय गायन्त तमेव कर्मभिः ॥४६॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त प्रतिबिम्ब शरीर को उन सबों ने ग्रहण कर लिए । इसीलिए उषः काल में वे अपनी पत्नी के साथ ब्रह्माजी के कर्मों का गायन करते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

तत् प्रतिबिम्बरूपम् । कर्मभिस्तत्पराक्रमानुवर्णनैः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

किन्नरों और किम्पुरुषों ने ब्रह्माजी के प्रतिबिम्ब शरीर को ग्रहण कर लिया । वे प्रातः काल में ब्रह्माजी के पराक्रम आदि का वर्णन करते हैं ॥४६॥

देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया । सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥४७॥

अन्वयः— सर्गे अनुपचिते बहुचिन्तया भोगवता देहेन शयानः क्रोधात् तद वपुः उत्ससर्ज ह ॥४७॥

अनुवाद— सृष्टि की वृद्धि नहीं होने के कारण बहुत चिन्तित ब्रह्माजी अपने शरीर के हाथ पैर आदि को फैलाकर सो गये और उसके पश्चात् क्रोध करके उस शरीर को वे त्याग दिए ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

भोग आभोगो विस्तारः पादादिप्रसरणं तद्वता देहेन । अनुपचिते वृद्धिमप्राप्ते । तत् भोगक्रोधादियुक्तम् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

शरीर के विस्तृत करने को भोग कहते है । **भोगेन** का अर्थ है अपने हाथ पैर आदि को फैलाये हुए शरीर से सृष्टि की वृद्धि नहीं होने पर भोग अर्थात् क्रोध से युक्त होकर उस शरीर को ब्रह्माजी ने त्याग दिया ॥४७॥

येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे । सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४८॥

अन्वयः— हे अङ्ग अमुतः ये केशा अहीयन्त ते अहयः जज्ञिरे । प्रसर्पतः क्रूराः सर्पाः भोगोरुकन्धराः नागाः ॥४८॥

अनुवाद— उससे जो बाल झड़कर गिरे थे वे अहि हुए । पैर आदि सिकोड़ कर चलने से क्रूर स्वभाव वाले नाग हुए । जिनका शरीर फणरूप से कन्धे के पास बहुत फैला होता हैं वे नाग हुए ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अमुतोऽमुष्माद्देहाद्ये केशा अहीयन्त प्रच्युतास्तेऽहयो जाताः । प्रसर्पतः पादाद्याकुञ्चनैः प्रचलतोऽमुष्मात्सर्पाः । अतएव अगा न भवन्तीति नागाः । अतिवेगवन्त इत्यर्थः । भोगवतो जातत्वाद्भोगेन फणेनोरुर्विस्तीर्णा कन्धरा येषाम् । सर्वे चैते तत्क्रोधयोगात्क्रूराः । तेषामवान्तरजातिभेदः सर्पसिद्धान्ते प्रसिद्ध ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

उस शरीर से जो केश गिरे वे अहि हो गये । हाथ पैर सिकोड़कर चलने से सर्प हो गये । अतएव स्थिर नहीं होने के कारण वे नाग कहलाये । वे अत्यन्त वेग सम्पन्न हुए । कन्धे के पास फणरूप से जिनका शरीर बहुत फैला होता है वे नाग हैं । ब्रह्माजी के क्रोध का सम्बन्ध होने के कारण ये सभी क्रूर स्वभाव के होते हैं। सर्पों की अवान्तर जातियाँ सर्पसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में प्रसिद्ध हैं ॥४८॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः । तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥

अन्वयः— स आत्मभूः आत्मानं कृतकृत्यम् इव मन्यमानः तदा मनसा लोकभावनान् मनून् ससर्ज ॥४९॥

अनुवाद— वे ब्रह्माजी अपने को कृतकृत्य अनुभव किये और अन्त में उन्होंने मन से मनुओं की सृष्टि की । वे सब प्रजाओं की वृद्धि करने वाले हुए ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

यदा मन्यमानोऽभूत्तदा मनून्ससर्ज ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना तो उन्होंने मनुओं की सृष्टि की ॥४९॥

तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् । तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

अन्वयः— आत्मवान् सः तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरं अत्यसृजत् तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः ते प्रजापतिम् प्रशशंसुः ॥५०॥

अनुवाद— मनस्वी ब्रह्माजी ने उन मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर जिन गन्धर्वों आदि की सृष्टि हुयी थी उन सबों ने ब्रह्माजी की प्रशंसा की ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरुषाकारं पुरं देहमत्यसृजद्दौ । तान्मनून् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर गन्धर्वादिकों ने ब्रह्माजी की स्तुति की ॥५०॥

अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् । प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥५१॥

अन्वयः— अहो जगत्स्रष्टः एतत् बत ते सुकृतम् कृतम् । यस्मिन् क्रियाः प्रतिष्ठिताः साकम् अन्नम् अदामहे ॥५१॥

अनुवाद— हे जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ! यह अपने बड़ी अच्छी सृष्टि की है । इसमें सभी अग्निहोत्र आदि कर्म प्रतिष्ठित हैं । इससे ही हमलोग भी अपना भोग्य पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

ते त्वया यत्कृतं तत्सुकृतम् । सुकृतत्वमाहुः । यस्मिन्मनुसर्गे । क्रिया अग्निहोत्राद्याः अतोऽस्मिन्सर्वे वयं साकं सहान्नं हविर्भागाद्यदाम भक्षयाम । हे ब्रह्मन् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्माजी ! आपने यह जो मनुष्यों की सृष्टि की है वह बहुत अच्छी है । इसके अच्छेपन को बतलाते हुए देवों ने कहा— क्योंकि इस सृष्टि में अग्निहोत्र आदि सभी क्रियाएँ प्रतिष्ठित हैं । अतएव इसमें हम सभी एक साथ अपने हविर्भाग को प्राप्त करेंगे ॥५१॥

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना । ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥५२॥

अन्वयः— तपसा, विद्यया, योगेन, सुसमाधिना हृषीकेशः ऋषिः ऋषीन् प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् तप, विद्या (उपासना, योग तथा समाधि) के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में किए हुए आदिऋषि ब्रह्माजी ने ऋषियों की सृष्टि की ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

कायसृष्टिमुक्त्वा सृष्टिमाह-तपसेति। विद्या उपासना । योगोऽत्रासनादिः । सुसमाधिर्वैराग्यैश्वर्यादियुक्तः समाधिः तेन च युक्तः । हृषीकेशः स्ववशेन्द्रियः सन् । ऋषिर्ब्रह्मा ऋषीन्प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

कायसृष्टि का वर्णन करने के बाद ऋषियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं । तपस्या, उपासना (विद्या) योग किसी को भी भयभीत नहीं करना तथा वैराग्य ऐश्वर्य इत्यादि से युक्त समाधि के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्माजी ने ऋषि नामक प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः । यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अन्वयः— तेभ्यः अजः एकैकशः समाधियोगर्द्धि तपोविद्याविरक्तिमत् स्वस्य देहस्य अंशम् अददात् ॥५३॥

अनुवाद— उन ऋषियों को ब्रह्माजी ने प्रत्येक को समाधि योग, ऋद्धि, तप, विद्या तथा विरक्ति से युक्त अपने शरीर के अंश को प्रदान कर दिए ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किं तद्देहं यस्यांशमदादित्यत आह-यदिति । समाधिश्च योगश्च ऋद्धिश्च ऐश्वर्यं च तपश्च विद्या च विरक्तिश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न है कि ब्रह्माजी का वह कौन सा देह था जिसके अंशों को उन्होंने ऋषियों को प्रदान किया । तो इसका उत्तर है कि उसमें समाधि, योग, ऋद्धि, तप, विद्य और विरक्त विद्यमान थे ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिकानामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

महर्षि कर्दम की तपस्या और भगवान् का वरदान

विदुर उवाच

स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः । कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥

अन्वयः— हे भगवन् स्वायम्भुवस्य मनोः परमसम्मतः वंशः कथ्यताम् यत्र प्रजाः मैथुनेनैधिरे ॥१॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— भगवन् स्वायम्भुव मनु के अत्यन्त समादरणीय वंश का आप वर्णन करे । उसमें मैथुन धर्म के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुयी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे तपोविद्यातोषितेन तु विष्णुना । कर्दमस्य मनोः पुत्र्या विवाहघटनोच्यते ॥१॥ एधिरे एधांचक्रिरे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में कदर्म महर्षि के तप और विद्या से प्रसन्न भगवान् विष्णु ने उनका विवाह मनु की पुत्री देवहूति से करवाया । एधिरे पद का अर्थ है समृद्ध हुयी ॥१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै । यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥२॥

अन्वयः— स्वायम्भुवस्यवै प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ सप्तद्वीपवतीं महीं यथा धर्मं जुगुपतुः ॥२॥

अनुवाद— स्वयम्भुव मनु के दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद वे दोने धर्मानुसार सप्तद्वीपा पृथ्वी का प्रशासन करते थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

धर्मं महीं च यथा जुगुपतुः ररक्षतुस्तन्मे वदेति तृतीयेनान्वयः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे धर्म तथा पृथिवी दोनों की जिस तरह से रक्षा करते थे उसे आप मुझे बतलायें, इस तरह से तीसरे श्लोक से इसका अन्वय है ॥३॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूतीति विश्रुता । पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥३॥

अन्वयः— हे अनघ ! ब्रह्मन् तस्य देवहूति इति विश्रुता दुहिता कर्दमस्य प्रजापतेः पत्नी त्वया उक्ता ॥३॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! ब्रह्मन् उन मनु की प्रख्यात पुत्री का नाम देवहूति था और वह कर्दम प्रजापति की पत्नी हुयी यह आपने कहा है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मनोः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन स्वायम्भुव मनु की ॥३॥

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः । ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

अन्वयः— तस्यां योगलक्षणैः युक्तायां महयोगी कतिधा वीर्यं ससर्ज तत् शुश्रूषवे मे वद ॥४॥

अनुवाद— योग के लक्षणों से युक्त उस देवहूति से महायोगी कर्दम महर्षि ने कितनी सन्तानों को उत्पन्न किया यह मुझे आप बतलायें, क्योंकि मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

योगलक्षणैर्यमादिभिर्युक्तायाम् । कतिधा वीर्यं ससर्ज । कति पुत्रानुत्पादयामासेत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यम नियम आदि योग के लक्षणां से युक्त थीं देवहूति । उनसे महर्षि कर्दम ने कितने पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४॥

रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः । यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचिः ब्रह्मणः सुतः दक्षोवा मानवीम् भार्यां लब्ध्वा यथा प्रजाः ससर्ज तन्मे वद ॥५॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचि ओर ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति मनु की पुत्रियों को पत्नी के रूप में प्राप्त करके जैसे प्रजाओं की सृष्टि की उसे भी आप मुझे बतलायें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मानवीं मनोः कन्यकाकूतिं च प्रसूतिं च भार्यां लब्ध्वा यथा भूतानि ससर्ज तच्च वदेति चकारस्यार्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मनु की पुत्री आकूति को रुचि प्रजापति और प्रसूति को दक्ष प्रजापति ने प्राप्त करके जिस तरह से प्रजाओं की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

मैत्रेय उवाच

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

अन्वयः— प्रजाः सृज इति ब्रह्मणा उदितः भगवान् कर्दमः सरस्वत्यां सहस्राणां दश समाः तपः तेपे ॥६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी के यह कहने पर कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करो तो महर्षि कर्दम ने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सहस्राणां समा दश । दशसहस्राणि संवत्सरानित्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् कर्दम महर्षिने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ॥६॥

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः । संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥

अन्वयः— ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः प्रपन्नवरदाशुषम् हरिं प्रपेदे ॥७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् एकाग्रचित्त से पूजा रूपी प्रकार के द्वारा महर्षि कर्दम शरणागत भक्तों को वरदान देने वाले श्रीहरि की शरणागति किए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तस्मिंस्तपसि । क्रियायोगेन पूजाप्रकारेण संप्रपेदे सिषेवे । प्रपन्नेभ्यो भक्तेभ्यो वरदातारम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उस तपस्याकाल में श्रीभगवान् की विविधोपचार से पूजा के द्वारा महर्षि कर्दम श्रीभगवान् की शरणागति किए॥७॥

तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे । दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

अन्वयः— क्षत्तः तावत् प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे तं शाब्दं ब्रह्मदधद् वपुः दर्शयामास ॥८॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उससे सत्ययुग में प्रसन्न होकर भगवान् कमलनयन ने शब्दब्रह्ममय रूप से मूर्तिमान होकर उनको दर्शन दिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

शब्दैकवेद्यं यद्ब्रह्म तन्मयं वपुर्दधत्तं प्रत्यात्मानं दर्शयामास ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिस ब्रह्म को केवल शब्द के ही द्वारा जाना जा सकता है ऐसे शरीर को धारण किए हुए श्रीभगवान् उनको दर्शन दिए ॥८॥

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् । स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥
किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् । श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥
विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः । दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥११॥
जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः । गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥१२॥

अन्वयः— विरजमर्काभम्, सितपद्मोत्पलस्रजम्, स्निग्धनीलालक व्रातवक्त्राब्जं विरजोम्बरम्, किरीटिनं, कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम्, श्वेतोत्पलक्रीडनकम्, मनःस्पर्शस्मितेक्षणम्, गरुत्मतः अंसदेशे, विन्यस्तचरणाम्भोजम्, वक्षःश्रियम्, कौस्तुभकन्धरम् खेऽवस्थितं दृष्ट्वा, लब्धमनोरथः सः जातहर्षः क्षितौ मूर्ध्ना अपतत् प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः गीर्भिः त्वभ्यगृणात् ॥९-१२॥

अनुवाद— देदीप्यमान सूर्य के समान कान्तिसम्पन्न, श्वेत कमल की माला धारण किए हुए, कोमल काले घुंघराले केशों से सुशोभित मुखकमल वाले, मुकुट और कुण्डल धारण किए हुए, तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए, लीलाकमल के रूप में श्वेत कमल को धारण किए हुए, मधुरमुस्कानयुक्त चितवन से मन को आकृष्ट करने वाले, गरुड़जी के कन्धे पर चरणकमल को रखे हुए, श्रीदेवी से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, गले में कौस्तुभमणि को धारण किए हुए, श्रीभगवान् को आकाश में स्थित देखकर महर्षि कर्दम को बड़ी ही प्रसन्नता हुयी मानो उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये। उन्होंने पृथिवी पर शिर टेककर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रेम पूर्ण चित्त से उन्होंने श्रीभगवान् की स्तुति की ॥९-१२॥

भावार्थ दीपिका

स कर्दमस्तं खेऽवस्थितं दृष्ट्वा मूर्ध्ना क्षितावपतत् । गीर्भिश्चाभ्यगृणादिति चतुर्णामन्वयः । पद्मोत्पले दिनरात्रिविकासे। सितानां पद्मानामुत्पलानां च स्रक् यस्य तम् । स्निग्धानीलाश्च येऽलकास्तेषां व्रातो वक्त्राब्जे यस्य । श्वेतोत्पलं क्रीडनकं यस्य। मनः स्पर्शं मनस्यानन्दजनकं स्मितमीक्षणं च यस्य तम् । वक्षसि श्रीर्यस्य । कौस्तुभः कन्धारायां यस्य । प्रीतिरेव स्वभावः स्वतःसिद्धो धर्मो यस्य तथाविध आत्मा मनो यस्य ॥९-१२॥

भाव प्रकाशिका

वे महर्षि कर्दम आकाश में स्थित श्रीभगवान् को देखकर पृथिवी पर शिर सटा करके साष्टाङ्ग प्रणाम किए। उन्होंने अपनी मधुर वाणी से उनकी स्तुति भी की इस तरह से चौथे श्लोक के साथ इसका अन्वय है । पद्म दिन में विकसित होता है और उत्पल रात्रि में विकसित होता है । श्रीभगवान् की माला श्वेत कमलों की थी । उनके मुखकमल पर काले चिकने केश लहरा रहे थे । वे श्वेत कमल को लीला कमल के रूप में धारण किए हुए थे। मुस्कानमण्डित उनका चितवन भक्तों के मन में आनन्द को उत्पन्न कर देने वाला था । श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में श्रीलक्ष्मीजी विराजमान थीं उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही थी । महर्षि कर्दम ने स्वभाविक प्रेमपूर्ण मन से श्रीभगवान् की स्तुति करते समय हाथ जोड़े हुए थे ॥९-१२॥

ऋषिरुवाच

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥

अन्वयः— हे ईड्य अखिलसत्त्वराशेः तव दर्शनात् नः अद्य अक्ष्णोः सांसिध्यं जुष्टम् यद् दर्शनं सद्भिः जन्मभिः रूढयोगाः योगिनः आशासते ॥१३॥

अनुवाद— हे स्तुति करने योग्य प्रभो ! समस्त गुण के आधार गुण के आधार आपका दर्शन हो जाने

से आज मेरे नेत्रों ने साफल्य को प्राप्त कर लिया है । आपका यह दर्शन परंसिद्ध योगिजन भी अनेक योनियों में भी जन्म लेकर प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

त्वामृते परमानन्द धिगन्यवरकामुकम् । अथापि कृपणं मानुगृहाण वरदानतः । बतेति हर्षे । हे ईड्य, मोऽस्माभिः समग्रसत्त्वनिधेस्तव दर्शनादद्याक्ष्णोः सांसिध्यं साफल्यं जुष्टं सेवितम् । त्वद्दर्शनमेव महाफलमित्युपपादयति । यस्य तव दर्शनं सद्भिरुत्तरोत्तरमापादितप्रकर्षैर्जन्मभी रूढा विरूढो योगो यैस्तेऽपि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

परमानन्द स्वरूप आपको छोड़कर दूसरे वरदान को चाहने वाले मुझको धिक्कार है फिर भी मुझ कृपण को आप वरदान प्रदान करके अनुगृहीत करें । **बत** यह अव्यय हर्ष के अर्थ में प्रयुक्त है । कर्दम महर्षि ने कहा कि हे प्रभो ! आप हमलोगों के द्वारा स्तुति करने के योग्य है । आपका दर्शन प्राप्त करके हमारे नेत्र सफल हो गये हैं । इसके द्वारा उन्होंने कहा कि आपका दर्शन महान् फल है । आपका दर्शन उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जन्मों के द्वारा जिनका योग परिपक्व हो गया है ऐसे योगिजन भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।
उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥

अन्वयः— ते मायया हतमेधसः ये भवसिन्धुपोतम् त्वत्पदारविन्दम् कामलवाय उपासते ये निरयेऽपि स्युः, हे ईश तेषां कामान् रासि ॥१४॥

अनुवाद— आप की माया से जिनकी बुद्धि मारी गयी है ऐसे जो लोग संसार सागर को पार करने के लिए जहाज के समान आपके चरणारविन्दों की उपासना नहीं करके नरक में भी प्राप्त होने वाले किसी कामना विशेष की सिद्धि के लिए करते हैं, तो आप उनकी उस कामना की भी पूर्ति कर देते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सकामभक्तान्विगर्हयन्नाह–य इति । हे ईश, ये निरयेऽपि स्युस्तेषां कामानां लवाय ये त्वन्मायया नष्टबुद्धयस्तवोपासते। त्वं तु तेषां तान्कामानपि रासि ददासि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सकाम भगवद्भक्ति करने वालों की निन्दा करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं । जिनकी प्राप्ति नरकों में भी सम्भव है ऐसे तुच्छ कामनाओं के लिए जो आपके चरणों की उपासना करने वाले लोगों की बुद्धि आपकी माया के द्वारा मारी जा चुकी है । किन्तु उन जीवों की उन कामनाओं को भी आप पूर्ण कर दिया करते हैं॥१४॥

तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥

अन्वयः— स च अहं तथा दुराशयः समानशीलां गृहमेधधेनुम् परिवोढुकामः अशेषमूलम् कामदुघाङ्घ्रिपस्य मूलम् उपेयिवान् ॥१५॥

अनुवाद— मैं भी उन सकामभक्ति करने वालों में से ही हूँ । मेरा अन्तःकरण कामकलुषित है । मैंने अपने ही समान रहने वाली तथा गृहस्थ धर्म के पालन में सहायक किसी कन्या से विवाह करने की इच्छा से ही आपके चरणों की शरणागति की है । क्योंकि आपके चरण ही सम्पूर्ण पुरुषार्थों के मूल हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यः सकामानिन्दामि सोऽहमपि तादृश एवेत्याह-तथेति । गृहमेधो गृहाश्रमस्तत्र धेनुं त्रिवर्गदोग्ध्री भार्यां परिवोढुकामः परिणेतुमिच्छन्कामदुघाङ्घ्रिपस्य कल्पद्रुमस्य तव मूलमङ्घ्रिमुपेयिवानुपगतोऽस्मि । ननु कामाद्यर्थमन्यत्किमप्युपास्यताम् न। यतोऽशेषस्य पुरुषार्थस्य मूलमेतदेव ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जो मै सकाम भक्ति करने वालों की निन्दा कर रहा हूँ मैं भी सकामभक्तिवाला ही हूँ । इसी अर्थ का **तथा० इत्यादि** श्लोक से प्रतिपादन किया गया है । कर्दम महर्षि कहते है कि मैं गृहस्थाश्रम के त्रिवर्ग को प्रदान करने वाली पत्नी से विवाह करना चाहता हूँ । आप तो कल्प वृक्ष हैं, इसीलिए मैंने आपके चरणों की उपासना की है । यदि कहें कि काम इत्यादि की पूर्ति के लिए किसी दूसरी देवता की उपासना करें तो इसका उत्तर है कि आपके चरण ही सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं ।।१५।।

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।
अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लाऽनिमिषाय तुभ्यम् ।।१६।।

अन्वयः— हे अधीश ! हे शुक्ल प्रजापतेः ते वचसा तन्त्याबद्धः अयं लोकः किल कामहतः अनुबद्ध, अहं च अनिमिषाय तुभ्यं बलिं वहामि ।।१६।।

अनुवाद— हे सर्वेश्वर ! हे शुद्ध आप सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी है, आपकी वेदवाणी रूपी डोरी में बँधा हुआ यह सम्पूर्ण जगत् अनेक प्रकार की कामनाओं में फँसा है । हे धर्ममूर्ते उसी का अनुगमन करता हुआ मैं कालस्वरूप आपकी आज्ञा पालन रूप पूजोपहार आदि आपको समर्पित करता हूँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि मुक्त्यर्थमेव किं न भजसि, अनधिकारादित्याह । हे अधीश, यस्त्वं प्रजापतिस्तस्य तव वचसा तन्त्याऽहं कामहतो लोकः पशुवद्बद्धः हे शुक्ल शुद्धधर्ममूर्ते, अहं च किल लोकानुगतः । अतस्तुभ्यं बलिं वहामि कर्ममयीं त्वदाज्ञामनुवर्ते। अनिमिषाय कालात्मने । तदर्थं भार्यां चेच्छामीति चकारस्यार्थः । न केवलं लोकानुगतो बलिं वहामि किंतु ऋणत्रयापाकरणार्थमिति किलेत्युक्तम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तो तुम मुक्ति के ही लिए मेरा भजन क्यों नहीं करते हो ? तो इसका उत्तर है कि मैं मुक्ति का अधिकारी नहीं हूँ । क्योंकि आप तो सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी हैं । ऐसे आपकी वेदवाणी रूपी आज्ञा से बँधा हुआ इस संसार पशु के समान बँधा हुआ हूँ । हे धर्ममूर्ते ! मैं भी लोक का अनुगमन करने वाला हूँ अतएव तीनों ऋणों को अपाकृत करने के लिए आपको पूजोपहारादिरूप बलि समर्पित कर रहा हूँ ।।१६।।

लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ।।१७।।

अन्वयः— लोकान् च लोकानुगतान् पशून् च हित्वा ये ते चरणातपत्रम् आश्रिताः ते परस्परम् त्वद्गुणानुवाद सीधुपीयूष निर्यापित देह धर्माः भवन्तीति शेषः ।।१७।।

अनुवाद— हे प्रभो ! विषयासक्त जीवों तथा उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने वाले मुझ जैसे कर्मजड पशुओं की परवाह न करके आपके चरण रूपी तापत्रय विनाशक छत्र की छाया को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणों का वर्णन रूपी मादक अमृत का पान करके उसी से अपने भूख-प्यास रूपी देह के धर्मों को शान्त करते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अनिमिषायेत्यनेन कालात्मकात्त्वत्तो भीतः कर्म करोमीत्युक्तम् । एतत्तु भयं त्वद्भक्तानां नास्तीत्याह द्वाभ्याम् । लोकान्कामाभिभूतांस्ताननुसृतान्पशूंश्च । विवेके सत्यपि पुनः कर्मजडान्मादृशान्हित्वाऽनादृत्य ये तव चरणरूपमातपत्रं श्रिताः। तानेवाह । त्वद्गुणानां वादः कथा तदेव सीधु मदिरा संसारविस्मारकत्वात् । पीयूषं रुचिकरत्वात् । तेन निर्यापिता विलापिता देहधर्माः क्षुत्पिपासादयो यैः एषामित्युत्तरेणान्वयः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में महर्षि ने श्रीभगवान् को अनिमिषाय कहकर उनको काल स्वरूप बतलाया है । अतः वे कहते हैं कि मैं आप से भयभीत हूँ । अतएव कर्मपरायण रहकर कर्मों को करता रहता हूँ । किन्तु यह भय आपके भक्तों को नहीं है । इस बात को उन्होंने दो श्लोकों से कहा है । कर्म परायण तथा कामनाओं से सदा अभिभूत बने रहने वाले लोगों और उन्हीं का अनुसरण करने वाले विवेक के रहने पर भी कर्म परायण मुझ जैसे पशुओं की परवाह किए बिना जो आपके भक्त आपके चरणों रूपी तापत्रय विनाशक छत्र को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणों का वर्णन रूपी मादक अमृत जो संसार को विस्मृत कर देने वाला है, उसी का पान करके उसी से वे अपने भूख, प्यास रूपी देह के धर्मों को दूर कर देते है । इसका आगे के श्लोक के एषाम् पद से अन्वय है ॥१७॥

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥१८॥

अन्वयः— हे अजराक्षभ्रमिः, त्रयोदशारं, त्रिशतं षष्टिपर्व, षण्नेमि, अनन्तछदि, यत् त्रिणाभि, करालस्रोतः ते यत् जगदाच्छिद्यधावत् एषाम् आयुः आच्छिद्यन भवति ॥१८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपका यह काल चक्र जो है वह उसका ब्रह्म ही अक्ष (घूमने की धूरी) है, अधिकमास सहित तेरह मास ही उसके अर हैं, तीन सौ साठ दिन ही उस कालचक्र के पर्व (जोड़) हैं, छह ऋतुएँ उसकी नेमियाँ (हाल) हैं, अनन्त क्षण आदि उसके पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी तीन आधारभूत बलयाकृति नाभियाँ हैं, तथा उसका अत्यन्त तीव्र वेग है । इस प्रकार का जो आपका कालचक्र है चराचरात्मक जगत् की आयु का छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किन्तु वह भी आपके भक्तों की आयु का छेदन नहीं कर पाता है क्योंकि प्रत्येक पल आपका भजन करने के कारण उनका सारा समय सफल रहता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तव यत्त्रिणाभि कालचक्रं तज्जगदाच्छिद्याकृष्य धावदपि एषां त्वद्भक्तानामायुराच्छिद्य धावन्न भवति । **कथंभूतम्** । अजरं ब्रह्म तस्मिन्नक्षरूपे भ्रमिर्भ्रमणम् । भ्रमदिति वक्तव्येऽतिभ्रमणशीलत्वादुपचारेण भ्रमिरित्यभेदनिर्देशः । अधिकमासेन सह त्रयोदश मासा अरा यस्य । त्रिशतं षष्टिश्चाहोरात्राः पर्वाणि यस्य । शतशब्दे विभक्तेरलुगार्षः । षड् ऋतवो नेमयो यस्य । अनन्ताः क्षणालवादयश्छदाः पत्राणि पत्राकारा धाराः सन्ति यस्य । त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभय आधारभूतानि बलयानि यस्य। करालस्रोतस्तीव्रवेगम् । एतैर्विशेषणैरेव संवत्सरात्मकं चक्रमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कहते हैं कि हे प्रभो ! आपका यह जो वलयाकृति तीन नाभियों वाला कालचक्र है, यह निरन्तर जगत् की आयु को काटते हुए वेग से चलता रहता है । वह भी आपके इन भक्तों की आयु को नहीं काट पाता है, क्योंकि उन भक्तों का तो सारा समय आपके भजन में ही व्यतीत होने के कारण सफल है । **कथं भूतम्** अब

प्रश्न है कि वह कालचक्र कैसा है ? तो इस पर कहते हैं वह अजर ब्रह्मरूपी अक्ष की (धूरी) पर घूमता रहता है। यद्यपि भ्रमत् कहना चाहिए था फिर भी अत्यन्त भ्रमणशील होने के कारण उपचार वशात् भ्रामि पद से उसका निर्देश किया गया है। अधिक मास को मिलाकर तेरह महीने ही उसके अर हैं। तीन सौ साठ दिन ही उसके पर्व (जोड़) हैं। त्रिशतम् मे शत् शब्द की विभक्ति के लुक् का अभाव आर्ष (वैदिक) है। छह ऋतुएँ ही उसकी नेमियाँ हैं। अनन्त क्षण, लव आदि ही उसकी पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी आधारभूत वलयाकृति नाभियाँ हैं। उस कालचक्र का वेग अत्यन्त तीव्र है। इन विशेषणों से विशिष्ट ही कालचक्र को कहा गया है॥१८॥

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधियोगमायया ।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन्स्वशक्तिभिः ॥१९॥

अन्वयः— त्वम् एकः सन् जगत् अद्वितीयया सिसृक्षया आत्मन् अधियोगमायया उर्णनाभिः यथा स्वशक्तिभिः अदः सृजसि पासि पुनः ग्रसिष्यसे च ॥१९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अकेले ही जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से अपनी अद्वितीय योगमाया और उससे उत्पन्न अपनी सत्वादि शक्तियों के द्वारा मकड़ी के समान इस जगत् की सृष्टि करते है, रक्षा करते है और अन्त मे उसका संहार कर देते हैं। मकड़ी भी अपने से ही जाल को बुनती हैं, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसे निगल जाती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु निरुपाधिमुदासीनं मां किं याचसे तथापि मायया विश्वसृष्ट्यादिकर्तृत्वात्त्वमेव याच्य इत्याह । स्वयमेक एव सन्नप्यात्मन्यधिकृतया योगमायया हेतुभूतया याः स्वीकृताः शक्तयः सत्त्वाद्यास्ताभिः । अदो विश्वम् । स्वव्यतिरिक्तसाधनानपेक्षत्वे दृष्टान्तः यथेति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो सभी उपाधियों से रहित ज्ञानस्वरूप हूँ मुझसे क्यों प्रार्थना करते हो ? तो इस पर महर्षि ने कहा— फिर भी आप हीं माया के द्वारा जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते है; अतएव आप ही प्रार्थनीय हैं। आप अकेले रहकर अपने में अधिकृत माया के द्वारा जो सभी सत्त्वादि शक्तियों का कारण है। उसे स्वीकृत करके सत्त्वगुण आदि शक्तियों के द्वारा इस विश्व की सृष्टि करते हैं। इस कार्य में आपको किसी दूसरे साधन की उसी तरह अपेक्षा नहीं होती है जिस तरह मकड़ी साधनान्तर निरपेक्ष रहकर जाल को बनाती है, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसको निगल जाती है ॥१९॥

नैतद्बताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।
अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या भगवान्विलक्षितः ॥२०॥

अन्वयः— हे अधीश नः भूतसूक्ष्मम् पदं मायया तनुषे, एतत् तवेप्सितं न तथापि अनुग्रहाय अपि अस्तु यर्हि यतः भगवान् लसत्तुलस्या मायया विलक्षितः ॥२०॥

अनुवाद— आप हम भक्तों को जो शब्दादि सुख प्रदान करते हैं उसके मायाजन्य होने के कारण वह आपको भी पसन्द नहीं है; फिर भी परिणामतः हमारा शुभ करने के लिए वे मुझे प्राप्त हो जायँ। क्योंकि इस समय आपने हमें तुलसी की माला से मण्डित माया से परिच्छिन्नसी दिखने वाली सगुणमूर्ति रूप दर्शन दिए हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि मायिकत्वाद्भक्तेभ्यो विषयसुखं दातुं नेच्छसि तथाप्यस्मदभिप्रायानुसारेण तत्संपादयेत्याह–नैतदिति । हे अधीश, नोऽस्माकं भजतां भूतसूक्ष्मरूपं पदं शब्दादिविषयसुखं मायया तनुषे विस्तारयसीति यदेतत्तव यद्यपीप्सितं न भवति तथाप्यस्मदनुग्रहायास्तु । ऋणत्रयापाकरणानन्तरमेवापवर्गाय भवत्वित्यर्थः । यर्हि यतो मायया परिच्छिन्न इव लसन्त्या तुलस्या युक्तस्त्वं विलक्षितोऽसि । एवंभूतस्य तव दर्शनं यतो भुक्तिमुक्तिप्रदमित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

माया जन्य होने के कारण आप अपने भक्तों को शब्दादि विषयों का सुख नहीं प्रदान करना चाहते हैं फिर भी हमलोगों के अभिप्राय के अनुसार आप उसे हमें प्रदान करें इस बात को कर्दम महर्षि ने **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । श्लोक का अर्थ है कि हे जगत् के स्वामिन् आपका भजन करने वाले हमलोगों को भूतसूक्ष्म रूप जिन शब्दादि विषयों का सुख आप प्रदान करते हैं, यद्यपि आपको भी अभिप्रेत नहीं है । फिर भी हमलोगो पर कृपा करने के लिए आप हमें प्रदान करें । तीनों (देव, पितृ और ऋषि) ऋणों को अपाकृत करने के पश्चात् ही हमें मुक्ति मिले । क्योंकि माया से परिच्छिन्न तुलसी की माला से मण्डित रूप से ही आपने हमें दर्शन दिया है । इस प्रकार का आपका दर्शन भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करने वाला है ॥२०॥

तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमाययावर्तितलोकतन्त्रम् ।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

अन्वयः— तं अनुभूतोपरतक्रियार्थं, स्वमाययावर्तित लोकतन्त्रम् नमनीयपादसरोजम् अल्पीयसि कामवर्षं त्वाम् अभीक्ष्णं नमामि ॥२१॥

अनुवाद— ऐसे आप स्वरूपतः निष्क्रिय होने पर भी अपनी माया के द्वारा संसार के व्यवहार को चलाते रहते हैं । थोड़ी सी भी भक्ति करने पर आप अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं । आपके चरण कमल वन्दनीय हैं, ऐसे आपको मैं निरन्तर बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तं त्वा त्वां भुक्तिमुक्तिप्रदं नमामि । मुक्तिदत्वे हेतुः–अनुभूत्या ज्ञानेनोपरतः क्रियार्थः कर्मफलभोगो यस्मिन् । भोगदत्वे हेतुः–स्वमायया आवर्तितं लोकतन्त्रं विश्वोपकरणं येन । अतः सकामैर्निष्कामैश्च नमनीयं पादसरोजं यस्य तम् । तत्राल्पीयसि सकामे पुंसि भजने वा कामान्वर्षतीति तथा तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आप चूकि भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान कर देते हैं ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ । श्रीभगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं, इसके लिए महर्षि हेतु को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं आपका ज्ञानमात्र हो जाने से समस्त कर्मों का फल समाप्त हो जाता है, अर्थात् जीव कर्मसम्बन्ध से रहित हो जाता है । भोगों के प्रदातृत्व में हेतु को उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण लोक व्यवहार को आप चलाते रहते हैं । अतएव आप के चरण कमल सकाम एवं निष्काम दोनों प्रकार के भक्तों द्वारा प्रणम्य है । सकाम मनुष्य के द्वारा थोड़ी सी भी आराधना किए जाने पर आप आराधकों की कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ॥२१॥

ऋषिरुवाच

इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ।
सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥

अन्वयः— इत्यव्यलीकं प्रणुतः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रू सुपर्ण पक्षोपरि रोचमानः अब्जनाभः अमृतेन वचसा तम् आबभाषे॥२२॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस तरह से महर्षि कर्दम के द्वारा निष्कपट भाव से स्तुति किए गये भगवान् की प्रेमभरी मुस्कान से युक्त चितवन वाली भौंहें चञ्चल हो गयी थीं। श्रीभगवान गरुड के कंधे पर विराजमान थे ऐसे भगवान् उनसे अमृतमयी वाणी से कहने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अमृतेन सुखकरेण। प्रेमस्मिताभ्यामीक्षणेन विभ्रमन्ती भ्रूर्यस्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अमृतेन अर्थात् सुखप्रद प्रेम तथा मुस्कान पूर्ण चितवन से जिनकी भौहें चञ्चल हो गयी थीं ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच

विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत्। यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥२३॥

अन्वयः— त्वया यदर्थं आत्मनियमै अहं समर्चितः, तव चैत्यं विदित्वः मे पुरा एव तत् समयोजि ॥२३॥

अनुवाद— तुमने जिसके लिए आत्मसंयम आदि के द्वारा मेरी आराधना की है तुम्हारे उस चित्त के अभिप्राय को जानकर मैंने उसकी पहले ही व्यवस्था कर दी है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

चैत्यं हार्दं भावम्। मे मया समयोजि संघटितम्। यदर्थमेवाहं समर्चितस्तत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हार्दिक भाव को चैत्य कहा गया है। तुम्हारे द्वारा जिसके लिए आराधित हुआ हूँ उसकी व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है ॥२३॥

न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम्। भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥२४॥

अन्वयः— हे प्रजाध्यक्ष मयि संगृभितात्मनाम् भवद्विधेषु अतितराम् मदर्हणम् न जातु मृषैव न स्यात् ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रजापते। जिन लोगों ने अपना मन मुझमे एकाग्र कर लिया है ऐसे लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना व्यर्थ नहीं हो सकती है। विशेष रूप से आप जैसे लोगों की उपासना करने पर तो और अधिक फल होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

मयि संगृभितः संगृहीत एकाग्रीकृत आत्मा चित्तं यैस्तेषां यन्मदर्हणम्। त्वादृशेष्वतितरां सर्वथा मृषा निष्फलं न स्यात् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने अपना चित्त मुझमें एकाग्र कर लिया है उन लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना कभी निष्फल नहीं होती है, आप जैसे लोगों के द्वारा की गयी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती है ॥२४॥

प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः। ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

अन्वयः— विख्यातमङ्गलः प्रजापति सुतः यः ब्रह्मावर्तम् अधिवसन् सप्तार्णवां महीम् अधिशास्ति सम्राट् मनुः ॥२५॥

अनुवाद— प्रसिद्ध यशस्वी ब्रह्माजी के पुत्र जो ब्रह्मावर्त में रहकर सातों समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का प्रशासन करते हैं ऐसे सम्राट् स्वायम्भुव मनु हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विख्यात मङ्गलमभ्युदयः सदाचारादिलक्षणं यस्य ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उन स्वम्भुव मनु का सादाचारादि स्वरूप यश प्रख्यात है ।।२५।।

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया । आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ।।२६।।

अन्वयः— हे विप्र ! स च राजर्षिः शतरूपया महिष्या सह धर्मकोविद त्वाम् दिदृक्षुः इह परश्वः आयास्यति ।।२६।।

अनुवाद— हे विप्र ! वे धर्मज्ञ राजर्षि, अपनी रानी शतरूपा के साथ आपको देखने के लिए परसो यहाँ आयेंगे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

हे विप्र ! महिष्या सह ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

हे विप्र अपनी महारानी के साथ यहाँ आयेंगे ।।२६।।

आत्मजामसितापाङ्गीं वयःशीलगुणान्विताम् । मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ।।२७।।

अन्वयः— हे प्रभो । असितापाङ्गीम्, वयः शीलगुणान्विताम् पतिं मृगयन्ती अनुरूपाय ते दास्यति ।।२७।।

अनुवाद— हे प्रभो ! वे अपनी श्यामलोचना अवस्था तथा शील आदि गुणों से सम्पन्न अपनी पुत्री को उसके लिए सर्वथा अनुरूप पति आपको समर्पित करेंगे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् । सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ।।२८।।

अन्वयः— इमान् परिवत्सरान् यत्रते हृदयं समाहितम् हे ब्रह्मन् ! सा नृपवधूः त्वां आशु कामम् भजिष्यति ।।२८।।

अनुवाद— इतने वर्षों (दश हजार वर्षों) तक आपका मन जैसी पत्नी में लगा था हे ब्रह्मन् ! वह राजकुमारी अब शीघ्र ही वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी यथेष्ट सेवा करेगी ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

यत्र यस्यां भार्यायाम् । समाहितमभिसन्धानेन स्थितम् । नृपवधू राजकन्या ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इतने वर्षों से तुम्हारा मन जैसी पत्नी में लगा था, वह राजकुमारी वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी सेवा करेगी।।२८।।

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसात्मनः ।।२९।।

अन्वयः— या ते आत्मभृतं ते वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । त्वदीये वीर्ये ऋषयः आत्मनः अञ्जसा आधास्यन्ति ।।२९।।

अनुवाद— वह तुम्हारे वीर्य को अपने गर्भ में धारण करके नव कन्याओं को उत्पन्न करेगी और तुम्हारी उन कन्याओं से ऋषिगण पुत्रों को उत्पन्न करेंगे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ते वीर्यमात्मनि भृतं धृतं या प्रसविष्यति सा भजिष्यति । वीर्ये वीर्यप्रसूतासु कन्यासु । अञ्जसा आत्मने पुत्रानाधास्यन्ति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वह आपकी पत्नी आपके वीर्य को धारण करके नव पुत्रियों को उत्पन्न करेगी और आपके वीर्य से उत्पन्न उन कन्याओं के गर्भ में मरीच्यादि ऋषिगण अपने पुत्रों का आधान करेंगे ।।२९।।

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः । मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ।।३०।।

अन्वयः— त्वं च मे निदेशं सम्यगनुष्ठाय उशत्तमः मयि तीर्थीकृताशेष कृतार्थः मां प्रपत्स्यसे ।।३०।।

अनुवाद— तुम भी मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करके शुद्ध चित्तवाले हो जाओगे और अपने सभी कर्मों का फल मुझको समर्पित करके मुझको प्राप्त कर लोगे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

निदेशमाज्ञाम् । उशत्तमः शुद्धसत्त्वः । तीर्थं पात्रं, तेन दानं लक्ष्यते । मयि समर्पितसर्वकर्मफल इत्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

निदेश का अर्थ आज्ञा है उशत्तमः= शुद्ध अन्तःकरण वाला । तीर्थ अर्थात् योग्य पात्र । इस तरह तीर्थी कृत शब्द से दान की प्रतीति होती है । भगवान् ने कहा कि मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन के कारण तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध सत्त्वमय हो जायेगा । उसके फल स्वरूप अपने सभी कर्मों को तुम मुझको समर्पित कर दोगे और तुम मुझको प्राप्त कर लोगे ।।३०।।

कृत्वा दया च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् । मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ।।३१।।

अन्वयः— जीवेषु दयां कृत्वा अभयं च दत्वा आत्मवान् त्वम् मयि आत्मानं सह जगत् आत्मनि च अपि मां द्रक्ष्यसि ।।३१।।

अनुवाद— जीवों पर दया करके तुम जब संन्यास ग्रहण कर लोगे तो सभी जीवों को अभय प्रदान दोगे। उसके कारण तुम सम्पूर्ण जगत् के साथ अपने को भी मुझमें देखोगे ओर अपनी आत्मा में मुझको देखोगे ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

गार्हस्थ्येन दयां कृत्वा संन्यासेनाभयं दत्त्वा मय्यात्मानं जगच्च सहैकीभूतं द्रक्ष्यसि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए जीवों पर दया करके और संन्यास आश्रम ग्रहण करके सभी जीवों को अभय प्रदान करके तुम, मुझमें अपने को तथा सम्पूर्ण जगत् को मुझमें देखोगे ।।३१।।

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने । तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ।।३२।।

अन्वयः— हे महामुने अहं च स्वांशकलया सह त्वद् वीर्येण तव क्षेत्रे देवहुत्यां तत्त्वसंहिताम् प्रणेष्ये ।।३२।।

अनुवाद— हे महामुने ! मैं भी अपने अंश कला के साथ आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूति के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्र का प्रणयन करूँगा ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

त्वद्वीर्येण सह देवहूत्यामवतीर्येति शेषः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि मैं भी आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूती के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्य शास्त्र का प्रणयन करूँगा ।।३२।।

मैत्रेय उवाच

एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः । जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

अन्वयः— एवं प्रत्यक् अक्षजः भगवान् तम् एवम् अनुभाष्य अथ सरस्वत्या परिश्रितात् विन्दुसरसः जगाम ॥३३॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अन्तर्मुखी इन्द्रियों के विषय बनने वाले श्रीभगवान् इस प्रकार से कर्दम महर्षि को कहकर सरस्वती नदी से घिरे हुए विन्दुसरोवर से अपने लोक में चले गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यग्भूतष्वक्षेषु जायते आविर्भवतीति प्रत्यगक्षजः । सरस्वत्या नद्या परिश्रितात्परिवेष्टितात् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जब योगी अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर से निरुद्ध करके उन सबों को अन्तर्मुखी बना लेता है तो उसी को श्रीभगवान् दर्शन देते हैं । वे भगवान् कर्दम महर्षि को इस तरह से आदेश देकर सरस्वती नदी से घिरा हुआ जो उनका आश्रम विन्दुसरोवर था उससे वे अपने लोक में चले गये ॥३३॥

निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।
आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम् ॥३४॥

अन्वयः— तस्य निरीक्षतः अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः, पत्ररथेन्द्रपक्षैः उदीर्णम् साम आकर्णयन् उच्चरितं स्तोमं च शृण्वन् ययौ ॥३४॥

अनुवाद— महर्षि कर्दम के देखते ही देखते सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित वैकुण्ठ मार्ग श्रीभगवान् गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले साम तथा उच्चारण किए जाने वाले साम की आधारभूत ऋचाओं (स्तोम) को सुनते हुए अपने लोक में चले गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अशेषैस्तपोमन्त्रादिसिद्धेश्वरैरभिष्टुतः सिद्धमार्गो वैकुण्ठमार्गो यस्य । यद्वा अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतश्चासो सिद्धैर्मृग्यत इति सिद्धमार्गश्च स ययौ । पत्ररथेन्द्रो गरुडस्तस्य पक्षैरुदीर्णमभिव्यक्तं साम आकर्णयन्, 'बृहद्रथन्तरे पक्षौ' इति श्रुतेः । उच्चारितं स्तोमं च सामाधारभूतानामृचां समुदायं शृण्वन् । स्तोम आत्मा' इति श्रुतेः । समासपाठे स्तोमः स्तोत्रीयसमुदायो यस्य साम्न इति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सभी तपस्याओं और मन्त्रों से तथा सिद्धेश्वरों से प्रशंसित है श्रीभगवान् का वैकुण्ठ मार्ग अथवा **अशेष सिद्धेश्वराभिष्टुत सिद्धमार्गः** पद का अर्थ है सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित तथा जिनका सिद्धजन अन्वेषण किया करते है ऐसे श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । उनके जाने के प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं— गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले सामों का श्रवण करते हुए गये श्रुति भी कहती हैं- **बृहद्रथन्तरे पक्षौ** । गरुड़ के बृहत्साम और रथन्तर साम ये दोनों पङ्ख हैं । सामों के आधार भूत ऋचाओं का समुदाय ही उच्चरितस्तोम है । उसको सुनते हुए श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । श्रुति भी कहती है **स्तोम आत्मा** स्तोम ही सामों की आत्मा है । **उच्चरितस्तोम** यह पाठ होने पर अर्थ होगा स्तोत्रीय समुदाय जिस साम का उच्चरित है ॥३४॥

अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः । आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अन्वयः— अथ शुक्ले संप्रस्थिते भगवान् कर्दमः ऋषि तं कालं प्रतिपालयन् विन्दुसरसि आस्ते स्म ॥३५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चले जाने पर भगवान् कर्दम ऋषि श्रीभगवान् के द्वारा निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु सरोवर पर ठहरे रहे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तं कालं परश्व इत्युक्तं प्रतीक्षमाणः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जो कहा था कि परसों दिन वे अपनी पुत्री को लेकर आयेंगे उस काल की प्रतीक्षा कर्दम महर्षि करते रहे ॥३५॥

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् । आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥
तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् । उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

अन्वयः— हे सुधन्वन् मनुः शातकौम्भपरिच्छदम् स्यन्दनम् सभार्यः आस्थाय स्वां दुहितरं आरोप्य महीम् पर्यटन् भगवान् यत् समादिशत् तस्मिन् अहनि, शान्तव्रतस्य मुनेः तत् आश्रमपदम् उपायात् ॥३६-३७॥

अनुवाद— हे सुन्दरधनुष धारण करने वाले विदुरजी ! स्वायम्भुव मनु सुवर्णजटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ बैठकर और उस पर अपनी पुत्री को बैठाकर वरका अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर भ्रमण करते हुए जो दिन भगवान् बतलाये थे उसीदिन शान्ति परायण महर्षि कर्दम के उस आश्रम में आये ॥३६-३७॥

भावार्थ दीपिका

शातकौम्भाः सौवर्णाः परिकरा यस्मिंस्तं रथमास्थाय दुहितरं चारोप्य वरान्वेषणार्थं पर्यटन् । हे सुधन्वन्विदुर । यदहः ॥३६-३७॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी सुवर्ण जटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ अपनी पुत्री को बैठाकर वर का अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर पर्यटन करते हुए महाराज मनु जिस दिन को भगवान् बतलाये थे उसी दिन उन शान्ति परायण कर्दम महर्षि के आश्रम में प्रवेश किए ॥३६-३७॥

यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः । कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥
तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् । पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

अन्वयः— यस्मिन् प्रपन्ने कृपया भृशम् सम्परीतस्य भगवतः नेत्रात् अश्रुबिन्दः न्यपतन् तद्वै सरस्वत्याः जलप्लुतम् पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् विन्दुसरो नाम ॥३८-३९॥

अनुवाद— जहाँ पर अपने शरणागत भक्त कर्दम महर्षि के प्रति उत्पन्न हुयी अत्यन्त करुणा के कारण श्रीभगवान् के नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिर पड़ी वह सरस्वती नदी के जल से भरा हुआ अत्यन्त पवित्र तथा कल्याणकारी जल वाला तथा महर्षियो के समूह से सेवित है वही विन्दु सरोवर है ॥३८-३९॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रवेशमात्रेण परमानन्दं प्राप्त इति दर्शयितुमाश्रमं वर्णयति–यस्मिन्नित्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः । प्रपन्ने कर्दमे । शिवमारोग्यममृतवत्स्वादु जलं यस्मिन् ॥३८-३९॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में प्रवेश करने मात्र से महाराज मनु को परमानन्द की प्राप्ति हुयी इस बात को बतलाने के लिए **यस्मिन् इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले आश्रम का वर्णन करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— प्रपन्न शब्द से शरणागत कर्दम महर्षि को कहा गया है। उस बिन्दुसरोवर का जल आरोग्य प्रदान करने वाला तथा अमृत के समान स्वादिष्ट था ॥३८-३९॥

पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥

अन्वयः— कूजत्पुण्यमृगद्विजैः पुण्यद्रुमलताजालैःसर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥

अनुवाद— पवित्र मृगों और पक्षियों की ध्वनि से ध्वनित पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त सभी ऋतुओं के पुष्पों और फलों से सम्पन्न वह आश्रम वनपंक्ति की शोभा से समन्वित था ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कूजन्तः पुण्या मृगा द्विजाश्च येषु तैः पुण्यद्रुमलतानां जालैः समूहैर्युक्तम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में पवित्र पशु पक्षियों की ध्वनि सुनायी पड़ती थी। तथा वह आश्रम पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त था ॥४०॥

मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् । मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥४१॥

अन्वयः— मत्तद्विजगणैः घुष्टम् मत्तभ्रमरविभ्रमम्, मत्तबर्हिनटाटोपम् मत्तकोकिलम् आह्वयन् ॥४१॥

अनुवाद— उस आश्रम में मत्त पक्षियों का समूह बोल रहा था, मतवाले भँवरे मँडरा रहे थे, मदमत्त मयूर अपने पङ्खों को फैलाकर नट की भाँति नाच रहे थे और मतवाली कोयलें अपनी कुहू-कुहू की ध्वनि से एक दूसरे को बुला रही थीं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

घुष्टं नादितम्। मत्तभ्रमराणां विभ्रमो विनोदो यस्मिन्। मत्ता बर्हिण एव नटास्तेषामाटोपो नृत्यसंभ्रमो यस्मिन्। आह्वयन्तो मिथो मत्ताः कोकिला यस्मिन् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम मतवाले पक्षियों की ध्वनि से निनादित था, उसमें मतवाले भौंरें मंडरा रहे थे, मदमत्त मयूर नट के समान नृत्य कर रहे थे, कोयलें अपनी मधुर ध्वनि से एक दूसरे को मानों बुला रही थीं ॥४१॥

कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः । कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥४२॥

अन्वयः— कदम्बचम्पकाशोकः करञ्ज बकुल असनैः कुन्दमन्दारकुटजैः चूतपोतैः अलंकृतम् ॥४२॥

अनुवाद— वह आश्रम कदम्ब, चम्पा, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार तथा कूट आदि फूलों के वृक्षों से तथा छोटे-छोटे आमों के पैधों से अलंकृत था ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

कदम्बादिभिर्वृक्षैरलंकृतम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम कदम्ब आदि पुष्पों के वृक्षों से सुशोभित था ॥४२॥

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः । सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥४३॥

अन्वयः— कारण्डवैः प्लवैः हंसैः कुररैः जलकुक्कुटैः, सारसैः चक्रवाकैः च चकोरैः वल्गुकूजितम् ॥४३॥

अनुवाद— वह आश्रम जलकाग, बत्तख, आदि जल पर तैरने वाले पक्षी, हंस, कुरर, जलमूर्ग सारस, चकवा, और चकोर नामक पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

कारण्डवादिभिः पक्षिभिर्वल्गु यथा तथा कूजितम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

वह कारण्डव आदि पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः । गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥

अन्वयः— तथैव हरिणैः, क्रोडैः, श्वाविद्, गवयकुञ्जरैः, गोपुच्छैः, हरिभिः मर्कैः, नकुलैः नाभिभिः वृतम् ॥४४॥

अनुवाद— वह आश्रम, हरिण, सूकर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लङ्गूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरी मृग आदि पशुओं से घिरा था ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

हरिणादिभिर्वृतम् । तत्र क्रोडः सूकरः । श्वाविच्छल्लकः । मर्को मर्कटः । तद्विशेषो गोपुच्छः । हरिर्वानरः सिंहो वा। नाभिः कस्तूरीमृगः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम हरिण इत्यादि से घिरा था । क्रोड अर्थात् सूकर, श्वाविद् अर्थात् स्याही, मर्क यानी वन्दर । गोपुछ, लङ्गूर यह बन्दरों की एक जाति है, उसकी पूंछ लम्बी होती है । हरि शब्द वानर और सिंह दोनों का वाचक है । नाभि अर्थात् कस्तूरी मृग ॥४४॥

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः । ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥४५॥

अन्वयः— आदिराजः सहात्मजः तत्तीर्थ वरम् प्रविश्य तस्मिन् हुतहुताशनम् आसीनम् मुनिम् ददर्श ॥४५॥

अनुवाद— आदिराज महाराज मनु उस श्रेष्ठ तीर्थ में अपनी पुत्री के साथ प्रवेश करके, अग्नि में होम करके बैठे हुए कर्दम मुनि को देखे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

हुतो हुताशनो ब्रह्मचारियोग्यो येन ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी के लिए जिस प्रकार का अग्निहोत्र विहित है उस प्रकार का अग्निहोत्र करके महर्षि कर्दम बैठे थे ॥४५॥

विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् । नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गवलोकनात् ॥
तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥४६॥

अन्वयः— चिरम् तपसि उग्रजा वपुषा विद्योतमानम्, भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात् तद्व्याहृतामृत कलापीयूष श्रवणेन च नातिक्षामं (मुनिददर्श) ॥४६॥

अनुवाद— दीर्घकाल तक उग्र तपस्या करने के कारण वे अपने शरीर से तेजस्वी दिखायी पड़ते थे,

श्रीभगवान् के स्नेह पूर्ण अवलोकन के दर्शन तथा उनके द्वारा उच्चारण किए गये कर्णामृत रूप सुमधुर वचनों के सुनने से दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी उनका शरीर अधिक दुर्बल नही प्रतीत होता था ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

उग्रा युक् योगो यस्य तेन वपुषा विद्योतमानम् । तस्य भगवतो व्याहृतं भाषणमेवामृतकला अमृतमयस्य चन्द्रस्य कला तन्मयं पीयूषं तस्य श्रवणेन च नातिक्षामं तपसा कृशं सन्तमप्यकृशम् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

बहुत दिनों तक उग्र तपस्या करने के कारण उनका शरीर देदीप्यमान (चमक रहा) था । श्रीभगवान् की वाणी ही अमृतकला अर्थात अमृतमय चन्द्रमा की कला हैं । उस अमृतमय श्रीभगवान की वाणी का श्रवण करने के कारण महर्षि का शरीर यद्यपि कृश हो गया था फिर भी वह कृश नहीं प्रतीत हो रहा था । ऐसे महर्षि कर्दम को स्वयम्भुव मनु ने देखा ॥४६॥

प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् । उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ॥४७॥

अन्वयः— प्रांशुं पद्मपलशाक्षम् जटिलं, चीरवाससम्, मलिनं यथार्हणम् असंस्कृतम् उपसंसृत्य ॥४७॥

अनुवाद— लम्बे शरीर वाले, कमल दल के समान मनोज्ञ नेत्रों वाले, जटा धारण किए हुए, चीर वस्त्र धारण किए हए तथा निकट में जाकर देखने से विना शाण पर चढी हुयी मणि के समान वे मलिन दिख रहे थे ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

प्रांशुमुन्नतम् । उपसंसृत्य समीपं गत्वा मलिनं ददर्शेति पूर्वेव क्रिया । अर्हतिऽनेनेत्यर्हणं महारत्नं तदसंस्कृतमनिर्णिक्तं यथा मलिनं दृश्यते तद्वत् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि का शरीर लम्बा था, उन महर्षि के सन्निकट में जाकर स्वायम्भुव मनु ने उनको मलिन देखा । जो संस्कार करने के योग्य हो ऐसे महारत्न संस्कार रहित तथा बिना शाण पर चढायी गयी मणि जिस तरह मलिन दिखती है, उसी तरह महर्षि कर्दम को महाराज मनु ने देखा ॥४७॥

अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः । सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥४८॥

अन्वयः— अथ उटजम् उपायातम् पुरः प्रणतं नृदेवं प्रतिनन्द्य, अनुरूपया सपर्यया पर्यगृह्णात् ॥४८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् झोपड़ी में आकर सामने प्रणाम करते हुए राजा स्वायम्भुव मनु को महर्षि कर्दम ने आशीर्वाद से प्रसन्न करके उनका आतिथ्य विधि से यथोचित सत्कार किया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

उटजं पर्णशालां प्राप्तं पुरः पादसमीपे प्रणतमाशीर्भिरभिनन्द्य सपर्यया पूजया प्रत्यगृह्णात्सत्कृतवान् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

पर्णशाला में आकर पैरों के सामने प्रणाम करने वाले राजा स्वायम्भुव मनु को आशीर्वाद के द्वारा प्रसन्न करके महर्षि कर्दम ने उनकी अतिथि विधि से पूजा करके उनका सत्कार किया ॥४८॥

गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः । स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

अन्वयः— गृहीतार्हणम् आसीनं भगवदादेशं स्मरन् मुनिः । संयतं तं श्लक्षणया गिरा प्रीणयन् इत्याह ॥४९॥

अनुवाद— पूजा ग्रहण करने के पश्चात् राजा के आसन पर बैठ जाने पर भी भगवान् के आदेश का स्मरण करते हुए मुनि राजा को प्रसन्न करते हुए इस तरह से कहे ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते । वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥

अन्वयः— हे देव त्वं हरेः हि पालिनी शक्तिः । ते चंकमणम् सतां संरक्षणाय असतां बधाय च ॥५०॥

अनुवाद— हे महाराज ! आप श्रीहरि की पालन करने वाली शक्ति हैं । अतएव आपका पर्यटन सत्पुरुषों की संरक्षा के लिए और दुष्टों का वध करने के लिए होता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

ते चंक्रमणं पर्यटनम् । हि यस्मात् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

आप पृथिवी पर पर्यटन दो कारणों से करते हैं- १. सत्पुरुषों की संरक्षा और दुष्टों का विनाश करने के लिए, क्योंकि आप भगवान् विष्णु की पालन करने वाली शक्ति स्वरूप हैं ॥५०॥

योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् । रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

अन्वयः— अर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् रूपाणि यः स्थाने आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

अनुवाद— जो आप भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम, धर्म तथा वरुण आदि का रूप धारण करते हैं ऐसे साक्षात् विष्णु स्वरूप आप को नमस्कार है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

मनुस्त विष्णुं प्रणमति-य इति । स्थाने तत्तत्कार्यावसरे शुक्लाय विष्णवे ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु में विद्यमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं । स्थाने कहने का अभिप्राय है कि विभिन्न कार्यों को करने के समय में आप ही सूर्य चन्द्रमा, अग्नि तथा इन्द्र आदि का रूप धारण करते हैं, शुक्ल शब्द का अर्थ भगवान् विष्णु है अर्थात् विष्णु स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥५१॥

न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् । विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥
स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः । विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥

अन्वयः— यदा मणिगणर्पितं जैत्रं रथम् आस्थाय विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डः रथेन अघान् त्रासयन् स्वसैन्य चरण क्षुण्णं भुवः मण्डलं वेपयन् बृहतीं सेनां विकर्षयन् अंशुमान् इव न पर्यटसि ॥५२-५३॥

अनुवाद— हे राजन् यदि आप मणिगण जटित जैत्र (विजयप्रद) रथ पर बैठकर अपने प्रचण्ड धनुष का टङ्कार करते हुए तथा रथ की घर्घरध्वनि से पापियों को भयभीत करते हुए और अपनी सेना के पैरों से रौंदे हुए भूण्डल को कँपाते हुए, अपनी विशाल सेना के साथ सूर्य के समान नहीं विचरण करें तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ॥५२-५३॥

भावार्थ दीपिका

न यदेति पञ्चानामयमर्थः- यद्यपि धर्मरक्षार्थं सर्वतः पर्यटतस्तव प्रसङ्गादप्यागमनं संभवति तथापि विशेषकार्यं चेदस्ति तत्कथ्यतामिति । जैत्रं जयप्रदं मणिगणा अर्पिता यस्मिंस्तं रथमारुह्य त्वं यदा भुवो मण्डलं न पर्यटसि तदा सेतवो भिद्येरन्निति त्रयाणामन्वयः । विस्फूर्जन्नादं कुर्वच्चण्डं कोदण्डं धनुर्यस्य । स्वसैन्यस्य चरणैः क्षुण्णं सङ्कुट्टितम् ।।५२-५३।।

भाव प्रकाशिका

न यदा इत्यादि पाँच श्लोकों का यह अर्थ है कि यद्यपि धर्म की रक्षा के प्रसङ्ग में सर्वत्र भ्रमण करने वाले आपका उसी प्रसङ्ग में आगमन सम्भव है, फिर भी यदि आपका कोई विशेष कार्य हो तो उसे आप बतलायें। श्लोकार्थ इस प्रकार है मणिसमूहजटित विजय प्रद रथ पर सवार होकर यदि आप भूमण्डल पर भ्रमण नहीं करें तो फिर अनेक प्रकार की मर्यादायें विनष्ट हो जायेंगी । इस तरह से तीनों श्लोकों का अन्वय है । टङ्कार करने वाला आपका धनुष प्रचण्ड है । अपनी सेना के चरणों से मर्दित पृथिवी को कँपाते हुए विशाल सेना के साथ आप यदि भ्रमण न करें तो अनेक मर्यादाएँ विनष्ट हो जायेंगी ।।५२-५३।।

तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः । भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन्बत दस्युभिः ।।५४।।
अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः । शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनंक्ष्यति ।।५५।।

अन्वयः— तदैव वर्णाश्रम निबन्धनाः सर्वे भगवद् रचिताः सेतवः बत दस्युभिः भिद्येरन् । लोलुपैः व्यङ्कुशैः नृभिः अधर्मश्च समेधेत । त्वयि शयाने दस्युग्रस्तः अयं लोकः विनंक्ष्यति ।।५४-५५।।

अनुवाद— यदि आप पृथिवी पर न भ्रमण करें तो उसी समय श्रीभगवान् के द्वारा निर्मित वर्णों एवं आश्रमों की मार्यादओं को चोर डाकू विनष्ट कर देंगे । लोलुप तथा निरङ्कुश मनुष्यों द्वारा अधर्म बढ़ने लग जायेगा । यदि आप संसार की ओर से निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ।।५४-५५।।

भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमाणां निबन्धनं यैः । बत अहो । निरङ्कुशैर्नृभिर्निमित्तभूतैः । शयाने निश्चिन्ते ।।५४-५५।।

भाव प्रकाशिका

आपके पृथिवी पर नहीं भ्रमण करने पर सभी वर्णों एवं आश्रमों के जो नियम बने हैं वे भगवद्रचित मर्यादायें ही विनष्ट हो जायेंगी । जगत् की ओर से आपके निश्चिन्त हो जाने पर निरङ्कुश और लोलुप मनुष्यों के द्वारा अधर्म समृद्ध हो जायेगा ।।५४-५५।।

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः । तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ।।५६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

अन्वयः— अथापि हे वीर त्वां पृच्छे यदर्थं त्वमिहागतः तद्वयं निर्व्यलीकेन हृदा प्रतिपद्यामहे ।।५६।।

अनुवाद— फिर भी हे वीर मैं आपसे यह पूछता हूँ कि इस समय आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है । आपकी आज्ञा का पालन मैं निष्कपट भाव से करूँगा ।।५६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

निर्व्यलीकेन सहर्षेण । प्रतिपद्यामहे स्वीकुर्महे ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

निर्व्यलीकेन पद का अर्थ है हर्षपूर्वक प्रतिपद्यमहे अर्थात् हम स्वीकार करते हैं ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

देवहूति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह

मैत्रेय उवाच

एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् । सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥१॥

अन्वयः— एवम् आविष्कृताशेष गुणकर्मोदयः सम्राट् सव्रीड इव उपारतं तं मुनिम् उवाच ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी ! इस प्रकार से जब कर्दम महर्षि ने मनुजी के समस्त गुणों और कर्मों की प्रशंसा की तो सम्राट् कुछ लज्जित सा होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे कर्दमायादाद्यथादिष्टं हि विष्णुना । मनुर्दुहितरं देवहूतिमित्युपवर्ण्यते ॥१॥ एवमाविष्कृतोऽभिष्टुताऽशेषाणां गुणानां कर्मणां चोदय उत्कर्षो यस्य स सम्राण्मनुः । सव्रीड इव स्वकीर्तिश्रवणात्, प्रत्याख्यानशङ्कया वा तं मुनिमुवाच । उपारतं निवृत्तिनिरतम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में महर्षि कर्दम को भगवान् विष्णु के आदेशानुसार मनुजी ने अपनी पुत्री को प्रदान किया उसी का वर्णन किया गया है ॥१॥ **एवमविष्कृता० इत्यादि**- इस तरह जिन सम्राट के समस्त गुणों तथा कर्मों के उत्कर्ष का वर्णन किया जा चुका था वे सम्राट् मनु अपनी कीर्ति को सुनने के कारण कुछ लज्जित से होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे । लज्जित से इसलिए हुए कि निवृत्ति परायण मुनि कर्दम से कह रहे हैं। लज्जित से वे इसलिए हो रहे थे कि मुनि उनके आग्रह का कहीं प्रत्याख्यान न कर दें ॥१॥

मनुरुवाच

ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया । छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥

अन्वयः— आत्मपरीप्सया, छन्दोमयः ब्रह्मा स्वमुखतः तपोविद्यायोगयुक्तान् अलम्पटान् युष्मान् असृजत् ॥२॥

मुनियों ने कहा

अनुवाद— हे मुने ! वेदमूर्ति ब्रह्माजी ने अपने वेदमय विग्रह की रक्षा के लिए तपस्या, क्रिया और योग से युक्त तथा विषयों से अनासक्त रहने वाले आप ब्राह्मणों की अपने मुख से सृष्टि की ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मदीया कन्या त्वयापरिणेयेति विज्ञापयिष्यन् युष्मदस्मत्संबन्धस्तावदीश्वरेण पूर्वमेव घटित इत्याह–ब्रह्मेति सार्धाभ्याम्। आत्मनः परीप्सया पर्याप्तुमिच्छया । छन्दोमयस्यात्मनः पर्याप्तिः पालनं वेदप्रवर्तन तस्येच्छया । युष्मान् ब्राह्मणान् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

आप मेरी पुत्री के साथ विवाह करें इस बात को कहने की इच्छा से आपलोगों तथा हमलोगों के सम्बन्ध को परमात्मा ने पहले से ही बना रखा हैं इस बात को **ब्रह्मा० इत्यादि** डेढ श्लोकों से मनु ने कहा । **आत्म परीप्सया** का अर्थ है अपने शरीर की रक्षा की इच्छा से । छन्दोमय शरीर की रक्षा वेदों का प्रवर्तन है । उसकी इच्छा से ब्रह्माजी ने आप ब्राह्मणों को अपने मुख से प्रकट किया है ॥२॥

तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् । हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

अन्वयः— तत् त्राणाय च अस्मान् सहस्रपात् दोः सहस्रात् असृजत् । तस्य हि हृदयम् ब्रह्म, क्षत्रम् अङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

अनुवाद— उस हजारों चरणों वाले विराट् पुरुष ने आपलोगों की ही रक्षा के लिए हम क्षत्रियों को अपनी हजारों भुजाओं से उत्पन्न किया । इसलिए ब्राह्मण को उनका हृदय और क्षत्रिय को विराट पुरुष का शरीर कहा जाता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्राणाय ब्राह्मणपालनाय । ब्रह्म ब्राह्मणजातिः । क्षत्रं क्षत्रियजातिः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए विराट् पुरुष ने हम क्षत्रियों की सृष्टि की है । इसीलिए ब्राह्मण को विराट् पुरुष का हृदय और क्षत्रिय को उनका शरीर कहा जाता है । ब्रह्म शब्द ब्राह्मणजाति का और क्षत्र शब्द क्षत्रिय जति का वाचक है ॥३॥

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः । रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥४॥

अन्वयः— अतो हि ब्रह्म क्षत्रंच अन्योयं आत्मानं अव्ययो देवः रक्षतिस्म यः सदसदात्मकः ॥४॥

अनुवाद— एक ही शरीर से सम्बद्ध होने के कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय और परस्पर में एक दूसरे की रक्षा करते हैं और उन दोनों की रक्षा निर्विकार ब्रह्म करते हैं जो सदसदात्मक अर्थात् कार्यकारण रूप हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एवं स देव एव रक्षति स्म । कोऽसौ । यः सदसदात्मकः सर्वात्मकः । तथाप्यव्ययो निर्विकारः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह वे श्रीभगवान् ही रक्षा करते हैं जो कार्यकारण रूप तथा निर्विकार हैं ॥४॥

तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः । यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥५॥

अन्वयः— तव दर्शनात् मे सर्वसंशयाः छिन्नाः यत् स्वयं भगवान् प्रीत्या रिरक्षिषोःधर्मम् आह ॥५॥

अनुवाद— आपके दर्शन से ही मेरे सारे संशय नष्ट हो गये क्योंकि आपने स्वयं रक्षा करने की इच्छा वाले मेरी प्रशंसा के माध्यम से धर्म का वर्णन किया है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तं विज्ञापयितुमेव तद्दर्शनादिकमभिनन्दति–तवेति त्रिभिः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उसी को विज्ञापित करने के लिए महाराजमनु महर्षि कर्दम के दर्शन की प्रशंसा तीन श्लोकों से करते हैं ॥५॥

दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् । दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

अन्वयः— अकृतात्मनाम् यो दुर्दर्शः भगवान् मे दिष्ट्या दृष्टः । दिष्ट्या मे भवतः शिवम् पादरजः शीर्ष्णा स्पृष्टम् ॥६॥

अनुवाद— जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है ऐसे लोगों को आपका दर्शन नहीं होता है, मेरे सौभाग्यवशात् आपका दर्शन मुझे मिला है और भाग्य से ही मैं आपके चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढा पाया हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अकृतात्मनामवशीकृतचित्तानाम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, यह अकृतात्मनाम् पद का अर्थ है ॥६॥

दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् । अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥

अन्वयः— दिष्ट्या त्वया अहम् अनुशिष्टः महान् अनुग्रहः च कृतः दिष्ट्या अपावृतैः कर्णरन्ध्रैः उशतीः गिरः जुष्टाः ॥७॥

अनुवाद— मेरे सौभाग्य से ही आपने मुझे राजधर्म का उपदेश दिया है, यह आपकी मुझ पर बहुत बड़ी कृपा है । अपने भाग्य के ही कारण मैंने आपकी कमनीय वाणी को अपना कान खोलकर सुना है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहोऽनुशासनादिरूप एव । उशतीरुशत्यः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आपका यह अनुशासन (उपदेश स्वरूप) कृपा है । और मैंने भी आपके उपदेशों को कान खोलकर सुना है ॥७॥

स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम । श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

अन्वयः— हे मुने ! कृपया भवान् दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनः मम दीनस्य श्रावितं श्रोतुमर्हसि ॥८॥

अनुवाद— हे मुने ! कृपा करके अपनी पुत्री के स्नेह के कारण चिन्ताग्रस्त मुझ दीन की बातों को आप सुनें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञापयति-स भवानिति सप्तभिः । दुहितुः स्नेहेन परिक्लिष्ट आत्मा यस्य । श्रावितं विज्ञापनम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु **सभवान् इत्यादि** सात श्लोकों से अपनी बातों को बतलाते है । उन्होंने कहा कि पुत्री के प्रति स्नेह होने के कारण मेरा मन चिन्तित है । अतएव आप मेरी बातों को सुनें । श्रावितशब्द का अर्थ है विज्ञापन ॥८॥

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम । अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥

अन्वयः— इयं मम दुहिता प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसा वयः शीलगुणादिभिः युक्तं पतिं अन्विच्छति ॥९॥

अनुवाद— यह मेरी कन्या प्रियव्रत और उत्तानपद की बहिन है, यह अवस्था गुण तथा शील आदि से युक्त पति को प्राप्त करना चाहती है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेति पुत्रिकाकरणशङ्का निरस्ता । मम सुतेति क्षत्रकन्या तव योग्येति दर्शितम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन है यह कहकर मनुजी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसको किसी से लेकर मैने अपनी पुत्री नहीं बनाया है । मम सुता कहकर उन्होंने कहा कि यह क्षत्रिय जाति की मेरी पुत्री है अतएव यह आपके योग्य है ।।९।।

यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् । अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ।।१०।।

अन्वयः— यदा तु एषा नारदात् भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् अशृणोत् त्वयि कृत निश्चया आसीत् ।।१०।।

अनुवाद— जबसे इसने नारदजी के मुख से आपके शील, विद्या, रूप अवस्था आदि गुणों को सुना है तबसे इसने आपको ही अपना पति बनाने का निश्चय कर लिया है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

एषा देवहूतिः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

मूल के एषा पद के द्वारा दवहूति का निर्देश किया गया है ।।१०।।

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया । सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ।।११।।

अन्वयः— हे द्विजाग्र्य मया श्रद्धया उपाहृताम् इमां ते गृहमेधिषु कर्मसु सर्वात्मनानुरूपां प्रतीच्छ ।।११।।

अनुवाद— हे ब्राह्मणवर्य ! मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक आपको समर्पित जो आपके सभी गृहस्थोचित कार्यों के लिए सर्वथा अनुकूल है, इसको आप स्वीकार करें ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रतीच्छ स्वीकुरु ।।११।।

भाव प्रकाशिका

आप स्वीकार करें ।।११।।

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते । अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।।१२।।

अन्वयः— उद्यतस्य हि कामस्य निर्मुक्तसङ्गस्य अपि प्रतिवादः न शस्यते कामरक्तस्य पुनः किम् ?।।१२।।

अनुवाद— स्वतः प्राप्त भोग्य पदार्थ का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता और जो विषयासक्त हो तो उसकी बात ही क्या है ?।।१२।।

भावार्थ दीपिका

उद्यतस्य स्वतःप्राप्तस्य विषयस्य । प्रतिवादः प्रत्याख्यानम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

स्वतः प्राप्त विषय का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता है ।।१२।।

य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते । क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ।।१३।।

अन्वयः— यः उद्यतम् अनादृत्य कीनाशम् अभिचायते तत् स्फीतं यश क्षीयते अवज्ञया मानश्च हतः ।।१३।।

अनुवाद— जो मनुष्य स्वतःप्राप्त भोग का निरादर करके किसी कृपण से उसकी याचना करता है, उसका फैला हुआ यश क्षीण हो जाता है और दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के कारण उसका मान भङ्ग भी हो जाता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

कीनाशं कृपणम् । अवज्ञया परापमानेन ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

कीनाश शब्द कृपण का बोधक है और अवज्ञया पद का अर्थ है दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के द्वारा ।।१३।।

अहंत्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् । अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रति गृहाण मे ।।१४।।

अन्वयः— हे विद्वन् ! अहंत्वा विवाहार्थं समुद्यतं अशृण्वम् अतः त्वम् उपकुर्वाणः प्रत्तां मे प्रतिगृहाण ।।१४।।

अनुवाद— हे विद्वन् । मैंने सुना है कि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं अतएव उपकृत होने वाले आप मेरे द्वारा समर्पित की गयी इस कन्या को स्वीकार करें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

यस्य सावधि ब्रह्मचर्यं स उपकुर्वाणः । मे प्रत्तां मया दत्ताम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जिसका ब्रह्मचर्य एक निश्चित समय तक के ही लिए होता है, वह उपकुर्वाण कहलाता है । मे प्रत्ताम् का अर्थ है मेरे द्वारा प्रदत्त । महाराज मनु ने कहा कि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं है । एक समय सीमा तक ही आपको ब्रह्मचर्य का पालन करना है, अतएव आप उपकुर्वाण हैं । क्योंकि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं, अतएव आप मेरे द्वारा समर्पित इस कन्या को स्वीकार करें ।।१४।।

ऋषिरुवाच

बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा । आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ।।१५।।

अन्वयः— बाढम् अहम् उद्वोढुकामः तवात्मजा अप्रत्ता, असौ अनुरूपयोः आवयोः आद्यः वैवाहिकः विधिः ।।१५।।

कर्दम ऋषि ने कहा

अनुवाद— ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी यह कन्या भी किसी को प्रदत्त नहीं है । अतएव यह हम एक दूसरे के अनुरूप हैं । हमदोनों का यह प्रथम वैवाहिक विधि है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अप्रत्ता चेति मय्येव कृतनिश्चयत्वात्कस्मैचिदपि श्रुता च न भवतीत्यर्थः । आद्यः प्रथमः, ततः पूर्वं विवाहाभावात्। मुख्य इति वा ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

चूंकि इसने पहले से ही मुझको अपना पति बना लिया था अतएव इसको अपने किसी दूसरे को प्रदान करने का वचन नहीं दिया है । अतएव यह हम दोनों का प्रथम वैवाहिक विधि है । क्योंकि इससे पहले विवाह होता ही नहीं था । अथवा यह हम दोनो का मुख्य विवाह है ।।१५।।

कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ।
क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ।।१६।।

अन्वयः— हे नरदेव सः समाम्नायविधौ प्रतीतः कामः अस्याःपुत्र्याः भूयात् स्वयैव कान्त्या श्रियम् क्षिपतीव ते तनयां क एव न आद्रियेत ।।१६।।

अनुवाद— हे राजन् ! वेदोक्त विवाह विधि में वर्णित जो काम है, वह सन्तनोत्पादन मनोरथ स्वरूप है। वह आपकी इस कन्या के साथ हमारा सम्बन्ध होने से सफल होगा । जो अपनी शरीर की कान्ति से भूषणों आदि की शोभा को तिरस्कृत करती है आपकी उस पुत्री का समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

भूयाद्भवेत् । प्रतीतः 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या' इत्यादिमन्त्रप्रसिद्धः । स्वयाङ्गकान्त्यैव । श्रियं भूषणादिशोभाम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

भूयात् का भवेत् के अर्थ में प्रयोग हुआ है । अर्थात् होना चाहिए । वेद के गृभ्णामि ते इत्यादि मन्त्र में जिस काम की प्रतीति होती है वह सन्तानोत्पादन मनोरथ स्वरूप है । आपकी पुत्री के साथ सम्बन्ध होने पर वह सफल होगा । आपकी पुत्री तो अपने अङ्गों की शोभा से भूषणों की भी कान्ति को तिरस्कृत करती है । इसका समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

या हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।
विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥१७॥

अन्वयः— हर्म्यपृष्ठे विक्रीडतीम् कन्दुकम् विह्वलाक्षीम्, क्वणदङ्घ्रिशोभां यां विलोक्य संमोहविमूढचेताः विश्वावसु स्वविमानात् न्यपतत् ॥१७॥

अनुवाद— अपने छत के ऊपर कन्दुक क्रीडा में संलग्न होने के कारण जिसके नेत्र चञ्चल हो गये थे और जिसके पैरों की पायल झनकार कर रहे थे, उसकी शोभा को देखकर मोहग्रस्त होकर विश्वावसु नामक गन्धर्व अपने विमान से गिर पड़ा था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

यां विलोक्य न्यपतत् । संमोहेन विमूढं व्याकुलं चेतो यस्य । क्वणद्भ्यामङ्घ्रिभ्यां शोभा यस्याः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

आपकी पुत्री के पैरों में बजती हुयी पायल से भूषित पैरों की शोभा को देखकर विश्वावसु नामक गन्धर्व मोहग्रस्त होकर अपने विमान से गिर पड़ा । इसके शरीर की कान्ति भूषण की भी कान्ति को तिरस्कृत करने वाली है ॥१७॥

तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।
वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८॥

अन्वयः— तां प्रार्थयन्तीम् ललनाललामम् असेवितश्रीचरणैः अदृष्टाम् मनोः वत्सां उच्चपदः स्वसारम् अभियाताम् कः बुधः नानु मन्येत ॥१८॥

अनुवाद— उस चाहने वाली रमणिरत्न, जिसने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है, उनके लिए अदर्शनीय, आप महाराज मनु की पुत्री और उत्तानपाद की बहिन जो स्वयं यहाँ आयी हुयी है, उसका कौन विज्ञ पुरुष समादर नहीं करेगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तां ललनानां ललामं भूषणभूताम् । असेवितौ श्रियश्चरणौ यैस्तैरदृष्टां द्रष्टुमप्ययोग्याम् । उच्चपद उत्तानपादस्य । अभियातां स्वयं प्राप्ताम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जो रमणियों को भी अलंकृत करने वाली है जिन लोगों ने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है वे लोग तो इसका दर्शन भी नहीं कर सकते है। जो आप की पुत्री है और उत्तानपाद की बहन है, साथ ही यहाँ स्वयम् आयी हुयी है, भला कौन ऐसा विज्ञ होगा जो उसका समादर न करे ॥१८॥

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥

अन्वयः— अतः समयेन साध्वीं भजिष्ये । यावद् मे आत्मनो तेजः विभृयात् । अतः शुक्ल प्रोक्तान् अविहिंस्रान् पारमंहस्यमुख्यान् धर्मान् बहुमन्ये ॥१९॥

अनुवाद— मैं आपकी इस साध्वी पुत्री को अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक शर्त के साथ। जब तक यह गर्भ धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गृहस्थधर्म के अनुसार रहूँगा। उसके पश्चात् स्वयं श्रीभगवान् से ही कहे गये हिंसारहित संन्यास प्रधान धर्मों का अधिक महत्व दूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भजिष्ये स्वीकरिष्ये । यावदपत्योत्पत्तिस्तावद्गार्हस्थ्यं ततः परं संन्यासः इति भाषाबन्धः समयः । तमेवाह । यावदात्मनो मम तेजो गर्भं बिभृयात् । यद्वा ममात्मनो देहाच्च्युतं तेजो वीर्यं बिभृयादिति । अतः परं पारमहंस्यं ज्ञानं तस्मिन्मुख्यान् शुक्लेन विष्णुना साक्षात्प्रकर्षेणोक्तानविहिंस्रान्हिंसारहितान् शमादीन्बहु यथाभवत्येवमनुष्ठेयान्मन्ये ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

कर्दम महर्षि ने महाराज मनु से कहा कि मैं आपकी पुत्री को स्वीकार करूँगा किन्तु एक शर्त के साथ। जब तक सन्तानोत्पत्ति होगी तब तक मैं गार्हस्थ्य का पालन करूँगा और उसके पश्चात् मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा। यही भाषाबन्ध शर्त है। उसी को महर्षि कर्दम ने कहा जब तक यह मेरे तेज को धारण करेगी। अथवा मेरे शरीर से निकले हुए वीर्य को गर्भ रूप में धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार रहूँगा, उसके पश्चात् संन्यास प्रधान अर्थात् ज्ञान प्रधान तथा श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट हिंसा रहित शम दमादि आदि बहुत धर्म जिसमें अनुष्ठेय होते हैं उस संन्यास धर्म को मैं ग्रहण कर लूँगा ॥१९॥

यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते ।
प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥२०॥

अन्वयः— यतः इदं विचित्रं विश्वम् अभवत् यत्र च संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते एष प्रजापतीनां पतिरेव च भगवान् अनन्त एव मह्यं परं प्रमाणम् ॥१९॥

अनुवाद— जिनसे यह विचित्र जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें जाकर यह लीन हो जायेगा और जिनके आधार पर यह जगत् टिका है वे प्रजापतियों के भी पति श्रीभगवान् ही परम प्रमाण हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु तव पितुः प्रजापतेराज्ञा सृष्टावेव न संन्यासे तत्राह-यत इति । संस्थास्यते च लयं यास्यति । वावेति एवार्थे ऋणत्रयापाकरणानन्तरं संन्यास एव मादृशानां भगवतोक्त इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि आपके पिता प्रजापति की आज्ञा तो सृष्टि ही करने के लिए है संन्यास के लिए नहीं तो उसका उत्तर **यतोभवद्० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है। यह विचित्र जगत् जिनके द्वारा सृष्ट है और

प्रलयकाल में यह जगत् जिनमें लीन हो जायेगा । वाव यह अव्यय निश्चयार्थक है । श्रीभगवान् ने हम जैसे जीवों को तीनों ऋणों का चुका लेने के पश्चात् संन्यास ही ग्रहण करने के लिए कहा है ॥२०॥

मैत्रेय उवाच

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।
धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥

अन्वयः— हे उग्रधन्वन् ! सः इयदेव आवभाषे धिया अरविन्दनाभम् उपगृह्णन् तुष्णीं च आसीत् । स्मितशोभितेन मुखेन देवहुत्याः चेतो लुलुभे ॥२१॥

अनुवाद— हे प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम केवल इतना ही कहे, फिर वे अपने हृदय में भगवान् पद्मनाभ का ध्यान करते हुए मौन हो गये । उनके मन्दमुस्कान युक्त मुख को देखकर देवहूति का मन लुभा गया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हे उग्रधन्वन्विदुर । लुलुभे मुनेर्मुखेन प्रलोभ्यते स्म । यद्वा मुखेन प्रलोभितवान् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हे उग्रधनुषधारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम के मुख को देखकर देवहूति लुभा गयी । अथवा महर्षि ने अपने मुख से देवहूति को प्रलोभित किया ॥२१॥

सोऽनु ज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् । तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

अन्वयः— सः अनु महिष्याः दुहितुः च स्फुटम् व्यवसितं ज्ञात्वा, प्रहर्षितः तस्मै गुणगणाढ्याय तुल्यां प्रददौ ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे महारानी और पुत्री दोनों की स्पष्ट अनुमति को जानकर अनेक गुण समूह से सम्पन्न महर्षि कर्दम को उन्होंन कर्दमजी के समान गुणों वाली प्रसन्नता पूर्वक कन्या का दान दे दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स मनुः । अन्वनन्तरम् । महिष्याश्च व्यवसितं निश्चयं ज्ञात्वा ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वे मनु उसके पश्चात् महारानी के निश्चय को जानकर महर्षि को अपनी पुत्री का दान कर दिये ॥२२॥

शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् । दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥२३॥

अन्वयः— महाराज्ञी शतरूपा महाधनान् पारिवर्हान् भूषावासः परिच्छदान् दम्पत्योः प्रीत्या पर्यदात् ॥२३॥

अनुवाद— महारानी शतरूपा ने भी बहुमूल्य वस्त्र आभूषण तथा गृहस्थोचित गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को प्रेमपूर्वक दहेज में दे दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

परिबर्हान्विववाहकाले प्रदेयान् । भूषाः भूषणानि वासांसि परिच्छदान्गृहोपकरणानि च ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महारानी शतरूपा ने विवाह के समय दिए जाने वाले वस्त्र, आभूषण तथा गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को बड़े प्रेम से प्रदान किया ॥२३॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः । उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥
अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन्बाष्पकलां मुहुः । आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥

अन्वयः— सदृक्षाय प्रत्तां दुहितरं सम्राट् गतव्यथः औत्कण्ठयोन्मथिताशयः बाहुभ्याम् उपगुह्य तद् विरहम् अशक्नुवन् मुहुः बाष्पकलां मुंचन् अम्बवत्से इति नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः असिंचत् ॥२४-२५॥

अनुवाद— योग्य वर को अपनी पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । चलते समय वियोग नहीं सह सकने के कारण उन्होंने पुत्री को अपनी छाती से लगा लिया, और हे अम्ब, हे वत्से इस तरह से कहकर बार-बार अपने आंसुओं को बहाते हुए आंसुओं से देवहूति के केशों का सींच दिये ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्तां दत्ताम् । सदृक्षाय सदृशाय । गता व्यथा चिन्ता यस्य । औत्कण्ठ्येनोन्मथितः क्षुभित आशयो यस्य । तस्या विरहं सोढुं हे अम्ब हे वत्से इति ब्रुवन् । सन्धिरार्षः । शिखाः केशानासिञ्चत् ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

योग्य वर को पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । वियोग के नही सकने के कारण व्याकुल चित्त वाले महाराज ने अपनी पुत्री को हृदय से लगा लिया और परस्पर में हे माँ, हे पुत्रि ! कहते हुए देवहूति के केशों को सींच दिये । वत्सेति में सन्धि आर्ष है ॥२४-२५॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः । प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥
उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः । ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥२७॥

अन्वयः— तं मुनिवरम् आमन्य अनुज्ञातः सहानुगः समार्यः रथम् आरुह्य ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः उभयोः सुरोधसोः उपशान्तानां ऋषीणाम् आश्रमसम्पदः पश्यन् नृपः स्वपुरं प्रतस्थे ॥२६-२७॥

अनुवाद— मुनिश्रेष्ठ कर्दम महर्षि से पूछकर तथा उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपने अनुचरों के साथ सपत्निक रथ पर बैठकर ऋषि कुल सेवित सरस्वती नदी के दोनों तटों पर विद्यमान शान्तिप्रधान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए राजा अपने नगर के लिए प्रसथान किए ॥२६-२७॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिकुलहितायाः उभयोः सुरोधसोः शोभनतटयो ॥२६-२७॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिकुलों का कल्याण करने वाली सरस्वती नदी के सुन्दर तटों पर विद्यमान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए अपने नगर के लिए प्रस्थान किए ॥२६-२७॥

तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् । गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

अन्वयः— तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रहर्षिताः प्रजाः पतिम् गीत संस्तुति वादित्रैः प्रत्युदीयुः ॥२८॥

अनुवाद— उनको आते हुए जानकर ब्रह्मावर्त की अत्यन्त प्रहर्षितप्रजा गीत स्तुति एवं वाद्यों के साथ आगे आकर उनकी अगवानी की ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ब्रह्मावर्तादेशात्प्रजाः पतिं प्रत्युज्जग्मुः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने आते हुए स्वामी को जानकर ब्रह्मावर्त की प्रजाओं ने उनकी अगवानी की ॥२८॥

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता । न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

अन्वयः— सर्वसम्पत् समन्विता बर्हिष्मती नाम पुरी अङ्गं विधून्वतः यज्ञस्य रोमाणि यत्र न्यपतन् ॥२९॥

अनुवाद— सभी प्रकार की सम्पदाओं से युक्त बर्हिष्मती नाम की नगरी थी, जहाँ पर पृथिवी को रसातल से ले आने के पश्चात् वराह भगवान् जब अपने अङ्गों को फड़फडाए तो वहाँ पर उनके सेएँ गिर पड़े थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ ब्रह्मावर्त इत्यपेक्षायामाह-यत्र बर्हिष्मती नाम पुरीति । साऽपि कुत्र । यत्र यज्ञस्य यज्ञवराहस्य रोमाणि न्यपतन्निति यत्रेति सर्वत्र संबध्यते ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वह ब्रह्मवर्त कौन है ? इस प्रकार की शङ्का होने पर कहा गया है **यत्र बर्हिष्मती इत्यादि** जहाँ पर बर्हिष्मती नाम की नगरी है । वह नगरी कहाँ पर है, तो इसका उत्तर है कि जहाँ पर यज्ञवराह के रोम गिर पड़े थे । सब जगह यत्र पद को जोड़ना चाहिए ॥२९॥

कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः । ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥३०॥

अन्वयः— शश्वत् हरित वर्चसः त एव कुशाः काशा आसन् ऋषयः यैः यज्ञघ्नान् पराभाव्य यज्ञम् ईजिरे ॥३०॥

अनुवाद— सदा हरे बने रहने वाले वे ही (रोम ही) कुश और काश हो गये, जिन सबों से ऋषियों ने यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों का तिरस्कार यज्ञों के द्वारा करके श्रीभगवान् की आराधना की ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

बर्हिष्मतीनामनिरुक्तिं ब्रुवन्प्रसङ्गाद्देशस्य श्रैष्ठ्यमाह द्वाभ्याम् । कुशाः काशाश्चासन् । शश्वन्नित्यं हरितं वर्चो वर्णो येषाम्। यज्ञघ्नान् राक्षसादीन् । पराभावं नीत्वा यज्ञं विष्णुम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

बर्हिष्मती नाम की व्युत्पत्ति बतलाते हुए दो श्लोकों से प्रसङ्गवशात् देश की श्रेष्ठता को बतलाते हैं । वे वाराह भगवान् के रोम ही कुश और काश हो गये । जिन सबों का रूप सदा हरा ही बना रहता है वे ही कुश और काश कहलाते हैं । ऋषियों ने कुशों तथा काशों के द्वारा ही यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों को परास्त करके भगवान् विष्णु की आराधना की ॥३०॥

कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगावान्मनुः । अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥

अन्वयः— यतः भुवं स्थानं लब्धा भगवान् मनुः कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य यज्ञपुरुषम् अयजत् ॥३१॥

अनुवाद— महाराज मनु भी वराह भगवान् से भूमि रूप निवास स्थान को प्राप्त करके कुश काश की चटाई बिछाकर यज्ञों से भगवान् विष्णु की आराधना किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञपुरुषं विष्णुं यत इति यत्रायजत् । भुवं स्थानम् । लब्धेति तृन्प्रत्ययान्तम् । लब्धवान्सन्नित्यर्थः । यतो लब्धवांस्तं यज्ञपुरुषमिति वा । एतेन स्वर्गादपि भूमिः श्रेष्ठा, तत्रापि तत्स्थानं श्रेष्ठमित्युक्तं भवति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ पर भगवान् मनु ने यज्ञों द्वारा यज्ञ स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना की । वराह भगवान् से भूमि रूपी निवास स्थान को प्राप्त करके । तृन् प्रत्यान्त लब्धृ शब्द का रूप है लब्धा । अर्थात् प्राप्त किया । अथवा

मनुजी ने यज्ञ पुरुष भगवान् को प्राप्त किया । इससे यह सिद्ध हो गया कि पृथिवी स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है और उसमें भी वराह भगवान् के रोएँ जहाँ गिरे वह स्थान श्रेष्ठ है ॥३१॥

बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् । तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥

अन्वयः— विभुः यां बर्हिष्मतीं नाम निर्विश्य समावसत् तस्यां तापत्रयविनाशनं भवनं प्राविशत् ॥३२॥

अनुवाद— महाराज मनु जिस बर्हिष्मती नाम की नगरी को बसाकर उसमें निवास करते थे उस नगरी में तीनों तापों को विनष्ट करने वाले अपने भवन में प्रवेश किए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह । यां बर्हिष्मतीं नाम पुरीं समावसत् । पूर्वं यस्यामुषितस्तस्यां निर्विश्य भवनं प्रविष्टः सन् भोगान्बुभुज इत्यन्वयः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

बीच में अनेक प्रकार के वर्णन आ जाने से प्रस्तुत प्रसङ्ग को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस बर्हिष्मती नगरी में महाराज मनु रहते थे । अर्थात् पहले जिसमें निवास कर चुके थे उसी नगरी के तापत्रय विनाशक भवन में वे प्रवेश किए और भोगों को भोगे ॥३२॥

सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः । संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥३३॥

अन्वयः— सभार्यः सप्रजः अन्याविरोधतः कामान् बुभुजे प्रत्यूषेषु सस्त्रीभिः सुरगायकैः संगीयमानसत्कीर्ति अनुबद्धेन हृदा हरेः कथाः शृण्वन् ॥३३॥

अनुवाद— अपनी पत्नी और सन्तान के साथ वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अविरोधी भोगों को भोगने लगे । प्रातःकाल की बेला में अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे । किन्तु वे श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेमपूर्वक सुनते थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां धर्मादीनामविरोधेन । प्रत्यूषेषु उषःसु संगीयमाना सत्कीर्तिर्यस्य, तथापि स्वयं हरेरेव कथाः शृण्वन्भोगान्बुभुजे ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

वे धर्म, अर्थ एवं मोक्ष के अनुकूल ही भोगों को भोगते थे । प्रातःकाल में गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे; किन्तु वे उसमें आसक्त नहीं होकर श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेम पूर्वक सुनते थे ॥३३॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् । यदाभ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३४॥

अन्वयः— योगमायासु निष्णातम् भगवत् परम् यत् भोगाः मुनिम् स्वयाम्भुवम् मनुम् आभ्रंशयितुम् न शेकुः ॥३४॥

अनुवाद— अपनी इच्छा के अनुसार भोगों की रचना करने में समर्थ भगवत् परायण और मननशील स्वायम्भुव मनु को भोग विचलित नहीं कर सके ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

योगमायासु ऐच्छिकभोगरचनासु । यद्यतः आभ्रंशयितुं आ ईषदपि भ्रंशयितुमभिभवितुम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

स्वायम्भुव मनु अपने मनोनुकूल भोगों की रचना में निष्णात थे भगवत्परायण थे और मननशील थे, इसीलिए भोग उनको थोड़ा सा भी विचलित करने में असमर्थ थे ॥३४॥

अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वान्तरयापनाः । शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

अन्वयः— विष्णोः कथाः ब्रुवतः शृण्वतः ध्यायतः कुर्वतः तस्य स्वान्तरयापनाः यामाः अयातयामाः आसन् ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु की कथा को कहते हुए सुनते हुए ध्यान करते हुए तथा उसकी रचना करते हुए उनके मन्वन्तर को व्यतीत करने वाले याम (प्रहर) कभी व्यर्थ नहीं बितते थे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अतो यातो यामो यस्य पक्वस्यान्नस्य तद्गतसारं भवति, अतोऽन्यदपि गतसारं यातयाममुच्यते । अयातयामा अगतसारा आसन् । स्वान्तरं तदीयं मन्वन्तरं यापयन्ति गमयन्ति ते यामाः कालावयवाः । कुर्वतः स्ववाक्यैरुपनिबध्नतः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जिस पके हुए अन्न के एक प्रहर बीत जाते हैं वह पका हुआ अन्न निस्सार हो जाता है । इसी तरह से दूसरी भी वस्तुएँ जो सारहीन हो जाती है वे गतयाम कहलाती हैं । जिन सबों के द्वारा उनका मन्वन्तर बीत जाता है, वह इनके मन्वन्तर रूपी काल का भाग कभी इसलिए व्यर्थ नही बितता था कि वे सदा श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करते थे, ध्यान करते थे, स्वयम् उसकी रचना करते थे और दूसरों को सुनाते थे ॥३५॥

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् । वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥

अन्वयः— एवं वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः स्वान्तरं युगानामेकसप्ततिम् निन्ये ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह अपनी जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओं अथवा सत्त्वादि तीन गुणों को अभिभूत करके मनु महाराज भगवान् वासुदेव की कथा के प्रसङ्ग में ही अपने मन्वन्तर के इकहत्तर हजार चतुर्युग बिता दिए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

परिभूतं गतित्रयं जाग्रदादि सात्त्विकादि वा येन ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

निरन्तर भगवत कथा के प्रसङ्ग में लगे रहने के कारण मनुजी ने अपने सात्त्विकादि तीनों गुणों अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थाओं को अभिभूत कर दिया था ॥३६॥

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः । भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥३७॥

अन्वयः— हे वैयासे हरिसंश्रयम्, शारीराः मानसाः दिव्याः मानुषाः भौतिकाश्च क्लेशाः कथं बाधन्ते ॥३७॥

अनुवाद— हे व्यासनन्दन ! श्रीहरि के ही आश्रय में रहने वाले पुरुष को शारीरिक, मानसिक, आकाश से होने वाले वज्रपात आदि, शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले तथा हिंस्रादि जीवों से उत्पन्न होने वाले क्लेश कैसे बाधित कर सकते हैं ?॥३७॥

भावार्थ दीपिका

दिव्यास्त्वान्तरिक्षाः । मानुषाः शत्रुप्रभवाः । भौतिकाः शीतोष्णादिप्रभवाः । वैयासे हे विदुर ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

वैयासे पद से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । मैत्रेयजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीभगवान् को ही अपना आश्रय मानता है, उसको शारीरक मानसिक, अन्तरिक्ष जन्य शत्रुजन्य, भूतजन्य, शीतउष्ण इत्यादि क्लेश नहीं बाधित कर सकते हैं । अन्तरिक्ष से होने वाले वज्रपात आदि मानुष अर्थात् शत्रुओं से कष्ट तथा शीतोष्णादिजन्य क्लेश भगवद् भक्त को नहीं होते हैं ॥३७॥

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् । नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

अन्वयः— यः मुनिभिः पृष्टः सर्वभूहितः सदा नृणां वर्णाश्रमाणां च नानाविधान् शुभान् धर्मान् प्राह ॥३८॥

अनुवाद— सभी जीवों के कल्याण में सदा लगे रहने वाले जो मनुजी मुनियों द्वारा पूछे जाने पर मनुष्यों तथा आश्रमों के लिए कल्यापकारी अनेक प्रकार के मङ्गलमय धर्मों का उपदेश दिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य ज्ञानातिशयमाह-य इति । नृणां साधारणधर्मान् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मनुजी के ज्ञानातिरेक को बतलाया गया है, मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने मनुष्यों के साधारण धर्मों तथा भिन्न-भिन्न वर्णों एवं आश्रमों के विशेषधर्मों का वर्णन किया था । वही आज भी मनुस्मृति के रूप में संगृहीत है ॥३८॥

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् । वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— एतत् वर्णनीयस्य आदिराजस्य मनोः अद्भुतं चरितम् ते वर्णितं तत् अपत्योदयं शृणु ॥३९॥

अनुवाद— यह मैंने वर्णन करने योग्य आदिराजा मनु जी के अद्भुत चरित को आपको सुनाया अब आप उनकी सन्तान देवहूति का प्रभाव सुनें ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य यदपत्यं देवहूतिस्तस्योदयं प्रभावम् ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

मनुजी के चरित को सुनने के पश्चात् अब उनकी पुत्री देवहूति के प्रभाव को आप सुनें ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

कर्दम और देवहूति का विहार

मैत्रेय उवाच

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा । नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥

अन्वयः— पितृभ्यां प्रस्थिते इंगितकोविदा साध्वी नित्यं भवं प्रभुम् भवानीव पतिं प्रीत्या पर्यचरत् ॥१॥

अनुवाद— हे विदुरजी माता-पिता के चले जाने पर अपने पति के अभिप्राय को जानने वाली देवहूति उसी तरह कर्दम महर्षि की सेवा करने लगी जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे ततो योगनिर्मिते सर्वसंपदि । विमाने कामगे चित्रा तयो रतिरुदीर्यते ।।१।। प्रस्थिते गमने कृते सति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में योग के द्वारा निर्मित सभी सम्पत्तियों से सम्पन्न कामग विमान में कर्दम और देवहूति की अद्भुत रति का वर्णन किया गया है ।।१।। अपने माता-पिता के चले जाने पर देवहूति प्रेम पूर्वक अपने पति कर्दम महर्षि की सेवा उसी तरह करने लगीं जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ।।१।।

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च । शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ।।२।।

अन्वयः— भोः विश्रम्भेण, आत्मशौचेन, गौरवेण, दमेन, शुश्रूषया सौहृदेन मधुरया वाचा च ।।२।।

अनुवाद— हे विदुरजी वे महर्षि कर्दम के वाक्यों पर विश्वास पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम तथा मधुरवाणी पूर्वक सेवा करती थीं ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् । अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ।।३।।

अन्वयः— कामं, दम्भं, द्वेषं, लोभम्, अघम्, मदम् च विसृज्य नित्यं अप्रमत्ता उद्यता च तेजीयांसम् अतोषयत् ।।३।।

अनुवाद— देवहूति ने काम, दम्भ (कपट) द्वेष, लोभ, पाप और मद को त्यागकर सावधानी और सदा लगन के द्वारा अपने परम तेजस्वी पति महर्षि कर्दम् को प्रसन्न कर दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

दम्भं कपटम् । अघं निषिद्धाचरणम् । तेजीयांसमतितेजस्विनम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दम्भ कपट को कहते हैं और अघ, पाप को शास्त्र निषिद्ध कार्यों को करने को पाप कहते हैं । इस तरह की सेवा के द्वारा देवहूति ने परमतेजस्वी महर्षि कर्दम को प्रसन्न कर दिया ।।३।।

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् । दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ।।४।।

अन्वयः— दैवात् गरीयसः पत्युः महाशिषः आशसानाम् ताम् समनुव्रताम् मानवीम् स वै देवर्षिवर्यः अब्रवीत् इतिशेषः ।।४।।

अनुवाद— देवताओं से भी महान् अर्थात् देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ अपने पति महर्षि कर्दम से बहुत अधिक आशाओं वाली उनका अनुवर्तन (सेवा) करने वाली उस महाराज मनु की पुत्री देवहूति को वे श्रेष्ठ देवर्षि कहे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

दैवाद्गरीयसो दैवादपि गुरुतरात् । दैवमप्यन्यथा कर्तुं समर्थादित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

देवहूति यह जानती थी कि उनके पति देवताओं से भी महान् हैं वे देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ है, अतएव वे उनसे बहुत अधिक आशाएँ रखकर उनकी सच्ची निष्ठा के साथ सेवा करती थीं । इस प्रकार की देवहूति से महर्षि प्रसन्न होकर कहे ।।४।।

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया । प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— भूयसा कालेन व्रतचर्यया कर्शितां क्षामां कृपया पीडितः प्रेमगद्गदया वाचा अब्रवीत् ॥५॥

अनुवाद— बहुत दिनों से व्रत करने के कारण कृश तथा दुर्बल हुयी देवहूति को देखकर दया पीडित महर्षि कृपा करके कहें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

व्रतचर्यया कर्शितां तत्रापि भूयसा कालेनातिक्षामामित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

बहुत समय से व्रत का पालन करने के कारण दुबली-पतली तथा कमजोर हुयी देवहूति से महर्षि कर्दम ने कृपा परतन्त्र होकर कहा ॥५॥

कर्दम उवाच

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

अन्वयः— हे मानवि ! अद्य अहम् मानदायाः तव परमया शुश्रूषया, परया भक्त्या च तुष्टः यद् अयं स्वदेहः देहिनाम् अतीव सुहृत् तम्, मदर्थे समुचितः क्षपितुं न अवेक्षितः ॥६॥

कर्दम महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे मनुपुत्रि आज मैं तुम्हारी पराभक्ति तथा श्रेष्ठ सेवा के कारण प्रसन्न हो गया हूँ । सभी देहधारियों को यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय और आदर की वस्तु होता है । किन्तु तुमने मेरी अच्छी तरह से सेवा करने के लिए उसके भी क्षीण होने की कोई परवाह नहीं की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सुहृत्प्रियः । मदर्थे क्षपयितुं नावेक्षितो न गणितः । समुचितः श्लाघ्योऽपि मत्सेवासक्तयोपेक्षित इत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने देवहूति से कहा कि तुमने उत्तम भक्ति पूर्वक मेरी सेवा की है, अतएव आज मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । शरीर धारियों का यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय होता है किन्तु मेरी सेवा में लगी हुयी तुमने उसकी भी परवाह नहीं की ॥६॥

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपः समाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।
तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥

अन्वयः— स्वधर्मनिरतस्य मे तपः समाधि विद्यात्मयोगविजिताः भगवत्प्रसादाः मदनुसेवनया अवरुद्धान् तान्एव अभयान् अशोकान् ते वितरामि ते दृष्टिं वितरामि प्रपश्य ॥७॥

अनुवाद— अपने धर्म का पालन करने वाले मेरी तपस्या समाधि उपासना और योग के द्वारा भय एवं शोक से रहित श्रीभगवान् की कृपा के फलस्वरूप जिन विभूतियों को मैंने प्राप्त किया है, उन सबों को तुमने भी मेरी सेवा के द्वारा प्राप्त कर लिया है, मैं तुमको दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ उन सबों को तुम देखो ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तपश्च समाधिश्च विद्या च उपासना च तासु य आत्मयोगश्चित्तैकाग्र्यं तेन विजिता: प्राप्ता भगवत्प्रसादा दिव्यभोगास्तानेव तेऽवरुद्धास्त्वयाऽपि वशीकृतान्प्रपश्य । ते दिव्यां दृष्टिं वितरामि । यया द्रष्टासि द्रक्ष्यसि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तपस्या, समाधि उपासना, तथा चित्त की एकाग्रता रूप योग के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीभगवान् ने मुझे जिन विभूतियों को प्रदान किया है, उन सबों को मेरी सेवा करके तुमने अपने वश में कर लिया है । मैं तुमको दृष्टि प्रदान करता हूँ उसके द्वारा तुम उन सबों को देख लोगी ।।७।।

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचना: किमुरुक्रमस्य ।
सिद्धासि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभि: ।।८।।

अन्वय:— पुन: अन्ये उरुविक्रमस्य भगवत: भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचना: किम्, सिद्धासि नृप विक्रियाभि: दुरधिगमान् निज धर्मदोहान् विभवान् भुंक्ष्व ।।८।।

अनुवाद— दूसरे भोग तो अपरिमित शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के भौहों के थोड़ी सी टेढ़ी हो जाने से विनष्ट हो जाने वाले हैं, अतएव उन भोगों का कुछ भी महत्त्व नहीं है । तुम तो पातिव्रत्य धर्म का पालन रूप मेरी सेवा से ही सिद्ध हो गयी हो । मैं राजा हूँ इस तरह से अभिमान करने वालों के लिए ये भोगदुष्प्राप्य हैं । अतएव अपने धर्म पालन से प्राप्त ऐश्वर्यों का तुम भोग करो ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अन्ये पुनर्भोगा: किं । न किमपि । अतितुच्छा इत्यर्थ: । तत्र हेतु:- भगवत उरुक्रमस्य या भ्रूस्तस्या उद्विजृम्भो वक्रीभावस्तेन विभ्रंशिता अर्थरचना मनोरथा येषु । निजधर्मेण पातिव्रत्येन दुह्यन्त इति तथा तान् । दुरधिगान् दुष्प्रापान् । नृपा वयमिति या विक्रियास्तत्तद्भोगविकृतयस्ताभि: ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इन भोगों से जो भिन्न भोग हैं वे कुछ नहीं है । वे अत्यन्त तुच्छ है । क्योंकि अमित पराक्रम सम्पन्न श्रीभगवान् की भौहों के थोड़ी सी ढेढ़ी होने से वे सबके सब विनष्ट हो जाने वाले हैं । तुम्हारे पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव प्राप्त होने वाले इन ऐश्वर्यों का तुम उपभोग करो । मैं राजा हूँ इस प्रकार का जो अभिमान है, ऐसे अभिमान करने वाले राजाओं को ये भोगदुष्प्राप्य हैं ।।८।।

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।
संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ।।९।।

अन्वय:— एवं ब्रुवाणम् अखिलयोगमायाविद्याविचक्षणम् अवेक्ष्य अबला गताधि: आसीत् । संप्रश्रयप्रणय विह्वलया गिरा ईषद् व्रीडावलोकविलसद् हसितानना आह ।।९।।

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले अपने पति कर्दम महर्षि को सम्पूर्ण योगमाया और विद्याओं में कुशल देखकर उस देवहूति की सारी मनोव्यथा दूर हो गयी । और वे नम्रता और प्रेम से गद्गद वाणी से, किंचित् सङ्कोच पूर्ण चितवन और मुसकान युक्त मुख से कहने लगी ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अखिला योगमायाश्च विद्याश्च तत्तदुपासनास्तासु विचक्षणं निपुणमेवं ब्रुवाणं पतिमवेक्ष्य गताधिर्निश्चिन्ता जाता । संप्रश्रयो विनय: प्रणय: प्रेम ताभ्यां विह्वला गद्गदा तया गिरा ईषद्व्रीडासहितो योऽवलोकस्तेन विलसद्विकसितं हसितं जातहासं चाननं यस्या: सा । आह जगाद ।।९।।

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने जान लिया कि हमारे पतिदेव सभी योगमायाओं तथा उपासनाओं में निपुण हैं, यह देखकर उनकी सारी मानसिक चिन्ता समाप्त हो गयी। और नम्रता तथा प्रेम से गद्गद बनी हुयी वाणी से तथा किञ्चित् लज्जा युक्त अवलोकन से युक्त मनोहर बने मधुर मुस्कान युक्त मुख से वे कहने लगीं ॥९॥

देवहूतिरुवाच

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।
यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥

अन्वयः— हे द्विजवृषभ भर्तः विभो अमोघयोगमायाधिपे बत एतद राद्धम् तत् अवैमि । यः ते समयः अभ्यधायि सकृत् अङ्ग सङ्गो भूयात् । गरीयसि सतीनाम् प्रसवः गुणः ॥१०॥

देवहूति ने कहा

अनुवाद— हे द्विज श्रेष्ठ । स्वामिन् हे विभो ! मैं यह जानती हूँ कि आप कभी भी विफल नहीं होने वाली योगमाया के स्वामी हैं और आपको यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त है । आपने विवाह के समय में जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भ धारण करने तक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुख का उपभोग करूँगा उसकी भी पूर्ति अब होनी चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा संन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ लाभ है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

बतेति हर्षे । द्विजवृष द्विजश्रेष्ठ हे भर्तः, त्वय्येतत्सर्वं राद्धं सिद्धमेव । तदहमवैमि जानामि । किन्तु यस्ते त्वया समयोऽभिहितः स तावद्भूयात् । सकृदिति गर्भसंभवमात्रपर्यन्त इत्यर्थः । यस्माद्गरीयसि श्रेष्ठे भर्तरि हेतुभूते स्त्रीणां प्रसवो गुणो महान् लाभः । समासपाठे गरीयसि पत्यौ सति सतीनां यतो गुणप्रसवो गुणविस्तारो भवति । अतः पुत्रोत्पत्त्या मम गुणविस्तारे जाते पश्चात्त्वदुक्तं सर्वं भवत्विति भावः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

बत इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में है । देवहूति ने कहा हे द्विजश्रेष्ठ ! यह जानती हूँ कि आपको ये सभी भोग प्राप्त हैं । किन्तु आपने जो प्रतिज्ञा की थी उसकी भी पूर्ति होनी चाहिए । आपने यह कहा था कि जब तक मेरे तेज को धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ रहूँगा क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा सन्तान की प्राप्ति होना पतिव्रताओं का सबसे बड़ा लाभ है । समास युक्त पाठ होने पर अर्थ होगा कि श्रेष्ठ पति के होने पर प्रसव का होना सती नारियों का गुण विस्तार है । अतएव पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर जब मेरे गुण का विस्तार हो जाय तो उसके पश्चात् आपने जो कुछ कहा है वह होए ॥१०॥

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ।
सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥

अन्वयः— हे ईश तत्र यथोपदेशम् इति कृत्यम् उपशिक्षा, येन मे एषः अतिरिरंसया ते मनोभवधर्षितायाः दीनः आत्मा सिद्ध्येत तत् सदृशं भवनं विचक्ष्व ॥११॥

अनुवाद— हम दोनों के समागम के लिए शास्त्र के उपदेशानुसार जो कर्तव्य हो उसका आप उपदेश दें। और उसके लिए उपयोगी वस्तुओं को एकत्रित कर दें, अतएव मिलन की इच्छा से अत्यन्त दीन बना हुआ मेरा यह शरीर आपके अङ्गसङ्ग के योग्य बन जाय । क्योंकि आपके ही द्वारा बढ़ायी हुयी काम वेदना से मैं पीड़ित हूँ इसलिए एक उपयुक्त भवन की भी आप व्यवस्था करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गसङ्गार्थं च प्रथममितिकर्तव्यतां संपादयेत्याह । हे ईश, तत्राङ्गसङ्गे इतिकृत्यं साधनं यथोपदेशं कामशास्त्रानुसारेणोपशिक्ष संजानीहि । उपकल्पयेत्यर्थः। येन साधनेनाभ्यङ्गभोजनपानादिनातीव रन्तुमिच्छया कर्शितो दीनश्च ममैष आत्मा देहः शिष्येत रतिसमर्थो भवेत् कथंभूतायाः ते त्वयैव कृतः क्षोभितो यो मनोभवस्तेन धर्षितायाः । तद्योऽनुरूपं भवनं विमृश्य वितर्कय। विचारयेति यावत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उस अङ्ग सङ्ग के लिए जो पहले करना चाहिए आप उसको करें । उस समय क्रिया करने के लिए आप मुझे कामशास्त्र के अनुसार उपदेश दें । उसके पश्चात् साधनभूत शरीर मर्दन, भोजन पेय पदार्थ इत्यादि के द्वारा आपके साथ अत्यधिक रमण करने की इच्छा से दीन बना हुआ मेरा यह शरीर रतिक्रिया के योग्य हो जाय । से मैं तो आपके द्वारा क्षुब्ध हुए काम स अभिभूत हो गयी हूँ । उसके अनुकूल भवन का भी आप विचार करें॥११॥

मैत्रेय उवाच

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः । विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥१२॥

अन्वयः— प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमः योगम् आस्थितः कामगम् तर्हि एव कामगं विमानम् आविरचीकरत् ॥१२॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! अपनी प्रियतमा का प्रिय कार्य करने की इच्छा वाले महर्षि कर्दम उसी समय योग में स्थित होकर एक अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान की रचना किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि तत्क्षणमेव आविरचीकरदाविर्भावयांबभूव ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि ने उसी क्षण एक कामग विमान को उत्पन्न कर दिया ॥१२॥

सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् । सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥१३॥

अन्वयः— सर्वकामदुघं दिव्यं, सर्वरत्नसमन्वितम् सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कम् मणिस्तम्भैः उपस्कृतम् ॥१३॥

अनुवाद— वह विमान सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था, सुन्दर था, उसमें सभी प्रकार के रत्न भरे थे, वह सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से युक्त तथा वह मणिमय स्तम्भों मे युक्त था ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तदेव विशिनष्ट- सर्वकमदुघमिति नवभिः । सर्वैश्च रत्नादिभिः समन्वितम् । सर्वर्द्धीनां सर्वसंपदां य उपचयस्तस्योदर्कं उत्तरोत्तराभिवृद्धिर्यस्मिन् । उपस्कृत शोभितम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उस विमान की ही विशेषता **सर्वकामदुघं० इत्यादि** नव श्लोकों से बतलायी जा रही है । वह विमान सभी रत्नों से युक्त था । सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से समन्वित था ऐसा वह विमान उपस्कृत अर्थात् सुशोभित था॥१३॥

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् । पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥१४॥

अन्वयः— दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् विचित्राभिः पट्टिकाभिः पताकाभिः अलंकृतम् तत् आसीत् ॥१४॥

अनुवाद— वह विमान दिव्य सामग्रियों से युक्त था । वह सभी ऋतुओं में सुखपद था । वह अनेक प्रकार की पट्टिकाओं (झंडियों) और पताकाओं से सुसज्जित था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

उपकरणं परिकरः । पट्टिका अल्पविस्तारपट्टवस्त्रविशेषाः, पताका विस्तृतास्ताभिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उपकरण सामग्रियों को कहते हैं । छोटी-छोटी वस्त्र की बनी हुयी झंडियों को पट्टिका कहते है और वस्त्र निर्मित बड़ी-बड़ी पताकाओं को पताका कहा जाता है । इन सबों से सुसज्जित था वह विमान ॥१४॥

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः । दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥

अन्वयः— शिंजत्षडङ्घ्रिभिः विचित्रमाल्याभिः स्रग्भिः दुकूलक्षौमकोशेयैः नाना वस्त्रैर्विराजितम् तत् आसीत् ॥१५॥

अनुवाद— जिन पर भौंरे मधुर गुञ्जार कर रहे थे ऐसे रङ्ग-विरङ्गे पुष्पों की मालाओं तथा अनेक प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रों से वह विमान सुसज्जित था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

विचित्राणि माल्यानि पुष्पाणि यासु । मञ्जु यथा भवत्येवं सिञ्जन्तः कूजन्तः षडङ्घ्रयो यासु ताभिः स्रग्भिः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें अनेक प्रकार के पुष्प लगे थे ऐसी मालाओं से वह अलंकृत था । उन मालाओं पर भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे । वह विमान अनेक प्रकार के रेशमी तथा सूती वस्त्रों से अलंकृत था ॥१५॥

उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् । क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥

अन्वयः— उपर्युपरि विन्यस्त निलयेषु पृथक्-पृथक् क्षिप्तैः कशिपुभिः पर्यङ्कव्यजनासनैः कान्तं तत् विमानमासीत् ॥१६॥

अनुवाद— एक के ऊपर दूसरे बनाये गये कमरों में अलग-अलग रखे गये सुवर्णशय्या, चमर तथा आसनों से वह विमान बहुत ही सुन्दर दिखता था ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उपर्युपरि विरचितगृहेषु । कशिपुभिः शय्याभिः कान्तं कमनीयम् । पर्यङ्कादिभिश्च कान्तम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

एक के ऊपर दूसरे बनाये गये गृहों में विद्यमान शय्याओं से मनोहर तथा पलङ्ग आदि से मनोहर था वह विमान ॥१६॥

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् । महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥

अन्वयः— तत्र-तत्र विनिक्षिप्त नानाशिल्पोपशोभितम् महामरकतस्थल्या विद्रुमवेदिभिः जुष्टम् ॥१७॥

अनुवाद— दिवारों में स्थान-स्थान पर की गयी शिल्प रचना से उस विमान की अत्यन्त शोभा हो रही थी, उसमें पन्ने का फर्श था और बैठने के लिए मूङ्गे की वेदी बनायी गयी थी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥१८॥

अन्वयः— द्वास्सु विद्रुमदेहल्या वज्रकपाटवत् जुष्टम्, शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैः अधिश्रितम् तदासीत् ॥१८॥

अनुवाद— उस विमान के कमरों के द्वार पर मूंगे की देहली बनी थी, द्वारों के किवाड़ हीरों के थे तथा इन्द्र नीलमणि के शिखरो पर सुवर्ण के कलश रखे हुए थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

द्वास्सु द्वारेषु विद्रुमनिर्मिता देहली उदुम्बरस्तया भातं शोभितम् । वज्रखचितकपाटयुक्तम् । इन्द्रनीलमयेषु शिखरेषु प्रासादाग्रभागेषु ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उस विमान के कमरों के दरवाजों पर मूंगे की देहली (चौखट) लगे थे । चौखट को संस्कृत मे उदुम्बर कहते हैं । ऐसी देहली से सुशोभित था वह विमान । उस विमान के कमरों की किवाड़ों में हीरे जड़े थे । उस महल के अग्रभाग में इन्द्र नीलमणि से बने शिखरों पर सुवर्ण कलश लगे थे ॥१८॥

चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः । जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥

अन्वयः— वज्रभीतिषु, पद्मरागाग्र्यैः निर्मितैः चक्षुष्मत् विचित्रैः वैतानैः महार्हैं हेमतोरणैः जुष्टं तद् विमानमासीत् ॥१९॥

अनुवाद— हीरों से निर्मित दिवारों में लगी श्रेष्ठ पद्मराग मणियाँ उस विमान की आँखों जैसी लगती थीं और वह विमान अत्यन्त मूल्यवान् वन्दनवारों से अलंकृत था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

चक्षुष्मन्त इव ये पद्मरागाग्र्यास्तैः । यद्वा चक्षुष्मदिव । कैः पद्मरागाग्र्यैः विचित्रैर्वैतानैर्वितानसमूहैः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जड़ी हुयी श्रेष्ठ पद्मरागमणियों से वह विमान आँखों से युक्त के समान प्रतीत होता था । अथवा श्रेष्ठ पद्मराग मणियों से वह नेत्र युक्त के समान प्रतीत होता था । तथा वह विमान विचित्र वितानों के समूह से सुशोभित था ॥१९॥

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् । कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥२०॥

अन्वयः— कृत्रिमान् हंसपारावतान् स्वान् मन्यमानैः हंसपारावतैः तत्र तत्र अधिरुह्याधिरुह्य कूजितम् ॥२०॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानने वाले हंस और कबूतर उन सबों के सन्निकट बैठकर उनसे अपनी बोली में बातें करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कृत्रिमानपि हंसादीन्स्वान्सजातीयान्मन्यमानैस्तत्र तत्राधिरुह्याधिरुह्य निकूजितम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानकर हंस और कबूतर उनके सन्निकट में बैठकर उनके साथ अपनी बोली में बातें करते थे ॥२०॥

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः । यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥

अन्वयः— यथोपजोषं रचितैः विहारस्थानविश्रामसंवेश प्राङ्गणाजिरैः आत्मनः विस्मापनम् इव ॥२१॥

अनुवाद— सुविधानुसार बनाये गये क्रीडास्थली, शयनगृह, बैठक आंगन और चौक के द्वारा वह स्वयम् उसको बनाने वाले महर्षि कर्दम को भी विस्मित सा कर रहा था ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विहारस्थानं क्रीडाप्रदेशः, विश्रामः शयनगृहम्, संवेश उपभोगस्थानम्, प्राङ्गणं गृहाद्बहिः, अजिरं प्रकाराद्बहिः, यथोपजोषं यथासुखमात्मनः स्वस्य मायाविनोऽपि विस्मयजनकमिव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

विहारस्थान अर्थात् क्रीडास्थल, विश्राम अर्थात् शयनगृह, संवेश: अर्थात् बैठक, प्राङ्गण अर्थात् आँगन और अजिर अर्थात् चाहारदिवारी के बाहर बनाये गये चौक, इन सबों को उस विमान में अपनी सुविधा के अनुसार बनाया गया था। इन सबों को देखकर मायावी स्वयं महर्षि कर्दम भी आश्चर्यित से हो जाते थे ॥२१॥

ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा। सर्वभूताशयाऽभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

अन्वयः— इदृग्तत् गृहं नातिप्रीतेन चेतसा पश्यन्तीम् सर्वभूताशयाभिज्ञः कर्दमः स्वयं प्रावोचत् ॥२२॥

अनुवाद— इस प्रकार के सुन्दर गृह को देवहूति ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देखा तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानने वाले महर्षि कर्दम ने स्वयम् कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नातिप्रीतेन मलिनदेहत्वात्परिचारिकाभावाच्च ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इतने सुन्दर गृह को भी देवहूति बहुत प्रसन्नतापूर्वक इसलिए नहीं देख रही थीं कि उनका शरीर मालिन था और उनकी कोई परिचारिका नहीं थी। महर्षि कर्दम तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानते थे अतएव उन्होंने देवहूति से कहा ॥२२॥

निमज्ज्यास्मिन्हृदे भीरु विमानमिदमारुह। इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

अन्वयः— हे भीरु अस्मिन् हृदे निमज्य इदं विमानम् आरुह। इदं नृणां आशिषां यापकं तीर्थं शुक्लकृतम् ॥२३॥

अनुवाद— हे भीरु! सुन्दरि! इस सरोवर में स्नान करके तुम इस विमान पर चढो। मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस तीर्थ को भगवान् विष्णु ने बनाया है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अस्मिन्हृदे विन्दुसरसि। आरुहाधिरोह। शुक्लेन विष्णुना कृतमानन्दविन्दुनिपातनेन यापकं प्रापकम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तुम पहले इस विन्दुसरोवर में स्नान करो और उसके पश्चात् इस विमान पर चढो। इस सरोवर में भगवान् विष्णु ने आनन्द स्वरूप अपने आँसू को गिराया था। उसके कारण यह मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ बन गया है ॥२३॥

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा। सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥
अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम्। आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥

अन्वयः— भर्तुः तद् वचः समादाय सरजः वासः वेणीभूतान् च मूर्धजान् मलपङ्केन संछन्नं अङ्गम् शबलस्तनम् च बिभ्रती सा कुवलयेक्षणा सरस्वत्याः शिवजलाशयम् सरः प्रविवेश ॥२४-२५।

अनुवाद— अपने पति के उस वचन को मानकर, मैले कुचैले वस्त्र, जटा स्वरूप बने हुए केशों, मैल से भरे हुए शरीर और कान्तिहीन स्तनों वाली वह कमलनयनी सरस्वती नदी के पवित्र जल से भरे हुए सरोवर में प्रवेश कर गयी ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

समादायाहृत्य। सरजं मलिनम्। वेणीभूतान् जटिलान्। शबलौ विवर्णौ स्तनौ यस्मिंस्तत्। सरस्वत्याः शिवानि जलान्याशेरते यस्मिन्, शिवा जलाशया जलचरा यस्मिन्निति वा ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

अपने पति की उपर्युक्त वाणी को मानकर कमल के समान नेत्रों वाली देवहूति ने सरस्वती नदी के जल से भरे हुए कल्याणमय जल वाले सरोवर में प्रवेश किया । उस समय उसके वस्त्र मलीन थे, केश परस्पर में सट जाने के कारण जटा स्वरूप हो गये थे । सम्पूर्ण शरीर में मैल जम गयी थी तथा उनके दोनों स्तन कान्तिहीन हो गये थे । **सरस्वत्याः शिवजलाशयम्** का यह भी अर्थ है कि सरस्वती नदी के मङ्गलमय जलचर जीव जिसमें विद्यमान थे उस सरोवर में देवहूति ने प्रवेश किया ॥२४-२५॥

सान्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः । सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥२६॥

अन्वयः— सा अन्तः सरसि वेश्मस्था दशशतानि कन्यकाः ददर्श सर्वास्ताः किशोरवयस उत्पलगन्धयः आसन्निति शेषः॥२६॥

अनुवाद— देवहूति ने सरोवर के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा । वे सबके सब किशोरावस्था की थीं और सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि निकलती थी ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सा तत्र निमग्ना सती विस्मयं ददर्श । तमाह-सान्तःसरसीति दशभिः । उत्पलगन्धयः कमलागन्धीः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उस जल में डुबकी लगाते ही देवहूति ने आश्चर्यकारी वस्तु को देखा । उस आश्चर्य को बतलाते हुए दस श्लोकों से कहते हैं । देवहूति ने जल के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा । उन सबों की अवस्था किशोरावस्था थी और उन सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि आती थी ॥२६॥

तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः । वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥

अन्वयः— तां दृष्ट्वा स्त्रियः सहसा उत्थाय प्राञ्जलयः प्रोचुः वयं तुभ्यं कर्मकरीः नः शधि किम् करवाम ॥२७॥

अनुवाद— देवहूति को देखकर सभी स्त्रियाँ उठकर खड़ी हो गयीं उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा, हम आपकी दासियाँ हैं आप आज्ञा करें हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव कर्मकरीः परिचारिका वयमस्मानाज्ञापयेति स्त्रियः प्रोचुः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति को देखकर वे सारी कन्याएँ अचानक उठकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा हम सभी आपकी दासियाँ हैं, आप आज्ञा करें कि हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ॥२७॥

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् । दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

अन्वयः— तां मनस्विनीम् महार्हेण स्नाने न स्नापयित्वा मानदाः ता नूत्ने निर्मले दुकूले अस्यैः दुदुः च ॥२८॥

अनुवाद— उस मनस्विनी देवहूति को उन सबों ने बहुमूल्य पदार्थों से स्नान कराके अपनी स्वामिनी का सत्कार करने वाली उन सबों ने देवहूति को पहनने के लिए दो नवीन वस्त्रों को प्रदान किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् । दूकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन सबों ने बहुमूल्य स्नानीय पदार्थों तैल आदि के द्वारा देवहूति को स्नान कराया और देवहूतिको पहनने के लिए दो नवीन तथा स्वच्छ वस्त्रों को प्रदन किया ॥२८॥

भूषणानि परार्घ्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च । अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥

अन्वयः— वरीयांसि, द्युमन्ति च परार्घ्यानिभूषणानि ददुः सर्वगुणोपेतं अन्नं अमृतासवम् पानं च ददुः ॥२९॥

अनुवाद— उन सबों ने देवहूति को श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान आभूषणों को सभी गुणों से सम्पन्न भोजन और पीने के लिए अमृत के समान आसव प्रदान किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

परार्घ्यान्युत्कृष्टानि । वरीयांसि तत्प्रियाणि द्युमन्ति दीप्तिमन्ति च । पानं पेयम् । अमृतं स्वादु । आसवं मादकम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों ने अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के भूषणों, देवहूति को प्रिय तथा दीप्तिमान आभूषणों को प्रदान किया, सभी गुणों से युक्त भोजन प्रदान किया और पीने के लिए अमृत के समान स्वादिष्ट आसव (मादकद्रव्य) प्रदान किया ॥२९॥

अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् । विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥

अन्वयः— अथ स्रग्विणं विरजाम्बरम्, विरजं कृतस्वस्त्ययनं, कन्याभिः, बहुमानितम् आत्मानं आदर्शे ददर्श ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवहूति ने पुष्पों की माला से अलंकृत स्वच्छ वस्त्र धारण की हुयी, निर्मल तथा कान्तिमान शरीर वाली तथा कन्याओं द्वारा आदर पूर्वक माङ्गलिक शृङ्गार किए हुए अपने शरीर को दर्पण में देखा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

आदर्शे स्वमात्मानं ददर्शेति शेषः । आत्मानं विशिनष्टि चतुर्भिः । कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलं यस्य । पुंस्त्वमात्मशब्दसामानाधिकरण्यात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने दर्पण में जब अपने प्रतिबिम्ब को देखा यहाँ **ददर्श** पद का अध्याहार करना चाहिए । उस शरीर के अनुकूल वर्णन चार श्लोकों में किया गया है । जिसका कन्याओं ने माङ्गलिक शृङ्गार किया था उस अपने शरीर को देवहूति ने दर्पण में देखा । शरीर के विशेषणीभूत सभी शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग आत्मा शब्द के साथ सामानाधिकरण्य होने के कारण किया गया है ॥३०॥

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्वाभरणभूषितम् । निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥

अन्वयः— कृतशिरः स्नानं स्नातं सर्वाभरणभूषितम् निष्कग्रीवं, बलयितं कूजत् काञ्चन नूपरम् आत्मानं ददर्श ॥३१॥

अनुवाद— शिर से स्नान कराये गये सभी आभूषणों से भूषित गले में निष्कहार धारण किए हुए हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करने वाले सुवर्ण नुपुर से अलंकृत अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विरजमित्यस्य प्रपञ्चः। स्नातमुद्वर्त्य क्षालितम्। कृतं शिरः स्नानमभ्यङ्गो येन। भूषितत्वमेवाह । निष्कं पदकं ग्रीवायां यस्य॥३१॥

भाव प्रकाशिका

विरजम् पद का विस्तार से वर्णन इस श्लोक में किय गया है । देवहूति को उबटन लगाकर स्नान कराया गया था । देवहूति को शिरः स्नान कराया गया था अर्थात् शिर में सुगन्धित तेल इत्यादि लगाकर संस्कार युक्त किया गया था । देवहूति के अलङ्कारों से अलंकृत होने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे गले में निष्कधारण की हुयी थीं, हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करते हुए सुवर्ण रचित पायल धारण की थीं । ऐसे अपने प्रतिबिम्ब को उन्होंने दर्पण मे देखा ॥३१॥

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चयन्त्या बहुरत्न्या । हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

अन्वयः— श्रोण्योरध्यस्तया बहुरत्न्या काञ्चन्या, महार्हेण हरेण, रुचकेन च भूषितम् आत्मानं ददर्श ॥३२॥

अनुवाद— कमर में धारण की गयी अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त सुवर्ण की करधनी से, बहुमूल्य हार से तथा रुचक प्रत्येक अङ्ग में लगे हुए माङ्गलिक द्रव्य से सुशोभित अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बहूनि रत्नानि यस्यां तया । रुचकेन मङ्गलद्रव्येण कुङ्कुमादिना । तदुक्तं विश्वप्रकाशे 'रुचकं मङ्गलद्रव्ये ग्रीवाभरणदन्तयोः' इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस सुवर्ण की करधनी को देवहूति धारण की थीं उसमें अनेक रत्न लगे थे । उन्होंने अत्यन्त मूल्यवान् हार धारण कर रखा था तथा रुचक धारण किया था । रुचक शब्द के तीन अर्थ विश्वप्रकाश कोश में बतलाये गये है । मङ्गलद्रव्य, गले का आभूषण तथा दाँत । इन सबों से सुशोभित थी देवहूति । इसी प्रकार के अपने प्रतिबिम्ब को दर्पण में उन्होंने देखा ॥३२॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा । पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥

अन्वयः— सुदता, सुभ्रुवा, श्लक्ष्णं स्निग्धापाङ्गेन पद्मकोशस्पृधा चक्षुषा लसन् मुखम् आत्मानं ददर्श ॥३३॥

अनुवाद— सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा प्रेम पूर्वक कटाक्षमय कमल कली से स्पर्धा करने वाले नेत्रों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहुति ने दर्पण में देखा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

सुदता सुभ्रुवा चक्षुषेति च जातावेकवचनानि । एतैर्लसच्छोभमानं मुखं यस्य । कथंभूतेन चक्षुषा । श्लक्ष्णो मनोहरः स्निग्धोऽपाङ्गो नेत्रप्रान्तो यस्य । पद्मकोशेन स्पर्धत इति पद्मकोशस्पृधेन ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा नेत्रों से सुशोभित उनका मुख था । सुदता इत्यादि जाति के अर्थ में एकवचनान्त प्रयोग है । नेत्र की विशेषता बतलाते हैं उनके नेत्रों का प्रान्तभाग मनोहर तथा कोमल कटाक्षो से युक्त था । वह मानो कमल की कलियों से स्पर्धा करता था । इन सबों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३३॥

यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् । तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

अन्वयः— यदा ऋषीणां ऋषभं दयितं पतिं सस्मार तदा स्त्रीभिः सह तत्र चास्ते यत्र स प्रजापतिः आस्ते ॥३४॥

अनुवाद— जब देवहूति ने ऋषियों में श्रेष्ठ अपने पति का स्मरण किया उसी समय वे स्त्रियों के साथ अपने को वहीं पाया जहाँ पर प्रजापति कर्दम महर्षि थे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

दृष्ट्वा च यदा पतिं सस्मार तदा यत्रासौ तत्रैव स्वयमप्यास्ते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने अपने पतिदेव का स्मरण किया तो उन्होंने देखा कि वे वहीं हैं जहाँ प्रजापति कर्दम महर्षि थे॥३४॥

भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा । निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

अन्वयः— तदा भर्तुः पुरस्तात् आत्मानं स्त्रीसहस्त्रावृतं निशाम्य तद्योगगतिं च निशाम्य संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

अनुवाद— उस समय अपने को पतिदेव के सामने हजारो स्त्रियों से घिरा देखकर देवहूति ने उनके योग गति के प्रभाव को समझा और उनको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं निशाम्य दृष्ट्वा । तां च तस्य योगगतिं योगप्रभावं दृष्ट्वा । संशयं किमिदमिति विस्मयम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अपने को अपने पतिदेव के समक्ष हजारों स्त्रियों से घिरा देखकर और महर्षि कर्दम के योगगति के प्रभाव को देखकर देवहूति को आश्चर्य हुआ कि यह सब क्या हो रहा है ॥३५॥

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत्। आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥३६॥
विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् । जातभावा विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥३७॥

अन्वयः— हे अमित्रहन् कृतमलस्नानां अपूर्ववत् विभ्राजन्तीम्, संवीतरवचिरस्तनीम्, आत्मनो रूपं विभ्रतीम्, विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां, सुवाससम्, तां तदा जताभावः विमानम् आरोहयत् ॥३६-३७॥

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं को मारने वाले विदुर ! जब कर्दम महर्षि ने देखा कि देवहूति का शरीर स्नान करने से स्वच्छ हो गया है, वे अपूर्व रूप से सुशोभित हो रही हैं, उनके मनोहर स्तन चोली से ढँके हैं, विवाह के पहले उनका जैसा रूप था वैसे ही रूप से वे सम्पन्न हैं, हजारों विद्याधारियाँ उनकी सेवा कर रही हैं वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुयी हैं तब उन्होंने देवहूति को उस विमान पर चढ़ाया ॥३६-३७॥

भावार्थ दीपिका

स मुनिर्विवाहात्प्राग्यदात्मनो रूपं तदेव पुनर्बिभ्रतीम् । संवीतौ प्रावृतौ रुचिरौ स्तनौ यस्याः । पाठान्तरे तु रूपविशेषम्। शोभने वाससी यस्याः जातो भावः प्रेम यस्य, हे अमित्रहन् जितकाम ॥३६-३७॥

भाव प्रकाशिका

मुनि ने देख कि देवहूति का विवाह से पहले जो रूप था उसी रूप को उन्होंने प्राप्त कर लिया है । उनके दोनों मनोहर स्तन ढँके हुए हैं, संवीत स्थिरस्तनम् यह जहाँ पाठ है वहाँ अर्थ रूप विशेष अर्थ होगा । वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हैं तो उस देवहूति को देखकर उनके मन में देवहूति के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया अमित्रहन् यह विदुर का सम्बोधन है और इसका अर्थ है, काम को जीत लेने वाले । महर्षि कर्दम ने प्रेम पूर्वक देवहूति के उस विमान पर चढ़ाया ॥३६-३७॥

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।
बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृतइवोडुपतिर्नभःस्थः ॥३८॥

अन्वयः— तस्मिन् विमाने प्रिययानुरक्तः अलुप्तमहिमा विद्याधरीभिः उपचीर्णवपुः उत्कचकुमुदगणवान् अपीच्यः ताराभिः आवृतः नभस्थः उडुपतिः इव बभाज ॥३८॥

अनुवाद— उस विमान में अपनी प्रियतमा में अनुरक्त रहने पर भी महर्षि कर्दम की महिमा लुप्त नहीं हुयी थी । अर्थात् मन और इन्द्रियों पर उनका प्रभुत्व बना हुआ था । विद्याधारियाँ उनके शरीर की सेवा कर रही थी। विकसित कुमुद के पुष्पों से शृङ्गार करके वे अत्यन्त सुन्दर बने हुए थे । वे विमान पर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे ताराओ के बीच में आकाशस्थ चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्विमाने मुनिर्विभ्राजे । न लुप्तो महिमा स्वातन्त्र्यं यस्य । उपचीर्णं शुश्रूषितं वपुर्यस्य । विकसितकुमुदगणवान-पीच्योऽतिसुन्दरः । पूर्णचन्द्र इव मुनिः, नभ इव विमानम्, तारा इव ताः स्त्रियः, कुमुदानीव तासां नेत्राणीति ज्ञेयम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उस विमान में वे मर्मज्ञ सुशोभित हो रहे थे । अपनी प्रियतमा में अनुरक्त होने पर भी उनकी महिमा कम नहीं हुयी थी । यहाँ महिमा शब्द स्वतन्त्र्य का बोधक है । महर्षि कर्दम के शरीर की सेवा विद्याधारियाँ करती थीं विकसित कुमुद पुष्पों के द्वारा अलंकृत वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे । वे ताराओं से घिरे हुए आकाशस्थ चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे । पूर्ण चन्द्रमा के समान महर्षि कर्दम थे, आकाश के समान वह विस्तृत विमान था । ताराओं के समान वे स्त्रियाँ थीं और कुमुदों के समान उनके स्वच्छ नेत्र थे ॥३८॥

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।
सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥३९॥

अन्वयः— तेन अष्टलोकपविहार कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु अनङ्ग सख मारुतसौभगासु द्युधुनिपात शिवस्वनासु सिद्धैर्नुतः ललनावरूथी सः धनदवत् चिरं रेमे ॥३९॥

अनुवाद— उस विमान के द्वारा आठो लोकपालों की विहार भूमि कुलाचल सुमेरु पर्वत की घाटियों में कुबेर के समान दीर्घकाल तक स्त्रियों के समूह के साथ कर्दम प्रजापति ने विहार किया । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल मन्दसुगन्ध वायु चला करती है । और वहाँ पर आकाश से गिरने वाली गङ्गाजी की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती है । विद्याधिरयाँ उनकी सेवा में संलग्न रहती थीं और सिद्धगण उनकी स्तुति किया करते थे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तेन विमानेन । अष्टलोकपालानां विहारो यस्मिन्कुलाचलेन्द्रे मेरौ तस्य द्रोणीषु दरीषु । अनङ्गस्य सखा यो मारुतः शीतसुगन्धमन्दानिलस्तेन सौभगं सौन्दर्यं यासु । सिद्धैर्नुतः स्तुतः सन् । द्युधुनिर्गङ्गा तस्याः पातेन शिवः स्वनो यासु तासु रेमे ललनावरूथी स्त्रीरत्नसमूहवान् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

उस विमान के द्वारा आठो लोगपालों की विहार भूमि कुलाचलेन्द्र सुमेरु पर्वत की गुफाओं में वे दीर्घकाल तक विहार किए । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल, मन्द सुगन्ध वायु सदा चला करती है ऐसे सौभाग्य सम्पन्न घटियों में वे विहार किए । वहाँ उनकी स्तुति सिद्धगण किया करते थे और वहाँ सदैव आकाश से गिरने वाली स्वर्गङ्गा की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती थी । उस समय भी उनके साथ स्त्रीरत्न का समूह विद्यमान था ॥३९॥

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके । मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥

अन्वयः— रामयारतः सः वैश्रम्भके सुरसने, नन्दने पुष्पभद्रके, मानसे, चैत्ररथे च रेमे ॥४०॥

अनुवाद— अपनी पत्नी में अनुरक्त बने हुए वे वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन पुष्पभद्रक तथा चैत्ररथ आदि देवोद्यानों में एवं मानसरोवर में अपनी पत्नी के साथ विहार किये ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

वैश्रम्भकादिषु देवोद्यानेषु । मानसे च सरसि । रतः प्रीतः सन् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी में अनुरक्त रहने वाले कर्दम प्रजापति वैश्रम्भक आदि देवद्यानों तथा मान सरोवर में विहार किए॥४०॥

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा । वैमानिकानत्यशेत चरन् लोकान्यथाऽनिलः ॥४१॥

अन्वयः— भ्राजिष्णुना कामगेन महीयसा विमानेन लोकान् चरन् अनिलः यथा वैमानिकान् अतिशेत ॥४१॥

अनुवाद— देदीप्यमान, तथा अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान के द्वारा विभिन्न लोकों में वायु के समन सञ्चरण करते हुए वे विमान सञ्चारी देवताओं से भी बढ गये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अत्यशेतातिक्रम्य स्थितः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं से भी अधिक बढ गये प्रजापति कर्दम ॥४१॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् । यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥

अन्वयः— यैः तीर्थपदः व्यसनात्यः चरणः आश्रितः तेषाम् उद्दामचेतसाम् किं दुरापादनम् ?॥४२॥

अनुवाद— हे विदुरजी जिन लोगों ने श्रीगवान् के व्यसन विनाशक चरणों को अपने आश्रय रूप से अपना लिया है उन धीरपुरुषों के लिए कौन सी वस्तु दुर्लभ है ?॥४२॥

भावार्थ दीपिका

उद्दामचेतसां धीराणाम् । व्यसनं संसारस्तस्यात्ययो यस्मात् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् के चरणों को ही आश्रय रूप से अपनाते हैं उन धीर पुरुषों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है । श्रीभगवान् के चरण तो व्यसनात्यय है । व्यसन संसार को कहते हैं । उसके भय को विनष्ट करने के कारण भगवान् के चरण व्यसनात्यय हैं । भगवान् के चरण को आश्रय रूप से अपनाने वाले उद्दामचेता हैं । अर्थान्तर विषयान्तर की अपेक्षा नहीं होने के कारण उत्कृष्ट श्रीभगवान् में ही उनका चित्त लगा रहता है ॥४२॥

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया । बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

अन्वयः— महायोगी बहवाश्चर्यं भुवो गोलं स्वसंस्थया यावान् पत्न्यै प्रेक्षयित्वा स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

अनुवाद— इस प्रकार महायोगी महर्षि कर्दम अनेक आश्चर्यों से युक्त भूमण्डल को उसके सम्पूर्ण संस्थानों के साथ अपनी पत्नी को दिखाकर अपने आश्रम पर लौट आये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षयित्वा दर्शयित्वा । गोलं मण्डलम् । स्वसंस्थया द्वीपवर्षादिरचनया यावांस्तावन्तम् । बहून्याश्चर्याणि यस्मिंस्तम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम अपनी पत्नी को सम्पूर्ण भूमण्डल और उसके द्वीप वर्ष आदि जितनी भी रचनाएँ जो अनेक प्रकार के आश्चर्यों से युक्त है उन सबों को दिखाकर पुनः अपने आश्रम में लौट आये ॥४३॥

विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् । रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥

अन्वयः— नवधा आत्मानं विभज्य रतोत्सुकाम् मानवीं रामां वर्षपूगान् मुहूर्तवत् निरमयन् रेमे ॥४४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने को नव भागों में विभक्त कर रतिजन्य सुख के लिए सदा उत्सुक बनी रहने वाली अपनी पत्नी मनुपुत्री देवहुति के साथ उन्होंने बहुत वर्षों तक एक मुहूर्त के समान रमण किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

नवधा विभज्य नवप्रभेदमात्मानं कृत्वा ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

अपने को नवभागों में विभक्त करके कर्दम महर्षि ने देवहूति के साथ अनेक वर्षों तक रमण किया और उनका वह समय एक मुहूर्त के समान बीत गया ।।४४।।

तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता । न चाबुध्यत तं कालं पत्याऽपीच्येन सङ्गता ।।४५।।

अन्वयः— तस्मिन् विमाने उत्कृष्टां रतिकरीं शय्यां श्रिता अपीच्येन पत्या संगता च तं कालं न अबुध्यत ।।४५।।

अनुवाद— उस विमान में उत्कृष्ट तथा रतिजन्य सुख को बढाने वाली शय्या का आश्रय लेकर अपने सुन्दर पति के साथ रहने वाली देवहूति को उतने समय का पता ही नहीं चला कि कब वह समय बीत गया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः । शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ।।४६।।

अन्वयः— एवं योगानुभावेन कामलालसयोः रममाणयोः दम्पत्योः मनाक् शतं शरदः व्यतीयुः ।।४६।।

अनुवाद— इस तरह से योग के प्रभाव के कारण, काम की लालसा से युक्त रमण करते हुए उन दोनों पति-पत्नी को सौ वर्षों का समय एक छोटे से समय के समान बीत गया ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

शरदः संवत्सराः । मानागीषदिव व्यतीयुः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

शरद् शब्द संवत्सर का बोधक है और मनाक् यह अव्यय बहुत थोड़े का बोधक है । इस तरह रमण करते हुए देवहूति तथा कर्दम महर्षि के सौ वर्ष बीत गये; किन्तु वह उनको बहुत छोटे समय के समान प्रतीत हुआ ।।४६।।

तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् । नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ।।४७।।

अन्वयः— आत्मवित् सर्वसङ्कल्पवित् विभुः स्वरूपं नोधा विधाय आत्मना तां भगवान तस्यां रेतः आधत ।।४७।।

अनुवाद— आत्मज्ञ महर्षि कर्दम सबों के सङ्कल्प को जानने वाले थे, अतएव वे देवहूति को सन्तान प्राप्ति के लिए उत्सुक जानकर तथा श्रीभगवान् के आदेश को स्मरण करके महर्षि ने अपने स्वरूप को नव भागों में विभक्त करके एकाग्र मन से अपनी पत्नी के गर्भ में अपने वीर्य का आधान कर दिए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मना स्वदेहार्धरूपेणातिप्रीत्या भावयन् । तथा सति सदपत्यं भवेदिति । नोधा नवधा । सर्वसङ्कल्पविदिति । तस्या बह्वपत्यसङ्कल्पं जानन्नित्यर्थः । विभुस्तथा कर्तुं समर्थश्च । आत्मविदिति च तामानासक्तत्वात्त्रियो जाता इति भावः । पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः इति स्मृते ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने स्वयं ही अपनी पत्नी की अर्धाङ्गरूप में अत्यन्त प्रेम पूर्वक भावना की इससे मेरी अच्छी सन्तान होए और देवहूति के गर्भ में अपने वीर्य का उन्होंने आधान कर दिया । नोधा पद का अर्थ नव प्रकार से है । सर्वसङ्कल्पवित् पद का अर्थ है कि वे जानते थे कि देवहूति चाहती हैं कि हमारी बहुत सी सन्तानें होएँ । चूकि उस तरह का कर्म करने में वे समर्थ थे अतएव उनको विभु कहा गया है । **आत्मवित्** कहने का अभिप्राय है

कि महर्षि देवहूति में आसक्त नहीं थे अतएव उनकी स्त्री सन्ताने हुयी । स्मृति भी कहती है जब पुरुष का शुक्र (वीर्य) अधिक होता है तो पुरुष सन्तान होती है और स्त्री का रज अधिक होता है तो स्त्री सन्तान होती है ॥४७॥

अत: सा सुषुवे सद्यो देवहूति: स्त्रियः प्रजाः । सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥४८॥

अन्वयः— अतः सा देवहूतिः सद्यः स्त्रियः प्रजाः सुषुवे । ताः सर्वाः चारुसर्वाङ्ग्यः लोहितोत्पलगन्धयः आसन् ॥४८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् दवहूति ने शीघ्र ही स्त्री सन्तानों को जन्म दिया, वे सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरियाँ थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽनन्तरमेव । सद्य एकस्मिन्नेवाहनि । चारूणि सर्वाण्यङ्गानि यासाम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् देवहूति ने एक ही दिन में स्त्री सन्तानों को जन्म दिया । सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरी थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ॥४८॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती । स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥४९॥
लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया । उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥५०॥

अन्वयः— तदा उशती सती प्रव्रजिष्यन्तं पतिं आलक्ष्य विदूयता विक्लवेन हृदयेन अश्रुकलां निरूध्य अधोमुखी नखमणिश्रिया यदा भूमिं लिखन्ती स्मयमाना ललितां वाचम् उवाच ॥४९-५०॥

अनुवाद— उस समय शुद्ध स्वभाव वाली देवहूति ने देखा कि उनके पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन में जाना चाहते हैं तो उनका दु:खी हृदय व्याकुल हो गया, उन्होंने किसी तरह अपने आँसुओं को रोका और मुख नीचे करके नखरूपी मणि की शोभा से सम्पन्न भूमि को कुरेदती हुयी और मुस्कुराती हुयी सी मधुर वाणी में उन्होंने कहा ॥४९-५०॥

भावार्थ दीपिका

प्रव्रजिष्यन्तमालक्ष्य वितर्क्य स्मयमाना बहिः, अन्तस्तु विक्लवेन व्याकुलेन विदूयता संतप्यमानेन हृदा उवाचेत्युत्तरेणान्वयः। नखा एव मणयस्तैः श्रीः शोभा यस्य तेन पदा भुवं लिखन्तीमीति दुरन्तचिन्तालक्षणम् ॥४९-५०॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने जान लिया कि पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन जाना चाहते है किन्तु ऊपर से मुस्कुराती हुयी और भीतर से उनका हृदय सन्तप्त ही हो रहा था । उन्होंने कहा यह आगे के श्लोक से अन्वय है । नखरूपी मणि से सुशाभित्त चरणो से भूमि को कुरेदती हुयी उन्होंने कहा । यह अत्यधिक चिन्ता का लक्षण है ॥४९-५०॥

देवहूतिरुवाच

सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् । अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥५१॥

अन्वयः— भगवन् सर्वं प्रतिश्रुतम् मह्यम् उपोवाह अथापि प्रपन्नायाः मे अभयं दातुम् अर्हसि ॥५१॥

देवहूति ने कहा

अनुवाद— आपने जो विवाह के समय प्रतिज्ञा की थी उसका पूर्णरूप से निर्वाह किया है, फिर भी मैं आपकी शरणागता हूँ, आप मुझे अभय प्रदान करें ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

उपोवाह संपादितवान् । अभयमिति भाविनो दैन्यात्संसाराच्च यद्भयं तन्निवर्तयेत्यर्थः ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

आपने अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है, किन्तु भविष्यत् काल में होने वाली अपने पुत्रियों के पतियों का अन्वेषण करने में सम्भावित दीनता से मुझे अभय प्रदान करें ।।५१।।

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः । कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ।।५२।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तुभ्यं दुहितृभिः समाः पतयः विमृग्याः त्वयि वनम् प्रव्रजिते मे विशोकाय कश्चित स्यात् ।।५२।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपको अपनी पुत्रियों के लिए उन सबों के ही समान पतियों का अन्वेषण करना चाहिये और आपके वन में चले जाने पर मेरे लिए किसी को ऐसा होना चाहिए जो मुझे शोकरहित बना दे ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र दैन्यं निवेदयति । तुभ्यं तव दुहितृभिः स्वयमेवात्मनः समा योग्याः पतयो विमृग्या इति दैन्यं प्राप्तम् । संसारभयमुररीकृत्याह–कश्चिदिति । विशोकाय ज्ञानोपदेशाय । स्त्रीभिर्ऋणानपाकरणात्कंचित्कालं त्वदवस्थानेन ब्रह्मवित्पुत्रः कश्चित्किं स्यादित्यर्थः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

अपनी दीनता का निवेदन करती हुयी देवहूति ने कहा आपको अपनी पुत्रियों के लिए योग्य वर का अन्वेषण करना चाहिए । यह मुझको दैन्य प्राप्त है । संसार के भय को हृदय में रखकर उन्होंने कहा **कश्चित् इत्यादि अर्थात्** आपके वन में चले जाने पर मुझको भी ज्ञानोपदेश करके शोकरहित बना देने वाला कोई पुत्र चाहिए । क्योंकि स्त्रियाँ तो ऋणत्रय का अपाकरण कर नहीं सकती हैं । अतएव कुछ समय तक यहाँ रहकर आप मुझे ब्रह्म ज्ञानी पुत्र प्रदान करें ।।५२।।

एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो । इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ।।५३।।
इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः । अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ।।५४।।

अन्वयः— हे प्रभो ! परित्यक्तपरात्मनः, इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन व्यतिक्रान्तेन एतावता कालेन मे अलम् । इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या परं भावं अजानन्त्या त्वयि मे प्रसङ्गः कृतः तथापि मे अभयाय अस्तु ।।५३-५४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! अब तक परमात्म पराङ्मुख रहकर मेरा जो इतना महान् काल इन्द्रिय सुख में ही बीत गया वह व्यर्थ ही चला गया । आपके प्रभाव को नहीं जानने के कारण ही मैने इन्द्रिय के विषयों में आसक्त रहकर आप से प्रेम किया फिर भी किसी को मेरे संसार के भय को दूर करने वाला होना चाहिए ।।५३-५४।।

भावार्थ दीपिका

विषयान्भुक्ष्व किं ब्रह्मविद्ययेति चेत्तत्राह । एतावताऽलं पूर्यताम् । परित्यक्तः पर आत्मा यया तस्या मम । स्वकृतमनुशोचन्त्याह इन्द्रियार्थेष्विति चतुर्भिः । मे मया । परं भावं त्वं ब्रह्मविदिति ।।५३-५४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि विषयों का उपभोग करो ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने से कौन सा लाभ होने वाला है ? तो इसका उत्तर है कि इतने समय तक विषयों का भोग भोगा है । वह पूरा हो गया अभी तक तो मैं परमात्म पराङ्मुख ही रही । अब तो मुझको कोई ज्ञानोपदेश करने वाला मिलना चाहिए ।।५३-५४।।

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया । स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

अन्वयः— अधिया असत्सु कृतः सङ्गो यः संसृतेः हेतुः स एव साधुषु कृतः निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

अनुवाद— अज्ञान के कारण सत्पुरुषों के साथ किया हुआ जो सङ्ग है वह संसारभय को प्रदान करने वाला होता है, वही सङ्ग यदि साधुपुरुष के साथ किया जाय तो वह अनासक्ति का कारण बन जाता है ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गः कथमभयायास्तु तत्राह-सङ्ग इति । अधियाऽज्ञनेन ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सङ्ग किस प्रकार से अभय प्रदान का साधन हो सकता है तो इसका उत्तर इस श्लोक से दिया गया है । अज्ञान के कारण जो असत् पुरुषों के साथ सङ्ग किया जाता है वह तो संसार बन्ध का ही कारण होता है; किन्तु वही सङ्ग यदि सत्पुरुषों के साथ किया जाय तो वह संसार से अनासक्ति का साधन बन जाता है ॥५५॥

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥५६॥

अन्वयः— इह यत् कर्म न तु धर्माय, न विरागाय न तीर्थपद सेवायै सः जीवन् अपि मृतः हि ॥५६॥

अनुवाद— जिस पुरुष के द्वारा किया गया कर्म न तो धर्मकारक होता है, न तो वैराग्य उत्पन्न करने वाला होता और न तो श्रीभगवान् की सेवा का ही सम्पादक होता है, वह मनुष्य इस लोक में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

स्वभावतः प्रवृत्तं यस्य कर्म धर्मार्थं न कल्पते धर्माभिमुखं न भवेत् तत्रापि निष्कामधर्मद्वारा विरागाय न कल्पते । तद्द्वारा च तीर्थपदस्य हरेः सेवार्थं न पर्यवस्येदित्यर्थः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

स्वाभाविक रूप से किया जाने वाला जिस पुरुष का कर्म न तो धार्मिक होता है, और न तो वह निष्काम होने के कारण संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाला हो और न तो उसका पर्यवसान श्रीभगवान् की सेवा में ही होता हो ऐसा व्यक्ति इस संसार में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् । यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

अन्वयः— सा अहं यत् त्वां विमुक्तिदं प्राप्य बन्धनात् न मुमुक्षेय नूनम् भगवतः मायया अहं दृढं वञ्चिता ॥५७॥

अनुवाद— आप जैसे पतिदेव को प्राप्त करके भी मैंने जो संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा नहीं की वह निश्चित रूप से मैं भगवान् की माया से अत्यधिक ठगी गयीं ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

न मुमुक्षेय मोक्तुमिच्छां न कृतवत्यस्मि ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मैंने मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं की, अतएव भगवान् की माया ने मुझको ठग लिया ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकपिलदेवजी का जन्म

मैत्रेय उवाच

निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः । दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

अन्वयः— शालिनीम्, एवं निर्वेदवादिनीम् मनोर्दुहितरं दयालुः मुनिः शुक्लाभि व्याहृतं स्मरन् आह ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— सद्गुणों से सुशोभित इस प्रकार से वैराग्य जनक बातों को कहने वाली महाराज मनु की पुत्री देवहूति को कृपा करने वाले दयालु मुनि ने श्रीभगवान् की बातों का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे ततो जन्म कपिलस्याह तत्पितुः । प्रव्रज्यां तमनुज्ञाप्य ऋणत्रयविमोक्षतः ॥१॥ शालिनीं श्लाघ्याम् । शुक्लेनाभिव्याहृतं '**सहाहं स्वांशकलया**' इत्यादि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौबीसवें अध्याय में कपिल महर्षि के जन्म का वर्णन, उनके पिता के संन्यास को जानकर ऋणत्रय से मुक्ति के लिए किया गया है ॥१॥ **शालिनीं श्लाघ्याम् इत्यादि-** सद्गुणों से सम्पन्न होने के कारण देवहूति प्रशंसनीय थी । उनकी दीनता भरी बात को सुनकर दयालु मुनि ने श्रीभगवान् के **सहाहं स्वांशकलया इत्यादि** वाक्य का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

ऋषिरुवाच

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते । भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥२॥

अन्वयः— हे अनिन्दिते राजपुत्रि इत्थम् आत्मानं प्रति मा खिदः, ते गर्भम् अक्षरो भगवान् अदूरात् सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

कर्दम महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे दोषरहित राजकुमारी ! तुम अपने विषय में खेद न करो, तुम्हारे गर्भ में अविनाशी पुरुष परमात्मा शीघ्र ही आयेंगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इत्थं मा खिदः खेदं मा कार्षीः आत्मानं प्रति अहं भाग्यहीनेति । अदूराच्छीघ्रम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कर्दम महर्षि ने कहा कि तुमको इस तरह अपने को भाग्यहीन समझकर खेद नहीं करना चाहिए; तुम्हारे गर्भ में शीघ्र ही अक्षर पुरुष परमात्मा आने वाले हैं ॥२॥

धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च । तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥३॥

अन्वयः— धृतव्रतासि ते भद्रम् दमेन, नियमेन तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया च ईश्वरं भज ॥३॥

अनुवाद— तुमने व्रत का पालन किया है, तुम्हारा कल्याण होगा । अब तुम दम (इन्द्रियों को वश में रखना) नियम (अपने धर्म का पालन और पावित्र्य का पालन) तपस्या, धन का दान और श्रद्धा के द्वारा ईश्वर की आराधना करो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दमेनेन्द्रियसंयमेन । नियमेन स्वधर्मेण । तपांसि द्रविणदानानि च तैः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अब तुमको इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए, स्वधर्म का पालन तथा पावित्र्य पालन रूप नियम, तपस्या धन का दान तथा श्रद्धा के द्वारा परमात्मा की आराधना करनी चाहिए ॥३॥

स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः । छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥४॥

अन्वयः— त्वया आराधितः सः शुक्लः मामकं यशः वितन्वन् ब्रह्मभावनः औदर्यः सः ते हृदय ग्रन्थिम् छेत्ता ॥४॥

अनुवाद— तुम्हारे द्वारा आराधित होकर वे भगवान् मेरे यश का विस्तार करते हुए तुम्हारे औदर्य पुत्र बनकर ब्रह्मोपदेश द्वारा तुम्हारे हृदय की अहङ्कार ग्रन्थि को विनष्ट कर देंगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

हृदयग्रन्थि चिज्जडात्मकमहंकारलक्षणं बन्धं छेत्ता छेत्स्यति । औदर्यः पुत्रः सन् । ब्रह्म भावयत्युपदिशतीति तथा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जड़ और चेतन की ग्रन्थि रूप जो अहङ्कार रूपी संसार का बन्धन है, उसको वे ब्रह्मोपदेश के द्वारा विनष्ट कर देंगे । वे तुम्हारे पुत्र रूप से अवतीर्ण होंगें ॥४॥

मैत्रेय उवाच

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः । सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥५॥

अन्वयः— देवहूत्यपि प्रजापतेः संदेशं गौरवेण सम्यक् श्रद्धाय कूटस्थम्, गुरुम्, पुरुषं अभजत् ॥५॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी! प्रजापति कर्दम महर्षि आदेश एवं उनमें गौरव बुद्धि होने के कारण देवहूति ने भी उस पर पूर्ण रूप से विश्वास किया और वह कूटस्थ निर्विकार जगद्गुरु भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना करने लगी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

श्रद्धाय विश्वस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रद्धाय पद का अर्थ है विश्वास करके ॥५॥

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः । कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥६॥

अन्वयः— बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः कार्दमवीर्यम् आपन्नो तस्यां दारुणि अग्निरिव जज्ञे ॥६॥

अनुवाद— इस तरह बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् मधुसूदन, महर्षि कर्दम के वीर्य का आश्रय लेकर देवहूति के गर्भ से उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह अरणी से अग्नि प्रकट होती है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

बहुतिथे बहुतरे कालेऽतिक्रान्ते सति । कार्दमं कर्दमसंबन्धि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

बहुत दिन बीत जाने के पश्चात् महर्षि कर्दम के वीर्य का सहारा लेकर श्रीभगवान् देवहूति के पुत्र के रूप से जन्म लिए ॥६॥

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः । गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥

अन्वयः— तदा व्योम्नि घनाघनाः वादित्राणि अवादयन् । गन्धर्वा तं गायन्ति स्म, अप्सरसः मुदा नृत्यन्ति स्म ॥७॥

अनुवाद— उस समय आकाशा में मेघ समूह गरज कर बाजों को बजाने लगे । गन्धर्व गण भगवत् सम्बन्धी गीत गाने लगे और अप्सराएँ प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करने लगीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

घनाघना इत्येकं पदम् । वर्षन्तो मेघाः । गायन्ति स्म नृत्यन्ति स्म ॥७॥

भाव प्रकाशिका

घनाघना: यह एक ही पद है और इसका अर्थ है कि धन सघन मेघ वर्षा करते हुए गरज-गरज कर वाद्य बजाने लगे, गन्धर्वगण गीत गाने लगे और आनन्दित होकर अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥७॥

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः । प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥

अन्वयः— खेचरैः अपवर्जिता दिव्या सुमनसः पेतुः, सर्वाः दिशः अम्भांसि, मनांसि च प्रसेदुः ॥८॥

अनुवाद— देवताओं के द्वारा वर्षाये गये दिव्य पुष्पों की वर्षा हुयी । उस समय सभी दिशाएँ, सरोवरों आदि के जल और सभी जीवों के मन प्रसन्न हो गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अपवर्जिता मुक्ताः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपवर्जिता: पद का अर्थ बरसाये गये हैं ॥८॥

तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् । स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९॥

अन्वयः— सरस्वत्या परिश्रितम् तत् कर्दमाश्रमपदम् मरीच्यादिभिः ऋषिभिः साकम् स्वयम्भूः अभ्ययात् ॥९॥

अनुवाद— सरस्वती नदी के जल से घिरे हुए उस कर्दम महर्षि के आश्रम में मरीचि आदि ऋषियों के साथ ब्रह्माजी आये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

परिश्रितं परिवेष्टितम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

परिश्रितम् पद का अर्थ है घिरे हुए ॥९॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् । तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥
सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् । प्रहृष्यमाणैरसुभि कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥११॥

अन्वयः— हे शत्रुहन् ! विद्वान् अजः स्वराट् परंब्रह्म भगवन्तं सत्त्वेनांशेन तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् सभाजयन् प्रहृष्यमाणैः असुभिः कर्दमं च इदमभ्यधात् ॥१०-११॥

अनुवाद— हे शत्रुओं को मारने वाले विदुरजी ! स्वतः सिद्धज्ञान से सम्पन्न अजन्मा ब्रह्माजी यह जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही अपने अंश से सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, अतएव भगवान् जिस कार्य को करना चाहते थे । उसका विशुद्ध हृदय से अनुमोदन और आदर करके वे महर्षि कर्दम और देवहूति से कहे ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

आगत्य किं कृतवांस्तदाह-भगवन्तमिति द्वाभ्याम् । तत्त्वानां संख्यानं यस्मिंस्तस्य सांख्यस्य विज्ञप्त्यै विशेषेण ज्ञापनाय भगवन्तं जातं विद्वानजो ब्रह्मा स्वराट् स्वतःसिद्धज्ञानस्तस्य चिकीर्षितं सभाजयन् पूजयन् प्रहृष्यमाणैरसुभिरिन्द्रियैरुपलक्षितः कर्दमं चेदमभ्यधादिति द्वयोरन्वयः । चकाराद्देवहूतिं च ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कर्दम महर्षि के आश्रम में आकर क्या किए ? इसको **भगवन्तमित्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं। ब्रह्माजी स्वतः सिद्धज्ञान हैं इसलिए स्वराट् शब्द वाच्य हैं । वे जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए है । श्रीभगवान् जिस कार्य को करना चाहते हैं उसका अपने शुद्ध अन्तःकरण से समर्थन करके वे उनका आदर किये । इस बात का पता उनके प्रसन्न प्राणों और इन्द्रियों को देखने से ही चल गया । उसके पश्चात् वे महर्षि कर्दम और देवहूति दोनों से कहें ॥१०-११॥

ब्रह्मोवाच

त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः । यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥१२॥

अन्वयः— हे मानद ! भवान मां मानयन् यत् मे वाक्यं संजगृहे तत् त्वया मे निर्व्यलीकतः अपचितिः कल्पिता॥१२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे दूसरों का सम्मान करने वाले कर्दम तुमने जो मेरा सम्मान करते हुए मेरे वाक्य को स्वीकार किया है, उसके द्वारा तुमने बिना किसी कपट के मेरी पूजा की है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र-त्वयेति पञ्चभिः कर्दमं प्रत्याह । अपचितिः पूजा कृता । यत् यस्मात् । निर्व्यलीकतो निष्कपटं सम्यग्गृहीतवान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

त्वया इत्यादि पाँच श्लोकों से उन्होंने महर्षि कर्दम से कहा तुमने मेरी पूर्ण रूप से पूजा की है, क्योंकि तुमने बिना किसी कपट के ही मेरे वाक्यों को स्वीकार किया है ॥१२॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः । बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥१३॥

अन्वयः— पुत्रकैः पितरि एतावत्येव शूश्रूषा कार्या यतः गौरवेण गुरोः वचः बाढम् इति अनुमन्यते ॥१३॥

अनुवाद— पुत्रों को पिता की सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिए, कि वह **जो आज्ञा** यह कहकर अपने पिता के आदेश को आदर पूर्वक स्वीकार करे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनुमन्येतेति यदेतावत्येव ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् पिता की आज्ञा का अनुमोदन करके उसको स्वीकार करना ही पुत्री की अपने पिता की सबसे बड़ी सेवा हैं ॥१३॥

इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः । सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥१४॥

अन्वयः— हे वत्स ! हे सभ्य इमा तव सुमध्यमाः दुहितरः स्वैः प्रभावैः एतं सर्गम् अनेकधा बृंहयिष्यन्ति ॥१४॥

अनुवाद— हे वत्स ! तुम सभ्य हो ये तुम्हारी सुन्दर पुत्रियाँ अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का कार्य करेंगी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनेकधा प्रभावैर्वंशैर्बृंहयिष्यन्ति वर्धयिष्यन्ति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने महर्षि कर्दम से कहा कि तुम्हारी ये सभी कन्याये सुन्दर हैं । ये अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का काम करेंगी ॥१४॥

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशील यथारुचि । आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥१५॥

अन्वयः— अतः त्वम् अद्य ऋषिमुख्येभ्यः यथाशीलम् यथारुचि आत्मजाः परिदेहि, भुवि यशः विस्तृणीहि ॥१५॥

अनुवाद— अतएव आज तुम इन मरीचि आदि ऋषियों को उनके शील और रुचि के अनुसार अपनी पुत्रियां को समर्पित करके भूलोक में अपने यश का विस्तार करो ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिमुख्येभ्यो मरीच्यादिभ्यः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिमुख्य शब्द से ब्रह्माजी ने मरीचि आदि ऋषियों को कहा है ॥१५॥

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया । भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

अन्वयः— हे मुने ! भूतानां शेवधिं स्वमायया अवतीर्णं आद्यं पुरुषं देहं बिभ्राणं कपिलम् अहं वेद ॥१६॥

अनुवाद— हे मुने ! मैं जानता हूँ कि सभी जीवों के निधि स्वरूप उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आदि पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से शरीर को धारण करके कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पुत्रस्तु साक्षादीश्वर इत्याह-वेदाहमिति । शेवधिं निधिं सर्वाभीष्टदम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वेदाहम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उन्होंने महर्षि कर्दम को बतलाया कि तुम्हारे पुत्र ये कपिल तो साक्षात् परमात्मा के अवतार हैं । ये मनुष्यों की निधि हैं, क्योंकि ये सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । ये साक्षात् आदि पुरुष परमात्मा हैं ये तो अपनी माया से मनुष्य का शरीर धारण किए हुए हैं ॥१६॥

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः । हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥
एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः । अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

अन्वयः— हे मानवि हिरण्यकेशः, पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः एष ते गर्भं कैटभार्दनः प्रविष्टः, अविद्यासंशय ग्रन्थिं छित्वा गां विचरिष्यति ॥१७-१८॥

अनुवाद— हे मनुपुत्रि ये सुवर्ण के समान केश वाले, कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले, कमल के चिह्न से अंकित चरण कमल वाले ये कैटभ नामक राक्षस को मारने वाले श्रीभगवान् ही तुम्हारे गर्भ में प्रवेश किए थे। ये अज्ञान जन्य मोह की ग्रन्थियों को काटकर पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

देवहूतिं प्रत्याह त्रिभिः । ज्ञानशास्त्रोक्तं विज्ञानमपरोक्षं च ते एव योग उपायस्तेन कर्मणां जटा मूलानि वासना उद्धरन्नुत्पाटयिष्यन्। पद्ममुद्रायुक्तं पदाम्बुजं यस्य । हे मानवि, अविद्या स्वरूपज्ञानं संशया मिथ्याज्ञानानि तन्मयं तव हृदयग्रन्थिम् ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

वे तीन श्लोकों से देवहूति को कहे शास्त्रजन्य ज्ञान को ज्ञान शब्द से अभिहित किया गया है, अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान शब्द से कहा गया है, इन दोनों उपायों से कर्मों की मूलभूत वासना को विनष्ट करके पृथिवी पर विचरण करेंगे । इनके पैर में पद्म का चिह्न । हे मानवि अविद्या अर्थात् स्वरूप विषयक अज्ञान तथा संशय अर्थात् मिथ्याज्ञान स्वरूप तुम्हारे हृदय की ग्रंथि को काटकर ये पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः । लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अन्वयः— अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः लोके कपिल इति आख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अनुवाद— ये सिद्धजनों के स्वामी और सांख्याचार्यों के सम्माननीय होंगे । लोक में ये कपिल के नाम से प्रख्यात होंगे और तुम्हारी कीर्ति को बढायेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सुसंमतः सुपूजितः सन् । गन्ता प्राप्स्यति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ये सांख्याचार्यों द्वारा सुपूजित होंगे ओर लोक में इनकी कपिल के नाम से प्रसिद्धि होगी ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः । हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

अन्वयः— जगत् स्रष्टा तौ आश्वास्य कुमारैः सह नारदः हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

अनुवाद— जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी महर्षि कर्दम और देवहूति को आश्वासन देकर सनकादिक कुमारों तथा नारदजी के साथ हंसरूपी विमान पर चढकर सत्यलोक में चले गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कुमारैः सहेति शेषः । सहनारदो नारदसहितश्च । मीरच्यादीन्विवाहार्थमवस्थाप्य नैष्ठिकैरेतैः पञ्चभिः सहितो हंसो ब्रह्मा ययौ । त्रिधाम तृतीयं धाम स्वर्गस्तस्य परां काष्ठां सत्यलोकम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी नारदजी तथा चारो सनकादिकों ये पाँचों जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे उन सबों के साथ सत्यलोक में

चले गये । त्रिधाम शब्द से स्वर्ग लोक को कहा गया है, उनमें सबसे श्रेष्ठ स्वर्गलोक को चले गये । वे मरीचि आदि ऋषियों को विवाह के लिए वहीं पर छोड़ दिये ॥२०॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः । यथोदितं स्वदुहितृः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥

अन्वयः— हे क्षत्तः शतधृतौ गते तेन चोदितः प्रेरितः ततः यथोदितं स्वदुहितृः विश्वसृजां प्रादात् ॥२१॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के चले जाने पर उन्हीं की प्रेरणा के अनुसार प्रेरित महर्षि कर्दम ने अपनी पुत्रियों को प्रजापतियों को प्रदान किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

शतधृतौ ब्रह्मणि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

शतधृति ब्रह्माजी का नाम है । उनके चले जाने पर ॥२१॥

मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये । श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

अन्वयः— मरीचये कलां प्रादत् अथ अत्रये अनसूयाम् अङ्गिरसे श्रद्धाम् अयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् प्रादत् ॥२२॥

अनुवाद— उन्होंने मरीचि महर्षि को कला नामक पुत्री को प्रदान कर दिया, अत्रि महर्षि का विवाह अनसूया से किया, अङ्गिरा महर्षि का श्रद्धा नामक पुत्री से विवाह कर दिया तथा पुलस्त्य महर्षि का विवाह हविर्भू नामक पुत्री से कर दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् । ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥

अन्वयः— पुलहाय युक्तां गतिं, क्रतवे च क्रियां सतीम् ख्यातिं च भृगवे अयच्छत् वसिष्ठाय अपि अरुन्धतीम् ॥२३॥

अनुवाद— पुलह महर्षि का विवाह उनके अनुसार गति से, क्रतु महर्षि का साध्वी क्रिया से, भृगु महर्षि का ख्याति नामक पुत्री से और वसिष्ठ महर्षि का विवाह भी अरुन्धती से उन्होंने कर दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

युक्तां योग्याम् । अयच्छत् अदात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

युक्त शब्द का अर्थ योग्य है और अयच्छत् अर्थात् प्रदान किया ॥२३॥

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते । विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान् सदारान्समलालयत् ॥२४॥

अन्वयः— अथर्वणे शान्तिं प्रादात यया यज्ञः वितन्यते । कृतोद्वाहान् विप्रर्षभान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अनुवाद— उन्होंने अथर्वा महर्षि को शान्ति नाम की कन्या प्रदान किया जिससे यज्ञ का विस्तार होता है। उन्होंने विवाह करके ऋषिवर्यों का उनकी पत्नियों के साथ सत्कार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

वितन्यते समृद्धः क्रियते । शान्त्यधिष्ठात्रीं देवतामित्यर्थः । समलालयत्संतोषितवान् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वितन्यते अर्थात् समृद्ध किया जाता है शान्ति देवी शान्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं । समलालयत् अर्थात् संतुष्ट किया ॥२४॥

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् । प्रातिष्ठन्नन्दितमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥

अन्वयः— क्षत्तः ततः ते ऋषय कृतदारा तम् निमन्त्र्य, आनन्दितम् आपन्ना, स्वं स्वम् आश्रममण्डलम् प्रातिष्ठन् ॥२५॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् विवाह हो जाने पर वे ऋषिगण कर्दम महर्षि से आज्ञा लेकर आनन्दित हो गये और अपने-अपने आश्रम मण्डल के लिए प्रस्थान किये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

निमन्त्र्य पृष्ट्वा । नन्दिं हर्षं प्राप्ताः सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

निमन्त्र्य अर्थात् पूछकर और नदिम् आनन्द पूर्वक ॥२५॥

स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् । विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

अन्वयः— स अवतीर्णं विबुधर्षम् त्रियुगम् आज्ञाय, विविक्ते उपसंगम्य, प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

अनुवाद— महर्षि कर्दम भी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीविष्णु भगवान् को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास जाकर प्रणाम किए और कहे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स च मुनिः । त्रियुगं विष्णुम् । विविक्ते रहसि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

वे कर्दम महर्षि भी, त्रियुग अर्थात् भगवान् विष्णु को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास गये औरउनको प्रणाम करके कहे ॥२६॥

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः । कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥

अन्वयः— अहो स्वैः अमङ्गलैः निरये पापच्यमानानां देवताः नूनं इह भूयसा कालेन प्रसीदन्ति ॥२७॥

अनुवाद— अहो अपने पाप कर्मों के कारण इस दु:खमय संसार में अत्यधिक कष्टों को भोगेने वाले जीवों पर देवता बहुत दिनों के बाद प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

पापच्यमानानां भृशं दह्यमानानाम् । निरये संसारे । स्वीयैरमङ्गलैः पापैः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस संसार में अपने पाप कर्मों के कारण अत्यधिक संतप्त होने वाले मनुष्यों पर देवता बहुत समय के पश्चात् प्रसन्न हो जाते हैं ॥२७॥

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना । द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥

अन्वयः— बहुजन्म विपाकेन, सम्यक् योग समाधिना, यतयः शून्यागारेषु यत् पदं द्रष्टुम् यतन्ते ॥२८॥

अनुवाद— अनेक जन्मों की साधना से परिपक्व हुयी समाधि के द्वारा योगिजन जिनके स्वरूप को एकान्त में देखने का प्रयास करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

कुतः । सर्वा देवताः प्रसन्ना इति ज्ञातम्, अलभ्यलाभादित्याह द्वाभ्याम् । बहुषु जन्मसु विपक्वेन सुसिद्धेन । सम्यग्योगो भक्तियोगस्तस्मिन्समाधिरैकाग्र्यं तेन । शून्यागारेषु विविक्तस्थानेषु । यस्य तव पदम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आप कैसे जानते हैं कि सभी देवता प्रसन्न हो गये हैं । तो इसका उत्तर है कि अलभ्यलाभ होने के कारण मैं जानता हूँ । इस बात को महर्षि दो श्लोकों से कहते हैं । अनेक जन्मों में सिद्ध हुयी समाधि में श्रेष्ठ भक्तियोग के द्वारा चित्त की एकाग्रता के द्वारा एकान्तस्थान में आपके चरणों का दर्शन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ।।२८।।

स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः । गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ।।२९।।

अन्वयः— स एव स्वानां पक्षपोषणः भगवान् नः ग्राम्याणां हेलनं नगणय्य अद्य नः गृहेषु जातः ।।२९।।

अनुवाद— वे ही अपने भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान् आज हम विषय लोलुप जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही हमारे घर में अवतीर्ण हो गये हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

हेलनमवज्ञां लाघवं नगणय्यागणयित्वा । उचितमेव तवैतदित्याह । यस्त्वं स्वानां भक्तानां पक्षं पुष्णासीति तथा सः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

हेलन अवमानना को कहते हैं । महर्षि कहते हैं कि हम कामी जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही आप हमारे यहाँ अवतीर्ण हो गये हैं । आपका ऐसा करना उचित भी है, क्योंकि आप अपने भक्तों की रक्षा किया करते हैं ।।२९।।

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे । चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ।।३०।।

अन्वयः— भक्तानां मानवर्धनः भवान् स्वीयं वाक्यम् ऋतं कृर्तुम् ज्ञानं चिकीर्षुः भगवान् मे गृहे अवतीर्णः असि ।।३०।।

अनुवाद— आप अपने भक्तों का मान बढ़ाने का काम करते हैं । अपनी वाणी को सत्य करने के लिए तथा सांख्य योग का उपदेश देने के लिए आप मेरे गृह में अवतार ग्रहण किए हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । स्वयमेवावतीर्णोऽसि स्ववाक्यं तव पुत्रो भविष्यामीति यत्तत्सत्यं कर्तुम् । ज्ञानं ज्ञानसाधनं सांख्यं च चिकीर्षुः सन् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का विस्तार से दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं । आपने जो पहले कहा था कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा अपने इसी वाक्य को सत्य करने के लिए आप मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं । आपके इस अवतार का प्रयोजन ज्ञान के साधनभूत सांख्ययोग को प्रवर्तित करना है ।।३०।।

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव । यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ।।३१।।

अन्वयः— हे भगवन् तान्येव एव ते रूपाणि अभिरूपाणि सन्ति, यानि-यानि स्वजनानाम् रोचन्ति तानि अपि अरूपिणः तव अभिरूपाणि ।।३१।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके वे चतुर्भुज इत्यादि रूप ही आपके स्वरूपानुरूप हैं, और आपके भक्तों को जो रूप प्रिय लगते हैं वे भी आपके अनुरूप है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

यानि तवालौकिकानि चतुर्भुजादिरूपाणि तान्येव तेऽभिरूपाणि योग्यानि । यानि च स्वजनानां रोचन्ते मनुष्यसरूपाणि तान्यपि ते रोचन्त इत्यर्थः । अरूपिणः प्राकृतरूपहितस्य ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

प्रभो ! आप प्राकृत रूप से रहित हैं । आपके जो चतुर्भुज आदि दिव्य रूप हैं वे ही आपके योग्य है और आपके भक्तों को जो अच्छे लगते हैं वे भी रूप आपके योग्य ही हैं ॥३१॥

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥

अन्वयः— अद्धा सूरिभिः तत्त्व बुभुत्सया सदाऽभिवादार्हणपादपीठम्, ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियाँ पूर्तं त्वाम् अहं प्रपद्ये ॥३२॥

अनुवाद— आपकी चरणचौकी तत्त्वज्ञान की इच्छा से विद्वानों द्वारा सदा वन्दनीय है । ऐश्वर्य वैराग्य, यश, ज्ञान पराक्रम और श्री इन सबों से परिपूर्ण आपकी मैं शरणागति करता हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अभिवादार्हं पादपीठं यस्य । ऐश्वर्यादिभिः पूर्तं पूर्णम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तत्त्वज्ञान की इच्छा से आप की चरण चौकी विद्वानों द्वारा वन्दनीय हैं और ऐश्वर्यादि छहो ऐश्वर्यों से आप परिपूर्ण हैं, अतएव मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥३२॥

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।
आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

अन्वयः— परं, प्रधानं, पुरुषं, महान्तं कालं, कविं, त्रिवृतं, लोकपालं, आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं, सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, अहङ्कार, समस्तलोक, और लोकपाल इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और इस सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपनी चेतना शक्ति के द्वारा अपने में लीन कर लेते हैं । ऐसे भगवान् कपिल की मैं शरणागति करता हूँ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ऐश्वर्यादिकं विवृण्वन्नाह । परं परमेश्वरम् । तत्र हेतुः-स्वच्छन्दाः स्वाधीनाः शक्तयो यस्य । ता एवाह । प्रधानं प्रकृतिरूपं पुरुषं तदधिष्ठातारं महान्तं महत्तत्त्वरूपं कालं तेषां क्षोभकं त्रिवृतमहंकाररूपं लोकात्मकं तत्पालात्मकं च । तदेवं मायया प्रधानादिरूपतामुक्त्वा चिच्छक्त्या निष्प्रपञ्चतामाह । आत्मानुभूत्या चिच्छक्त्याऽनुगतः स्वस्मिन् लीनः प्रपञ्चो यस्य तम् । कविं सर्वज्ञम् । प्रधानाद्याविर्भावलयसाक्षिणमित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ऐश्वर्य आदि का विस्तार करते हुए महर्षि ने कहा— आप ही परमेश्वर हैं, क्योंकि आपके ही अधीन सारी शक्तियाँ हैं । उन शक्तियों को बतलाते हुए वे कहते हैं- प्रकृतिस्वरूप, प्रधान, प्रकृति के अधिष्ठाता पुरुष, महान् इन सबों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल, सात्त्विक राजस एवं तामस तीनों प्रकार का अहङ्कार, लोक एवं लोकपाल, इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । इस तरह से माया के द्वारा प्रधानादिरूपता को बतलाकर चित् शक्ति के द्वारा श्रीभगवान् की निष्प्रपञ्चता को बतलाते हुए उन्होंने कहा **आत्मानुभूत्या० इत्यादि** अर्थात् आप अपनी चित्शक्ति के द्वारा अनुगत होकर सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपने में लीन कर लेते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और प्रधान आदि के अविार्भाव और लय इत्यादि के आप साक्षी हैं । ऐसे आप कपिल भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥३३॥

आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णर्ण उताप्तकामः ।
परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥३४॥

अन्वयः— त्वया अवतीर्णाणे उत आप्तकामः परिव्रजत्पदवीम् आस्थितः अहम् त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः चरिष्ये, प्रजानां पतिं अद्य अभिपृच्छेस्म ॥३४॥

अनुवाद— आपके द्वारा मैं अब सभी ऋणों को उतार चुका हूँ, मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी है, अब मैं संन्यास मार्ग पर स्थित होकर आपका अपने हृदय में स्मरण करते हुए शोक रहित होकर पृथिवी पर विचरण करूँगा, इसके लिए मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

संन्यासानुज्ञां प्रार्थयते । आस्माभिपृच्छे यत्किंचिदभिपृच्छामीत्यर्थः । त्वया पुत्ररूपेणावतीर्णानि निवृत्तानि ऋणानि दैवादिरूपाणि यस्य स आप्तकामश्चाहं परिव्रजतां संन्यासिनां पदवीं मार्गमाश्रितः संस्त्वां युञ्जन् स्मरन्विचरिष्यामि ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्दम महर्षि भगवान् कपिल से संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना करते हैं । **आस्माभिपृच्छे** पद का अर्थ है कि मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । आपके पुत्र रूप से उत्पन्न हो जाने के कारण मेरे देवऋण आदि तीनों ऋण समाप्त हो गये हैं । मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं । अब मैं सन्यास मार्ग को अपनाकर अपने हृदय में आपका स्मरण करते हुए सभी शोकों से रहित होकर विचरण करना चाहता हूँ ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

माया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके । अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥

अन्वयः— मुने सत्यलौकिके लोकस्य मया प्रोक्तं प्रमाणं तुभ्यं यद् ऋतं अवोचम् अथ अजनि ॥३५॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे मुने संसार के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा वचन ही प्रमाण है । मैंने जो आप से सत्य कहा था कि मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा वह मैंने अवतार ग्रहण कर लिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अहं तावज्ज्ञानोपदेशायैव त्वद्गृहेऽवतीर्णः अतस्तव गृहे वसतोऽपि मुक्तिः सुलभैव । यद्यवश्यं गन्तव्यमेवाग्रहस्तथापि मामेवानुस्मरन् गच्छेत्याशयेनाह-मयेति षड्भिः । सत्यलौकिके वैदिके लौकिके च कृत्ये । स्वोक्तस्य प्रमाण्यमभिदर्शयति । यद्यस्मात्तुभ्यं तव पुत्रो भविष्यामीत्यवोचम् अथ अत एव तदृतं सत्यं यथा भवति तथा मयाऽजनि जन्म स्वीकृतम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

मैं तो ज्ञानोपदेश करने के लिए आपके गृह में अवतीर्ण हुआ हूँ अतएव यदि आप अपने घर में ही निवास करते हैं तो भी आपको मुक्ति सुलभ ही है । यदि आपका यह आग्रह हो कि मुझे संन्यास अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिए तो भी मेरा स्मरण करते हुए आप जायँ इसी अभिप्राय से भगवान् कपिल ने **मया इत्यादि** छह श्लोको को कहा- लोक के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा कथन ही प्रमाण है । अपने कथन की प्रमाणिकता को बताते हुए कपिल भगवान् ने कहा— चूकि मैंने आपसे कहा था कि मैं आपका पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करूँगा इसलिए मैंने आपके यहाँ जन्म ले लिया और मेरी वह वाणी सत्य हो गयी ॥३५॥

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् । प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥३६॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके मे एतत् जन्म मुमुक्षूणाम् दुराशयात् प्रसंख्यानाय आत्मदर्शने तत्त्वानां सम्मताय ॥३६॥

अनुवाद— इस लोक में यह मेरा जन्म मुमुक्षु जीवों के लिङ्गशरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले जीवों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी और प्रकृति आदि का विवेक करने के लिए ही हुआ है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

दुराशयाल्लिङ्गान्मुमुक्षूणां मुनीनामात्मदर्शने संमताय तत्त्वानां प्रसंख्यानाय विद्धीत्युत्तरस्यानुषङ्गः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

संसार में मेरा यह जन्म लिङ्ग शरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले मुमुक्षु जीवों के आत्म दर्शन में उपयोगी होगा । तत्त्वों का उपदेश करने के लिए ही मेरा अवतार है यह जानो ।।३६।।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा । तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ।।३७।।

अन्वयः— एष आत्मपथः भूयसा कालेन नष्टः अव्यक्तः । तं प्रवर्तयितुम् मया इमं देहं भृतम् विद्धि ।।३७।।

अनुवाद— आत्मज्ञान का यह मार्ग बहुत समयसे लुप्त हो गया है । इसको पुनः प्रवर्तित करने के लिए ही मैंने इस शरीर को धारण किया है । यह तुम जानो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

नन्वयमात्मज्ञानमार्गः पूर्वसिद्ध एव नेदानीमपूर्ववत्प्रवर्तनीयस्तत्राह-एष इति । अव्यक्तः सूक्ष्मः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह ज्ञान मार्ग तो पहले से ही हैं, अतएव इसको अपूर्व के समान प्रवर्तित्त नहीं करना है, इस पर भगवान् ने कहा यह ज्ञान मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव इसको प्रवर्तित करने के लिए मैंने इस शरीर को धारण किया है ।।३७।।

गच्छ कामं मया पृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा । जित्वा सुदुर्जयं मृत्युमतृतत्वाय मां भज ।।३८।।

अन्वयः— मया आपृष्टः कामं गच्छ मयि सन्यस्त कर्मणा दुर्जयं मृत्युं जित्वा अमृतत्वाय मां भज ।।३८।।

अनुवाद— आपने मेरी आज्ञा माँगी है आप अपनी इच्छानुसार जायँ, अपने समस्त कर्मों को मुझको ही समर्पित करके जिसको जीतना बड़ा कठिन है उस मृत्यु को जीतकर मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए मेरा भजन करें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

कामं यथेच्छम् । आपृष्टोऽनुज्ञातः । यद्वा यथा त्वं गन्तुं मां पृष्टवांस्तथात्रावस्थातुं मयापि त्वमापृष्ट इत्यर्थः । मयि संन्यस्तेन समर्पितेन कर्मणा अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' इति श्रुतेः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

कामं पद का अर्थ अपनी इच्छा के अनुसार है । मया आपृष्टः अर्थात् मेरी आज्ञा है । आपृष्टः का अर्थ यह भी है कि जिस तरह से आपने जाने के लिए मुझसे आज्ञा माँगी है उसी तरह मैं भी यहाँ पर रहने के लिए आपसे आज्ञा माँगता हूँ । आप मुझे ही अपने कर्मों को समर्पित करके मृत्यु को जीतकर मुक्ति को प्राप्त कर लें। श्रुति भी कहती हैं **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते** अर्थात् अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतकर जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । यहाँ श्रुति में अविद्या शब्द से कर्मों को कहा गया है ।।३८।।

मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् । आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ।।३९।।

अन्वयः— स्वयंज्योतिः आत्मानं सर्वभूतगुहाशयम् माम् आत्मना आत्मन्येव वीक्ष्य विशोकः अभयम् ऋच्छसि ।।३९।।

अनुवाद— मैं स्वयं प्रकाश और सभी जीवों की आत्मा हूँ, सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हूँ । आत्म विशुद्धि के द्वारा जब तुम मेरा अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च मां परमं परमात्मानमात्मनि स्वस्मिन्नात्मना अन्वीक्षमाणोऽभयं मोक्षं प्राप्स्यसि ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जब तुम अपनी शुद्ध बुद्धि से अपने अन्तःकरण में मेरा साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगे॥३९॥

मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् । वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥४०॥

अन्वयः— मात्रे सर्वकर्मशमनीम् आध्यात्मिकीं विद्यां वितरिष्ये यया च असौ भयं च अतितरिष्यति ॥४०॥

अनुवाद— अपनी माता देवहूति को सभी कर्मों को विनष्ट करने वाले आत्मज्ञान को प्रदान करूँगा । उसके द्वारा ये भी संसार रूपी भय से मुक्त हो जायेंगी ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

मात्रे देवहूत्यै । शमनीमुन्मूलनीम् । भयमतिशयेन तरिष्यति । परमानन्दं प्राप्स्यतीति चकारार्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

माता देवहूति को मैं आत्मज्ञान प्रदान करूँगा । वह कर्मों का विनाश करने वाला है । उससे ये संसार को पूर्णरूप से पार कर जायेंगी और परमानन्द को प्राप्त कर लेंगी यह चकार का अर्थ है ॥४०॥

मैत्रेय उवाच

एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः । दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥४१॥

अन्वयः— तेन कपिलेन एवं समुदितः प्रजापतिः प्रीतः तं दक्षिणीकृत्य वनमेव जगाम ह ॥४१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् कपिल के द्वारा इस तरह कहने पर महर्षि कर्दम उनकी प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता पूर्वक वन में चले गये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

समुदितः सम्यगुक्तः सन् । तं प्रदक्षिणीकृत्य ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् कपिल द्वारा अच्छी तरह से कहे जाने पर महर्षि कर्दम भगवान् कपिल की प्रदक्षिणा किए और वन में चले गये ॥४१॥

व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः । निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥४२॥

अन्वयः— आत्मैकशरणः मौनव्रतम् आस्थितः स भगवान् मुनिः निःसङ्गः अनग्निः अनिकेतनः क्षोणीम् व्यचरत् ॥४२॥

अनुवाद— मुनियों के अहिंसा व्रत को अपनाकर केवल परमात्मा कोअपना शरण मानने वाले वे कर्दम महर्षि सबसे अनासक्त होकर अग्नि तथा आश्रय का परित्याग करके पृथिवी पर सञ्चरण करने लगे ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

मुनीनामिदं मौनम् व्रतमहिंसालक्षणम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि अहिंसा प्रधान मौन व्रत को अपना लिए थे । मुनीनामिदम् यह मौन की व्युत्पत्ति है । उन्होंने अग्नि और निवास स्थान दोनों का परित्याग कर दिया ओर वे सबों से अनासक्त होकर पृथिवी पर विचरण करने लगे॥४२॥

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् । गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥

अन्वयः— यत् तत् सदसत परम् गुणावभासे विगुणो एकभक्त्यनुभाविते ब्रह्मणि मनोयुजानः ॥४३॥

अनुवाद— जो कार्य एवं कारण से परे हैं, सत्त्वादि गुणों का प्रकाशक एवं निर्गुण हैं तथा जिनका अनन्याभक्ति से प्रत्यक्ष होता है । ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

सदसतः परं यत्तस्मिन् ब्रह्मणि । गुणावभासके निर्गुणे । एकभक्त्याव्यभिचारिण्या भक्त्यानुभाविते ऽपरोक्षीकृते ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

जो कार्य एवं कारण से परे हैं ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया । वे परंब्रह्म सत्त्वादि गुणों के प्रकाशक हैं तथा निर्गुण हैं ऐसे परंब्रह्म में महर्षि कर्दम ने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् । प्रत्यक् प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥

अन्वयः— निरहंकृतिः निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् प्रत्यक् प्रशान्तधीः धीरः प्रशान्तोर्मिः उदधिः इव ॥४४॥

अनुवाद— वे अहङ्कार ममकार तथा सुख दुःखादि द्वन्दों से रहित होकर भेददृष्टि से रहित हो गये, सबमें अपनी आत्मा को ही देखने लगे उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी । उस समय महर्षि कर्दम शान्त लहरों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अतो देहादिष्वहंकारादिरहितः । अतएव निर्द्वन्द्वः शीतोष्णाद्यनाकुलः । समदृग्भेदाग्राहकः किंतु स्वदृक् स्वमेव पश्यन्। प्रत्यक् प्रवणा शान्ता विक्षेपरहिता धीर्यस्य ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उनकी देह आदि में अहङ्कार ममकार आदि की भावना नहीं रह गयी थी । वे शीत या उष्ण आदि द्वन्द्वों के कारण व्याकुल नहीं होते थे । वे भेदबुद्धि से रहित होने के कारण समदृक् हो गये थे । वे सबों में अपनी आत्मा को ही देखते थे । प्रत्यक् अर्थात् उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी हो गयी थी, उनकी बुद्धि शान्त हो गयी थी अर्थात् विक्षेपरहित हो गयी थी । उस समय वे शान्त लहरियों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि । परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

अन्वयः— परेण भक्तिभावेन वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

अनुवाद— परम भक्ति के द्वारा सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ भगवान् वासुदेव में चित्त के स्थिर हो जाने के कारण सभी बन्धनों से मुक्त हो गये थे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवंविधकल्पितोपाधिनिवृत्तिमुक्त्वा परमेश्वरपदप्राप्तिमाह-वासुदेव इति त्रिभिः । प्रतीचो जीवस्यात्मनि लब्ध आत्मा चित्तं येन, यतो मुक्तं बन्धनमज्ञानं यस्य ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

कल्पितोपाधि की निवृत्ति को बतलाकर परमेश्वर के पद की प्राप्ति को **वासुदेवे इत्यादि** तीन श्लोकों से

बतलाते है । वे अपने चित्त को जीव की आत्मा में ही लगा दिए थे, अतएव अज्ञान के बन्धन से वे महर्षि मुक्त हो गये थे ॥४५॥

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् । अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥४६॥

अन्वयः— सर्वभूतेषु आत्मानं भगवन्तम् अवस्थितम्, भगवत्यपि आत्मनि च सर्वभूतानि अपश्यत ॥४६॥

अनुवाद— वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा की स्थिति तथा अपनी आत्मा और परमात्मा में सभी भूतों को अवस्थित रूप से देखने लगे ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

लब्धात्मानमेवाह-आत्मानमिति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा को देखने लगे और सभी भूतों को अपनी आत्मा परमात्मा में देखने लगे ॥४६॥

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा । भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धे कापिलेयोख्याने चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

अन्वयः— इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा, भगवद्भक्ति युक्ते न भागवती गतिः प्राप्ता ॥४७॥

अनुवाद— इस तरह इच्छा और द्वेष से रहित होकर सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्ति से परिपूर्ण कर्दम महर्षि ने श्रीभगवान् के परमपद को प्राप्त कर लिया ॥४७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कपिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं तेन भागवती गतिः प्राप्ता । पाठान्तरे स एव तां गतिं प्राप्त इति ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह महर्षि कर्दम ने श्रीभगवान् के परम पद को प्राप्त कर लिया । जहाँ पर **प्राप्तो भागवतीं गतिम्** यह पाठ भेद है । वहाँ पर भी वही अर्थ होगा । उन्होंने उस गति को प्राप्त किया ॥४७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अन्तर्गत अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

पच्चीसवाँ अध्याय

भगवान् कपिल द्वारा भक्तियोग का वर्णन

शौनक उवाच

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया । जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥

अन्वयः— तत्त्वसंख्याता भगवान् कपिलः अजः सक्षात् नृणाम् आत्मा प्रज्ञप्तये स्वयम् मायया जातः ॥१॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— तत्त्वों की गणना करने वाले भगवान् कपिल साक्षात् नारायण होकर भी मनुष्यों को आत्मज्ञान कराने के लिए अपनी माया से उत्पन्न हुए थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चविंशे जनन्या तु पृष्टो बन्धविमोचनम् । आदावाह परं भक्तिलक्षणं कपिलः सुतः ॥१॥ कपिलेनार्पिता मात्रे गूढभावनियन्त्रिता । योगमाणिक्यमञ्जूषा स्फुटमुद्धाट्यतेऽधुना ॥२॥ उक्तानुवादपूर्वकं कापिलं योगं पृच्छति-कपिल इति त्रिभिः । तत्त्वानां संख्याता गणकः, सांख्यप्रवर्तक इत्यर्थः । अतएव स्वयं जातः । आत्मप्रज्ञप्तये आत्मतत्त्वज्ञापनाय ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पच्चीसवें अध्याय में माता देवहूति के द्वारा संसारबन्ध से मुक्ति के साधन के विषय में पूछे जाने पर उनके पुत्र कपिल महर्षि ने सर्वप्रथम भक्ति का स्वरूप बतलाया ॥१॥ महर्षि कपिल के द्वारा, गूढ भावों से युक्त अपनी माता को समर्पित योग रूपी रत्न की मंजूषा को मैं इस समय स्पष्ट रूप से खोल रहा हूँ ॥२॥ पूर्वोक्त अर्थ का अनुवाद करके शौनक महर्षि सूतजी से तीन श्लोकों द्वारा कापिल योग के विषय में पूछते हैं । तत्त्वानां संख्याता अर्थात् तत्त्वों की गणना करने वाले अर्थात् सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल तो साक्षात् भगवान् नारायण ही है । वे तो अपनी माया से मनुष्य रूप से अवतीर्ण हुए । उनके अवतार का प्रयोजन मनुष्यों को आत्मतत्व का ज्ञान प्रदान करना है ॥१॥

न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् । विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥२॥

अन्वयः— सर्वयोगिनां वरिम्णः पुंसां वर्ष्मणः अस्य विश्रुतौ श्रुतदेवस्य मे असवः भूरि न तृप्यन्ति ॥२॥

अनुवाद— सभी योगियों में श्रेष्ठ पुरुषश्रेष्ठ भगवान् कपिल की कीर्तिको सुनने से मेरी इन्द्रियाँ नहीं तृप्त होती हैं, यद्यपि मैंने भगवान् के चरित्र को सुना है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

पुंसां मध्ये वर्ष्मणो वृद्धस्योत्तमस्येत्यर्थः । सर्वयोगिनां मध्ये वरिम्णः, वरस्य भावो वरिमा, भवितृप्रधानोऽयं निर्देशः। वरिष्ठस्येत्यर्थः । यद्वा वरीयस्त्वादित्यर्थः । विश्रुतौ कीर्तौ । असव इन्द्रियाणि भूर्यलं न तृप्यन्ति । श्रुतेन श्रवणेन दीव्यति द्योतत इति तथा तस्य । यद्वा भूरि बहुशः श्रुतो देवो येन तस्यापि मेऽसव इति संबन्धः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् कपिल पुरुषों में श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम थे । वे सभी योगियों में श्रेष्ठ थे । वर के भाव वरिमा कहते है । वरिम्णः भवितृप्रधान निर्देश है । निर्देश दो प्रकार का होता है भाव प्रधान और भवितृ प्रधान । प्रकृति जन्य बोध के प्रकार को भाव प्रधान कहते है । प्रकृति को ही भविता जानना चाहिए । अतएव धर्मितात्पर्यक निर्देश को भवितृ निर्देश कहते हैं । अथवा **वरिम्णाः** का अर्थ श्रेष्ठ होने के कारण है । विश्रुति का अर्थ कीर्ति है । महर्षि शौनक कहते हैं कि कपिल भगवान् की कीर्ति को सुनने से मेरी इन्द्रियाँ अत्यधिक तृप्त नहीं होती हैं । उनकी

कीर्ति को सुनने से और अधिक प्रकाश होता है। अथवा यह अभिप्राय है कि यद्यपि मैं भगवच्चरित को बहुत सुन चुका हूँ फिर भी कपिल भगवान् की कीर्ति सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥२॥

यद्यद्विधत्ते भगवान्स्वच्छन्दात्मात्ममायया । तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥३॥

अन्वयः— स्वच्छन्दात्मा भगवान् यद् यद् आत्ममायया विधत्ते कीर्तन्यानि तानि श्रद्धधानस्य मे अनुकीर्तय ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, वे अपनी योगमाया के द्वारा जो कुछ भी करते हैं, वह कीर्तनीय है। मेरी उन सबों को सुनने में श्रद्धा है, उसे आप मुझे सुनायें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

स्वानां पुंसां छन्देनेच्छया आत्मा देहो यस्य सः। यद्यत्कर्म विधत्ते तानि कर्माणि कीर्तनार्हाण्यनुकीर्तय ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्री भगवान् अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार ही देह को धारण कर लेते हैं। वे भगवान् अपनी योगमाया के द्वारा जिन-जिन कर्मों को करते हैं, वे कीर्तन्य हैं। उन सबों को सुनने में मेरी श्रद्धा है, उन सबों को ही आप मुझे सुनायें ॥३॥

सूत उवाच

द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा । प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

अन्वयः— तथा द्वैपायनसखः भगवान् मैत्रेयः अन्विक्षिक्यां प्रचोदितः प्रीतः विदुरं इदं प्राह ॥४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इसी तरह महर्षि द्वैपायन के मित्र भगवान् मैत्रेय से आत्मज्ञान के विषय में विदुरजी ने प्रश्न किया था तो भगवान् मैत्रेय ने भी उनसे इस तरहसे कहा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यथा त्वं मां प्रचोदयस्येवं प्रचोदितः सन्। तथा तत्प्रश्नानुसारेण। आन्वीक्षिक्यामात्मविद्यायाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से आप मुझसे प्रश्न करते हैं उसी तरह से विदुरजी के द्वारा भी आत्मविद्या के विषय मे प्रश्न किए जाने पर मैत्रेय महर्षि ने कहा था ॥४॥

मैत्रेय उवाच

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया । तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥५॥

अन्वयः— पितरि अरण्यं प्रस्थिते मातुः प्रियचिकीर्षया भगवान् कपिलः किल विन्दुसरे अवात्सीत् ॥५॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— पिता के वन में चले जाने पर भगवान् कपिल अपनी माता का प्रिय कार्य करने के लिए विन्दुसर तीर्थ में ही रहने लगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

बिन्दुसरे बिन्दुसरसि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

बिन्दुसरे पद का अर्थ हैं, बिन्दुसरोवर तीर्थ में ही कपिल महर्षि रहने लगे ॥५॥

तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् । स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥६॥

अन्वयः— तम् आसीनम् अकर्माणं तत्त्वमार्गप्रदर्शनम् स्वसुतं, धातुः वचः संस्मरती देवहूतिः आह ॥६॥

अनुवाद— कर्मकलाप से विरक्त होकर आसन पर बैठे हुए तत्त्वसमूह के पारदर्शी अपने पुत्र भगवान् कपिल से ब्रह्माजी की वाणी का स्मरण करती हुयी देवहूति ने कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वमार्गस्याग्रं पारं दर्शयतीति तथा तम् । '**एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः**' इत्यादि धातुर्वचः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

तत्त्वमार्ग के पारदर्शी भगवान् कपिल ब्रह्माजी की हे मनुपुत्रि ! तुम्हारे गर्भ में स्वयं भगवान् विष्णु प्रवेश किए थे । इस वाणी का स्मरण करके माता देवहूति ने पूछा ॥६॥

देवहूतिरुवाच

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् । येन संभाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्धं तमः प्रभो ॥७॥

अन्वयः— हे भूमन् असदिन्द्रिय तर्षणात् नितरां निर्विण्णा, येन सम्भाव्यमानेन हे प्रभो अन्धं तमः प्रपन्ना ॥७॥

अनुवाद— हे भूमन् ! मैं इन दुष्ट इन्द्रियों की विषयलालसा के कारण अत्यन्त ऊब गयी हूँ । इन सबों की इच्छापूर्ति करने के कारण मैं घोर अन्धकार में पड़ी हुयी हूँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

असतामिन्द्रियाणां तर्षणाद्विषयाभिलाषान्निर्विण्णा श्रान्तास्मि । येन संभाव्यमानेन पूर्यमाणेन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ये मेरी दुष्ट इन्द्रियाँ है इनके विषयाभिलाष के कारण मैं ऊब गयी हैं । इन सबों के ही संतुष्ट करने में लगी रहने के कारण मैं घोर अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई हूँ ॥७॥

तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् । सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्ध मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥

अन्वयः— तस्य मे दुष्पारस्य तमसोन्धस्य पारगम् सच्चक्षुः त्वम् मे जन्मनामन्ते त्वदनुग्रहात् लब्धम् ॥८॥

अनुवाद— जिसको पार करना बड़ा ही कठिन है, उस अज्ञानान्धकार से पार जाने के लिए आप मुझको मेरी जन्म परम्परा के अन्त में सुन्दर नेत्र के समान मुझ पर कृपा करके प्राप्त हुए हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पारं गमयतीति पारगं त्वमेव श्रेष्ठं चक्षुर्मे मया लब्धम् । त्वदनुग्रहाज्जन्मनामन्ते भाव्ये सति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने कहा अब मेरे जन्म की परम्परा समाप्त होने वाली है, इसीलिए आप इस घोर अज्ञानान्धकार से पार ले जाने वाले सुन्दर नेत्र के समान मुझे प्राप्त हुए हैं ॥८॥

य आद्यो भगवान्पुंसामीश्वरो वै भवान्किल । लोकस्य तमसान्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥९॥

अन्वयः— भगवान् वै किल पुंसाम् ईश्वरः भवान् आद्यः पुरुषः यः तमसान्धस्य लोकस्य सूर्य इव चक्षुः उदितः ॥९॥

अनुवाद— निश्चित रूप से आप सम्पूर्ण जीवों के स्वामी भगवान् आदि पुरुष हैं । जो आप अज्ञानान्धकार से अन्धे बने हुए पुरुषों के लिए सूर्य के समान उदित हुए हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति । स भगवान् भवांश्चक्षूरूप उदितः सूर्यो यथा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति उपर्युक्त अर्थ का ही इस श्लोक में विस्तार करती हैं । आप स्वयं भगवान् है, जीवों के स्वामी और आदि पुरुष है, फिर भी अज्ञानान्धकार में पड़े हुए जीवों के लिए आप उदित हुए सूर्य के समान नेत्र है ॥९॥

अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि । योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया ॥१०॥

अन्वयः— हे देव ! एतस्मिन् अहंमम इति अवग्राहः त्वयायोजितः । अथ मे सम्मोहम् त्वम् अपाक्रष्टुम् अर्हसि ॥१०॥

अनुवाद— इस शरीरादि में जो अहन्त्व एवं ममत्व का आग्रह बना हुआ है, उसको भी आपने ही किया है । देव आप मेरे इस अज्ञानजन्य मोह को दूर कर दें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अपाक्रष्टुमपनेतुम् । कोऽसौ संमोहस्तमाह । एतस्मिन्देहादौ त्वयैव योजितो योऽहममेत्यवग्रह आग्रहः । द्वितीय इतिशब्दस्तत्कार्यरागादिग्रहणार्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अपाक्रष्टुम् अर्थात् दूर करने के लिए अपने संमोह को बतलाती हुयी देवहूति ने कहा इस शरीर आदि में आपने अहंत्व और ममत्व की भावना को लगा दिया है । आप मेरे इस मोह को दूर कर दें । दूसरे इति शब्द का प्रयोग मोह के कार्य भूत राग इत्यादि को सूचित करने के लिए किया गया है ॥१०॥

तं त्वा गताऽहं शरणं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥११॥

अन्वयः— तं स्वभृत्यसंसारतरो कुठारम् शरण्यं त्वा अहं शरणागता, प्रकृतेः पुरुषस्य जिज्ञासया अहं सद्धर्मविदां वरिष्ठम् नमामि ॥११॥

अनुवाद— अपने भक्तों के संसार रूपी वृक्ष के लिए कुठार के समान, तथा रक्षक आपकी मैं शरणागति करती हूँ । प्रकृति तथा पुरुष के स्वभाव को जानने की इच्छा से मैंने आपकी शरणागति की है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रकृतेः पुरुषस्य च जिज्ञासया त्वामहं शरणं गता सती नमामीत्यन्वयः । कुठारं छेत्तारम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति तथा पुरुष के स्वरूप को जानने की इच्छा से मैंने आपकी शरणागति की है । आप तो अपने भक्तों के संसार रूप वृक्षको काट डालते हैं ॥११॥

मैत्रेय उवाच

इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ।
धियाऽभिनन्द्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥१२॥

अन्वयः— इति स्वमातुः निरवद्यम् पुंसामपवर्गवर्धनम् ईप्सितं निशम्य आत्मवतां सताम् गतिःधिया अभिनन्द्य ईषत्स्मितशोभिताननः बभाषे ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह से अपनी माता की परम पवित्र तथा लोगों की मोक्ष में अनुराग उत्पन्न करने वाली

अभिलाषा को सुनकर आत्मज्ञ पुरुषों के लिए गति स्वरूप भगवान् कपिल उनकी मन ही मन प्रशंसा किए और मधुर मुस्कान शोभित मुख से कहने लगे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अपवर्गवर्धनं मोक्षे रतिजननम् । ईषत्स्मितेन शोभितमाननं यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अपवर्गवर्धनम् अर्थात, मोक्ष मार्ग में अनुराग को उत्पन्न करने वाले । ईषत् स्मितशोभिताननम का अर्थ है मधुर मुस्कान से सुशोभित मुख वाले भगवान् कपिल ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

योग आध्यात्मिकः पुंसामतो निःश्रेश्साय मे । अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

अन्वयः— अतः मे आध्यात्मिकः योगः पुंसाम् निःश्रेयसाय यत्र दुःखस्य च सुखस्य च अत्यन्तोपरतिः ॥१३॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— अतएव हे मातः ! यह मेरा निश्चय है कि आध्यात्मयोग पुरुषों को मोक्ष प्रदान करने वाला है । क्योंकि उसमें सुख एवं दुःख दोनों का आत्यन्तिक विराम हो जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

आध्यात्मिक आत्मनिष्ठः । यत्र यस्मिन् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आध्यात्मिकः पद का अर्थ है आत्मविषयक । यत्र अर्थात् जिसमें अर्थात् आत्मविषयक योग मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाला है मुक्ति में सुख और दुःख दोनों की निवृत्ति हो जाती है ॥१३॥

तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे । ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥

अन्वयः— हे अनघे ! यम् सर्वाङ्गनिपुणं योगम् पुरा श्रोतुकामानां ऋषीणां अवोचम् तमिमं ते प्रवक्ष्यामि ॥१४॥

अनुवाद— हे साध्वि ! सर्वाङ्गपूर्ण योग को मैने पहले सुनने के इच्छुक नारदादि ऋषियों को सुनाया था उसी योग को मैं आपको सुनाता हूँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् । गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥

अन्वयः— अस्य आत्मनः खलु चेतः बन्धाय मुक्तये च मतम् । गुणेषु सक्तं बन्धाय पुंसि वा रतम् मुक्तये ॥१५॥

अनुवाद— इस जीव के बन्ध और मुक्ति का कारण मन को ही माना गया है । विषयों में आसक्त मन संसारबन्ध का कारण होता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर वही मुक्ति का कारण बन जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सर्वाङ्गनैपुण्यं चित्तसंयमाधीनमिति दर्शयन्नाह-चेत इति । अस्यात्मनो जीवस्य गुणेषु विषयेषु । पुंसि परमेश्वरे । वा शब्दस्तुशब्दार्थे ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

योग की सर्वाङ्ग निपुणता चित्त के संयम के अधीन होती है इस बात को बतलाते हुए **चेत० इत्यादि** श्लोक

कहते हैं जीवात्मा के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है । विषयासक्त मन बन्धन का कारण है जबकि परमात्मा में अनुरक्त रहने वाला मन मुक्ति का कारण है । श्लोक का वा शब्द तु शब्द के अर्थ में प्रयुक्त है ॥१५॥

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः । वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥१६॥

अन्वयः— यदा मनः अहं मम अभिमानोऽत्थैः कामलोभादिभिः मलैः वीतं शुद्धं तदा असुखं दुःखं समम् ॥१६॥

अनुवाद— जब मन अहङ्कारऔर ममकार से उत्पन्न होने वाले काम तथा लोभ आदि से रहित हो जाता है उसी समय वह सुख और दुःख से रहित होकर समवस्था को प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यथा च चित्तसंयमे पुरुषार्थसिद्धिस्तद्दर्शयति-अहमिति त्रिभिः । मलैर्वीतं विरहितं यदा शुद्धं मनो भवति । मनःशुद्धेर्ज्ञापकमाह-अदुःखमिति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

चित्त का संयम कर लेने पर जिस तरह से पुरुषार्थ की सिद्धि होती है, उसको **अहम् इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते हैं । जब मन काम तथा लोभ आदि मलों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है उस समय वह सुख और दुःख दोनों से ऊपर उठकर समावस्था को प्राप्त कर जाता है ॥१६॥

तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् । निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥
ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना । परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥१८॥

अन्वयः— तदा पुरुषः ज्ञानवैराग्य युक्तेन भक्तियुक्तेन च आत्मना आत्मानं प्रकृते परं केवलम् निरन्तरम्, स्वयं ज्योतिः अणिमानम्, अखिण्डितम् उदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् परिपश्यति ॥१७-१८॥

अनुवाद— उस समय पुरुष ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति से युक्त हृदय से आत्मा को प्रकृति से परे, अद्वितीय (केवल) भेदरहित (निरन्तर) स्वयम्प्रकाश अणुमात्र. (सूक्ष्म) अखण्ड तथ उदासीन और प्रकृति को शक्तिहीन (हतौजस) समझता है ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

निरन्तरं निर्भेदम् । अणिमानं सूक्ष्मम् । अखण्डितमपरिच्छिन्नम् । हतौजसं क्षीणबलाम् ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

निरन्तर शब्द का अर्थ भेद रहित है । अणिमा शब्द का अर्थ सूक्ष्म है । हतौजस् शब्द का अर्थ शक्तिहीन है ॥१७-१८॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि । सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥

अन्वयः— योगिनां ब्रह्मसिद्धये अखिलात्मनि भगवति युज्यमानया भक्त्या सदृशः शिवः पन्था न ॥१९॥

अनुवाद— योगियों के लिए परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा की की गयी भक्ति के समान कोई भी मङ्गलमय मार्ग नहीं है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मनःशुद्धौ च भक्तिरेवान्तरङ्गसाधनमित्याह-नेति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

न युज्यमाना० इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि मन की शुद्धि के लिए भक्ति ही अन्तरङ्ग साधन है ॥१९॥

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः । स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥

अन्वयः— प्रसङ्गम् आत्मनः अजरं पशम् स एव साधुषु कृतम् अपावृतम् मोक्षद्वारम् इति कवयोविदुः ॥२०॥

अनुवाद— विवेकी जनों ने सङ्ग (आसक्ति) को आत्मा का अच्छेद्यपाश कहा है, तथा वह सङ्ग (आसक्ति) यदि साधु महापुरुषों के साथ किया जाय तो वह मोक्ष का खुला हुआ द्वार बन जाता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अस्य सर्वस्यापि सत्सङ्गो मूलमित्याह-प्रसङ्गमिति। अपावृतं निरावरणम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस सबों का कारण सत्सङ्ग ही है । इस बात को **प्रसङ्गमित्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । अपावृतम् अर्थात् अवरोध रहित ॥२०॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् । अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥

अन्वयः— तितिक्षवः कारुणिका, सर्वदेहिनाम् सुहृदः अजातशत्रवः शान्ताः, साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥

अनुवाद— सहनशील, करुणा करने वाले सभी शरीरधारियों के अकारण हितकारी, जिसका कोई भी शत्रु नहीं होता है ऐसे साधुजन साधुओं के भूषण होते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

साधूनां लक्षणमाह-तितिक्षव इति चतुर्भिः । साधवः शास्त्रानुवर्तिनः । साधु सुशीलं तदेव भूषणं येषाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तितिक्षवः इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा साधु का लक्षण बतलाया गया है । साधवः अर्थात् शास्त्र के अनुकूल आचरण करने वाले । साधुभूषणाः पद का अर्थ है। सौशील्य ही जिनका भूषण है ऐसे साधुजन होते है ॥२१॥

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् । मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥

अन्वयः— ये मयि अनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति, मत्कृते त्यक्तकर्माणः त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥

अनुवाद— जो लोग अनन्यभाव से मेरी भक्ति करते हैं और मेरे लिए जो अपने सभी कर्मों का तथा अपने बन्धु बान्धवों का भी परित्याग कर देते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२२॥

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च। तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥२३॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः। सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥

अन्वयः— मदाश्रयाः मृष्टा कथाः शृण्वन्ति कथयन्ति च । मद्गतचेतसः एतान् विविधाः तापान् तपन्ति । हे साध्वि, त ऐते साधवः सर्वसङ्गविवर्जिताः । अथ तेषु सङ्गः प्रार्थ्यः, ते हि सङ्गदोषहराः ॥२३-२४॥

अनुवाद— वे लोग मेरें अधीन रहकर मेरी मधुर कथाओं को सुनते हैं और दूसरों को सुनाते हैं । उनका मन सदा मुझमें ही लगा रहता है । ऐसे सज्जनों को ये अनेक प्रकार के सन्ताप सन्तप्त नहीं कर पाते हैं । हे साध्वि ! ऐसे ही साधुजन होते हैं । वे सभी प्रकार के सङ्गों से रहित होते हैं । और सङ्गजन्य समस्त दोषों को वे दूर कर देते हैं । ऐसे ही सन्तों का सङ्ग करना चाहिए ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

एतान् उक्तलक्षणान्भक्तान् तापा आध्यात्मिकादयो न तपन्ति न व्यथयन्ति । कुतः । मद्गतं चेतो येषां तान् । ये तापैर्नाभिभूयन्ते ते साधव इत्यर्थः ।।२३-२४।।

भाव प्रकाशिका

इन लक्षणों से सम्पन्न भक्तों को भौतिक इत्यादि ताप व्यथित नहीं कर पाते हैं । क्योंकि उनका मन सदा मुझमें ही लगा रहता है । जो महापुरुष भौतिक आदि सन्तापों से कभी संतप्त नहीं होते है, वे साधु हैं ।।२३-२४।।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।।२५।।

अन्वयः— सतां प्रसङ्गात् मम वीर्यसंविदः हृतकर्णरसायनाः कथाः भवन्ति, तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि, श्रद्धा, रतिः भक्तिः अनुक्रमिष्यति ।।२५।।

अनुवाद— सत्पुरुषों के समागम से मेरे पराक्रम का ज्ञान कराने वाली तथा हृदय और कानो को प्रिय लगने वाली कथायें होती हैं । उसका सेवन करने से शीघ्र ही मोक्षमार्ग में श्रद्धा प्रेम और भक्ति का क्रमशः विकास होता है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गस्य भक्त्यङ्गतामुपपादयति-सतामिति । वीर्यस्य सम्यग्विद्वेदनं यासु ता वीर्यसंविदः । हृत्कर्णयो रसायनाः सुखदाः । तासां जोषणात्सेवनादपवर्गोऽविद्यानिवृत्तिर्वर्त्मयस्मिंस्तस्मिन्हरौ । प्रथमं श्रद्धा ततो रतिस्ततो भक्तिरनुक्रमिष्यति क्रमेण भविष्यतीत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सत्सङ्ग को भक्ति का अङ्ग प्रतिपादित किया जा रहा है । मेरी ऐसी कथायें हैं कि उनसे मेरे पराक्रम का ठीक ज्ञान होता है । मेरी वे कथाएँ हृदय और कान को सुख प्रदान करती हैं । इन कथाओं का सेवन करने से अपवर्ग अर्थात् अविद्या की निवृत्ति के मार्गभूत श्रीहरि में शीघ्र ही पहले श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसके पश्चात् प्रेम होता है तथा उसके पश्चात् भक्ति होती है और ये क्रमशः उत्पन्न होते हैं ।।२५।।

भक्तया पुमान् जातविराग ऐन्द्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया ।
चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगमुक्तो यतिष्यते ऋजुभि र्योगमार्गैः ।।२६।।

अन्वयः— मद्रचनानुचिन्तया भक्त्या दृष्टश्रुतात् ऐन्द्रियात् जातविरागः पुमान् यत्तः योगयुक्तः चित्तस्य ग्रहणे ऋजुभिः योगमार्गैः यतिष्यते ।।२६।।

अनुवाद— मेरी सृष्टि आदि का चिन्तन करने से उत्पन्न भक्ति के द्वारा मनुष्य के लौकिक तथा पारलौकिक सुखों से वैराग्य हो जाता है । उससे वह सावधानी पूर्वक योग के सरल मार्गों में समाहित होकर मानोनिग्रहार्थ प्रयत्न करता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-भक्त्येति । मम रचना या सृष्टयादिलीला तस्या अनुचिन्तया या भक्तिस्तया ऐन्द्रियात्सुखाज्जातविरागः सन् । दृष्टश्रुतादैहिकामुष्मिकात् । ततो यत्त उद्युक्तः सन् चित्तस्य ग्रहणे यतिष्यते । ऋजुभिर्भक्तिप्रधानत्वादनायासैः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि श्रद्धा आदि के विकास से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में **भक्त्या आदि** श्लोक कहते है मेरी सृष्टि आदि का चिन्तन करने से भक्ति की उत्पत्ति हो जाती है, उसके फलस्वरूप मनुष्य का ऐन्द्रियिक लौकिक तथा पारलौकिक सुखों से वैराग्य हो जाता है । उसके पश्चात् वह मनुष्य सावधानी पूर्वक योग के भक्ति प्रधान साधनों से वह अपने मन को निगृहीत करने के लिए प्रयास करता है ॥२६॥

असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ।
योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥२७॥

अन्वयः— प्रकृतेर्गुणानाम् असेवया, वैराग्यविजृम्भितेन ज्ञानेन योगेन मय्यर्पितया भक्त्या च प्रत्यात्मानम् माम् इहावरुन्धे ॥२७॥

अनुवाद— प्रकृति के गुणों से उत्पन्न शब्दादि विषयों का सेवन नहीं करने के कारण, वैराग्य प्रधान ज्ञान तथा योग से और मेरी की गयी भक्ति के द्वारा इस लोक में ही अपनी अन्तरात्मा मुझको प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रकृतेर्गुणानामसेवया ज्ञानादिभिश्चायं जीव इहैव देहे मामेवावरुन्धे प्राप्नोति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रकृति के गुणों से उत्पन्न शब्दादि विषयों का सेवन नहीं करने के कारण मनुष्य भक्ति आदि के द्वारा इस लोक में ही मुझको प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

देवहूतिरुवाच

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा । यया पदं ते निर्वाणमञ्जसाऽन्वाश्नवा अहम् ॥२८॥

अन्वयः— त्वयि उचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा यया ते निर्वाण पदम् अञ्जसा अहम् अन्वाश्नवै ॥२८॥

अनुवाद— हे भगवन् आपकी समुचितभक्ति का स्वरूप क्या है ? और किस प्रकार की भक्ति मुझ जैसी अबलाओं के लिए ठीक है, जिसके द्वारा मैं आसानी से आपके निर्वाणपद को प्राप्त कर सकूँ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

काचिदिति । कास्विदित्यर्थः । उचिता योग्या । तत्रापि मम स्त्रियाः कीदृशी गोचरा योग्या । निर्वाणं मोक्षात्मकं तव पदं स्वरूपमन्वाश्नवै अनन्तरमेव सर्वात्मना प्राप्स्यामि । अञ्जसा त्विति पाठे अहं त्विति सम्बन्धः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आपकी योग्य भक्ति का स्वरूप क्या है । उसमें भी मुझ स्त्रियों के लिए कौन सी भक्ति उचित होगी । जिससे कि मैं शीघ्र ही आपके मोक्षात्मक स्वरूप को प्राप्त कर सकूँगी । जहाँ **अञ्जसा तु॰** यह पाठ हैं वहाँ मैं तो यह अध्याहार करना चाहिए ॥२८॥

यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः । कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥२९॥

अन्वयः— निर्वाणात्मन् यतः तत्त्वावबोधनम् यः भगवद् बाणः सः त्वयोदितः योगः कीदृशः कतिच अङ्गानि ॥२९॥

अनुवाद— हे निर्वाणस्वरूप प्रभो ! जिससे तत्त्वज्ञान होता है, जो लक्ष्य का भेदन करने वाले बाण के समान परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला है, जिसे आपने कहा है वह योग कैसा है, औरउसके कितने अङ्ग हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्बाणो यो भगवन्तं लक्षीकरोतीत्यर्थः यतो यस्माद्योगात् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जो योग श्रीभगवान् को ही लक्ष्य बनाने वाला है । यतः अर्थात् जिस योग से । और जिस योग को अपने कहा है वह अपने लक्ष्य का भेदन करने वाले बाण के समान है और वह भगवान् की प्राप्ति कराता है । उसी से तत्वज्ञान होता है उस योग का स्वरूप क्या है ? तथा उस योग के कितने अङ्ग हैं ॥२९॥

तदेतन्मे विजानीहि यथाहं मन्दधीर्हरे । सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥३०॥

अन्वयः— हे हरे, तदेतत् मे तथा विजानीहि यथा मन्दधीःयोषा अहं दुर्बोधं भवदनुग्रहात् सुखं बुध्येयम् ॥३०॥

अनुवाद— हे श्रीहरे ! इन सबों को आप ऐसे बतलाइये जिससे कि मन्दबुद्धि वाली स्त्री मैं भी इस कठिनाई से जानने योग्य योग को आसानी से समझ सकूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विजानीहि विशेषेण ज्ञापय । सुखमनायासेन ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

विजानीहि अर्थात् विशेष रूप से बतलाइये । **सुखम्** अर्थात् बिना किसी प्रयास के । देवहूति ने भगवान् कपिल से कहा कि उस योग को मुझे इस प्रकार से समझाइये कि मैं मन्दबुद्धि वाली स्त्री भी उस योग को आसानी से जान सकूँ । यह सब आपकी कृपा से ही सम्भव है ॥३०॥

मैत्रेय उवाच

विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ।
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥

अन्वयः— यत्र तन्वाभिजातः मातुः इत्थम् अर्थम् विदित्वा जातस्नेहः कपिलः तत्त्वाम्नायं यत् सांख्यं प्रवदन्ति वै प्रोवाच भक्ति वितानयोगम् च प्रोवाच ॥३१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी जिसके शरीर से भगवान् कपिल ने जन्म लिया था अपनी उस माता के अभिप्राय को जानकर कपिल भगवान् के हृदय में स्नेह उत्पन्न हो गया जिसको, प्रकृति आदि तत्त्वों का निरूपक कहा जाता है, उस सांख्य शास्त्र का तथा भक्ति के विस्तार और योग का उपदेश दिया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

इत्थं मातुरर्थं प्रयोजनं विदित्वा । जातस्नेहत्वे हेतुः-यत्र यस्यां तन्वा देहेनाविर्भूतः । तत्त्वान्याम्नायन्तेऽनुक्रम्यन्ते यस्मिन् किं तत् । यत्सांख्यं प्रवदन्ति तत्प्रोवाच भक्तिवितानं वितानं च योगं च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से अपनी माता के प्रयोजन को जानकर भगवान् कपिल के हृदय में स्नेह उत्पन्न हो गया । स्नेह उत्पन्न होने का कारण यह था कि वे अपनी माता के ही शरीर से जन्म लिए थे । **तत्त्वाम्नायन्ते** का अर्थ है जिस प्रकृति आदि तत्त्वों का वर्णन किया जाता है जिसको सांख्य शब्द से अभिहित किया जाता है, उस सांख्य शास्त्र का उन्होंने उपदेश दिया और साथ ही भक्ति के विस्तार और योगशास्त्र का भी वर्णन किया ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्। सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी। जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥३३॥

अन्वय:— सत्त्वे एव एकमनसः या स्वाभाविकी वृत्तिः आनुश्रविक कर्मणाम् गुणलिङ्गानां देवानां वृत्तिः अनिमित्ता भगवत भक्तिः सिद्धेः गरीयसी या आशु कोशं जरयति अनलो यथा निगीर्णम् ।।३२-३३।।

अनुवाद— हे मात: जिसका चित्त केवल भगवान् में ही लगा हुआ है ऐसे मनुष्यों की वेद विहित कर्मों में लगी हुयी तथा विषयो का ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों की जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरि के प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है वह श्रीभगवान् की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्ति से भी श्रेष्ठ है । जिस तरह जाठरानल खाये हुए अन्न को पचा डालता है, उसी तरह यह भक्ति भी कर्म संस्कारों के भण्डार स्वरूप लिङ्ग शरीर को शीघ्र ही भस्म कर देती है ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः इति पृष्टामुत्तमां भक्तिं लक्षयति । गुणा विषया लिङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्तेषां देवानां द्योतनात्मकानामिन्द्रियाणां तदधिष्ठातॄणां वा सत्त्वे सत्त्वमूर्तौ हरावेव या वृत्तिः सा भक्तिः सिद्धेर्मुक्तेरपि गरीयसीत्युत्तरेणान्वयः। कथंभूता । अनिमित्ता निष्कामा । स्वाभाविक्ययत्नसिद्धा । तेषामेवंविधवृत्तौ हेतुमाह । गुरोरुच्चारणमनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तद्विहितमानुश्रविकं तदेव कर्म येषाम् । अत एवैकमेकरूपमविष्कृतं मनो यस्य पुंसः शुद्धसत्त्वस्येत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

माता देवहूति ने यह जो पूछा कि आपकी उचित भक्ति का स्वरूप क्या है ? इसी प्रश्न के उत्तर में भगवान् कपिल उत्तम भक्ति के लक्षण को इस श्लोक में बतलाते हैं । **गुणालिङ्ग्यन्ते इत्यादि** व्युत्पत्ति के अनुसार जिनसे विषयो का ज्ञान होता है ऐसें **देवानाम्** अर्थात् इन्द्रियाँ जो प्रकाशात्मक हैं अथवा देव शब्द इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओ का बोधक है उन देवताओं की जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरि में वृत्ति है वह भक्ति कहलाती है । वह भक्तिमुक्ति से भी श्रेष्ठ है । इस श्लोक का अगले श्लोक से सम्बन्ध है । उस भक्ति को निष्काम और स्वाभाविक होना चाहिए। उन इन्द्रियोंको वेद विहित कर्मों में लगी हुयी होना चाहिये । अनुश्रव वेद को कहते हैं । वेदविहित कर्मों को आनुश्रविक कर्म कहते हैं । जिससे शुद्धसत्त्व वाला मनुष्य सदा एक रूप बना रहता है ।

मुक्ति भी प्रासाङ्गिकी होती है । लेकिन भक्ति तो उससे भी श्रेष्ठ है । वह भक्ति कर्मो के संस्कारों के भण्डार स्वरूप लिङ्गशरीर को भस्म कर देने का काम करती है । ठीक उसी तरह जिस तरह जाठराग्नि खाये हुए अन्न को पचा देने का काम करती हैं ॥३२-३३॥

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

अन्वय:— केचित् मत्पादसेवाभिरताः मदीहाः, ये भागवताः अन्योन्यत प्रसज्य मम पौरुषाणि सभाजयन्ते ते मे एकात्मताम् न स्पृहयन्ति ।।३४।।

अनुवाद— मेरे चरणो की सेवा में ही प्रेम रखने वाले तथा जो मेरी प्रसन्नता के लिए सभी कार्यों को किया करते हे। ऐसें कुछ भक्त जो एक दूसरे से मिलकर मेरे ही पराक्रम की चर्चा किया करते हैं । वे मेरे साथ एकीभाव (सायुज्यमुक्ति) की भी इच्छा नही करते है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भक्तेर्गरिष्ठत्वमेवोपपादयति–नैकात्मतामिति पञ्चभिः । एकात्मतां सायुज्यमोक्षम् । मदर्थमीहा क्रिया येषाम् । प्रसज्यासक्तिं कृत्वा । पौरुषाणि वीर्याणि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति की ही श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् कपिल **नैकात्मताम् इत्यादि** पाँच श्लोकों को कहते हैं । वे कहते हैं कि कुछ ऐसे भी मेरे भक्त हैं जो मेरे चरणों की सेवा करते है, मेरी प्रसन्नता के लिए ही सभी कर्मों को करते हैं, और जब वे एक दूसरे से मिलते हैं तो मेरी ही लीलाओं की चर्चा भी करते हैं, किन्तु वे मेरी सायुज्य मुक्ति को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ॥३४॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥

अन्वयः— हे अम्ब ते सन्तः रुचिराणि प्रश्नन्नवक्त्रारुणलोचनानि दिव्यानि वरप्रदानि रूपाणि पश्यन्ति साकं स्पृहणीयां वाचं वदन्ति ॥३५॥

अनुवाद— हे माँ ! वे सन्तपुरुष अरुण नेत्र और मनोहर मुखारविन्द से युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदान देने वाले रूपों को देखते भी हैं और उन सबों से अत्यन्त मनोहर बातें भी करते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

प्रसन्नानि वक्राण्यरुणानि लोचनानि च येषु तैर्मद्रूपैः साकं सह । नित्यं परमेश्वरानुभवसुखं भक्तावधिकमिति भावः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

प्रसन्नमुख और अरुण नेत्रों से युक्त मेरे दिव्य रूपों को देखते हैं । मेरे उन रूपों के साथ बातें भी करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि भक्ति में परमेश्वरानुभवजन्य सुख अधिक है ॥३५॥

तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।
हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥३६॥

अन्वयः— तैः दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षित वामसूक्तैः हृतात्मनो हृतप्राणां भक्तिः अनिच्छतः मे अण्वीं गतिं प्रयुक्तः ॥३६॥

अनुवाद— दर्शनीय अङ्गों, उदार हासविलास और चितवन तथा मधुर वाणी से युक्त मेरे उन रूपों की माधुरी में उनका मन और इन्द्रियाँ फँस जाती हैं । इस प्रकार की मेरी भक्ति उनके नहीं चाहने पर भी उनको मुक्ति प्रदान कर ही देती है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानन्दस्त्ववश्यंभावीत्याह-तैरिति । दर्शनीया मनोहरा अवयवा मुखनेत्रादयो येषु तैः । हृत आत्मा चित्तं येषाम्। हृता आकृष्टाः प्राणाश्चेन्द्रियाणि येषां तान्भजतोऽनिच्छत इच्छाहीनानप्यण्वीं गतिं मुक्तिं प्रयुङ्क्ते प्रापयति । कैः साधनैर्हृतात्मनः । उदारैर्विलासादिभिः । तत्र विलासो लीला, वामं मनोहरं सूक्तं मधुरभाषणम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

उस भक्ति में आत्मानन्द अवश्य होता है । इस बात को **तैर्दर्शनीय० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है मेरे जिन रूपों में मुख नेत्र इत्यादि अङ्ग हैं उन सबों से जिन भक्तों के मन और इन्द्रियाँ आकृष्ट हो जाती हैं, उन मेरी भक्ति करने वाले तथा मुक्ति को नहीं चाहने वाले भक्तों को भक्ति मुक्ति प्रदान कर ही देती हैं किन साधनों से भक्तों के मन और इन्द्रियों को मेरे रूप आकृष्ट कर लेते हैं ? तो इसका उत्तर है कि अपने उदार लीला तथा मनोहर भाषण के द्वारा। विलास शब्द लीला का वाचक है, वाम शब्द मनोहर का और सूक्त शब्द मधुर भाषण का ॥३६॥

अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।
श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥३७॥

अन्वयः— अथ मयाविनः मम तां विभूतिम् अनुप्रवृत्तम् अष्टाङ्गम् ऐश्वर्यम् वा भगवतीं भद्रां श्रियं अस्पृहयन्ति तु परस्य मे लोके ते अश्नुवते ॥३७॥

अनुवाद— अविद्या की निवृत्ति हो जाने के पश्चात् यद्यपि वे मुझमायापति के सत्यादि लोकों की भोग सम्पत्ति भक्ति की प्रवृत्ति के पश्चात् स्वयं प्राप्त होने वाली अणिमादि अष्टसिद्धियाँ अथवा श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक के ऐश्वर्य को भी नहीं चाहते हैं फिर भी मेरे लोक में जाने पर ये सभी विभूतियाँ उनको अपने आप ही प्राप्त हो जाती हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

विभूत्यादिकं च तत्राधिकमित्याह । अथो अविद्यानिवृत्त्यनन्तरं विभूतिं सत्यलोकादिगतां भोगसम्पत्तिमणि-माद्यष्टाङ्गमैश्वर्यमनुप्रवृत्तं भक्तिमनु स्वत एव प्राप्तमपि भागवतीं च श्रियं वैकुण्ठस्थां संपत्तिमस्पृहयन्ति । ते यद्यपि न स्पृहयन्तीत्यर्थः। तथापि लोके वैकुण्ठे अश्नुवते तु प्राप्नुवन्त्येव ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति करने वाले भक्तों को विभूति आदि की प्राप्ति अधिक होती है इस बात को इस श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । **अथो** अर्थात् विद्या की निवृत्ति के पश्चात् सत्यलोक आदि की विभूतियाँ, भोगसम्पत्ति तथा अणिमा आदि अष्टसिद्धियाँ उनको भक्ति के पश्चात् अपने आप प्राप्त होने पर भी, वे भक्त वैकुण्ठलोक की सम्पत्ति की प्राप्ति की कामना नहीं करते हैं । यद्यपि वे भक्त नहीं चाहते हैं फिर भी उनको वे सब वैकुण्ठलोक में अपने आप प्राप्त हो जाती हैं ॥३७॥

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मे निमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥३८॥

अन्वयः— येषाम् अहम् प्रियः, आत्मा, सुतः, सखा गुरुः, सुहृदः इष्टम्दैवम् च ते मत्पराः शान्तरूपे कर्हिचित् न नंक्ष्यन्ति मे अनिमिषः हेतिर्न लेढि ॥३८॥

अनुवाद— जिन लोगों का केवल मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृद और इष्टदेव हूँ, वे मेरे ही आश्रय में रहने वाले भक्तजन शान्तिमय मेरे वैकुण्ठ धाम में जाकर किसी भी प्रकार इन दिव्य भोगों से रहित नहीं होते हैं और मेरा कालचक्र भी उनको नहीं ग्रसता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं तर्हि लोकत्वाविशेषात्स्वर्गादिवद्भोक्तृभोग्यानां कदाचिद्विनाशः स्यात्तत्राह । हे शान्तरूपे । यद्वा शान्तं शुद्धसत्त्वं तद्रूपे वैकुण्ठे मत्पराः कदाचिदपि न नङ्क्ष्यन्ति भोग्यहीना न भवन्ति । अनिमिषो मे हेतिर्मदीयं कालचक्रं च नो लेढि तान्न ग्रसति। तत्र हेतुः-येषामिति । सुत इव स्नेहविषयः, सखेव विश्वासास्पदम्, गुरुरिवोपदेष्टा, सुहृदिव हितकारी, इष्टं दैवमिव पूज्यः । एवं सर्वभावेन मां ये भजन्ति तान्मदीयं कालचक्रं च ग्रसतीत्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि आपका भी लोक विशेष है ऐसी स्थिति में जिस तरह स्वर्गादि लोकों तथा वहाँ के भोक्ताओं एवं भोग्य पदार्थों का समय विशेष में नाश हो जाता है, उसी तरह वैकुण्ठ लोक तथा वहाँ रहने वाले जीवों एवं भोगों का भी समय विशेष के आने पर नाश हो जाता होगा । तो इसके उत्तर में भगवान् कपिल

कहते हैं— **हे शान्तरूपे० इत्यादि**- ऐ शान्त रूप वाली माँ, शुद्ध सत्त्व स्वरूप वैकुण्ठलोक में मेरे जो भक्तजन है वे न तो कभी विनष्ट होते हैं और वे न तो कभी भोगों से रहित होते हैं । यही नहीं मेरा जो कालचक्र है वह भी उनको कभी अपना ग्रास नहीं बनाता है । उसका कारण यह है कि मै उन भक्तजनों का पुत्र के समान स्नेहास्पद, मित्र के समान विश्वासास्पद, गुरु के समान उपदेष्टा तथा सुहृद् (बान्धव) के समान हितकारी एवं इष्टदेव के समान पूज्य हूँ । इस तरह सर्वतोभावेन जो भक्तजन मेरा भजन करते हैं उन भक्तजनों को मेरा कालचक्र भी ग्रसित नहीं करता है ॥३८॥

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् । आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥
विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् । भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥४०॥

अन्वयः— इमं लोकम् तथैव अमुम् उभयायिनम् आत्मानम् ये च इह आत्मानम् अनु रायः पाश्वो, गृहाः अन्यान् सर्वान् च विसृज्य विश्वतोमुखम् माम् एवं अनन्यया भक्त्या भजन्ति तान् मृत्योः अतिपारये ॥३९-४०॥

अनुवाद— इस लोक तथा परलोक दोनों में जाने वाले लिङ्ग शरीर को तथा इस शरीर से सम्बन्ध रखने वाले जो धन, पशु एवं गृह आदि को त्यागकर सर्वत्र व्यापक मेरी अनन्याभक्ति से भजन करते हैं, उन भक्तजनों को मैं इस संसार सागर से पार कर देता हूँ ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतां तु मुक्तिमेकान्तभक्तेभ्यो ददामीत्याह- इममिति द्वाभ्याम् । उभयायिनं लोकद्वयगामिनमात्मानं सोपाधिकमात्मानमनु ये पुत्रकलत्रादयो ये च पश्वादयः । रायः धनानि । अन्यांश्च परिग्रहान् । मृत्योः संसारादतिपारयेऽतितारयामि ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की भक्ति को मैं अपने अनन्य भक्तों को देता हूँ, इसबात को श्रीभगवान् **इमम् इत्यादि** दो श्लोकों से कहते है- इस लोक में तथा परलोक में इन दोनों लोकों में जाने वाले लिङ्गशरीर तथा सोपाधिक आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले जो पुत्र, पत्नी तथा पशु, धन इत्यादि हैं तथा अन्य वस्तुएँ हैं उन सबों को छोड़कर जो मेरे भक्तजन अनन्याभक्ति से मेरा भजन करते हैं, उन सबों को मैं मृत्युमय संसार सागर से पार कर देता हूँ ॥३९-४०॥

नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् । आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

अन्वयः— मद्भगवतः सर्वभूतानामात्मनः प्रधानपुरुषेश्वरात् अन्यत्र तीव्रं भयं न निर्वतेते ॥४१॥

अनुवाद— मैं भगवान् हूँ, सभी भूतों की आत्मा तथा प्रकृति एवं पुरुष के स्वामी हूँ मुझ से भिन्न की भक्ति करने वाले का यह संसारबन्ध रूपी भयङ्कर भय कभी दूर नहीं होता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अभक्तानां तु कथंचिदपि न मोक्ष इत्याह-नेति । मद्भगवतोऽन्यत्र भागवतो मत्तो बिना । सर्वभूतानामात्मनः । भगवदादिविशेषणत्रयेण सामर्थ्यं निरपेक्षत्वं हितकारित्वं चोक्तम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

जो भक्त नहीं है उन लोगों की कभी भी मुक्ति नहीं होती है । इस बात को इस श्लोक में बतलाया गया है । मुझ भगवान् के बिना दूसरे की भक्ति करने से मुक्ति नहीं होती है । इस श्लोक में भगवत् इस विशेषण से सामर्थ्य, **प्रकृतिपुरुषेश्वरात्** इस विशेषण निरपेक्षत्व और **सर्वभूतानामात्मनः** इस विशेषण से हितकारित्व को सूचित किया गया है ॥४१॥

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥४२॥

अन्वयः— अयं वातः मद् भयाद्वाति, सूर्यः मद्भयात् तपति, इन्द्रः मद्भयात् वर्षति, अग्निः मद्भयात् दहति, मृत्युः मद्भयात् चरति ॥४२॥

अनुवाद— मेरे भय के ही कारण वायु हमेशा चलता रहता है सूर्य मेरे भय के ही कारण सदा तपते ही रहते हैं कभी शीतल नहीं होते है, इन्द्र मेरे ही भय से वर्षा करने का काम करते है, अग्नि भी मेरे ही भय के कारण जलने का काम करते हैं और मृत्यु भी मेरे ही भय के कारण किसी को काल कवलित करते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ऐश्वर्यं स्फुटयति-मद्भयादिति । श्रुतिश्च 'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः इति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक मे भगवान् कपिल अपने ऐश्वर्य को बतलाते हुए कहते है वायु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि और मृत्यु भी मेरे ही भय से भयभीत रहकर समय से अपना-अपना कार्य किया करते हैं । **कठोपनिषत्** की **भीषास्मादवातः पवते इत्यादि** श्रुति भी कहती है कि परमात्मा के ही भय से वायु सदा चलती ही रहती है, सूर्य समय से ही उदित होते है, इन्द्र अग्नि तथा मृत्यु भी परमात्मा के भय के ही कारण समय से अपना-अपना कार्य किया करते हैं ॥४२॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः । क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥४३॥

अन्वयः— योगिनः ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन क्षेमाय मे अकुतोभयम् पाद मूलं प्रविशन्ति ॥४३॥

अनुवाद— ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्तियोग के द्वारा योगिजन शान्ति प्राप्त करने के लिए मेरे चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

मद्भजनादेव मोक्ष इत्यत्र सदाचारं प्रमाणयति-ज्ञानेति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् यह बतलाते हैं कि मेरे भजन से ही मुक्ति होती है । इस विषय में वे शिष्ट पुरुषों के आचरण को ही प्रमाण रूप से उपन्यस्त करते हुए कहते है कि योगिजन, ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्तियोग के द्वारा शान्ति प्राप्त करने के लिए मेरे चरणों की शरण को अपनाते हैं ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः । तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके पुंसः एतावानेव निःश्रेयसोदयः यत् तीव्रेण भक्तियोगेन, मयि अर्पित मनः स्थिरम् ॥४४॥

अनुवाद— इस संसार में मनुष्य का सबसे बड़ा कल्याण यही है कि उसका तीव्रभक्तियोग के द्वारा मुझमें लगा हुआ मन स्थिर हो जाय ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत पुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एतावानिति । मय्यर्पितं सन्मनः स्थिरं भवतीति यदेतावानेव ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भक्तियोग के वर्णन का उपसंहार करते हुए भगवान् कपिल कहते हैं कि इस लोक में मनुष्यों का सबसे बड़ा कल्याण यही है उनके द्वारा मुझ (परमात्मा) में लगाया हुआ मन स्थिर हो जाय ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पच्चीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२५॥

छबीसवाँ अध्याय

महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति का वर्णन

श्रीभगवानुवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् । यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥१॥

अन्वयः— अथ ते तत्त्वानां पृथक् लक्षणं सम्प्रवक्ष्यामि यद् विदित्वा पुरुषः प्राकृतैः गुणैः विमुच्यते ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— माँ अब मैं तुम्हें तत्त्वों का अलग-अलग लक्षण बतलाता हूँ । जिसको जानकर मनुष्य प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षड्विंशे पुंप्रकृत्योस्तु विवेकायोपवर्ण्यते । सांख्येन सर्वभावानां जन्मलक्षणभेदतः ॥१॥ धात्रा पुत्राय यत्प्रोक्तं क्षत्रे मित्रासुतेन यत् । मात्रे सांख्यं तदध्यात्मं प्राधान्येनाह तत्त्ववित् ॥२॥ **तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यम्'** इत्यत्र सांख्यं भक्तिर्योगश्चेति त्रयमुपक्षिप्तम् । तत्र भक्तिमुक्त्वेदानीं सांख्यमाह-अथेति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छब्बीसवें अध्याय में प्रकृति और पुरुष का भेद पूर्वक ज्ञान (विवेक) प्राप्त करने के लिए सांख्य दर्शनाभिमत सभी तत्त्वों के जन्म, लक्षण और भेद का वर्णन किया जा रहा है ॥१॥ जिसका उपदेश ब्रह्मजी ने अपने पुत्र नारदजी को और मैत्रेयजी ने विदुरजी को दिया उसी आत्मज्ञान को तत्त्ववेत्ता भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति को दिया ॥२॥ **'तत्त्वाम्नायं यत् प्रवदन्ति सांख्यम्'** यह जो पहले कहा जा चुका है । वहाँपर सांख्य, भक्ति तथा योग इन तीनों को बतलाया गया है । अतएव पीछे के अध्याय में भक्ति का वर्णन करके अब सांख्य का वर्णन अथ० इत्यादि श्लोक से किया गया है ॥१॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् । यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥२॥

अन्वयः— आत्मदर्शनं ज्ञानं पुरुषस्य निःश्रेयसार्थाय यत् हृदयग्रन्थिभेदनम् तत्ते वर्णये ॥२॥

अनुवाद— आत्मदर्शन ज्ञान ही पुरुष के मोक्ष का कारण है और वह अहङ्कार रूपी हृदय की ग्रन्थि को काटने वाला कहा गया उसी का उपदेश मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु मुक्तिरात्मज्ञानादेव, नतु तत्त्वलक्षणज्ञानात् । **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'** इति श्रुतेरत आह-ज्ञानमिति । आत्मदर्शनरूपं

ज्ञानमत एव हृदयग्रन्थिभेदनमहंकारनिर्वतकं निःश्रेयसप्रयोजनाय यदाहुस्तत्ते वर्णयामि । तत्त्वलक्षणज्ञानादेव विविक्तात्मज्ञानं भवतीति भावः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि मुक्ति तो आत्मज्ञान से ही होती है तत्त्वों के लक्षणज्ञान से श्रुति कहती है **तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति** अर्थात् आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है । तो श्रीभगवान् कहते हैं **'ज्ञानम्०' इत्यादि-** हृदय की ग्रन्थि को काटने वाले अहङ्कार का निवर्तक ज्ञान इस तत्त्वज्ञान से ही होता है । आत्मज्ञान का प्रयोजन है मुक्ति की प्राप्ति । इस तरह से विज्ञपुरुषों ने कहा है उसको मैं तुम्हे उपदेश देता हूँ । अभिप्राय है कि तत्त्वों के लक्षण का ज्ञान होने से ही शुद्ध आत्मज्ञान होता है ॥२॥

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥३॥

अन्वयः— प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिः विश्वं येन समन्वितम् स आत्मा पुरुषः अनादिः निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥३॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है । वह अनादि निर्गुण और प्रकृति से परे हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र पुरुषं लक्षयति-अनादिरिति । आत्मैव पुरुषः । कोऽसावात्मा । प्रत्यक्प्रतिलोमं धाम स्फूर्तिर्यस्य । क्षणिकपक्षं व्यावर्तयति अनादिरिति । संसारित्वपक्षं व्यावर्तयति-प्रकृतेः परः । अन्योऽसङ्गः । ज्ञानादिगुणत्वं वारयति-निर्गुणः । मीमांसकाद्यभिमतज्ञानविषयत्वं वारयति-स्वयंज्योतिः । अनेनैव प्राभाकराभिमतं ज्ञानाधारत्वेन स्फुरणमपि निरस्तम् । स्वयंज्योतिष्ट्वे हेतुः- विश्वं येन समन्वितम्, प्रकाशते इति शेषः । एतैरेव हेतुभिः पुरुषस्य प्रकृतेः परत्वमपि सिद्धम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अनादि इत्यादि- श्लोक से पुरुष का लक्षण बतलाया गया है । आत्मा ही पुरुष है । प्रश्न है कि आत्मा कौन है ? तो इसका उत्तर है, **प्रत्यग्धाम** अर्थात् जो स्वयं प्रकाश है । आत्मा को क्षणिक मानने वालों के मत का खण्डन करते हुए भगवान् कपिल कहते हैं कि आत्मा अनादि है । क्षणिक नहीं है । आत्मा संसारी नहीं है इस बात का प्रतिपादन करते हुए वे कहे हैं कि आत्मा प्रकृति से परे है । **प्रकृतेः परः** आत्मा के गुण ज्ञान इत्यादि हैं ऐसा मानने वाले नैयायिकों आदि के मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि वह निगुर्ण है; मीमांसक आदि आत्मा को ज्ञान का विषय मानते हैं, उसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि आत्मा स्वयम्प्रकाश होने के कारण प्रकाशकान्तर निरपेक्ष है । इस प्रतिपादन से ही प्राभाकर जो आत्मा का ज्ञानाधार मानते हैं, उनका भी खण्डन हो गया । **स्वयं ज्योतिष्ट्वे० इत्यादि** आत्मा के स्वयप्रकाशत्व का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत् आत्मा से व्याप्त है । **विश्वं येन समन्वितम्** और उसीसे प्रकाशित है । इन्ही हेतुओं से पुरुष का प्रकृति से परत्व भी सिद्ध हो गया ॥३॥

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः । यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥४॥

अन्वयः— लीलया उपगताम् सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं प्रकृतिम् यदृच्छया अभ्यपद्यत ॥४॥

अनुवाद— उस सर्वव्यापक पुरुष ने अपने पास विलास पूर्वक आयी हुयी अव्यक्त तथा त्रिगुणात्मिक वैष्णवी माया को स्वेच्छा से स्वीकार किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अत्रावरणविक्षेपशक्तिभेदेन प्रकृतिर्द्विविधा, तत्रावरणशक्त्या सर्वे जीवोपाधिरविद्या, विक्षेपशक्त्या सैव माया पारमेश्वरी।

पुरुषश्च जीवेश्वररूपेण द्विविधः, तत्र यः प्रकृत्यविवेकेन संसरति स जीवः, यस्तु प्रकृतिं वशीकृत्य विश्वसृष्ट्यादि करोति स ईश्वरः। तत्र प्रकृत्यविवेकेन जीवस्य संसारप्रकारमाह-स एष इति पञ्चभिः । सूक्ष्मामव्यक्तां दैवीं देवस्य विष्णोः शक्तिं लीलयोपगतां यदृच्छयैवाभ्यपद्यतेत्यन्वयः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

आवरणशक्ति और विक्षेप शक्ति के भेद से प्रकृति दो प्रकार की है । उसमें आवरणशक्ति के द्वारा वही प्रकृति जीवोपाधि अविद्या होती है और विक्षेपशक्ति के द्वारा वही परमेश्वर भगवान् विष्णु की माया कहलाती है । पुरुष भी दो प्रकार का हो जाता है । जो प्रकृति का विवेक नहीं होने के कारण संसार में संसरण करता है वह जीव कहलाता है और जो प्रकृति को अपने वश में करके सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि करता है वही ईश्वर है । उसमें भी प्रकृति का विवेक न होने के कारण जीव जो संसार में संसरण करता है उसके प्रकार को **स एष० इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं । सूक्ष्म अर्थात् अव्यक्त **दैवीम्** अर्थात् भगवान् विष्णु की शक्ति जो विलास पूर्वक पुरुष के पास आती है उसको वह अपनी इच्छा से ही स्वीकार कर लेता है ।।४।।

गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः । विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ।।५।।

अन्वयः— गुणैः विचित्राः सरूपाः प्रजाः सृजतीं प्रकृतिं विलोक्य ज्ञानगूहया इह सद्यः मुमुहे ।।५।।

अनुवाद— लीला करने वाली अपने सत्त्वादि गुणों के द्वारा अपने सदृश ही प्रजाओं की सृष्टि करती हुयी प्रकृति को देखकर उसकी आवरण शक्ति से मोहित हो गया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तस्या लीलामाह-गुणैरिति । ज्ञानं गूहयत्यावृणोतीति ज्ञानगूहा तया । तथा च श्रुतिः '**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः**' इति । मुमुहे आत्मानं विस्मृतवान् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति की लीला को ही बतलाते हुए **गुणैः इत्यादि श्लोक** को कहते हैं— प्रकृति को ज्ञानगूहा इसलिए कहा गया है कि वह जीव के ज्ञान को आवृत कर देने का काम करती है । श्रुति भी कहती है- **अजामेकाम्० इत्यादि** अर्थात् प्रकृति अजा अर्थात् अजन्मा है, एक है तथा वह सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण स्वरूपिणी है। वह अपने ही समान अनेक प्रजाओं को उत्पन्न कर देती है । जीव तथा ईश्वर दोनों में से एक जीव उसका आलिङ्गन करके शयन करता है, अर्थात प्रकृति से संसृष्ट हो जाता है, उसका उपभोग करता है, और दूसरा उसको भुक्तभोगा जानकर उसका परित्याग कर देता है । **मुमुहे** पद का अभिपय है कि उस प्रकृति को अपनाकर अपने स्वरूप को भूल गया ।।५।।

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् । कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ।।६।।

अन्वयः— एवं पराभिध्यानेन पुमान् प्रकृतेः गुणैः क्रियामाणेषु कर्मसु आत्मनि मन्यते ।।६।।

अनुवाद— इस तरह अपने से भिन्न प्रकृति को ही अपना स्वरूप मान लेने के कारण पुरुष प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाने वालो कर्मों में अपना ही कर्तृत्व मान लेता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

पराभिध्यानं प्रकृत्यध्यासस्तेन । प्रकृतेर्गुणैः कर्मसु क्रियमाणेषु कर्तृत्वमात्मनि मन्यते ।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति का अध्यास हो जाने के कारण जीव प्रकृति के सत्वादि गुणों के द्वारा किए जाने वाले कर्मों में अपना ही कर्तृत्व मान लेता है ॥६॥

तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् । भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥७॥

अन्वयः— तत् अस्य, अकर्तुः ईशस्य, साक्षिणः निवृतात्मनः संसृतिः बन्धः तत्कृतम् च पारतन्त्र्यम् ॥७॥

अनुवाद— कर्तृत्वाभिमान के ही कारण इस अकर्ता, स्वाधीन, साक्षी तथा आनन्दस्वरूप पुरुष का जन्म मृत्यु रूप संसार का बन्धन होता है और उसी के कारण वह परतन्त्र हो जाता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तदिति कर्तृत्वमननमेव । अस्य पुरुषस्य । साक्षिमात्रत्वादकतुरेव सतः कर्मभिर्बन्धः । ईशस्यापरतन्त्रस्यैव कर्मबन्धन्कृतं भोगे परतन्त्र्यं निर्वृतात्मनः सुखात्मकस्यैव संसृतिर्जन्ममृत्युप्रवाहः प्रकृत्यविवेककृतमेतत्सर्वं भवतीत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अपने को कर्ता मानने के कारण ही इस पुरुष जो साक्षी मात्र होने के कारण अकर्ता है, उसको संसार का जन्ममरण रूप संसार का बन्धन होता है । वह ईश अर्थात् स्वतंत्र है, किन्तु उसको कर्मबन्धन जन्य परतन्त्रता भी प्राप्त होती है । वह स्वभावतः सुख स्वरूप है फिर भी उसकी जन्म मृत्यु रूप प्रवाह की परम्परा चलने लग जाती है । यह सारा अनर्थ प्रकृति पुरुष अविवेक के ही कारण होता है ॥७॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः । भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥८॥

अन्वयः— कार्यकारणकर्तृत्वे प्रकृतिं कारणं विदुः सुख दुःखनां भोक्तृत्वे प्रकृतेः परम् पुरुषम् ॥८॥

अनुवाद— कार्यरूप शरीर कारण रूप इन्द्रियाँ तथा कर्ता रूप इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओं में पुरुष अपने मन का आरोप कर लेता है । किन्तु पण्डित जन प्रकृति को ही कारण मानते हैं । वस्तुतः प्रकृति से परे होकर भी जो प्रकृतिस्थ हो रहा है उस पुरुष के सुख दुःखों के भोगने में कारण मानते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु चैतन्यसामानाधिकरण्येनैव कर्तृत्वादिप्रतीतेः स्वस्यैव तदङ्गीक्रियतां, नेत्याह । कार्यं शरीरम्, कारणमिन्द्रियम् कर्ता देवतावर्गः, तद्भावापत्तौ पुरुषस्य प्रकृतिं कारणं विदुः । कूटस्थस्य स्वतो विकाराभावात्प्रकृतिपरिणामभूतदेहाद्यहंकारकृतमेव कर्तृत्वादिकमित्यर्थः । 'भोक्तृत्वे तु पुरुषं कारण विदुः' इत्यस्यायं भावः-यद्यप्यहंकारगतमेव कर्तृत्वादिकं भोक्तृत्वं च, तथापि विकारस्य जडावसानत्वादुपाधिप्राधान्यं भोगस्य चिदवसानत्वादुपहितप्राधान्यमिति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि चैतन्य समानाधिकरण रूप से कर्तृत्व आदि की प्रतीति होती है, उसे अपना ही स्वीकार कर लेना चाहिए । तो ऐसी बात नहीं है इस बात को बतलाते हुए भगवान् कपिल कहते हैं शरीर रूप कार्य, इन्द्रिय रूप कारण तथा कर्ता रूप इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं में जो मनुष्य अपनेपन का अनुभव करता है उसका कारण प्रकृति को ही बतलाया गया है । **कूटस्थस्य० इत्यादि** आत्मा कूटस्थ है, अतएव उसमें कोई भी विकार नहीं हो सकता है । अतएव प्रकृति के परिणामभूत देह आदि में अहङ्कार जन्य ही कर्तृत्व इत्यादि होता है । और भोक्तृत्व में तो पुरुष को ही कारण बतलाया गया है । **इत्यस्य० इत्यादि** इस कथन का अभिप्राय यह है कि यद्यपि कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व इत्यादि अहङ्कार से ही होते हैं फिर भी विकार का जड़ में ही पर्यवसान होता है अतएव उसमें उपाधि की ही प्रधानता होती है और भोग का पर्यवसान चूकि चित्त में होता है इसलिए उसमें उपहित की प्रधानता होती है ॥८॥

देवहूतिरुवाच

प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम । ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥९॥

अन्वयः— हे पुरुषोत्तम सदसत् यदात्मकम् अस्य कारणयो प्रकृतेः पुरुषस्य च अपि लक्षणं ब्रूहि ॥९॥

देवहूति ने कहा

अनुवाद— हे पुरुषोत्तम ! इस जगत् के स्थूल और सूक्ष्म जिनके स्वरूप हैं तथा इस विश्व के जो कारण हैं, ऐसे प्रकृति तथा पुरुष के लक्षण को आप मुझे बतलाएँ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं संसारिणं पुरुषं तद्धेतुं च ज्ञात्वेदानीं जगत्कारणमीश्वरं तत्प्रकृतिं च पृच्छति-प्रकृतेरिति । अस्य विश्वस्य । सदसच्च स्थूलं सूक्ष्मं च कार्यं यदात्मकं तयोः प्रकृतिपुरुषयोः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से संसारी पुरुष और उनके कारणभूत प्रकृति को जानकर माता देवहूति उस समय जगत् के कारण ईश्वर और उनकी प्रकृति के विषय में **प्रकृतेः इत्यादि** श्लोक के द्वारा पूछती हैं । इस विश्व के स्थूल तथा सूक्ष्म जितने भी कार्य हैं तथा वे यदात्मक हैं उन प्रकृति तथा पुरुष के लक्षण को आप बतलायें ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

यत्तत्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

अन्वयः— यत् तत् त्रिगुणात्मकम् अव्यक्तं, नित्यं सदसदात्मकम्, प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः अविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

अनुवाद— जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य, और कार्य कारण रूप तथा स्वयं निर्विशेष रूप होकर विशेषों का आधार है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रकृतिं लक्षयति । यत्प्रधानं तदेव प्रकृतिं प्राहुः । किं तत्प्रधानम्, स्वतोऽविशेषं विशेषवद्विशेषाणामाश्रयः । तर्हि किं ब्रह्म, न, त्रिगुणम् । किं महत्तत्त्वादि, न, अव्यक्तमकार्यम् । किं कालादि, न, सदसदात्मकं कार्यकारणरूपम् । किं जीवः प्रकृतिः, न, नित्यम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम प्रकति के लक्षण को बतलाते हैं । जो प्रधान है उसी को प्रकृति कहते हैं । अब प्रश्न है कि वह प्रधान क्या है ? तो इसका उत्तर है कि वह स्वयम् अविशेष है और विशेषों का आश्रय है । अर्थात् गुणों की साम्यावस्था रूप होने के कारण अव्यक्त है और आपने कार्यभूत महादादि जो विशेष है उन सबों का आश्रय है तो प्रश्न होता है कि वह ब्रह्म है क्या ? तो ऐसी बात नहीं है, वह त्रिगुण है अर्थात् त्रिगुणात्मक है । क्या वह महत् तत्त्व आदि है ? तो ऐसी भी बात नहीं है, अपितु वह अव्यक्त अर्थात् अकार्य है । महदादि तो कार्य हैं क्या वह कालादि स्वरूप है ? तो ऐसी भी बात नहीं है वह सदसदात्मक है अर्थात् कार्य कारण रूप है । क्या जीव ही प्रकृति है ? तो ऐसी भी बात नहीं है अपितु वह नित्य हैं ॥१०॥

पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा । एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

अन्वयः— पञ्चभिः, पञ्चभि, चतुर्भिः, दशभि तथा एतत् चतुर्विंशतिकं प्राधानिकं गणं विदुः ॥११॥

अनुवाद— पाञ्चमहाभूत, पाञ्चतन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दश इन्द्रियाँ, इन चौबीस तत्त्वों के समूह को विज्ञ पुरुष प्रधान का कार्य मानते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां तत्त्वानां लक्षणं वक्तुं तानि गणयति-पञ्चभिरित्यादि । संख्याभेदेनैतच्चतुर्विंशतिकं एतानि चतुर्विंशतिर्यस्मिन् गणे तं गणं प्राधनिकं प्रधानकार्यात्मकं ब्रह्म विदुः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे तत्त्वों का लक्षण बतलाने के लिए उनकी गणना पञ्चभिः इत्यादि श्लोक से करते हैं । संख्या के भेद के कारण प्रकृति के चौबिस गण हैं । इन चौबीसों का गण प्रधान के कार्य रूप से जाना जाता है ॥११॥

महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः । तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥१२॥

अन्वयः— महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः तन्मात्राणि च गन्धादीनि तावन्ति मे मतानि ॥१२॥

अनुवाद— महाभूत पाँच ही हैं, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, तन्मात्राएँ भी उतनी ही है, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति-महाभूतानीति त्रिभिः । तावन्ति पञ्चैव ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

महाभूतानि इत्यादि तीन श्लोकों से इन तीनों का ही विस्तार से वर्णन करते हैं । महाभूतों की संख्या पाँच है पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश और तन्मात्राओं की भी संख्या पाँच हैं । गन्धतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा और शब्दतन्मात्रा ॥१२॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः । वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥१३॥

अन्वयः— इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्नासिकाः, वाक्, करौ चरणौ मेढ्रं पायुः दशम उच्यते ॥१३॥

अनुवाद— इन्द्रियाँ दश हैं, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और नासिका, वाक्, दोनों हाथ, दोनों पैर, उपस्थ और दशवाँ पायुइन्द्रिय ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् । चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

अन्वयः— मनः, बुद्धिः, अहङ्कारः चित्तम् इति अन्तरात्मकम्, लक्षणरूपया वृत्याचतुर्धा भेदो लक्ष्यते ॥१४॥

अनुवाद— मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त इन चारों के रूप में एक ही अन्तःकरण अपनी सङ्कल्प निश्चय चितन्तन और अभिमान रूपी वृत्तियों के द्वारा चार भेदों वाला प्रतीत होता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्तरात्मकमन्तःकारणम् । लक्षणरूपया व्यवच्छेदिकया ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अन्तःकरण अपनी वृत्तियों की भिन्नता के कारण चार प्रतीत होता है । सङ्कल्प करते समय अन्तःकरण मन कहलाता है, निश्चित करते समय बुद्धि कहलाता है, अभिमान करते समय वही अहङ्कार शब्द से अभिहित किया जाता है और चिन्तन करते समय अन्तःकरण चित्त कहलाता है ॥१४॥

एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह । संनिवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥

अन्वयः— एतावानेव संख्यातः सगुणस्य ब्रह्मणः संनिवेशः यः मया कालः प्रोक्तः स पंचविंशकः ॥१५॥

अनुवाद— तत्त्वज्ञ पुरुषों ने सगुण ब्रह्म के सन्निवेश स्थान इन चौबीस तत्त्व को ही बतलाया है । जिसे मैंने कहा है, वह काल तत्त्व पच्चीसवाँ तत्त्व है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यावान्मया प्रोक्त एतावानेव संख्यातो गणितस्तत्त्वज्ञैः । काले तु मतद्वयमाह । यः कालः स पञ्चविंशकः । अल्पार्थे कप्रत्ययः । प्रकृतेरेवावस्थाविशेष इत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जितना मैंने बतलाया है उतना ही तत्त्वों की संख्या गणितज्ञों ने बतलाया है । काल के विषय में दो मतों को भगवान् कपिल ने कहा है । काल पचीसवाँ तत्त्व है । पंचविंशक में क प्रत्यय अल्पार्थ में हुआ है । वह प्रकृति का ही अवस्था विशेष है ॥१५॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् । अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥१६॥

अन्वयः— एके कालं पौरुषं प्रभावमाहुः यतः अहङ्कारविमूढस्य प्रकृतिमीयुषः कर्तुः भयम् ॥१६॥

अनुवाद— एक तरह के विचारक काल को पुरुष से भिन्न मानकर उसे पुरुष का प्रभाव मानते है । अर्थात् ईश्वर की संहारकारिणी शक्ति मानते हैं । उसीसे माया के कार्यभूत देहादि में आत्मत्व का अभिमान करने वाले अहङ्कार मोहित और अपने को कर्ता मानने वाले जीव को निरन्तर भय बना रहता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एके तु पौरुषं पुरुषस्येश्वरस्य प्रभावं विक्रमं कालमाहुः । तमेव कालं द्वेधा लक्षयति, यतो भयं भवति । कस्य । प्रकृतिमीयुषः प्राप्तस्य । अतएव देहेऽहंकारेण विमूढस्य कर्तुर्जीवस्य । अनेन संहारकत्वेन लक्षितः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

एक प्रकार के विचारकों ने काल को परमेश्वर का प्रभाव (पराक्रम) कहा है । उसी काल का दो प्रकार का लक्षण बतलाते हैं उसी से देह में अहङ्कार बुद्धि करने के कारण प्रकृतिप्राप्त जीव को भय होता है । इस तरह से काल को संहारक बतलाया गया है ॥१६॥

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि । चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

अन्वयः— हे मानवि ! प्रकृतेः गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य यतः चेष्टा स एव भगवान् काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

अनुवाद— हे मनुराजकुमारि ! जिनकी प्रेरणा से गुणों की साम्यावस्था रूप निर्विशेष प्रकृति में गति उत्पन्न होती है वस्तुतः वे पुरुष स्वरूप श्रीभगवान् ही काल कहे जाते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सृष्टिहेतुत्वेन लक्षयति प्रकृतेरिति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रकृति के कारणरूप से काल को लक्षित किया गया है । पुरुष स्वरूप परमात्मा ही काल हैं, उन्हीं की प्रेरणा से साम्यावस्थावस्थित निर्विशेष प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने पर सृष्टि का कार्य प्रारम्भ होता है ॥१७॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः । समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥

अन्वयः— यः भगवान् आत्ममायया अन्तः पुरुषरूपेण बहिः काल रूपेण सत्त्वानां समन्वेति एषः कालः ॥१८॥

अनुवाद— जो भगवान् अपनी माया के द्वारा प्राणियों के भीतर जीव रूप से और बाहर काल रूप से व्याप्त हैं वे ही काल कहे जाते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवांस्तमाह-अन्तरिति । अन्तःसर्वप्राणिनां यः पुरुषरूपेण नियन्तृत्वेन समन्वेति सम्यक् तद्विकाररहित एवानुस्यूतो वर्तते बहिश्च कालरूपेण एष भगवान् । यद्वा यः पुरुष इति प्रसिद्धः कालः स पञ्चविंशः । एके तु पुरुषस्य प्रभावं कालमाहुः । प्रभावस्यैव लक्षणं यत इति । पुरुषस्यैव कालत्वे हेतुः-प्रकृतेरिति । उभयथा विवक्षायां हेतुः-अन्तरिति । शेषं समानम् तदेवं प्रकृतेश्चतुर्विंशतिभेदाः । जीवेश्वरयोरैक्यविवक्षातः पञ्चविंशतितत्त्वानि भवन्ति । तयोर्भेदविवक्षया च षड्विंशतिर्भवन्ति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि वे भगवान् कौन है ? उनको बतलाते हुए **अन्तः इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । जो भगवान् सभी प्राणियों के भीतर पुरुष रूप से नियन्ता रूप से व्यापक रहते हैं । अर्थात् बिना किसी विकार के सबों के भीतर वे व्यापक रहते हैं ओर बाहर काल रूप से व्यापक हैं । वे ही भगवान् हैं । अथवा जो भगवान् पुरुष रूप से प्रसिद्ध हैं वे ही पचीसवाँ काल तत्त्व हैं । एक प्रकार के विचारकों ने काल को पुरुष का पराक्रम कहा है । **यतः स भगवान् कालः** यह प्रभाव का लक्षण है । पुरुष के ही काल होने का कारण बतलाते हुए कहा गया है **प्रकृतेः इत्यादि** श्लोक । काल के दोनों भेदों की विवक्षा होने पर तत्त्वों की संख्या छब्बीस हो जाती हैं ॥१८॥

दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् । आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मय ॥१९॥

अन्वयः— परः पुमान् दैवात् क्षुभितधार्मिण्यां स्वस्यां योनौ वीर्यम् आधत्त तदा सा हिरण्मयम् महत् तत्त्वम् असूत॥१९॥

अनुवाद— जब परम पुरुष परमात्मा ने जीवों के अदृष्टवशात् क्षुब्ध बनी हुयी सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति स्थान स्वरूप माया में अपनी चित्‌शक्ति रूप वीर्य का आधान किया तो उससे तेजोमय महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुयी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तत्त्वानामुत्पत्तिपूर्वकं लक्षणान्याह-दैवादित्यादिना एतान्यसंहत्येत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । तत्र चित्तस्योत्पत्तिपूर्वकं लक्षणमाह चतुर्भिः । दैवाज्जीवादृष्टात्क्षुभिता धर्मा गुणा यस्याः । योनावभिव्यक्तिस्थाने प्रकृतौ । वीर्यं चिच्छक्तिम् । सा प्रकृतिर्महत्तत्त्वमसूत । महतः स्वरूपमाह-हिरण्मयम् प्रकाशबलम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में तत्त्वों की उत्पत्तिपूर्वक उनके लक्षण दैवात् इस श्लोक से लेकर **एतान्यसंहत्य** श्लोक पर्यन्त तत्त्वों की उत्पत्ति पूर्वक उनके लक्षण बतलाये गये है । उसमें चित् की उत्पत्ति पूर्वक लक्षण चार श्लोकों से बतलाया गया है । जब जीवों के अदृष्टवशात् प्रकृति के धर्मभूत गुणों में क्षोभ उत्पन्न हो गया तो उनकी उत्पत्ति स्थान प्रकृति में परमात्मा अपनी चित्‌शक्ति रूप वीर्य का आधान किए । उसके पश्चात् उस प्रकृति ने तेजः सम्पन्न महत् तत्त्व को उत्पन्न किया । उस महत् तत्त्व का स्वरूप तेजोमय था ॥१९॥

विश्वमात्मगतं व्यञ्जन्कूटस्थो जगदङ्कुरः । स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥

अन्वयः— कूटस्थम् जगदङ्कुरः महत् त्वम् आत्मगतं विश्वं व्यञ्जन् स्वतेजसा आत्मप्रस्वापनं तीव्रं तमः स्वतेजसा अपिबत्॥२०॥

अनुवाद— लय तथा विक्षेप आदि से रहित एवं जगत् के अङ्कुर स्वरूप उस महत् तत्त्व ने अपने मे स्थित जगत् को प्रकट करने के लिए अपने स्वरूप को आच्छादित करने वाले अन्धकार को अपने ही तेज से पी लिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

विश्वमहंकारादिप्रपञ्चम् । आत्मगतं स्वस्मिन् सूक्ष्मरूपेण स्थितं व्यञ्जन्प्रकटयन् महांस्तीव्रं प्रलयकालीनं तमोऽपिबत्। कूटस्थो लयविक्षेपशून्यः । कथंभूतं तमः । आत्मानं प्रस्वापयति प्रच्छादयतीति तथा । यत्पूर्वं प्रलयसमये महान्तं प्रकृतौ विलापयामासेत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अपने में सूक्ष्म रूप से स्थित अहङ्कार आदि सम्पूर्ण प्रपञ्च को प्रकट करने के लिए प्रलयकाल में रहने वाले अत्यन्त घोर अन्धकार को महत्तत्त्वने पी लिया । वह महत्तत्त्व कूटस्थ अर्थात् लय और विक्षेप से रहित था । उस अन्धकार की विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि वह अन्धकार महत् तत्त्व को आच्छादित करने वाला था। उसने प्रलय काल के आने पर महान् को प्रकृति में विलीन कर दिया था ॥२०॥

यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् । यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥२१॥

अन्वयः— यत् तत् सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् चित्तम् यद्वासुदेवाख्यमाहुः तत् महदात्मकम् ॥२१॥

अनुवाद— जो सत्त्वगुणमय, स्वच्छ शान्त और भगवान् की उपलब्धि का स्थान रूप है वही महत् तत्त्व है और उसी को वासुदेव कहते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गाच्चतुर्व्यूहोपासनामाह- यत्तदिति । सर्वागमप्रसिद्धत्वमाह । स्वच्छं विशदम् । शान्तं रागादिरहितम् । भगवतः पदमुपलब्धिस्थानम् । अतएव वासुदेवाख्यं यदाहुः अयमर्थः-अधिभूतरूपेण तस्यैव महानिति संज्ञा, अध्यात्मरूपेण चित्तमिति, उपास्यरूपेण वासुदेव इति, अधिष्ठाता तु तस्य क्षेत्रज्ञः, एवमहंकारे सङ्कर्षण उपास्यः, रुद्रोऽधिष्ठाता, मनस्यनिरुद्ध उपास्यः, चन्द्रोऽधिष्ठाता, बुद्धौ प्रद्युम्न उपास्यः ब्रह्माधिष्ठातेति ज्ञातव्यम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् चतुर्व्यूहोपासन का वर्णन करते हैं । यह सभी आगमों में प्रसिद्ध हैं कि चित्त स्वच्छ अर्थात् विशद है, रागादि दोषों से रहित और श्रीभगवान् की प्राप्ति का स्थान है, उसी को आगमों में वासुदेव कहा गया है । **अयमर्थः** कहने का अभिप्राय है कि उसी को अधिभूत रूप से महान् कहा जाता है और अध्यात्म रूप से चित्त कहा जाता है उपास्य रूप से वासुदेव कहा जाता है और उसके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ हैं । इसी तरह अहङ्कार में सङ्कर्षण की उपासना करनी चाहिए, उसके अधिष्ठाता रुद्र हैं । मन में अनिरुद्ध की उपासना करनी चाहिए ओर मन के अधिष्ठाता चन्द्रमा हैं, बुद्धि में प्रद्युम्न की उपासना करनी चाहिए और बुद्धि के अधिष्ठाता ब्रह्माजी को जानना चाहिए ॥२१॥

स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः । वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥२२॥

अन्वयः— स्वच्छत्वंमविकारित्वं शान्तत्वमिति वृत्तिभिः चेतसः लक्षणं प्रोक्तम् यथापां परा प्रकृतिः ॥२२॥

अनुवाद— स्वाभाविक अवस्था की दृष्टि से वृत्ति रहित चित्त का लक्षण स्वच्छत्व, विकार राहित्य एवं शान्त बतलाया गया है । यह उसी तरह से है जिस तरह पृथिवी आदि भूतों से संसर्ग होने से पहले जल स्वच्छ, फेन, तरङ्ग आदि विकारों से रहित तथा मधुरत्व गुण सम्पन्न होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स्वच्छत्वं भगवद्बिम्बग्राहित्वम् । अविकारित्वं लयविक्षेपराहित्यम् । अपां प्रकृतिः फेनतरङ्गादिरहितावस्था । परा भूसंसर्गात्प्राक्तनी सा यथा मधुरा स्वच्छा शान्ता च तद्वदित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के बिम्ब का ग्रहण करने वाला होना ही चित्त की स्वच्छता है । लय तथा विक्षेप राहित्य ही उसका अविकारित्व (विकार राहित्य) है । जैसे जल की प्रकृति है कि वह फेन तथा तरङ्ग से रहित होता है । पृथिवी इत्यादि भूतों से संसर्ग होने से पहले जल मधुर, स्वच्छ और शान्त होता है उसी तरह अपनी स्वाभाविक स्थिति में चित्त स्वच्छ, विकाररहित और शान्त होता है ॥२२॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् । क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

अन्वयः— भगवद् वीर्य सम्भवात् विकुर्वाणात् महत्तत्त्वात् क्रियाशक्तिः अहङ्कारः त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की चित् शक्ति नामक वीर्य से उत्पन्न महत्तत्त्व के विकृत होने पर क्रियाशक्ति रूप अहङ्कार की उत्पत्ति हुयी और वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारस्योत्पत्तिपूर्वकं लक्षणमाह-महत्तत्त्वादिति चतुर्भिः । क्रियासु शक्तिर्यस्य स क्रियाशक्ति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अहङ्कार की उत्पत्ति पूर्वक उसका लक्षण **महत्तत्वात्० इत्यादि** से लेकर चार श्लोकों में कहा गया है । मन आदि इन्द्रियाँ ओर महाभूतों की उत्पत्ति में जिसकी शक्ति होती है, वही क्रिया शक्ति हैं ॥२३॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः । मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥२४॥

अन्वयः— वैकारिकः तैजश्च तामसः च यतः मनसः, इन्द्रियाणां, महताम् भूतानाम् अपि भवः ॥२४॥

अनुवाद— वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ वैकारिक, राजस और तामस । उनसे ही क्रमशः मन इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूतो की उत्पत्ति हुयी । अर्थात् वैकारिक अहङ्कार से मन की; राजस अहङ्कार से इन्द्रियों की और तामस अहङ्कार से पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति हुयी ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

त्रैविध्यमाह-वैकारिक इति । तस्य कार्यमाह । यतो यस्मान्मनआदीनां भव उत्पत्तिः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अहङ्कार के तीन भेदों को इस श्लोक में बतलाया गया है । उन तीनो अहङ्कारों से क्रमशः मन, इन्द्रियों और महाभूतों की उत्पत्ति हुयी । भव शब्द उत्पत्ति का वाचक है ॥२४॥

सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते । संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

अन्वयः— भूतेन्द्रियमनोमयम् यम साक्षात् सहस्रशिरसं सङ्कर्षणाख्यम् अनन्तं प्रचक्षते ॥२५॥

अनुवाद— भूत, इन्द्रिय और मन रूप अहङ्कार को ही पण्डित जन सङ्कर्षण नामक अनन्तदेव कहते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्नुपास्यव्यूहमाह-सहस्रशिरसमिति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उस अहङ्कार में उपास्य व्यूह को बतलाते हुए सहस्रशिरसम् इत्यादि श्लोक कहा गया है । उस अहङ्कार मे भगवान् सङ्कर्षण की उपासना करनी चाहिए ॥२५॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् । शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥२६॥

अन्वयः— अहंकृतेः कर्तृत्वं, करणत्वं कार्यत्वं, चेति लक्षणम् । वा शान्तघोरविमूढत्वं स्यात् ॥२६॥

अनुवाद— उस अहङ्कार का देवता रूप से कर्तृत्व, इन्द्रिय रूप से करणत्व तथा भूतरूप से कार्यत्व लक्षण है । अथवा सत्त्वादिगुणों के सम्बन्ध से शान्तत्व, घोरत्व और मूढत्व भी इन सबों का लक्षण हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

लक्षणमाह कर्तृत्वमिति कर्तृत्वं देवतादिरूपेण । करणत्वमिन्द्रियरूपेण। कार्यत्वं भूतरूपेण । शान्तत्वादिकं तु तत्तत्कारणगुणत्रयरूपेण ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अहङ्कार का लक्षण देवरूप से कर्तृत्व, इन्द्रियरूप से कारणत्व और महाभूत रूप से कार्यत्व ही लक्षण है। शान्तत्व इत्यादि तो उनके कारणभूत तीनों गुणों के संसर्ग के कारण लक्षण हैं ॥२६॥

वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत । यत्सङ्कल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥२७॥

अन्वयः— वैकारिकात् विकुर्वाणात् मनः तत्त्वम् अजायत । यत् सङ्कल्प विकल्पाभ्याम् कामसम्भवः वर्तते ॥२७॥

अनुवाद— उन तीनों प्रकार के अहङ्कारों में से वैकारिक अहङ्कार के विकृत होने पर उससे मन नामक तत्त्व की उत्पत्ति हुयी । जिसके सङ्कल्प और विकल्पों के द्वारा कामनाओं की उत्पत्ति होती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

मनस उत्पत्तिपूर्वकं लक्षणमाह-वैकारिकादिति द्वाभ्याम् । सङ्कल्पश्चिन्तनम्, विकल्पो विशेषचिन्तनम् । यस्य मनसः सङ्कल्पविकल्पाभ्यां कामसम्भवो वर्तते इति कामरूपा वृत्तिर्लक्षणत्वेनोक्ता, नतु प्रद्युम्नव्यूहोत्पत्तिः, तस्य सङ्कल्पादिकार्यत्वाभावात्, उपास्यव्यहूस्य चानिरुद्धस्योक्तेः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मन की उत्पत्तिपूर्वक लक्षण को बतलाते हुए **वैकारिकात् इत्यादि** दो श्लोकों से लक्षण बतलाते हैं । सङ्कल्प चिन्तन को कहते हैं और विकल्प विशेष चिन्तन को कहते हैं । मन के ही सङ्कल्प विकल्प के द्वारा कामनाओं की उत्पत्ति होती है । यहाँ काम रूप वृत्ति को लक्षण रूप से बतलाया गया है, प्रद्युम्न की उत्पत्ति को नहीं कहा गया है। क्योंकि प्रद्युम्न सङ्कल्पादि के कार्य नहीं हैं । और इसका उपास्य व्यूह अनिरुद्ध को बतलाया जा चुका हैं ॥२७॥

यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् । शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

अन्वयः— यत् हृषीकाणामधीश्वरम् शारदेन्दीवरश्यामं अनिरुद्धाख्यं विदुः योगभिः शनैः संराध्यम् ॥२८॥

अनुवाद— इस मनस्तत्त्व को ही जो अनिरुद्ध के नाम से प्रख्यात है, उस अनिरुद्धजी की आराधना योगिजन धीरे-धीरे अपने मन को वश में करके करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

शारदं शरत्कालीनमिन्दीवरं नीलोत्पलं तदिव श्यामम् । यच्छनैः संराध्यं वशीकर्तुं योग्यम्, दुर्ग्रहत्वात् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जिन शरत्कालीन नीलकमल के समान सुन्दर श्रीविग्रह वाले भगवान् अनिरुद्ध की उपासना योगिजन धीरे-धीरे अपने मन को वश में करके करते हैं क्योंकि दूसरे लोगों के लिए तो मन को अपने वश में करना अत्यन्त कठिन है ॥२८॥

तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति । द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९॥

अन्वयः— हे सति ! तैजसात् तु विकुर्वाणात् बुद्धितत्त्वम् अभूत् द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः ॥२९॥

अनुवाद— हे साध्वि ! जब तैजस अहङ्कार विकृत हुआ तो बुद्धितत्त्व की उत्पत्ति हुयी । वस्तुओं का स्फुरण रूप विज्ञान और इन्द्रियों का सहायक होना तथा पदार्थों का विशेषज्ञान करना ये बुद्धि के कार्य हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

बुद्धेरुत्पत्तिपूर्वकं लक्षणमाह-तैजसादिति द्वाभ्याम् । हे सति । द्रव्यस्फुरणरूपं विज्ञानमिति । चित्तव्यावृत्त्यर्थमुक्तम् । इन्द्रियाणामनुग्रह इति सविकल्पज्ञाने । हृषीकाणामधीश्वरमिति यदुक्तं तत्तु निर्विकल्पकज्ञाने ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि की उत्पत्ति पूर्वक उसका लक्षण **तैजसात्० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा करते है । हे सति ! अर्थात् हे साध्वि ! बुद्धितत्त्व की चित्त से भिन्नता बतलाने के लिए बुद्धि को द्रव्यों के स्फुरणरूप विज्ञान कहा गया है। उसकी सविकल्पज्ञान में अतिव्याप्ति को दूर करने के लिए, इन्द्रियों को अनुग्राहक कहा गया है । निर्विकल्प ज्ञान में अतिव्याप्ति को रोकने के लिए इन्द्रियों का नियामक बुद्धि को कहा गया हैं ॥२९॥

संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च । स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥३०॥

अन्वयः— वृत्तितः पृथक् संशयः विपर्यासः, निश्चयः स्मृतिः अथस्वाप इति बुद्धेर्लक्षणम् इत्युच्यते ॥३०॥

अनुवाद— वृत्तियों की भिन्नता के कारण बुद्धि के संशय, विपर्यय (विपरीत ज्ञान) निश्चय, स्मृति तथा निद्रा ये बुद्धि के लक्षण हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्यस्फुरणस्यैव प्रपञ्चः संशयादिः । विपर्यासो मिथ्याज्ञानम् । निश्चयः प्रमाणज्ञानम् । स्वापो निद्रा । **प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः** इति पातञ्जलोक्तेः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

द्रव्यों के स्फुरण के ही विततिभूत हैं संशय आदि भ्रम ज्ञान को संशय कहते है । मिथ्या ज्ञान को विपर्यास कहते है । यथार्थज्ञान को निश्चय कहते है । निद्रा को ही स्वाप कहते है । पातञ्जलयोगदर्शन ग्रन्थ में भी कहा गया है, **प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रास्मृतयः** अर्थात् प्रमाणज्ञान विपर्यय ज्ञान विकल्प (संशय) निद्रा एवं स्मृति ये सबके सब ज्ञान के ही भेद है ॥३०॥

तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः । प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥

अन्वयः— क्रियाज्ञानविभागशः इन्द्रियाणि तैजसान्येव । प्राणस्य हि शक्तिकर्मबुद्धेःविज्ञानशक्तिता ॥३१॥

अनुवाद— इन्द्रियाँ भी तैजस अहङ्कार के ही कार्य हैं । उनके दो भेद है कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ कर्म प्राण की शक्ति है और ज्ञान बुद्धि की शक्ति हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियाणामुत्पत्तिमाह । तैजसानि तैजसाहंकाराज्जातानि । ज्ञानेन्द्रियाणां वैकारिकत्वशङ्कानिवृत्त्यर्थमेवकारः । द्विविधान्यपीन्द्रियाणि तैजसान्येवेत्यन्वयः । तत्र हेतुः-प्राणस्येति । हि यस्मात्प्राणस्य क्रियाशक्तिर्बुद्धेश्च विज्ञानशक्तिता । अतः प्राणस्य तैजसत्वात्तत्क्रियाशक्तिमतामिन्द्रियाणां तैजसत्वम् । तथा बुद्धिस्तैजसत्वात्तदीयज्ञानशक्तिमतामपीन्द्रियाणां तैजसत्वमित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों की उत्पत्ति को बतलाते हुए कहते हैं । इन्द्रियाँ भी तैजस अहङ्कार से ही उत्पन्न है । ज्ञानेन्द्रियों को सात्त्विकाहङ्कार जन्य मनने वालों के मत का खण्डन करने के लिए एवं शब्द का प्रयोग किया गया है । कहने का अभिप्राय है कि ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों ही तैजस अहङ्कार से ही उत्पन्न हैं । **प्राणस्य० इत्यादि** द्वारा इन्द्रियों के तैजसत्व में हेतु उपन्यस्त किया गया है । क्योंकि प्राण की ही शक्ति कर्म है, बुद्धि की शक्ति ज्ञान है । चूकि प्राण तैजस होता है उसकी शक्ति से युक्त इन्द्रियों का तैजसत्व सिद्ध हो जाता है । उसी तरह बुद्धि भी चूकि तैजस है अतएव, उसकी ज्ञान शक्ति से युक्त इन्द्रियाँ भी तैजस सिद्ध होती हैं ॥३१॥

तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् । शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

अन्वयः— भगवद्वीर्यचोदितात् तामसात् विकुर्वाणात् शब्दमात्रम् अभूत् तस्मात् नभः शब्दगम् श्रोत्रं तु ॥३२॥

अनुवाद— भगवान् की चेतना शक्ति से प्रेरित तामस अहङ्कार के विकृत होने पर उससे शब्द तन्मात्र उत्पन्न हुआ उससे आकाश उत्पन्न हुआ और उससे शब्द का ज्ञान कराने वाली श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुयी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तन्मात्रोत्पत्तिपूर्वकमाकाशादिमहाभूतोत्पत्तिं तल्लक्षणं चाह-तामसादिति पञ्चदशभिः । श्रोत्रं तु शब्दगमित्यादिभिर्विषयोत्पत्त्यनन्तरं तत्संबन्धमात्रं कथ्यते न तूत्पत्तिः । प्रागेवोत्पन्नत्वात् । शब्दं गच्छति प्राप्नोतीति शब्दगम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

तन्मात्रोत्पत्तिपूर्वक आकाशदि महाभूतों की उत्पत्ति तथा उनके लक्षण को **तामसात् इत्यादि** पन्द्रह श्लोकों से कहा गया है । श्रोत्र को तो शब्दगम् शब्द के द्वारा विषयों की उत्पत्ति के पश्चात् उनके सम्बन्ध मात्र को कहा गया है उनकी उत्पत्ति को नहीं कहा गया है ॥३२॥

अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च । तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

अन्वयः— अर्थाश्रयत्वं द्रष्टुर्लिङ्गत्वम् नभसः तन्मात्रत्वम् शब्दस्य लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

अनुवाद— अर्थ का आश्रय होना छिपकर खड़े वक्ता का भी ज्ञान करा देना और आकाश का सूक्ष्म रूप होना यह ही शब्द का लक्षण ज्ञानियों ने कहा है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

शब्दस्य लक्षणमाह । अर्थाश्रयत्वमर्थवाचकत्वम् । द्रष्टुर्लिङ्गत्वं कुड्यन्तरितस्य वक्तुर्ज्ञापकत्वम् । तदुक्तम् लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोरिति । नभसस्तन्मात्रत्वं सूक्ष्मत्वं शब्दस्य लक्षणमित्यन्वयः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शब्द का लक्षण बतलाया गया है । अर्थ का प्रकाशक होना, दिवाल आदि की ओट में खड़े भी वक्ता का ज्ञान करा देना तथा आकाश का सूक्ष्म रूप होना यही शब्द का लक्षण है ॥३३॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च । प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

अन्वयः— भूतानांछिद्रदातृत्वं, बहिरन्तरम् एव प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

अनुवाद— भूतों को अवकाश प्रादान करना, बाहर भीतर विद्यमान रहना और प्राण, इन्द्रिय और मन का आश्रय होना यही आकाश का वृत्तिरूप लक्षण हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

नभसो लक्षणमाह-भूतानामिति । छिद्रदातृत्वमवकाशदातृत्वम् । बहिरन्तर्व्यवहारास्पदत्वम् । आत्मा मनः । प्राणादीनां धिष्ण्यत्वमाश्रयत्वं नाड्यादिच्छिद्ररूपेण । वृत्तिः कार्यमेव लक्षणं वृत्तेर्लक्षणम् । एवमुत्तरत्राप्येकेन श्लोकेन तन्मात्रमहाभूतयोरुत्पत्तिः। द्वितीयेन तन्मात्रलक्षणम् । तृतीयेन महाभूतलक्षणमित्यनुसंधेयम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आकाश का लक्षण बतलाया गया है, इस श्लोक में आकाश के तीन लक्षण बतलाये गये हैं । १. सभी भूतों को अवकाश प्रदान करना, २. भीतर और बाहर के व्यवहार का विषय बनाना और ३. नाडी आदि के छिद्र रूप से प्राण, इन्द्रिय तथा मन का आश्रय होना । वृत्ति कार्य को कहते हैं ये कार्य ही आकाश के लक्षण हैं । इसी तरह आगे भी एक श्लोक में तन्मात्रों तथा भूतो की उत्पत्ति, दूसरे श्लोक से तन्मात्रा का लक्षण और तीसरे श्लोक से महाभूत का लक्षण बतलाया हुआ समझना चाहिए ।।३४।।

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः । स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

अन्वयः— शब्द तन्मात्रात् नभसः कालगत्या विकुर्वतः स्पर्शः अभवत् ततः वायुः त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ।।३५।।

अनुवाद— शब्दतन्मात्रा के कार्य आकाश में कालगति से विकार उत्पन्न होने पर स्पर्श तन्मात्रा की उत्पत्ति हुयी उससे वायु की उत्पत्ति हुयी तथा स्पर्श का ग्रहण करने वाली त्वगिन्द्रिय उत्पन्न हुयी ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

का सा त्वक् । स्पर्शस्य संग्रहः सम्यग्ग्रहणं यया । पुंस्त्वं नियतलिङ्गत्वात् यद्वा स्पर्शस्य संग्रहस्ततो भवतीति शेषः। शब्द तन्मात्रादित्यादितन्मात्राणामुत्तरोत्तरान्वयार्थमुक्तम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि त्वगिन्द्रिय क्या है ? तो इसका उत्तर है कि जिसके द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है, उसे ही त्वगिन्द्रिय कहते हैं । नियत लिङ्ग होने के कारण स्पर्श का पुल्लिङ्ग में प्रयोग है । अथवा उससे स्पर्श का ज्ञान होता है । **शब्दतन्मात्रात् इत्यादि** उत्तरोत्तर तन्मात्राओं का अन्वय करने के लिए कहा गया है ।।३५।।

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च । एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

अन्वयः— मृदुत्वं कठिनत्वं शैत्यम्, उष्णत्वम् एवं च एतत् स्पर्शस्य स्पर्शत्वं नभस्वतः तन्मात्रत्वम् ।।३६।।

अनुवाद— कोमलता, कठिनता, शीतलता तथा उष्णता एवं वायुका तन्मात्र रूप होना ये स्पर्श के लक्षण हैं।।३६।।

भावार्थ दीपिका

स्पर्शलक्षणमाह-मृदुत्वमिति । स्पर्शत्वं स्वरूपलक्षणमित्यर्थः । नभस्वतो वायोस्तन्मात्रत्वं च ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में स्पर्श का लक्षण बतलाया गया है । मृदुत्व आदि स्पर्श का तटस्थ लक्षण है और स्पर्शत्व उसका स्वरूप लक्षण है । वायु का सूक्ष्म रूप होना भी स्पर्श का लक्षण है ।।३६।।

चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

अन्वयः— चालनं, व्यूहनं, प्राप्तिः द्रव्यशब्दयोः नेतृत्वम् सर्वेन्द्रियाणाम् आत्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ।।३७।।

अनुवाद— वृक्ष की शाखा आदि को हिलाना, तृण आदि को एकत्रित करना, सर्वत्र पहुँचना, द्रव्य तथा शब्द को इन्द्रियों तक पहुँचाना, सभी इन्द्रियों को कार्यशक्ति प्रदान करना ये वायु की वृत्तियों के लक्षण हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

चालनं वृक्षशाखादेः । व्यूहनं मेलनं तृणादेः । प्राप्ति संयोगो द्रव्यस्य गन्धवतो घ्राणं प्रति । तथा शैत्यादिमतः स्पर्शनं प्रति । शब्दस्य श्रोत्रं प्रति नेतृत्वम् । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वमुपोद्बलकत्वम् । कर्मणा कार्येणाभिलक्षणम् । भावे ल्युट् । कर्मैवाभिलक्षणमिति विग्रहे तु करणे ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

वृक्ष की शाख आदि को हिलाना, तृण आदि को एकत्रित करना, गन्ध से युक्त द्रव्य को घ्राणेन्द्रिय के पास पहुँचाना ये कार्य वायु के ज्ञापक हैं । यहाँ अभिलक्षण में भाव में ल्युट् प्रत्यय है । करण में विग्रह (अभिलक्ष्यते अनेन) करने पर अर्थ होता है कि कर्म ही वायु के लक्षण हैं ।।३७।।

वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् । समुत्थितं तत स्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ।।३८।।

अन्वयः— दैवेरितात् स्पर्शतन्मात्रात् वायोः च रूपम् अभूत ततः तेजः रूपोपलम्भनम् चक्षुः समुत्थितम् ।।३८।।

अनुवाद— दैव के द्वारा प्रेरित स्पर्श तन्मात्र विशिष्ट वायु के विकृत होने पर उससे रूप तन्मात्रा की उत्पत्ति हुयी उस रूप तनमात्रा से तेज तथा रूप की उपलब्धि कराने वाली चक्षुरिन्द्रिय उत्पन्न हुयी ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च । तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ।।३९।।

अन्वयः— साध्वि द्रव्याकृतित्वं, गुणता, व्यक्तिसंस्थात्वम् एव च तेजसः तेजस्त्वं रूपमात्रस्य वृत्तयः ।।३९।।

अनुवाद— हे साध्वि ! द्रव्याकाराकारित होना, गौणता, द्रव्य के अङ्ग रूप से प्रतीत होना, द्रव्य का जैसा आकार प्रकार और परिणाम हो उसी तरह का प्रतीत होना, तेज का स्वरूपभूत होना ये सभी रूपतन्मात्रा की वृत्तियाँ हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

द्रव्याकृतित्त्वं द्रव्यस्याकारसमर्पकत्वम् । गुणता द्रव्योपसर्जनतया प्रतीतिः । शब्दस्य तु स्वातन्त्र्येणैव प्रतीतिः । अप्रत्यक्षद्रव्यस्य स्पर्शादेरपि स्वातन्त्र्येणैव प्रतीतिः रूपस्य तु नैवमिति तस्यायं विशेष उक्तः । व्यक्तिसंस्थात्वं व्यक्तेर्द्रव्यस्य या संस्था सन्निवेशः सैव संस्था यस्य तत्परिणामतया प्रतीतिरित्यर्थः । तेजसस्तेजस्त्वमसाधारणत्वम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

द्रव्य के आकार का समपर्क होना, द्रव्य की अपेक्षा गौणरूप से प्रतीत होना । शब्द की स्वतंत्र रूप से प्रतीति होती है । अप्रत्यक्ष द्रव्यस्पर्श आदि की भी स्वतंत्र रूप से प्रतीति होती है । किन्तु रूप की प्रतीति स्वतंत्र रूप से न होकर गौण रूप से ही होती है । यह उसकी विशेषता है । वस्तु का जैसा आकार-प्रकार परिणाम आदि होता है उसी रूप से प्रतीत होना और तेज का असाधारण धर्म होना यही रूप का लक्षण है ।।३९।।

द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् । तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ।।४०।।

अन्वयः— द्योतनं, पंचन, पानम्, अदनं, हिममर्दनम्, शोषणं, क्षुत् तृडेव च एताः तेजसः वृत्तयः ।।४०।।

अनुवाद— चमकना, पकाना, पीना, खाना, ठंढी को विनष्ट करना, सुखाना, भूख तथा प्यास को लगाना, ये सभी तेज की वृत्तियाँ हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

द्योतनं प्रकाशनं, पचनं तण्डुलादेः । क्षुत्तृडशना पिपासा च तद्द्वारेण पानमदनं च ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

प्रकाशित करना, चावल इत्यादि को पकाना तथा भूख तथा प्यास के द्वारा भोजन करवाना और खिलवाना पिलवाना ये सब तेज के कार्य हैं ॥४०॥

रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् । रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वा रसग्रहः ॥४१॥

अन्वयः— दैवचोदितात् रूपमात्रात्, विकुर्वाणात् तैजसः रसमात्रमभूत् तस्मात् अम्भः जिह्वा, रसग्रहः ॥४१॥

अनुवाद— फिर दैव की प्रेरणा से रूप तन्मात्रामय तेज के विकृत होने पर उससे रस तन्मात्र उत्पन्न हुआ और उससे जल और रस का ज्ञान करने वाली रसनेन्द्रिय की उत्पत्ति हुयी ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

जिह्वा रसनेन्द्रियम् । रसो गृह्यतेऽनयेति रसग्रहः । यद्वा रसग्रहस्ततो भवतीति शेषः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

जिह्वा को ही रसनेन्द्रिय कहते हैं, जिसके द्वारा रस का ग्रहण होता है, उसको रसग्रह कहते हैं, अथवा उसके द्वारा रस का ग्रहण होता हैं । जिह्वा के ही द्वारा रस का ज्ञान होता है ॥४१॥

काषयो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा । भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥४२॥

अन्वयः— कषायः मधुरः तिक्तः, कटु, अम्लः लवणः च । भौतिकानां विकारेण एको रसो विभिद्यते ॥४२॥

अनुवाद— रस अपने शुद्ध रूप से एक ही है किन्तु भौतिक पदार्थों के संसर्ग से वह छह रूपों में विभक्त किया गया है । कषाय, मधुर, तिक्त, कटु, अम्ल और लवण के रूप में ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

कषायादिषु लवणोऽपि द्रष्टव्यः । भौतिकानां संसर्गिद्रव्याणामं य एको मधुर एव सन्नेवमनेकधा भिद्यते स रस इत्यर्थः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर गिनाये गये रसों में लवण को छठा रस मानना चाहिए भौतिक संसर्गिक द्रव्यों के संयोग प्रकार जो केवल मधुर ही है ऐसा होने पर भी अनेक भेदों में विभक्त हो जाता है । उसी को रस कहते हैं ॥४२॥

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणानाप्यायनोन्दनम् । तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥४३॥

अन्वयः— क्लेदनं, पिण्डनं, तृप्तिः, प्राणान् आप्यायनोन्दनाम् तापापनोदः, भूयस्त्वम् अम्भसः वृत्तयःत्विमाः ॥४३॥

अनुवाद— भिंगाना, मिट्टी आदि का पिण्ड बनाना, तृप्त करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थों को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति करना और कूप आदि से निकाल दिए जाने पर वहाँ बार-बार प्रकट होना ये जल की वृत्तियाँ हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

क्लेदनमार्द्रीकरणम् । पिण्डनं मृदादेः पिण्डीकरणम् । तृप्तिस्तृप्तिदातृत्वम् । प्राणनं जीवनम् **आपोमयः प्राणः** इति स्मृतेः आप्यायनं तृड्वैक्लव्यनिवर्तनम्, उन्दनं मृदूकरणम् । ओन्दनमिति पाठेऽपि स एवार्थः । भूयस्त्वं कूपादावुद्धृतस्यापि पुनः पुनरुद्भवः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

भिंगाने की क्रिया को क्लेदन कहते हैं । मिट्टी इत्यादि का पिण्ड बनाना, तृप्त कर देना, प्राणन अर्थात् जीवन प्रदान करना, स्मृति भी कहती है **आपोमयः प्राण इति** प्राण जलमय हैं । आप्यायन अर्थात् प्यास जन्य

व्याकुलता को नष्ट करना, उन्दनम् मुलायम बना देना। ओन्दन पाठ होने पर भी अर्थ वही होगा। कूप इत्यादि से निकाल लेने पर वह वहाँ बार-बार प्रकट हो जाता है ॥४३॥

रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् । गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥४४॥

अन्वयः— दैवचोदितात् रसमात्रात् विकुर्वाणात् अम्पसः गन्धमात्रम् अभूत् तस्मात् पृथिवी घ्राणस्तु गन्धगः ॥४४॥

अनुवाद— दैव की प्रेरणा से रस स्वरूप जल के विकृत होने पर उससे गन्धतन्मात्र उत्पन्न हुआ और उससे पृथ्वी तथा गन्ध को ग्रहण कराने वाली घ्राणेन्द्रिय प्रकट हुयी ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

गन्धगो गन्धं प्राप्नोति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

गन्धगः पद का अर्थ गन्ध का ज्ञान कराने वाली हैं ॥४४॥

करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्राम्लादिभिः पृथक् । द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एको विभिद्यते ॥४५॥

अन्वयः— एको गन्धः द्रव्यावयवैषम्यात् करम्भ-पूति-सौम्य-शान्त-उग्र-अम्लादिभिः पृथक् विभिद्यते ॥४५॥

अनुवाद— गन्ध एक है, फिर भी वह मिले हुए द्रव्यों के भागों की न्यूनाधिकता के कारण मिश्रित गन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, मृदु, तीव्र और अम्ल (खट्टा) आदि अनेक प्रकार का हो जाता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

करम्भो मिश्रगन्धः, यथ व्यञ्जनादीनां हिङ्ग्वादिसंस्कारेण, पूतिर्दुर्गन्धः, सौरभ्यं कर्पूरादेः, शान्तः शतपत्रादेः, उग्रो लशुनादेः, अम्लस्तिन्तिण्यादेः । संसर्गिणां द्रव्यावयवानां वैषम्याद्य एवं विभिद्यते स गन्ध इत्यर्थः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

करम्भ अर्थात् मिश्रितगन्ध वाला जैसे हिंगु आदि की छौंक के संस्कार से युक्त व्यञ्जन आदि की गन्ध, पूति अर्थात् दुर्गन्ध, सौरभ्य अर्थात् सुगन्ध जैसे कर्पूर आदि की सुगन्ध, शान्त जैसे कमल आदि की सुगन्ध, उग्र जैसे लशून आदि की गन्ध, अम्ल अर्थात्, खट्टा जैसे इमली आदि की गन्ध, सम्बन्धी द्रव्यों के भागों के नैयून्याधिक्य के कारण एक ही गन्ध अनेक प्रकार का हो जाता है ॥४५॥

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् । सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥४६॥

अन्वयः— ब्रह्मणः भावनम् स्थानं, धारणं, सद्विशेषणम् सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवी वृत्ति लक्षणम् ॥४६॥

अनुवाद— प्रतिभा आदि के रूप में बह्माजी के भवन को साकार रूप देना, जल आदि कारण तत्त्वों से भिन्न किसी दूसरे आश्रय की अपेक्षा किए बिना ही स्थित रहना जल आदि अन्य पदार्थों को धारण करना, आकाश का घटाकाश माठाकाश आदि के रूप में अवच्छेद के (विभाजक) होना तथा पारिणाम विशेष के द्वारा सभी प्राणियों के (स्त्रीत्व पुरुषत्व) आदि गुणों को प्रकट करना ये पृथिवी के कार्य रूप लक्षण हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मणो भावनं प्रतिमादिरूपेण साकारतापादनम् । स्थानं जलादिविलक्षणतयाश्रयान्तरनैरपेक्ष्येण स्थितिः । धारणं जलाद्याधारत्वम् । सतामाकाशादीनां विशेषणमवच्छेदकत्वम् । सर्वेषां सत्त्वानां प्राणिनां तद्गुणानां च पुंस्त्वादीनामुद्भेदः परिणामविशेषः प्रकटीकरणम् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिमा आदि के रूप में ब्रह्म की भावना को सकार बनाना, जल आदि कारण तत्त्वों से विलक्षण रूप से किसी दूसरे आश्रय की अपेक्षा किए बिना स्थित रहना, धारण अर्थात् जल आदि का आधार बनना । विद्यमान् आकाश आदि का घटाकाश, मठाकाश इत्यादि रूप से अवच्छेदक होना, सभी प्राणियों के उनके गुणों के स्त्रीत्व, एवं पुंस्त्व आदि भेदों को प्रकट करना, ये सभी पृथिवी के कार्य रूप लक्षण हैं ॥४६॥

नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते । वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

अन्वयः— नभोगुण विशेषः अर्थः यस्य तच्छ्रोत्रम् उच्यते, वायोः गुणविशेषः अर्थो यस्य तत् स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

अनुवाद— आकाश का विशेष गुण शब्द जिसका विषय है उसे श्रोत्र कहते है और वायु का विशेगुण स्पर्श जिसका विषय है उसे त्वगिन्द्रिय कहते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

श्रोत्रादीनां शब्दादिग्राहकत्वमुक्तं तेषां च लक्षणं तदेवेत्याह पञ्चभिः श्लोकार्धैः । नभसो गुणविशेषः शब्दो यस्यार्थो विषयः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि श्रोत्र इत्यादि शब्दादि के ग्राहक हैं । अब श्रोत्र आदि का लक्षण साढ़े पाँच श्लोकों में बतलाते हैं । आकाश का विशेष गुण शब्द जिसका विषय है उसे श्रोत्र कहते हैं ॥४७॥

तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते । अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

अन्वयः— तेजोगुणविशेषः अर्थः यस्य तत् चक्षुरुच्यते अम्भो गुणविशेष अर्थो यस्य तत् रसनं विदुः । भूमेर्गुण विशेषो अर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

अनुवाद— तेज का विशेष गुण जिसका विषय है । उसको चाक्षुरिन्द्रिय कहते है, जल का विशेष गुण रस जिसका विषय उसको रसनेन्द्रिय कहते हैं और भूमि का विशेष गुण गन्ध जिसका विषय हो उसको घ्राणेन्द्रिय कहते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥४८॥

परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् । अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥४९॥

अन्वयः— परस्य धर्मः अपरस्मिन् समन्वयात् दृश्यते अतो भावानां विशेषः भूमौ एवोपलक्ष्यते ॥४९॥

अनुवाद— वायु आदि कार्य तत्त्वों में आकाशादि कारणतत्त्वों के विद्यमान रहने के कारण उनके गुण भी अनुगत देखे जाते हैं इसीलिए समस्त महाभूतों के गुण शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध पृथिवी में ही पाये जाते हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

गुणविशेषशब्दव्यावर्त्यं दर्शयति-परस्येति । परस्य कारणस्य धर्मः शब्दादिरपरस्मिन्कार्ये वाय्वादौ कारणान्वयात् दृश्यते। अतो भावानामाकाशादीनां विशेषो गुणः सर्वोऽपि शब्दादिर्भूमावेवोपलभ्यते । चतुर्णां तत्रान्वयात् । जलादिषु यथान्वयमेव न सर्वः । आकाशे त्वन्यान्वयाभावादेक एव ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में गुण विशेषों के व्यावर्त्यों को बतलाते हैं । कारणभूत आकाशादि के शब्द आदि धर्म वायु

आदि में कार्यों में इसलिए पाये जाते हैं कि कार्य में कारण की अनुगत प्रतति होती है । अत: आकाश आदि सभी भाव पदार्थों के सभी विशेष गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध पृथिवी में ही पाये जाते है । क्योंकि भूमि में आकाश, वायु, तेज और जल चारों का सम्बन्ध रहता है । जल आदि में सभी गुण नहीं पाये जाते हैं। जिसमें जितने कारण द्रव्यों का सम्बन्ध रहता है उतने ही गुण उसमें पाये जाते हैं । जल में आकाश, वायु एवं तेज का सम्बन्ध रहता है । अतएव जल में शब्द स्पर्श, रूप एवं रस ही पाये जाते हैं । आकाश में किसी भी कारण द्रव्य का सम्बन्ध नहीं होता है अतएव उसमें केवल शब्द ही पाया जाता है ॥४९॥

एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै । कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥५०॥

अन्वय:— एतानि यदा महदादीनि वै असंहत्य तदा कालकर्म गुणोपेत: जगदादि: उपाविशत् ॥५०॥

अनुवाद— जब ये पाँच महाभूत, महत् तत्त्व और अहङ्कार आपस में नहीं मिल सके तो काल, अदृष्ट और सत्त्वादि गुणों के साथ आदिकारण भगवान् नारायण उनमें प्रवेश कर गये ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

एवं कारणोत्पत्तिमुक्त्वा कार्योत्पत्तिमाह सार्धैस्त्रिभि: । एतान्यसंहत्यामिलित्वा यदा स्थितानि तदा जगदादिरीश्वर: प्राविशत्। सप्तेति च प्राधान्याभिप्रायेणोक्तम् । प्रवेशस्तु सर्वेष्वपि विवक्षित एव ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कारणों की उत्पत्ति को बतलाकर कार्यों की उत्पत्ति को साढे तीन श्लोकों में बतलाते हैं । जब पञ्च महाभूत, महत् तत्त्व और अहङ्कार ये सातो आपस में नहीं मिल सके तो परमात्मा उन सबों के भीतर प्रवेश कर गये । सात कहकर उन सातों की प्रधानता बतलायी गयी है । किन्तु प्रवेश तो सबों में विवक्षित है ॥५०॥

ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् । उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥५१॥

अन्वय:— तत: तेनाऽनुविद्धेभ्य: युक्तेभ्य: अचेतनम् अण्डम् उत्थितम् यस्मादसो असौ विराट् पुरुष: उदतिष्ठत्॥५१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् परमात्मा के प्रवेश से क्षुब्ध हुए और आपस में मिले हुए उन सबों से एक अचेतन अण्ड प्रकट हुआ और उससे विराट् पुरुष निकला प्रकट हुआ ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

अनुविद्धेभ्य: क्षुभितेभ्य: । यस्मादण्डादसौ विराट् पुरुष उदतिष्ठत् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

अनुविद्ध अर्थात् क्षुब्ध । अर्थात् परमात्मा से क्षुब्ध होने के कारण आपस में मिले हुए उन सबों से ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ और उससे विराट् पुरुष प्रकट हुआ ॥५१॥

एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरै: । तोयादिभि: परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहि: ॥
यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरे: ॥५२॥

अन्वय:— एतद् विशेषाख्यं अण्डं यत्र भगवत: हरे: रूपं अयं लोक वितान: दशोत्तरै: क्रमवृद्धै: तोयदिभि: परिवृतं बहि: प्रधानेन आवृतै: ॥५२॥

अनुवाद— यह विशेष नामक ब्रह्मण्ड हैं । इसी में श्रीहरि के स्वरूपभूत चौदहो भुवनों का विस्तार है । यह चारो ओर से एक दूसरे से दस गुने विस्तार वाले, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार और महत्तत्त्व इन छह आवरणों से घिरा हुआ है । इन सबों के बाहर प्रकृति का आवरण है ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

भगवतो रूपमिति पुरुषाभेदाभिप्रायेण ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

परम पुरुष परमात्मा से अभेद को बतलाने के लिए **भगवतो रूपम्** कहा गया है ।।५२।।

हिरण्मयादण्डकोशदुत्थाय सलिलेशयात् । तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ।।५३।।

अन्वयः— सलिलेशयात् हिरण्मयात् अण्डकोशात् उत्थाय महादेवः तम् आविश्य खम् बहुधा निर्विभेद ।।५३।।

अनुवाद— कारणमय जल में स्थित, उस तेजोमय अण्ड से निकलकर उस विराट् पुरुष ने उसमें पुनः प्रवेश किया और उसमें कई प्रकार के छिद्र किया ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्नध्यात्मादिविभागमाह-हिरण्मयादिति नवभिः । उत्थायौदासीन्यं विहाय तमाविश्याधिष्ठाय । महांश्चासौ देवश्च । खं छिद्रम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यमयात् इत्यादि नव श्लोकों द्वारा उस ब्रह्माण्ड में अध्यात्म आदि विभागों को बतलाया गया है । उस ब्रह्माण्ड से निकलकर और अपनी उदासीनता को त्यागकर विराट् पुरुष ने उसको पुनः अधिष्ठित किया । विराट् पुरुष को ही महादेव शब्द से अभिहित किया गया है । **खम्** शब्द छिद्र का वाचक हैं ।।५३।।

निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् । वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोतो घ्राण एतयोः ।।५४।।

अन्वयः— अस्य प्रथमं मुखं निरभिद्यत ततो वाणी अभवत् वाण्याः वह्निः अथो नासे एतयोः प्राणोतो घ्राणः ।।५४।।

अनुवाद— सर्वप्रथम उसमें मुख प्रकट हुआ, उसके वाक् इन्द्रिय प्रकट हुयी, उसके पश्चात् वाणी का अधिष्ठाता अग्नि वाणी के साथ मुख में प्रवेश कर गया ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

वाण्या सह वह्निरभवत्प्राविशत् । नासे निरभिद्येताम् । प्राणोतः प्राणेन ऊतः स्यूतः सन् घ्राण एतयोर्नासिकयो-रभवदित्यनुषङ्गः ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

वाणी के साथ अग्नि मुख में प्रवेश कर गया उसके पश्चात् उसके नाकों के दोनों छिद्र प्रकट हुए और नासिका में प्राण के साथ घ्राणेन्द्रिय प्रवेश कर गयी ।।५४।।

घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः । तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ।।५५।।

अन्वयः— घ्राणात् वायुः ततः अक्षिणी निरभिद्येताम् । एतयोः चक्षुः तस्मात् सूर्यः ततः कर्णौ निरभिद्येताम् ततः श्रोत्रं ततो दिशः ।।५५।।

अनुवाद— घ्राण के पश्चात् उसका अधिष्ठाता वायु प्रकट हुआ फिर दोनों नेत्र गोलक प्रकट हुए । फिर चक्षुरिन्द्रिय प्रकट हुयी और उसके पश्चात् चक्षुरिन्द्रिय के अधिष्ठाता सूर्य प्रकट हुए । फिर कानों के दोनों छिद्र प्रकट हुए उनसे उनकी इन्द्रिय श्रोत्र तथा उसके अधिष्ठात्री दिशाएँ प्रकट हुयीं ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

घ्राणादनन्तरं वायुश्च प्राणोत इति विशेषणं सर्वेन्द्रियेष्वपि द्रष्टव्यम् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

प्राण के पश्चात् वायु उत्पन्न हुआ । प्राणोत अर्थात् प्राणानुस्यूत यह विशेषण सभी इन्द्रियों के साथ लगाना चाहिए । जहाँ **न्यभिद्येताम्** अथवा अन्वभिद्येताम् यह पाठ है वहाँ भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होगा ॥५५॥

निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः । तत ओषधयश्चासन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

अन्वयः— विराजः त्वग् निर्बिभेद, ततः रोमश्मश्रूवादयः ततः ओषधयः च आसन् ततः शिश्नं निर्बिभिदे ॥५६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् विराट् पुरुष की त्वचा उत्पन्न हुयी, उससे रोम, मूंछ, दाढी तथा शिर के बाल प्रकट हुए और उनके पश्चात् त्वचा की अभिमानी ओषधियाँ (अन्न) प्रकट हुयीं तदनन्तर लिङ्ग प्रकट हुआ ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

आदिशब्देन केशाः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

आदिशब्द से केशों को लेना चाहिए ॥५६॥

रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् । गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥५७॥

अन्वयः— ततः रेतः तस्मात् आपः आसन् ततः वै गुदम् निरभिद्यत, गुदात् अपानः अपानाच्च लोकभयङ्करः मृत्युः ॥५७॥

अनुवाद— लिङ्ग से वीर्य और वीर्य से लिङ्ग का अभिमानी जल उत्पन्न हुआ । फिर गुदा प्रकट हुयी उससे अपान वायु और अपान वायु से लोकों को भयभीत करने वाली मृत्यु देवता प्रकट हुई ॥५७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥५७॥

हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् । पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥५८॥

अन्वयः— हस्तौ च निरभिद्येताम् ताभ्यां बलम्, ततः स्वराट् पादौ च निरभिद्येताम् ताभ्यां गतिः ततो हरिः ॥५८॥

अनुवाद— उसके बाद उस विराट् पुरुष के दोनों हाथ निकले, उन दोनों से बल पैदा हुआ उसके पश्चात् हाथों के अभिमानी देवता इन्द्र प्रकट हुए । उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों पैर निकले उन दोनों से गति प्रकट हुई और उसके पश्चात् पादेन्द्रिय के अभिमानी देवता श्रीहरि प्रकट हुए ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

स्वराडिन्द्रः । हरिर्विष्णुः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

स्वराट् शब्द इन्द्र का वाचक है और हरि शब्द विष्णु का वाचक है ॥५८॥

नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् । नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥५९॥

अन्वयः— अस्य नाड्यः निर्भिद्यन्त ताभ्यः अमृतम् लोहितम् ततः नद्यः समभवन् उदरं निरभिद्यत ॥५९॥

अनुवाद— विराट् पुरुष की जब नाड़ियाँ उत्पन्न हुयीं तो उनमें रक्त भर गया, उससे नदियाँ हुयीं । उसके पश्चात् विराट पुरुष का उदर प्रकट हुआ ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

आभृतं जातम् ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

आभृतम् पद का अर्थ है उत्पन्न हो गया ॥५९॥

क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् । अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥६०॥

अन्वयः— क्षुत्पिपासे ततः स्याताम् तयोस्तु समुद्रःअभूत् अस्य हृदयं भिन्नं हृदयात् मन उत्थितम् ॥६०॥

अनुवाद— उसके पश्चात विराट् पुरुष को भूख और प्यास की अनुभूति हुयी तो उन दोनों से उदर के अभिमानी देवता समुद्र प्रकट हुआ । उसके पश्चात् उसका हृदय प्रकट हुआ और हृदय से मन की अभिव्यक्ति हुयी ॥६०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६०॥

मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः । अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोऽभवत् ॥६१॥

अन्वयः— मनसः चन्द्रमा जातः बुद्धिः बुद्धेः गिरांपतिः ततः अहङ्कारः ततो रुद्रः ततः चित्तं ततः चैत्यः अभवत् ॥६१॥

अनुवाद— मन से उसके अभिमानी देवता चन्द्रमा प्रकट हुए हृदय से बुद्धि और बुद्धि के अधिष्ठाता ब्रह्माजी हुए । उसके पश्चात् अहङ्कार प्रकट हुआ ओर उसके अभिमानी देवता रुद्र उत्पन्न हुए । उसके पश्चात् चित्त और चित्त के अभिमानी देवता क्षेत्रज्ञ प्रकट हुए ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

बुद्ध्यादिषु हृदयमेवाधिष्ठानम् । गिरां पतिर्ब्रह्मा चैत्यः क्षेत्रज्ञः ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि आदि का अधिष्ठान हृदय ही है । गिराम्पतिः अर्थात् ब्रह्मा, चैत्य अर्थात् क्षेत्रज्ञ ॥६१॥

एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् । पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥६२॥

अन्वयः— एते हि अभ्युत्थिता देवा अस्य उत्थापने नैव अशकन् पुनः तम् उत्थापयितुः खानि पुनः क्रमशः आविविशुः ॥६२॥

अनुवाद— क्षेत्रज्ञ से भिन्न देवता उत्पन्न हुए ये सारे जब विराट् को उठाने में समर्थ नहीं हुए तो इन्द्रियाँ उसको उठाने के लिए अपने-अपने उत्पत्ति स्थानों में प्रविष्ट होने लगीं ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां क्षेत्रज्ञं विवेक्तुं सर्वेषां पुनः प्रवेशमाह एत इति नवभिः ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

अन्वयव्यतिरेक के द्वारा क्षेत्रज्ञ को पृथक् करने के लिए **एते॰ इत्यादि** नव श्लोकों से फिर प्रवेश कहा गया है ॥६२॥

वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् । घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६३॥

अन्वयः— वह्निः वाचामुखं भेजे तदा विराट् न उदतिष्ठत् वायुः घ्राणेन नासे प्राविशत् तदा विराट्न उदतिष्ठत् ॥६३॥

अनुवाद— अग्नि वाणी के साथ मुख में प्रवेश कर गये फिर भी विराट् नहीं उठा, वायु ने घ्राणेन्द्रिय के साथ नाक की छिद्रों में प्रवेश किया किन्तु विराट् नहीं उठा ॥६३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६३॥

अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् । श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६४॥

अन्वयः— आदित्यः चक्षुषा अक्षिणी तदा विराट् न उदतिष्ठत् दिशः च श्रोत्रेण कर्णौ तदा विराट् न उदतिष्ठत् ॥६४॥

अनुवाद— सूर्य चक्षुरिन्द्रिय के साथ नेत्र में प्रवेश किए फिर भी विराट् नहीं उठा, दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय के साथ कानों में प्रवेश की फिर भी विराट् नहीं उठा ॥६४।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६४॥

त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् । रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६५॥

अन्वयः— ओषध्यः रोमभिः त्वचं तदा विराट् न उदतिष्ठत आपः रेतसा शिश्नं तदाविराट् न उदतिष्ठत् ॥६५॥

अनुवाद— ओषधियाँ रोमों के साथ त्वचा में प्रवेश कर गयीं फिर भी विराट् नहीं उठा जल रेतस के साथ लिङ्ग में प्रवेश कर गया किन्तु विराट् नहीं जगा ॥६५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥६५॥

गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् । हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६६॥

अन्वयः— मृत्युः अपानेन गुदं प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् इन्द्रो बलेनैव हस्तौ प्राविशत् तदा विराट् न उदष्ठित॥६६॥

अनुवाद— मृत्यु अपान के साथ गुदा में प्रवेश कर गया फिर भी विराट् नहीं उठा इन्द्र बल के साथ हाथों में प्रवेश कर गये फिर भी विराट् नहीं उठा ॥६६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥६६॥

विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदष्ठित्तदा विराट् । नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥

अन्वयः— विष्णुः गत्यैव चरणौ प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् नद्यः लोहितेन चरणौ प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् ॥६७॥

अनुवाद— विष्णु ने गति के साथ चरणों में प्रवेश किया किन्तु विराट् नहीं उठा और नदियाँ रक्त के साथ नाडियों में प्रवेश की किन्तु विराट् नहीं जगा ॥६७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥६७॥

क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् । हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६८॥

अन्वयः— सिन्धुःक्षुत्तृड्भ्यां उदरं प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् चन्द्रः मनसा हृदयं प्राविशत् तथा विराट् न उदष्ठित् ॥६८॥

अनुवाद— समुद्र भूख तथा प्यास के साथ उदर में प्रवेश कर गया फिर भी विराट नहीं जगा, चन्द्रमा मन के साथ हृदय में प्रवेश कर गया किन्तु विराट् नहीं जगा ॥६८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥६८॥

बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् । रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६९॥

अन्वयः— ब्रह्मा बुद्ध्या हृदयं प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् रुद्रः अभिमत्या हृदयं प्राविशत् तदा विराट् न उदतिष्ठत् ॥६९॥

अनुवाद— ब्रह्मा बुद्धि के साथ हृदय में प्रवेश कर गये किन्तु विराट् नहीं जगा, रुद्र अभिमति के साथ हृदय में प्रवेश कर गये फिर भी विराट् नहीं जगा ॥६९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥६९॥

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा । विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥७०॥

अन्वयः— चैत्यः यदा चितेन हृदयं प्राविशत् तदैव विराट् पुरुषः सलिलात् उदतिष्ठत् ॥७०॥

अनुवाद— जब क्षेत्रज्ञ चित्त के साथ हृदय में प्रवेश किया उस समय विराट् जल से उठ गया ॥७०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥७०॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः । प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥७१॥

अन्वयः— यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रिय मनोधियः येन विना ओजसा उत्थापयितुं न प्रभवन्ति ॥७१॥

अनुवाद— जैसे सोए हुए पुरुष को प्राण, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ परमात्मा की सहायता के बिना उठाने में समर्थ नहीं होते हैं, उसी तरह वे भी विराट् पुरुष को क्षेत्रज्ञ परमात्मा के बिना नहीं उठा सके ॥७१॥

भावार्थ दीपिका

विराड्देहस्य व्यष्टिदेहं दृष्टान्तत्वेन दर्शयन्सांख्यानुकथनस्य प्रयोजनमाह-यथेति द्वाभ्याम् ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

विराट् देह को व्यष्टि देह को दृष्टान्त रूप से बतलाकर सांख्यदर्शन के वर्णन का प्रयोजन **यथा० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा दिखाया गया है ॥७१॥

तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया । भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥७२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

अन्वयः— तम् प्रत्यगात्मानं अस्मिन् आत्मनि भक्तया विरक्त्या योगप्रवृत्तया धिया ज्ञानेन विविच्य चिन्तयेत् ॥७२॥

अनुवाद— उस आत्म स्वरूप प्रत्यगात्मा (क्षेत्रज्ञ) को इस शरीर में स्थित जानकर भक्ति, वैराग्य तथा चित्त की एकाग्रता से प्रकट ज्ञान के द्वारा चिन्तन करना चाहिए ॥७२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के कपिलेयोपाख्यान के प्रकरण में तत्त्ववर्णन के प्रसङ्ग में छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं परमेश्वरे भक्तिस्ततोऽन्यत्र विरक्तिस्ततो योगप्रवृत्ता धीः एकाग्रं चित्तं ततो यज्ज्ञानं तेन प्रत्यगात्मानं क्षेत्रज्ञमस्मिन्नात्मनि कार्यकारणसङ्घाते विविच्य चिन्तयेत् ॥७२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥७२॥

भाव प्रकाशिका

पहले परमेश्वर की भक्ति करे और परमात्मा से भिन्न वस्तुओं से विरक्त हो जाय उसके पश्चात् चित्त की एकाग्रता रूपी योग के द्वारा उत्पन्न जो ज्ञान उसके द्वारा परमात्मा स्वरूप क्षेत्रज्ञ का इस कार्यकारण समूह रूप शरीर में पृथक् करके चिन्तन करना चाहिए ॥७२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२६॥

सत्ताइसवाँ अध्याय

प्रकृति पुरुष विवेक से मुक्ति प्राप्ति का वर्णन

श्रीभगवानुवाच

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः । अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥

अन्वयः— प्रकृतिस्थः अपि पुरुषः अविकारात् कर्तृत्वात्, निर्गुणत्वात् च जलार्कवत् प्राकृतैः गुणैः न आज्यते ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रकृति के कार्य शरीर के भीतर रहने वाला भी आत्मा स्वभावतः निर्विकार होने, अकर्ता होने और निर्गुण होने के कारण प्रकृति के गुणों से उसी तरह लिप्त नहीं होता है जिस तरह जल के भीतर प्रतिबिम्बित होने वाला सूर्य जल के शैत्य एवं चाञ्चल्य आदि गुणों से सम्पृक्त नहीं होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तविंशे ततः सम्यग्बहुसाधनयोगतः । पुंप्रकृत्योर्विवेकेन मोक्षरीतिर्निरूप्यते ॥१॥ विवेकज्ञानेन मोक्षमुपपादयितुं शुद्धस्यैव पुरुषस्य प्रकृत्यविवेकतः पूर्वोक्तं संसारमनुस्मारयति-प्रकृतिस्थोऽपीति त्रिभिः । देहस्थोऽपि नाज्यते न लिप्यते । गुणैस्तत्कृतैः सुखदुःखादिभिः । निर्गुणत्वादकर्तृत्वं ततोऽविकारित्वं तस्मात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सताइसवें अध्याय में अनेक साधनों से संबद्ध योगों के द्वारा प्रकृति पुरुषविवेक से मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है ॥१॥ विवेकज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का प्रतिपादन करने के लिए शुद्ध पुरुष का प्रकृति से भेद ज्ञान नहीं होने के कारण संसार की प्राप्ति होती है, इस पूर्वोक्त अर्थ का **प्रकृतिस्थोऽपि० इत्यादि** तीन श्लोकों से स्मरण दिलाते हैं । **प्रकृतिस्थोऽपि०** प्राकृतिक शरीर के भीतर रहने वाला भी जीव प्राकृतिक गुणों और उनसे होने वाले सुख दुःखों से सम्पृक्त नहीं होता है क्योंकि वह निर्गुण होने के कारण कर्ता नहीं है और उसी के कारण वह विकार रहित है ॥१॥

ए एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते । अहंक्रियाविमूढात्मा कर्ताऽस्मीत्यभिमन्यते ॥२॥

अन्वयः— स एष यर्हि प्रकृतेः गुणेषु अभिविषज्जते तदा अहंक्रिया विमूढात्मा अहं कर्ता अस्मि इति अभिमन्यते ॥२॥

अनुवाद— किन्तु वही आत्मा जब प्राकृतिक गुणों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तब अहङ्कार से मोहित होकर अपने को कर्ता मान लेता है ॥२।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२॥

तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः । प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥३॥

अन्वयः— तेन अनिर्वृतः अवशः प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु संसारपदवीभ्येति ॥३॥

अनुवाद—उस अभिमान के कारण देह के संसर्ग से किए हुए पुण्य पाप रूप दोष के कारण वह अपनी स्वाधीनता को खो देता है और उत्तम, मध्यम और अधम योनियों में जन्म लेकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अनिर्वृतः सन् । प्रासङ्गिकैः प्रकृतिसङ्गकृतैः । सदसन्मिश्रयोनिषु देवतिर्यङ्नरादिषु संसारपदवीं प्राप्नोति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन कर्मों में लगे रहने के कारण प्राकृतिक सम्बन्ध जन्य कर्मों के कारण वह उत्तम, मध्यम और नीच योनियों में जन्म लेकर संसारचक्र में पड़ा रहता है ॥३॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥

अन्वयः— अर्थे हि अविद्यमाने अपि अस्य विषयान् ध्यायतः स्वप्ने अनर्थागमः यथा संसृतिः न निवर्तते ।।४।।

अनुवाद— संसार के विषय मिथ्या हैं किन्तु उनमें अहंत्व, ममत्व आदि का अभिमान हो जाने के कारण विषयों के नही रहने पर भी उन विषयो का ध्यान करने मात्र से भी उसी तरह से संसार की निवृत्ति नहीं होती है जिस तरह स्वप्न के विषयों के न रहने पर भी स्वाप्न पदार्थों में आस्था हो जाने के कारण शोक दुखादि अनर्थों का अनुभव करना पड़ता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यवास्तवत्वात्संसृतेः किं तन्निवृत्तिप्रयासेन तत्राह- अर्थे हीति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि संसार तो मिथ्या होने के कारण अवास्तव है, फिर उसकी निवृत्ति के लिए प्रयास करना तो व्यर्थ ही है । इसी का उत्तर **अर्थे हि० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । अर्थात् विषयों के असत्य होने पर भी उनके चिन्तन करने से संसारचक्र की उसी तरह से निवृत्ति नहीं होती है जिस तरह स्वप्न कालिक विषयों के न रहने पर भी स्वाप्नकालिक विषयों में आस्था होने पर अनर्थों की प्राप्ति होती ही हैं ।।४।।

अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि । भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥५॥

अन्वयः— अतएव असतां पथि प्रसक्तं चित्तं तीव्रेण भक्तियोगेन, विरक्त्या च वशं नयेत् ।।५।।

अनुवाद— अतएव बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह तीव्र भक्तियोग तथा वैराग्य के द्वारा विषयों में आसक्त मन को धीरे-धीरे अपने वश में करे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यतो विषयध्यानमनर्थहेतुः, अतो मनो नियन्तव्यमित्याह–अत ऐवति । असतामिन्द्रियाणां पथि विषयमार्गे तीव्रेण दृढेन। विरक्त्या च तीव्रया ।।५।।

भाव प्रकाशिका

चूंकि विषयों का चिन्तन करना ही अनर्थो का कारण है, अतएव मन को ही अपने वश में करना चाहिए । इसी अर्थ का प्रतिपादन अतएव इत्यादि श्लोक से किया गया है । असत् विषयों में असक्त मन को सुदृढ भक्तियोग तथा सुदृढ वैराग्य के द्वारा अपने वश में करना चाहिए ।।५।।

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसन् श्रद्धयान्वितः । मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥६॥
सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः । ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥७॥
यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ्मुनिः । विविक्तशरणः शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान्॥८॥
सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् । ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥९॥
निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः । उपलभ्यात्मनात्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥१०॥
मुक्तलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते । ततो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥११॥

अन्वयः— यमादिभिः योगपथे श्रद्धयान्वितः अभ्यसन्, मयि सत्येन भावेन मत्कथाश्रवणेन, सर्वभूत समत्वेन, निर्वैरेण अप्रसङ्गतः, ब्रह्मचर्येण, मौनेन, बलीयसा स्वधर्मेण, यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टः, मितभुक् मुनिः, विविक्तशरणः शान्तः, मैत्रः, करुण अत्मवान्, सानुबन्धे च अस्मिन् देह असद् आग्रहः अकुर्वन्, प्रकृतेः पुरुषस्य च दृष्टतत्त्वेन ज्ञानेन, निवृत्त

बुद्धयवस्थानः दूरीभूतान्यदर्शनः आत्मदृक् चक्षुषा अर्कम् इव आत्मना आत्मानम् उपलभ्य, मुक्तलिङ्ग असति सदाभासं प्रतिपद्यते, सतः बन्धुम् असतः चक्षुः सर्वानुस्यूतम्, अद्वयम् ।।६-११।।

अनुवाद— यमादि योग साधनों द्वारा श्रद्धापूर्वक बार-बार चित्त को एकाग्र करते हुए मुझमें सच्चा भाव रखने, मेरी कथा सुनने, सभी प्राणियों में एक समान भाव रखने, किसी से भी वैर न करने, आसक्ति का परित्याग, ब्रह्मचर्य, मौनव्रत, और श्रीभगवान् को समर्पित किए हुए स्वधर्म से, जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी हो कि प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी मिल जाता है उसी से संतुष्ट रहता है, शान्त स्वभाव वाला, सबके साथ मित्रता का भाव रखने वाला, दयालु तथा धैर्य सम्पन्न, प्रकृति तथा पुरुष के वास्तविक स्वरूप के अनुभव से प्राप्त तत्त्वज्ञान के कारण पुत्र मित्र कलत्रादि सहित इस देह में जो अहंत्व एवं ममत्व का मिथ्या अभिनिवेश नहीं करता है, जो बुद्धि की जाग्रदादि अवस्थाओं से ऊपर उठ चुका है, जो परमात्मव्यतिरिक्त किसी भी दूसरी वस्तु को नहीं देखता है, वह आत्मदर्शी पुरुष आँखों से सूर्य को देखने के समान, अपने शुद्ध अन्तःकरण के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करके उस अद्वितीय पद को प्राप्त कर लेता है जो देहादि सम्पूर्ण उपाधियों से पृथक् अहङ्कार आदि मिथ्या वस्तुओं में सत्य रूप से प्रतीत होने वाला जगत् के कारण भूत प्रकृति का अधिष्ठान और महदादि कार्य वर्ग का प्रकाशक है तथा कार्य कारण रूप सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त हैं ।।६-११।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिविरक्त्योस्तीव्रत्वे कारणानि वर्णयन् ज्ञानेन मोक्षप्रकारमाह षड्भिः । यमादिभिर्योगमार्गैश्चित्तमभ्यस्यन् पुनः पुनरेकाग्रीकुर्वन्नात्मानमुपलभ्य सर्वानुस्यूतमद्वयं परमात्मानं प्रतिपद्यत इति षष्ठेनान्वयः । सत्येन निष्कपटेन । भावेन प्रेम्णा । अप्रसङ्गतः सङ्गत्यागेन । बलीयसा ईश्वरेऽर्पितेन । विविक्तशरण एकान्तवासी । असदाग्रहम् अहंममताम् । प्रकृतेः पुरुषस्य च दृष्टं तत्त्वं येन तेन ज्ञानेन । निवृत्तानि बुद्धयवस्थानानि जाग्रदादीनि यस्य सः । अतएव दूरीभूतमन्यदर्शनं यस्य । आत्मनाऽहंकारावच्छिन्नेनात्मानं शुद्धमुपलभ्य एकस्यैवावच्छेदानवच्छेदाभ्यां करणकर्मत्वे दृष्टान्तमाह । चक्षुषा चक्षुरवच्छिन्नेनार्केण गगनस्थमर्कमिव । एवमात्मदृक् शुद्धमात्मानं पश्यन् । मुक्तलिङ्गं निरुपाधिकमसति मिथ्याभूतेऽहङ्कारे सदाभासं सद्रूपेणाभासमानं ब्रह्म प्राप्नोति । शुद्धजीवस्वरूपाद्विशेषमाह । सतः कारणस्य प्रधानस्य बन्धुमधिष्ठानम् । असतः कार्यस्य चक्षुरिव प्रकाशकम्। सर्वेषु कार्यकारणेष्वनुस्यूतम् । अद्वयं परिपूर्णम् ।।६-११।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति तथा विरक्ति से सुदृढ बनने वाले कारणों का वर्णन करते हुए ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने वाले मोक्ष के प्रकार को छह श्लोकों में बतलाते हैं । यम आदि योगो के द्वारा बार-बार चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करते हुए योगी आत्मा को प्राप्त करके सबों में अनुस्यूत रहने वाले परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । यह आगे के ग्यारहवें श्लोक से अन्वय है । **सत्येन भावेन** का अर्थ है निष्कपट प्रेम के द्वारा । **असङ्गतः** पद का अर्थ है आसक्ति त्याग के द्वारा, **बलियसा एव धर्मेण** का अर्थ है ईश्वर को समर्पित कर्मानुष्ठान के द्वारा । **विविक्तशरणः** का अर्थ है अहंत्व ममत्वाभिमान रहित होना । नवें श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ है प्रकृति एवं पुरुष के तत्त्व का जिस ज्ञान के द्वारा ज्ञान हो गया है, उस ज्ञान के द्वारा । दसवें श्लोक का अर्थ है कि जिसकी बुद्धि की जाग्रत् इत्यादि अवस्थाएँ निवृत्त हो गयी हैं अतएव वह परमात्मा से भिन्न किसी दूसरे को नहीं देखता है । वह मुनि नेत्रों से देखे जाने वाले सूर्य के समान अपने शुद्ध अन्तःकरण के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है । वह सम्पूर्ण देहादि लिङ्गों से पृथक् अहङ्कार आदि मिथ्यावस्तुओं में सत्य रूप से प्रतीत होने वाले, जगत् के कारण भूत प्रकृति के अधिष्ठान एवं महदादि कार्यों का प्रकाशक तथा कार्य कारण रूप सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त अद्वितीय ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है ।।६-११।।

यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते । स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥

अन्वयः— यथा जलस्थः आभासः स्थलस्थेन अवदृश्यते तथा जलस्थेन स्वाभासेन दिवि स्थितः सूर्यः (अवदृश्यते) ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह जल में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब दिवाल पर पड़े हुए अपने आभास के सम्बन्ध में देखा जाता है, उसी तरह जल में दिखने वाले प्रतिबिम्ब से आकाशस्थित सूर्य का ज्ञान होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारोपहितेन शुद्धब्रह्मप्रतिपत्तिं सदृष्टान्तमाह-यथेति । जले स्थित आभासः सूर्यप्रतिबिम्बो यदा गृहान्तर्वर्तिभित्तौ स्फुरति तदा गृहकोणस्थितैः पुरुषैर्भित्त्यादौ स्थले स्थितेन स्वाभासेन सूर्यप्रतिबिम्बेन यथा प्रथमं जलस्थ आभासोऽवदृश्यते लक्ष्यते, गगनस्थस्यस्य गृहमध्ये प्रतिबिम्बायोगात् । चार्थे तथाशब्दः । यथा चेत्यर्थः । यथा च जलस्थेन दिवि स्थितः सूर्यो लक्ष्यते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अहङ्कारोपहित चैतन्य द्वारा पोढ शुद्धब्रह्म के ज्ञान का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **यथा० इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । जल में स्थित जब सूर्य का प्रतिबिम्ब गृह के भीतर की दिवाल पर प्रकाशित होता है उस समय गृह के एक भाग में रहने वाले लोगों द्वारा दिवाल आदि स्थल पर प्रकाशित सूर्य प्रतिबिम्ब के द्वारा जैसे पहले जलस्थित प्रतिबिम्ब के द्वारा देखा जाता है क्योंकि आकाश स्थित सूर्य तो घर में प्रतिबिम्बित हो नहीं सकता है । श्लोक के तथा शब्द का अर्थ और है । अब अर्थ होगा कि जैसे जल में स्थित प्रतिबिम्ब के द्वारा आकाश स्थित सूर्य लक्षित होता है ॥१२॥

एवं त्रिवृदहंकारो भूतेन्द्रियमनोमयैः । स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥१३॥
भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया । लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥

अन्वयः— एवं भूतेन्द्रियमनोमयैः स्वाभासैः त्रिवृदंहंकारः लक्षितः सदाभासेन सत्यदृक् निद्रया लीनेषु भूतसूक्ष्मेन्द्रिय मनेबुद्ध्यहङ्कारेषु तथा तत्र असति विनिद्रः निरहंक्रियः ॥१३-१४॥

अनुवाद— इसी तरह वैकारिक आदि के भेद से तीन प्रकार का अहङ्कार देह, इन्द्रिय और मन में स्थित अपने प्रतिम्बिों से लक्षित होता है और सत् परमात्मा के प्रतिबिम्ब युक्त इस अहङ्कार के द्वारा सत्यज्ञान स्वरूप परमात्मा का दर्शन है जो परमात्मा सुषुप्ति के समय निद्रा शब्दादिभूत सूक्ष्म इन्द्रिय और मन बुद्धि आदि के अव्याकृत में लीन हो जाने पर स्वयं जागता रहता है और वह सर्वथा अहङ्कार रहित होता है ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं भूतेन्द्रियमनोमयैः देहेन्द्रियमनोभिरवच्छिन्नैः स्वाभासैरात्मप्रतिबिम्बैस्त्रिवृत्त्रिगुणोऽहंकारः सतो ब्रह्मण आभासो यस्मिंस्तेन रूपेण लक्षितः । अहङ्कारस्याभासं विना विषयाभासानुत्पत्तेः । अनेन चाहङ्कारेण सदाभासवता सत्यदृक् परमार्थज्ञप्तिरूप आत्मा लक्षित इत्यर्थ । इदानीं सुषुप्तिसाक्षित्वेन शुद्धात्मप्रतिपत्तिमनुभवतो दर्शयति त्रिभिः । भूतादिष्वसत्यसत्तुल्येऽव्याकृते निद्रया लीनेषु सत्सु यस्तत्र तदा विनिद्रो निरहंक्रियस्तमात्मानं प्रतिपद्यत इति तृतीयेनान्वयः ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार से देह, इन्द्रिय और मन में स्थित प्रतिबिम्ब से युक्त उस वैकारिक तैजस तथा भूतादि के भेद से तीन प्रकार के अहङ्कार के द्वारा सत्य ज्ञान स्वरूप परमात्मा का दर्शन होता है अहंकारस्थ के आभास के बिना विषयों की प्रतीति का होना सम्भव नहीं है । इस अहङ्कार के द्वारा सदाभास से युक्त सत्यदृक् परमार्थ ज्ञप्ति रूप

आत्मा लक्षित होता है । इस समय सुषुप्ति के साक्षी रूप से शुद्धात्मा की प्रतीति अनुभव से होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन तीन श्लोकों के द्वारा किया गया है । भूतों में असत् के समान प्रकृति मे लीन हो जाने पर उस समय जो जगता है, तथा अहङ्कार रहित होता है, उस आत्मा को प्राप्त करता है ॥१३-१४॥

मन्यमानस्तदात्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा । नष्टेऽहङ्करणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥१५॥

अन्वयः— तदा अहङ्कारणे नष्टे अनष्ट आत्मानम् नष्टवत् मृषा मन्यमानः द्रष्टा नष्टवित्त इव आतुरः ॥१५॥

अनुवाद— सुषुप्ति काल में अपनी उपाधिभूत अहङ्कार का नाश हो जाने के कारण भ्रमवशात् वह अपने को नष्ट के समान मानकर उसी तरह व्याकुल हो जाता है; जिस तरह जिसका सारा धन नष्ट हो गया हो वह मनुष्य व्याकुल हो जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदि तदा विनिद्रोऽसावस्ति तर्हि जाग्रत्स्वप्नयोरिव स्फुटः किं नावभासते तत्राह । पूर्वं स द्रष्टाऽतो द्रष्टृत्वेन सविकल्पतया स्फुटं प्रतीतः । सुषुप्तौ तु भूतादेरहङ्कारविषयस्य लीनत्वात्तद्विषयेऽहङ्कारे नष्टे सति स्वयमनष्टोऽपि मृषैवात्मानं नष्टवन्मन्यमानो यः । अन्यस्य नाशेऽन्यस्य नष्टतुल्यत्वे दृष्टान्तः-नष्टवित्तो यथा आतुरो विवशः, नष्टवद्भवतीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि वह निद्रा शून्य रहता है तो फिर जाग्रदावस्था तथा स्वप्नावस्था में जिस तरह उसकी स्पष्ट प्रतीति होती है, उसी तरह सुषुप्ति काल में प्रतीति क्यों नहीं होती है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं- पहले तो वह द्रष्टा रहता है अतएव द्रष्टा रूप से उसकी सविकल्प रूप से स्पष्ट प्रतीति होती है किन्तु सुषुप्ति काल में उसकी उपाधिभूत अहङ्कार के लीन हो जाने के कारण यद्यपि आत्मविषयक अहङ्कार का ही नाश होता है वह नष्ट नहीं होता है फिर भी मिथ्या ही वह अपने को नष्ट के समान मान लेता है । दूसरी वस्तु के नष्ट होने से दूसरे के नष्ट हो जाने की सदृशता के विषय में दृष्टान्त बतलाते हुए भगवान् कपिल ने कहा जिस तरह धन के नष्ट हो जाने पर मनुष्य अपने को ही नष्ट हुए के समान मान लेता है और व्याकुल हो जाता है ॥१५॥

एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते । साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥१६॥

अन्वयः— एवं प्रत्यमृश्य असौ आत्मानं प्रतिपद्यते यः साहङ्कारस्य द्रव्यस्य अवस्थानम् अनुग्रहः ॥१६॥

अनुवाद— इन सारी बातों का मनन करके विवेकी पुरुष अपनी आत्मा का अनुभव कर लेता है जो आत्मा अहङ्कार के साथ ही सम्पूर्ण तत्त्वों का अधिष्ठान और प्रकाश है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु सुषुप्तौ न किंचिदनुभूयते, मैवम्, '**सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषम्**' इति विशेषज्ञानं बिना केवलस्यात्मनः प्रतिसंधानादित्याह-एवमिति । ननु प्रतिसंधाने साहंकारस्य प्रतीतेः कथं निरहंक्रियत्वं तत्राह । साहंकारस्य द्रव्यस्य कार्यकारणसंघातस्यानुग्रहः प्रकाशकः अवस्थानं च । द्रव्यविशेषणतयाऽहङ्कारस्यापि दृश्यत्वाच्च तद्द्रष्टात्मातद्व्यतिरिक्तः। तमात्मानमित्यन्वयः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि सुषुप्तिकाल में कुछ अनुभव होता है कि नहीं ? तो इसका उत्तर है कि नहीं । इसमें इतने समय तक मैं सुख पूर्वक सोया मुझे किसी प्रकार का अनुभव नहीं हुआ, इस प्रकार का जागरावस्था में होने वाला प्रत्यवमर्श ही प्रमाण है । वह परामर्श करता है कि मैं कुछ भी नहीं जाना । इससे स्पष्ट होता है कि सुषुप्ति में कोई भी विशेष ज्ञान नहीं होता है केवल आत्मा का ही प्रतिसन्धान होता है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **एवम्**

इत्यादि श्लोक से किया गया है। प्रश्न होता है कि आत्मानुसन्धान में भी आत्मा के अहङ्कारयुक्तत्व की प्रतीति होती है, अतएव उसको अहङ्कारशून्य कैसे कहा गया है ? तो इसका उत्तर है कि वह कार्यकारण समूह का प्रकाशक और अधिष्ठान है। द्रव्य विशेष होने के कारण अहङ्कार भी दृश्य और उसका द्रष्टा आत्मा उससे भिन्न हैं। इस प्रकार के आत्मा का वह अनुभव कर लेता है ॥१६॥

देवहूतिरुवाच

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुञ्चति कर्हिचित् । अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! प्रकृतिः पुरुषं कदाचित् न विमुञ्चति अनयोः नित्यत्वात् अन्योन्याश्रयत्वाच्च ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् प्रकृति कभी भी पुरुष को नहीं छोड़ सकती है, क्योंकि वे दोनों नित्य हैं और वे एक दूसरे को अपना आश्रय बनाकर कहते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिविरिक्तिभ्यां सत्यपि विवेके प्रकृतिपुरुषयोः परस्परत्यागाभावात्कथं मुक्तिरिति पृच्छति-पुरुषमिति चतुर्भिः । पुरुषव्यतिरेकेण प्रकृतेः स्वरूपलाभाभावात्प्रकृतिव्यतिरेकेण पुरुषस्याभिव्यक्त्यभावादित्यन्योन्याश्रयत्वान्नित्यत्वाच्च पुरुषं प्रकृतिः कदाचिन्न मुञ्चतीत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति एवं विरक्ति के द्वारा प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का भेदपूर्वक ज्ञान हो जाने पर भी जब प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरे को त्याग नहीं सकते हैं ऐसी स्थिति में मुक्ति का होना कैसे सम्भव है ? इस बात को माता देवहूति चार श्लोकों से पूछती हैं। चूकि पुरुष के बिना प्रकृति अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकती है और प्रकृति के बिना पुरुष की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है। इस तरह से दोनों के एक दूसरे पर आधारित होने के कारण तथा दोनों के नित्य होने के कारण भी प्रकृति पुरुष को कभी त्याग नहीं सकती है अतएव इस मत में तो कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती हैं ॥१७॥

यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः । अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धे परस्य च ॥१८॥

अन्वयः— यथा गन्धस्य भूमेश्च अपां रसस्य च व्यतिरेकः न भावः एवं बुद्धेः परस्य ॥१८॥

अनुवाद— जिस तरह गन्ध और पृथिवी एवं रस एवं जल इन सबों की एक दूसरे से अलग-अलग रहकर सत्ता नहीं रह सकती है उसी तरह प्रकृति और पुरुष भी एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

व्यतिरेकाभावमात्रे दृष्टान्तः-यथा व्यतिरेकतो भावः सत्ता नास्ति। गन्धस्य कदाचिदपक्षयदर्शनाद्दृष्टान्तान्तरम्- अपामिति। बुद्धेः प्रकृतेः। परस्य पुरुषस्य च ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में देवहूति ने व्यतिरेकाभाव मात्र में दृष्टान्त उपन्यस्त किया है। जैसे पृथिवी और गन्ध के साथ-साथ रहने पर ही उनकी सत्ता बना रही है, तथा जल एवं रस दोनों की भी सदा साथ ही साथ रहने पर उनकी सत्ता बनी रहती हैं, ये यदि एक दूसरे से पृथक् हो जायँ तो उनकी सत्ता नहीं रह जायेगी। उसी तरह प्रकृति और पुरुष दोनो की सत्ता दोनों के साथ-साथ रहने के ही कारण है ॥१८॥

अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः । गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥१९॥

अन्वयः— यदाश्रयः अकर्तुः पुरुषस्य कर्मबन्धः तेषु गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यम् कथम् ॥१९॥

अनुवाद— जिसके आश्रय से अकर्ता पुरुष को कर्मों का बन्धन प्राप्त होता है, उस प्रकृति के गुणों के रहते हुए उसे कैवल्य पद की प्राप्ति कैसे होती हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह–अकर्तुरिति । ये गुणा आश्रयो यस्य सः । तेषु प्रकृतेर्गुणेषु सत्सु पुरुषस्य कैवल्यं कथम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उससे क्या होता है ? तो इस पर देवहूति कहती हैं जिन गुणों के कारण अकर्ता पुरुष कर्मों के बन्धन में पड़ जाता है, उन गुणों के रहते हुए पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति कैसे होती है ?॥१९॥

क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् । अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

अन्वयः— क्वचित् तत्त्वावमर्शेन उल्बणं भयं निवृत्तम् अपि अनिवृत्तनिमित्तत्वात् पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

अनुवाद— कभी तत्त्वों का विचार करने के कारण संसार का बन्धन रूपी भयङ्कर भय दूर भी हो जाये तो भी उसके कारणभूत प्रकृति के गुणों का अभाव नहीं होने के कारण वह भय पुनः उपस्थित हो सकता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अतएव क्वचिन्निवृत्तप्रायस्यापि संसारभयस्य पुनरुद्भवो दृश्यत इत्याह–क्वचिदिति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अतएव कभी तत्त्वविचार आदि कारणों के द्वारा संसार का भय निवृत्तप्राय हो जाने पर भी संसार का भय इसलिए बना रहेगा कि संसारबन्ध का कारण प्रकृति है, वह जब तक बनी रहेगी तब तक तो संसार के बन्धन का भय तो बना ही रहेगा ॥२०॥

श्रीभगवानुवाच

अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना । तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥२१॥
ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा । तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥२२॥
प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् । तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥२३॥

अन्वयः— अग्नेः योनिः अरणिः इव अनिमित्त निमित्तेन अमलात्मना स्वधर्मेण, चिरम् श्रुतसम्भृतया मयि तीव्रया भक्त्या च, दृष्टतत्त्वेन ज्ञानेन, बलीयसा वैराग्येण, तपोयुक्तेन योगेन, तीव्रेण आत्मसमाधिना इह अहर्निशम् दह्यमाना पुरुषस्य प्रकृतिः शनकैः तिरोभवित्री ॥२१-२३॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— जिस तरह से अग्नि को उत्पन्न करने वाली अरणि अपने से ही उत्पन्न अग्नि के द्वारा जलकर भस्म हो जाती है, उसी तरह पुरुष की अविद्या रूपी प्रकृति भी, निष्कामभाव से किए गये अपने वर्णाश्रम धर्मों के पालन के द्वारा अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने के कारण, बहुत दिनों तक श्रीभगवान् की कथा का श्रवण करने के कारण परिपुष्ट हुयी भक्ति के द्वारा, तत्त्वों का साक्षात्कार कराने वाले ज्ञान के द्वारा, प्रबल वैराग्य के द्वारा, व्रत तथा नियमादि रूपी तपस्या के साथ किए गये ध्यानाभ्यास से चित्त की एकाग्रता के द्वारा पुरुष की प्रकृति क्षीण होती हुयी धीरे-धीरे लीन हो जाती है ॥२१-२३॥

भावार्थ दीपिका

न हि प्रकृतिसंबन्धमात्रं बन्धहेतुः किंतु गुणबुद्ध्या तदासक्तिस्तन्निवृत्तौ सत्यांमोक्षो घटते । क्वचिदुद्भवस्तु साधनवैकल्यादित्यभिप्रेत्य साधनातिशयं कथयन्परिहरति त्रिभिः । निमित्तं फलम् । तत्र निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिंस्तेन निष्कामेन धर्मेण । अमलात्मना निर्मलेन मनसा । श्रुतेन कथाश्रवणेन संभृतया पुष्टया । दह्यमानाभिभूयमाना तिरोहिता भवति ।।२१-२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति का सम्बन्ध मात्र बन्धन का कारण नहीं है अपितु गुण की बुद्धि उसमें होने वाली आसक्ति ही उसका कारण है । उसकी निवृत्ति हो जाने पर मोक्ष होता है । कहीं पर तो उसका उद्भव साधन की कमी के कारण होता है, इस अभिप्राय से साधनातिशय का वर्णन करते हुए तीन श्लोकों से उसका परिहार करते हैं । निमित्त फल का बोधक है । फल की कामना रहित निष्काम धर्म के द्वारा निर्मल मन से कथा सुनने से पुष्ट हुयी भक्ति के द्वारा अभिभूत हुई प्रकृति तिरोहित हो जाती है ।।२१-२३।।

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः । नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ।।२४।।

अन्वयः— नित्यशः दृष्टदोषा भुक्तभोगा परित्यक्ता, स्वेमहिम्नि स्थितस्य ईश्वरस्य अशुभं न धत्ते ।।२४।।

अनुवाद— जिसका भोग करके परित्याग कर दिया गया है वह दोष युक्त प्रकृति अपनी महिमा में (स्वरूप में) स्थित तथा स्वतंत्र पुरुष का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

एवं च सति पुनरुद्भवो नास्तीत्याह । भुक्तो भोगो यस्याः । नित्यशः दृष्टो दोषो यस्याः । अतएव परित्यक्ता सतीश्वरस्यापरतन्त्रस्य स्वे महिम्नि स्थितस्य स्वानन्दं प्राप्तस्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति के लीन हो जाने के कारण उसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है । इस अर्थ का प्रतिपादन **भुक्तभोगा० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । जिसका दोष प्रतिदिन दिखायी देता है, तथा जिसका भोग करके त्यागकर दिया गया वह प्रकृति संसार के बन्धन से मुक्त हुए तथा जिसने आनन्द प्राप्त कर लिया है उस पुरुष का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती हैं ।।२४।।

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् । स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ।।२५।।

अन्वयः— यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापः बह्वनर्थभृत् स एव प्रतिबुद्धस्य मोहाय न कल्पते ।।२५।।

अनुवाद— जिस तरह सोए हुए पुरुष का स्वप्न में दिखने वाले विषयों से बहुत अधिक अनर्थ होता है, किन्तु जग जाने पर स्वाप काल में अनुभूत विषय कोई भी मोह नहीं उत्पन्न करते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

अविवेकावस्थायामनर्थहेतुरपि विवेकानन्तरं न भवतीति सदृष्टान्तमाह-यथेति । द्वाभ्याम् । प्रस्वापः स्वप्नः बह्वनर्थान्बिभर्ति पुष्णाति । प्रतिबुद्धस्य संस्कारवशेन स्फुरन्नपि ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यथा ह्यप्रति० इत्यादि दो श्लोकों द्वारा दृष्टान्तोपन्यास पुरस्सर यह बतलाया जा रहा है कि अविवेकावस्था में जो अनर्थ का कारण होता है वह विवेकप्राप्ति के पश्चात् किसी भी प्रकार का अनर्थ नहीं कर पाता है । जिस तरह सोये हुए पुरुष को स्वप्न बहुत अधिक अनर्थों को बढाता है किन्तु जब वही पुरुष जग जाता है उस समय स्वप्न के संस्कार के बने रहने पर भी स्वप्न में अनुभव किए गये विषय कोई भी अनर्थ नहीं कर पाते हैं ।।२५।।

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् । युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

अन्वयः— एवम् विदिततत्त्वस्य, मयि मानसम् युञ्जतः आत्मारामस्य कर्हिचित् न अपकुरुते ॥२६॥

अनुवाद— इसीतरह जिसको तत्त्वों का ज्ञान हो गया है, तथा जो निरन्तर मुझमें ही अपने मन को लगाये रहता है, उस आत्माराम पुरुष का प्रकृति कुछ भी नहीं विगाड़ पाती हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२६॥

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना । सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥२७॥

अन्वयः— यदा एवं बहुजन्मना कालेन अध्यात्मरतः मुनिः आब्रह्मभुवनान् सर्वत्र जात वैराग्यः ॥२७॥

अनुवाद— इस तरह से जब मनुष्य अनेक जन्मों तक आत्म चिन्तन में सदा लगा रहता है, तो उस मनन शील पुरुष को ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों के भोगों से वैराग्य हो जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-यदैवमिति त्रिभिः । बहूनि जन्मानि यस्मिन्काले ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदैवम्० इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा भगवान् कपिल अपने कथन का उपसंहार करते हुए कहते हैं । जितने समय में अनेक जन्म हो जाते हैं उतने समय तक जो मनुष्य सदा आत्माचिन्तन में ही लगा रहता है, तो उससे ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों के भोगों से उसको वैराग्य हो जाता हैं ॥२७॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा । निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥२८॥
प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः। यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गद्विनिर्गमे॥२९॥

अन्वयः— धीरः मदभक्त मत् भूयसा प्रसादेन प्रतिमबुद्धार्थः स्वदृशा छिन्नसंशयः लिङ्गाद्विनिर्गमें मदाश्रयम् कौवल्याख्यम् स्वसंस्थानम् निःश्रेयसम् अञ्जसा प्राप्नोति यद्गत्वादेव निवर्तेत ॥२८-२९॥

अनुवाद— धैर्य सम्पन्न मेरा भक्त मेरी महती कृपा से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके आत्मानुभव के द्वारा सभी संशयो से रहित हो जाता है, और उसके पश्चात् लिङ्गशरीर का नाश होने पर केवल मेरे ही आश्रय में रहने वाले अपने स्वरूपभूत कैवल्य नामक पद को आसानी से प्राप्त कर लेता है । जिस पद को प्राप्त करके वह पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥२८-२९॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिबुद्धार्थो विदितात्मतत्त्वः । कैवल्याख्यं स्वसंस्थानं देहादिव्यतिरिक्तं स्वरूपं मदाश्रयं निःश्रयेसं निरतिशयानन्दन्म्। स्वदृशा आत्मज्ञानेन छिन्नाः संशयाः मिथ्याज्ञानानि यस्य लिङ्गाद्विनिर्गमे लिङ्गशरीरनाशे सतीत्यर्थः ॥२८-२९॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिबुद्धार्थ पद का अर्थ है जिसको आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो गया है । **कैवल्याख्यं स्वसंस्थानम्** का अर्थ है देहादि से भिन्न अपने स्वरूप को । **मदाश्रयं निःश्रेयसम्** अर्थात् मेरे ही अधीन रहने वाले निस्सीमानन्द स्वरूप मुक्ति । **स्वदृशाछिन्नसंशयः** पद का अर्थ है आत्मज्ञान के द्वारा जिसके समस्त मिथ्याज्ञन दूर हो गये हों वह भगवद्भक्त **लिङ्गाद्विनिर्गमे** पद का अर्थ है लिङ्ग शरीर का नाश हो जाने पर ॥२८-२९॥

यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ।
अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! सिद्धस्य योगोपचितासु मायासु चेतः न विषज्जते अथ अनन्यहेतुषु मे अत्यन्तिकी गतिः स्यात् यत्र मृत्युहासः न ॥३०॥

अनुवाद— हे माँ जब योगी का चित्त केवल समृद्ध योग के द्वारा ही प्राप्त होने वाली अणिमा आदि सिद्धियों में आसक्त नहीं होता है तब तो उसको मेरी उस आत्यन्तिकी गति की प्राप्ति होती है जहाँ पर मृत्यु कुछ भी नहीं कर पाती है ॥३०॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

तदा त्वणिमादिसिद्धयोऽन्तरायरूपा भवन्ति । तासु योगेनोपचितासु समृद्धासु न योगादन्यो हेतुर्यासां तासु यदा सिद्धस्य चेतो न विषज्जते । अङ्ग हे मातः, अथ तदान्तमतिक्रान्तोऽत्यन्तो योऽहं तत्संबन्धिनी । यत्र यस्यां गतौ मृत्योर्हासो न भवति। विषक्तौ तु सिद्धोऽपि मया वशीकृत इति मृत्योर्हासो गर्वो भवतीत्यर्थः ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय उस आत्मज्ञ पुरुष के कैवल्य की प्राप्ति में अणिमा आदि सिद्धियाँ विघ्नस्वरूप होती हैं । वे सिद्धियाँ योग के द्वारा ही समृद्ध होती है । योग से भिन्न कोई भी दूसरा साधन उनकी प्राप्ति का नहीं है । उन सिद्धियों में यदि योगसिद्धयोगी का चित्त नहीं आसक्त होता है तो फिर उसको मेरी आत्यन्तिक गति की प्राप्ति हो जाती हैं । उस गति को प्राप्त कर लेने पर वहाँ मृत्यु का कुछ भी नहीं चलता है । यदि योगी का मन उन सिद्धियों में ही आसक्त हो जाता है तो मेरे वश में रहने के कारण उसको मृत्यु का हास रूप गर्व होता ही है॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२७।।

अठाइसवाँ अध्याय

अष्टाङ्ग योग की विधि

श्रीभगवानुवाच

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे । मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥१॥

अन्वयः— हे नृपात्मजे सबीजस्य योगस्य लक्षण वक्ष्ये येनैव विधिना प्रसन्नं मनः सत्पथं याति ।।१।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे राजकुमारी माँ ! अब मैं तुम्हें सबीज (ध्येय स्वरूप के आलम्बन से युक्त) योग का लक्षण बतलाता हूँ जिसके द्वारा चित्त प्रसन्न होकर परमात्मा के मार्ग में प्रवृत्त होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशे ततोऽष्टाङ्गयोगेन ध्यानशोभिना । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वरूपज्ञानमीर्यते ॥१॥ भक्तिं संक्षेपतः प्रोच्य सांख्यमाख्याय विस्तृतम् । अथाह वैष्णवं योगमष्टाङ्गं कपिलो हरिः ॥२॥ सबीजस्य सालम्बनस्य प्रसन्नं सत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठाइसवें अध्याय में ध्यान से सुशोभित अष्टाङ्ग योग के द्वारा सभी प्रकार की उपाधियों से रहित स्वरूप ज्ञान का वर्णन किया गया है ॥१॥ संक्षेप में भक्ति का वर्णन करके तथा सांख्यशास्त्र का विस्तार से वर्णन करके उसके पश्चात् श्रीहरि भगवान् कपिल ने अष्टाङ्ग वैष्णव योग का वर्णन किया है ॥२॥ सबीज यानी सालम्बन **योग प्रसन्नं मनः** अर्थात् प्रसन्नमन परमात्मा के मार्ग में प्रवृत्त होता है ॥१॥

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् । दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥२॥
ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा । मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥३॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः । ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥४॥
मौनं सदासनजयस्थैर्यं प्राणाजयः शनैः। प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥५॥
स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् । वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥६॥
एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् । बुद्ध्या युञ्जीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥७॥

अन्वयः— शक्त्या स्वधर्माचरणम्, विधर्मात् च निवर्तनम्, दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मवित् चरणार्चनम्, ग्राम्य धर्मनिवृत्तिः च तथा मोक्षधर्मरतिः । मितमेध्यादनं शाश्वत् विविक्तक्षेमसेवनम्, अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, यावदर्थ परिग्रहः, ब्रह्मचर्यं, तपः शौचम्, स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् मौनं, सदा आसनजयः, स्थैर्यं प्राणजयः शनैः, इन्द्रियाणां प्रत्याहारश्च, विषयान् मनसा हृदि स्वधिष्ण्यानाम् एकदेशे मनसा प्राणधारणम्, वैकुण्ठलीलाभिध्यानम्, तथा आत्मनः समाधानम्, एतैः अन्यैः च पथिभिः, असत्पथम् दुष्टमनः अतंद्रितः शनकैः जितप्राणः बुद्ध्या युंजीत ॥२-७॥

अनुवाद— अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रविहित अपने वर्णाश्रमधर्म का पालन करना, शास्त्र प्रतिकूल आचरण का परित्याग करना, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना, आत्मज्ञ पुरुष के चरणों की पूजा करना, विषय की वासनाओं को बढाने वाले कर्मों का परित्याग करना, संसार के बन्धन से मुक्त करने वाले धर्मों से प्रेम करना, पवित्र तथा परिमित भोजन करना, सदैव एकान्त में तथा निर्भय स्थान में रहना, हिंसा का परित्याग करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, तपस्या करना, बाह्य तथा आभ्यन्तर पावित्र्य का पालन करना, शास्त्रों का अध्ययन करना, तथा श्रीभगवान् की पूजा करना । वाणी का संयम करना, योगोपयोगी पद्मासन आदि आसनों का अभ्यास करके स्थिरता पूर्वक बैठना, धीरे-धीरे श्वास को प्राणायाम के द्वारा जीतना, मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अपने हृदय में स्थापित करना । मूलाधार आदि किसी एक केन्द्र में मन के साथ-साथ प्राणों को स्थिर करना, निरन्तर भगवान् की लीलाओं का चिन्तन करते रहना तथा चित्त को समाहित करना । इन सभी साधनों से तथा इनके अतिरिक्त दूसरे दान आदि साधनों से भी सावधानी पूर्वक मन को जीतकर बुद्धि के द्वारा अपने कुमार्गगामी मन को धीरे-धीरे एकाग्र करके परमात्मा के ध्यान में लगाना चाहिए ॥२-७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र यमनियमानाह त्रिभिरक्षरद्वयाधिकैः । शक्त्या स्वधर्माचरणम् । ग्राम्यस्त्रैवर्गिको धर्मस्तस्मान्निवृत्तिः । मित्तं च तन्मेध्यं शुद्धं च तस्यादनम् । तत्र मितं नाम '**द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत् । मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्।**' इति स्मृतिप्रसिद्धम् । विविक्तं विजनं क्षेमं निर्बाधं तस्य स्थानस्य सेवनम् । यावतार्थः प्रयोजनं तावन्मात्रस्य परिग्रहः । आसनादीन्यङ्गान्याह त्रिभिः । सत्त आसनस्य जयेन स्थैर्यम् । स्वधिष्ण्यानां प्राणस्थानानां मूलाधारादीनां मध्ये एकस्मिन्देशे मनसा सह प्राणस्य धारणं धारणा । आत्मनो मनसः समाधानमात्माकारता । अन्यैश्च व्रतदानादिभिः । पथिभिरुपायैः ॥२-७॥

भाव प्रकाशिका

अष्टाङ्गयोग का वर्णन करते हुए भगवान् कपिल तीन श्लोक और पाँचवें श्लोक के दो अक्षरों से यमों और नियमों का वर्णन किए हैं । अपनी शक्ति के अनुसार अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करे । **ग्राम्यधर्मनिवर्तन** का अर्थ है धर्म अर्थ और काम से संबद्ध अर्थ । अर्थात् ऐसे धर्म जिन धर्मों का पालन करने से विषयों में आसक्ति बढ़े उन धर्मों का परित्याग करना चाहिए । योग साधन करने वाले को सीमित तथा पवित्र भोजन ही करना चाहिए। सीमित भोजन को बतलाते हुए कहा गया है कि पेट के चार भागों में से दो भागों को तो अन्न से भरना चाहिए, एक भाग को जल से भरना चाहिए अेर अवशिष्ट एक भाग को वायु के संचार के लिए खाली रखे । **विविक्तक्षेम सेवनम्** शब्द बतलाया गया है कि योगी को एकान्त तथा निर्भय स्थान में सदैव रहना चाहिए । **यावदर्थ परिग्रहः** का अर्थ है कि जितना आवश्यक है उससे अधिक वस्तुओं का संग्रह न करे । पाँचवें छठे और सातवे इन तीन श्लेकों से योग के आसन आदि अङ्गो का भगवान् कपिल ने वर्णन किया है । योगोपयोगी पद्मासन स्वस्तिक आदि आसन से स्थिरता पूर्वक बैठना ही सदासन कहलाता है । मूलाधार चक्र आदि जो प्राण के स्थान बतलाये गये है उनमें से किसी एक स्थान में मन के साथ प्राण को स्थापित करना चाहिए । इसी को धारणा कहते है । **आत्मसमाधानम्** का अर्थ है चित्त को समाहित करना । **अन्यैश्च० इत्यादि** का अभिप्राय है कि इन साधनों से भिन्न जो व्रत, तपस्या, दान आदि साधन है उन साधनों से असन्मार्गगामी दुष्ट मन को सावधानी पूर्वक धीरे-धीरे एकाग्र करे और परमात्मा के ध्यान में उसे लगाए ॥२-७॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् । तस्मिन्स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥

अन्वयः— विजितासनः शुचौ देशे आसनम् प्रतिष्ठाप्य तस्मिन् ऋजुकायः स्वस्तिः समासीनः समभ्यसेत् ॥८॥

अनुवाद— सर्वप्रथम जितासन होना चाहिए उसके पश्चात् पवित्र स्थान पर आसन को विछाकर उस पर अपना शरीर सीधा करके स्वस्तिकासन मे बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आसनादीनि प्रपञ्चयति-शुचाविति यावत्समाप्ति । आसनं कुशाजिनचैलोत्तरं प्रतिष्ठाप्य, स्वस्तिकासनेन यथासुखमिति वा । समभ्यसेत् प्राणमिति शेषः । **'ऊरू जङ्घान्तराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे । योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः ॥'** इति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आसन आदि का **शुचौ० इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त विस्तार से वर्णन किया जा रहा है । आसन को चैलाजिनकुशोत्तर बतलाया गया है । अर्थात सबसे नीचे वस्त्र विछाये उसके ऊपर मृगचर्म विछाये और उसके ऊपर कुशासन विछाये । इस प्रकार के असन को पवित्र स्थान पर विछाकर उस पर स्वस्तिकासन से अभ्यासी को बैठना चाहिए । प्राणायाम का अभ्यास करते समय शरीर को सीधा रखना चाहिए । सुख पूर्वक बैठना चाहिए । स्वस्तिकासन को परिभाषित करते हुए कहा गया है । कि **ऊरूजङ्घान्तराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे। योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः** ॥ अर्थात् ऊरू तथा जङ्घों के बीच में घुटनों के बीच में और दोनों पैर के अग्रभाग को लगाकर जो योगी बैठते है, उसे विद्वानों ने स्वस्तिकासन कहा है ॥८॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरककुम्भकरेचकैः । प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥९॥

अन्वयः— पूरक, कुम्भकरेचकैः प्रतिकूलेन वा प्राणस्य मार्गं शोधयेत् यथा चित्तम् स्थिरम् अचञ्चलम् ॥९॥

अनुवाद— प्रारम्भ में बायो नाक से पूरक, कुम्भक और रेचक करे या उसके पश्चात् दाहिनी नाक से पूरक कुम्भक और रेचक करे जिसमे कि चित्त स्थिर और स्थिर हो जाय ॥९॥

भावार्थ दीपिका

बाह्यवायोरन्तःप्रवेशनं पूरकः, प्रवेशितस्य धारणं कुम्भकः, धृतस्य वहिर्निःसारणं रेचकः प्रतिकूलेन वा रेचककुम्भकपूरकैः यद्वा इडयाऽऽपूर्य पिङ्गलया रेचनम्, पिङ्गलयाऽऽपूर्य इडया रेचनमित्येवं प्रतिकूलेन। वाशब्दश्चार्थे। स्थिरं सत्पुनरपि चञ्चलं यथा न भवति तथा शोधयेत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

बाहर की वायु को भीतर ले जाने को पूरक है, उस वायु को रोके रहना ही कुम्भक है और धारण की गयी वायु को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। योगी को इन पूरक, कुम्भक और रेचक करने का अभ्यास करना चाहिए। अथवा इसके विपरीत उसे रेचक, कुम्भक एवं पूरक का अभ्यास करना चाहिए। अथवा इडा नाड़ी के द्वारा वायु, को खीचकर उसको योगी पिङ्गला नाड़ी से बाहर निकाले और उसके प्रतिकूल पिङ्गला नाड़ी से वायु को खींचकर इडा नाडी के द्वारा उसको बाहर निकले। श्लोक का वा शब्द च के अर्थ में है। इन सभी प्राणायामों के द्वारा मन को ऐसा बना दे कि वह स्थिर हो जाय वह चञ्चल न रहे ॥९॥

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः। वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥

अन्वयः— वाय्वग्निभ्यां ध्मातं लोहं यथा वै मलं त्यजति जितश्वासस्य योगिनः मनः अचिरात् विरजं स्यात् ॥१०॥

अनुवाद— जिस तरह वायु तथा अग्नि से तपाया हुआ सोना अपना मल छोड़ देता है, उसी तरह जो योगी अपनी प्राणवायु को जीत लेता है उसका मन शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ध्मातं संतप्तमित्यर्थः लोहं सुवर्णं यथा मलं त्यजति तथ मनो विरजं स्यात्। ततश्चञ्चलं न स्यादिति भावः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ध्मातं पद का अर्थ है संतप्त अर्थात् तपाया हुआ। लोह शब्द सुवर्ण का वाचक है। जिस तरह तपाया हुआ सुवर्ण अपने दोष का परित्याग कर देता है, उसी तरह प्राणायाम के द्वारा मन रजोगुण से रहित हो जाता है। उसके फलस्वरूप वह चञ्चल नहीं होता है ॥१०॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषान्। प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥११॥

अन्वयः— प्राणायामैः दोषान् धारणाभिश्च किल्विषान् प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान् ॥११॥

अनुवाद— अतएव योगी को चाहिए कि वह प्राणायामों के द्वारा वात-पित्त आदि जन्य दोषों को, धारणा के द्वारा पापों को, प्रत्याहार से विषयों के सम्बन्ध को और ध्यान से भगवद् विमुख बनाने वाले राग द्वेष आदि दुर्गुणों को दूर करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्राणायामादीनां समाधौ द्वारकार्याण्याह-प्राणायामैरिति। दोषान् वातश्लेष्मादीन्। संसर्गान्विषयसंसर्गान्। अनीश्वरान् रागादीन्। वायुना सह मनसः स्थिरीकरणं धारणा, स्थिरस्य वृत्तिसंततिः ध्यानम्, वृत्तिनिरोधः समाधिरिति भेदः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

योगी को जिन श्रीहरि का ध्यान करना चाहिए उन श्रीहरि का वर्णन सात श्लोकों के द्वारा किया गया है जिन श्रीभगवान् का मुख कमल प्रसन्न है उन श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए। इस तरह इसका आगे के छठे अर्थात् अठारहवें श्लोक से सम्बन्ध है। **पद्मगर्भारुणेक्षणम्** पद का अर्थ है कि श्रीभगवान् के नेत्र की अरुणिमा उसी तरह की है जिस तरह लाल कमल दल के भीतरी भाग की अरुणिमा होती है। श्रीभगवान् का श्रीविग्रह नील कमल दल के समान श्याम वर्ण का है ॥११॥

लसत्पङ्कजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥१४॥

अन्वयः— लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम्, श्रीवत्सवक्षसं, भ्रजत् कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥१४॥

अनुवाद— सुन्दर कमल के पराग के समान जिनका पीला-पीला पीताम्बर सुशोभित हो रहा है । वे अपने वक्षः स्थल में श्रीवत्स चिह्न को धारण किए हुए हैं तथा मनोहर कौस्तुभ मणि को अपने गले में धारण किए हैं। इस प्रकार के भगवान् का ध्यान करना चाहिए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

लसत्पङ्कजस्य किञ्जल्कवत्पीते कौशेये वाससी यस्य । श्रीवत्सो लाञ्छनं वक्षसि यस्य । भ्राजत्कौस्तुभेनामुक्ता संश्लिष्टा कन्धरा यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

मनोज्ञ कमल के पराग के समान श्रीभगवान् का पीला-पीला पीताम्बर है, उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित है और श्रीभगवान् के गले में सुन्दर तथा देदीप्यमान कौस्तुभमणि लटक रही है, इस प्रकार के श्रीभगवान् का ध्यान योगी को करना चाहिए ॥१४॥

मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया । परार्घ्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥१५॥

अन्वयः— मतद्विरेफकलया वनमालाया, परीतं, परार्घ्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥१५॥

अनुवाद— मदमत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से युक्त वनमाला को धारण किए हुए, तथा अत्यन्त मूल्यवान हार, कङ्गन, किरीट, बाजूबन्द तथा नूपुर धारण किए हुए श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मत्तद्विरेफाणां कलो मधुरो ध्वनिर्यस्यां तया । परीतं व्याप्तम् । परार्घ्यान्यमूल्यानि हारादीनि यस्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

योगी को ध्यान करना चाहिए कि जिस पर मदमत्त भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं, इस प्रकार की पैरों तक लटकने वाली वनमाला को धारण किए हुए तथा अत्यन्त मूल्यवान हार कङ्गन, मुकुट, बाजूबन्द तथा नूपुर से अलंकृत है श्रीभगवान् ॥१५॥

काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् । दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥१६॥

अन्वयः— काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम्, दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥१६॥

अनुवाद— उनके कमर में करधनी सुशोभित हो रही है, भक्तजनों का हृदय कमल ही श्रीभगवान् का आसन है । देखने में अत्यन्त सुन्दर श्रीभगवान् का रूप शान्त है एवं मन तथा नेत्रों को वह आनन्द प्रदान करने वाला है॥१६॥

भावार्थ दीपिका

काञ्चीगुणेनोल्लसन्ती श्रोणी यस्य । भक्तानां हृदयाम्भोजमेव विष्टरमासनं यस्य । भक्तानां मनोनयनानि वर्धयति हर्षयतीति तथा ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

करधनी के द्वारा जिनकी कमर सुशोभित हो रही है, भक्तजनों का हृदयकमल ही श्रीभगवान् के बैठने का आसन है । देखने में अत्यन्त सुन्दर लगने वाला उनका रूप शान्त है तथा देखने वालों के मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाला है ॥१६॥

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् । सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥१७॥

अन्वयः— कैशोरे वायसि सन्तं भृत्यानुग्रहकातरम् शश्वत् अपीच्य दर्शनम् सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१७॥

अनुवाद— योगी को ध्यान करना चाहिए कि उनकी किशोरावस्था है, वे भृत्यों पर कृपा करने के लिए आतुर रहते हैं, वे देखने में अत्यन्त सुन्दर हैं एवं सारे लोकों के जीव श्रीभगवान् को सदा नमस्कार करते रहते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अपीच्यमतिसुन्दरं भक्तविषयं दर्शनं यस्य । कैशोरे तारुण्ये वयसि सन्तं स्थितम् । भृत्यानामनुग्रहे कातरं व्यग्रम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का अत्यन्त सुन्दर दर्शन भक्तों को होता है वे सदा युवावस्था में ही विद्यमान रहते हैं तथा वे अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए व्यग्र बने रहते हैं ॥१७॥

कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् । ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥१८॥

अन्वयः— कीर्तन्यतीर्थयशसं, पुण्यश्लोकयशस्करम्, यावत् मनः न च्यवते तावद् समग्राङ्गं देवं ध्यायेत् ॥१८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का यश परम पवित्र और कीर्तन करने योग्य है वे पवित्र यश वाले यशस्वियों के यश को बढाने वाले हैं; इस तरह के श्रीभगवान् के समग्रांग का ध्यान तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि मन उनसे हटे नहीं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

कीर्तन्यं कीर्तनार्हंतीर्थं यशो यस्य । पुण्यश्लोका बलिप्रमुखास्तेषां यशस्करम् । समग्राण्यङ्गानि यस्मिन् न च्यवते नापयाति न पर्येति वा ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का यश कीर्तन करने योग्य तथा परम पवित्र है । वे पवित्र यश वाले बलि आदि के यश को बढाने वाले हैं । जब तक मन उनसे न हटे तब तक श्रीभगवान् के सम्पूर्ण अङ्गों का ध्यान करते रहना चाहिए। या जब तक उनके चिन्तन को छोड़कर इधर-उधर मन नहीं जाता है तब तक उनका ध्यान करे ॥१८॥

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् । प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥१९॥

अन्वयः— स्थितं व्रजन्तम् आसीनम्, वागुहाशयं, प्रेक्षणीयेहितं शुद्धभावेन चेतसा ध्यायेत् ॥१९॥

अनुवाद— जब श्रीभगवान् में मन स्थित हो जाय तब जिनकी लीला देखने योग्य है ऐसे परमात्मा का शुद्ध मन से खड़े हुए चलते हुए, बैठे हुए, अथवा अपने हृदय रूपी गुफा में सोये हुए का ध्यान करे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षणीयमीहितं लील यस्य ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी लीला दर्शनीय होती है, ऐसे श्रीभगवान् का ध्यान करे ॥१९॥

तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् । विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥२०॥

अन्वयः— मुनिः तस्मिन् सर्वावयवसंस्थितम् । चित्तम् विलक्ष्य भगवतः एकत्र अङ्गे संयुज्यात् ॥२०॥

अनुवाद— मननशील योगी जब यह देख ले कि श्रीभगवान् के सम्पूर्ण श्रीविग्रह में मन की स्थिति हो गयी तब यह श्रीभगवान् के एक-एक अङ्ग में अपने चित्त को लगाये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं समग्रध्यानमुक्त्वैकैकावयवध्यानमाह । तस्मिन् लब्धं पदं स्थितिर्येन तच्चितं विलक्ष्य विशेषेण लक्षीकृत्य । एकत्रैकैकस्मिन्नङ्ग इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सम्पूर्ण अङ्गों के ध्यान का वर्णन करके अब एक-एक अङ्गों का ध्यान भगवान् कपिल बतलाते हैं । सम्पूर्ण अङ्ग वाले श्रीभगवान् में चित्त की सुदृढ स्थिति को देखकर योगी श्रीभगवान् के एक-एक अङ्ग का ध्यान करे ॥२०॥

संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥२१॥

अन्वयः— वज्राङ्कुशध्वजसरोरुह लाञ्छनाढ्यम् उत्तुङ्गरक्तविलसन्नख चक्रवालज्योत्सनाभिः आहतमहद हृदयान्धकारम् भगवतः चरणारविन्दं संचिन्तयेत् ॥२१॥

अनुवाद— वज्र, अङ्कुश, ध्वज तथा कमल के चिह्नों से युक्त और अङ्गुलियों के उठे हुए लाल सुन्दर नख समूह की कान्ति से ध्यान करने वाले के हृदय में स्थित घोर अन्धकार को दूर करने वाले श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करना चाहिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेव पादादिक्रमेणाह त्रयोदशभिः । सम्यक् चिन्तयेत् । पादतले रेखात्मकानि वज्रादीनि लाञ्छनानि तैः आढ्यं युक्तम्। उत्तुङ्गाश्च रक्ताश्च विलसन्तो नखास्तेषां चक्रवालमण्डलं तस्य ज्योत्स्नाभिराहतो महतां ध्यातॄणां हृदयान्धकारो येन । एतच्च सर्वमुपादेयविशेषणं ध्येयत्वेनैवोच्यते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसी का वर्णन चरणों आदि से करना चाहिए । इस बात को भगवान् कपिल तेरह श्लोकों से करते हैं । श्रीभगवान् के चरण कमल के तलवे वज्र आदि के चिह्नों से समलंकृत हैं । श्रीभगवान् के चरणों के नख ऊपर की ओर उठे हुए और लाल-लाल हैं । ऐसे नखों के कान्तिसमूह से ध्यान करने वाले भगवद् भक्तों के हृदय में विद्यमान अज्ञानान्धकार विनष्ट हो गया है । ऐसे श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करना चाहिए । इस श्लोक में सन्निविष्ट सभी विशेषण ध्येय रूप से बतलाये गये हैं ॥२१॥

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२२॥

अन्वयः— यत् शौचनिःसृत सरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्धनि अधिकृतेन शिवः शिवः अभूत् ध्यातुः मनः शमलशैलनिसृष्ट वज्रं भगवतः चरणारविन्दम् चिरं ध्यायेत् ॥२२॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के चरणोदक से निकली हुयी नदियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी के परम पवित्र जल को अपने शिर पर धारण करने के कारण मङ्गलमय शिवजी और अधिक मङ्गलमय हो गये । जो श्रीभगवान् के चरण कमल ध्यान करने वाले पुरुषों के पाप रूपी पर्वत को विनष्ट करने के लिए वज्र के समान हैं, श्रीभगवान के उन चरणकमलों का दीर्घकाल तक ध्यान करना चाहिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किञ्च यस्य शौचेन क्षालनेन निःसृतायाः सरित्प्रवरया गङ्गाया उदकेन तीर्थेन संसारतारकेण मूर्ध्न्यधिकृतेन धृतेन शिवोऽपि शिवोऽभूत्, अत्यधिकं सुखं प्रापेत्यर्थः । ध्यातुर्मनसि यः शमलशैलः पापपर्वतस्तस्मिन्निसृष्टं क्षिप्तं वज्रमिव यत् । यद्वा शमलशैले निसृष्टं स्वलाञ्छनरूपं वज्रं येन तत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के जिन चरणों के प्राक्षालन के जल से निकली हुयी नदियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी के संसार सागर से पार करने वाले परम पवित्र जल को अपने शिर पर धारण करने के कारण मङ्गलमय शिवजी और अधिक सुख को प्राप्त कर लिए, जो श्रीभगवान् के जो चरण कमल अपना ध्यान करने वाले भक्तों के पाप रूपी पर्वत को विनष्ट कर देने के लिए वज्र के समान अमोघ हैं, श्रीभगवान् के उन चरणों का ध्यान दीर्घकाल तक करना चाहिए। अथवा भक्तों के पाप रूपी पर्वत पर अपने चिह्न रूपी वज्र का प्रहार करने वाले श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करे ।।२२।।

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवन्दितया विधातुः ।
ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्सँल्लालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ।।२३।।

अन्वयः— सुरवन्दितया, अखिलस्य विधातुः जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्या ऊर्वोः निधाय करपल्लवरोचिषा यत् संलालितं तत् अभवस्य विभोः जानुद्वयम् हृदि कुर्यात् ।।२३।।

अनुवाद— जिनकी सभी देवता स्तुति किया करते हैं ऐसी सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करने वाले श्रीब्रह्माजी की कमल के समान मनोज्ञ नेत्रों वाली माता श्रीलक्ष्मीजी, अपनी जङ्घाओं पर रखकर अपने कान्तिमान करकिसलयों से सदा सावधानी पूर्वक सेवा किया करती हैं, उन सम्पूर्ण जगत् के स्वामी अजन्मा श्रीभगवान् के दोनों घुटनों का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

विभोर्जानुद्वयं तत्पर्यन्तं जङ्घाद्वयमखिलस्य विधातुर्ब्रह्मणो जनन्या लक्ष्म्या सँल्लालितं स्पर्शचातुर्येण संसेवितम् । संसारित्वमिव प्रतीतं वारयति-अभवस्येति । हृदि कुर्याद्ध्यायेत् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् की दोनों जङ्घाओं से लेकर दोनों घुटनों पर्यन्त की ब्रह्माजी की माता श्रीलक्ष्मीजी बड़ी सावधानी पूर्वक सेवा किया करती हैं, ऐसे श्रीभगवान् के दोनों घुटनों का ध्यान अपने हृदय में करना चाहिए । श्रीभगवान् में होने वाली संसारित्व की प्राप्ति को दूर करने के लिए भगवान् कपिल ने अभवस्य पद का प्रयोग किया है । अर्थात् वे श्रीभगवान् अजन्मा हैं उनका कभी जन्म नहीं होता है ।।२३।।

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ।
व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकाञ्चीकलापपरिरम्भिनितम्बबिम्बम् ।।२४।।

अन्वयः— सुपर्णभुजयोरधिशोभमानौ ओजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ऊरू ध्यायेत् । व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकांचीकलापपरिरम्भि नितम्बबिम्बम् ध्यायेत् ।।२४।।

अनुवाद— गरुड़जी की पीठ पर सुशोभित होने वाले, बल के आधार तथा अलसी के पुष्प के समान अत्यन्त सुन्दर श्रीभगवान् की दोनो जङ्घाओं का ध्यान करे । एंड़ी तक लटकने वाले पीताम्बर से ढँके हुए तथा पीताम्बर के ऊपर धारण की गयी सुवर्ण की करधनी से आलिङ्गित श्रीभगवान् के नितम्बबिम्ब का ध्यान करना चाहिए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

सुपर्णस्य भुजयोः स्कन्धयोरधि उपरि । ओजसो बलस्य निधी आधारौ । अतसिकायाः कुसुमवत्कान्त्याऽवभासमानौ। व्यालम्बि आगुल्फं लम्बमानं यत्पीताम्बरं वासस्तस्मिन् वर्तमानो यः काञ्चीकलापस्तेन परिरम्भः संश्लेषो विद्यते यस्य तद्विभोर्नितम्बबिम्बं च हृदि कुर्यादिति पूर्वेणैवान्वयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

गरुड़जी के कन्धों पर विद्यमान सम्पूर्ण बल के एकमात्र आधार तथा अलसी पुष्प के समान अत्यन्त मनोहर कान्ति के समान चमकने वाले श्रीभगवान् की दोनों जङ्घाओं का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए । एड़ी तक लटकने वाले पीताम्बर नामक वस्त्र के भीतर विद्यमान तथा पीताम्बर के ऊपर धारण की गयी सुवर्णमयी करधनी से आलिङ्गित, श्रीभगवान् के नितम्बबिम्ब का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥२४॥

नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ।
व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥२५॥

अन्वयः— यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् व्यूढं भुवनकोशगुहोदरस्थं नाभिह्रदं हृदि ध्यायेत् विशदहारमयूखगौरम् अमुष्य हरिन्मणि वृषस्तनयोः द्वयं ध्यायेत् ॥२५॥

अनुवाद— जिसमें ब्रह्माजी का अधिष्ठानभूत सर्वलोकमयकमल प्रकट हुआ है इस प्रकार के सम्पूर्ण लोकों के आश्रयभूत श्रीभगवान् के उदर में स्थित नाभिसरोवर का ध्यान करना चाहिए देदीप्यमान हारों की किरणों से गौरवर्ण के प्रतीत होने वाले, श्रीभगवान् के श्रेष्ठ मरकतमणि के समान दोनों स्तनों का चिन्तन करना चाहिए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अमुष्य हरेर्नाभिह्रदं ध्यायेत् । कथंभूतम् । भुवनानां कोशस्य समूहस्य गुहाधिष्ठानं यदुदरं तत्र स्थितम् । यत्र नाभिह्रदे आत्मयोनेर्ब्रह्मणो धिषणं धिष्ण्यमखिललोकात्मकं पद्मं व्यूढं उत्थितम् । तथा हरिन्मणिवृषौ मरकतमणिश्रेष्ठाविव यौ स्तनौ तयोर्द्वयं ध्यायेत् । विशदहाराणां मयूखैर्गौरं श्वेतम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के नाभि सरोवर का ध्यान करना चाहिए । उस नाभि सरोवर की विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि वह सम्पूर्ण लोकों के समूह के आधार भूत श्रीभगवान् के उदर प्रदेश में विद्यमान है । उसी नाभि सरोवर में ब्रह्माजी के आश्रय भूत सम्पूर्ण लोकात्मक कमल प्रकट हुआ है । तथा श्रेष्ठमरकतमणि के समान जो श्रीभगवान् के दोनों स्तन हैं उनका ध्यान करना चाहिए । वे दोनों स्तन हारों की शुभ्र कान्ति के कारण गौर वर्ण के प्रतीत होते हैं ॥२५॥

वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ।
कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥२६॥

अन्वयः— महाविभूतेः अधिवासम् पुंसां मनोनयन निर्वृतिमादधानम् ऋषभस्य वक्षः ध्यायेत् अखिललोकनमस्कृतस्य कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कण्ठं च मनसि कुर्यात् ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महालक्ष्मीजी के निवास स्थान और लोगों के मन एवं नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के वक्षःस्थल का ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर सर्वलोकनमस्कृत श्रीभगवान् के उस कण्ठ का ध्यान करे जो मानो कौस्तुभमणि को सुशोभित करने के लिए उसको धारण करता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ऋषभस्य श्रेष्ठस्य महाविभूतेर्महालक्ष्म्या अधिवासं स्थानं वक्षः कण्ठं च मनसि कुर्यात् । कथंभूतं कण्ठम् । कौस्तुभमणिर्यो भूषणार्थं धृतस्तस्याधिकं भूषणमर्थः प्रयोजनं यस्य । कौस्तुभमणिमेव स्वयमलंकुर्वन्तमित्यर्थः । पुंसां स्मर्तॄणां द्रष्टृणां च मनोनयनानां निर्वृतिमादधानमित्युभयोर्विशेषणम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं । ऐसे श्रीभगवान् के वक्षःस्थल का ध्यान करना चाहिए । उनका वक्षःस्थल महालक्ष्मीजी का निवास स्थान है । श्रीभगवान् के वक्षःस्थल और कण्ठ दोनों का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए। श्रीभगवान् का कण्ठ इतना सुन्दर है कि जिस कौस्तुभ मणि को भगवान् भूषण के रूप में धारण करते हैं उस कौस्तुभमणि को ही मानो वह भूषित करता है । अर्थात् श्रीभगवान् का कण्ठ कौस्तुभमणि को ही भूषित करता है, भगवान् के वक्षःस्थल और कण्ठ दोनों अपना स्मरण करने वाले लोगों के मन और नेत्रों को आनन्दित करते हैं ॥२६॥

बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ।
संचिन्तयेद् दशशतारमसह्यतेजः शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥२७॥

अन्वयः— मन्दगिरेः परिवर्तनेन निर्णीक्तबाहुबलयान् अधिलोकपालान् बाहून् दशशतारम् असह्यतेजः तत् करसरोरुह राजहंसम् शङ्खम् च संचिन्तयेत् ॥२७॥

अनुवाद— समुद्रमन्थन के समय मन्दराचल पर्वत की रगड़ से जिन भुजाओं में धारण किए गये कङ्कन आदि अधिक चमकने लगे हैं, तथा जो सम्पूर्ण लोकपालों के आश्रय हैं, श्रीभगवान् की भुजाओं में विद्यमान हजारों धार वाले तथा जिसका तेज असह्य हैं ऐसे चक्र का एवं श्रीभगवान् के करकमल पर राजहंस के समान सुशोभित होने वाले भगवान् के पाञ्चजन्य शङ्ख का ध्यान करना चाहिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

निर्णिक्तान्युज्जवलीकृतानि बाहुबलयान्यङ्गदानि येषु । अधिश्रिता लोकपाला येषु । दशशतारं चक्रम् । न सह्यं तेजो यस्य । करसरोरुहे राजहंसमिवि ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मन्दराचल की रगड़ से जिनकी भुजाओं में धारण किए गये अङ्गद (बाजुबन्द) तथा कङ्कन आदि अधिक चमकने लगे हैं तथा जो लोकपालों के आश्रय हैं, ऐसी श्रीभगवान् की भुजाओं का, हजारों धार वाले तथा असह्य तेजः सम्पन्न चक्र तथा भगवान् के कर कमल में राजहंस के समान सुशोभित होने वाले श्वेत पाञ्चजन्य शङ्ख का ध्यान करना चाहिए ॥२७॥

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ।
मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥२८॥

अन्वयः— अरातिभटशोणितकर्दमेन दिग्धाम् भगवतो दायितां कौमोदकीं मधुव्रतगिरोपघुष्टां मालां, अस्य कण्ठे चैत्यस्य अमलं तत्त्वम् मणिम् च स्मरेत् ॥२८॥

अनुवाद— शत्रुवीरों के रक्त से सनी हुयी श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय उनकी कौमोदकी नाम की गदा का, भ्रमर समूह के गुञ्जन की ध्वनि से ध्वनित वनमाला का तथा श्रीभगवान के गले में लटकने वाली सम्पूर्ण जीव तत्त्व के निर्मल तत्त्व स्वरूप कौस्तुभमणि का स्मरण करे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अरातयो ये भटा योद्धारस्तेषां शोणितमेव कर्दमस्तेन दिग्धां लिप्ताम् । अस्य कण्ठे मालां मणिं च स्मरेत् । मधुव्रतानां वरूथस्य गिरा उपघुष्टां नादिताम् । चैत्यस्य जीवस्य तत्त्वम् । तदुक्तं वैष्णवे **आत्मानमस्य जगतो निर्लेपगुणामलम् । बिभर्ति कौस्तुभमणिं स्वरूपं भगवान्हरिः** ।। इति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल ने श्रीभगवान् की कौमदकी गदा, वनमाला और कौस्तुभमणि का ध्यान करने के लिए कहा है । वे कहते हैं कि शत्रुवीरों के रक्त से सनी हुयी तथा श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय कौमोदकी गदा का ध्यान करना चाहिए । भ्रमरों के गुञ्जारध्वनि से ध्वनित वनमाला का ध्यान करना चाहिए तथा श्रीभगवान् के गले में लटकने वाली सम्पूर्ण जीवों के निर्मलतत्त्व रूपी कौस्तुभमणि का ध्यान करना चाहिए । कौस्तुभमणि को जीव तत्त्व स्वरूप बतलाते हुए श्रीविष्णुपुराण में कहा गया है **आत्मानमस्य० इत्यादि** अर्थात् श्रीभगवान् इस सम्पूर्ण जगत् के निर्लेप निर्गुण तथा निर्मल जीव स्वरूप कौस्तुभ मणि को अपने गले में धारण करते हैं ।।२८।।

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः संचिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ।।२९।।

अन्वयः— भृत्यानुकम्पित धिया इह गृहीतमूर्तेः भगवतः वदनारविन्दम् संचिन्तयेत् । यत् विस्फुरन् मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलम् उदारनासम् ध्यायेत् इति शेषः ।।२९।।

अनुवाद— अपने भक्तों पर कृपा करने के ही लिए साकार रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् के मुख कमल का ध्यान करना चाहिए जो देदीप्यमान कुण्डलों के हिलने से अत्यन्त प्रकाशमान कपोलों से तथा सुन्दर नासिका से सुशोभित हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

भृत्येष्वनुकम्पिता कृतानुकम्पा या धीस्तया गृहीता मूर्तिर्येन तस्य । विस्फुरती ये मकरकुण्डले तयोर्वल्गितेन प्रचलने विद्योतितावमलौ कपोलौ यस्मिंस्तत् । उदारा उन्नता नासा यस्मिंस्तत् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल श्रीभगवान् के मुखकमल का ध्यान करने को कहते हैं । श्रीभगवान् अपने भक्तों पर कृपा करने की भावना से ही साकार रूप को धारण किए हुए हैं, उन श्रीभगवान् के वदनारविन्द का ध्यान करना चाहिए । जो श्रीभगवान् का मुखकमल देदीप्यमान कुण्डल से प्रकाशित कपोलों और सुन्दर नासिका से संशोभित है ।।२९।।

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ।
मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रु ।।३०।।

अन्वयः— यच्च स्वया भूत्या श्रीनिकेतम् अलिभिः परिसेव्यमानम् कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टं, मीनद्वयाश्रयम्, अधिक्षिपदब्जनेत्रं, अतन्द्रितउल्लसद्भ्रु, मनोमयम् ध्यायेत् ।।३०।।

अनुवाद— जो अपनी शोभा के द्वारा भ्रमरों से सेवित कमलकोश का भी तिरस्कार करता है तथा घुंघराले काले केशों के समूह से सेवित श्रीभगवान् के मुखमण्डल का ध्यान करना चाहिए । इस मुखमण्डल पर उछलती हुई दो मछलियों के जोड़े का तिरस्कृत करने वाले दोनों विशाल तथा चञ्चल दोनों नेत्र हैं, उठी हुयी भौहों से समलंकृत श्रीभगवान् के मनोहर मुखारविन्द की मन में धारणा करके निरालस होकर उसका ध्यान करे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

यच्च स्वया भूत्या शोभयाऽलिभिः परिसेव्यमानं मीनद्वयाश्रयं च श्रीनिकेतनं पद्ममधिक्षिपद्वर्तते तद्ध्यायेत् । तत्र कुन्तलैरलीनामधिक्षेपः । नेत्रद्वयेन मीनद्वयस्येति द्रष्टव्यम् । अब्जे इव नेत्रे यस्मिन्नित्युपमानान्तरम् । उल्लसन्त्यौ भ्रुवौ यस्मिन्। मनोमयं मनस्याविर्भवत् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

जो श्रीभगवान् का मुखमण्डल अपनी शोभा के द्वारा भ्रमरों से सुसेवित तथा जिस पर दो मछलियाँ उछल रही हों इस प्रकार की शोभा से सम्पन्न कमल को भी जो तिरस्कृत कर रहा है, योगी को उसका ध्यान करना चाहिए । उसमें भी काले घुंघराले केशों के द्वारा काले-काले भ्रमरों का तिरस्कार हो रहा है । दोनों नेत्रों के द्वारा दोनों मछलियों का तिरस्कार हो रहा है । श्रीभगवान् के दोनों नेत्र दो कमल के समान हैं । यहाँ दो कमल दोनों नेत्रों के उपमान हैं । श्रीभगवान् के मुखमण्डल पर विराजमान उनकी दोनों भौहे उठीं हुयी है । इस तरह से श्रीभगवान् के मुख मण्डल का मन में धारणा करके बिना किसी आलस्य के ध्यान करना चाहिए ॥३०॥

तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ।
स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥३१॥

अन्वयः— गुहायाम् विततभावनया तस्य अवलोकम् चिरं ध्यायेत् । यत् कृपया स्निग्ध स्मितानुगुणितं घोर तापत्रयोपशमनाय अक्ष्णोः निसृष्टम् विपुल प्रसादम् वर्तते ॥३१॥

अनुवाद— योगी को चाहिए कि वह अपने हृदय में श्रीभगवान् के नेत्रों के चितवन का दीर्घकाल तक ध्यान करे । जो कृपा तथा प्रेम भरे मधुर मुस्कान से प्रतिक्षण अधिकाधिक बढ रही है । तथा अत्याधिक मात्रा में प्रसाद की वर्षा करती है । यह चितवन भक्तों के तीनों तापों को दूर करने के ही लिए नेत्रों से प्रकट हुयी है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कृपयाऽधिकमत्यर्थम्। अक्षिभ्यां निसृष्टं प्रयुक्तम्। स्निग्धस्मितेनानुगुणितं संयुक्तम् । विपुलः प्रसादो यस्मिन् । गुहायां हृदि।॥३१॥

भाव प्रकाशिका

कृपा के ही कारण यह नेत्रों के चितवन अत्यधिक बढ़ी हुयी है । यह नेत्रों के द्वारा प्रयुक्त है । वह मनोहर मुस्कान से युक्त है । भगवान् की वह चितवन विपुल मात्रा में प्रसाद से सम्पन्न है । इस प्रकार के श्रीभगवान् के चितवन (देखने के प्राकार) का अपने हृदय में योगी को ध्यान करना चाहिए ॥३१॥

हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ।
संमोहनाय रचितं निजमाययाऽस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

अन्वयः— अवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणम् हरेः हासं मुनिकृते मकरध्वजस्य सम्मोहनाय निजमायया रचितम् अस्य भ्रूमण्डलं च ध्यायेत् ॥३२॥

अनुवाद— श्रीहरि का हास्य शरणगत जीवों के अत्यन्त तीव्र अश्रुसागर को सुखा देता है और श्रीहरि ने अपनी माया से ही मुनिजनों का कल्याण करने के लिए तथा कामदेव को मोहित करने के लिए अपने जिस भ्रूमण्डल का निर्माण किया है, उस अत्यन्त उदार (मनोहर) भ्रूमण्डल का योगियों को ध्यान करना चाहिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अवनता येऽखिललोकास्तेषां तीव्रशोकेन यान्यश्रूणि तेषां सागरं विशोषयतीति तथा तं हरेर्हासम् । अस्यात्युदारं भ्रूमण्डलं च ध्यायेत् । कथंभूतम् । निजमायया मकरध्वजस्यापि संमोहनाय रचितम् । मुनिकृते मुनीनामुपकाराय । मुनीनां संमोहने प्रवृत्तं काममेव संमोहयितुमित्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के शरणागत जितने भी जीव हैं उन सबों के अत्यन्त तीव्रशोकजन्य आँसुओं के सागर को सुखा देने वाली श्रीभगवान् की हँसी का श्रीभगवान् ने मुनिजनों का कल्याण करने के लिए तथा मुनिजनों को मोहित करने वाले कामदेव को ही मोहित करने के लिए जिसका निर्माण अपनी माया से किया है, उस भ्रूमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥३२॥

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुन्दपङ्क्ति ।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्यार्द्रयार्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥३३॥

अन्वयः— ध्यानायनं बहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुन्दपंक्ति स्वदेहकुहरे अवसितस्य विष्णोः प्रहसितम् भक्त्याऽऽद्रयार्पितमना ध्यायेत् पृथक् न दिदृक्षेत् ॥३३॥

अनुवाद— जो वस्तुतः ध्यान करने के योग्य है तथा जिसमें ऊपर और नीचे के दोनों ओष्ठों की अत्यधिक अरुण कान्ति के कारण उनके कुन्दकली समान छोटे-छोटे दाँतों की पंक्ति पर लालिमा सी प्रतीत होती है, इस प्रकार के श्रीभगवान् के खिलखिलाकर हँसने का ध्यान भक्ति से आर्द्र बने हुए मन से करना चाहिए, उसके अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ को देखने की इच्छा नहीं करनी चाहिए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

मन्दहासध्यानमुक्त्वा स्फुटहासध्यानमाह । विष्णोः प्रहसितमुच्चैर्हसितं ध्यायेत् कीदृशम् । ध्यानायनमतिसुन्दरतया प्रयत्नं विनैव ध्यानस्य विषयभूतम् । सौन्दर्यमेवाह । बहुलयाऽधिकयाऽधरोष्ठस्य भासा कान्त्यारुणीभूतास्तनवः सूक्ष्मा द्विजा एव कुन्दमुकुलानि तेषां पङ्क्तिः स्फुरति यस्मिंस्तत् । देहकुहरे हृदयाकाशेऽवसितस्य ज्ञातस्य । प्रेमरसेनार्द्रया भक्त्या तस्मिन्नेवार्पितमनाः सन् पृथक्तव्यतिरिक्तं द्रष्टुं नेच्छेत् । न चित्तं विचालयेदित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मन्द मुसकान का वर्णन करने के पश्चात् भगवान् कपिल श्रीभगवान् के खिलखिलाकर हंसने का ध्यान बतला रहे हैं । श्रीभगवान् विष्णु के जोर से हँसने का ध्यान करना चाहिए । भगवान् की वह हँसी ध्यानायन है । अर्थात् बिना प्रयास के ही ध्यान का विषय बन जाने वाली है । क्योंकि वह अत्यन्त सुन्दर है । भगवान् की उस हंसी के सौन्दर्य को बतलाते हुए कहते हैं— श्रीभगवान् के नीचे और ऊपर के ओठों की लालिमा के संक्रान्त हो जाने के कारण श्रीभगवान् के छोटे-छोटे कुन्दकली के समान दाँत लाल-लाल से प्रतीत हाते हैं । श्रीभगवान् की इस प्रकार की हंसी का अपने हृदय में प्रेमरस से आर्द्र बनी हुयी भक्ति के द्वारा ध्यान करे । श्रीभगवान् की उस हंसी में लगे हुए मन से किसी दूसरी वस्तु को देखने की इच्छा न करे । अर्थात् अपने चित्त को विचलित नहीं होने दे ॥३३॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥३४॥

अन्वयः— एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावः भक्त्या द्रवद् हृदयः प्रमोदात् उत्पुलकः, औत्कण्ठ्य वाष्पकलया मुहुः अर्द्यमानः तच्चापि चित्त बडिशं शनकैः वियुंक्ते ॥३४॥

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीहरि के ध्यान के अभ्यास से साधक का श्रीहरि में प्रेम हो जाता है । भक्ति के कारण उसका हृदय द्रवित हो जाता है । आनन्दातिरेक के कारण साधक के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो जाता है । उत्कण्ठा के कारण उसकी आँखों से अश्रु की धारा प्रवृत्त हो जाती है और वह उसी में बार-बार नहा लेता

है । उसके पश्चात् वह मछली पकड़ने के साधन काँटे के समान श्रीहरि को अपनी ओर खीचने के साधन भूत चित्त को भी धीरे-धीरे ध्येय वस्तु से हटा लेता है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

समाधिमाह-एवमिति द्वाभ्याम् । निर्बीजः सबीजश्चेति द्विविधो योगः । तत्र निर्बीजयोगे 'यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥' इति गीताद्युक्तमार्गेण क्रियमाणोऽपि दुष्करः समाधिः। सबीजे तु सुकरः । तत्र हि परमानन्दमूर्तौ हरौ ध्यायमानेऽयत्नत एव चित्तोपरमो भवति । तदुक्तम् 'हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते' इति । अतः स एवोपक्षिप्तो योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्येति । तदेवायत्नसिद्धत्वं दर्शयति । एवं ध्यानमार्गेण हरौ प्रतिलब्धो भावः प्रेमा येन, तथा भक्त्या द्रवद्धृदयं यस्य, प्रमोदादुद्गतानि पुलकानि यस्य । औत्कण्ठ्यप्रवृत्ताश्रुकलया च मुहुरर्द्यमान आनन्दसंप्लवे निमज्जमानो दुर्ग्रहस्य भगवतो ग्रहणे वडिशं मत्स्यवेधनमिवोपायभूतं चित्तमपि ध्येयाद्वियुङ्क्ते । तद्धारणे शिथिलप्रयत्नो भवतीत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

एवम्० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा समाधि का वर्णन करते हैं । योग दो प्रकार के होते हैं निर्बीजयोग और सबीजयोग । उसमें भी निर्बीजयोग में-

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

अर्थात् जब-जब चञ्चल और अस्थिर मन आत्मचिन्तन को छोड़कर इधर-उधर संचरण करने लगे उसी समय उसको निरुद्ध करके अपनी आत्मा में लगाकर अपने वश में करना चाहिए । इस तरह से गीतोक्त प्रकार से की जाने वाली भी समाधि कठिन होती है । किन्तु सबीज समाधि में समाधि लगाना आसान होता है । इस सबीजयोग में परमानन्द स्वरूप श्रीहरि का ध्यान करने पर बिना किसी प्रयास के चित्त का चाञ्चल्य समाप्त हो जाता है, और वह स्थिर हो जाता है । इस सबीज योग का ही वर्णन करते हुए भगवान् कपिल कह चुके हैं कि साधक का मन और प्राण मुझमें ही लग जाता है और नही चाहकर भी वह अत्यन्त सूक्ष्म भक्ति में लग जाता है । अतएव मैं उस प्रारब्ध समाधि का ही वर्णन करूँगा । वह सबीजयोग बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जाता है, इस बात को बतलाते हुए श्रीभगवान् इस श्लोक में कहते हैं **एवम्० इत्यादि** इस तरह ध्यान मार्ग से ध्यान का अभ्यास करने के कारण साधक का भगवान् में प्रेम हो जाता है । उसी के पश्चात् उसका हृदय द्रवित हो जाता है । आनन्दातिरेक के कारण उसके शरीर में रोमाञ्च होने लगता है । उत्कण्ठा के कारण उसकी आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगती है और उस आनन्द के प्रवाह में मग्न वह बार-बार आँसुओं में नहा लेता है । श्रीभगवान दुर्ग्रह है उनको अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मछली पकड़ने के साधन भूत को काँटे के समान चित्त को भी वह ध्येय परमात्मा से पृथक् कर लेता है । अर्थात् उसको धारण करने में शिथिल प्रयत्न वाला हो जाता है ॥३४॥

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ।
आत्मानमत्र पुरुषो व्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥३५॥

अन्वयः— यथार्चिः मुक्ताश्रयं निर्वाणमृच्छति तथैव यर्हि मुक्ताश्रयं निर्विषयं विरक्तं मनः सहसा निर्वाणम् ऋच्छति। अत्र प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः पुरुषः अव्यवधानम् एकम् आत्मानम् अन्वीक्षते ॥३५॥

अनुवाद— जिस तरह तेलवर्ती इत्यादि के समाप्त हो जाने पर दीप की ज्वाला अपने कारणभूत तैजस तत्त्व में मिल जाती है, उसी तरह आश्रय विषय और राग से रहित मन ब्रह्माकार हो जाता है । इस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर जीव गुणों के प्रवाह रूप देहादि उपाधि के निवृत्त हो जाने के कारण ध्याता-ध्येय आदि विभाग से रहित एक अखण्ड परमात्मा को ही सर्वत्र अनुगत देखता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यर्हि यदैवं निर्विषयं भगवत्यत एव मुक्ताश्रयं च । ध्येयसंबन्धं बिना ध्यातर्यवस्थानासंभवात् । नच पूर्ववच्छब्दादिर्विषयः स्यात् । यतस्तत्र विरक्तं परमानन्दानुभवेन । अतो निर्वाणं लयमृच्छति । वृत्तिरूपतां परित्यज्य ब्रह्माकारेण परिणमत इत्यर्थः। यथा अर्चिर्ज्वालाश्रयविषयापगमे महाभूतज्योतीरूपेण परिणमते । अत्रास्यां दशायामव्यवधानं ध्यातृध्येयविभागशून्यममखण्ड-मात्मानमनुगतमीक्षते । अत्र हेतुः प्रतिनिवृत्तोऽपगतो गुणप्रवाहो देहाद्युपाधिर्यस्य ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से जब मन निर्विषय हो जाता है, श्रीभगवान् का ध्यान करना छोड़ देता है, तब वह मुक्ताश्रय आश्रय से रहित हो जाता है । क्योंकि ध्येय के सम्बन्ध के बिना मन ध्यान करने वाले ध्याता में स्थित नहीं हो सकता है । उस समय उस मन के विषय पहले के समान शब्द इत्यादि भी नहीं रहते हैं । क्योंकि परमानन्द स्वरूप आत्मा का अनुभव कर लेने के कारण वह शब्दादि विषयों से विरक्त हो जाता है । फलतः वह ब्रह्माकार हो जाता है । अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर लेता है । वह अपनी वृत्ति रूपता का परित्याग करके ब्रह्म स्वरूप हो जाता हैं । **यथार्चिर्ज्वाला० इत्यादि** जिस तरह दीप की ज्वाला अपने आश्रयभूत तैलवर्ती इत्यादि के समाप्त हो जाने पर अपने कारणभूत महातेज में जाकर मिल जाती है उसी तरह । इस दशा में ध्याता-ध्येय आदि विभाग से रहित एकमात्र अखण्डात्मा परमात्मा का ही वह सर्वत्र अनुगत रूप से दर्शन करता है । इसका कारण यह है कि उस अवस्था में जीव के गुण प्रवाह रूपी देहादि उपाधि निवृत्त हो जाती है ।।३५।।

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ।
हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ।।३६।।

अन्वयः— सोऽपि एतया चरमया मनसो निवृत्त्या सुखदुःखबाह्ये तस्मिन् महिम्नि अवसितः उपलब्ध परात्मकाष्ठः यत् सुख दुःखयोः कर्तरि स्वात्मन् विधत्त असति हेतुत्वम् ।।३६।।

अनुवाद— योगाभ्यास से प्राप्त हुयी चित्त की इस अविद्या रहित लय रूप निवृत्ति के कारण अपनी सुख दुःख रहित ब्रह्म रूप महिमा में स्थित होकर परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने पर वह योगी जिस सुख दुःख को अपने स्वरूप मे देखता था उसे अब अविद्याकृत अहङ्कार में ही देखता है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

नच सुप्तोत्थित इव पुनः संसरतीत्याह । सोऽपि स एव पुरुषस्तस्मिन्महिम्नि ब्रह्मरूपेऽवसितोऽवसानं निष्ठां प्राप्तः । कया । मनसो निवृत्त्या चरमयाऽविद्यारहितयेति सुषुप्ताद्विशेषः । तत्र ह्यविद्यास्ति नत्विदानीम् । अत्र हेतुः-एतया योगाभ्यासकृतयेत्यर्थः। नन्वेवमपि सुखदुःखयोरात्मधर्मत्वं कुतो ब्रह्मैक्यं तत्राह । दुःखयोः सुखदुःखयोर्हेतुत्वं भोक्तृत्वं च यत्पूर्वमासीत्तदप्यसत्यविद्याकृते कर्तर्यहङ्कारे विधत्ते । तन्निष्ठमेव पश्यतीत्यर्थः । यत्र उपलब्धपरात्मकाष्ठोऽपरोक्षीकृतात्मतत्त्वः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से सोकर जगने वाला पुरुष पुनः इस संसार में संसरण नहीं करता है उसी तरह से वह योगी पुरुष संसार मे संसरण नहीं करता है । अपितु वह पुरुष अविद्या रहित मन की अन्तिम निवृत्ति के कारण अपनी उस ब्रह्मरूपी महिमा में निष्ठा प्राप्त करके, निवृत्त हो जाता है । इस तरह योगी की सुषुप्त पुरुष से भिन्नता बतलायी गयी है । क्योंकि सुषुप्तावस्था में भी अविद्या रहती है किन्तु इस अवस्था में अविद्या नहीं रहती है । उसका कारण है कि योगाभ्यास के कारण वह निवृत्त हो जाती है । **नन्वेवमपि० इत्यादि** यदि कहें कि ऐसी स्थिति में भी आत्मा के धर्म सुख दुःख तो बने ही रहते हैं । अतएव योगी की ब्रह्म के साथ एकता कैसे सम्भव है ? तो इसके उत्तर

में भगवान् कपिल कहते हैं कि पहले जो वह सुख और दुःख का कर्तृत्व और भोक्तृत्व आत्मा में समझता था उसको अब वह असत् अहङ्कार का धर्म मानने लगता है। क्योंकि वह आत्मसाक्षात्कार कर लिए रहता है ॥३६॥

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथ देववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥३७॥

अन्वयः— मदिरामदान्धः परिकृत दैवादुपेतम् अथ देववशात् अपेतं वा वासः न विपश्यति तथा यतः आत्म स्वरूपम् अध्यगमत् चरमः सिद्धः तं देहं स्थितम् उत्थितं वा न विपश्यति ॥३७॥

अनुवाद— जिस तरह मदिरा पीकर मदमत्त बने हुए पुरुष को इस बात का ज्ञान नहीं रहता है कि जिस वस्त्र को वह अपने कमर में बाँधे था वह उसके कमर में है कि नहीं है। उसी प्रकार चरमावस्था को प्राप्त हुए सिद्ध योगी को उठने बैठने या दैववशात् कहीं आने जाने का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, क्योंकि वह परमानन्दमय स्वरूप में स्थित रहता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य जीवन्मुक्तिमाह देहं चेति द्वाभ्याम् चरम उक्तलक्षणं सिद्धो देहमपि न विपश्यति, कुतः सुखदुःखे। आसनादुत्थितमुत्थाय तत्रैव स्थितं तत्स्थानादपेतं ततो दैववशात्पुनरप्युपेतं वा न विपश्यति। यतः स्वरूपं प्राप्तः। यतो देहात्स्वरूपमध्यगमत्तं देहमिति वा। सतोऽप्यननुसंधाने दृष्टान्तः-वासः परिकृतं कटितटे परिवेष्टितं स्थितं गतं वा मदिरामदेनान्धो यथा न पश्यति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उस योगी की जीवन्मुक्ति का वर्णन करते हुए भगवान् कपिल **देहंच इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं। अविद्या रहित सिद्ध योगी को अपने शरीर का भी ज्ञान नहीं रह जाता है। तो फिर वह सुख दुःख को कैसे जानेगा ? वह अपने आसन से उठकर उसी पर बैठ जाता है उस स्थान से अन्यत्र चले जाने अथवा उसी स्थान पर बने रहने का भी उसको ज्ञान नहीं रह जाता है; क्योंकि वह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लिए रहता है। जिस शरीर से उसे अपने स्वरूप की प्राप्ति होती है, उस शरीर को भी वह नहीं जान पाता है। विद्यमान वस्तु का भी परिज्ञान नहीं रह जाने का उदाहरण उन्होंने बतलाया कि जैसे मदिरा पीकर मत्त बने हुए व्यक्ति को इस बात का भी ज्ञान नहीं रहता है कि जिस वस्त्र को वह अपने कमर में धारण किए था वह है कि नहीं है, उसी तरह ॥३७॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥३८॥

अन्वयः— दैववशगः देहोऽपि खलु स्वारम्भकं कर्म यावत् सासुः प्रतिसमीक्षत एव अधिरूढ समाधि योगः प्रतिबुद्धवस्तु सप्रपञ्चं तं पुनः स्वाप्नं न भजते ॥३८॥

अनुवाद— उसका शरीर पूर्व जन्म के कर्मों के संस्कारों के अधीन होता है; अतएव जब तक उसका प्रारब्ध कर्म शेष रहता है तब तक वह इन्द्रियों के साथ जीवित रहता है; किन्तु जिसे समाधि पर्यन्त योग की स्थिति प्राप्त हो गयी है और जिसने परमात्म तत्त्व को अच्छी तरह से जान लिया हो वह सिद्ध पुरुष पुत्र पत्नी आदि के साथ इस शरीर को स्वप्न में प्रतीत होने वाले शरीरों के समान फिर उसे नहीं स्वीकार करता है अर्थात् उसमें उसको अहंत्व ममत्व का अभिमान नहीं होता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि देहस्य कथं प्रवृत्तिनिवृत्ती जीवनं वा तत्राह-देहोऽपीति। दैवं पूर्वसंस्कारः, तद्वशेन गच्छन्यावत्स्वारम्भकं कर्मास्ति तावत्प्रतिसमीक्षते जीवत्येव। सासुः सेन्द्रियः। ननु तर्हि तस्मिन्पुनः सङ्गः स्यात्तत्राह। तं देहं स्वाप्नदेहादितुल्यं सप्रपञ्चं

पुत्रादिसहितं पुनर्न भजतेऽहंममेति नाभिमन्यते । अधिरूढः प्राप्तः समाधिपर्यन्तो योगो येन । अतएव प्रतिबुद्धं वस्त्वात्मतत्त्वं येन सः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि योगी की जीवन्मुक्ति हो जाती हैं तो फिर उसके शरीर की किसी कार्य में प्रवृत्ति अथवा उस कार्य से निवृत्ति कैसे होती है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं **देहोऽपि० इत्यादि** अर्थात् देह तो पूर्व कृत कर्मों के संस्कारों के अधीन है, अतएव उस शरीर का आरम्भक कर्म जब तक अवशिष्ट रहता है तब तक तो वह योगी जीवित रहता ही है । उसकी इन्द्रियाँ भी बनी रहती हैं । यदि कहें कि तब तो योगी की उस शरीर में आसक्ति हो सकती है । तो इसके उत्तर में कहते हैं कि जिस योगी ने योग की समाधि को प्राप्त कर लिया है तथा जिसने अच्छी तरह से आत्मतत्त्व के जान लिया है, उसका पुत्रादि सहित अपने उस शरीर में उसी तरह से अहंत्व और ममत्व का अभिमान नहीं होता है; जिस तरह से स्वप्न काल में देखे गये शरीरादि में अहंत्व ममत्वाभिमान नहीं होता है ॥३८॥

यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते । अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥३९॥

अन्वयः— यथा पुत्रात् वित्तात् च, मर्त्यः पृथक् प्रतीयते, तथा आत्मत्वेन अभिमतात् देहादेः पुरुषः ॥३९॥

अनुवाद— जिस तरह अत्यधिक स्नेह के कारण मनुष्य का अपने पुत्र तथा वित्त आदि में भी साधारण मनुष्यों की आत्म बुद्धि बन जाती है, किन्तु विचार करने पर वे स्पष्ट रूप से आत्मा से भिन्न प्रतीत होते हैं उसी तरह जिनमें आत्मत्वाभिमान बना रहता है उन देह आदि से पुरुष स्पष्ट रूप से अलग प्रतीत है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिबोधप्रकारमाह षड्भिः- यथेति । अतिस्नेहवशादात्मत्वेनाभिमतादपि पुत्रादेः । मर्त्यः पित्रादिः । पुरुषो देहादेर्द्रष्टा ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

होने वाले आत्मज्ञान के प्रकार को छह श्लोकों में बतलाते हैं जिस तरह अत्यन्त स्नेह के कारण पुत्र तथा सम्पत्ति में भी आत्मत्वाभिमान हो जाता है किन्तु विचार करने पर पता चलता है कि पुत्र तथा सम्पत्ति आत्मा से भिन्न हैं । उसी तरह अज्ञान वशात् मनुष्य अपने शरीर को ही आत्मा मान लेता है किन्तु विचार करने पर पता चलता है कि द्रष्टा आत्मा दृश्य शरीर से भिन्न है ॥३९॥

यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वापि स्वसंभवात् । अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥४०॥
भूतेन्द्रियान्तः करणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् । आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान्ब्रह्मसंज्ञितः ॥४१॥

अन्वयः— यथा उल्मुकात् विस्फुलिङ्गात् स्वसंभवात् धूमाद वाऽपि आत्मत्वेनाभिमतात् उल्मुकात् अपि अग्निः यथा पृथक् तथा भूतेन्द्रियान्तः करणात् जीसंज्ञितात् द्रष्टा पृथक् ब्रह्मसंज्ञितः भगवान् आत्मा प्रधानात् पृथक् ॥४०-४१॥

अनुवाद— जिस तरह जलती हुयी लकड़ी से, चिनगारी से तथा स्वयं अग्नि से हुए धूम से तथा अग्नि रूप से माने जाने वाली जलती हुयी लकड़ी से भी अग्नि वस्तुतः पृथक् ही है, उसी तरह भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण से उनका साक्षी आत्मा अलग है, तथा जीव कहलाने वाले उस आत्मा से भी ब्रह्म (प्रकृति) भिन्न है तथा प्रकृति से भी उसके संचालक परब्रह्म भिन्न ही हैं ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

पृथगवस्थानाभावेऽपि भेदं सदृष्टान्तमाह । यथोल्मुकादिदानीं ज्वलतः काष्ठात् । स्वसंभवात् अग्नेः संभूतात् । आत्मत्वेनाग्नेः स्वरूपत्वेनाभिमतादपि । अत्यन्ताविवेकिनो हि धूमेऽप्यग्न्यभिमानोऽस्ति । उल्मुकात्पूर्वसिद्धादपि तद्दाहकः

प्रकाशकश्चाग्निः पृथगेव । भूतादेर्द्रष्टा तेभ्यः पृथक् तस्मादपि जीवसंज्ञिताद्ब्रह्मसंज्ञितः पृथक् । तथा प्रधानादपि तत्प्रवर्तको भगवान्पृथगित्यर्थः ।।४०-४१।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आत्मा शरीर से पृथक् नहीं रहती है, उसमें होने वाले भेद को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक बतलाते हुए कहते हैं जैसे जलती हुयी लकड़ी तथा अग्नि से उत्पन्न होने वाले धूम से तथा अग्नि रूप से कही जाने वाली जलती हुयी लकड़ी से भी अग्नि भिन्न है । अत्यन्त अज्ञानी पुरुष को ही धूम में अग्नि की बुद्धि होती है पूर्वसिद्ध जलती हुयी लकड़ी से उसके जलाने वाली अग्नि तथा प्रकाशित करने वाली अग्नि उससे भिन्न ही है । और भूत इन्द्रिय और अन्तःकरण के द्रष्टा उन सबों से जैसे भिन्न है उस जीव शब्द से कहे जाने वाले से ब्रह्म संज्ञक प्रकृति भिन्न है । उसी तरह से प्रकृति से भी उसके संचालक श्रीभगवान् उससे पृथक् ही हैं ।।४०-४१।।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ।।४२।।

अन्वयः— सर्वभूतेषु च आत्मानं सर्वभूतानि च आत्मनि अनन्यभावेन ईक्षेत भूतेषु तदात्मताम् इच्छंत् ।।४२।।

अनुवाद— जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चारो प्रकार के भूतों (जीवों) में आत्मा का दर्शन करे और आत्मा में सभी भूतों को अनन्य भाव से देखे तथा भूतों में तदात्मकत्व रूप से देखे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

उपाधितो विवेकमुक्त्वा तस्यैक्यमाह-सर्वभूतेष्विति । भूतेषु चतुर्विधेषु । तदात्मतां महाभूतात्मताम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

उपाधि से आत्मा के भेद को बतलाकर इस श्लोक में उसके अभेद का प्रतिपादन किया गया है । भूतेषु शब्द के द्वारा जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज इन चारो प्रकार के भूतों को कहा गया है । तदात्मताम् पद का अर्थ है महाभूतात्मकता ।।४२।।

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते । योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ।।४३।।

अन्वयः— यथा एकं ज्योतिः स्वयोनिषु नाना प्रतीयते तथा योनीनां गुणवैषम्यात् आत्मा प्रकृतौ स्थितः ।।४३।।

अनुवाद— जिस तरह एक ही अग्नि अपने आश्रयों की भिन्नता के कारण अनेक प्रतीत होती है उसी तरह देव, मनुष्य, पशु पक्षी आदि शरीरों में रहने वाली एक ही आत्मा शरीरों के गुणभेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

धर्मभेदस्याप्यौपाधिकतां सदृष्टान्तमाह । स्वयोनिषु काष्ठेषु । ज्योतिरग्निः गुणवैषम्याद्दीर्घह्रस्वादिभेदात् । प्रकृतौ देहे।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक धर्म भेद की औपाधिकता को बतलाते हैं । स्वयोनिषु अर्थात् काष्ठों में ज्योति अर्थात् अग्नि काष्ठ को लम्बे छोटे आदि होने के कारण अग्नि भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है । उसी तरह देव मनुष्य आदि देह रूपी उपाधियों की भिन्नता के कारण आत्मा भिन्न प्रतीत होती है ।।४३।।

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् । दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।

अन्वयः— तस्मात् सदसदात्मिकां दुर्विभाव्यां स्वां दैवीं प्रकृतिं पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ।।४४।।

अनुवाद— अतएव भगवद् भक्त जीव के स्वरूप को तिरोहित कर देने वाली कार्यकारण रूप से परिणाम

को प्राप्त हुई श्रीभगवान् की अचिन्त्य शक्तिमयी माया को भगवान् की कृपा से ही जीतकर जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत साधनानुष्ठान नामक अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

स्वां स्वांशस्य जीवस्य बन्धहेतुं दैवीं देवस्य विष्णोः शक्तिं पराभाव्य तत्प्रसादेनैव जित्वा स्वरूपेण ब्रह्मत्वेनावतिष्ठते ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु की माया ही परमात्मा के अशंभूत जीव के बन्धन का कारण है । उसको जीव परमात्मा की कृपा से ही जीतकर अपने स्वरूप में स्थित होता है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के अठाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२८।।

उनतीसवाँ अध्याय

भक्ति काल और काल की महिमा

देवहूतिरुवाच

लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च । स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥१॥
यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते । भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो॥२॥

अन्वयः— प्रभो ! प्रकृतेः पुरुषस्य महदादीनां यथा सांख्येषु अमीषां स्वरूपं लक्ष्यते येन तत्पारमार्थिकं यन्मूलं तत्पारमार्थिकं तत्कथितं मे भक्तियोगस्य मार्गं विस्तरशः ब्रूहि ।।१-२।।

देवहूति ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! प्रकृति पुरुष तथा महदादि का जैसा लक्षण सांख्यशास्त्र में कहा गया है, तथा जिसके द्वारा उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है तथा भक्तियोग ही जिसका प्रयोजन है, उसको तो आपने कहा अब आप मुझे भक्तियोग का मार्ग विस्तार से बतलायें ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

एकोनत्रिंशके भक्तियोगस्तु बहुधोच्यते । कालस्य च बलं घोरा संसृतिश्च विरक्तये ।।१।। उक्तानुवादपूर्वकं भक्तिमार्गभेदान्पृच्छति द्वाभ्याम् । लक्षणं महदादीनां यथा सांख्येषु तथा कथितम् । येन लक्षणेन । तत्पारमार्थिकं परस्परविभक्तमित्यर्थः । यो भक्तियोगो मूलं प्रयोजनं यस्य तद्यन्मूलम् । तत्कथितम् । तस्य भक्तियोगस्य मार्गं प्रकारं विस्तरतो मे ब्रूहि ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

उनतीसवें अध्याय में भक्तियोग को सगुण निर्गुण आदि के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया गया है । तथा संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिए काल के बल तथा भयङ्कर सृष्टि का वर्णन किया गया है ॥१॥ कहे

गये विषयों का पहले अनुवाद करके दो श्लोको द्वारा भक्तियोग के भिन्न-भिन्न मार्गों को देवहूति ने पूछा । सांख्य शास्त्र में महत् तत्त्व इत्यादि का जैसा लक्षण बतलाया गया है, उसे तो आपने बतलाया । जिस लक्षण के द्वारा उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है उसको आपने बतलाया । भक्तियोग ही जिसका प्रयोजन है, उसको आपने बतलाया है । अब आप उस भक्तियोग के प्रकार को विस्तार से बतलायें ॥१-२॥

विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् । आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतीः ॥३॥

अन्वयः— हे भगवन् येन पुरुषः सर्वतः विरागः भवेत् तत्जीवलोकस्य बहुधा संसृतीः ममं आचक्ष्व ॥३॥

अनुवाद— जिसको सुन लेने से मनुष्यों को सभी वस्तुओं से वैराग्य हो जाता है, उस जीव लोक की जन्ममरण रूप अनेक प्रकार की गतियों को आप मुझे बतलाइये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

येन संसृतीनामाख्यानेन विगतरागो भवेत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिन जन्म-मरण रूप गतियों को सुन लेने से मनुष्य का संसार की सभी वस्तुओं से वैराग्य हो जाता है, उसे आप मुझे बतलाइये ॥३॥

कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते । स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥४॥

अन्वयः— बत यद्धेतोः जनाः कुशलं कुर्वन्ति परेषा परस्य ते ईश्वररूपस्य कालस्य स्वरूपं ब्रूहि ॥४॥

अनुवाद— जिसके भय से भयभीत होकर मनुष्य पुण्य कर्मों को किया करते हैं आप अपने उस ब्रह्मा आदि के भी नियामक सर्वसमर्थ काल के भी स्वरूप का वर्णन करें ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वररूपस्य महाप्रभावस्य ते त्वदात्मकस्य । यद्धेतोर्यद्भयात्कुशलं पुण्यं कुर्वन्ति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जो काल महाप्रभाव सम्पन्न है । तथा भगवदात्मक है जिसके भय से भयभीत होकर लोग पुण्य कर्मों को किया करते हैं उस काल का भी आप वर्णन करें ॥४॥

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यानाश्रये ।
श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

अन्वयः— मिथ्याभिमतेरचक्षुषः लोकस्य अनाश्रये तमसि चिरं प्रसुप्तस्य । कर्मस्वनुविद्धया धिया श्रान्तस्य त्वं किल योगभास्करः आविरासीः ॥५॥

अनुवाद— ज्ञान दृष्टि के लुप्त हो जाने के कारण जिन लोगों को देह आदि मिथ्या वस्तुओं में आत्माभिमान हो गया है तथा बुद्धि के कर्मासक्त हो जाने के कारण जो अत्यन्त थककर दीर्घकाल से अपार संसार में सोए पड़े हैं, ऐसे लोगों को जगाने के लिए योग को प्रकाशित करने वाले सूर्य ही आप प्रकट हुए हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अचक्षुषोऽज्ञस्य । अतो मिथ्याभूते देहादावभिमतिरहंकारो यस्य । अतः कर्मसु अनुविद्धया आसक्तया धिया श्रान्तस्य। अत एवानाश्रयेऽपारे तमसि संसारे चिरं प्रसुप्तस्य लोकस्य प्रबोधाय त्वं योगप्रकाशको भास्करः किलाविर्भूतोऽसि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञान दृष्टि के विनष्ट हो जाने के कारण यह सम्पूर्ण संसार अज्ञ बना हुआ है । अतएव उसको मिथ्या देहादि मे आत्मभिमान हो गया है । उसके कारण कर्मों में बुद्धि के आसक्त हो जाने के कारण यह संसार थककर अपार अन्धकार में दीर्घकाल से सोया पड़ा है । इस संसार को जगाने के ही लिए आप योग को प्रकाशित करने वाले योग सूर्य के रूप में प्रकट हुए हैं ॥५॥

मैत्रेय उवाच

इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः । आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥६॥

अन्वयः— कुरुश्रेष्ठ इति मातुः श्लक्ष्णं वचः प्रतिनन्द्य महामुनिः करुणार्दितः प्रीतः ताम् आबभाषे॥६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! अपनी माता की इस प्रकार की मनोहर वाणी को सुनकर महामुनि कपिलजी ने उनकी प्रशंसा की तथा सभी जीवों के प्रति दया से द्रवित होकर प्रसन्नता पूर्वक उन्होंने कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

श्लक्ष्णं सुन्दरम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्लक्ष्ण शब्द का अर्थ सुन्दर है ॥६॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते । स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥

अन्वयः— भामिनि । मार्गै भक्तियोगः बहुविधः भाव्यते । पुंसां स्वभावगुणमार्गेण भावो विभिद्यते ॥७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे मातः ! साधकों के भाव के अनुसार भक्तियोग अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है । स्वभाव और गुणों के भेद से भी मनुष्यों के भाव में भेद आ जाता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मार्गैः प्रकारविशेषैः । तानेवाह । स्वभावभूता ये गुणास्तेषां मार्गेण वृत्तिभेदेन । भावोऽभिप्रायः । फलसंकल्पभेदाद्-भक्तिभेद इत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मार्गैः का अर्थ है प्रकार विशेषों के द्वारा । इन प्रकार विशेषों का वर्णन इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । स्वभाव रूपी गुणों की वृत्ति की भिन्नता के द्वारा मनुष्यों के अभिप्राय भिन्न हो जाते हैं । अर्थात् फलकी भिन्नता तथा सङ्कल्प की भिन्नता के द्वारा भी भक्ति का भेद हो जाता है ॥७॥

अभिसंधाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा । संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥८॥

अन्वयः— यः संरम्भी हिंसा दम्भं, वा मात्सर्यमेव अभिसंधाय मयि भिन्न दृग्भावं कुर्यात् सः तामसः ॥८॥

अनुवाद— जो क्रोधी पुरुष अपने हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव रखकर भेद का दर्शन करते हुए मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अभिसंधाय सङ्कल्प्य । संरम्भी क्रोधी । भिन्नदृक् भेददर्शी । यो भावं भक्तिं कुर्यात्स त्रिविधोऽपि तामसः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जो क्रोधी तथा भेददर्शी मनुष्य हिंसा, दम्भ, अभिमान और मात्सर्य का सङ्कल्प करके मेरी भक्ति करता है वह मेरे सात्त्विक, राजस एवं तामस इन तीन प्रकार के भक्तों में से मेरा तामस भक्त है ॥८॥

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा । अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥९॥

अन्वयः— यः पृथग्भावः विषयान् यशः ऐश्वर्यम् एव वा अभिसंधाय माम् अर्चादौ अर्चयेत् स राजसः ॥९॥

अनुवाद— जो भेददर्शी पुरुष विषय, यश एवं ऐश्वर्य की भावना से संकल्प करके अर्चा (मूर्तियों) में मेरी आराधना करता है वह मेरा राजस भक्त है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पृथग्भावो भेददर्शी ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पृथग्दर्शी पद का अर्थ है भेददर्शी ॥९॥

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् । यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

अन्वयः— यः पृथग्भावः कर्मनिर्हारम्, परिस्मिन् तदर्पणम् वा यष्टव्यमिति वा अभिसन्धाय यजेत् सः सात्त्विकः॥१०॥

अनुवाद— जो भेददर्शी उपासक अपने पापों का विनाश करने के लिए अथवा अपने सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा को समर्पित करने के लिए अर्थात् यजन करना मेरा कर्तव्य है, इस भावना से मेरी आराधना करता है, वह मेरा सात्त्विक भक्त हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कर्मनिर्हारं पापक्षयम् । परस्मिन्परमेश्वरे । तदर्पणं कर्मार्पणम्, भगवत्प्रीतिमुद्दिश्येत्यर्थः । यष्टव्यमिति, विधिसिद्धिमुद्दिश्येत्यर्थः। भेददर्शित्वमर्चादावर्चनं च त्रिष्वपि समानम् । तदेवं तामसादिभक्तिषु त्रयस्त्रयो भेदाः । तासु यथोत्तरं श्रैष्ठ्यम् । एवं च श्रवणकीर्तनादयो नवापि प्रत्येकं नव नव भेदाः । तदेवं सगुणा भक्तिरेकाशीतिभेदा भवति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

कर्मनिर्हार का अर्थ है पापों का विनाश । जो भेददर्शी मनुष्य अपने पापों का विनाश करने के लिए, अथवा परमात्मा के मुखोल्लासार्थी परमात्मा की प्रसन्नता के लिए अपने कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करने के लिए अथवा श्रीभगवान् की भक्ति करना मेरा धर्म हो, इस बात को सोचकर मेरी आराधना करता है, वह मेरा सात्त्विक भक्त हैं । भददर्शी होना अथवा मूर्ति की पूजा करना तीनों प्रकार के भेदों का होना एक समान है । तमस इत्यादि तीनों भेदों के परस्पर में मिश्रित हो जाने से भक्ति के नवभेद हो जाते हैं । तामस आदि भेदों में उत्तरोत्तर भेद श्रेष्ठ हैं । इन नवों भेदों के श्रवण, कीर्तन स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन इन नवों के परस्पर में मिला दने से सगुण भक्ति के इक्यासी भेद हो जाते हैं ॥१०॥

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्ना तथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥११॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् । अहैतुक्यव्यवहिताया भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥

अन्वयः— गङ्गाम्भसः अम्बुधौ यथा मदगुण श्रुतिमात्रेण सर्वगुहाशये मयि अविच्छिन्ना मनोगति पुरुषोत्तमे अहैतुकी अव्यवहिता या भक्तिः निर्गुणस्य भक्तियोगस्य लक्षणम् उदाहृतम् ॥११-१२॥

अनुवाद— जिस तरह गङ्गाजी का प्रवाह सदा समुद्र की ओर ही बहता रहता है उसी तरह मेरे गुणों के श्रवण

मात्र से मन की गति का निरन्तर तैल धाराण के समान अविच्छिन्न रूप से सर्वान्तमर्यामी मेरे ही प्रति बने रहना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम का बने रहना ही निर्गुण भक्तियोग का लक्षण हैं ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

निर्गुणा तु भक्तिरेकविधैव, तामाह-मद्गुणश्रुतिमात्रेणेति द्वाभ्याम् । मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि पुरुषोत्तमे मनोगतिरिरिति या भक्तिः सा निर्गुणस्य भक्तियोगस्य लक्षणमित्यन्वयः । अविच्छिन्ना संतता ॥१॥ लक्षणं स्वरूपम् । अहैतुकी फलानुसन्धानशून्या। अव्यवहिता भेददर्शनरहिता च ॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

किन्तु निर्गुणा भक्ति तो केवल एक ही प्रकार की होती है । उसको **मद्गुणश्रुति० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । मेरे गुणों के श्रवण मात्र से मुझ पुरुषोत्तम में मन की जो गति बनी रहती है उसे ही निर्गुण भक्ति योग का लक्षण कहा गया है । अविच्छिन्ना का अर्थ है निरन्तर अर्थात् बिना किसी व्यवधान के । लक्षण शब्द स्वरूप का बोधक है । अहैतुकी भक्ति का अर्थ है निष्काम भक्ति अव्यवहिता का अर्थ है भेद दर्शन से रहित । अर्थात् निर्गुण भक्ति किसी कामना से रहित तथा भेद दर्शन से रहित होती है ॥११-१२॥

सलोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यकत्वमप्युत । दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥१३॥

अन्वयः— जनाः मत्सेवनं विना सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्य-एकत्वम् दीयमानम् अपि न गृह्णन्ति ॥१३॥

अनुवाद— इस प्रकार के मेरे भक्त मेरी भक्ति को छोड़कर सालोक्य (मेरे साथ एक ही लोक में रहना) सार्ष्टि (मेरे समान ऐश्वर्य) सामीप्य (मेरे निकट में बने रहना) सारूप्य (मेरे समान ही रूप को प्राप्त कर लेना) तथा एकत्व (सायुज्य) को दिए जाने पर भी नहीं लेना चाहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

भक्तानां निष्कामतां कैमुत्यन्यायेनाह-सालोक्यं मया सहैकस्मिन् लोके वासम्, सार्ष्टि समानैश्वर्यम्, सामीप्यं निकटवर्तित्वम्, सारूप्यं समानरूपताम्, एकत्वं सायुज्यम् । उत अपि दीयमानमपि न गृह्णन्ति, कुतस्तत्कामनेत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

भक्तों की निष्कामता को कैमुत्यन्याय से बतलाते हुए भगवान् कपिल कहते हैं कि मेरी निर्गुण भक्ति करने वाले भक्त भक्ति को छोड़कर सालोक्य (मेरे साथ एक ही लोक में रहना) साष्टि (मेरे ही समान ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेना) सामीप्य (मेरे समीप में बने रहना) सारूप्य (मेरे समान रूप को प्राप्त कर लेना) तथा एकत्व (सायुज्य) को दिये जाने पर भी नहीं लेते हैं तो फिर वे इन सालोक्य की प्राप्ति की कामना ही कैसे कर सकते हैं ?॥१३॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः । येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥१४॥

अन्वयः— स एव आत्यन्तिकः भक्तियोगाख्यः उदाहृतः । येन त्रिगुणं अतिव्रज्य महाभावाय उपपद्यते ॥१४॥

अनुवाद— वह निर्गुण भक्ति ही आत्यन्तिकभक्तियोग कहा गया है उसी के द्वारा मेरा भक्त तीनों गुणों को पार करके मेरे दिव्य रूप को प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

किमिति तर्हि भजन्ते भक्तेरेव परमफलत्वादित्याह-स एवति । ननु त्रैगुण्यंहित्वा ब्रह्मप्राप्तिः परमफलं प्रसिद्धम् । सत्यम् । तत्तु भक्त्यावानुषङ्गिकमित्याह । येन भक्तियोगेन । मद्भावाय ब्रह्मत्वाय ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि वे सालोक्य आदि को नहीं लेते हैं, तो फिर किसलिए भजन करते हैं ? अर्थात् उनके भजन का उद्देश्य क्या है ? तो इसका उत्तर यह है कि उनके लिए भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ फल है । इस बात को **स एव इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । प्रश्न है कि तीनों गुणों को पार कर लेने के पश्चात् ब्रह्म की प्राप्ति ही सर्वश्रेष्ठ फल है यह प्रसिद्ध है । तो यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है । भक्ति में तो ब्रह्म की प्राप्ति आनुषाङ्गिक है । उस निर्गुण भक्तियोग के द्वारा भक्त ब्रह्म हो जाता है ॥१४॥

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा । क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥
मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः । भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमने न च ॥१६॥
महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया । मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥१७॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे । आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥
मद्धर्मणा गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः । पुरुषस्याञ्जसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥१९॥

अन्वयः— अनिमित्तेन महीयसा स्वधर्मेण निषेवितेन नातिहिंस्रेण शस्तेन नित्यशः क्रियायोगेन, मदधिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजा स्तुत्यभिबन्दनैः, भूतेषु मदभावनया सत्त्वेन असङ्गमेन च, महता बहुमानेन, दीनानामनुकम्पया, आत्मतुल्येषु, मैत्र्या चैव, यमेन, नियमेन च, आध्यात्मिकानुश्रवणात् मे नाम सङ्कीर्तनाच्च आर्जवेन, आर्यसङ्गेन तथा अनहंक्रियया, एतैः गुणैः मद्धर्मणः पुरुषस्य परिसंशुद्ध आशयः श्रुतमात्रगुणं माम् अभ्येति ॥१५-१९॥

अनुवाद— निष्कामभाव से श्रद्धापूर्वक अपने नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन करके नित्य ही हिंसा रहित उत्तम क्रियायोग का अनुष्ठान करने से, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने से, प्राणियों में मेरी भावना करने से, धैर्य, और वैराग्य का आवलम्बन करके महापुरुषों का सम्मान करने से, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने से, यम नियमों का पालन करने से, अध्यात्मशास्त्रों का श्रवण करने से तथा मेरे नामों का सङ्कीर्तन करने से, मन की सरलता, सत्पुरुषों की सङ्गति, एवं अहङ्कार राहित्य के कारण मेरे भागवत धर्मों का अनुष्ठान करने वाले भक्त पुरुष का चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणों के श्रवण मात्र से अनायास ही मुझमें लग जाता है ॥१५-१९॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूताया भक्तेः साधनान्याह पञ्चभिः । निषेवितेन सम्यगनुष्ठितेन । अनिमित्तेन स्वधर्मेण नित्यनैमित्तिकेन । महीयसा श्रद्धादियुक्तेन । क्रियायोगेन पञ्चरात्राद्युक्तपूजाप्रकारेण । शस्तेन निष्कामेन । मद्धिष्ण्यं मत्प्रतिमादि तस्य दर्शनादिभिः । सत्त्वेन धैर्येण । असङ्गमेन वैराग्येण । आर्जवेनाकौटिल्येन । मद्धर्मणो भगवद्धर्मानुष्ठातुः पुरुषस्याशयश्चित्तम् ॥१५-१९॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के भक्ति के साधनों का वर्णन श्रीभगवान् पाँच श्लोकों से करते हैं । निषेवितेन पद का अर्थ है, सम्यग् अनुष्ठान के द्वारा । श्रद्धा इत्यादि से युक्त होकर अनभिसंहित फल वाले नित्य नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा, हिंसा रहित पाञ्चरात्रागम आदि में वर्णित पूजा के प्रकारों के द्वारा, निष्काम कर्मो के द्वारा, मेरी प्रतिमा के दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति तथा अभिवन्दन के द्वारा, सत्त्व अर्थात् वैराग्य तथा असङ्ग अर्थात् वैराग्य के द्वारा, महापुरुषों का सम्मान करने से, दीन जीवों पर कृपा करने से, अपने सदृश व्यक्तियों के साथ मित्रता की भावना रखने से, आर्जव अर्थात् मन की सरलता से भगवद् धर्म का अनुष्ठान करने वाले पुरुष का चित्त मेरे गुणों का श्रवण करने मात्र से ही मुझमें लग जाता है ॥१५-१९॥

यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् । एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥२०॥

अन्वयः— यथा वातरथो गन्धः आशयात् घ्राणम् आवृङ्क्ते एवं योगरतं अविकारि यत् चेतः आत्मानम् ॥२०॥

अनुवाद— जिस तरह वायु के द्वारा उड़कर जाने वाला गन्ध अपने आश्रय पुष्प से घ्राण तक पहुँच जाता है उसी तरह भक्तियोग में लगा रहने वाला राग एवं द्वेष आदि विकारों से रहित मन परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रयत्नं विनैव प्राप्तौ दृष्टान्तः-वातो रथः प्रापको यस्य गन्धस्य । आशयात्स्थानात् । आवृङ्क्ते आत्मसात्करोति । अविकारि समं यच्चेतः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रयास किए बिना ही होने वाली परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक करते हैं । जैसे वायु के द्वारा उड़कर गन्ध अपने आश्रय भूत पुष्प से निकलकर घ्राणेन्द्रिय को अपने आप प्राप्त कर लेता है उसी तरह राग द्वेष आदि विकारों से रहित चित्त परमात्मा को अनायास ही प्राप्त कर लेता हैं ॥२०॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा । तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥२१॥

अन्वयः— भूतात्मा अहं सदा सर्वेषु भूतेषु अवस्थितः तम् माम् अवज्ञाय मर्त्यः अर्चाविडम्बनम् कुरुते ॥२१॥

अनुवाद— मैं सभी भूतों में सदा आत्मा रूप से स्थित रहता हूँ, अतएव जो मनुष्य सर्वभूतात्मा रूप से स्थित मुझको छोड़कर केवल मूर्ति में ही मेरी पूजा करते हैं उनका वह ढोंग मात्र हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चित्तशुद्धिश्च सर्वभूतात्मदृष्ट्यैव भवतीति वक्तुं केवलप्रतिमादिनिष्ठां निन्दन्नाह–अहमिति सप्तभिः । अर्चैव विडम्बनमनुकरणम्। अर्चायां पूजाविडम्बनमिति वा । अवज्ञोपेक्षाद्वेषनिन्दाः क्रमेण चतुर्भिर्निषिध्यन्ते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल कहते हैं मुझमें सभी भूतात्मा की दृष्टि करने से ही चित्त की शुद्धि होती है, इस बात को बतलाने के लिए जो लोग केवल प्रतिमा में ही निष्ठा करते हैं, उनकी निन्दा करते हुए वे सात श्लोकों से कहते है । केवल अर्चा में ही मेरी पूजा करना ढोंग मात्र है । अवज्ञा, उपेक्षा, द्वेष तथा निन्दा शब्द से उन लोगों की निन्दा भगवान कहते हैं ॥२१॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् । हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥

अन्वयः— सर्वेषु भूतेषु सन्तम्, आत्मानम् ईश्वरम् मां हित्वा यः मौढ्यात् अर्चां भजते सः भस्मन्येव जुहोति ॥२२॥

अनुवाद— सभी भूतों में आत्मा रूप से विद्यमान रहने वाले मुझ ईश्वर को छोड़कर जो व्यक्ति अपनी मूर्खता के कारण मूर्ति की पूजा करता है, उसकी वह पूजा उसी तरह से व्यर्थ है जैसे भस्म में किया जाने वाला होम व्यर्थ होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हित्वा उपेक्ष्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हित्वा पद का अर्थ है उपेक्षा करके । इस श्लोक में भगवान् ने बतलाया कि सर्वात्मा मेरी उपेक्षा करके मूर्ति मे मेरी पूजा करना व्यर्थ है ॥२२॥

द्विषतः परकाये मां मानिनोभिन्नदर्शिनः । भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥२३॥

अन्वयः— मानिनः भिन्नदार्शिनः परकाये द्विषतः मां द्विषतः, भूतेषु बद्धवैरस्य मनः शान्तिम् न ऋच्छति ।।२३।।

अनुवाद— जो अभिमानी तथा भेददर्शी पुरुष दूसरों के शरीर में रहने वाले मुझसे द्वेष करता है और जीवो से वैर करता है उसके मन को कभी भी शान्ति नहीं मिलती है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२३।।

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे । नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥२४॥

अन्वयः— हे अनघे ! भूतग्रामावमानिनः उच्चावचैः द्रव्यैः उत्पन्नया क्रियया अर्चायां अर्चितः अहं न तुष्ये ।।२४।।

अनुवाद— हे माँ ! जो सभी जीवों का अपमान करता है, उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के द्रव्यों से विधि-विधान पूर्वक मूर्ति में की गयी मेरी पूजा से मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

द्रव्यैरुत्पन्नया क्रियया । भूतग्रामावमानिनस्तन्निन्दकस्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक का अवमान शब्द निन्दा का बोधक है । भगवान् कपिल कहते हैं कि जो व्यक्ति दूसरे जीवों की निन्दा करता है, और मूर्ति में मेरी पूजा अनेक प्रकार के द्रव्यों से विधिविधान पूर्वक करता है, तो उसके द्वारा की जाने वाली उस पूजा से मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ ।।२४।।

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् । यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥२५॥

अन्वयः— स्वकर्मकृत् ईश्वरे मां तावत् अर्चायाम् अर्चयेत् यावत् सर्वभूतेषु अवस्थितम् मां स्वहृदि न वेद ।।२५।।

अनुवाद— अपने धर्मों का पालन करने वाले मनुष्य को तब तक ही अर्चा में सम्पूर्ण जगत् के नियामक मेरी अर्चा करनी चाहिए जब तक कि सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले मेरी स्थिति अपने हृदय में ज्ञात न हो ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमर्चादावर्चनमनर्थकमेव, नेत्याह-अर्चादाविति । सर्वभूतेष्ववस्थितं मां स्वहृदि यावन्न वेद । स्वकर्मकृत्कर्माविरोधेन यथावकाशम् । अनेन कर्मनिष्ठाया अपि स एवावधिरित्युक्तं भवति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि मूर्तियां में परमात्मा की आराधना व्यर्थ है क्या ? तो इसका उत्तर है कि ऐसी बात नहीं है । जब तक उस आराधक को इस बात का ज्ञान न हो कि मैं उसके हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तब तक तो उसको मूर्ति में ही पूजा करनी चाहिए । **स्वकर्मकृत्** का अर्थ है कि समयानुसार अपने वेद विहित कर्मों को करने वाला । इस श्लोक के द्वारा कर्मयोग के अनुष्ठान की अवधि वही बतलायी गयी है, कि जब तक उपासक को अपने हृदय में स्थित परमात्मा का ज्ञान न हो ।।२५।।

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् । तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥२६॥

अन्वयः— परस्यापि आत्मनः यः उदरम् अन्तरम् करोति तस्य भिन्न दृशः उल्बणम् भयम् मृत्युः विदधे ।।२६।।

अनुवाद— जो मनुष्य आत्मा और परमात्मा में थोड़ा सा भी अन्तर (भेद) करता है उस भेददर्शी को मैं मृत्यु रूप से महान् भय उपस्थित करता हूँ ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अन्तरा अन्तरं भेदम् । उत् अपि । अरमल्पम् । अल्पमपि भेदं यः पश्यतीत्यर्थः । यद्वा अन्तरा मध्ये । उदरं शरीरम्। मृत्युरहं तस्य भयं विदधे करोमि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अन्तरा और अन्तर ये दोनों शब्द भेद के बोधक हैं **उत** शब्द भी भेद का वाचक है, और **अरम्** शब्द अल्प का वाचक है । अर्थात् जो भेददर्शी पुरुष आत्मा और परमात्मा में थोड़ा सा भी भेद देखता है, उसको मैं मृत्युरूप से भयङ्कर भय प्रदान करता हूँ । अथवा उदर शब्द शरीर का बोधक है । और अन्तर शब्द मध्य का बोधक है । अर्थात् जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच में शरीर का व्यवधान देखता है उसको मैं मृत्युरूप से भयङ्कर भय प्रदान करता हूँ ॥२६॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् । अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

अन्वयः— अथ सर्वभूतेषु कृतालयम् भूतात्मानं माम्, दानमानाभ्यां मैत्र्या अभिन्नेन चक्षुषा अर्हयेत् ॥२७॥

अनुवाद— अतएव सभी प्राणियों के भीतर निवास करने वाला, सभी भूतों के अन्तर्यामी, मुझ परमात्मा की दान, मान, मित्रता तथा समदर्शित्व के द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अथ अतः सर्वभूतेषु कृतालयं कृतावासम् । तत्र हेतुः-भूतानामात्मानमन्तर्यामिणम् । अभिन्नेन चक्षुषा समदर्शनेन॥२७॥

भाव प्रकाशिका

श्लोक का अथ शब्द अतएव का बोधक । भगवान् बतलाते हैं कि मैं सभी जीवों के भीतर अपना निवास बनाकर अन्तर्यामी रूप से निवास करता हूँ अतएव मैं सभी भूतों की आत्मा हूँ । भक्त को चाहिए कि वह यथायोग दान, मान, मित्रता तथा समदर्शित्व के द्वारा मेरी पूजा करे ॥२७॥

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे। ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥
तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः। तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः॥२९॥

अन्वयः— शुभे अजीवानां जीवाः श्रेष्ठा, ततः प्राणभृतः ततः सचित्ता प्रवराः ततः च इन्द्रिय वृत्तयः, तत्राऽपि स्पर्शवेदिभ्यः रसवेदिनः प्रवराः तेभ्यः गन्धविदः श्रेष्ठाः ततः शब्दविदः वराः ॥२८-२९॥

अनुवाद— हे मातः ! अचेतन पाषाण आदि की अपेक्षा वृक्ष आदि जीव श्रेष्ठ हैं, उनकी अपेक्षा श्वास लेने वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनसे भी मन वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनसे भी इन्द्रियों की वृत्ति वाले जीव श्रेष्ठ है, उनमें भी स्पर्श का अनुभव करने वालों से रस का अनुभव करने वाले, मछली इत्यादि श्रेष्ठ हैं । उन सबों से गन्ध का अनुभव करने वाले भ्रमरादि श्रेष्ठ हैं । उन गन्धज्ञों की अपेक्षा शब्द को जानने वाले प्राणी श्रेष्ठ हें ॥२८-२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्रापि यथोत्तरं मानाद्यतिशयः कर्तव्य इति वक्तुं तारतम्यमाह-जीवा इति सार्धैः षड्भिः । अजीवानामचेतनेभ्यः । ततस्तेष्वपि प्राणभृतः प्राणवृत्तिमन्तः । सचित्ता ज्ञानवन्तः । इन्द्रियाणां वृत्तयो येषु । इन्द्रियवृत्तयो वृक्षाणामपि सूक्ष्माः सन्त्येव। तथाहि महाभारते मोक्षधर्मेषु स्मर्यते 'तस्मात्पश्यन्ति पादपाः' 'तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः' इत्यादि । प्रसिद्धा तु स्पर्शनेन्द्रियवृत्तिरेव। अतस्तेभ्यः स्पर्शवेदिभ्यो रसवेदिनो मत्स्यादयः श्रेष्ठाः । गन्धविदो भ्रमरादयः । शब्दविदः सर्पादयः ॥२८-२९॥

भाव प्रकाशिका

उन भूतों में भी उत्तरोत्तर भूतों का अधिकाधिक सम्मान इत्यादि करना चाहिए । इस बात को बतलाने के लिए साढे छह श्लोको के द्वारा उन सबों के तारतम्य को बतलाते हैं । अजीवानाम् अर्थात् अचेतन पत्थर आदि

की अपेक्षा प्राण की वृत्ति से युक्त वृक्ष आदि जीव श्रेष्ठ हैं । सच्चित्ता: पद का अर्थ है ज्ञानवान् । जीव श्रेष्ठ हैं। ज्ञानवान् जीवों की अपेक्षा इन्द्रियों की वृत्ति से युक्त प्राणी श्रेष्ठ हैं । सूक्ष्मरूप से वृक्षों आदि में भी इन्द्रियों की वृत्तियाँ रहती ही हैं । महाभारत के मोक्ष धर्म नामक पर्व में कहा गया है अतएव वृक्ष भी देखते हैं । वृक्ष भी सूंघते हें । त्वगिन्द्रिय वृत्ति ही प्रसिद्ध हैं । इसलिए कहा गया है— कि स्पर्श को जानने वालों से रस को जानने वाले श्रेष्ठ हैं, मछली इयादि रस को जानने वाले प्राणी हैं । उनकी अपेक्षा गन्ध को जानने वाले भँवरे आदि श्रेष्ठ हैं उनकी अपेक्षा शब्द को जानने वाले सर्प आदि श्रेष्ठ हैं ॥२८-२९॥

रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः । तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥३०॥

अन्वयः— तत्र रूपभेदविदः ततः च उभयतोदतः तेषां बहुपदाः श्रेष्ठा ततः चतुष्पादः ततः द्विपात् श्रेष्ठः ॥३०॥

अनुवाद— रूप के भेद को जानने वाले काकादि की अपेक्षा जिन प्राणियों के ऊपर नीचे दोनों ओर दाँत होते हैं वे श्रेष्ठ हैं । उनकी अपेक्षा अनेक पैरों वाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे भी चार पैर वाले जीव पशु आदि श्रेष्ठ हैं और उनकी भी अपेक्षा दो पैरों वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

रूपभेदविदः काकादयः । उभयतो दन्ताः येषाम् । अपादेभ्यो बहुपादास्तेभ्यश्चतुष्पादा इत्यर्थः । ततो द्विपान्मनुष्यः॥३०॥

भाव प्रकाशिका

शब्द को जानने वालों की अपेक्षा रूपों के भेद को जानने वाले कौए आदि श्रेष्ठ हैं, उन सबों की अपेक्षा वे जीव श्रेष्ठ हैं जिनके ऊपर और नीचे दोनों ओर दाँत होते हैं । जिन प्राणियों के पैर नहीं हैं उन सबों की अपेक्षा अनेक पैरों वाले जीव श्रेष्ठ हैं, और उन सबों की अपेक्षा चार पैर वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं उन सबों की अपेक्षा दो पैरों वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥३०॥

ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः । ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥३१॥

अन्वयः— ततः च चत्वारो वर्णाः तेषां ब्रह्मण उत्तमः । ब्रह्मणेषु अपि वेदज्ञः श्रेष्ठः ततः हि अर्थज्ञः श्रेष्ठः ॥३१॥

अनुवाद— मनुष्यों की अपेक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन वर्णों वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण उत्तम हैं । ब्राह्मणों में भी वेदज्ञ श्रेष्ठ है और वेदज्ञों में भी वेदार्थ का जानने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तेषु वर्णाः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उन मनुष्यों की अपेक्षा चारो वर्णो के मनुष्य श्रेष्ठ है । उनकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । ब्राह्मणों में भी वेदज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और उन सबों से भी वेदार्थ को जानने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥३१॥

अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् । मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥३२॥

अन्वयः— अर्थज्ञात् संशयच्छेताश्रेष्ठः ततः स्वकर्मकृत् श्रेयान् ततो मुक्तसङ्गः ततः आत्मनः धर्मम् अदोग्धा भूयान्॥३२॥

अनुवाद— अर्थज्ञ पुरुष की अपेक्षा अर्थ के विषय में होने वाले संदेह को दूर करने वाले श्रेष्ठ हैं, उससे भी अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला मनुष्य श्रेष्ठ है और उनसे भी आसक्ति को त्यागकर निष्काम भाव से अपने धर्म का आचरण करने वाले श्रेष्ठ हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

संशयच्छेत्ता मीमांसकः । ततोऽपि केवलात्स्वकर्मकृत् । मुक्तसङ्गस्य लक्षणमात्मनो धर्ममदोग्धा निष्काम इत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

संशयछेत्ता शब्द से मीमांसक को कहा गया है । उन सबों की अपेक्षा अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं । उन सबों की भी अपेक्षा आसक्ति का परित्याग करके निष्काम भाव से अपने धर्म का पालन करने वाले श्रेष्ठ हैं ।।३२।।

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः । मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ।।
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ।।३३।।

अन्वयः— तस्मात् मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा, निरन्तरः मयि अर्पितात्मनः पुंसः मयि संन्यस्त कर्मणः अकर्तुः समदर्शनात् परं भूतं न पश्यामि ।।३३।।

अनुवाद— उनकी भी अपेक्षा अपने समस्त कर्मों, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही समर्पित करके तथा भेदभाव को छोड़कर मेरी उपासना करने वाले श्रेष्ठ हैं । मुझको ही अपने मन और कर्मों को समर्पित करके अकर्ता और समदर्शी पुरुष से श्रेष्ठ मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं देखता हूँ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अर्पिता अशेषाः क्रिया अर्थास्तत्फलान्यात्मा देहश्च येन अतएव निरन्तरोऽव्यवहितः । अकर्तुः कर्तृत्वाभिमानशून्यात्।।३३।।

भाव प्रकाशिका

जिन पुरुषों ने अपने सारे कर्मों, उनके सम्पूर्ण फलों तथा अपनी आत्मा (शरीर) को भी मुझको ही समर्पित कर दिया है । अतएव निरन्तर भेद की भावना से रहित कर्तृत्वाभिमान से रहित पुरुष से श्रेष्ठ कोई भी पुरुष नहीं है ।।३३।।

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् । ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ।।३४।।

अन्वयः— ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवान् इति मानयन् एतानि भूतानि बहुमानयन् मनसा प्रणमेत् ।।३४।।

अनुवाद— यह सोचकर कि इन सबों मे अपनी जीव कला के द्वारा भगवान् अनुगत हैं इन सबों का सम्मान और इन सबों का मन से ही प्रणाम करना चाहिए ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

जीवानां कलया परिकलनेन अन्तर्यामितया प्रविष्ट इति दृष्टयेत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

जीव की कला के द्वारा नियमन करने के कारण परमात्मा इन सबों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं, उस दृष्टि से इन सबों को मन से प्रणाम करना चाहिए ।।३४।।

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः । ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ।।३५।।

अन्वयः— हे मानवि, मया भक्तियोगः योगश्च उदीरितः ययोः एकतरेण एव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ।।३५।।

अनुवाद— हे माँ ! मैंने भक्तियोग तथा योग को तुम्हे बतलाया इन दोनों में से किसी एक को भी अपनाकर मनुष्य परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

उक्तं भक्तियोगं पूर्वोक्तेनाष्टाङ्गयोगेन सहोपसंहरति-भक्तियोगश्चेति । हे मानवि । पुरुषं परमेश्वरम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा भगवान् कपिल वर्णित भक्तियोग का उपसंहार पूर्वोक्त अष्टाङ्ग योग के साथ करते हैं। वे कहते हैं हे मानवि मनुपुत्रि माँ ! मैंने भक्तियोग और योग दोनों का वर्णन कर दिया है इन दोनों मे किसी एक को भी अपनाकर योगी परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है ॥३५॥

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः । परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥३६॥
रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते । भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥३७॥

अन्वयः— भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः रूपभेदास्पदम् दिव्यम् कर्म विचेष्टितम् एतद्भगवतो रूपम् काल इत्यभिधीयते। प्रधानं पुरुषं परं, भिन्नदृशां यतो महदादिभूतानां भयम् ॥३६-३७॥

अनुवाद— भगवान् परमात्मा पर ब्रह्म का अद्भुत प्रभाव सम्पन्न तथा सांसारिक पदार्थों के अनेक प्रकार की विचित्रताओं का कारण भूतस्वरूप विशेष ही काल शब्द से अभिहित किया जाता है । प्रकृति और पुरुष इसके ही रूप हैं और यह उनसे भिन्न भी है । अनेक प्रकार के कर्मों का मूल भी यही है । इसी के द्वारा महत् तत्त्वादि के अभिमानी भिन्नदर्शी प्राणियों को सदा भय बना रहता है ॥३६-३७॥

भावार्थ दीपिका

यदन्यत्पृष्टं जीवस्य संसृतीः कालस्य स्वरूपं चाचक्ष्वेति तदाह-एतदिति सार्धेन । एतत्सर्वनियन्तृ यद्भगवतो रूपम् । कीदृशम् । प्रधानपुरुषात्मकं परं तद्व्यतिरिक्तं च एतदेव दैवमित्यभिधीयते । कीदृशम् । कर्मणो विचेष्टितं नानासंसृतिलक्षणं यस्मात्तत् । दैवप्रेरितकर्मकृताः संसृतयो विचित्रा इत्यर्थः । एतदेव भगवतो रूपं काल इति चाभिधीयते । कीदृशम् । रूपभेदस्य वस्तूनामन्यथात्वस्यास्पदमाश्रयः कारणम् । उक्तं हि '**कालाद्गुणव्यतिकरः**' इति वक्ष्यते च '**गुणव्यतिकरः कालः**' इति। दिव्यमद्भुतप्रभावम् । तदेवाह-भूतानामिति यावत्समाप्ति । महदादीनां तत्तदभिमानिनां जीवानाम् ॥३६-३७॥

भाव प्रकाशिका

यह जो देवहूति के द्वारा पूछा गया है कि आप जीवों की गतियों का तथा काल के स्वरूप का वर्णन करें तो उसका उत्तर भगवान् कपिल ने एतदित्यादि डेढ श्लोको से दिया है । यह सबों के नियामक जो भगवान् का रूप है वह प्रधान पुरुषात्मक है और उनसे भिन्न भी है । इसी को दैव शब्द से अभिहित किया जाता है । उसी के द्वारा प्रेरित होकर प्राणी अनेक प्रकार के कर्मों को करता है । उसी के कारण जीवों को अनेक प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती हैं । दैव से प्रेरित होकर किए गये कर्मों के कारण ही अनेक प्रकार की विचित्र गतियों की प्राप्ति होती है। श्रीभगवान् के इसी रूप को काल कहते हैं । यह काल ही वस्तुओं के रूप में होने वाले परिवर्तन का कारण है। इस अर्थ का प्रतिपादन **कालाद्गुणव्यतिकरः** अर्थात् काल के कारण गुणों में भेद होता है । आगे चलकर कहेंगे कि गुणों में होने वाले व्यतिकर परिणाम का कारण काल ही है । इस काल का अद्भुत प्रभाव है काल की। उसी को **भूतानाम्० इत्यादि** इस श्लोक की समाप्ति पर्यन्त कहा गया है । अर्थात् महत् तत्त्व इत्यादि के अभिमानी जीवों को इस काल से ही सदा भय बना रहता है ॥३६-३७॥

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः । स विष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः॥३८॥

अन्वयः— यः अखिलाश्रयः अन्तः प्रविश्य भूतैः भूतानि अत्ति स असौ विष्ण्वाख्यः अधियज्ञः कलयतां प्रभुः कालः ॥३८॥

अनुवाद— जो सबों का आश्रय होने के कारण सभी प्राणियों में प्रवेश करके भूतो के द्वारा ही उनका संहार करते हैं वे सम्पूर्ण जगत् के प्रशासक तथा ब्रह्मा आदि देवताओं के भी प्रभु भगवान् काल ही हैं । वे ही यज्ञादि का भी फल प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

भयहेतुत्वमाह-य इति । भूतैरेव भूतान्यत्ति संहरति । अधियज्ञो यज्ञफलदाता । कलयतां वशीकुर्वताम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

काल ही भय का हेतु है, इस अर्थ का प्रतिपादन वे **योऽन्तः इत्यादि** श्लोक से किया गया है । वे भगवान् भूतों के द्वारा ही भूतों का संहार करने का काम करते हैं । वे ही अधियज्ञ अर्थात् यज्ञों का फल प्रदान करने वाले हैं । जितने भी दूसरों को मारने वाले हैं उन सबों के स्वामी भगवान् काल हैं ॥३८॥

न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः । आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥३९॥

अन्वयः— अस्य च कश्चित् दयितः न न द्वेष्यः न च बान्धवः अन्तकृत् अप्रमत्तः असौ प्रमत्तं जनम् आविशति॥३९॥

अनुवाद— इस काल का कोई न तो प्रिय है और न कोई शत्रु है, इसका कोई बन्धु भी नहीं है । यह सदा सावधान रहता है और जो लोग प्रमाद वशात् परमात्मा से पराङ्मुख रहते हैं, उनके भीतर प्रवेश करके उन लोगों नाश कर देने का काम करता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् । यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥४०॥

अन्वयः— यत् भयात् अयं वातः वाति यद्भयात् सूर्य तपति, यद्भयात् देवः वर्षति, यद्भयात् भगणः भाति ॥४०॥

अनुवाद— इस काल के ही भय से वायु सदा चला ही करती है कभी रुकती नहीं है, इस काल के ही भय से सूर्य सदा तपते ही रहते है । काल के ही भय से इन्द्र समयानुसार वर्षा करने का काम करते है, और इस काल के भय से सभी नक्षत्रगण सदा चमकते ही रहते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह । स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

अन्वयः— यद्भीताः वनस्पतयः औषधिभिः सह लताश्च स्वे-स्वे काले पुष्पाणि च फलानि च गृह्णन्ति ॥४१॥

अनुवाद— काल के ही भय से भयभीत रहने के कारण औषधियों के साथ लतायें और वनस्पतियाँ भी अपने-अपने समय पर ही पुष्प तथा फल को ग्रहण करती हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

यत् यस्माद्भीताः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उस काल के ही भय से सभी वनस्पतियाँ औषधियाँ और लताएँ अपने समय से ही पुष्पों और फलों को धारण करने का काम करती हैं ॥४१॥

स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः । अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥४२॥

अन्वयः— भीताः सरितः स्रवन्ति यतः उदधिः न उत्सर्पति, अग्निः इन्धे, गिरिभिः, भूः यद्भयात् न मज्जति ॥४२॥

अनुवाद— काल के ही भय से भयभीत बनी हुयी नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं और काल के ही भय

से भयभीत रहने के कारण सागर अपनी मर्यादा से कभी बाहर नहीं जाता है । काल भगवान् के भय से भयभीत अग्नि प्रज्ज्वलित ही रहती है और काल के ही भय से पर्वतों के साथ पृथिवी जल में नहीं डूबती है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

यतो भीताः सरितः स्रवन्ति । इन्धे दीप्यते सहगिरिभिर्भूः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

काल के ही भय से भयभीत रहने वाली नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं काल के ही भय से अग्नि हमेशा प्रज्ज्वलित होते हैं और काल के ही प्रभाव से पर्वतों के साथ पृथिवी एकार्णव के जल में नहीं डूबती है ॥४२॥

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः । लोकं स्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥४३॥

अन्वयः— यत् नियमात् अदः नभः श्वसतां पदं ददाति महान् सप्तभिः आवृत्तं स्वदेहं लोकं तनुते ॥४३॥

अनुवाद— काल के ही प्रशासन के भय से आकाश श्वास लेने वाले प्राणियों को श्वास लेने के लिए अवकाश प्रदान करता है तथा महत् तत्त्व अहङ्कारात्मक सात अवरणो से आवृत होकर ब्रह्माण्ड के रूप में अपना विस्तार करता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अदो नभो यन्निहङ्कामाद्यस्याज्ञया । महान्महत्तत्त्वमरात्मकं स्वदेहं लोकत्वेन तनुते विस्तारयति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

विप्रकृष्ट देशवर्ती आकाश काल की ही आज्ञा के कारण श्वास लेने वाले प्राणियों को श्वास लेने के लिए अवकाश प्रदान करता है । महत् तत्त्व भी काल की ही आज्ञा से अहङ्कारात्मक सात आवरणों से आवृत अपने शरीर का ब्रह्माण्ड के रूप में विस्तार करता है ॥४३॥

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् । वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वशे एतच्चराचरम् ॥४४॥

अन्वयः— यद्भयात गुणभिमानिनः देवा येषां वशे एतच्चराचरम् अस्य सर्गादिषु अनुयुगं वर्तन्ते ॥४४॥

अनुवाद— उस काल भगवान् के ही भय से जिनके अधीन यह समपूर्ण चराचरात्मक जगत् है, गुणों के नियामक ब्रह्मा आदि देवता प्रत्येक युग में इस जगत् की सृष्टि आदि के कार्यों में सदा तत्पर बने रहते हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

गुणाभिमानिनो गुणनियन्तारो देवाः ब्रह्मादयोऽस्य विश्वस्य सर्गादिषु प्रवर्तन्ते । अनुयुगं बारबारमित्यर्थः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

काल के ही भय से भयभीत रहने के कारण जिनके अधीन ही यह चराचरात्मक जगत् रहा करता है, वे ब्रह्मा आदि गुणों के नियामक देवता भी इस जगत् की सृष्टि आदि के कार्यों में प्रत्येक युगों में तत्पर रहकर बार-बार सृष्टि आदि के कार्यों को किया करते हैं ॥४४॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः । जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥

अन्वयः— स अनन्तः अव्ययः अन्तकरः कालः अनादिः आदिकृत् जनने जनं जनयन् मृत्युना अन्तकम् मारयन् वर्तत इति शेषः ॥४५॥

अनुवाद— यह काल अनन्त है तथा निर्विकार है। यह दूसरों का अन्त करता है तथा स्वयम् अनादि होकर दूसरों को उत्पन्न करने वाला है। यह पिता से पुत्र की उत्पत्ति कराते हुए जगत् की रचना करता है। और अपनी संहारिका शक्ति मृत्यु के द्वारा यमराज को भी मरवाकर उसका अन्त कर देता है ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कपिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

जनेन पित्रादिना जनं पुत्रादिं जनयन्नादिकृत्। मृत्युनाऽन्तकमपि मारयन्नन्तकरः स्वयं त्वनादिरनन्तोऽव्ययश्च ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

पिता इत्यादि के द्वारा पुत्रों आदि को उत्पन्न कराकर जगत् की रचना करता है, और मृत्यु के द्वारा यम को मरवाकर उनका नाश कर देता है। यह काल स्वयम् अनादि, अनन्त और निर्विकार है ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के उनतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

शरीरादि में आसक्त पुरुष की अधोगति का वर्णन

कपिल उवाच

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम्। काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनाबलिः ॥१॥

अन्वयः— वायोः घनावलिः इव अयं जनः काल्यमानोऽपि बलिनः तस्य उरुविक्रमम् न वेद ॥१॥

भगवान् कपिल ने कहा

अनुवाद— जिस तरह वायु के द्वारा उड़ाकर ले जाया जाने वाला मेघ समूह वायु के बल को नहीं जान पाता है उसी तरह काल के द्वारा प्रेरित होकर जीव विभिन्न योनियों में जाता है किन्तु वह बलवान् काल के प्रबल पराक्रम को नहीं जान पाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रिंशे तु कायकान्तादिलालनाकुलचेतसाम्। कामिनां तामसी पापादधोगतिरुदीर्यते ।।१।। कालप्रभाववर्णन पूर्वकं वैराग्याय विचित्रकर्मकृतां संसृतिमध्यायत्रयेण प्रपञ्चयति। तस्यैतस्य बलिनः कालस्य। बलिनेति वा पाठः। काल्यमानो विचाल्यमानोऽपि। वायोर्विक्रमं यथा मेघपङ्क्तिर्न वेद ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पत्नी आदि तथा सुन्दरियों के विषय में जिन मनुष्यों का चित्त व्याकुल है, उन्हीं जीवों की पाप जन्य तामसी अधोगति का वर्णन इस तीसवें अध्याय में किया गया है। काल के प्रभाव का वर्णन पूर्वक संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिए जीवों द्वारा किए जाने वाले विचित्र कर्मों के फल स्वरूप अधोगतियों का वर्णन तीन अध्यायों के

द्वारा करते हैं । उस बलवान् काल के द्वारा विभिन्न योनियों में आता हुआ जीव काल के पराक्रम को उसी तरह से नहीं जान पाता है जिस तरह वायु के द्वारा उड़ाया जाने वाला मेघ समूह वायु के पराक्रम को नहीं जानता हैं।।१।।

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे । तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ।।२।।

अन्वयः— पुमान् दुःखेन सुखहेतवे यं यमर्थमुपादत्ते भगवान् तं तं धुनोति यत् कृते पुमान् शोचति ।।२।।

अनुवाद— पुरुष सुख को प्राप्त करने के लिए जिस जिस वस्तु को बड़े कष्ट से प्राप्त करता है भगवान् काल उस उस वस्तु को विनष्ट कर देते हैं जिसके कारण मनुष्य बड़ा ही शोक करता है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

विक्रममेवाह । य यमर्थं दुःखेन प्रयासेनोपादत्ते आपादयति तं तमर्थं भगवान्कालो धुनोति विनाशयति । यत्कृते यन्निमित्तम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

काल के पराक्रम का वर्णन करते हुए भगवान् कपिल कहते हैं जिन-जिन वस्तुओं को मनुष्य बड़े कष्ट पूर्वक प्राप्त करता है, उन सभी वस्तुओं को महाबलवान् भगवान् काल विनष्ट कर देते हैं उसी के कारण मनुष्य बहुत अधिक शोक करता है ।।२।।

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः । ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ।।३।।

अन्वयः— दुर्मति अध्रुवस्य सानुबन्धस्य देहस्य गृहक्षेत्रवसूनि मोहात् ध्रुवाणि मन्यते ।।३।।

अनुवाद— उसका कारण यह है कि अज्ञानी जीव इस अनित्य शरीर और उसके संबन्धियों को गृह, क्षेत्र (खेत) और सम्पत्तियों को अज्ञान के कारण नित्य मान लेता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

शोके हेतुः-यत् यस्मात् सानुबन्धस्य कलत्रादिसहितस्य देहस्य संबन्धीनि गृहादीनि । वसु द्रव्यम् । अनुसक्तसमुच्चयार्थश्चकारः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

शोक का कारण यह है कि वह अनित्य अपनी पत्नी इत्यादि जितने भी देह के सम्बन्धी है उनको गृह, द्रव्य तथा अन्य सारी वस्तुओं को अज्ञान वशात् नित्य मान लेता है और उन वस्तुओं के विनष्ट हो जाने पर शोक करता हैं ।।३।।

जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् । तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ।।४।।

अन्वयः— जन्तुः वै एतस्मिन् भवे यां यां योनिम् अनुव्रजेत् तस्यां तस्यां सः निर्वृतिं लभते विरज्यते न ।।४।।

अनुवाद— इस संसार में जीव जिस-जिस योनि में जन्म प्राप्त करता है, उसी योनि में वह आनन्द का अनुभव करने लगता है, वह उससे विरक्त नहीं होता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

दुर्मतित्वं दर्शयन् दुःखं प्रपञ्चयति-जन्तुरिति चतुर्दशभिः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जीव के अज्ञानित्व को बतलाते हुए उसके दुःखो का विस्तार से वर्णन भगवान् कपिल चौदह श्लोकों द्वारा करते हैं ।।४।।

नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति । नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥५॥

अन्वयः— देवमाया विमोहितः नरकस्थोऽपि पुमान् वै देहं त्यक्तुं न इच्छति नारक्यां निर्वृतौ सत्याम् ॥५॥

अनुवाद— भगवान् की माया से मोहित यह जीव अपने कर्मों के कारण नरकों में जाकर वहाँ के विष्ठा आदि में ही सुख मानने के कारण उस नारकीय शरीर को भी नहीं छोड़ना चाहता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

नारक्यां नरकाहारादिभिर्जातायाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

नरकों में जाकर वह नारकीय विष्ठा आदि आहार के द्वारा सुख मिलने के कारण उस नारकीय शरीर को नहीं छोड़ना चाहता है ॥५॥

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु । निरूढमूलहृदय आत्मानं बहुमन्यते ॥६॥

अन्वयः— आत्म-जाया-सुतागार-पशु-द्रविण बन्धुषु निरूढमूल हृदयः आत्मानं बहुमन्यते ॥६॥

अनुवाद— यह अज्ञानी जीव अपने शरीर पत्नी, पुत्र, गृह, पशु, धन, सम्पत्ति और बन्धुओं में अत्यन्त आसक्त होने के कारण उन सबों के विषय में अनेक प्रकार का मनोरथ करता हुआ अपने को अत्यन्त भाग्यवान् समझता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

निरूढमूलं प्रसृतमनोरथं हृदयं यस्य बहुमन्यते कृतार्थोऽहमिति मन्यते ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वह अज्ञानी मनुष्य अपने शरीरादि के विषय में अपने हृदय में अनेक प्रकार का मनोरथ करता है और अपने को कृतकृत्य मानने लगता हैं ॥६॥

संदह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्वहनाधिना । करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥७॥

अन्वयः— एषामुद्वहनाधिना सन्दह्यमानसर्वाङ्गः दुराशयः मूढः अविरतं दुरितानि करोति ॥७॥

अनुवाद— इन सबों के पालन-पोषण की चिन्ता से चिन्तित उसका सारा अङ्ग संतप्त होता रहता है, फिर भी दुर्वासनाओं से हृदय के दूषित होते रहने के कारण वह मूर्ख मनुष्य उन सबों के लिए सदा पाप कर्मों को करते रहता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

उद्वहनाधिना पोषणचिन्तया ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यह अज्ञानी जीव अपने शरीर पत्नी पुत्र इत्यादि के पालन-पोषण की चिन्ता से सदा चिन्तित बना रहता है॥७॥

आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया । रहोरचितयालापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥८॥
गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः । कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥९॥

अन्वयः— असतीनाम् स्त्रीणाम् रहोरचितया मायया कलभाषिणाम् शिशूनां आलापैः आक्षिप्तातात्मेन्द्रियः दुःखतन्त्रेषु कूट धर्मेषु गृहेषु अतन्द्रितः दुःखप्रतीकारं कुर्वन् गृही सुखवत् मन्यते ॥८-९॥

अनुवाद— कुलटा स्त्रियों के द्वारा एकान्त में सम्भोगादि के समय प्रदर्शित किए गये कपटपूर्ण प्रेम मे तथा मीठी बातें करने वाले बालकों की बतों में मन और इन्द्रियों के फँस जाने के कारण गृहस्थ मनुष्य गृह के दुःख बहुल कपटमय कर्मों में लिप्त हो जाता है । उस समय सावधानी करने पर किसी दुःख का प्रतिकार करने मे यदि सफलता मिल जाती है तो उसको ही वह सुख के समान मान लेता है ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

दुराशयत्वमाह । आक्षिप्त आत्मा इन्द्रियाणि च यस्य । कया । असतीनां पुंश्चलीनामपि रहसि रचितया संभोगादिरूपया। मधुरभाषिणां शिशूनामालापैश्च । सुखवन्मन्यत इत्युत्तरेणान्वयः । कूटाः वित्तशाठ्यादिबहुला धर्मा येषु दुःखप्रधानेषु ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी जीव के दोष दूषितान्तःकरणत्व को बतलाते हुए कहते है कि कुलटा स्त्रियाँ सम्भोगादि काल में जो कपटपूर्ण प्रेम प्रदर्शित करती हैं तथा बातें करती हैं, उसमें अज्ञानी पुरुष की इन्द्रियाँ और मन फँस जाते हैं। मीठी बातें करने वाले बच्चों की बातों में भी मनुष्य का मन और इन्द्रियाँ आकृष्ट हो जाती हैं । गृहस्थ मनुष्य को दुखप्रधान तथा वित्तशाठ्य आदि से युक्त धर्मों का पालन करना पड़ता हैं ॥८-९॥

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् । पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥१०॥

अन्वयः— इतस्ततश्च गुर्व्या हिंसया आपादितैः अर्थैः, तान् पुष्णाति येषां पोषेणाशेषभुक् स्वयम् अधः यातिः ॥१०॥

अनुवाद— जहाँ-तहाँ से भयङ्कर हिंसा वृत्ति के द्वारा मनुष्य जो धन संगृहीत करता है उससे ऐसे लोगों का पोषण करता हैं जिनका पोषण करने से वह स्वयम् नरक में जाता है और उन लोगों के खाने से जो बचता है उसी को खाकर रहता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

येषां पोषणेनाधो याति तान्पुष्णाति । शेषभुगिति भोगोऽपि तस्य दुर्लभ इत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भयङ्कर हिंसा वृत्ति से प्राप्त धन के द्वारा अज्ञानी मानव उन लोगों का पालन-पोषण करता है जिन लोगों का पोषण करने के कारण उसको नरक में जाना पड़ता है । चूकि वह उन लोगों के भोगों से बची हुयी ही वस्तु का भोग करता है अतएव उसको भोग भी मिलना दुर्लभ है ॥१०॥

वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः । लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥

अन्वयः— वार्तायां लुप्यमानायाम् पुनः पुनः आरब्धायां निः सत्त्वः लोभाभिभूतः परार्थे स्पृहाम् कुरुते ॥११॥

अनुवाद— बार-बार प्रारम्भ करने पर भी मनुष्य की जीविका नहीं चल पाती हैं तो असमर्थ वह लोभ से अभिभूत हो जाता है और दूसरे की सम्पत्ति को प्राप्त कर लेना चाहता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

वार्तायां जीविकायाम् । निःसत्त्वोऽशक्तः । परार्थे परस्वे ॥११॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्य की जब अपनी कोई जीविका नहीं चल पाती हैं उस समय वह असमर्थ हो जाता है और लोभ के द्वारा ग्रस्त होकर दूसरे की सम्पत्ति को प्राप्त कर लेना चाहता है ॥११॥

कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः । श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति मूढधीः ॥१२॥

अन्वयः— मन्दभाग्यः वृथोद्यमः कुटुम्बभरणाकल्पः मूढधीः श्रियाविहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति ॥१२॥

अनुवाद— मन्द भाग्य के कारण मनुष्य के जब सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं तब वह अज्ञानी धनहीन होकर अपने परिवार भी चलाने में असमर्थ हो जाता है । उस स्थिति में वह दीन और चिन्तित होकर लम्बी-लम्बी श्वासें लेता हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अकल्पोऽसमर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अकल्प शब्द का अर्थ असमर्थ है ॥१२॥

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा । नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥१३॥

अन्वयः— कीनाशा गोजरम् इव एवं स्वभरणाकल्पं तं तत्कलत्रादयः तथा नाद्रियन्ते यथा पूर्वम् ॥१३॥

अनुवाद— जैसे कृपण किसान बूढे बैल का आदर नहीं करता हैं उसी तरह अपने भरण-पोषण में असमर्थ उसको देखकर पत्नी पुत्र आदि उसका आदर पहले के समान नहीं करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं यथाद्रियन्ते तथादरं न कुर्वन्ति । कीनाशाः कृपणाः कृषीबलाः । गोजरं वृद्धं बलीवर्दम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अपने भरण-पोषण में असमर्थ उस बूढे मनुष्य की उसकी पत्नी आदि पहले के समान उसी तरह से आदर नहीं करती हैं जिस तरह से बूढे बैल का आदर कृपण किसान नहीं करता है ॥१३॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयंभृतैः । जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥१४॥
आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् । आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥१५॥

अन्वयः— तत्रापि अजात निर्वेदः भृतैः स्वयम् भ्रियमाणः जरयोपात्तवैरूप्यो आमयावी, अप्रदीप्ताग्निः अल्पाहारः अल्पचेष्टितः गृहे मरणाभिमुखः अवमत्य उपन्यस्तं गृहपालं इव आहरन् आस्ते ॥१४-१५॥

अनुवाद— इस स्थिति में भी उसको वैराग्य नहीं होता है, जिन लोगों का उसने पालन किया था वे ही उसका पालन नहीं करते हैं, बुढ़ापे के कारण उसका रूप बिगड़ जाता है, उसका शरीर रोगी हो जाता है, मन्दाग्नि हो जाती है, उसका आहार कम हो जाता है तथा उसका पुरुषार्थ भी कम हो जाता है, वह मरणोन्मुख होकर घर में पड़ा रहता है । स्त्री पुत्रादि के द्वारा अपमान पूर्वक दिए हुए भोजन को कुत्ते के समान खाकर जीवित रहता है ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

भ्रियमाणः पुष्यमाणः अवमत्याऽवज्ञयोपन्यस्तं समीपे प्रक्षिप्तम् । गृहपालः श्वा । आहरन् भुञ्जानः । आमयावी रोगी ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

भ्रियमाणः पद का अर्थ है पाला जाता हुआ । **अवमत्योपन्यस्तम्** का अर्थ हैं अनादर पूर्वक सामने रख दिये गये अन्न को गृहपाल अर्थात् कुत्ता । आहरन् अर्थात् खाते हुए । आमयावी अर्थात् रोगी ॥१४-१५॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः । वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥१७॥

अन्वयः— परिशोचद्भिः स्वबन्धुभिः परिवीतः शयानः वाच्यमानः अपि कालपाशवशं गतः न ब्रूते ॥१७॥

अनुवाद— शोक संतप्त अपने बान्धवों से घिरा हुआ वह पड़ा रहता है और बुलाने पर भी मृत्यु के पाश में बँधा हुआ वह नहीं बोल पाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

परिवीतः परिवेष्टितः । वाच्यमानो बन्धो तातेत्याहूयमानः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

परिवीतः पद का अर्थ है घिरा हुआ । **वाच्यमानः** पद का अर्थ है, बुलाये जाने पर भी ॥१७॥

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः । म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥१८॥

अन्वयः— एवम् अजितेन्द्रियः कुटुम्बभरणे व्यापृतात्मा रुदताम् स्वानाम् उरुवेदनया अस्तधीः म्रियते ॥१८॥

अनुवाद— इस तरह अज्ञानी पुरुष अपनी इन्द्रियों को वश में किए बिना ही अपने परिवार के ही भरण पोषण में सदा लगा रहता है । वह अपने रोते हुए स्वजनों के बीच में ही अत्यधिक वेदना के कारण अचेत होकर मर जाता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अस्तधीर्नष्टमतिः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि के नष्ट हो जाने के कारण यह **अस्तधीः** पद का अर्थ हैं ॥१८॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ । स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

अन्वयः— तदा प्राप्तौ सरभसेक्षणौ भीमौ यमदूतौ दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः सः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

अनुवाद— उस समय उसको लेने के लिए आये हुए भयङ्कर तथा रोष युक्त दो यमदूतों को देखकर वह अत्यन्त भयभीत हो जाता है और उस समय डर के मारे वह मलमूत्र का त्याग कर देता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मृतस्य पुण्यपापाभ्यां द्वे गती, तत्र पापगतिमाह-यमदूतावित्यादि यावत्समाप्ति । सरभसं सक्रोधमीक्षणं ययोस्तौ दृष्ट्वा॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मरे हुए मनुष्यों के पाप और पुण्य कर्मों के कारण दो प्रकार की गतियाँ होती है । पापगति और पुण्य गति । **यमदूतौ० इत्यादि** श्लोक के द्वारा इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त पाप गति का ही वर्णन करते हैं । उस समय उस मनुष्य को लेने के लिए दो यमदूत आते हैं । उन दोनों की आखें क्रोध से भरी रहती है । उन दोनों को देखकर वह भय के मारे मलमूत्र त्याग देता है ॥१९॥

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् । नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥२०॥

अन्वयः— यातनादेह आवृत्य गले पाशैः बद्ध्वा दण्ड्यं राजभटा यथा बलात् दीर्घम् अध्वानं नयतः ॥२०॥

अनुवाद— वे यमदूत उसको यातना शरीर में डाल देते हैं उसके गले में पाश से बाँधकर जैसे सिपाही किसी अपराधी को ले जाते हैं उसी तरह बलपूर्वक उसको यमलोक की लम्बीयात्रा में ले जाते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

आवृत्य निरुध्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

आवृत्य पद का अर्थ हैं बाँधकर ॥२०॥

तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः । पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥२१॥

अन्वयः— तयोः तर्जनैः भिन्नहृदयः जातवेपथुः पथि श्वभिः भक्ष्यमाणः स्वम् अघं अनुस्मरन् आर्तः ॥२१॥

अनुवाद— उन दोनों के धमकाने से उसका हृदय फटने लगता है और शरीर काँपने लगता है । मार्ग में उसको कुत्ते नोचते रहते हैं उस समय वह अपने पापों को याद करके वेचैन हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तयोस्तर्जनैर्निर्भिन्नं हृदयं यस्य । आर्तः संश्चलतीति द्वितीयेनान्वयः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों यमदूतों द्वारा डाँटे जाने के कारण उसका हृदय फट सा जाता है वह आर्त होकर यमलोक के मार्ग में चलता है चलति का बाइसवें श्लोक के साथ अन्वय हैं ॥२१॥

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके ।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥२२॥

अन्वयः— क्षुत् तृट् परीतः अर्कदवानलानिलैः तप्तबालुके संतप्यमानः पृष्ठे कशया च ताडितः निराश्रमोदके पथि अशक्तोऽपि कृच्छ्रेण चलति ॥२२॥

अनुवाद— वह भूख तथा प्यास से व्याकुल हो जाता है, सूर्य, वनाग्नि, तथा वायु के द्वारा तथा जलती हुयी बालुका पर संतप्त होता हुआ, यमदूतों द्वारा कोड़ों से पीटा जाता हुआ वह विश्राम स्थान तथा जल से रहित मार्ग पर चलने में असमर्थ होने पर भी चलता रहता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

क्षुत्तृड्भ्यां परीतो व्याप्तः । तप्ता बालुका यस्मिन् । निर्गत आश्रमो विश्रामस्थानमुदकं च यस्मिन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यममार्ग पर चलता हुआ वह भूख और प्यास से व्याकुल हो जाता है । उसको संतप्त बालू पर चलना पड़ता है । उस मार्ग में न तो कोई विश्राम स्थान होता है और न पानी मिलता है ॥२२॥

तत्र तत्र पतन् श्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः । पथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥२३॥

अन्वयः— श्रान्तः तत्र तत्र पतन् मूर्छितः पुनः उत्थितः, पापीयसा तमसा पथा यमसादनम् नीतः ॥२३॥

अनुवाद— वह थककर जहाँ-तहाँ गिर जाता है, मूर्छित हो जाता है फिर उठता है । इस तरह अत्यन्त दुःखमय अन्धकार-युक्त मार्ग से यमदूत उसको यमपुरी में ले जाते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यमसादनं नीतो भवति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वह यम लोक ले जाया जाता है ॥२३॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः । त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥२४॥

अन्वयः— योजनानां नवनवति सहस्राणि च अध्वनः त्रिभिः मुहूर्तैः द्वाभ्यां वा नीतः यातनाः प्राप्नोति ॥२४॥

अनुवाद— यमलोक का मार्ग निन्यानबे हजार योजन लम्बा होता है । इतने लम्बे मार्ग को तीन मूहूर्तों में या दो मुहूर्तों में पार करके नरक में विभिन्न प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैव विशेषमाह । अध्वनः संबन्धिनां योजनानां नवतिं नव च सहस्राणि पापाधिक्ये द्वाभ्यां वा नीतः सन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यममार्ग की विशेषता को बतलाते हुए कहते हैं कि यममार्ग निन्यानबे हजार योजन लम्बा है । उस मार्ग को वह जीव पाप के अधिक होने पर दो मुहूर्तों में नही तो तीन मुहूर्तों में पार करके यमलोक में लाया जाता है और वह विभिन्न प्रकार की यतनाओं को भोगता हैं ॥२४॥

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः । आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृतं परतोऽपि वा ॥२५॥

अन्वयः— क्वापि उल्मुकादिभिः वेष्टियित्वा स्वगात्राणाम् आदीपनं, क्वापि स्वकृतं परतोऽपि वा आत्ममांसादनम् ॥२५॥

अनुवाद— कहीं पर जलती हुयी लकड़ियों में लपेट कर यमदूत उसके शरीर को जलाते है कही पर उसको स्वयं ही अथवा दूसरे के द्वारा काटकर अपने शरीर के मांस को खिलाया जाता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यातनाः संक्षेपतो दर्शयति चतुर्भिः । आदीपनं प्रज्वलनं प्राप्नोति । स्वेन कृत्तमन्येन वा कृत्तं छिन्नं यत्स्वस्य मांसं तस्य भक्षणमित्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यमलोक में दी जाने वाली यातना संक्षेप में चार श्लोकों के द्वारा वर्णित की गयी है । यमदूत उसके शरीर को कहीं पर जलाते हैं तो कहीं पर उसके अपने हाथों काटकर अथवा दूसरे के द्वारा काटे गये अपने शरीर के मांस को खिलाया जाता है ॥२५॥

जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने । सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥२६॥

अन्वयः— यमसादने श्वगृध्रैः जीवतः च अन्त्राभ्युद्धारः दशद्भिः सर्पवृश्चिकदंशाद्यैः आत्मवैशसम् ॥२६॥

अनुवाद— यमलोक में जीते जी कुत्ते और गिद्ध उसकी आँत खीच लेते हैं और काटने वाले सर्प बिच्छू और दंशों के द्वारा उसको पीड़ित किया जाता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो वैशसं पीडाम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उसकी आत्मा को पीड़ित किया जाता है ॥२६॥

कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् । पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥२७॥

अन्वयः— अवयवशः कृन्तनम् गजादिभ्यः भिदापनम् गिरिशृङ्गेभ्यः पातनम् अम्बु गर्तयोः रोधनं च ॥२७॥

अनुवाद— उसके शरीर के अङ्गों को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं तथा उसको हाथियों से चिरवा दिया जाता है । कहीं उसको पर्वत के शिखर से गिरा दिया जाता है और कहीं पर जलभरे गढ़े मे डालकर उसको बन्द कर दिया जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

भिदापनं भेदप्रापणम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भिदापन शब्द का अर्थ है चिरवा देना ॥२७॥

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः । भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

अन्वयः— याः तामिस्रा अन्धतामिस्राः रौरवाद्याः च यातनाः भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

अनुवाद— इसी तरह तामिस्र और अन्धतामिस्र तथा रौरव आदि जो यातनाएँ हैं उन सबों को स्त्री अथवा पुरुष किसी को भी उस जीव के साथ परस्पर संसर्ग के कारण होने वाले पाप के फलस्वरूप भोगना ही पड़ता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२८॥

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते । या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥२९॥

अन्वयः— हे मातः इहैव नरकः स्वर्गः इति प्रचक्षते । या यातना वै नारक्याः ताः इहापि उपलक्षिताः ॥२९॥

अनुवाद— हे माँ कुछ लोगों का कहना है कि नरक और स्वर्ग तो इस लोक में ही है क्योंकिं नरकों की जो यातनाएँ हैं वे यहाँ भी देखी जाती हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

न चैतदसंभावितमत्रापि दृश्यमानत्वादित्याह-अत्रैवेति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

ये स्वर्ग और नरक यहाँ न हों ऐसी बात नहीं है क्योंकि इस लोक में नरकीय यातनाएँ देखी जाती हैं, ऐसा कुछ लोगों का कहना है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **अत्रैव० इत्यादि** श्लोक से किया गया है ॥२९॥

एवं कुटुम्बं बिभ्राणं उदरंभर एव वा । विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥

अन्वयः— एवं कुटुम्बं बिभ्राणं वा उदरम्भर एव इह उभयं विसृज्य प्रेत्य ईदृशम् तत्फलं भुंक्ते ॥३०॥

अनुवाद— इस प्रकार से कष्ट भोगकर अपने परिवार का पालन करने वाला अथवा केवल अपना ही पेट भरने वाला उस परिवार और अपने शरीर को यहीं छोड़कर मरने के पश्चात् अपने पापों का इस प्रकार से फल भोगता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

उभयं कुटुम्बं स्वं देहं च ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

पापी मनुष्य मरने के पश्चात् अपने परिवार और अपने शरीर इन दोनों को इस लोक में ही छोड़कर यमलोक में जाकर अपने किए हुए पापों का फल भोगता है ॥३०॥

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् । कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥३१॥

अन्वयः— इदं स्वकलेवरं हित्वा भूतद्रोहेण यद्भृतम् कुशलेतरपाथेयः एकः ध्वान्तं प्रपद्यते ॥३१॥

अनुवाद— अपने इस शरीर को यहीं छोड़कर प्राणियों से द्रोह करके एकत्रित किए हुए पाप रूप पाथेय को लेकर वह पापी जीव अकेले नरक में जाता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

पापार्जितं धनं भुञ्जते बहवः, कर्तैव नरकं यातीत्याह–एक इति । भूतद्रोहेण यद्भृतं तत्स्थूलं स्वकलेवरमिहैव हित्वा। कुशलादितरत् पापं तदेव पाथेयं भोग्यं यस्य ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

पापों को करके मनुष्य जिस धन को कमाता है उसको बहुत लोग खाते हैं किन्तु उस पाप का फल तो पाप को करने वाले को ही भोगना पड़ता है । इस बात को **एकः प्रपद्यते० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । भूतद्रोह से परिपूर्ण इस स्थूल शरीर को इस लोक में ही छोड़कर पापी जीव अकेले नरक में जाता है । नरक में जाने मे पाप ही उसका पाथेय का काम करता है । उसी का वह भोग करता है ॥३१॥

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् । भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥३२॥

अन्वयः— कुटुम्बपोषस्य शमलं तस्य देवेन आसादितं पुमान् निरये हृतवित्तः आतुरः इव भुङ्क्ते ॥३२॥

अनुवाद— मनुष्य अपने परिवार का पालन करने के लिए जो पाप करता है, उसका दैव द्वारा प्रदत्त फल वह नरक में जाकर इसतरह से व्याकुल होकर भोगता है जैसे उसका सर्वस्व लुट गया हो ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु पापमपि विहाय गच्छतु तत्राह-दैवेनेति । तस्य कुटुम्बपोषणस्य शमलं पापं दैवेनेश्वरेण प्रापितं भुङ्क्ते ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि जीव जिसतरह अपने शरीर का परित्याग करके जाता है, उसी तरह वह अपने पाप को भी यहीं छोड़कर जाय तो इसके उत्तर में **दैवेन इत्यादि** श्लोक कहते है । पापी जीव के द्वारा अपने परिवार का पोषण के लिए जो पाप किया जाता है, उसका फल दैव स्वयं प्रदान करता है, और उसी फल को वह जीव भोगता हैं ॥३२॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः । याति जीवोऽन्यतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

अन्वयः— केवलेन ही अधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः जीवः तमसः चरमं पदम् अन्धतामिस्रं याति ॥३३॥

अनुवाद— जो पुरुष केवल पाप की ही कमाई से अपने परिवार के पालन में लगा रहता है, वह अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है, जो सभी नरकों से अधिक कष्ट प्रदान करने वाला नरक हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुटुम्बपोषणं विहितमेव तत्राह-केवलेनेति । तमसो नरकस्य चरमं पदं स्थानम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि अपने परिवार का पोषण करना तो शास्त्रविहित कर्म है तो इस पर **केवलेन० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । अर्थात् जो केवल अधर्म के ही द्वारा अपने परिवार का पोषण करता है वह अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है । वह नरक सभी नरकों की अपेक्षा अधिक कष्टप्रद हैं ॥३३॥

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः । क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने कर्मविपाको नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥

अन्वयः— नरलोकस्य अधस्तात् यावतीः यातनादयः क्रमशः समनुक्रम्य पुनः अत्र शुचिः आव्रजेत् ॥३४॥

अनुवाद— इस मनुष्य लोक के नीचे जितने भी नरक आदि हैं तथा जितनी भी नारकीय योनियाँ हैं, उन

सबों को भोगने के पश्चात् उस जीव का अन्त:करण जब शुद्ध हो जाता है तब वह पुन: इस मनुष्य लोक में जन्म प्राप्त करता है ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत कर्मविपाक नामक तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

पुनर्मनुष्यशरीरप्राप्तिप्रकारमाह । नरलोकस्य मनुष्यदेहस्य प्राप्तेरधस्तादर्वाग्यावत्यो यातना: । आदिशब्देन श्वसूकरादियोनयश्च यास्ता: सर्वा: क्रमेण संप्राप्य भोगेन क्षीणपाप: शुचि: सन्नत्र पुनर्नरत्वं प्राप्नोतीत्यर्थ: ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रिंशत्तमोऽध्याय: ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

नारकीय यातना भोगने के पश्चात् जीव पुन: मनुष्यत्व प्राप्ति से पहले जितनी भी नारकीय यातनाएँ हैं उन सबों को तथा जितनी भी कुत्ता सूकर आदि नारकीय योनियाँ हैं उन सबों को क्रमश: भोगने के पश्चात् उस जीव का पाप जब विनष्ट हो जाता है तो वह पवित्र हो जाता है और पुन: मनुष्यत्व को प्राप्त करता है ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३०।।

एकतीसवाँ अध्याय

मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये । स्त्रिया: प्रविष्ट उदरं पुंसो रेत:कणाश्रय: ।।१।।

अन्वय:— देहोपपत्तये जन्तु: दैवनेत्रेण कर्मणा पुंसो रेत: कणाश्रय: स्त्रिया: उदरं प्रविष्ट: ।।१।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मानव शरीर प्राप्त करने के लिए परमात्मा की प्रेरणा से अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार वह जीव पुरुष के वीर्यकणों के द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

एकत्रिंशे विमिश्रैस्तु पुण्यपापैरिहान्तरा । मनुष्ययोनिसंप्राप्तिर्वर्ण्यते राजसी गति: ।।१।। पुनरत्रव्रजेदित्युक्तं तदेव विशेषतो दर्शयति । कर्मणा पूर्वकृतेन । दैवमीश्वरस्तदेव नेत्रं नेतृ प्रवर्तकं यस्य प्रविष्टो भवति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इकतीसवें अध्याय में पुण्य पाप मिश्रित कर्मों के द्वारा जीव बीच की मनुष्य योनि की संप्राप्ति नामक राजसी गति का वर्णन किया गया है । पिछले अध्याय के अन्तिम श्लोक में कहा गया है कि जीव पुन: इस मनुष्य योनि में आता है । उसी की विशेषता इस श्लोक के द्वारा बतलायी गयी है । मनुष्य पूर्व जन्म में जो कर्म किए रहता है उस कर्म के द्वारा परमात्मा के द्वारा प्रेरित होकर पुरुष के रेत: कणों के माध्यम से स्त्री के पेट में प्रवेश करता हैं ।।१।।

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् । दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥२॥

अन्वयः— एकरात्रेण तु कललं पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् दशाहेन तु कर्कन्धूः ततः परम् वा पेश्यण्डम् भवति इति शेषः ।।२।।

अनुवाद— स्त्री के पेट में जाकर वह एक रात्रि में कलल बन जाता है, पाँच रात्रि में बुद्बुद् रूप हो जाता है । दस रात्रि में वह बेर के समान कुछ कठिन हो जाता है, उसके पश्चात् वह मांसपेशी अथवा अण्डज प्राणियों के अण्डे के समान हो जाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कललं शुक्रशोणितमिश्रितं भवति । बुद्बुदं वर्तुलाकारम् । कर्कन्धूर्बदरीफलं तदाकारं कठिनम् । पेशी मांसपिण्डाकारम्। अण्डं वा योन्यन्तरे ।।२।।

भाव प्रकाशिका

कलल होना अर्थात् रज और वीर्य का परस्पर में मिल जाना, बुद्बुद अर्थात् गोल आकार का हो जाना । कर्कन्धू अर्थात् बेर के फल के समान हो जाना, पेशी अर्थात् मांस के पिण्ड के आकार का हो जाना अथवा योनि के भीतर अण्डकार हो जाना ।।२।।

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः । नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥३॥

अन्वयः— मासेन तु शिरः, द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्याद्यङ्ग विग्रहः, त्रिभिः, नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्ग छिद्रोद्भवः च ।।३।।

अनुवाद— एक मास में उसका शिर निकल जाता है, दो मासों में हाथ, पैर आदि अङ्गों का विभाग हो जाता है, तीन महीनों में उसके नख, रोएँ, अस्थि, चर्म, स्त्री पुरुष के चिह्न तथा दूसरे छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं।।३॥

भावार्थ दीपिका

वाह्वङ्घ्र्यादीनामङ्गानां विग्रहो विभागः । लिङ्गं च छिद्राणि च तेषामुद्भवः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे महीने में उसके हाथ, पैर इत्यादि अङ्गों का विभाग हो जाता है तीन महीन में लिङ्ग तथा छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं ।।३।।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः । षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥

अन्वयः— चतुर्भिः सप्तधातवः पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः षड्भिः जरायुणा वीतः दक्षिणे, कुक्षौ भ्रमति ।।४।।

अनुवाद— चार महीने में उसके सात धातुएँ उत्पन्न हो जाते हैं, पाँचवें मास में जरायु से लिपटा हुआ वह अपनी माता की दाहिनी कुक्षि में चलने लग जाता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

जरायुणा गर्भवेष्टनेन वीतः प्रावृतः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जिसमें गर्भ लिपटा रहता है उस झिल्ली को जरायु कहते हैं, उसी में वह लिपटे हुए अपनी माता की दाहिनी कुक्षि में चलने लग जाता है ।।४।।

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते । शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे ॥५॥

अन्वयः— मातुर्जग्धान्न पानाद्यैः एधद्धातुः असंमते विण्मूत्रयोः गर्त्ते जन्तुसम्भवे गर्ते स जन्तुः शेते ।।५।।

अनुवाद— उस समय माता के खाये पिये अन्न पान इत्यादि से उसकी धातुएँ पुष्ट होने लगती है । वह असंमत विष्ठा और मूत्र के गढे में जो कृमि आदि जीवों के उत्पत्ति स्थान है उस अत्यन्त जघन्य मलमूत्र के गढे में सोता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

मातुर्जग्धेन भक्षितेनान्नेन पानाद्यैश्चैधमाना धातवो यस्य । जन्तूनां संभवो यस्मिंस्तस्मिन्नसंमते गर्ते शेते । तथा च मार्कण्डेयपुराणे 'नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते । स्त्रीणां तथान्त्रसुषिरे सा निबद्धोपजायते ।। क्रमन्ते भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे तथा । तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ।। इति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

माता के द्वारा खाये हुए अन्न तथा जल से उसकी धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं । वह माता के पेट में विद्यमान उस जघन्य गढे में सोता है जिसमें कृमि इत्यादि जीव उत्पन्न होते हैं । मार्कण्डेय पुराण में कहा भी गया है नाभि में आप्यायनी नाम की नाडी है उसी से वह गर्भ में बंध जाता है । और स्त्रियों की आँत के छिद्र में वह निबद्ध होकर उत्पन्न होता है । स्त्रियों के उदर में खाये पिए अन्न जल से वह गर्भ बढ़ता है । उन अन्न और जलों से पुष्ट शरीर वाला वह जीव बढ़ता है ।।५।।

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् । मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ।।६।।

अन्वयः— तत्रत्यैः क्षुधितैः कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम् उरुक्लेशः मुहुः मूर्छामाप्नोति ।।६।।

अनुवाद— उस गढे में विद्यमान भूखे कृमियों के हर क्षण उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग के नोचते रहने के कारण सुकुमार वह गर्भ अत्यधिक कष्ट के कारण बार-बार मूर्छित होता रहता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तत्रत्यैः कृमिभिः खादद्भिः । सौकुमार्यात्कोमलत्वेन क्षतानि सर्वाङ्गाणि यस्य ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उस मल-मूत्र के गढे में रहने वाले कीड़े उस गर्भ को काटते रहते हैं चूकि वह गर्भ अत्यन्त कोमल होता है अतएव उसके सारे अङ्ग क्षतिग्रस्त हो जाते हैं ।।६।।

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः । मातृभुक्तैरूपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ।।७।।

अन्वयः— मातृभुक्तैः कटुतीक्ष्णोष्णलवण रूक्षाम्लादिभिः उल्बणैः उपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः आस्ते ।।७।।

अनुवाद— माता के द्वारा खाये गये कड़वे, तीखे, गर्म, नमकीन, रूखे तथा खट्टे आदि उग्र पदार्थों का स्पर्श होने से उसके सम्पूर्ण शरीर में वेदना होने लगती हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

उल्बणैर्दुःसहैः । सर्वेष्वङ्गेषत्थिता वेदना यस्य । आस्ते इत्युत्तरेणान्वयः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

माता के द्वारा खाये गये कड़वे तीक्ष्ण आदि पदार्थों का स्पर्श उस गर्भ के लिए दुःसह होता है । उन पदार्थों का स्पर्श होते ही गर्भस्थ शिशु के सम्पूर्ण शरीर में वेदना होने लगती है । आस्ते पद का अगले श्लोक के साथ अन्वय है ।।७।।

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः । आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ।।८।।

अन्वयः— तस्मिन् उल्बेन संवृतः आन्त्रैश्च बहिः आवृतः आस्ते शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः आस्ते ।।८।।

अनुवाद— माता के गर्भाशय में वह जीव झिल्ली में लिपटा रहता है तथा बाहर से वह आँतों से घिरा रहता है । उसका शिर पेट की ओर और पीठ एवं गर्दन कुण्डल के समान मुड़े रहते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

उल्बेन जरायुणा । भुग्नं कुटिलीभूत पृष्टं शिरोधरा ग्रीवा च यस्य ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उल्ब जरायु उस पतली झिल्ली को कहते है जिसमें गर्भ लिपटा रहता है । उसके पीठ और गर्दन मुड़े रहते हैं ॥८॥

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे। तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥९॥

अन्वयः— पञ्जरे शकुन्त इव स्वाङ्गचेष्टायां अकल्पः तत्र दैवात् लब्धस्मृतिः जन्मशतोद्भवम् कर्म स्मरन् दीर्घमुच्छ्वासं किं नाम शर्म विन्दते ॥९॥

अनुवाद— पिंजड़े के पक्षी के समान तथा अपने अङ्गों को हिलाने-डुलाने में भी असमर्थ उस जीव को दैववशात् स्मरण शक्ति प्राप्त हो जाती है । उसको अपने सैकड़ों जन्मों के कर्म याद आने लग जाते हैं । वह लम्बी श्वास लेता है, और बेचैन हो जाता है । उसको थोड़ा सा भी सुख नहीं मिलता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दैवात्पूर्वकर्मवशात् । लब्धा स्मृतिर्येन सः । दीर्घं दुरन्तमनुच्छ्वासं यथा भवति तथा तत्र स्थितः सन् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वजन्मों के कर्मवशात् उसको अपने पूर्वजन्म की याद आने लगती है । उसका दम घुटने सा लगता है इसी स्थिति में वह गर्भ में रहता है ॥९॥

आरभ्य सप्तमान्मासांल्लब्धबोधोऽपि वेपितः । नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥१०॥

अन्वयः— सप्तमात् मासात् आरभ्य लब्धबोधः अपि सूतिवातैः वेपितः सोदरः विष्ठाभूः इव एकत्र न आस्ते ॥१०॥

अनुवाद— सातवाँ महीना प्रारम्भ होने पर उसको ज्ञान भी उत्पन्न हो जाता है । फिर भी प्रसूति वायु के द्वारा चलाया जाता हुआ वह विष्ठा के कीड़े के समान एक स्थान पर नहीं रहता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सूतिहेतुभिर्वातैर्वेपितः । सोदरः समानोदरजन्मा विष्ठाभूः कृमिरिवेति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सातवें महीना के प्रारम्भ होते ही प्रसूति के कारणभूत वायु के द्वारा प्रेरित होकर वह गर्भस्थ शिशु चलने लगता है । एक ही उदर में पैदा होने वाले विष्ठा के कीड़ों के समान एक स्थान पर नहीं रहता है ॥१०॥

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः । स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥११॥

अन्वयः— सप्तवध्रिः ऋषिः भीतः कृताञ्जलिः नाथमानः विक्लवया वाचा तं स्तुवीत येन उदरे अर्पितः ॥११॥

अनुवाद— सप्त धातुमय स्थूल शरीर से बँधा हुआ देहात्मदर्शी वह जीव अत्यन्त भयभीत होकर दीन वाणी से याचना करता हुआ हाथ जोड़कर उस प्रभु की स्तुति करता है जिन श्रीभगवान् ने उसको गर्भ में डाल दिया है॥११॥

भावार्थ दीपिका

नाथमानो याचमान उपतप्यमान इति वा ऋषिर्देहात्मदर्शी । भीतः पुनर्गर्भवासात् । सप्त वध्रयो बन्धनभूता धातवो यस्य सः । विक्लवया व्याकुलया ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् से याचना करता है अथवा अत्यन्त संतप्त होता रहता है । वह शरीर और आत्मा का साक्षात्कार ऋषि के समान करता है । पुन: कभी गर्भ में निवास के भय से वह अत्यन्त भयभीत हो जाता है । वह सप्त धातुमय स्थूल शरीर से बँधा रहता है । इस प्रकार का वह जीव हाथ जोड़कर अत्यन्त व्याकुल वाणी से श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है ।।११।।

जन्तुरुवाच

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ।।१२।।

अन्वय:— येन असत: मे इदृशी अनुरूपा गति अदर्शि उपसन्नं जगदवितुं इच्छया भुवि नानातनो: आत्त सोऽहम् तस्य अकुतोभयम् चलच्चरणारविन्दम् शरणं व्रजामि ।।१२।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् ने मुझ अधम को इस प्रकार की गति प्रदान की है, यह गति मेरे अनुरूप ही है । जो श्रीभगवान् शरणागत जगत् की रक्षा करने के लिए अपनी इच्छा से पृथिवी पर अनेक रूपों को धारण करते हैं उन्हीं श्रीभगवान् के निर्भय चञ्चल चरणों की मैं शरणागति करता हूँ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

उपसन्नं जगद्रक्षितुं स्वेच्छया गृहीतनानामूर्तेर्भगवतश्चरणारविन्दमकुतोभयं सोऽहं शरणं व्रजामि । भुवि चलदिति श्रीकृष्णावताराभिप्रायेण । असतो मेऽनुरूपा योग्या येनेदृशी गर्भवासलक्षणा गतिर्दर्शिता तस्य ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

शरणागत जगत् की रक्षा करने के लिए जो श्रीभगवान् अपनी इच्छा से ही अनेक शरीरों को धारण किया करते हैं । भगवान् के वे चरणारबिन्द निर्भय है । वही अधम मैं श्रीभगवान् के उन चरणों की शरणागति करता हूँ । श्रीकृष्णअवतार में श्रीभगवान् अपने उन्हीं चरण कमलों से पृथिवी पर चले । उन्हीं श्रीभगवान् ने मुझ अधम के अनुरूप ही इस गर्भवास रूपी गति को प्रदान किया है । मैं उन्हीं के चरणों की शरणागति करता हूँ ।।१२।।

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ।
आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ।।१३।।

अन्वय:— य: आत्मा भूतेन्द्रियाशयमयीं मायामवलम्ब्य अत्र कर्मभि: आवृतात्मा बद्ध इव आसते स एव आतप्यमान हृदये अवसितम् विशुद्धम् अविकारम् अखण्डबोधम् नमामि ।।१३।।

अनुवाद— जो मैं अपनी माता के उदर में देह, इन्द्रिय और अन्त:करण रूप माया का आश्रयण करके पुण्य-पाप रूपी कर्मों से आच्छादित रहने के कारण बद्ध रूप से हूँ वहीं मैं अपने संतप्त हृदय में प्रतीत होने वाले उन विशुद्ध, विकाररहित तथा अखण्डबोध स्वरूप परमात्मा को नमस्कार करता हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु कोऽसौ यं शरणं व्रजसि, को वा तव तस्य च विशेषो येन सेव्यसेवकत्वमित्यपेक्षायामाह । अत्र मातुर्देहे भूतेन्द्रियाशयमयीं देहाकारपरिणतां मायामवलम्ब्याश्रित्य कर्मभिरावृतस्वरूप इव बद्ध इव च य आस्ते सोऽहम् । अस्त्वत्रैवास्ते तं नमामि । कथंभूतमित्यपेक्षायां तुशब्दोक्तं विशेषं दर्शयति । आतप्यमाने हृदयेऽवसितं प्रतीतमेवमप्यविकारम् । कुत: । विशुद्धं निरुपाधिम्। तत्कुत: अखण्डो बोधो यस्य तम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वह कौन है जिसकी तुम शरणागति करते हो ? तुममें और उसमें कौन सा भेद है ? जिसके कारण सेव्य तथा सेवक भाव का अनुभव करते हो ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर जीव कहता है अपनी माता के शरीर में भूत (देह) इन्द्रिय अन्त:करण रूपी माया जो शरीर के रूप में परिणत हुयी है उसको अपनाकर कर्मों के द्वारा आवृत्त स्वरूप के समान तथा वृद्ध के समान है वही मैं (जीव) हूँ । जो मेरे इस संतप्त होने वाले हृदय में प्रतीत होते हैं उन्हीं परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । वे परमात्मा कैसे हैं ? उस 'तु' शब्द के द्वारा अभिहित विशेषता को बतलाता है । वे परमात्मा मेरे इस संतप्त होने वाले हृदय में निवास करते हैं । इस तरह से प्रतीत होने पर भी वे निर्विकार हैं । वे विशुद्ध अर्थात् वे उपाधि से रहित हैं । क्योंकि उनका ज्ञान अखण्ड है । ऐसे परमात्मा को मै प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नोऽयथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ।
तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥

अन्वयः— यः रहितः पञ्चभूतरचिते शरीरेच्छन्नः अयथा इन्द्रियगुणार्थचिदात्मकः अहम् तेन अविकुठमहिमानम् ऋषिं प्रकृति पुरुषयोः परं तम् एनं पुमांसम् वन्दे ॥१४॥

अनुवाद— मैं वस्तुत: शरीर आदि से रहित हूँ, फिर भी देखने में पञ्चभूत रचित शरीर से सम्बद्ध सा हूँ। इसी के कारण मैं इन्द्रिय, गुण, शब्दादि विषय और अहङ्कार रूप से जान पड़ता हूँ । अतएव इन शरीर आदि आवरणों के द्वारा जिनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुयी है, उन प्रकृति तथा पुरुष के नियामक सर्वात्मा परं पुरुष को मैं वन्दना करता हूँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वमपि वस्तुतः शुद्ध एव **असङ्गो ह्ययं पुरुषः** इत्यादिश्रुतेः । तत्कथं युवयोरयं विशेषस्तत्राह । **यः** पञ्चभिर्भूतै रचिते शरीरे अथवा मिथ्यैव छन्नो न वस्तुतः । यतस्तेन शरीरेण रहितोऽसङ्गोऽतोऽयथैवेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकः इन्द्रियाणि च गुणाश्च अर्थाश्च चिदाभासश्च तदात्मकः सोऽहं तं वन्दे । कथंभूतम् । तेन शरीरेणा विकुण्ठो महिमा यस्य तम् । अवगुण्ठेति पाठेऽवसन्नं गुण्ठनमावरणं यस्य स महिमा यस्येत्यर्थः । तत्र हेतुः-प्रकतिपुरुषयोः परं नियन्तारम् । कुतः । ऋषिं सर्वज्ञं विद्याशक्तिमित्यर्थः । विद्याऽविद्याकृतो विशेष इति भावः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तुम भी तो वस्तुत: शुद्ध ही हो इस बात को **असङ्गो ह्ययं पुरुषः** यह श्रुति कहती है । अतएव तुम दोनों में भेद कैसे है ? तो इस पर जीव कहता है जो पञ्चभूतों से निर्मित इस शरीर में मिथ्या ही संबद्ध हैं । वस्तुत: वह इस शरीर से बद्ध नहीं है । क्योंकि वह उस शरीर से रहित हैं । अतएव वह असङ्ग है । असङ्ग ही होने के कारण वह अवास्तविक रूप से इन्द्रिय, गुण, इन्द्रियों के विषय तथा अहङ्कारात्मक रूप से प्रतीत होता हैं । इस प्रकार का मैं जीव हूँ । इस प्रकार का मैं परमेश्वर की वन्दना करता हूँ । उस परमात्मा की विशेषता है कि उस शरीर से उनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुयी है । जहाँ पर अवगुण्ठ पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा कि जिसका आवरण समाप्त हो गया है, इस तरह कि महिमा से सम्पन्न । **तत्र हेतुः इत्यादि** उसका कारण हैं कि वे परमेश्वर प्रकृति तथा पुरुष दोनों के नियामक हैं । वे ऋषि अर्थात् सर्वज्ञ हैं । विद्याशक्ति स्वरूप हैं । मुझ जीवात्मा और परमात्मा में यही भेद है कि परमात्मा विद्याशक्ति से सम्पन्न हैं और मैं अविद्याशक्ति (अज्ञान) से सम्पन्न हूँ ॥१४॥

यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥१५॥

अन्वयः— यन्मायया नष्टस्मृति उरुगुणकर्मनिबन्धने अस्मिन् सांसरिके पथि तदभिश्रमेण चरन् महदनुग्रहमन्तरेण कया युक्त्या अयं पुनः लोकं प्रवृणीत ॥१५॥

अनुवाद— जिस परमात्मा की माया के कारण अपने स्वरूप की स्मृति नष्ट हो जाने से यह जीव अनेक प्रकार के सत्त्वादि गुण तथा कर्मों के बन्धन से युक्त इस संसार के मार्ग पर अनेक प्रकार के कष्टों को झेलता हुआ संच्चरण करता रहता है, अतएव उन परम पुरुष परमात्मा की कृपा के बिना किस युक्ति से पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर सकता है ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु ज्ञानेनायं बन्धो निवर्तिष्यते किं परमेश्वरवन्दनेन ? तत्राह । यस्य मायया नष्टस्मृतिः सन् संसारसंबन्धिनि पथि तदभिश्रमेण तत्कृतेन क्लेशेन चरन्नयं जीवो महतस्तस्यैवेश्वरस्यानुग्रहं विना पुनः कया युक्त्या लोकं निजस्वरूप प्रवृणीत संभजेत। अभिश्रमहेतुत्वेन पन्थानं विशिनष्टि उरूणि गुणनिमित्तानि कर्माणि नितरां बन्धनानि यस्मिन् । ईश्वरस्य प्रसादं विना ज्ञानाभावात्स एव सेव्य इत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि ज्ञान के द्वारा यह संसार का बन्धन दूर हो जायेगा परमेश्वर की वन्दना से क्या लाभ है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं जिन परमात्मा की माया से अपने स्वरूप की स्मृति नष्ट हो जाने के कारण इस संसार के मार्ग पर अनेक प्रकार के कष्टों के सहते रहने के कारण विविध योनियों में सञ्चरण करता हुआ यह जीव उस परमेश्वर की कृपा के बिना किस युक्ति के द्वारा पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । अभिश्रम (क्लेश रूपी) हेतु के द्वारा संसार मार्ग की विशेषता को बतलाते हैं । इस संसार मार्ग में गुणों के कारण कर्मों का महान् बन्धन होता है । उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए परमात्मा की कृपा के बिना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती है अतएव परमात्मा ही सेवनीय हैं ॥१५॥

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥

अन्वयः— यदेतत् त्रैकालिकं ज्ञानं अददधात् सः देवः कतमः स्थिरचरेषु अनुवर्तितांशः तं जीव कर्म पदवीमनुवर्तमाना वयं तापत्रयोपशमनाय भजेम ॥१६॥

अनुवाद— मुझको यह जो त्रैकालिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह भी उनसे भिन्न किसी दूसरे देवता ने नहीं प्रदान किया है । जो परमात्मा संसार के समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं । अतएव जीव रूप पदवी का अनुसरण करने वाला इस तापत्रय के विनाश के लिए उन्हीं परमात्मा का हम भजन करते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वर एव ज्ञानद इत्युपपादयत्राह । यदेतत्रिकालविषयं ज्ञानं तत्तं विना कतमो मय्यदधात्र कोऽपि । किंतु स देव ईश्वर एव । नन्वन्यः प्रकृष्टो जीवो दधातु, नेत्याह । जीवरूपां कर्मपदवीमनुवर्तमाना वयमिति तद्व्यतिरेकेण न कोऽपि समर्थ इत्यर्थः। अन्यस्यात्रासंभवमुक्त्वा तस्य संभवमाह । स्थिरेषु चरेषु चान्तर्यामिरूपोऽनुवर्तितोंऽशो येन तं भजेम ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ईश्वर ही ज्ञान प्रदान करने वाले हैं इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए जीव कहता है । जिन परमात्मा ने इस त्रैकालिक ज्ञान का विस्तार किया है, उन्होने ही मुझे यह ज्ञान प्रदान किया है किसी दूसरे ने नहीं । यदि कहें

कि किसी दूसरे श्रेष्ठ जीव ने यह ज्ञान प्रदान किया है तो ऐसी बात नहीं है । जीव रूपी कर्म मार्ग का अनुसरण करने वाले हमलोगों में से कोई भी उस ज्ञान को प्रदान करने मे समर्थ नहीं है । ज्ञान प्रदान करने में दूसरे को असमर्थ बतलाकर ईश्वर को ही समर्थ बतलाते हुए जीव कहता है । संसार के सम्पूर्ण चराचर जीवों में जो अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं उसी परमात्मा का हम भजन करते हैं ॥१६॥

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ।
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदा नु ॥१७॥

अन्वयः— देही अन्यदेह विवरे विण्मूत्र कूपपतितः जठराग्निनासृग्भृशंतप्तदेहःइतो विवसितुम् इच्छन् स्वमासान् गणयन् भगवन् कृपण धीः कदानु निर्वास्यते ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह देहधारी जीव अपनी माता के उदर में मल, मूत्र के कुएँ में गिरा हुआ है, उसकी जाठराग्नि से इसका शरीर संतप्त हो रहा है । इससे बाहर निकलने की इच्छा से यह अपने महीने को गिन रहा है । हे भगवन् अब यह जीव इससे कब बाहर निकाला जायेगा ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्वदुःखं विज्ञापयन्नाह–देहीति । अन्यदेहविवरे मातुरुदरकुहरे योऽसृग्विण्मूत्रकूपस्तस्मिन्पतितस्तत्र जठराग्निना भृशं तप्तो देहो यस्य । अतएव कृपणधीरितो विवराद्विवसितुं निर्गन्तुमिच्छन्स्वमासान्गणयन्नसौ कदा नु अहो बहिर्निर्वास्यते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में जीव अपने दुःख को निवेदित करते हुए **देही इत्यादि** श्लोक को कहता है । वह कहता है कि हे भगवन् यह देहधारी जीव अपने से भिन्न माता के उदर रूपी कुएँ में गिर पड़ा है । यह मलमूत्र का कुआँ है । इसी में यह गिरा पड़ा है । उसी में माता की जाठराग्नि से इसका शरीर अत्यन्त संतप्त हो रहा है अतएव यह दीन बना हुआ है । यह चाहता है कि मैं इस माता के शरीर से बाहर निकलूँ और उसी के लिए यह अपने महीनों को गिन रहा है । हे प्रभो ! यह कब इस माता के उदर से बाहर निकाला जायेगा ॥१७॥

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥१८॥

अन्वयः— हे ईश येन भवादृशेन पुरुदयेन इदृशी गतिं दशमास्य असौ संग्राहितः दीननाथः सः स्वकृतेनैव तुष्यतु अञ्जलिं विना तत्प्रति को नाम कुर्यात् ॥१८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप जैसे उदार स्वामी ने ही इस दशमास के जीव को इस प्रकार का उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया है आप बहुत अधिक दयालु है । आपने यह जो उपकार किया है, अपने इस उपकार से ही आप प्रसन्न हो जायँ । आपको हाथ जोड़ने के सिवा आपके इस उपकार का बदला कोई कैसे चुका सकता है ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृतमुपकारं स्मरन्नाह । येनेदृशीं गतिं ज्ञानम् । भवादृशेनेति निरुपमेनेत्यर्थः । स्वकृतेनैव स्वयं तुष्यतु । अञ्जलिमात्रं विना तत्कृतोपकारे प्रत्युपकारं कः कुर्यादित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करते हुए जीव कहता है हे प्रभो ! आपकी कोई उपमा नहीं हो सकती है । आप निरूपम दयालु हैं । आपने इस दश मास के जीव को इस प्रकार का ज्ञान प्रदान किया है। अतएव आपने यह जो उपकार किया है, अपने इस किए हुए उपकार के ही द्वारा आप संतुष्ट हो जायँ ।

आप परमात्मा के द्वारा किए गये उपकार के बदले में कोई भी हाथ जोड़ने के अतिरिक्त और कुछ दे भी क्या सकता है ?॥१८॥

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥१९॥

अन्वयः— ननु सप्तवध्रिः स्वदेहे शारीरके पश्यति यत् सृष्टया धिषणया दम शरीरी अयं अहम् तम् पुराणं पुरुषम् बहिः हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् पश्ये ॥१९॥

अनुवाद— प्रभो ! संसार के ये पशु-पक्षी आदि अन्य जीव अपनी मूढ बुद्धि के कारण अपने शरीर में होने वाले सुख दुःख आदि ही अनुभव करते हैं, किन्तु मैं तो शम दम आदि साधनों से सम्पन्न शरीर से युक्त हूँ । अतएव आपके द्वारा प्रदत्त विवेक युक्त बुद्धि के द्वारा आप पुराणपुरुष को ही अपने हृदय में तथा शरीर से बाहर भी अहङ्कार के आश्रयभूत आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ईदृशीं गतिमित्यनेन जात्यन्तरविलक्षणं ज्ञानं प्रापितवानित्युक्तं तदेव वैलक्षण्यमाह-पश्यतीति । अयमपरः पश्वादिः सप्तवध्रिर्जीवः स्वदेहे शारीरके शरीरभवे सुखदुःखे केवलं ननु पश्यति । अहं पुनर्यत्सृष्टया धिषणया यद्दत्तेन विवेकज्ञानेन दमशरीरी । दम इत्युपलक्षणम् । शमदमादियुक्तशरीरवान् आसमभवं तमेव च पुराणमनादिं पुरुषं पूर्णं बहिश्च हृदि च पश्ये पश्यामीत्यन्वयः । कथम् । अपरोऽक्षतया प्रतीतं चैत्यमिव । अहङ्कारास्पदं भोक्तारमिवेत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इदृशीं गतिम् कहकर स्वेतर समस्त बुद्धि विलक्षण ज्ञान को परमात्मा ने प्रदान किया है, इस बात को कहा गया है । उस विलक्षणता को ही **पश्यति॰ इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । ये दूसरे पशु-पक्षी आदि जीव अपने शरीर में उत्पन्न होने वाले सुख दुःख का ही अनुभव करते हैं । **अहं पुनः इत्यादि** किन्तु मैं जिस परमात्मा के द्वारा प्रदत्त विवेक से सम्पन्न बुद्धि के द्वारा शमदम आदि साधनों से सम्पन्न शरीर वाला हूँ । और मैं अपने हृदय में तथा शरीर के बाहर भी उन अनादि पुराण पुरुष परमात्मा का ही साक्षात्कार करता हूँ । उन परमात्मा को मैं दूसरे भोक्ता के समान देखता हूँ ॥१९॥

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥२०॥

अन्वयः—हे विभो ! सः अहं बहुदुःखवासं वसन्नपि गर्भात् बहिः अन्धकूपे न निर्जिगमिषे यत्र उपयातम् देवमाया उपसर्पति यदनु मिथ्यामतिः एतत् संसृति चक्रम् ॥२०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यद्यपि मैं बड़े ही कष्टों से भरे हुए इस गर्भाशय में बड़े ही कष्टपूर्वक निवास कर रहा हूँ, फिर भी इससे बाहर निकलकर संसारमय अन्धकूप में गिरने की मेरी इच्छा विल्कुल नहीं है; क्योंकि संसार में जाने वाले जीव को आपकी माया घेर लेती है । उसी के कारण जीव की अपने शरीर में ही आत्मत्व की बुद्धि हो जाती है । उसके परिणाम स्वरूप जीव को पुनः इस संसार चक्र में पड़ना पड़ता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

विवेकाज्ञानकृतं संसारोद्वेगमनुवदन्मोक्षमार्गमेवाध्यवस्यति । सोऽहमिति द्वाभ्याम् । हे विभो, बहुदुःखवासं यथा भवति तथा गर्भे वसन्नपि सोऽहं गर्भाद्बहिर्न निर्गन्तुमिच्छामि । तत्र हेतुः—अन्धकूपप्राये यत्र बहिरुपयातं गतं प्राणिनं देवस्यतव मायोपसर्पति व्याप्नोति । यदनु यां मायामनु मिथ्यामतिर्देहेऽहंबुद्धिः संसृतिचक्रं च कलत्रपुत्रादिसंबन्धादुपसर्पति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा शरीर से भिन्न है इस बात का ज्ञान नहीं होने के कारण संसार जन्य उद्वेग का वर्णन करते हुए जीव मोक्षमार्ग का ही निश्चय **सोहम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करता है । वह कहता है हे प्रभो ! यह गर्भ में निवास बड़े ही कष्टों से भरा है । फिर भी इस गर्भ में निवास करने वाला मैं इससे बाहर नहीं निकलना चाहता हूँ । उसका कारण यह है कि यह संसार अन्धकूप के समान है । उस संसार में गये हुए मनुष्य को आपकी माया घेर लेती है । उस माया के ही कारण जीव की अपने शरीर में आत्मत्व की मिथ्या मति हो जाती है । वह अपने शरीर को ही आत्मा मानने लगता है । उसकी यह बुद्धि मिथ्या है । और उसके कारण पत्नी पुत्र इत्यादि के सम्बन्ध के कारण मनुष्य संसार चक्र में पड़ जाता है ॥२०॥

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥२१॥

अन्वयः— तस्मात् विगतविक्लवः अहं हृदये उपसादित विष्णुपादः सुहृदा आत्मनैव आत्मानम् आशु तमसः उद्धरिष्ये। यथा मे अनेकरन्ध्रं व्यसनं मा भविष्यत् ॥२१॥

अनुवाद— अतएव मैं व्याकुलता को त्यागकर और अपने हृदय में भगवान् विष्णु के चरण कमलों को स्थापित करके अपनी इस बुद्धि की ही सहायता से इस संसार सागर से अपना उद्धार कर लूँगा । जिससे मुझको पुनः अनेक प्रकार के दोषों से युक्त यह संसार दुःख नहीं सहना पड़े ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादत्रैव स्थितोऽपि विगतविक्लवोऽव्याकुलः सन् सुहृदा आत्मना सारथिरूपया बुद्ध्यैवात्मानं तमसः संसारादुद्धरिष्यामि। अनेकरन्ध्रं नानागर्भवासरूपमेतद्व्यसनं दुःखं यथा मे मा भविष्यत् न भविष्यति तथा । कात्र तव साधनसामग्री तत्राह । उपसादितौ हृदयं प्रापितौ विष्णोः पादौ येन मया सः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इस गर्भ में ही रहकर मैं अपनी व्याकुलता का त्याग करके, अपने सुहृद सारथिरूपी बुद्धि के द्वारा अपनी आत्मा का इस संसार सागर से उद्धार करूँगा । जिससे कि पुनः मुझको अनेक प्राकर के दुःखों से युक्त यह गर्भवास रूपी दुःख न हो । यदि कोई कहे कि तुम्हारे पास इस कार्य को करने के लिए कौन सी साधन सामग्री हैं ? तो इसका उत्तर है कि मैं अपने हृदय में भगवान् विष्णु के चरणों को स्थापित करके इस कार्य को करूँगा॥२१॥

कपिल उवाच

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः । सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥२२॥

अन्वयः— दशमास्यः गर्भे कृतमतिः ऋषिः एवं स्तुवन् सद्यः सूतिमारुतः अवाचीनं प्रसूत्यै क्षिपति ॥२२॥

भगवान् कपिल ने कहा

अनुवाद— हे माँ ! वह दश महीने का जीव गर्भ में ही जब विवेक सम्पन्न होकर श्रीभगवान् की स्तुति करता है तब उस अधोमुख शिशु को प्रसव काल की वायु उसको बाहर आने के लिए ढकेलती है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

दशमासाः परिच्छेदका यस्येति प्रसूतिपूर्वक्षणोपलक्षणम् । ऋषिर्जीवः । सद्यस्तत्क्षणमेव । अवाचीनमवाङ्मुखम् । सूतिहेतुर्मारुतः क्षिपति नुदति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रसूति से पहले गर्भस्थ शिशु दश मास का रहता है, यह उसका उपलक्षण है । इस प्रकार का जीव जब गर्भ में ही श्रीभगवान् की स्तुति करता है, उसी समय उस अधोमुख शिशु को प्रसव कालीन वायु उसको बाहर आने के लिए ढकेलती है ॥२२॥

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः । विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥२३॥

अन्वयः— तेन अवसृष्टः सहसा अवाक् शिरः कृत्वा आतुरः निरुच्छ्वासः हतस्मृतिः कृच्छ्रेण विनिष्क्रामति ॥२३॥

अनुवाद— उस वायु के द्वारा सहसा ढकेलने पर शिशु अत्यन्त व्याकुल हो जाता है और शिर नीचे की ओर करके बड़े ही कष्ट से बाहर निकलता है । उस समय उसके श्वास की गति रूक जाती है और पूर्व स्मृति विनष्ट हो जाती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अवसृष्टोऽयः क्षिप्तः सन् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अवसृष्टः पद का अर्थ है बाहर फेंका गया ॥२३॥

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते । रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

अन्वयः— भुवि पतितः असृक् मूत्रे विष्ठाभूः इव चेष्टते । ज्ञाने गते विपरीतां गतिं गतः रोरूयति ॥२४॥

अनुवाद— पृथिवी पर माता के रुधिर और मूत्र में पड़ा हुआ वह शिशु विष्ठा के कीड़े के समान छटपटाता है । उसका गर्भवास का सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और देहाभिमान रूप विपरीत ज्ञान को प्राप्त करके बार-बार जोर से रोता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

रोरूयति रोरूयते ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वह बालक बार-बार रोता है ॥२४॥

परच्छन्दं नविदुषा पुष्यमाणो जनेन सः । अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥२५॥

अन्वयः— परच्छन्दं न विदुषा जनेन पुष्यमाणः सः अनभिप्रेतम् आपन्न प्रत्याख्यातुम् अनीश्वरः ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जो लोग उसके अभिप्राय को नहीं समझ सकते हैं उनके द्वारा उस शिशु का पालन पोषण होता है, उसको जो प्रतीकूल प्रतीत होता है उसका निषेध करने की शक्ति भी उसमें नहीं होती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

परस्य छन्दमभिप्रायमविदुषा । अनभिप्रेतं स्तन्यार्थं रोदने उदरव्यथां प्रकल्प्य निम्बरसपानमुदरव्यथया रोदने स्तनपानमित्यादि॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उसका पोषण दूसरे के अभिप्राय को नहीं जानने वाले लोग करते हैं । उसके दूध पीने के लिए रोने पर, पेट में दर्द होने पर पीने योग्य निम्ब का रस पिलाते हैं, पेट में दर्द होने के कारण रोने पर स्तन पान इत्यादि कराते हैं, उसको विपरीत प्रतीति जो होती है उसका वह निषेध भी नहीं कर पाता है ॥२५॥

शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते । नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥२६॥

अन्वयः— स्वेदज दूषिते अशुचिपर्यङ्के शायितः अङ्गानां कण्डूयने असनोत्थानचेष्टने नेशः ॥२६॥

अनुवाद— जिसमें स्वदज चीलर ढील आदि जीव पड़े रहते हैं ऐसे अपवित्र शय्या पर सोया हुआ वह बालक अपने अङ्गों को खुजलाने उठाने और करवट बदलने में असमर्थ रहता है । और कष्ट का अनुभव करता रहता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

आसनोत्थानचेष्टने चानीशः सन् रोरूयतीत्यनुषङ्गः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अपना करवट बललने शरीर को उठाने ओर खुजलाने आदि में असमर्थ होने के कारण वह बार-बार रोता हैं ॥२६॥

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः । रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥२७॥

अन्वयः— रुदन्तं विगतज्ञानं आमत्वचं तं दंशा, मशकाः मत्कुणादयः कृमयः कृमिकं यथा तुदन्ति ॥२७॥

अनुवाद— उसकी कोमल त्वचा को दंश मच्छर और खटमल आदि उसी तरह काटते रहते हैं जिस तरह छोटे कीड़े को बड़े-बड़े कीड़े काटते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

आमा कोमलात्वग्यस्य तम् । विगतं गर्भे जातं ज्ञानं यस्य ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उस शिशु की त्वचा कोमल होती है और गर्भ में उत्पन्न उसका ज्ञान विनष्ट हो गया रहता है ॥२७॥

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च । अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

अन्वयः— इत्येवं शैशवं दुःखं भुक्त्वा पौग्ण्डमेव च, अलब्धाभीप्सितः अज्ञानात् मन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह शैशवावस्था और पौगण्डावस्था के दुःखों को भोगकर वह बालक युवावस्था मे अपने अभिप्रेत वस्तु को नहीं प्राप्त कर सकने के कारण क्रोध करता है और शोकाकुल हो जाता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

शैशवं पञ्चवर्षाणि । ततः पौगण्डं यौवनादर्वाक् । तत्र चाध्ययनादि दुःखम् । यौवने दुःखमाह सार्धैस्त्रिभिः । अलब्धाभीप्सितत्त्वेन शुचार्पितो व्याप्तः । अज्ञानादिद्धो दीप्तो मन्युर्यस्य सः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

पाँच वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था कहते हैं उसके पश्चात् जवानी से पहले की अवस्था पौगण्डावस्था कहलाती है । इस अवस्था में अध्ययन आदि करने में कष्ट होता है । युवावस्था के दुःख को साढे तीन श्लोकों से बतलाया गया है । वह अपनी अभिप्रेत वस्तु को नहीं प्राप्त करने पर शोकान्वित हो जाता है । अज्ञान के कारण उसका क्रोध उद्दीप्त हो जाता है ॥२८॥

सहदेहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना । करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥२९॥

अन्वयः— देहेन सह वर्धमानेन, मानेन मन्युना कामी कमिषु आत्मनः अन्ताय विग्रहं करोति ॥२९॥

अनुवाद— देह के साथ-साथ अभिमान और क्रोध के बढ़ जाने के कारण वह काम परवश जीव कामी पुरुषों के साथ अपना नाश करने के लिए वैर करता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

देहेन सहैव वर्धमानेनाभिमानेन मन्युना च विग्रहं विरोधं करोति । आत्मनाऽन्ताय नाशाय ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

देह के साथ-साथ अभिमान और क्रोध के भी बढते रहने के कारण वह कामी पुरुष दूसरे कामी पुरुषों के साथ अपना नाश कराने के लिए वैर करता है ॥२९॥

भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् । अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥३०॥

अन्वयः— अबुधः कुमतिः पञ्चभिः भूतैः आरब्धे देहे असकृत् अहं मम इत्यसद्ग्राहः मतिम् करोति ॥३०॥

अनुवाद— छोटी बुद्धि वाला वह अज्ञानी जीव पञ्चभूतों से निर्मित इस देह में मिथ्याभिनिवेश के कारण सदा मैं और मेरेपन का अभिमान करने लगता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञानं प्रपञ्चयति । भूतैरारब्धे देहे । असदाग्रहोऽहंममेति मतिं करोति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल जीव के अज्ञान का विस्तार से वर्णन करते हैं । यह शरीर पञ्चमहाभूतों से निर्मित है किन्तु अपनी छोटी बुद्धि के कारण अज्ञानी मनुष्य उसमें बार-बार अहंत्व तथा ममत्व की बुद्धि करता है ॥३०॥

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् । योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥३१॥

अन्वयः— तदर्थं कर्म कुरुते यदबद्धः संसृतिम् याति । यः अविद्या कर्मबन्धनः क्लेशं ददत् अनुयाति ॥३१॥

अनुवाद— जो शरीर इसको वृद्धावस्था आदि अनेक प्रकार के कष्टों को प्रदान करता है तथा अविद्या तथा कर्म के सूत्रों से बँधे रहने के कारण सदा इसके पीछे लगा रहता है, उसी के लिए यह तरह-तरह के कर्मों को करता है । जिनमें बँध जाने के कारण जीव को बार-बार संसारचक्र में पड़ना होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदर्थं देहार्थम् । यद्येन कर्मणा बद्धः । यो देहः अनुयाति पुनः पुनरायात्यनुवर्तत इति वा । कुतः । अविद्याकर्मभ्यां बध्यत इति तथा ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वह अज्ञानी मनुष्य जो कुछ करता है उससे देह की ही प्राप्ति होती है । इस शरीर से कर्मों को करता है । जिन कर्मों से वह संसारचक्र में बंध जाता है । इस संसार में देह उसका सदा अनुगमन किया करता है, जिसके कारण संसार के चक्र में पड़ा मानव बार-बार इस संसार चक्र में पड़ता है । यह देह अविद्या तथा कर्म से संबद्ध है ॥३१॥

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः । आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥३२॥

अन्वयः— यदि पथि पुनः शिश्नोदर कृतोद्यमैः असद्भि आस्थितो जन्तु रमते तदा पूर्ववत् वह तमो विशति ॥२२॥

अनुवाद— सन्मार्ग पर प्रवृत्त उस मानव का यदि मार्ग में किन्हीं जिह्वा ओर उपस्थेन्द्रिय के भोगों में लगे हुए विषयी पुरुषों से समागम हो जाता है और उन लोगों में आस्था के कारण यदि वह उन्हीं लोगों का अनुगमन करने लगता है तो फिर वह पहले के ही समान नारकीय योनियों में चला जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यसद्भिरास्थितोऽधिष्ठितः संस्तेषां पथि रमते । पथि सन्मार्गे आस्थितोऽपि यद्यसद्भिः सह रमत इति वा तर्हि यातनादेह आवृत्येत्यादिपूर्वोक्तप्रकारेण तमो नरकं प्रविशति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सन्मार्ग पर भी चलने वाले मनुष्य का भी कहीं रास्ते में यदि असत् पुरुषों के साथ सङ्ग हो जाता है और वह उन्हीं लोगों के साथ यदि रमण करने लगता है तो फिर वह पहले के ही समान पूर्वोक्त प्रकार से संसारचक्र में पड़कर नरक में चला जाता है ॥३२॥

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा । शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम् ॥३३॥

अन्वयः— यत् सङ्गात् सत्यं, शौचम् दया, मौनं बुद्धिः श्रीः ह्रीः यशः क्षमा, शमः, दमः, भगः च इति संक्षयम् याति ॥३३॥

अनुवाद— जिन लोगों की संङ्गति से इस मनुष्य में सत्य, शौच (अभ्यान्तर और बाह्य पावित्र्य पालन) दया, मौन, बुद्धि, धन सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियों का संयम ऐश्वर्य इन सबों का नाश हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

असत्सङ्गं निन्दति-सत्यमिति त्रिभिः । बुद्धिः परमपुरुषार्थविषया । श्रीर्धनधान्यलक्षणा । ह्रीर्लज्जा । यशः कीर्तिः । क्षमा सहिष्णुत्वम् शमो बाह्येन्द्रियनिग्रहः । दमो मनोनिग्रहः । भग उन्नतिः । यत्सङ्गाद्येषामसतां सङ्गात् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तीन श्लोक में असत्सङ्गति का वर्णन करते हुए कहते हैं । बुद्धि शब्द से परम पुरुषार्थ विषयिणी बुद्धि को कहा गया है, श्रीशब्द से धन सम्पत्ति को कहा गया है । ह्री अर्थात् लज्जा, यश, सहिष्णुता बाह्येन्द्रियों के निग्रह रूपी शम, तथा मन का निग्रह रूपी दम, भग, उन्नति ये सभी उन असत् पुरुषों की सङ्गति से विनष्ट हो जाते हैं ॥३३॥

तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु । सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥३४॥

अन्वयः— तेषु शोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु अशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मसु असाधुषु सङ्गं न कुर्यात् ॥३४॥

अनुवाद— उन अत्यन्त शोचनीय स्त्रियों के क्रीडामृग (खिलौना) अशान्त, मूढ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषों का भी सङ्ग नहीं करना चाहिए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

खण्डितात्मसु देहात्मबुद्धिषु । योषितां क्रीडामृगवदधीनेषु ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

उन अत्यन्त शोचनीय, देह में ही आत्मा की बुद्धि करने वाले तथा जो क्रीडामृग के समान स्त्रियों के वशवर्ती बने रहते हैं, ऐसे असत् पुरुषों की सङ्गति कभी भी नहीं करनी चाहिए ॥३४॥

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः । योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥३५॥

अन्वयः— अस्य अन्य प्रसङ्गतः तथा मोहो बन्धः च न भवेत् । यथा योषित्सङ्गात् तत्सङ्गिसङ्गतः पुंसो भवति॥३५॥

अनुवाद— इस जीव को किसी दूसरे की सङ्गति करने से ऐसा मोह और बन्धन नही होता है जैसा कि स्त्री और स्त्रियों के सङ्गियों का सङ्गं करने से होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यथा च योषित्सङ्गिनां सङ्गतो बन्धस्तथाऽन्यप्रसङ्गतो न भवेत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

इस जीव को स्त्रियो के सङ्ग रहने वाले पुरुषों के सङ्ग से जैसा मोह और बन्ध उत्पन्न होता है, उस प्रकार का बन्ध और मोह दूसरों के सङ्ग से नहीं होता है ॥३५॥

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः । रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥३६॥

अन्वयः— प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः रोहित् भूतां ऋक्ष रूपी हतत्रपः स अन्वधावत् ॥३६॥

अनुवाद— एक बार प्रजापति ब्रह्माजी भी अपनी पुत्री सरस्वती को देखकर उसके रूप लावण्य से मोहित हो गये थे । सरस्वती के मृगीरूप धारण करके भागने पर ब्रह्माजी मृग का रूप धारण करके निर्लज्तता पूर्वक उसके पीछे दौड़ने लगे थे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

योषित्सङ्गस्यानर्थहेतुतां प्रपञ्चयति-प्रजापतिरिति सप्तभिः । रोहिद्भूतां मृगीरूपां सतीमृक्षरूपी मृगाकारः सन् । हतत्रपो निर्लज्जः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् कपिल सात श्लोकों द्वारा स्त्री के सङ्ग को अनर्थ का कारण बतलाते हुए **प्रजापतिः इत्यादि** श्लोक कहते हैं— अपनी पुत्री सरस्वती के रूप लावण्य से मोहित हुए ब्रह्माजी को देखकर सरस्वती जब मृगी का रूप धारण करके भागी तो ब्रह्माजी भी मृग का रूप धारण करके निर्लज्ज होकर उसके पीछे दौड़े ॥३६॥

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखण्डितधीः पुमान् । ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥३७॥

अन्वयः— तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कः नु पुमान् नारायणं ऋषिं ऋते इह योषित् मय्या मायया अखण्डित धीः ॥३७॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने मरीचि आदि ऋषियों की सृष्टि की, मरीचि आदि ने कश्यप आदि ऋषियों की सृष्टि की और कश्यप आदि ने मनुष्यों आदि पुरुषों की सृष्टि की । इन सबों में भगवान् नारायण को छोड़कर कौन ऐसा पुरुष है जो मायामयी स्त्री को देखकर मोहित न हुआ हो ?॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तेन ब्रह्मणा सृष्टा मरीच्यादयस्तैः सृष्टाः कश्यपादयस्तैरपि सृष्टा देवमनुष्यादयस्तेषु को नु पुमानखण्डितधीरनाकृष्टमनाः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने मरीचि आदि पुरुषों की सृष्टि की, मरीचि आदि ने कश्यप आदि की सृष्टि की और कश्यप आदिने देव मनुष्य आदि की सृष्टि की । इन सबों में ऋषि नारायण को छोड़कर कौन ऐसा मनुष्य है जो स्त्री रूपी माया को देखकर उसके प्रति आकृष्टमना नहीं हुआ हो ?॥३७॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् । या करोति पदाक्रान्तान्भ्रूविजृम्भेण केवलम्॥३८॥

अन्वयः— मम स्त्री मय्याः मायायाः बलं पश्य या केवलम् भ्रूविजृम्भेण दिशाम् जयिनः पदाक्रान्तान् करोति ॥३८॥

अनुवाद— मेरी इस स्त्री रूपी माया का बल तो देखो जो अपनी भौंहों के विलासमात्र से बड़े-बड़े दिग्विजयी वीरों को भी अपने पैरों से रौंद देने का काम करती है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

दिशां जयिनः शूरानपि ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की स्त्री रूपिणी माया का इतना प्रचण्ड बल है कि वह केवल अपनी भौहों के विलासमात्र से बड़े-बड़े दिग्विजयी वीरों को भी अपने पैरों से रौद देती है ॥३८॥

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥३९॥

अन्वयः— योगस्य परं परम् आरुरूक्षुः मत्सेवया प्रतिलब्ध आत्मलाभः आसुप्रमदासु सङ्गं न कुर्यात् योगिनः याः अस्य निरयद्वारम् वदन्ति ॥३९॥

अनुवाद— जो मनुष्य योग की पराकाष्ठा पर आरूढ होना चाहता है, अथवा जिसको मेरी सेवा के प्रभाव से आत्मा नात्मविवेक प्राप्त हो गया है, ऐसा पुरुष स्त्रियों का सङ्ग कभी न करे । क्योंकि योगिजन ऐसे पुरुषों के लिए स्त्रियों को नरक का खुला हुआ द्वार बतलाते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिलब्ध आत्मरूपो लाभो येन । अस्य मुमुक्षोर्याः प्रमदा निरयद्वारं वदन्ति योगिनः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जिसने मेरी सेवा के प्रभाव से आत्मलाभ प्राप्त कर लिया है, उसको कभी भी स्त्रियों का सङ्ग नहीं करना चाहिए क्योंकि मुमुक्षु पुरुष के लिए योगियों ने स्त्री को नरक का द्वार बतलाया है ॥३९॥

योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता । तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥४०॥

अन्वयः— या देवविनिर्मिता योषित् माया शनैः उपयाति ताम् तृणैः आवृतम् कूपम् इव आत्मनो मृत्युम् ईक्षेत् ॥४०॥

अनुवाद— परमात्मा के द्वारा निर्मित यह जो स्त्री रूपी माया सेवा आदि के बहाने से धीरे-धीरे पास आती है उसको तृण से ढँके हुए कुएँ के समान अपनी मृत्यु समझनी चाहिए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

शनैः शुश्रूषादिमिषेणोपयाति या योषिद्रूपा माया तां मृत्युं प्रतिकूलामीक्षेत् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

नारी रूपी माया जो सेवा आदि के बहाने से धीरे-धीरे अपने पास आती है मुमुक्षु पुरुष को उसको अपनी मृत्यु के समान प्रतीकूल समझना चाहिए ॥४०॥

यां मन्यत पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् । स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥४१॥
तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् । दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥४२॥

अन्वयः— स्त्री सङ्गतः स्त्रीत्वं प्राप्तः ऋषभायतीम् मत् मायाम् वित्तापत्यगृहप्रदम् पतिंमन्यते मृगयोः गायनं यथा ताम् दैवोपसादितं पत्यापत्यगृहात्मकम् आत्मनो मृत्युं विजानीयात् ॥४१-४२॥

अनुवाद— स्त्री में ही आसक्त रहने के कारण तथा मृत्यु के समय में भी स्त्री का ही ध्यान रहने से जीव को स्त्री योनि की प्राप्ति होती है । इस तरह स्त्रीयोनि को प्राप्त हुआ जीव पुरुष रूप में प्रतीत होने वाली मेरी माया को ही धन गृह और पुत्र प्रदान करने वाला अपना पति समझता है । जिस तरह बहेलिए का गायन कानों को प्रिय लगने पर भी पशुओं को फँसाकर उनकी मृत्यु का कारण बनता है उसी तरह उन पुत्र, पति तथा गृह आदि को भी विधाता के द्वारा निश्चित की गयी अपनी मृत्यु ही समझे ॥४१-४२॥

भावार्थ दीपिका

मुमुक्षुं स्त्रियं प्रत्येतदेवाह-यां मन्यते इति द्वाभ्याम् । ऋषभायतीं पुरुषवदाचरन्तीं यां मम मायां वित्तदिप्रदं पतिं मन्यते तदा तां पुरुषरूपां मायां मृत्युं विद्यादित्युत्तरेणान्वयः । यतः पूर्वजन्मनि स्वयं पुमान्स्त्रीसङ्गतोऽन्तकाले स्त्रीध्यानेन स्त्रीत्वं प्राप्तो जीवः । तां पत्यादिरूपं मृत्युं विजानीयात् । मृगयोलुब्धकस्य गायनमनुकूलत्वेन प्रतीयमानमपि यथा मृगस्य मृत्युः ।।४१-४२।।

भाव प्रकाशिका

मुमुक्षु स्त्री के लिए भी यां मन्यते इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा इसी बात को भगवान् कपिल ने बतलाया है । पूर्वजन्म में स्त्री के सङ्ग के कारण मृत्यु के समय में भी स्त्री का ही ध्यान बने रहने के कारण जीव मरकर स्त्री योनि को प्राप्त करता है । वह पुरुष के समान आचरण करने वाली मेरी माया को ही वित्त इत्यादि प्रदान करने वाला पति मानता है । उस समय उसको पुरुष स्वरूपिणी माया को मुमुक्षु स्त्री अपनी मृत्यु के रूप में देखे। इस श्लोक का अगले बयालिसवें श्लोके साथ अन्वय है । उस माया को पति आदि का रूप धारण करने वाली मृत्यु ही समझे जिस तरह से बहेलिये का गीत कानों को सुनने में प्रिय लगता है किन्तु वही मृग की मृत्यु का कारण बन जाता है उसी तरह ।।४१-४२।।

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजमन् । भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ।।४३।।

अन्वयः— जीव भूतेन देहेन लोकान्तरात् लोकान्तरम् अनुव्रजन् पुमान् भुञ्जान एव अविरतं कर्माणि करोति ।।४३।।

अनुवाद— अपने लिङ्ग शरीर के द्वारा लोकों में जाने वाला जीव अपने प्रारब्ध कर्म का फल भोगता हुआ दूसरे शरीर को प्राप्त करने के लिए पुरुष निरन्तर कर्मों को करता रहता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं जीवस्य संसृतिः प्रपञ्चिता तत्र च तस्य कर्मवशेन लोकाल्लोकान्तरगमनं जन्ममरणं चोक्तम् । तत्रैव शङ्क्यते ननु व्यापकस्य कथं लोकाल्लोकान्तरगमनम्, नित्यस्य च कथं जन्ममरणे, भोगेन कर्मक्षये च सति जन्मरणं च नेष्यते, तत्कुतः पुनरपि तस्य कर्मसंभव इति, तत्र लोकान्तरगमनं कर्म च संभवतीत्याह-देहेनेति । जीवस्योपाधि तथाभूतेन जातेन लिङ्गदेहेन लोकान्तरमनुव्रजन् । अविरतं कर्माणि करोतीति कर्मणामसमाप्तिरुक्ता ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से जीव की सृष्टि का वर्णन किया गया और यह बतलाया गया कि कर्मों के अधीन होकर जीव एक लोक से दूसरे लोक में जाता है और उसका जन्म भी होता है और मृत्यु भी होती है । इसके विषय में शङ्का होती है कि ब्रह्मस्वरूप होने के कारण जीव व्यापक है ? जीव नित्य भी है । उस नित्य जीव का जन्म और मरण कैसे सम्भव है ? जब भोग के द्वारा कर्मों का नाश हो जाता है तो फिर उसको कर्म पुनः कैसे उत्पन्न हो जाता है ? इन तीनों प्रकार की शङ्काओं में से यह बतलाया जा रहा है कि जीव का लोकान्तर गमन और कर्म दोनों सम्भव है । जीव की उपाधि रूप से उत्पन्न लिङ्ग शरीर के द्वारा जीव एक लोक से दूसरे लोक में जाता है । जीव सदैव कर्मों को करता रहता है अतएव उसके कर्मों की कभी समाप्ति नहीं होती हैं ।।४३।।

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः । तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ।।४४।।

अन्वयः— भूतेन्द्रियमनोमयः देहः जीवः हिअस्य अनुगः । तन्निरोधः अस्यमरणम् अविर्भावः तु संभवः ।।४४।।

अनुवाद— जीव की उपाधि रूप लिङ्ग शरीर उसकी मृत्यु पर्यन्त उसके साथ बना रहता है । भूत इन्द्रिय और मन का कार्यरूप स्थूल शरीर उसका अधिष्ठान है । उसी में रहकर वह भोगों को भोगता है । इन दोनों का एक साथ रहकर कार्य न करना ही मृत्यु है और दोनों का साथ-साथ प्रकट होना जन्म कहलाता है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

जन्ममरणसंभवमाह । जीवो जीवोपधिलिङ्गदेहोऽस्यात्मनोऽनुगोऽनुवर्ती । भूतेन्द्रियमनोमयः । स्थूलभूतादिविकारो देहो भोगायतनं तयोर्निरोधः कार्यायोग्यता तदस्य जीवस्य मरणमुच्यते । आविर्भावस्तु संभवो जन्मोच्यते ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जीव का जन्म मरण भी सम्भव है । इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । जीव शब्द से जीवपाधि लिङ्ग शरीर को कहा गया है । वह आत्मा का अनुगमन करने वाला है । भूत इन्द्रिय और मन का अर्थ है भूतों का विकार स्थूल शरीर, यह जीव का भोगाधिष्ठान है । उन दोनों के एक साथ रहकर कार्य नही करने को मृत्यु कहा जाता है । और उन दोनों का एक साथ प्रकट होना ही जन्म कहलाता है ।।४४।।

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा । तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ।।४५।।

अन्वयः— यदा द्रव्योपलब्धि स्थानस्य द्रव्येक्षा अयोग्यता तत्पञ्चत्वं, अहंमानात् द्रव्यदर्शनम् उत्पत्तिः ।।४५।।

अनुवाद— द्रव्यों की उपलब्धि के स्थान रूप इस स्थूल शरीर में जब उनके ग्रहण की शक्ति नहीं रह जाती है तो उसी को मरण कहते हैं । यह स्थूल शरीर ही मैं हूँ इस अभिमान के साथ उसको देखने को ही जन्म कहते हैं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति । द्रव्योपलब्धिस्थानस्य नेत्रगोलकादेर्द्रव्येक्षायां रूपादिदर्शने काचकामलादिदोषेण आविर्भावाऽयोग्यता भवति तदैव चक्षुष इन्द्रियस्याप्ययोग्यता । अनयोः स्थानचक्षुषोर्यदाऽयोग्यता तदैव द्रष्टुर्जीवस्य द्रष्टृत्वायोग्यता एवं स्थूलदेहवैकल्ये लिङ्गस्य वैकल्यं तदेव जीवस्य मरणं न स्वत इत्यर्थः । क्वचिदेकः श्लोकोऽधिकः पठ्यते । तत्रायमर्थः- द्रव्योपलब्धिस्थानस्य स्थूलशरीरस्य द्रव्येक्षायां यदाऽयोग्यता तत्पञ्चत्वं मरणम् । अहंमानादिदमेवाहमित्यभिमानेन द्रव्यस्य स्थूलशरीरस्य दर्शनमुत्पत्तिः । अक्ष्णोर्गोलकयोर्द्रव्यावयवस्य रूपादेर्दर्शनेऽयोग्यता । शेष समानम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ को ही दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करते हैं । नेत्रों के गोलक आदि द्रव्यों का साक्षात्कार करने में जब काचकामालगादि दोष के कारण नेत्र में दर्शन की अयोग्यता आ जाती है, उसी समय चक्षुरिन्द्रय की भी अयोग्यता हो जाती है तथा उसी समय द्रष्टा जीव के भी द्रष्टृत्व की अयोग्यता हो जाती है । इसी तरह स्थूल शरीर में विकलता होने पर लिङ्ग शरीर में भी विकलता हो जाती हैं । उसी समय जीव की मृत्यु होती है । जीव की मृत्यु अपने आप नहीं होती है । कहीं पर एक श्लोक अधिक पढा गया है- उसका अर्थ यह है कि जब स्थूल शरीर के द्रव्यों को देखने में जब अयोग्यता होती है उसी को मृत्यु कहते हैं और मैं ही यह स्थूल शरीर हूँ इस अभिमान के साथ स्थूल शरीर को देखना ही उत्पत्ति है । दोनों नेत्रों के गोलकों के द्रव्य को न देखने को ही अयोग्यता कहते हैं । और सारी बाते एक समान हैं ।।४५।।

यथाक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा । तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ।।४६।।

अन्वयः— यथा यदा अक्ष्णोः द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता तदैव चक्षुषः द्रष्टुः अनयोः द्रष्टृत्वायोग्यता ।।४६।।

अनुवाद— जब किसी दोष के कारण नेत्रों में देखने की योग्यता नहीं रहती है । उसी समय चक्षुरिन्द्रय भी रूप के देखने में असमर्थ हो जाती है । जब नेत्रों और उनमें रहने वाली इन्द्रिय दोनों ही रूप देखने में असमर्थ हो जाते हैं उसी समय उन दोनों के साक्षी जीव में भी वह योग्यता नहीं रह जाती है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।४६।।

तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः। बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥४७॥
सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया। मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने जीवगतिर्नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥

अन्वयः— तस्मात् संत्रासः न कार्पण्येन, संभ्रमः न कार्यः जीवगतिं बुद्ध्वा धीरः इह मुक्तसंगः चरेत्। योगवैराग्य युक्तया सम्यग् दर्शनया बुद्ध्या कलेवरं न्यस्य मायाविरचिते लोके चरेत् ॥४७-४८॥

अनुवाद— अतएव मुमुक्षु पुरुष को मरण आदि से भय दीनता या मोह नहीं होना चाहिए। जीव के स्वरूप को जानकर उसको नि:सङ्गभाव से विचरण करना चाहिए। इस मायामय संसार में योगवैराग्य युक्त सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि से शरीर को नि:क्षेप की भाँति रखकर उसके प्रति अनासक्त भाव से विचरण करना चाहिए ॥४७-४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत जीवों की गति वर्णन नामक इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

यमान्न वस्तुतो जीवस्य जन्मरणादि तस्मान्मरणात्संत्रासो न कार्यो जीवने च न कार्पण्यं दैन्यं कार्यम्। संभ्रमश्च जीवनप्रयत्ने। ननु सर्वथा मुक्तसङ्गत्वे कथं जीवितमत आह। सम्यक् पश्यति विचारयतीति सम्यग्दर्शना तया बुद्ध्या मायाविरचिते लोके कलेवरं न्यस्य निक्षिप्य। तस्मिन्नासक्तिं त्यक्त्वा विचरेदित्यर्थः ॥४७-४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

चूकि जीव की वस्तुत: न तो मृत्यु होती है और न जन्म होता है, अतएव जीवन में मृत्यु से न तो भय करनी चाहिए, न दीनता करनी चाहिए और न जीवन के लिए प्रयत्न करना चाहिए। प्रश्न है कि पूर्णरूप से सङ्ग रहित हो जाने पर जीवन कैसे रह सकता है ? तो इस पर कहते हैं— सम्यक् विचार करने वाली बुद्धि के द्वारा लोक में शरीर को धरोहर की भाँति रखकर उसमें आसक्ति त्याग करके विचरण करना चाहिए॥४७-४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के इकतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३१।।

बतीसवाँ अध्याय

धूमदि मार्ग तथ अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले जीवों की गति का वर्णन एवं भक्ति योग की उत्कृष्टता का वर्णन

कपिल उवाच

अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानिवावसन्गृहे । काममर्थं च धर्मान्स्वान्दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥
स चापि भगवद्धर्मात्काममूढः पराङ्मुखः । यजते क्रतुभिर्देवान्पितृंश्च श्रद्धयान्वितः ॥२॥

अन्वयः— अथ यः गृहे आवसन् गृहमेधीयान् कामान् स्वान् धर्मान् दोग्धि कामम् अर्थं च भूयः तान् पिपर्ति स चापि मूढः भगवद् धर्मात् कामम् पराङ्मुखः क्रतुभिः देवान् पितृंश्च श्रद्धयान्वितः यजते ॥१-२॥

अनुवाद— हे माँ ! जो पुरुष घर में ही रहकर सकामभाव से गृहस्थ के धर्मों का पालन करता है और इसके फलस्वरूप काम और अर्थ का उपभोग करके पुन: उनका ही अनुष्ठान करता है। अनेक प्रकार की कामनाओं

से मोहित रहने के कारण वह भगवद् धर्म पराङ्मुख रहता है और यज्ञों के द्वारा देवताओं और पितरों की ही आराधना करता है ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

द्वात्रिंशे सात्विकैर्धर्मैरूर्ध्वं गतिरुदीर्यते । तत्त्वज्ञानविहीनस्य ततश्च पुनरागतिः ॥१॥ तदेवं पापकर्मणो गतिरुक्ता, इदानीं काम्यकर्मणो गतिमाह— अथेति चतुर्भिः । यो गृह एकत्रवसन्स्वान्धर्मान्दोग्धि । दोह्यमाह । काममर्थं च तान्दुग्धान्धर्मान्भूयः पिपर्ति पूरयत्यनुतिष्ठति ॥१॥ सोऽपि भगवदाराधनरूपाद्धर्मात्पराङ्मुखः सन्प्राकृतानपि देवान्पितृंश्च यजते ॥२॥

भाव प्रकाशिका

बत्तीसवें अध्याय में सात्त्विक धर्मों के द्वारा तत्त्वज्ञान विहीन जीवों की ऊर्ध्वगति का वर्णन किया गया है और पुनः उन सबों की उन लोकों से आगमन का वर्णन किया गया है ॥१॥ इस तरह से पापकर्म करने वाले पुरुषों की गति का वर्णन किया जा चुका है । इस अध्याय में काम्य कर्मों को करने वाले पुरुषों की गति का वर्णन **अथ यो० इत्यादि** चार श्लोकों से किया जा रहा है । जो अपने घर में ही रहते हुए अपने धर्मों का अनुष्ठान करता है । जिन धर्मों का अनुष्ठान करना है उन सबों को बतलाते हैं । वह काम और अर्थ का उपभोग करता है और पुनः उनका अनुष्ठान करता है ॥१॥ वह पुरुष भी श्रीभगवान् की आराधना रूपी धर्म से पराङ्मुख रहता है और प्राकृत देवता और पितरों का यजन करता है ॥२॥

तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् । गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥३॥

अन्वयः— **तत् श्रद्धया आक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् चान्द्रमासं लोकं गत्वा सोमपाः पुनः एष्यति ॥३॥**

अनुवाद— उसकी बुद्धि उसी प्रकार की श्रद्धा से युक्त रहती है वह पितरों और देवताओं की उपासना करता है । वह चन्द्रलोक में जाकर वहाँ सोमपान करता है और पुण्यों के क्षीण हो जाने पर पुनः इस लोक में आता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ततः किं तत्राह । तेषां श्रद्धयाक्रान्ता व्याप्ता मतिर्यस्य । पित्रर्थं देवार्थं च व्रतं नियमो यस्य । सोमपाः, तत्र सोमं पीत्वेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जो होता है उसका वर्णन करते हैं । उन पुरुषों की बुद्धि देवताओं और पितरों की ही श्रद्धा से व्याप्त रहती है । वह पितरों एवं देवताओं का व्रत करता है । मृत्यु के पश्चात् चन्द्रलोक में जाकर सोमपान करता है और पुण्य के क्षीण हो जाने पर पुनः इस लोक में आता है ॥३॥

यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः । तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥४॥

अन्वयः— **यदा च अनन्तासनः हरि अहीन्द्रशय्यायां शेते तदा गृहमेधिनाम् त एते लोकाः लयं यान्ति ॥४॥**

अनुवाद— जिस समय प्रलय काल में शेषशायी भगवान् शेष शय्या पर शयन करते हैं उस समय इन सकाम कर्म करने वाले पुरुषों के लोक भी लीन हो जाते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

लोके तिष्ठत्यपि पुण्यक्षयात्पातमुक्त्वा लोकानामपि लयमाह । यदा चाहरहः प्रलये ॥४॥

भाव प्रकाशिका

लोकों के बने रहने पर भी पुण्य के क्षीण होने के कारण देवलोक से पतन को बतलाकर प्रलयकाल में उन लोकों का भी लय हो जाता है इस बात को इस श्लोक में कहा गया है ॥४॥

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे । निःसङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥
निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः । स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥

अन्वयः— ये धीराः स्वधर्मान् कामार्थ हेतवे न दुह्यन्ति ते निःसङ्गाः न्यस्त कर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः निवृत्तिधर्मनिरताः निर्ममा निरहंकृताः स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धचेतसः भवन्तीत्यर्थः ॥५-६॥

अनुवाद— जो विवेक सम्पन्न पुरुष अर्थ एवं काम के लिए अपने धर्मों का उपयोग नहीं करते हैं वे उन धर्मों का पालन भगवान् के मुखोल्लास के ही लिए करते हैं। वे अनासक्त, प्रशान्त शुद्धचित, निवृत्तिधर्म परायण, ममता से रहित, और अहङ्कारशून्य पुरुष स्वधर्म पालन रूप सत्त्वगुण के द्वारा पूर्णरूप से शुद्धचित्त हो जाते हैं ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्धर्मनिष्ठानां तत्प्राप्तिमेव गतिमाह त्रिभिः । ये तु कामार्थप्रयोजनाय स्वधर्मान्न दुह्यन्ति न दुहन्ति । निःसङ्गा अनासक्ताः । न्यस्तानीश्वरे समर्पितानि कर्माणि यैः ॥५-६॥

भाव प्रकाशिका

भगवद्धर्म का पालन करने वाले जीवों को श्रीभगवान् की प्राप्ति ही गति है। इस बात को तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं। जो लोग अपने अर्थ और काम के लिए अपने धर्मों का पालन नहीं करते हैं, अपितु भगवान् के मुखोल्लासार्थ ही उनका पालन करते हैं वे अनासक्त उपासक अपने सभी कर्मों को श्रीभगवान् को ही समर्पित कर देते हैं ॥५-६॥

सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् । परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥७॥

अन्वयः— ते सूर्य द्वारेण विश्वतोमुखं परावरेशम् अस्य प्रकृतिम् उत्पत्त्यन्तभावनम् पुरुषं यान्ति ॥७॥

अनुवाद— वे लोग अर्चिरादि मार्ग या देवयान से सर्वव्यापक पूर्णपुरुष परमात्मा को ही प्राप्त करते हैं वे भगवान् कार्यकारण रूप जगत् के नियन्ता संसार के उपादान कारण उसकी उत्पत्ति, पालन और संहारस्थान हैं॥७॥

भावार्थ दीपिका

विश्वतोमुखं परिपूर्णं पुरुषं यान्ति । तथा च श्रुतिः— **'सूर्यद्वारण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः पुरुषो ह्यव्ययात्मा'** इति प्रकृतिमुपादानकारणम् । उत्पत्त्यन्तभावनं निमित्तकारणम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वे निष्काम पुरुष अन्त में सर्वव्यापक पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त करते हैं जो परमात्मा इस जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। श्रुति भी कहती है— **सूर्यद्वारेण ते विरजाः इत्यादि** अर्थात् रजोगुण से रहित वे सत्त्वगुण सम्पन्न पुरुष सूर्य द्वार से उस लोक में जाते हैं जहाँ पर निर्विकार अमृत पुरुष परमात्मा का निवास है ॥७॥

द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते । तावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥८॥

अन्वयः— परस्य परचिन्तकाः द्विपरार्धावसाने ब्रह्मणः प्रलयः तावत् लोकं अध्यासते ॥८॥

अनुवाद— जो लोग परमात्मा की दृष्टि से ब्रह्माजी की उपासना करते है। वे दो परार्द्धों में होने वाले ब्रह्माजी के प्रलय काल पर्यन्त सत्यलोक में ही रहते है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

परमेश्वरदृष्ट्या हिरण्यगर्भोपासकानामपि क्रमेण तत्प्राप्तिमाह-द्विपरार्धावसान इति त्रिभिः । परस्य हिरण्यगर्भस्य । परचिन्तकाः परमेश्वरदृष्ट्या हिरण्यगर्भोपासकाः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मदृष्टि से ब्रह्माजी की उपासना करने वालों को भी क्रमश: परमात्मा की प्राप्ति होती है, इस बात को भगवान् कपिल ने तीन श्लोकों द्वारा कहा है। परस्य अर्थात् हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी परमात्मा की दृष्टि से चिन्तन करने वाले उपासक के द्विपरार्द्ध काल पर्यन्त ब्रह्माजी के लोक में रहते हैं ॥८॥

क्ष्माम्भोनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः ।
अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥९॥
एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ।
तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥१०॥

अन्वयः— यर्हि गुणत्रयात्मा परः स्वयम्भूः पराख्यं कालम् अनुभूय क्ष्माम्भोनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः अव्याकृतं विशति तर्हि जितमरुन्मनसः विरागाः ये योगिनः परेत्य भगवन्तम् अनुप्रविष्टाः तेनैवसाकं अमृतं पुराणं पुरुषं प्रधानं ब्रह्म उपयान्ति अगताभिमानाः ॥९-१०॥

अनुवाद— जिस समय देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्ध काल के अधिकार को भोगकर पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश, मन इन्द्रियाँ और उनके विषय तथा अहङ्कारादि के साथ सम्पूर्ण विश्व का संहार करने की इच्छा से त्रिगुणात्मिका प्रकृति के साथ एक होकर निर्विशेष परमात्मा में लीन हो जाते हैं, उस समय मन और प्राण को जीते हुए विरक्त योगिगण भी अपने देह को त्यागकर भगवान् ब्रह्माजी में ही लीन हो जाते हैं और उनके साथ ही पुराण पुरुष परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं उससे पहले वे परमात्मा में लीन इसलिए नहीं होते हैं कि उनमें अब तक अहङ्कार शेष था ॥९-१०॥

भावार्थ दीपिका

क्ष्मादीनि पञ्चमहाभूतानि मनश्चेन्द्रियाणि चार्थाश्च शब्दादयो भूतादिश्चाहङ्कार; एवमादिभिः परिवृतं युक्तं ब्रह्माण्डं प्रतिसंहर्तुमिच्छुः सन् । अव्याकृतमीश्वरम् । पराख्यं द्विपरार्धलक्षणं कालम् । परेत्य दूरं गत्वा भगवन्तं हिरण्यगर्भमनुप्रविष्टा ये योगिनोऽमृतं परमानन्दरूपं प्रधानमुत्कृष्टं ब्रह्म तेनैव सहोपयान्ति, न तु पूर्वम् । यतस्तदाऽगताभिमानाः तथा च स्मृतिः- '**ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ।।**' इति ॥९-१०॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी इत्यादि पञ्चमहाभूतों मन, इन्द्रियाँ शब्दादिविषयों भूतादि अहङ्कार इन सबों से परिवृत ब्रह्माण्ड का संहार करने के इच्छुक भगवान् ब्रह्माजी द्विपरार्द्ध काल को भोगकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं उसी समय योगिजन अपने शरीर का परित्याग करके ब्रह्माजी में ही प्रवेश कर जाते हैं और उन्हीं के साथ परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं उससे पहले इसलिए नहीं प्राप्त करते हैं कि उस समय तक उनमें अहङ्काराभिमान बना रहता है। स्मृति भी कहती है— महाप्रलयकाल के उपस्थित होने पर वे सभी योगिजन भी कृतकृत्य होकर **परं** पद में प्रवेश कर जाते हैं ॥९-१०॥

अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् । श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥११॥

अन्वयः— हे भामिनि सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् श्रुतानुभावं तं अथ भावेन शरणं व्रज ॥११॥

अनुवाद— हे माँ सभी जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले उन प्रख्यात प्रभाव वाले श्रीभगवान् की तुम भक्तिभाव पूर्वक शरणागति करो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भगवदुपासकास्तु साक्षादेव तं प्राप्नुवन्ति नतु क्रमेण, अतस्त्वं साक्षात्तमेव भजेत्याह । अथ तस्मात् । भावेन प्रेम्णा।।११।।

भाव प्रकाशिका

हे माँ जो परमात्मोपासक होते हैं वे तो साक्षात् परमात्मा को प्राप्त करते हैं, न कि क्रमशः अतएव तुम साक्षात् उन परमेश्वर का ही प्रेम पूर्वक भजन करो ।।११।।

आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः । योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ।।१२।।
भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा । कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ।।१३।।
स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना । जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ।।१४।।

अन्वयः— स्थिरचराणां यो आद्यः वेदगर्भः ऋषिभिः योगेश्वरैः कुमाराद्यैः योग प्रवर्तकैः सिद्धेश्वरैः सह निःसङ्गेनापि कर्मणा भेद दृष्ट्याभिमानेन कर्तृत्वात् सगुणं ब्रह्म पुरुषर्षभं पुरुषं संसृत्यः पुनः सर्गकाले जाते ईश्वर मूर्तिना कालेन गुणव्यतिकरे यथा पूर्वं प्रजायते ।।१२-१४।।

अनुवाद— ब्रह्माजी जो सभी जड़ जङ्गम जीवों के आदि कारण है मरीचि आदि ऋषियों योगेश्वरों, सनाकादिकों तथा योगों के प्रवर्तक सिद्धों के साथ निष्काम कर्म के द्वारा आदि पुरुषश्रेष्ठ सगुण ब्रह्म को प्राप्त होकर भी भेद दृष्टि और कर्तृत्वाभिमान के कारण भगवदिच्छा से जब सृष्टिकाल आता हैं तब काल रूप परमात्मा की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने पर पुनः पहले के ही समान प्रकट होते हैं ।।१२-१४।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावद्भगवद्भक्तानां निरन्तरमेव तत्प्राप्तिर्भगवदभेदेन हिरण्यगर्भोपासकानां तु क्रमेणेत्युक्तम् । भेदेनोपासने तु ब्रह्मादयोऽप्यावर्तन्ते किमुतान्य इत्याह-आद्य इति चतुर्भिः । यो वेदगर्भः सोऽपि गुणव्यतिकरे जाते यथापूर्व ब्रह्मपदाधिकृतः सन् प्रजायते इति तृतीयेनान्वयः । न केवलं स एवैकः किंतु ऋषिभिर्मरीच्यादिभिर्योगेश्वरादिभिश्च सह । जन्मनि हेतुद्वयम् । भेददृष्ट्याभिमानेन कर्तृत्वादिति च । यथापूर्वत्वे हेतुः-निःसङ्गेन निष्कामेन कर्मणेति । किं कृत्वाऽत्र प्रजायते । प्रथमं पारमेष्ठ्यमैश्वर्य निषेव्य, पश्चात्प्रलये सगुणं गुणाधिष्ठातारं प्रथमावताररूपं पुरुषं संसृत्य प्राप्य, तेऽपि ऋषिप्रमुखाः स्वकर्मनिर्मितमैश्वर्यं निषेव्य पुरुषं च संसृत्य यथापूर्वं स्वास्वाधिकारेण पुनरायान्तीत्यन्वयः ।।१२-१४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यह बतलाया गया है कि श्रीगवान् की उपासना करने वाले भक्तों को परमात्मा की साक्षात्प्रग्प्ति होती है ओर हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी की उपासना करने वालों को परमात्मा की प्राप्ति क्रमशः होती है । भेद दृष्टि से तथा कर्तृत्वाभिमान पूर्वक उपासना करने वाले तो ब्रह्मा आदि को भी इस संसार में पुनः आना पड़ता है, दूसरों की कौन सी बात है ? इसी अर्थ का प्रतिपादन **आद्यः** आदि चार श्लोकों से किया गया है । जो वेदगर्भ ब्रह्माजी है वे भी सृष्टि काल के आने पर पहले के ही समान अपने ब्रह्मपद पर अधिकृत होकर उत्पन्न होते हैं । इसका आगे के तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है । वे ही केवल नहीं अपितु मरीचि आदि ऋषियों तथा योगेश्वरों के साथ ही वे अपने पद पर अधिकृत होते हैं । उन लोगों के सृष्टिकाल के आने पर जन्म लेने के दो कारण है । भेद दृष्टि और कर्तृत्वाभिमान । वे पहले के ही समान जो अधिकृत होते हैं उनका कारण निष्काम कर्म है । ब्रह्माजी किस काम को करके पहले कल्प के ही समान उत्पन्न होते हैं ? तो इसका उत्तर है कि पहले कल्प में परमेष्ठि पद का सेवन करके और उसके पश्चात् प्रलय काल के अपने अधिष्ठाता सगुणब्रह्म जो प्रथम पुरुषावतार रूप हैं, उनको प्राप्त करके । वे ऋषि आदि भी अपने कर्मों से निर्मित ऐश्वर्य का अनुभव करके और प्रथम पुरुष सगुण ब्रह्म को प्राप्त करके पहले कल्प के ही समान अपने-अपने अधिकार के साथ पुनः जन्म लेते हैं ।।१२-१४।।

ऐश्वर्यं पारमेठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् । निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥१५॥

अन्वयः— तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च निषेव्य गुणव्यतिकरे सति पुनरायान्ति ॥१५॥

अनुवाद— इसी तरह पूर्वोक्त ऋषिगण भी अपने-अपने कर्मों के अनुसार ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर श्रीभगवान् के सङ्कल्प से गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने पर पुनः इस लोक में आ जाते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः । कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

अन्वयः— ये तु इह आसक्त मनस कर्मसु श्रद्धान्विताः ते अप्रतिषिद्धानिनित्यानि अपि च कृत्स्नशः कुर्वन्ति ॥१६॥

अनुवाद— जिन लोगों की बुद्धि इस लोक में आसक्त है तथा जो कर्मों में श्रद्धा सम्पन्न होते हैं, वे वेदोक्त सभी नित्य एवं काम्य कर्मों के करने में ही लगे रहते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यदा ब्रह्मोपासकानामपि भेददर्शनाभिमानाभ्यामेवमावृत्तिस्तदा काम्यकर्मिणां किं वक्तव्यमिति तान्निन्दन्नाह षड्भिः । ये त्विह कर्मस्वासक्तमनसः सन्तोऽप्रतिषिद्धानि काम्यानि नित्यानि च कर्माणि कृत्स्नानि कुर्वन्ति तेऽर्यम्णो दक्षिणेन पथा धूममार्गेण पितृलोकं व्रजन्तीति पञ्चमेनान्वयः । मध्ये तन्निन्दा ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जब ब्रह्माजी की भी उपासना करने वालों की भी भेददृष्टि तथा कर्तृत्वाभिमान इन दोनों के द्वारा इस प्रकार से लोक में आना पड़ता है तो फिर काम्य कर्मों को करने वालों के विषय में क्या कहना है ? उन काम्य कर्मों की निन्दा छह श्लोकों को द्वारा की गयी है । जिन लोगों का इस संसार में कर्मों में मन आसक्त है वे लोग अप्रतिषिद्ध काम्य तथा नित्य कर्मों को ही पूर्ण रूप से करने में लगे रहते हैं । वे अर्यमा के दक्षिण में विद्यमान धूमादि मार्ग से पितृलोंक में जाते हैं । इस तरह पाञ्चवें श्लोक के साथ इसका अन्वय हैं ॥१६॥

रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः । पितॄन्यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥१७॥

अन्वयः— रजसा कुण्ठ मनसः कामात्मानः अजितेन्द्रियाः गृहेषु अभिरताशयाः अनुदिनं पितृन् यजन्ति ॥१७॥

अनुवाद— रजोगुण की अधिकता के कारण उन लोगों की बुद्धि कुण्ठित रहती है । वे अनेक प्रकार की कामनाओं को करते रहते हैं । उनकी इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं रहती हैं । वे अपने घरों में ही आसक्त रहते हैं और वे नित्य ही पितरों की पूजा में लगे रहते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१७॥

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः । कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥

अन्वयः— ते त्रैवार्गिकाः पुरुषाः हरिमेघसः कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः विमुखाः ॥१८॥

अनुवाद— वे लोग धर्म, अर्थ और काम परायण होते हैं, इसीलिए जिनके पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय हैं उन भगवान् श्रीमधुसूदन की कथाओं से विमुख ही बने रहते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हरति संसारं मेधा यस्य । कथनीया उरवो विक्रमा यस्य तस्य मधुद्विषः कथायां विमुखाः सन्तो ये त्रैवर्गिकाः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी मेधा संसार के बन्धन को दूर कर देती है । जिनके पराक्रम विषयक कथायें कहने योग्य हैं उन भगवान् मधुसूदन के कथा से वे विमुख रहते हैं । ऐसे लोग त्रैवर्गिक हैं अर्थात् अर्थ, धर्म और काम परायण ही रहते हैं जो लोग श्रीभगवान् की कथा को त्यागकर असत् पुरुषों की ही चर्चा को सुनते हैं, निश्चत रूप से वे लोग अभागे हैं ॥१८॥

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् । हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥१९॥

अन्वयः— विड्भुजः पुरीषम् इवे ये अच्युतकथां हित्वा असद्गाथाः शृण्वन्ति ते दैवेन विहताः ॥१९॥

अनुवाद— विष्ठा खाने वाले कूकर सूकर आदि जीवों के विष्ठा चाहने के समान जो मनुष्य भगवत् कथामृत को त्यागकर निन्दित विषय वार्ताओं को सुनते हैं, वे अभागे हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ये चाच्युतस्य कथासुधां हित्वाऽसतां गाथाः शृण्वन्ति ते नूनं दैवेन विहता इत्यन्वयः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवान् अच्युत की कथा रूपी अमृत को त्यागकर अज्ञात् पुरुषों की चर्चा को सुनते हैं वे लोग निश्चित रूप से भाग्य के मारे हुए हैं इस तरह से अन्वय हैं ॥१९॥

दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते । प्रजामनु प्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥२०॥

अन्वयः— ते अर्यम्णः दक्षिणेन पथा पितृलोकं व्रजन्ति श्मशानान्त क्रियाकृतः प्रजामनु प्रजायन्ते ॥२०॥

अनुवाद— गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त सभी संस्कारों को विधि पूर्वक करने वाले ये सकाम कर्मी सूर्य से दक्षिण की ओर विद्यमान धूमादि मार्ग से पितृलोक में जाते हैं । और उसके पश्चात् अपनी ही सन्तति के वंश में जन्म लेते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पितृलोकात्पुनः प्रजामनु स्वपुत्रादिषु प्रजायन्ते । गर्भाधानादारभ्य श्मशानान्ताः क्रियाः कृतवन्तः । यथोक्तकारिण इत्यर्थः॥२०॥

भाव प्रकाशिका

पितृलोक से लौटकर वे अपने ही वंश के पुत्रादि के रूप में जन्म लेते हैं । वे लोग गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्ठि तक की क्रियाओं को यथोचित रूप से किए रहते हैं ॥२०॥

ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति । पतन्ति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥२१॥

अन्वयः— ततः ते क्षीणसुकृताः सति देवैः विभ्रंशितोदयाः सद्यः इमंलोकम् पतन्ति ॥२१॥

अनुवाद— पितृलोक के भोगों को भोग लेने पर जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब वहाँ के देवता लोग उन्हें वहाँ के ऐश्वर्य से च्युत कर देते हैं और उनको विवश होकर तुरन्त ही इस लोक में गिरना पड़ता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कथं प्रजायन्ते तदाह ततस्ते पुनरिमं लोकं प्रति पतन्ति । विभ्रंशित उदयो भोगसाधनं येषाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

वे जीव कैसे उत्पन्न होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कपिल कहते हैं उसके पश्चात् वे पुनः इस लोक में गिर पड़ते है । क्योंकि उनके भोग साधन को विनष्ट कर दिया जाता है ॥२१॥

तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् । तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥२२॥

अन्वयः— तस्मात् त्वम् भजनीय पदाम्बुजम् परमेष्ठिनम् तद्गुणाश्रयया भक्त्या सर्वभावेन भजस्व ॥२२॥

अनुवाद— हे माँ जिनके चरणकमल भजन करने के योग्य हैं उन भगवान् का उन्हीं के गुणों का आश्रय लेने वाली भक्ति के द्वारा सब प्रकार से भजन करो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

परमेष्ठिनं परमेश्वरम् । सर्वभावेनातिप्रीत्या । तस्य गुणानाश्रयते या भक्तिस्तया ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक का परमेष्ठी शब्द परमात्मा का वाचक है । सर्वभावेन पद का अर्थ है अत्यन्त प्रेम पूर्वक, तद्गुणाश्रयया भक्त्या का अर्थ है श्रीभगवान् के गुणों को ही अपना आश्रय बनाने वाली भक्ति के द्वारा ॥२२॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः । जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२३॥

अन्वयः— वासुदेवे भगवति प्रयोजितः भक्तियोगः आशु ज्ञानं यद् ब्रह्मदर्शनं वैराग्यं च जनयति ॥२३॥

अनुवाद— भगवान् वासुदेव के विषय में किया गया भक्तियोग शीघ्र ही संसार से वैराग्य और ब्रह्म साक्षात्कार रूप ज्ञान को उत्पन्न कर देता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भजने च ज्ञानवैराग्ये स्वतः स्वभावतः इत्याह वासुदेव इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् का भजन करने पर ज्ञान और वैराग्य स्वयं ही उत्पन्न होते हैं इस बात को **वासुदेवे भगवति** इस श्लोक के द्वारा कहा गया है ॥२३॥

यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः । न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥२४॥

अन्वयः— यदा अस्य चित्तम् समेषु अर्थेषु इन्द्रियवृत्तिभिः प्रियम् अप्रियमिति उत वैषम्यं न विगृह्णाति ॥२४॥

अनुवाद— सभी विषय भगवद्रूप होने के कारण एक समान हैं अतएव सभी इन्द्रियों की वृत्तियों के द्वारा भी भगवद् भक्त कभी उनमें प्रिय अप्रिय रूप विषमता का ग्रहण नहीं करता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवोपपादयति । यदास्य भक्तस्य चित्तं भगवद्गुणानुरागेण तस्मिन्नेव निश्चलं सदिन्द्रियवृत्तिभिर्वैषम्यमर्थेषु न विगृह्णाति॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं श्रीभगवान् के गुणों में अनुराग होने के कारण जब भगवद् भक्त का चित्त उसी में निश्चल हो जाता है और इन्द्रियों की वृत्ति के द्वारा भी विषयों में प्रिय तथा अप्रिय रूप वैषम्य का ग्रहण नहीं करता हैं ॥२४॥

स तदैवात्मनात्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् । हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥२५॥

अन्वयः— स तदैव निःसङ्गं समदर्शनम् हेयोपादेय रहितम् आत्मनात्मानं आरूढं पदमीक्षते ॥२५॥

अनुवाद— भगवद् भक्त सर्वत्र भगवान् का ही दर्शन करता है । उसी समय वह सङ्गरहित सब में समान रूप से स्थित, त्याग और ग्रहण करने योग्य दोष एवं गुणों से रहित, अपनी महिमा में आरूढ अपनी आत्मा का ब्रह्मरूप से साक्षात्कार करता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तदैवात्मनात्मानं स्वप्रकाशमीक्षते । कथंभूतम् । समं च तद्दर्शनं च । तत्कुतः । निःसङ्गम् । सङ्गाद्धि वैषम्यं भवति। निःसङ्गत्वे हेतुः हेयोपादेयरहितम् । तत्कुतः पदं व्यसितमारूढम् । परमानन्दोऽहमिति निश्चयं प्राप्तमित्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उसी समय वह अपनी आत्मा का स्वप्रकाश रूप से साक्षात्कार करता है । प्रश्न है कि वह दर्शन कैसा होता है ? तो इसका उत्तर है कि सम अर्थात् ज्ञान का अविषय रूप होता है । वह भी कैसे ? तो इसका उत्तर है निःसङ्ग सङ्ग से विषमता होती है । निःसङ्ग का कारण है कि वह त्याज्यत्व और ग्राह्यत्व रूप विकल्प से रहित होता है । वह भी कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि पदं व्यवसितमारूढं, अर्थात् मैं परमानन्द स्वरूप हूँ इस तरह का निश्चय रहने के कारण ।।२५।।

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् । दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ।।२६।।

अन्वयः— ज्ञानमात्रं परंब्रह्म, परमात्मा, ईश्वरः पुमान् दृश्याादिभिः पृथग्भावैः एकः भगवान् ईयते ।।२६।।

अनुवाद— वही ज्ञान स्वरूप हैं, परंब्रह्म हैं, परमात्मा ईश्वर हैं, वही पुरुष हैं, एक ही भगवान् स्वयं जीव, शरीर विषय, इन्द्रियाँ आदि अनेक रूपों में प्रतीत होता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

समेष्वर्थेष्वित्युक्तं तदेव साम्यं दर्शयति । ज्ञानमात्रमेव परंब्रह्मादिशब्दैः प्रसिद्धम् । दृश्यादिभिर्दृश्यद्रष्टृकरणरूपेण पृथक् प्रतीयते । ज्ञानमात्रत्वेन समेष्वित्यर्थः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

पहले यह कहा जा चुका है कि सभी विषय समान है । इस श्लोक में उसी समता को बतलाया गया है। ज्ञानमात्र परंब्रह्म को ही परंब्रह्म आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है यह प्रसिद्ध हैं । वही दृश्य द्रष्टा तथा इन्द्रिय रूप से प्रतीत होता है । विषयों के ज्ञानमात्र होने के ही कारण उनको सम कहा गया है ।।२६।।

एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः । युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ।।२७।।

अन्वयः— इह यत् कृत्स्नशः असङ्गः योगिनः योगेन समग्रेण एतावानेव अभिमतः अर्थः युज्यते ।।२७।।

अनुवाद— सम्पूर्ण संसार में आसक्ति का हो जाना यही योगियों के योग के सभी प्रकार के योग साधनो का एक मात्र अभीष्ट मूल हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

ननु ज्ञानमात्रमात्मनः स्वरूपत्वान्नित्यप्राप्तमेवेति किमनेकसाधनसाध्येन योगेन प्राप्यते तदाह-एतावानिति । युज्यते प्राप्यते । प्रपञ्चसङ्गव्युदास एव योगफलमित्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आत्मा का स्वरूप ज्ञान मात्र है और वह नित्य ही प्राप्त है अनेक प्रकार के साधन साध्य रूप योग से कौन सा लाभ है ? तो इसके उत्तर में **एतावानेव इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । **युज्यते** पद का अर्थ है प्राप्त होता है । प्रपञ्च में आसक्ति का न होना ही योग का फल हैं ।।२७।।

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् । अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ।।२८।।

अन्वयः— ब्रह्म एकं ज्ञानं निर्गुणं पराचीनै इन्द्रियैः भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा रूपेण अवभाति ।।२८।।

अनुवाद— ब्रह्म एक है ज्ञान स्वरूप है निर्गुण है फिर भी बाह्य वृत्तियों वाली इन्द्रियों के द्वारा भ्रमवशात् शब्दादि विभिन्न धर्मों से पदार्थों के रूप में भास रहा है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथं प्रत्यक्षादिप्रतीतः प्रपञ्चो व्युदसितुं शक्यते प्रतीतर्भ्रान्तित्वादित्याह–ज्ञानमिति । पराचीनैः पराङ्मुखैः । शब्दादिर्धर्मो यस्य तेनार्थरूपेण ज्ञानरूपं निर्गुणं ब्रह्मैवावभाति । न त्वर्थः पृथगस्तीत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्रतीत होने वाले प्रपञ्च का कैसे निरास किया जा सकता है ? तो इस पर **ज्ञानम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- **पराचीनैः** अर्थात् बर्हिमुख । ज्ञान स्वरूप निर्गुण ब्रह्म ही शब्दादि धर्मो से युक्त विषय रूप से प्रतीत होते हैं । उनसे अलग विषय नामक कोई पदार्थ नहीं है ॥२८॥

यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट् । एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः ॥२९॥

अन्वयः— यथा महान् अहंरूपः त्रिवृत् पञ्चविधः स्वराट् एकादशविधः तस्य वपुः अण्डं यतः जगत् ॥२९॥

अनुवाद— जैसे एक ही परंब्रह्म महत् तत्त्व वैकारिक तैजस और भूतादि तीन प्रकार के अहङ्कार पञ्च महाभूत और ग्यारह इन्द्रिय रूप बन गये और फिर वह स्वयम्प्रकाश ब्रह्म इन सबों के संयोग से जीव कहलाया, उसी प्रकार उस जीव का शरीर रूप ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्म से ही उसकी उत्पत्ति हुयी है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अर्थरूपत्वमेवोदाहृत्य दर्शयति । यथेति । अहंरूपोऽहङ्कारः । स च त्रिवृत् त्रिगुणात्मकः । पुनश्च भूतरूपेण पञ्चविधः, इन्द्रियरूपेणैकादशविधश्च । स्वराड् जीवरूपः । तस्य जीवस्य वपुरण्डं जगच्च । यतो येभ्यो महदादिभ्यः । तथाऽवभाति॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यथा महान्० इत्यादि श्लोक से विषय रूपता का ही उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं— ब्रह्म ही, महान्, तीन प्रकार का अहङ्कार फिर भूत रूप से वही पाँच प्रकार का प्रतीत होता है । वही ग्यारह प्रकार की इन्द्रिय रूप से प्रतीत होता है, वह जीव रूप है । उस जीव का शरीर ब्रह्माण्ड है । और उसी से जगत् उत्पन्न होता है । उन सबों से महदादि रूप से प्रतीत होता है ॥२९॥

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः । समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

अन्वयः— एतद्वै श्रद्धया, भक्त्या विरक्त्या नित्यशः योगाभ्यासेन समाहितात्मा निःसङ्गः परिपश्यति ॥३०॥

अनुवाद— किन्तु इस आत्मा को ब्रह्मरूप से वही देख सकता है जो श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य तथा निरन्तर योगाभ्यास के द्वारा एकाग्रचित हुआ संगरहित बुद्धि वाला हो गया हो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि जनः किमित्येवं न प्रत्येति तत्राह । एतद्ब्रह्म ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इस आत्मा को मनुष्य ब्रह्म रूप से क्यों नहीं देखता है, तो इसका उत्तर एतद्वै० श्लोक से दिया गया है ॥३०॥

इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् । येनानुबुध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥

अन्वयः— हे गुर्वि ! इत्येतत् तद्ब्रह्म दर्शनं ज्ञानं कथितं येन प्रकृतेः पुरुषस्य च तत्त्वं अनुबुध्यते ॥३१॥

अनुवाद— हे पूज्ये ! यह मैंने आपको ब्रह्म साक्षात्कार के साधन भूत ज्ञान को बतलाया इसके द्वारा प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का ज्ञान होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उक्तमेवार्थं सुखप्रतिपत्त्यर्थं संक्षेपेणानुवदति-इतीति । हे गुर्वि पूज्ये ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ को ही संक्षेप में इसलिए भगवान् कपिल अनुवाद करते हैं कि उसका असानी से ज्ञान हो जाय **इति० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उसी अनुवाद को कहा गया है । गुर्वि शब्द का अर्थ है हे पूज्य माताजी।।३१।।

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः । द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणाः ॥३२॥

अन्वयः— नैर्गुण्यो ज्ञानयोगः मन्निष्ठः भक्तियोगः द्वयोः अपि एक एव भगवत् शब्द लक्षणः अर्थः ।।३२।।

अनुवाद— निर्गुण ब्रह्म विषयक किया गया ज्ञान योग और मेरे प्रति किया गया भक्तियोग दोनों का फल एक होता है । उसे ही भगवान् शब्द से अभिहित किया जाता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अनेन च ज्ञानयोगेन भगवानेव प्राप्यो यथा भक्तियोगेनेत्याह । नैर्गुण्यो ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो भक्तिलक्षणश्च यो योगस्तयोर्द्वयोरप्येक एवार्थः प्रयोजनम् । कोऽसौ । भगवच्छब्दो लक्षणं ज्ञापको यस्य । तदुक्तं गीतासु **ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** इति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस ज्ञान के द्वारा श्रीभगवान् की ही प्राप्ति होती है । जैसा कि भक्तियोग के द्वारा बतलाया गया । निर्गुण है ब्रह्मविषयक ज्ञानयोग और मेरे विषय में किया गया भक्तियोग, इन दोनों का एक ही प्रयोजन है । प्रश्न होता है कि वह क्या है तो उसको बतलाते हैं कि उसको भगवत् शब्द से कहा जाता है । गीता में भगवान् ने कहा भी है **ते प्राप्नुवन्ति** उस ज्ञानयोग का अनुष्ठान करने वाले भी मुझको ही प्राप्त करते हैं क्योंकि वे ज्ञानयोगी सभी जीवों के कल्याण में ही लगे रहते हैं ।।३२।।

यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः । एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥३३॥

अन्वयः— यथा बहुगुणाश्रयः एकः अर्थः पृथग् द्वारैः इन्द्रियैः नानेयते तद्वद् शास्त्र वर्त्मभिः भगवान् नानेयते ।।३३।।

अनुवाद— जैसे रूप, रस एवं गन्ध इत्यादि अनेक गुणों का आश्रयभूत एक ही द्रव्य भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्र के विभिन्न मार्गों द्वारा एक ही परमात्मा की भिन्न रूप से अनुभूति होती है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ननु ज्ञानयोगस्यात्मलाभः फलं शास्त्रेणावगम्यते भक्तियोगस्य तु भजनीयेश्वरप्राप्तिः कुतस्तयोरेकार्थत्वमित्याशङ्क्य दृष्टान्तेनोपपादयति । यथा बहूनां रूपरसादीनां गुणानामाश्रयो गुडक्षीरादिरेक एवार्थो मार्गभेदप्रवृत्तैरिन्द्रियैर्नाना प्रतीयते । चक्षुषा शुक्ल इति, रसनेन मधुर इति, स्पर्शनेन शीत इत्यादि तथा भगवानेक एव तत्तद्रूपेणावगम्यते ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि शास्त्र बतलाता है कि ज्ञानयोग का फल आत्मलाभ है और भक्तियोग का फल भजन करने योग्य ईश्वर की प्राप्ति है; किन्तु इस बात को कैसे जाना जाय कि ज्ञानयोग और भक्तियोग दोनों का फल एक ही है । इस तरह से आशङ्का करके भगवान् उसका दृष्टान्त द्वारा प्रतिपादन करते हैं । जिस तरह रूप रस आदि अनेक गुणों का आश्रय भूत गुड या दूध आदि के एक ही होने पर भी भिन्न-भिन्न मार्गों से प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों के द्वारा अनेक प्रकार से प्रतीत होता है । चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा वह श्वेत प्रतीत होता, रसनेन्द्रिय के द्वारा

वह मधुर प्रतीत होता है, त्वगिन्द्रिय के द्वारा वह शीतल प्रतीत होता है, उसी तरह से एक ही भगवान् शास्त्र के विभिन्न मार्गों से भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतीत होते हैं ॥३३॥

क्रियया क्रतुभिदनैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः । आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥
योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि । धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥३५॥
आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च । ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक्॥३६॥

अन्वयः— क्रियया क्रतुभिः, दानैः, तपः, स्वाध्याय, मर्शनैः, आत्मेन्द्रिय जयेनापि, कर्मणां च संन्यासेन, विविधाङ्गेन योगेन भक्तियोगेन चैव हि उभय चिह्नेन धर्मेण यः प्रवृत्ति निवृत्तिमान् आत्मतत्त्वात् बोधेन दृढेन वैराग्येण एभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् भगवान् ईयते ॥३४-३६॥

अनुवाद— नाना प्रकार के कर्मकलाप यज्ञ, दान, तप वेदाध्ययन, वेदविचार, मन और इन्द्रियों के संयम, कर्मों के त्याग, किविध अङ्गो वाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्ति रूप सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के धर्म, आत्मतत्त्व के ज्ञान और दृढ वैराग्य, ज्ञान इन सभी साधनों से सगुण निर्गुण रूप स्वयम्प्रकाश भगवान् को ही प्राप्त किया जाता है ॥३४-३६॥

भावार्थ दीपिका

शास्त्रमार्गमेव प्रपञ्चयति-क्रिययेति त्रिभिः । क्रियया पूर्तरूपया । क्रतुभिर्यागैः । मर्शनं मीमांसा आत्मेन्द्रियजये निषिद्धवर्जनम्। **उभयचिह्नेन** सकामनिष्कामलक्षणेन । तमेवाह च इति । सकामधर्मप्राप्य स्वर्गाद्यपि भगवत एव सगुणं स्वरूपमिति भावः । एभिर्वर्त्मभिः स्वदृक् स्वप्रकाशः ॥३४-३६॥

भाव प्रकाशिका

शास्त्रों के मार्ग का ही विस्तार से वर्णन क्रिया इत्यादि श्लोकों से करते हैं । क्रियया का अर्थ पूर्त (कूप, तलाब, बावली इत्यादि बनवाना) रूप कर्म कलाप के द्वारा, क्रतुओं अर्थात् यागों, वेदवाक्य विचार रूप मीमांसा, मन तथा इन्द्रियों को वश में करना तथा निषिद्ध कर्मों का परित्याग करना, सकाम और निष्काम रूप दोनों प्रकार के धर्मों से उन दोनों धर्मों को **यः प्रवृत्ति निवृत्तिमान्** शब्द से कहा गया है । सकाम धर्म प्रवृत्ति रूप होता है और निष्काम धर्म निवृत्ति रूप होता है । सकाम धर्म से प्राप्त होने वाले स्वर्ग इत्यादि भगवान् के सगुण रूप हैं। शास्त्रीय इन सभी मार्गों से स्वयम्प्रकाश भगवान् की ही प्राप्ति होती है ॥३४-३६॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् । कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥३७॥

अन्वयः— ते भक्तियोगस्य चतुर्विधं स्वरूपं यः जन्तुषु अन्तर्धावति अव्यक्तगते कालस्य च स्वरूपं प्रावोचम् ॥३७॥

अनुवाद— मैंने आपको भक्तियोग के चार प्रकार के स्वरूप को तथा जो सभी जीवों के भीतर चलता रहता है, उस अव्यक्त गति वाले काल के भी स्वरूप को बतलाया ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं ज्ञानयोगमुपसंहृत्य तस्य च भक्तियोगेन समानार्थत्वमुक्त्वा भक्तियोगाद्युपसंहरति-प्रावोचमिति द्वाभ्याम् । चतुर्विधं त्रिगुणानिर्गुणभेदेन । अन्तर्धावति उत्पत्तिनिधनादि करोति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से ज्ञानयोग के स्वरूप का उपसंहार करके यह बतलाया गया है कि उसकी भक्तियोग के साथ समानार्थता है । अब भगवान् कपिल भक्तियोग आदि का उपसंहार **प्रावोचम् इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । त्रिगुण एवं निर्गुण के भेद से चार प्रकार की भक्ति बतलायी गयी है । काल भीतर दौड़ता है का अर्थ है कि वह उत्पत्ति तथा निधन आदि का कार्य करता है ॥३७॥

जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः । यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! अविद्या कर्म निर्मिता जीवस्य बह्वीः संसृतीः यासुप्रविशन् आत्मा आत्मनः गतिं न वेद ॥३८॥

अनुवाद— हे माँ ! अविद्या जनित कर्म के कारण जीव की अनेक गतियाँ होती हैं । उनमें जाने पर वह अपने स्वरूप को नहीं जान पाता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३८॥

नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् । न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥३९॥
न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे । नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४०॥

अन्वयः— एतत् खलाय त उपदिशेत् न अविनीता य कर्हिचित् न स्तब्धाय न भिन्नाय, नैव धर्मध्वजाय च, न लोलुपाय उपदिशेत् गृहारूढाय चेतसे न, मे अभक्ताय च न, मद्भक्त द्विषामपिजातु न उपदिशेत् ॥३९-४०॥

अनुवाद— मैन जो आपको ज्ञानोपदेश किया है उसे दुष्ट दुर्विनित धमण्डी दुराचारी तथा धर्म ध्वजी को नहीं बतलाना चाहिए । जो विषयोपलोलुप हो, जिसका मन गृह में ही आसक्त हो, जो मेरा भक्त न हो अथवा जो मेरे भक्तों से द्वेष करने वाला हो उसको तो कभी भी नहीं इसको बतलाना चाहिए ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

उपदेशेऽनधिकारिणो दर्शयति नैतदिति द्वाभ्याम् । खलाय परोद्वेजकाय । भिन्नाय दुराचाराय । धर्मध्वजाय दाम्भिकाय॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

नैतद् इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा उपदेश के अनधिकारियों को बतलाते हैं । दूसरों को उद्विग्न करने वालों को खल कहते हैं, दुराचारी को भिन्न शब्द से अभिहित किया गया है, और पाखण्डी को धर्मध्वज कहते हैं । इन सबों को इसका उपदेश नहीं देना चाहिए ॥३९-४०॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायाऽनसूयवे । भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥४१॥
बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् । निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः॥४२॥

अन्वयः— श्रद्दधानाय भक्ताय, विनीताय, अनसूयवे, भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय, बहिः जातविरागाय, शान्तचित्ताय, निर्मत्सराय, शुचये यस्य अहं प्रेयसां प्रियः एतेभ्यः अस्योपदेशः कर्तव्यः ॥४१-४२॥

अनुवाद— अत्यन्त श्रद्धा सम्पन्न भक्त को, दूसरों के प्रति दोष दृष्टि नहीं रखने वाले, सभी प्राणियों से मित्रता रखने वाले, गुरु की सेवा करने वाले, बाह्य विषयों से अनासक्त रहने वाले, शान्त चित्त मत्सर रहित तथा जो पवित्र चित्त वाला हो एवं जो मुझको (परमात्म को) परमप्रिय मानता हो उसे इसका उपदेश देना चाहिए ॥४१-४२॥

भावार्थ दीपिका

अधिकारिण आह श्रद्दधानायेति द्वाभ्याम् ॥४१-४२॥

भाव प्रकाशिका

श्रद्दधानय इत्यादि दो श्लाकों द्वारा इसके उपदेश के अधिकारियों को भगवान् कपिल ने बतलाया है ॥४१-४२॥

य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् । यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अन्वयः— हे अम्ब यः पुरुषः मच्चित्तः श्रद्धया इह सकृत् शृणुयात् वा यः अभिधत्ते मे पदवीं हि एति ॥४३॥

अनुवाद— माँ जो पुरुष मुझमें अपना मन लगाकर इसको एकबार सुनता है या कहता है, वह मेरे परम पद को प्राप्त करता है ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलोपाख्यान के अन्तर्गत बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एतच्छ्रवणकीर्तनपरस्यापि मत्पदप्राप्तिरेव फलमित्याह-य इति । अप्यर्थे चकारः । सोऽपि मत्पदवीमेति । हि निश्चितम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् कपिल कहते हैं कि इसका श्रवण और कीर्तन करने वाला भी मेरे लोक को प्राप्त करता है इस बात को **य इदम्० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है ॥४३॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भवार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुवी ॥३२॥

तैतीसवाँ अध्याय

देवहूति को तत्त्वज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति

मैत्रेय उवाच

एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥१॥

अन्वयः— एवं कपिलस्य वचः निशम्य जनित्री सा कर्दमस्य दयिता देवहूतिः किल विस्रस्तमोहपटला तम् अभिप्रणम्य तत्त्वषियाङ्कित सिद्धभूमिम् तुष्टाव ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह भगवन् कपिल की बातों को सुनकर उनकी माता तथा महर्षि कर्दम की प्रियपत्नी देवहूति का मोह पटल विनष्ट हो गया और उन्होंने भगवान् कपिल को प्रणाम करके सांख्यशास्त्र के ज्ञान की आधारभूमि उनकी स्तुति की ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयस्त्रिंशे तु तस्यैव कपिलस्योपदेशतः । ज्ञानभावेन तन्मातुर्जीवनमुक्तिरुदीर्यते ॥१॥ विस्रस्तं मोहरूपं पटलमावरणं यस्याः सा । तत्त्वान्येव विषयस्तेनाङ्किता सिद्धिः साङ्ख्यज्ञानं तस्य भूमि क्षेत्रं प्रवर्तकम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तैंतिसवें अध्याय में भगवान् कपिल के उपदेश से जिनको आत्मज्ञान हो गया था ऐसी माता देवहूति की जीवन्मुक्ति का वर्णन किया गया है । जिनके मोह का आवरण विनष्ट हो गया था उन माता देवहूति ने तत्त्वज्ञान रूपी विषय से युक्त सांख्यज्ञान के प्रवर्तक भगवान् कपिल को प्रणाम किया ।।१।।

देवहूतिरुवाच

अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ।।२।।

अन्वयः— अथापि यज्जठराब्जजात अजः अन्तः सलिलं शयानं भूतेन्द्रिय अर्थात्ममयं ते वपुः गुण प्रवाहं सत् अशेषबीजं स्वयं दध्यौ ।।२।।

देवहूति ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके नाभिकमल से उत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने प्रलय कालीन जल में सोने वाले अपके पञ्चभूत, इन्द्रिय तथा विषय तथा मनोमय विग्रह का जो सत्त्वादि गुणों के प्रवाह से युक्त सत्त्वस्वरूप कार्य एवं कारण के बीज रूप आपके शरीर का ध्यान किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

अथेति वाक्यान्तरे । अजोऽपि तव वपुः केवलं दध्यौ, न तु दृष्टवान् । स च स्वयं साक्षाद्यस्य तव जठराब्जाज्जातः स भवानेव विश्वस्य सर्गादि विधत्ते, नतु तव सर्गादिकर्ता कश्चिदस्ति । स एवं भूतस्त्वं मे मया कथं जठरेण धृत इति त्रयाणामन्वयः कथंभूतं वपुः । सत् व्यक्तम् । तत्र हेतुः— अन्तःसलिले शयानम् । कीदृशम् । भूतानीन्द्रियाणि च अर्थाश्च शब्दादय आत्मा च मन एतन्मयमेतैर्व्याप्तमित्यर्थः । कुतः । गुणानां प्रवाहो यस्मितत् । कुतः । अशेषस्य कार्यकारणस्य बीजं कारणम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ वाक्यान्तर के अर्थ में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । ब्रह्माजी ने भी आपके शरीर का केवल ध्यान किया था । उन्होंने आपके शरीर का साक्षात्कार नहीं किया था । वे स्वयं आपकी जाठराग्नि से उत्पन्न हुए हैं । इस प्रकार के आप ही जगत् की सृष्टि आदि करते हैं । आपकी सृष्टि आदि को करने वाला कोई दूसरा नहीं है । इस प्रकार के आपको मैंने अपने उदर में कैसे धारण किया ? इस तरह से तीनों श्लोकों का अन्वय हैं । आपका वह शरीर सत् अर्थात् व्यक्त है । उसका कारण यह है कि आप उस शरीर से जल के भीतर शयन करते हैं । आपका वह शरीर इन्द्रियाँ, उनके विषय शब्दादि तथा मन से व्याप्त है । आपके उसी शरीर में सत्त्वादि गुणों का प्रवाह होता है और आपका वह शरीर सम्पूर्ण कार्यकारण का बीज हैं ।।२।।

स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
सर्गाद्यनीहो वितथाभिसन्धिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ।।३।।

अन्वयः— अनीहः अवितथाभिसन्धिः आत्मेश्वरः, अतर्क्य सहस्रशक्तिः भवान् गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः विश्वस्य सर्गादि विधत्ते ।।३।।

अनुवाद— आप निष्क्रिय सत्यसङ्कल्प सम्पूर्ण जीवों के प्रभु, तथा सहस्त्रों अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न हैं। अपनी शक्ति के गुण प्रवाह रूप से ब्रह्मादि अनन्त मूर्तियों में विभक्त करके उनके द्वारा आप स्वयं ही विश्व की रचना करते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूतो भवान्सर्गादि विधत्ते । गुणप्रवाहरूपेण विभक्तं वीर्यं शक्तिर्येन सः । शक्तिद्वारेण विधत्ते न साक्षादित्यर्थः यतोऽनीहो निष्क्रियः । तर्हि कथं शक्तिद्वारेणापि सर्गादि विधत्ते तत्राह । अवितथाभिसन्धिः सत्यसङ्कल्पः । किमर्थं विधत्ते । आत्मनां जीवानामीश्वरः । जीवानां भोगार्थमित्यर्थः । ननु कथं विचित्रान्भोगानेक एव विदध्यानत्राह । अतर्क्याः सहस्रमपरिमिताः शक्तयो यस्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार आप सृष्टि आदि कार्यों को करते है ? तो इसका उत्तर है कि आप गुण प्रवाह रूप से अपनी शक्ति का विभाग करके शक्ति के द्वारा ही जगत् की सृष्टि आदि को करते हैं साक्षात् नहीं; क्योंकि आप अनीह अर्थात् निष्क्रिय हैं फिर भी आप शक्ति के द्वारा सर्गादि को कैसे करते हैं ? इसका उत्तर है कि आप सत्य सङ्कल्प हैं, आप जीवों के ईश्वर (नियामक) है तथा जीवों के भोग के लिए सृष्टि का कार्य करते है । अब प्रश्न है कि अकेले आप अनेक प्रकार के भोगों का निर्माण कैसे करते है तो इसका उत्तर है कि आप अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं ।।३।।

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ।।४।।

अन्वयः— नाथ यस्योदरे एतद् विश्वं आसीत् युगान्ते माया शिशुः अङ्घ्रिपानः एकः वटपत्रे शेते स्म सः त्वं मेजठरेण भृतः कथं नु ।।४।।

अनुवाद— हे नाथ ! यह कितनी विचित्र बात है कि प्रलय काल के आने पर सारा प्रपञ्च आपके उदर में प्रलीन रहता है । तथा जो आप कल्प के अन्त में मायामय बालक का रूप धारण करके अपने चरण का अङ्गूठा चूसते हुए अकेले वटपत्र के ऊपर शयन करते हैं, ऐसे आपको मैनें अपने गर्भ में धारण किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

किंच प्रलये यस्योदेर एतद्विश्वामसीत्स त्वं मया जठरेण कथं धृतः । ननु शिशौ मयि किमेतदुच्यते तत्राह-वटपत्र इति। अङ्घ्रि पादाङ्गुष्ठं पिबतीत्यङ्घ्रिपानः । इदमपि शिशुत्वं तद्वदेव मायेति भावः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल में यह सम्पूर्ण विश्व जिस आपके उदर में था उसी आपको मैंने अपने गर्भ में कैसे धारण किया? यदि आप कहें कि मैं तो बाल्यावस्था में हूँ मेरे विषय में आप यह क्या कह रही है ? तो इस पर माता देवहूति ने कहा **पत्रे० इत्यादि** युग के अन्त में आप अपनी माया से शिशु का रूप धारण करके अपने पैर के अङ्गूठे को चूसते हुए अकेले वटपत्र के ऊपर सोते हैं जैसे वह आपका शिशुत्व मायामय है उसी तरह आपका यह भी शिशुत्व मायामय ही हैं ।।४।।

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ।।५।।

अन्वयः— विभो ! पाप्मनां प्रशमाय निदेशभाजां विभूतये त्वं देहन्तत्रः, यथा तव सूकरादयः अवताराः तथा अयमपि आत्मपथोपलब्धये तव अवतारः ।।५।।

अनुवाद— आप पापियों का दमन करने के लिए तथा आपकी आज्ञा का पालन करने वाले भक्तो का अभ्युत्थान करने के लिए शरीर को धारण करते हैं । आपके जैसे वराह आदि अवतार हैं, उसी तरह आपका यह कपिलावतार भी मुमुक्षु जीवों को ज्ञानमार्ग का उपदेश देने के लिए है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अथवा न त्वं मायाऽपत्यान्तरमिव जठरे भृतः, किंतु वराहाद्यवतारवदिच्छयैवाविर्भूतोऽसीत्याह । त्वं देहतन्त्रो देहपरिकरः स्वीकृतमूर्तिरसि । पाप्मनां दुष्टानाम् । निदेशाभाजामाज्ञानुवर्तिनां विभूतये समृद्धये । आत्मपथोपलब्धये ज्ञानमार्गप्रदर्शनाय।।५।।

भाव प्रकाशिका

अथवा मैंने अपनी दूसरी सन्तान के समान आपको अपने गर्भ में नहीं धारण किया अपितु जिस तरह आप अपनी इच्छा मात्र से वराह आदि अवतारों को धारण करते हैं, उसी तरह से आप अपनी इच्छा मात्र से कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । आपने देह रूप साधन के द्वारा यह रूप धारण किया है । आपने इस शरीर को भी पापियों का दमन करने के लिए तथा आपकी आज्ञा का पालन करने वाले भक्तों की समृद्धि के लिए धारण किया है । आप अपने भक्तों को ज्ञानमार्ग का उपदेश करने के लिए यह अवतार ग्रहण किए हैं ।।५।।

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ।।६।।

अन्वयः— यत् नामधेय श्रवणात् अनुकीर्तनात् यत् प्रह्वणात् यत् क्वचित् स्मरणात् श्वादः अपि सद्यः सवनाय कल्पते हे भगवन् कुतः पुनः ते दर्शनात् नु ।।६।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके नाम का श्रवण करने अथवा कीर्तन करने से या आपकी कभी वन्दना करने से अथवा आपके नामों का स्मरण करने से चाण्डाल भी सोमयाग करने का अधिकारी हो जाता है, तो फिर आपका दर्शन करने से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है यह क्या कहना हैं ?।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वद्दर्शनादहं कृतार्थास्मीति कैमुत्यन्यायेनाह । यन्नामधेयस्य श्रवणमनुकीर्तनं च तस्मात् । क्वचित् कदाचिदपि। श्वानमत्तीति श्वादः सोऽपि सवनाय सोमयागाय कल्पते योग्यो भवति । अनेन पूज्यत्वं लक्ष्यते ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपके दर्शन से मैं तो कृतकृत्य हो गयी इस बात को माता देवहूति ने कैमुत्यन्याय से कहा । आपके नाम को सुनने के पश्चात् उसका कीर्तन करने से कभी भी चाण्डाल भी सोमयाग करने का अधिकारी हो जाता है । इस तरह से भगवान् कपिल के पूज्यत्व की प्रतीति होती हैं ।।६।।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।७।।

अन्वयः— अहो बत श्वपचः अतो गरीयान् यत् जिह्वाग्रे तुभ्यं नाम वर्तते । ये ते नाम गृणन्ति ते तपस्तेपुः, जुहुवुः सस्नुः आर्याः ब्रह्मानूचुः ।।७।।

अनुवाद— यह आश्चर्य की बात है कि जिसके जिह्वा के अग्रभाग में आपका नाम विद्यमान है वह चाण्डाल महान् है । जो लोग आपके नामों का उच्चारण करते हैं उन लोगों ने ही तप किया है, होम किया है और तीर्थों में जाकर स्नान किया है । उन्हीं पूज्य पुरुषों ने वेदों का अध्ययन किया है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदुपपादयति । अहो बतेत्याश्चर्ये । यस्य जिह्वाग्रे तव नाम वर्तते स श्वपचोऽप्यतोऽस्मादेव हेतोर्गरीयान् । यद्यस्माद्वर्तते अत इति वा । कुत इत्यत आह । त एव तपस्तेपुः कृतवन्तः । जुहुवुर्होमं कृतवन्तः । सस्नुः तीर्थेषु स्नाताः । आर्यास्त एव

सदाचाराः ब्रह्म वेदमनूचुरधीतवन्तः । त्वन्नामकीर्तने तपआद्यन्तर्भूतमतस्ते पुण्यतमा इत्यर्थः । यद्वा जन्मान्तरे तैस्तपोहोमादि सर्वं कृतमिति त्वन्नामकीर्तनमहाभाग्योदयादवगम्यत इत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं अहो बत ये दोनों अव्यय आश्चर्य के अर्थ में प्रयुक्त हैं । जिसके जिह्वा के अग्रभाग में आपका नाम विद्यमान है वह चाण्डाल भी उसी के कारण महान् है । अथवा चूंकि उसके जिह्वा के अग्रभाग में आपका नाम विद्यमान है उसी के कारण वह महान् है । क्योंकि, उन लोगों ने ही तपस्या की है, होम किया है, तीर्थों में जाकर स्नान किया है तथा वे ही लोग सदाचार का पालन करने वाले हैं तथा वेदों का अध्ययन किए हैं । क्योंकि आपके नाम के कीर्तन के अन्तर्गत ही तप आदि का अन्तर्भाव है अतएव वे अत्यन्त पुण्यवान हैं, अथवा जन्मान्तर में उन लोगों ने ही तपस्या तथा होम आदि को किया है । यह आपके नाम सङ्कीर्तन रूपी भाग्योदय के द्वारा ज्ञात होता है ॥७॥

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥

अन्वयः— तं त्वाम् ब्रह्म, परं पुमांसम् प्रत्यक्स्रोतसि आत्मनि संविभाव्यं स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहम्, वेदगर्भम् कपिलं विष्णुम् अहं वन्दे ॥८॥

अनुवाद— इस प्रकार के आप ही ब्रह्म हैं, परं पुरुष हैं, वृत्तियों के प्रवाह को अन्तर्मुख करके आपका ही अन्तःकरण में चिन्तन किया जाता है, आप अपने तेज से ही गुणों के प्रवाह को शान्त कर देते हैं ।आपके उदर में सम्पूर्ण वेद विद्यमान हैं ऐसे कपिलरूपधारी भगवान् विष्णु आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यक्स्रोतसि प्रत्याहृते आत्मनि मनसि संविभाव्यं संचिन्त्यम् । वेदा गर्भे यस्य सः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् का अर्थ है कि वृत्तियों के प्रवाह को अन्तर्मुख करके आपका ही अपने अन्तःकरण में चिन्तन करने योग्य है । वेदगर्भ का अर्थ है कि आपके ही उदर में सम्पूर्ण वेद विद्यमान हैं ॥८॥

मैत्रेय उवाच

ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् । वाचाऽविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥९॥

अन्वयः— कपिलाख्यः परः पुमान् भगवान् एवं ईडितः मातृवत्सलः मातरं अविक्लवया वाचा इत्याह ॥९॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अपनी माता के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर मातृवत्सल कपिल नामधारी भगवान् ने अपनी माता से इस प्रकार से कहा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अविक्लवया गम्भीरया वाचा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

गम्भीर वाणी से अपनी माता से इस प्रकार कहे ॥९॥

कपिल उवाच

मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे । आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥१०॥

अन्वयः— हे मातः मे उदितेन सुसेव्येन अनेन मार्गेण आस्थितेन अचिरात् परां काष्ठाम् अवरोत्स्यसि ॥१०॥

कपिल भगवान् ने कहा

अनुवाद— हे माँ मेरे द्वारा कहे गये इस सुगम मार्ग को अपना कर आप शीघ्र ही परमपद को प्राप्त कर लेंगी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ते तव सुसेव्येन सुखसेव्येन । मे मयोदितेन । आस्थितेनानुष्ठितेन । परां काष्ठां जीवन्मुक्तिमवरोत्स्यसि प्राप्स्यसि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् कपिल ने कहा है कि मैंने जिस मार्ग को बतलाया है उसको आप बड़ी आसानी से अपना सकती हैं । उसका अनुष्ठान करके आप शीघ्र ही परंपद को प्राप्त कर लेंगी ॥१०॥

श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः । येन मामभावं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥११॥

अन्वयः— यद्ब्रह्मवादिभिः जुष्टं एतत्मह्य मतम् श्रद्धत्स्व येन अभवं मां पायाः अतद्विदः मृत्युम् ऋच्छन्ति ॥११॥

अनुवाद— हे माँ ! जिसका ब्रह्मवादियों ने सेवन किया है, उस मेरे इस मत में तुम श्रद्धा करो जिसका सेवन करके तुम जन्ममरण रहित मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लोगी जो लोग मेरे इस मत को नहीं जानते हैं वे जन्म और मरण के चक्र में पड़े रहते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यायाः यास्यसि अतद्विदो मन्मतमविद्वांसः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यायाः पद का अर्थ है प्राप्त कर लोगी **अतद्विदः** का अर्थ है मेरे इस मत को नहीं जानने वाले ॥११॥

मैत्रेय उवाच

इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिम् । स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥१२॥

अन्वयः— इति भगवान् तां सतीं आत्मनः गतिं प्रदर्श्य ब्रह्मवादिन्या स्वमात्रा अनुमतः कपिलः ययौ ॥१२॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से भगवान् कपिल अपने श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करके अपनी ब्रह्मवादिनी माता की अनुमति प्राप्त करके वहाँ से चले गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अनुमतोऽनुज्ञातः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अनुमतः पद का अर्थ है आज्ञा प्राप्त करके ॥१२॥

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् । तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥१३॥

अन्वयः— सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् सरस्वत्या आपीडे तस्मिन् आश्रमे समाहिता ॥१३॥

अनुवाद— वे देवहूति भी अपने पुत्र के द्वारा उपदिष्ट योग साधना के द्वारा योगाभ्यास करती हुयी सरस्वती नदी के मुकुट के समान उस श्रेष्ठ आश्रम में समाहित (समाधिस्थ) हो गयीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सरस्वत्या आपीडे पुष्पमुकुटतुल्ये सरस्वत्येति पाठे मुकुटेनेव संवेष्टिते । विन्दुसरसि समाहिता बभूव ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

सरस्वती नदी के पुष्प मुकुट के समान विन्दुसरोवर पर ही समाहित हो गयीं । सरस्वत्या यह तृतीयान्त पाठ होने पर अर्थ होगा कि मुकुट के समान परिवेष्टित ॥१३॥

अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् । आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥

अन्वयः— अभीक्ष्णावगाह कपिशान् जटिलान् कुटिलालकान् चीरिणं उग्रतपसा कृशम् आत्मानं बिभ्रती ॥१४॥

अनुवाद— त्रिकाल स्नान करने के कारण उनके घुंघराले केश पीली जटा बन गये थे तथा चीर वस्त्र से ढँका हुआ उनका शरीर उग्र तपस्या करने के कारण दुर्बल हो गया था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूता सती समाहिता तदाह अभीक्ष्णं त्रिषवणमवगाहः स्नानं तेन कपिशान्पिशङ्गान्स्वत एव कुटिलानलकान्केशांस्तथात्मानं देहं चीरधारिणं कृशं च बिभ्रती सती ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वे किस तरह से समाहित हो गयीं तो इसके उत्तर में कहते हैं तीनों कालों में स्नान करने के कारण स्वभावतः घुंघराले केश पीले होकर जटारूप हो गये तथा चीरवस्त्र से ढँके हुए कृश शरीर को वे धारण की हुयी थीं ॥१४॥

प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् । स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥१५॥
पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥१६॥
स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च । रत्नप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥१७॥
गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥१८॥
यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः । वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥१९॥
हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् । किंचिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥२०॥

अन्वयः— प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोग विजृम्भितं वैमानिकैः अपि प्रार्थ्यं अनौपम्यं स्वगार्हस्थ्यं यत्र पयः फेननिभाः शय्याः दान्ता रुक्मपरिच्छदः हैमानि च आसनानि सुस्पर्शस्तरणानि च, स्वच्छस्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च ललनारत्न संयुताः रत्नप्रदीपाः आभन्ति कुसुमितैः अमरद्रुमैः रम्यं आत्मानं विबुधानुचरा जगुः उत्पलगन्धिन्यां वाप्यां आखण्डलयोषितामपि इप्सिततमं गार्हस्थ्यं हित्वा पुत्रविश्लेषणातुरा किंचित् वदनं चकार ॥१५-२०॥

अनुवाद— प्रजापति कर्दम के तप और योगबल से प्राप्त अनुपम गार्हस्थ्यसुख जिसको देवता लोग भी प्राप्त करना चाहते हैं जिसमें दुग्ध के फेन के समान स्वच्छ तथा कोमल शय्या से युक्त हाथी दाँत से बने पलङ्ग सुवर्ण के पात्र, सुवर्ण के सिंहासन जिस पर कोमल गद्दे बिछे थे । जिसकी स्वच्छ स्फटिकमणि तथा महामरकत मणि

की दिवारों में रत्ननिर्मित रमणीय मूर्तियों के साथ मणिमय दीपक जगमगा रहे थे, जो विकसित पुष्पों से युक्त अनेक दिव्य वृक्षों से सुशोभित था, जिसमें भाँति-भाति के पक्षी कलरव कर रहे थे तथा मदमत्त भ्रमरों का गुञ्जार होता रहता था जहाँ की कमल की सुगन्धि से सुशोभित कर्दम महर्षि के स्नेह से युक्त क्रीडार्थ देवहूति के प्रवेश करने पर उनका गन्धर्वगण, गुणगान किया करते थे तथा जिसको प्राप्त करने के लिए इन्द्र की पत्नियाँ भी लालायित रहती थीं ऐसे गृहोद्यान आदि से युक्त अनुमप गार्हस्थ्य का परित्याग करके भी पुत्र के वियोग से व्याकुल माता देवहूति का मुख कुछ उदास हो गया ॥१५-२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगाभ्यां विजृम्भितमतिशयितं स्वगार्हस्थ्यं हित्वा पुत्रभूतेश्वरविरहातुरा सती वदनं किंचिदनिर्वाच्यं शोकव्याकुलं चकारेति पष्ठेनान्वयः । यत्र गार्हस्थ्ये । क्षीरफेननिभाः मृदुशुभ्राः शय्या आस्तरणान्याभान्ति दन्तघटिता मञ्चकाश्च। स्वर्णमयाः परिकराः । आसनानि पीठादीनि । सुस्पर्शान्यास्तरणानि येषु । बहुभिरमरद्रुमैः रम्यम् । यत्रोद्याने प्रविष्टमात्मानं देवहूतिम् । आखण्डल इन्द्रस्तस्य या योषितस्तासामपीप्सिततमं प्राप्तुमिष्टतमं तद्धित्वा तत्राभिमानं त्यक्त्वा ॥१५-२०॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम की तपस्या और योग के बल से उत्कृष्टता प्राप्त अपने गार्हस्थ्य का परित्याग करके अपने पुत्र बने हुए ईश्वर के विरह से आतुर बनी हुयी देवहूति का शोक व्याकुल मुख उदास हो गया । उस गार्हस्थ्य में दुग्ध के फेन के समान कोमल श्वेत शय्या तथा आस्तरण विछाने की चादर चमकते रहते थे । हाथी के दाँत से बने पलङ्ग, सुवर्ण के पात्र तथा सुवर्ण के सिंहासन थे । उन पर कोमल आस्तरण पड़े थे उस गार्हस्थ्य मनोहर के उद्यान में बहुत से देववृक्ष विद्यमान थे । जिस उद्यान में प्रवेश की हुयी देवहूति की गन्धर्वगण स्तुति करते थे । उस गार्हस्थ्य को इन्द्र की पत्नियाँ भी प्राप्त करना चाहती थीं उस गार्हस्थ्य का माता देवहूति ने त्याग कर दिया ॥१५-२०॥

वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा । ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥२१॥

अन्वयः— वत्से नष्टे वत्सला गौरिव ज्ञाततत्वा अपि सा पत्यौ वनं प्रव्रजिते अपत्यविरहातुरा अभूत् ॥२१॥

अनुवाद— बछड़े के विनष्ट हो जाने पर विरह से व्याकुल बनी गौ के समान और पति के वन में चले जाने के पश्चात् पुत्र का वियोग हो जाने से आत्मज्ञान सम्पन्न भी देवहूति पुत्र के वियोग से व्याकुल हो गयीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

सुहृद्वियोगस्य दुःसहतामाह- वनमिति । नष्टे वत्से वत्सला गौरिवाभूत् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अपने सुहृदों का वियोग असह्य होता है इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस तरह बछड़े के नष्ट हो जाने पर वत्सला गौ व्याकुल हो जाती है उसी तरह पुत्र के वियोग के कारण माता देवहूति व्याकुल हो गयीं॥२१॥

तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् । बभूवाचिरतो वत्स निस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

अन्वयः— हे वत्स ! तमेव कपिलं अपत्यं देवं ध्यायती अचिरतः तादृशे गृहे निस्पृहा बभूव ॥२२॥

अनुवाद— हे विदुर ! अपने पुत्र कपिलदेव रूपी श्रीहरि का ध्यान करती हुयी देवहूति कुछ ही दिनों में ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न गृह के भी विषय में निस्पृह हो गयीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विरहकृतध्यानफलमाह । निस्पृहा निर्वासना । वत्स विदुर ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विरह जन्य ध्यान का फल बतलाते हुए कहते हैं कि माता देवहूति अपने उस प्रकार के ऐश्वर्य सम्पन्न गृह के भी विषय में निस्पृह हो गयीं वत्स विदुरजी का सम्बोधन है ॥२२॥

ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् । सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥२३॥

अन्वयः— सुतः यत् ध्यानगोचरम् प्रसन्नवदनं भगवद्रूपम् आह तत् समस्त व्यस्तचिन्तया ध्यायती समाहिता अभूदित्यर्थः ॥२३॥

अनुवाद— उनके पुत्र श्रीकपिलदेवजी ने प्रसन्न मुखकमल से युक्त भगवान् के ध्यान करने योग्य जिस रूप का उपदेश दिया था उसी का समस्त व्यस्त अर्थात् समस्त एवं एक-एक अङ्ग का चिन्तन करती हुयी वे समाहित हो गयीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ततः स्वसुतः कपिलो यदाह तद्भगवतो रूपं ध्यायती तदात्मानं च विश्वतोमुखं सर्वगतं ध्यायती ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्बभूवेति। पूर्वस्यैवानुषङ्गः । केन ध्यायती । विशुद्धेनात्मना मनसा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उनके पुत्र कपिलदेवजी ने भगवान् के जिस रूप को ध्यान करने योग्य कहा था उसी का ध्यान करती हुयी तथा श्रीभगवान् के सर्वव्यापक रूप का ध्यान करती हुयी वे ब्रह्म में स्थिरबुद्धि वाली हो गयी यह पहले के ही श्लोक से सम्बन्ध है । प्रश्न है कि वे किस साधन से ध्यान करती थी तो इसका उत्तर है कि वे विशुद्धमन से ध्यान करती थीं ॥२३॥

भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा । युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥२४॥
विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतोमुखम् । स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥२५॥

अन्वयः— भक्तिप्रवाहयोगेन, बलीयसा वैराग्येण, युक्तानुष्ठान जातेन ब्रह्महेतुना ज्ञानेन तदा विशुद्धेन आत्मना विश्वतोमुखम् आत्मानं स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुण विशेषणम् ॥२४-२५॥

अनुवाद— भगवद् भक्ति के प्रवाह, प्रबल वैराग्य और यथोचित कर्मानुष्ठान से उत्पन्न ब्रह्मसाक्षात्कार करने वाले ज्ञान के द्वारा चित्त के शुद्ध हो जाने पर वे उस सर्वव्यापक आत्मा के ध्यान में मग्न हो गयीं जो ध्यान माया जन्य आवरण को दूर कर देता है ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

विशुद्धौ कारणान्याह । भक्तिप्रवाहरूपेण योगेन वैराग्येण च युक्तानुष्ठानेन जातं यज्ज्ञानं तेन च । युक्तानुष्ठानं च गीतासूक्तम् '**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।**' इति । **ब्रह्महेतुना** ब्रह्मत्वापादकेन । विश्वतोमुखत्वे हेतुः-स्वानुभूत्या स्वरूपप्रकाशेन तिरोभूतम् । मायागुणैर्विशेषणं परिच्छेदो यस्य ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

मन की विशुद्धि के कारणों को बतलाते हुए मैत्रेयजी कहते हैं— श्रीभगवान् की भक्ति के प्रवाह रूपी योग के द्वारा, प्रबल वैराग्य के द्वारा तथा यथोचित कर्मानुष्ठान के द्वारा उत्पन्न जो ज्ञान उस ज्ञान के द्वारा । गीता शास्त्र में युक्तानुष्ठान को बतलाते हुए कहा भी गया है— **युक्ताहार विहारस्य० इत्यादि** यथोचित आहार तथा विहार के द्वारा एवं यथोचित कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा तथा उचित काल से सोने और जागने वाले मनुष्य के सारे दुःखों को योग विनष्ट कर देता है । तब ब्रह्मत्व प्रदान करने वाले ज्ञान के द्वारा मन शुद्ध हो जाता है । **विश्वतोमुखत्वे०**

इत्यादि आत्मा के सर्वव्यापकत्व के कारणों को बतलाते हुए मैत्रयजी कहते हैं— आत्मा के स्वरूप का प्रकाश हो जाने से माया के गुण रूपी आवरण का तिरोधान हो जाता है ॥२४-२५॥

ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये । निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥२६॥

अन्वयः— आत्मसंश्रये भगवति ब्रह्मणि अवस्थितमतिः निवृत्तजीवापत्तित्वात् क्षीणक्लेशा आप्तनिर्वृतिः ॥२६॥

अनुवाद— जीव के अधिष्ठान भूत परब्रह्म श्रीभगवान् में ही बुद्धि की स्थिति हो जाने के कारण, उनका (देवहूति का) जीव भाव निवृत्त हो गया और वे समस्त कर्मों से मुक्त होकर परमानन्द में निमग्न हो गयीं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूते ब्रह्मणि । आत्मनां जीवानां संश्रये भगवति । तस्या जीवन्मुक्तिमाह सार्धैस्त्रिभिः । तदा च निवृता जीवापत्तिर्जीवभावो यस्यास्तस्या भावस्तत्त्वं तस्मात् । विगतक्लेशा प्राप्तनिर्वृतिश्च सत्यात्मानं देहं न सस्मारेत्युत्तरेणान्वयः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वे किस प्रकार के ब्रह्म के ध्यान में निमग्न हो गयीं तो इसका उत्तर है कि वे जीवों के आश्रय (अधिष्ठान) भूत श्रीभगवान् में निमग्न हो गयीं । देवहूति की जीवन्मुक्ति को बतलाते हुए मैत्रेयजी ने साढे तीन श्लोकों से कहा— उस समय देवहूति का जीवभाव निवृत्त हो गया था । उनके सारे क्लेश दूर हो गये और वे परमानन्द मग्न हो गयीं । उनको अपने देह का भी आभास मिट गया ॥२६॥

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा । न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥२७॥

अन्वयः— नित्यारूढसमाधित्वात् परावृत्तगुणभ्रमा उत्थितः स्वप्ने दृष्टमिव तदा आत्मानं न सस्मार ॥२७॥

अनुवाद— सदैव समाधिस्थ रहने के कारण उनको विषयों के नित्यत्व की भ्रान्ति मिट गयी उन्हें अपने शरीर की भी यादगारी उसी तरह नहीं रही जिस तरह जगे हुए पुरुष को स्वप्न में देखे हुए शरीर की यादगारी नहीं रहती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि गुणानां विद्यमानत्वात्कथमस्मरणं तत्राह । नित्यारूढो लब्धप्रतिष्ठः समाधिर्यस्यास्तस्या भावस्तत्त्वं तस्मात्। परावृत्तः शान्तो गुणनिमित्तो भ्रमो यस्याः सा ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जीव भाव समाप्त हो जाने पर गुण तो विद्यमान ही रहते हैं अतएव शरीर की स्मृति का न होना कैसे सम्भव है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं माता देवहूति सदैव समाधि में ही रहती थीं, उसके कारण उनको संसार की नित्यता का भ्रम समाप्त हो गया ॥२७॥

तद्देहः परतः पोषोऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात् । बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥

अन्वयः— तद्देहः परतः पोषोऽपि अध्यसम्भवात् अकृशः मलैरवच्छन्नः सधूमः पावकः इव बभौ ॥२८॥

अनुवाद— उनके शरीर का पोषण भी दूसरे के ही द्वारा होता था फिर भी उनके मन में किसी भी क्लेश के नहीं होने के कारण उनका शरीर दुर्बल नही हुआ । मैल से ढँका हुआ भी उनका वह शरीर तेज के कारण धूम से आच्छन्न अग्नि के समान सुशोभित होने लगा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

परतः पराभिरेव कर्दमसृष्टविद्याधरीभिः पोषः पोषण यस्य । आधिर्मनोग्लानिस्तदसंभवादकृशः मलैरवच्छन्नोऽपि बभौ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि महर्षि कर्दम के द्वारा सृष्ट विद्याधारियाँ ही माता देवहूति के शरीर का पोषण करती थी, किन्तु उनके मन में किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं होने के कारण मल से ढँका हुआ भी उनका शरीर सुशोभित ही होता था ॥२८॥

स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम् । दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥२९॥

अन्वयः— मुक्तकेशं गताम्बरं, वासुदेवप्रविष्टधीः दैवगुप्तं तपोयोगमयं स्वाङ्गं न बुबुधे ॥२९॥

अनुवाद— देवहूति के केश खुल गये, वस्त्र शरीर से गिर पड़ा था फिर भी सदा भगवान् वासुदेव में ही चित्त के लगे रहने के कारण उनके अपने शरीर का पता नहीं चलता था। उनके शरीर की रक्षा केवल प्रारब्ध ही करता था ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

दैवगुप्तमारब्धकर्मपालितम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उनके शरीर की रक्षा केवल प्रारब्ध कर्म के ही द्वारा होता था ॥२९॥

एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् । आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥३०॥

अन्वयः— एवं सा कपिलेनोक्तेन मार्गेण अचिरतः निर्वाणम् भगवन्तम् परंब्रह्म अवाप ॥३०॥

अनुवाद— इस तरह भगवान् कपिल के द्वारा उपदिष्ट मार्ग के द्वारा शीघ्र ही नित्यमुक्त परमात्म स्वरूप परंब्रह्म को प्राप्त कर लिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

निर्वाणं नित्यमुक्तम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

निर्वाण शब्द नित्यमुक्त का वाचक है ॥३०॥

तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् । नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥३१॥

अन्वयः— हे वीर ! यत्र सा सिद्धिम् उपेयुषी तत् त्रैलोक्यविश्रुतम् पुण्यतमं क्षेत्रं नाम्ना सिद्धपदम् आसीत् ॥३१॥

अनुवाद— हे वीर पुरुष ! जहाँ पर देवहूति सिद्धि प्राप्त की वह त्रैलोक्य विख्यात अत्यन्त पवित्र क्षेत्र **सिद्धपद** के नाम से प्रख्यात हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

हे वीर विदुर उपेयुषी प्राप्ता ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

हे वीर ! विदुर जिस स्थान पर देवहूति ने सिद्धि प्राप्त की वह अत्यन्त पवित्र क्षेत्र त्रैलोक्य में सिद्धपद के नाम से विख्यात हुआ ॥३१॥

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् । स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥

अन्वयः— हे सौम्य ! तस्याः तत् योगविधूतमार्त्यं स्रोतसां प्रवरसिद्धिदा सिद्धसेविता मर्त्यं सरित् अभूत् ॥३२॥

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले विदुरजी ! योग के कारण देवहूति के शरीर के सारे मल विनष्ट हो

गये थे। उनका वह पाञ्चभौतिक शरीर नदियों में श्रेष्ठ सिद्धि प्रदान करने वाली तथा सिद्धों से सेवित मर्त्यलोक की नदी हो गया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

हे सौम्य, तस्यास्तन्मर्त्यं शरीरं सरिदभूत्। कथंभूतम्। योगेन विधूता विलीना मार्त्या दैहिका धातुमला यस्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

योग के कारण देवहूति के देह के मल विलीन हो गये थे अतएव उनका शरीर एक नदी के रूप में परिणत हो गया ॥३२॥

कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् । मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

अन्वयः— महायोगी भगवान् कपिलोऽपि मातरं समनुज्ञाप्य पितुराश्रमात् प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

अनुवाद— महायोगी भगवान् कपिल भी अपनी माता से आज्ञा लेकर अपने पिता के आश्रम से निकल कर ईशान कोण में चले गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

कपिलोऽपि ययावित्युक्तं तदेव प्रपञ्चयति-कपिलोऽपीति त्रिभिः। समनुज्ञाप्याऽनुज्ञां संप्रार्थ्य ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि कपिल भी चले गये। उसी को विस्तार से **कपिलोऽपि इत्यादि** तीन श्लोको से बतलाते हैं **समनुज्ञाप्य** का अर्थ है आज्ञा लेकर ॥३३॥

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः । स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥३४॥

अन्वयः— सिद्धचारणगन्धर्वैः मुनिभिः अप्सरोगणैः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः स्तूयमानः ॥३४॥

अनुवाद— सिद्धों चारणो गन्धर्वों, मुनियों तथा अप्सरासमूह के साथ समुद्र ने उनको रहने के लिए निवास दिया तथा उनकी पूजा की और स्तुति की ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

दत्तमर्हणमर्घ्यं निकेतनं च यस्मै ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

दत्तार्हणनिकेतनः पद का अर्थ है कि भगवान् कपिल की समुद्र ने पूजा की और रहने का निवास स्थान प्रदान किया ॥३४॥

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः । त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ॥३५॥

अन्वयः— त्रयाणामपि लोकानाम् उपशान्त्यै सांख्याचार्यैः अभिष्टुतः योगं समास्थाय समाहितः आस्ते ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् कपिल तीनों लोकों को शान्ति प्रदान करके सांख्य दर्शन के आचार्यों द्वारा स्तुति किए जाते हुए योगमार्ग का अवलम्बन करके वहीं पर समाहित हो गये हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

उपशान्त्यर्थं समाहित आस्ते ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

त्रैलोक्य को शान्ति प्रदान करने के लिए वे वहीं पर समाधिस्थ हैं ॥३५॥

एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ । कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥३६॥

अन्वयः— हे तात ! यत् अहं पृष्टः हे अनघ तत् कपिलस्य देवहूत्याश्च संवादः एतत् तव निगदितम् ॥३६॥

अनुवाद— हे निष्पाप विदुरजी आपने जो मुझसे पूछा था वह मैंने भगवान् कपिल तथा देवहूति के पवित्र संवाद को सुना दिया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

प्रकरणार्थमुपसंहरति-एतदिति । तव त्वया ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा मैत्रेयजी इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि आपने जो मुझसे पूछा था उस भगवान् कपिल और माता देवहूति के संवाद को मैंने आपको सुना दिया ॥३६॥

य इदमनुश्रृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ।
भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्त्र्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
कापिलेयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३॥

समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ॥३॥

अन्वयः— कपिल मुनेः मतम् आत्मयोगगुह्यम् इदं यः अनुश्रृणोति यः अभिधत्ते सः सुपर्णकेतौ भगवति कृतधीः भगवत् पादारविन्दम् उपलभते ॥३७॥

अनुवाद— यह कपिल महर्षि का मत अध्यात्मयोग का गूढ रहस्य है । जो पुरुष इसका श्रवण अथवा वर्णन करता है । वह भगवान् गरुड़ध्वज की भक्ति से सम्पन्न होकर श्रीहरि के चरणारविन्द को प्राप्त कर लेता है ॥३७॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के अठारह हजार श्लोकों वाली पारमहंस्य संहिता के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत तैंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

एतच्छ्रवणकीर्तनफलमाह-य इति । सुपर्णकेतौ गरुडध्वजे । उपलभते प्राप्नोति ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्ध ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इसके श्रवण और कीर्तन का फल बतलाते हुए कहते हैं सुपर्णकेतौ पद का अर्थ है भगवान् गरुडध्वज को उपलभते अर्थात् प्राप्त करता है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के श्रीधरस्वामी प्रणीत भावार्थदीपिका टीका के तैंतिसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥३३॥

यह तीसरा स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥३॥